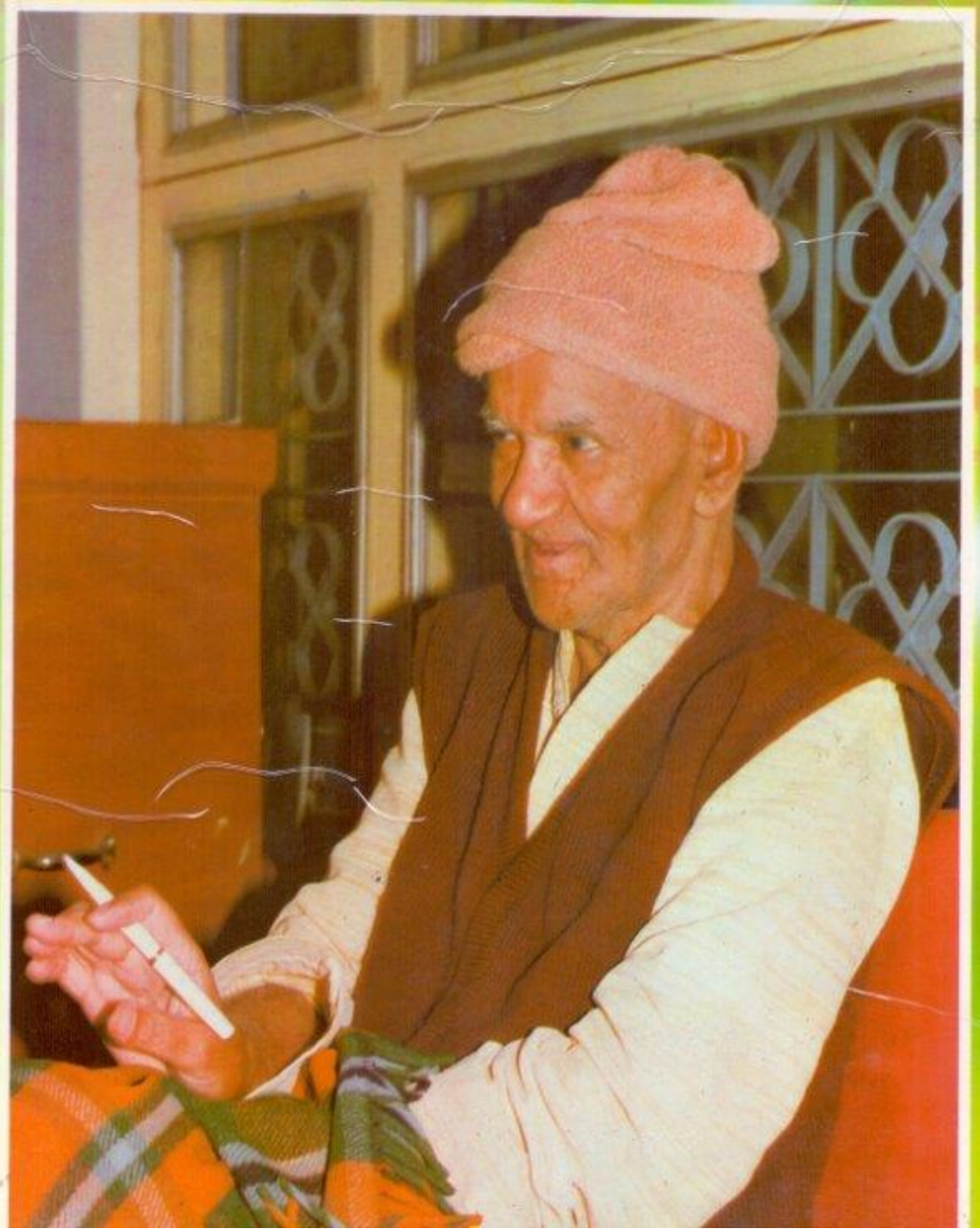
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक :

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा-२८१ ००३

© सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



मूल्य १२५)

मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी; कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीगणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देखा सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट् गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आप-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गईं- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अँग्रेजी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा झीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्रीकृष्णदत्तपालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर- घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आग गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंत:स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दु:खी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्राय: पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनने महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूलथाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों के द्वारा विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना, मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी के दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युग संधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु सम्पन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९४ में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गई। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

वाङ्मय का यह खण्ड मूलतः विश्वभर की नारी शक्ति की जीवन गाथाओं का एक कोष है। भारतीय संस्कृति सदा से ही नारी शक्ति की पूजा का प्रतिपादन करती आयी है। हमारे ऋषियों की मान्यता थी कि जहाँ नारी को समुचित सम्मान मिलता है वहाँ देवत्व विद्यमान होता है। आदिकाल से ही नारी अपनी मूलभूत शक्ति, जिसे हम संवेदना का नाम दे सकते हैं; के बलबूते इस गौरवास्पद सम्मान की अधिकारिणी रही है। वैदिककाल की ऋषिकाएँ हों, चाहे क्रान्तिकारी उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी की महिलाएँ, चाहे भारत एवं विश्वभर के अन्यान्य देशों में अवतरित हुईं सेवा-धर्म की सिद्ध साधिकाएँ हों अथवा समाज-सेवी एवं शौर्य-पराक्रम की धनी असामान्य प्रतिभाएँ; विभिन्न रूपों में नारी शक्ति ने संस्कृति पटल पर जो छाप छोड़ी है, उसी से हमारी संस्कृति विनिर्मित हुई है। हमारे विकास का यह गौरवमय पक्ष परमपूज्य गुरुदेव की लेखनी से नाचते-कूदते शब्दों के रूप में निकला है। आज जब चारों ओर नारी शक्ति को पददलित किया जा रहा है, उसकी अवमानना हो रही है, तथाकथित नारी मुक्ति के नाम पर उसका कामुक, भोग्यापरक स्वरूप उभारा जा रहा है, उसका आत्मबल उभरकर आगे नहीं आ पा रहा है; प्रस्तुत खण्ड जीवनियों के मार्मिक अंशों के माध्यम से हमारी ५० प्रतिशत जन-शक्ति को वह सामर्थ्य देगा, जिसकी आज सर्वाधिक आवश्यकता है। जिस समाज में दहेज की बलिवेदी पर बहुएँ जलाई जाती हैं। जिस देश में सम्प्रदाय एवं वर्गभेद के नाम पर अत्यधिक शोषण एवं अत्याचार नारी शक्ति पर होता हो, जहाँ नर का पौरुष आततायी बलात्कारियों के रूप में वीभत्स-ताण्डव नृत्य करता हुआ दिखाई पड़ रहा हो, समझ लेना चाहिए कि अब महाकाली के अवतरण का समय आ गया है। आधुनिकतम कहे जाने वाले आज के समाज में नारी के उसी शाश्वत स्वरूप को लौटाने और उसका जननी, मातृशक्ति, देवी वाला स्वरूप सामने लाने के लिए जिस विराट् स्तर के आन्दोलन की आवश्यकता है, उस *'महिला जाग्रति आन्दोलन'* का शुभारम्भ *'युग निर्माण योजना'* के माध्यम से परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी द्वारा ऋषियुग्म के रूप में किया गया है। न केवल गायत्री एवं यज्ञ का अधिकार अपितु पौरोहित्य एवं आश्वमेधिक यज्ञ तक के संचालन का अधिकार जिस महासत्ता ने २१वीं सदी की शुभागमन वेला में प्रदत्त करवाया, वही महासत्ता अब सारे समाज द्वारा नारी शक्ति की पूजा द्वारा इस विश्व के धरातल को देवभूमि बनाने जा रही है, इसमें कोई संदेह नहीं है। इस खण्ड में प्रस्तुत सारी जीवनियाँ विगत का अवलोकन मात्र हैं; किन्तु इनका एक-एक शब्द उन प्रेरणाओं से भरा पड़ा है जो नारी शक्ति के उठने का आधार बनता चला आया है।

इस खण्ड का पहला अध्याय विश्व की महान क्रान्तिकारी महिलाओं का है, जो माँ शारदामणि से लेकर दुर्गावती, अहिल्याबाई, लक्ष्मीबाई, जीजाबाई, जोन ऑफ आर्क, सुभद्रा कुमारी चौहान इत्यादि के जीवन प्रसंगों के रूप में वर्णित है।

विश्व की महान क्रान्तिकारी महिलाओं ने ही वह पृष्ठभूमि विनिर्मित की, जो २१वीं सदी के विश्व राष्ट्र का निर्माण कर रही है। नारी को सामान्यतः अबला माना जाता रहा है किन्तु भावनाओं एवं अपनी ओजस्वी प्रेरणाओं, शौर्य भरे क्रिया-कलापों से वह पुरुष से भी अधिक बलवान एवं ओजस्वी सिद्ध होती है। उसके बल को जगाने के लिए प्रथम अध्याय में उन देवियों के जीवन वृत्तान्त दिये गये हैं, जिन्होंने अपने पुरुषार्थ से क्रान्तिकारी कार्य कर दिखाये। द्वितीय अध्याय सेवा धर्म की सिद्ध साधिकाओं पर केन्द्रित है। कस्तूरबा, प्रभावती देवी, राजकुमारी अमृत कौर, पिसनहारी, श्रीमती तारा चेरियन, भगिनी निवेदिता, अरविंद आश्रम की श्री माँ, मेडम ब्लावट्स्की, एनीबेसेण्ट, मीरा बहन जैसी साधिकाओं ने अपनी सेवा-साधना से जो कार्य कर दिखाया वह उनके जीवन-गाथाओं के माध्यम से समझा जा सकता है। तीसरा अध्याय पाश्चात्य जगत की समाजसेवी नारियों पर केन्द्रित है, जो विभिन्न राष्ट्रों में अपनी सक्रिय भूमिका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

निभाती हुई विभिन्न रूपों में विश्व मानवता के हित में काम करके अमर हो गईं। इन सभी की जीवन गाथाएँ सबके लिए अजस्र प्रेरणाओं का स्रोत हैं।

नारी उत्थान को समर्पित भारत की कमला देवी चट्टोपाध्याय, दुर्गा बाई देशमुख, अबला बसु, पन्ना धाय तथा पश्चिम की इवेजलीन बूथ, हैरीयट स्टो और मार्गरेट सेंगर जैसी उदारमना महिलाओं का जीवन चरित्र भी पाठकगण वाङ्मय के इस खण्ड में पढ़ सकेंगे। अंतिम अध्याय हेलेन केलर, कु. चेन्नम्मा, पैट्राक्रास, फाइनावाराकिनी तथा श्रीमती केसर बाई जैसी अजेय जिजीविषा की धनी पराक्रमी प्रतिभाओं को समर्पित है।

निश्चित ही वाङ्मय के इस खण्ड में नारी शक्ति का वह स्वरूप देखा जा सकेगा, जिसके माध्यम से हम मातृसत्ता प्रधान समाज की उज्ज्वल भविष्य से भरी-पूरी २१वीं सदी की परिकल्पना कर सकेंगे। एक-एक जीवन वृत्तान्त स्वयं में प्रेरणाओं के पुंज से भरा हुआ हम सबको अपने गौरवमय अतीत की जानकारी ही नहीं कराता अपितु वर्तमान स्थिति में हमारा कर्त्तव्य क्या है, यह भी बताता है।

-ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

१. विश्व की महान क्रान्तिकारी महिलाएँ १.१

आदर्शों की सजीव प्रतिमा—श्री माँ शारदामणि १.१
अज्ञान का कारण अलगाव १.४
जिसकी चरण-रज ने ब्राह्मणों का ललाट पावन किया—रानी रासमणि १.६
वैदिक-युगीन-धर्म प्रचारिका—ब्रह्मवादिनी घोषा १.९
प्रेम की देवी की गोद में अवतार १.१०
शक्ति और शौर्य की साक्षात् अवतार—रानी दुर्गावती १.१२
नारी रत्न—येसुबाई १.१४
सद्गुणों की पुण्य प्रतिमा—महारानी अहिल्याबाई १.१६
नारी जाति का मुख उज्ज्वल करने वाली—महारानी लक्ष्मीबाई १.१८
मेवाड़ सिंहनी—महारानी कर्मवती १.२०
वीरांगना, वेलु नाचियार १.२१
सूझ-बूझ की जादूगरनी—उमाबाई १.२२
विस्मृत वीरांगना—रानी तलाश कुँअर १.२३
नारी शक्ति की मूर्तिमान प्रतिमा—राजकुमारी रत्ना १.२४
वीरांगना वीरमती—जिसने देशद्रोही पति को स्वीकार नहीं किया १.२६
स्वातन्त्र्य यज्ञ की महिला अध्वर्यु-सुवर्ण १.२७
निस्पृह देश-सेविका—कुमारी वीणादास १.३१
क्रान्ति की अग्रदूत—ये भारतीय वीरांगनाएँ १.३२
स्वाधीनता की रक्षक—रानी सारंधा १.३५
क्रान्ति की आग में अपनी आहुति देने वाली—मैना १.३७
नारीत्व का गौरव मूर्ति—जीजाबाई १.३८
क्रान्ति की एक अमर शिखा—बेगम हजरत महल १.४०
कुशल और निःस्पृह प्रशासिका—रानी भवानी १.४२
दक्षिण भारत की लक्ष्मीबाई—रानी चेन्नमा १.४४
वीरांगना—भीमाबाई १.४६
देश के लिए नृत्य-गान और देश के लिए बलिदान—अजीजन १.४७
नीलकण्ठ बन विष पिया औरों को अमृत बाँट दिया—आम्रपाली १.४८
अपने ध्येय के साथ समर्पित—श्रीमती भीका रुस्तमजी कामा १.५२
भारतीय महिला-मंडल की अग्रणी—श्रीमती सरोजिनी नायडू १.५४
पुष्प से मृदुल किन्तु वज्र से कठोर—कु. प्रीतिलता १.५६
त्याग और बलिदान की देवी—'प्रीति वछादार' १.५८
अपने नाम को सार्थक करने वाली—श्रीमती दुर्गा भाभी १.६०
स्वाधीनता की मशाल जलाने वाली—नागारानी गिडालू १.६१
आधुनिक भारत की विभूतिवान महिला—श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित १.६३
देश प्रेम में तिल-तिल जलने वाली—श्रीमती पार्वती देवी १.६५
देश भक्ति का अलख जगाने वाली—श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान १.६७
स्वतंत्रता की प्रतिमा—देवी जोन ऑफ आर्क १.७०
फ्रांस की स्वातंत्र्य सिंहनी—मादाम रोलां १.७२
विलक्षण विभूति—सराह बर्नहर्ट १.७४
तप, त्याग और शौर्य की अधिष्ठात्री—लुई माइकेल १.७६
रूस की क्रांतिकारी महिला विभूति—शहीद जोया कोस्मोदे १.७८
पंक में खिला पंकज—सोफी बारडिना १.८१
सोकी पेरो भस्काया—जिसने हँसते हुए मृत्यु को वरण किया १.८३
क्रान्ति की दीप शिखा—श्रीमती कोहानी १.८५
घायल सैनिकों के लिए मृत्यु दंड पाने वाली—नर्स कैवेल १.८७
जमीला-जिन्दाबाद १.८९
मानवता एवं राष्ट्र प्रेमी—कु. मार्था १.९०
अजेय लाइना—जिसे कोई हरा न सका १.९२
यूडोसिया—जिसने कर्त्तव्य को प्रेम से बढ़कर माना १.९३
सौराष्ट्र की लोकोपकारिणी सन्त महिलाएँ १.९५
(१) सन्त लोयण १.९५
(२) रामबाई १.९६
(३) तोरल १.९७
अन्याय से लड़ने वाली—मेरी स्पिरिडो नोवा १.९७
इलाहाबाद की शहीद अन्तिम सती—श्रीमती अलोप शंकरी १.९९
डॉ. आनन्दीबाई जोशी १.१०१
परिश्रम की प्रतिमा—श्रीमती राजकुमारी ठौलिया १.१०२

२. सेवाधर्म की सिद्ध साधिकाएँ २.१

सेवा मूर्ति—माँ कस्तूरबा गाँधी २.१
आदर्श समाज-सेविका—डॉ. मुथुलक्ष्मी रेड्डी २.४
सिद्धान्त व कर्मनिष्ठा की सजीव प्रतिमा—प्रभावती देवी २.६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नारी आदर्शों की पुण्य प्रतिमा—कमला नेहरू २.८
आदर्श बाल-शिक्षिका—आशा देवी २.१०
नारी जागरण की उन्नायिका—अवन्तिकाबाई गोखले २.११
त्याग, कर्म व सेवा की त्रिवेणी—मिठु बहिन २.१३
सेवा की साकार मूर्ति—राजकुमारी अमृत कौर २.१५
एक प्रेरणाप्रद व्यक्तित्व—डॉ. मेरी पूनमलुकोज २.१७
महान प्राकृतिक चिकित्सक—सौदामिनी बहिन २.१९
निराश्रिताओं को आश्रय देने वाली निराश्रिता—
श्रीमती रमाबाई २.२०
आदिवासियों की नेता—श्रीमती राजमोहिनी देवी २.२२
श्रीमती रमाबाई रानाडे २.२४
समाज सेवा की आदर्श प्रतीक—श्रीमती माई हर्षे २.२५
भिखारिन छोगरिया बाई का दान २.२६
श्रम की सार्थकता—भाव संवेदना से जुड़ने में २.२७
मणिबेन—मानव का सच्चा आभूषण—सादगी २.२८
तुलसीबाई—सेवा ही जिनका जीवन व्रत है २.२९
परम परिश्रमी—श्रीमती तारा चेरियन २.३०
बाल शिक्षण को समर्पित—श्रीमती तारबाई मोडक २.३२
समाज-सेवा में अग्रणी—श्रीमती यशोधरा दासप्पा २.३५
समाज-सुधार और जन-सेवा में संलग्न—
जानकी मैया २.३६
श्रीमती चन्द्रावती राठौर—
सामान्य गृहिणी से समाज-सेविका २.३९
श्रीमती नेमावती की सराहनीय समाज-सेवा २.४०
भारत के लिए सर्वस्व अर्पण करने वाली—
बहिन निवेदिता २.४०
दिव्य मानव की स्रष्टा—मीरा रिचार्ड २.४३
विश्व-बन्धुत्व की साकार प्रतिमा—मैडम ब्लावटस्की २.४६
भारत-भक्त विदेशी महिला—एनीविसेंट २.४७
महात्मा गाँधी की मानस पुत्री—मीरा बहन २.४९
वाली अम्मा—जिनका बलिदान सफल हुआ २.५२
हिमालय की महान् सेविका—कैथरीन हैलियन २.५३
बापू के विचारों को इंग्लैण्ड में फैलाने
वाली—न्यूरियल लीस्टर २.५४
दुनिया की नारी, जिसकी आभारी—मार्गरिट कजिन्स २.५७
निःस्वार्थ एवं कर्मठ सेविका—इजाबेला थोर्बन २.५९
ममता और करुणा की मूर्ति—कुमारी डायन बालेमी २.६१
कुष्ठ रोगियों की महान् सेविका—मेरीरीड २.६२
सेवा की प्रतिमूर्ति—मदर टेरेसा २.६४

३. समाजसेवी पाश्चात्य नारी रत्न ३.१

सेवाधर्म की सच्ची उपासिका—फ्लोरेन्स नाइटिंगेल ३.१
जिसने जेलखानों की काया-पलट कर दी—
एलिजाबेथ फ्राई ३.३
आदर्श गृहिणी और सुन्दर समाज-सेविका—
श्रीमती मेरी जेन वौमन ३.४
सेवा की प्रतिमा—जेनबीव ३.६
इजराइल की कर्णधार—श्रीमती गोल्डामेयर ३.८
मानव-जाति की महान सेविका—क्लेरा बर्टन ३.१०
पिता के सिद्धान्तों के प्रति समर्पित—
कुमारी अन्ना फ्रायड ३.११
ममत्व की मूर्ति—मारिया मान्तेस्सरी ३.१३
लगन और निष्ठा की मूर्तिमती प्रतिमा—
श्रीमती हैरी क्लोवर ३.१४
शब्द ब्रह्म की साधिका—महीलिया ३.१६
ब्रिटेन की पहली महिला मंत्री—बारबरा केसल ३.१८
सतत् सेवा में निरत—मीरा बेनिट ३.२०
विकलांगों के लिए वरदान—मेरी स्कॉट ३.२२
सैकड़ों रोगियों की सेवा करने वाली विकलांग—
डा. मेरी बर्गीस ३.२३
बाल पक्षाघात पीड़ितों की अग्रजा—सिस्टर केनी ३.२५
ब्रिटेन की प्रथम महिला डॉक्टर—एलिजाबेथ गेरेट ३.२७
ममता की मूर्तिमती सत्ता—मिस एटीली ३.२९
एक आदर्श परिचारिका—सुजाको ३.३१
सजीव सेवा मूर्ति—श्रीमती लस्सीचेस ३.३३
मनुष्य देवता की आराधिका—एडविनामाउण्ट बेटन ३.३४
नगर-सुधार आन्दोलन की जनक—आक्टेवियाहिल ३.३६
पीड़ित मानवता की त्राता—कैथरीन ब्रेश्कोवस्की ३.३८
व्यस्त और चुस्त—श्रीमती क्लाडिया जानसन ३.४१
अथक अन्वेषिका—डॉ. केट केम्पवेल ३.४२
पचहत्तर बच्चों की निस्सन्तान माता—जेन मैक्सवेल ३.४४
जन-जन की पीड़ा बाँटने वाली—श्रीमती डिक्सन ३.४६
मानवता की पक्षधर—डोरोथिया डिक्स ३.४८
सोलडाड की संरक्षिका—डोना लिलियन ३.५०
नेत्रहीनों के जगत की चन्द्रिका—डोरीना ३.५२
सेवा व ममता की देवी—पिरेरा बेजीबुल ३.५४
तिहरे मोर्चों पर सफल सन्नद्ध—
मैडम च्यांग-काई-शेक ३.५७
निर्धनों के लिए विक्रमादित्य-सी न्यायकारिणी—
एडिथ सेम्पसन ३.५९
विज्ञान जगत की द्युतिमान चन्द्रिका—मदाम क्यूरी ३.६१
शरीर विज्ञान की दुर्लभ विभूति—
डॉ. गर्टीथेरे साकोरी ३.६३
सामाजिक विषमता का शत्रु—एंजेला डेविस ३.६५
सहचरत्व की सच्ची देवी—श्रीमती जयिनी मार्क्स ३.६६

४. नारी उत्थान को समर्पित उदारमना महिलाएँ ४.१

श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय—नारी उत्कर्ष ही
जिनका लक्ष्य था ४.१

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निष्काम जनसेवी दुर्लभ विभूति—देवी माई ४.३
संघर्ष के शीशमहल में दफन—ताहिरा ४.५
नारी जागरण को समर्पित—श्रीमती धनवन्ती रामराव ४.६
नारी जागरण की अग्रदूत—श्रीमती उर्मिला शास्त्री ४.८
साक्षरता की देवी—श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख ४.१०
विधवाओं और अभागिनों की बड़ी बहिन—सुब्बुलक्ष्मी ४.१२
महिला-जाग्रति के लिए समर्पित—कमलाबाई होस्पेट ४.१३
अन्धकार में एक रश्मि किरण—सरला नायक ४.१४
श्रीमती सावरकर—जिन्होंने आधुनिक युग में उर्मिला जैसी साधना की ४.१६
शहजादी जहाँनारा का जीवन अनुभव ४.१८
कथा-सम्राट की निर्मात्री ४.२०
सच्चा समर्पण पति एवं समाज के प्रति ४.२१
चरित्र और तप ४.२२
पतिव्रता—शिवदेवी ४.२२
महाराणा प्रताप की जननी ४.२३
पन्नाधाय का अपूर्व त्याग ४.२४
विवेकशीला मानकुँवर—जिसने अनैतिक का विरोध किया ४.२५
आदर्शों को समर्पित—साहचर्य ४.२७
सच्ची सहधर्मिणी—श्रीमती ललिता शास्त्री ४.२८
अमृता शेर गिल—जिसने कला को जीवन प्रदान किया ४.२९
साधारण महिला का महान् कार्य ४.३०
स्वयं अपना मार्ग बनाने वाली—प्रतिभा बनर्जी ४.३१
ज्ञान साधना को मूर्त रूप प्रदान करने वाली—डा. इरावती कर्वे ४.३३
अक्का महादेवी—जिसने वासना पर विजय पाई ४.३३
उदारमना श्रीमती चम्पादेवी ४.३४
श्रीमती अन्ना चेण्डी—गृहिणी, पत्रकार, विधायिका और हाईकोर्ट जज ४.३५
कृषि-विशेषज्ञ महिला—श्रीमती लक्ष्मीरघुरमैया ४.३७
भारत की प्रथम महिला इन्जीनियर—श्रीमती ललिता ४.३७
नारी जागरण की प्रवर्तिका—सराह हेला ४.३९
अमेरिका की महान् नीग्रो महिला—फिलिस व्हिट्ले ४.४१
मानवता की अनन्य सेविका—इर्वे जलीन बूथ ४.४३
नारी गरिमा को गौरवान्वित करने वाली—श्रीमती रूजवेल्ट ४.४५
पीड़ितों के लिए जीवनोत्सर्ग करने वाली—जेन एडम्स ४.४७
विश्व राष्ट्र और नारी उत्थान की स्वप्न द्रष्टा—एमिली ग्रीन वाल्च ४.५०
नारी शिक्षा आन्दोलन की कर्णधार—रेडन कार्तिनी ४.५२
महिला मताधिकार के लिए संघर्ष करने वाली—पैंखर्स्ट ४.५३
नोबेल पुरस्कार विजेता व्यस्त गृहिणी—श्रीमती सिग्रिड अनसेत ४.५५
नारी जागरण की प्रथम नेत्री—मादाम-सनयात सेन ४.५८
ब्रिटिश महिलाओं के अधिकारों के लिए लड़ने वाली—श्रीमती नेन्सी एस्टर ४.५९
ध्रुव की दिशा में एक महान् महिला—श्रीमती टबमैन ४.६१
साक्षरता की देवी—श्रीमती वेल्दी फिशर ४.६३
मानवता की सहृदय उद्गाता—सेल्मा लांगर लोफ ४.६६
विचारों के बल पर इतिहास का रुख बदलने वाली महान् महिला—हैरियट स्टो ४.६८
प्रबल नारी आन्दोलन की जन्मदात्री—बेट्टी फ्राइडन ४.७०
इण्डोनेशिया में नारी जागरण की देवदूत—इबूकारतिनी ४.७२
विश्व शान्ति की उपासिका—बेरन ब्रेथा वान सटनेर ४.७४
प्रगति की हर दिशा में अग्रसर—मेरी मर्विन्त ४.७६
जाति-भेद विद्रोहिनी—मारगेट मिचेल ४.७७
प्रयत्न की प्रतिमा—मार्गरेट सेंगर ४.७८

५. शौर्य और पराक्रम की धनी ये असामान्य प्रतिभाएँ ५.१

साहसी महिला—मदाम अलेक्जेंड्रा डेविड नील ५.१
शरीर से अपंग पर मन से समर्थ हेलेन केलर ५.३
प्रतिभाशाली रूसी कन्या—गूँगी-बहरी फाइना वारालिना ५.४
वेलेरी लोंग—जिसने दुर्देव पर विजय पायी ५.६
जीवन की चुनौती बनाम—कुमारी जोन्स ५.८
एडिथ बोन—सात वर्ष का एकान्त कारावास भी जिसे निराश न कर सका ५.१०
अपंगों का मसीहा—सारा फुलर ५.११
पैट्रा क्रास—जिसने अपनी जीवन दिशा बदली ५.१३
ओलम्पिक विजेता अपंग बाला—विस्मा ५.१४
दादी मोर्स—जो ८० वर्ष की आयु में चित्रकार बनीं ५.१६
'सेवती' जिसने रातभर में शेर का दम तोड़ दिया ५.१८
साहस और सूझबूझ के आगे मृत्यु भी हार गयी ५.१९
साक्षात् दुर्गा—कांताबेन ५.२०
साहस और शौर्य की देवी—श्रीमती केशरबाई ५.२०
वीरांगना वधू—कुसुमा कछवाह ५.२१
प्रतिभा की धनी एक कृषक कन्या ५.२२
साहसी महिला ने अजगर को परास्त किया ५.२२
बहिन ने भाई को वीर बनाया ५.२३

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साहस की देवियाँ ५.२४
वीरांगनाएँ ही पति की सहायता कर सकती हैं ५.२४
निरभिमानी साहसी बाला—सरस्वती ५.२५
व्योम विजयिनी—शीला स्काट ५.२६
ग्रामीण महिलाओं ने चोर को रँगे हाथों पकड़ा ५.२७
वीर बालिका का साहस ५.२७
एक अनपढ़ किन्तु साहसी महिला की सूझबूझ ५.२८
अट्ठारह वर्षीया युवती का अदम्य मनोबल ५.२९
ये साहसी पर्वतारोही महिलायें ५.२९
बारह वर्ष की बालिका का अद्भुत साहस ५.३१
विपत्ति में विवेकपूर्ण साहस ५.३१
आठ वर्षीय बालिका का अद्भुत साहस ५.३२
अपने में मिस कार्लविन-सी करुणा जाग्रत करें ५.३२

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विश्व की महान क्रान्तिकारी महिलाएँ

आदर्शों की सजीव प्रतिमा— श्री माँ शारदामणि

बँगला, सम्वत् १२७१, जयरामबाटी ग्राम के आस-पास भयंकर अकाल पड़ा। भूख के मारे लोग माँगकर खाने लगे। निर्धन ब्राह्मण रामचन्द्र के पास एक वर्ष पुराना चावल भरा हुआ था। उनसे इन भूखों की पीड़ा न देखी गई। जो कुछ अपने घर में था उसी से इनकी क्षुधा मिटाने का प्रयास किया। अपनी लाड़ली बेटी के लिये अच्छे चावलों का भात अलग से पकाने का प्रबन्ध किया। आठवर्ष की बालिका को यह स्वीकार न हुआ। स्वयं दिन भर थोड़ा-सा भात खाकर वह अकाल पीड़ितों को खिलाती रहती थी। यही दु:ख-कातर—बालिका आगे माँशारदा के नाम से प्रसिद्ध हुई तथा एक महान मिशन का संचालन करने में समर्थ हुई।

युग-पुरुष, महामानव श्री रामकृष्ण परमहंस का जहाँ स्मरण होता है, उसके साथ ही माँशारदा का प्रखर व्यक्तित्व तथा कर्त्तव्य जुड़ा हुआ लगता है। दोनों एक दूसरे के पूरक, शिव के अर्द्धांग स्वरूप के साकार उदाहरण, एक धारा के छोरों की तरह अविछन्न रूप से जुड़े लगते हैं। विवाह का प्रयोजन यदि काम-क्रीड़ा तथा पारिवारिक-सुख पाना तथा सन्तानोत्पत्ति ही रहा होता तो इसे जीवन का अनिवार्य आवश्यक संस्कार नहीं माना गया होता। विवाह जिस महान उद्देश्य को लेकर किया जाता है, उसका जीवित-जाग्रत उदाहरण माँशारदामणि ने प्रस्तुत किया है। परमहंसदेव इनके लिये कहा करते थे—"वह शारदा, सरस्वती है, ज्ञान देने के लिये आई है।" यह कथन पूर्णरूपेण सत्य था। जब उसका विवाह हुआ तब शारदामणि केवल छ: वर्ष की बालिका थी तथा श्री रामकृष्ण २४ वर्ष के युवक थे। विवाह के पीछे जो अभीष्ट प्रयोजन था, उसे देखते हुए यह आयु का अन्तर ठीक ही था। श्री रामकृष्ण के देहावसान के बाद उनके छोड़े हुए कार्य को उनकी सहधर्मिणी श्री माँ ने पूरा किया। उस आरम्भिक साधना काल में भी पत्नी का अल्पवयस सहायक ही रहा। विवाह हेतु माँशारदा का नाम स्वयं श्री रामकृष्ण ने सुझाया था। छ: वर्ष की बालिका शारदा का विवाह श्री रामकृष्ण के साथ हुआ। रामकृष्ण का निरन्तर साधना में लीन रहना तथा शरीर एवं लोक व्यवहार के प्रति उपेक्षा बर्तने के कारण बहुत से लोग इन्हें पागल मानने लगे थे। शारदामणि का साहस तथा धैर्य कितना महान था, कि ऐसी स्थिति में भी वे उद्विग्न न हुईं।

श्री रामकृष्ण के दक्षिणेश्वर वास के दौरान वहाँ श्री शारदा देवी की आवास व्यवस्था एक छोटे-से नहबत खाने में की गई थी। दोनों का जीवन कठिन साधन का जीवन था। जीवन के वसन्तकाल यौवन के प्रथम चरण में श्री रामकृष्ण ने उनसे पूछा—"क्या मुझे सांसारिक विषय भोगों की ओर खींच लेने आयी हो ?" उस पर माँ शारदा ने यही कहा था "नहीं क्यों, मैं आपको इस ओर आकृष्ट करूँगी ? आपको अपने अभीष्ट पथ में सहायता देने के लिये ही मैं आयी हूँ।" आजीवन माँ ने इसका पालन किया। उन्हें नित्य प्रति भोजन कराने से लेकर पैर दबाने तक के सब कार्य श्री माँ करती थीं। आज के लोग, जिन्होंने चिंतन की जाने कैसी-कैसी विकृतियाँ अपने दिमाग में भर ली हैं ? उन्हें यह असम्भव ही लगेगी, किन्तु है सत्य।

वंशवर्धन के लिये सन्तानोत्पत्ति करना, बेटे के लिये हाय-हाय करना एक हीन मनोवृत्ति है। श्रीमाँ ने आदर्श प्रस्तुत किया कि अपने पेट से ही सन्तान उत्पन्न नहीं की जाती। ऐसे के लिये संसार के सभी पुत्र-पुत्रियाँ ही हैं। माँ की ममता की महानता का जीवित-जाग्रत स्वरूप यदि आज का नारीसमाज जान ले तो वे स्वर्ग की सृष्टि करने में सहज ही सफल हो जायँ।

श्री रामकृष्ण के शिष्यों तथा अतिथियों का सम्पूर्ण भार इनके ऊपर था। शिष्यों पर श्रीमाँ ने जो स्नेह-वर्षा की वह कोई माँ ही कर सकती है। उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखने वाला इनका हृदय कभी-कभी श्रीरामकृष्ण से भी बच्चों के बारे में कहने-सुनने को विवश कर देता था। "माँ" नाम को उन्होंने सार्थक कर दिखलाया था।

लम्बी अवधि तक दक्षिणेश्वर के नहबत-खाने के छोटे से कमरे में माँ के सब काम चलते थे, तथा आवश्यकता के सब सामान रखे जाते थे। कोई जान ही नहीं पाता था कि शारदामणि रहती भी हैं या नहीं। कभी उन्हें किसी ने बाहर निकलते नहीं देखा था। फिर भी वे सभी कार्य सम्पादित करती थीं। आगन्तुकों के भोजन से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.२ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

लेकर छोटे-छोटे काम के लिये श्री रामकृष्ण माँ के पास भेज दिया करते थे। कितना तप और त्याग का जीवन था उनका ? श्री रामकृष्ण का एक पूरक रूप श्री माँ थीं। यदि यह सहयोग न मिला होता तो वे इतनी लोक-सेवा के लिये तप की पूँजी नहीं जोड़ पाते।

दिन में सूर्य पेड़-पौधों को तपाकर उनमें अग्नि भरता है तथा रात्रि को चन्द्रमा उनमें अपनी शीतलता के द्वारा रस संचार कर, उन्हें नवजीवन देता है। शिष्यों को मर्यादा-पालन सिखाने तथा व्यक्तित्व-निर्माण की दिशा में श्री रामकृष्ण बहुत कठोर थे। यहाँ तक कि कौन कितनी रोटी खायेगा, उसका भी हिसाब रखते थे। श्री माँ उन्हीं शिष्यों को वात्सल्य की अमृतधारा से सींचती थी, उनकी आवश्यकताओं को पूरा करती थीं। उन दोनों मालियों ने अपने बाग में 'विवेकानन्द' जैसे गुलाब के पौधे उत्पन्न किये, जिनकी सुगन्ध विश्व भर में व्याप्त हुई तथा भारतीय-संस्कृति की गौरव-गरिमा से विश्व को अभिभूत कर सकी। श्री माँ को इतने बच्चे यों ही मिल गये, वे क्यों प्रजनन के झंझट मोल लेकर समय तथा स्वास्थ्य गँवातीं ? श्री रामकृष्ण देते थे उन्हें तप की पूँजी तथा श्री माँ उन्हें वह ममता देती थी जिसकी महानता, सरलता के कारण ब्रह्म को स्त्री रूप में पूजने का विधि-विधान बनाया गया है। इस ममता को बाँटने में यदि कोर-कसर न रखी जाय तो नारी के लिये सारा विश्व ही अपनी सन्तान के रूप में दिखाई पड़ने लगेगा।

श्री रामकृष्ण के देहावसान के बाद उनके कार्यों को मूर्तरूप देने हेतु श्री माँ ने चौंतीस वर्ष की वियोग व्यथा सहन की। आज की जिस छोटी मान्यता के अनुसार जिसे सुख कहा जाता है, वह तो इन्हें कभी मिला नहीं, न कभी उसे पाने की कामना ही उन्होंने की। उनका जीवन क्रियाशीलता का जीवन रहा। माँ के संरक्षण में ही रामकृष्णमिशन का छोटा-सा पौधा विशाल वट-वृक्ष के रूप में परिणित हुआ। जो काम श्री रामकृष्ण अपने जीवन काल में नहीं कर पाए थे, उसे इन्होंने पूरा किया। श्री रामकृष्ण ने अपनी तपस्या से दीन-दुःखियों के दुःख दूर करने का जो क्रम अपनाया था, उस क्रम को श्री शारदा देवी ने आगे भी चालू रखा। यत्र-तत्र जन-जागरण के केन्द्र (मठ) बनाने का श्रेय श्री माँ को ही दिया जायेगा।

उनका दैनिक जीवन बहुत ही अनुपम था। हर समय वे कुछ न कुछ करती ही रहती थीं। आलस्य में या बेकार की गप्प हाँकते उन्हें किसी ने नहीं देखा। रात्रि के तीन बजे उठने का उनका नियम था। समय के एक-एक क्षण का मूल्य समझकर उसका सदुपयोग किया। इतने बड़े परिवार का गठन उन्हीं के द्वारा हो सका था। श्री रामकृष्ण तो त्यागी-तपस्वी जीव थे, उन्हें सांसारिक लोक-व्यवहार का ध्यान बहुत कम रहता था। इस अभाव की पूर्ति श्री शारदा देवी करती थीं। इसी का परिणाम मिशन की वृद्धि और समृद्धि के रूप में जन-मानस के सामने उजागर हुआ। दोनों एक ही सिक्के के दो पूरक पहलू थे।

उसका जीवन सतत् कर्मण्यता का जीवन था। जीवन के प्रभात से लेकर सन्ध्या तक कर्म में रत रहने वाली श्री माँ का जीवन मानव-मात्र के अनुकरण की वस्तु है। इस कर्म के साथ सेवा यदि जुड़ जाय तो यह किसी भी धर्म-कृत्य तथा तप-साधना जैसा ही महान हो जाता है। श्री शारदा देवी ने अपना सब कुछ लोक मंगल के लिये ही सौंप दिया था। स्वयं की इच्छा तो जागी ही नहीं। सारे संसार को अपना परिवार मानकर वे 'श्री माँ' जैसे गरिमामय पद पर पहुँची थीं। नारी को ईश्वर ने जिस दिव्य गुण से, जिस उपाधि से सुसज्जित करके इस लोक में वात्सल्य की अमृत-वर्षा करने भेजा है, उसे 'माँ' जैसी पदवी दी है। उसे सार्थक करने का अनुपम उदाहरण इनका जीवन रहा, जिसके आगे सभी कुछ तुच्छ है। जो नारी सही अर्थों में 'माँ' बन जाय उसकी महानता वही जान सकती है।

यह ममता न जाति-पाँति के बन्धन देखती है, न पशु-पक्षी का वर्गीकरण। श्री माँ ने सभी पर अपनी ममता बरसायी थी। वे कहती थीं—"मैं सत की भी माँ हूँ और असत की भी माँ हूँ।" "माँ की गोद में बच्चे टट्टी-पेशाब भी कर देते हैं।" इन्हें केवल कहकर नहीं जीवन जीकर बताने वाली श्री माँ ने धार्मिक भेद-भाव नहीं रखा। जयराम बाटी (उनके पितृगृह) के मुसलमानों को उतनी ही ममता दी। एक बार बिल्ली ने उनके बिस्तर में प्रसव कर दिया तो उन्होंने कहा—"बिल्ली को कुछ मत कहना। वह रहती यहीं है, खाती यहीं है, तो प्रसव करने कहाँ जाएगी ?" आशीर्वाद, वरदान देने में भी उन्होंने कभी भेद-भाव नहीं किया। यहाँ तक कि उन्होंने दूसरों के रोग भी अपने आप धारण करके उनको चंगा कर दिया। यह थी धरती माँ जैसी विशाल हृदयता।

श्री माँ यही मानती थीं कि मनुष्य की महत्ता उसकी भावनाओं तथा उसके उत्कृष्ट विचारों के कारण ही है। उन्होंने यह केवल मुँह से कहा होता तो शायद उसे कोई नहीं मानता, किन्तु उन्होंने उसे अपने जीवन में उतारकर दिखाया। एक साधारण परिवार में जन्म लेने वाली बालिका इतनी विख्यात हुई, अपने हृदय की महानता तथा देवोपम विचारों के कारण ही। आदर्श के पथ का पथिक कभी हानि नहीं उठाता, इसका इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है ? सुख भोग में नहीं, त्याग में है, इससे सुन्दर दृष्टान्त और कहाँ मिल सकता है ? वे अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण के कारण ही विवेकानन्द जैसे महापुरुषों की वन्दनीया बन सकी थीं। जिन्होंने विश्व को चमत्कृत कर दिया था। मातृसत्ता का चरम विकास यही तो है। रामकृष्ण परमहंस के लिये श्री माँ, माँ काली का स्वरूप थीं और श्री माँ के लिये वे साक्षात् परमेश्वर थे। एक ही सत्ता के दो रूपों की तरह इनका जीवन मनुष्य से देवता बनने की कहानी है। कौन इस कहानी को दुहराना न चाहेगा ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के देहावसान के चौंतीस वर्ष बाद इनका देहावसान हुआ। बचे हुए काम को भी माँ ने पूरा किया। वे आदर्श के पथ पर चलने वाले लोक सेवकों को अपनी ममता के द्वारा निरन्तर आगे बढ़ाती रहीं। रामकृष्ण मिशन की समृद्धि में इनकी भूमिका रामकृष्ण परमहंस जैसी ही रही। इन्होंने अपने जीवन को एक मिशन ही बना दिया था। उन्होंने अपने अंतरंग जीवन की एक घटना सुनाते हुए कहा था कि रामकृष्ण देव ने कहना प्रारम्भ किया—"मैं उपासना में बैठा। जब मनुष्य इस पार्थिव देह की नश्वरता और परमात्मा की सत्यता में विश्वास कर लेता है, तो ध्यान लगने में देर नहीं लगती। हृदय से उठती हुई भाव-तरंगों ने आकाश की विस्तृत सीमा पल भर-में पार कर ली और इष्टदेवी भगवती काली का परम तेजस्वी स्वरूप झलकने लगा। उस परम पावन एवं दिव्य ज्योति में स्नान करते हुए मन को अलौकिक तृप्ति मिली। उस दिन जैसा आनन्द जीवन में कभी नहीं मिला। मुझमें और भगवती में कोई अन्तर नहीं रह गया था।"

"ध्यान टूटा तब से विश्व की प्रत्येक नारी में मुझे माँ के दर्शन होते हैं। तुममें भी मुझे उन्हीं की ज्योति दिखाई देती है, किन्तु मैंने तुम्हारे साथ विवाह किया है इसलिये कोई दैहिक-कामना हो तो उसे भी पूरा करना मेरा धर्म है। मैं उसके लिये भी प्रस्तुत हूँ। मुझे संसार में खींचना चाहो तो कोई आपत्ति नहीं।" परमहंस के इस आत्म-समर्पण का एक तरुण-पत्नी ने जिस प्रकार का उत्तर दिया वह अनुपम ही था।

नारी समाज के लिये माननीय और अनुकरणीय माँ शारदामणि का उत्तर यहाँ प्रस्तुत है। रामकृष्ण परमहंस की बात सुनकर वे भाव-विह्वल होकर बोलीं—"नहीं, मैं तुम्हें संसार में नहीं खींचना चाहती। मैं तो तुम्हारे चरणों में, समीप रहकर सेवा करना चाहती हूँ। मैं भी तो आत्मा हूँ, मुझे भी तो कुछ सीखना चाहिए। मैं तुमसे कुछ सीखना भी चाहती हूँ और इष्ट-प्राप्ति में तुमको सहयोग भी देना चाहती हूँ।"

इन शब्दों में माँ के हृदय की वह गहराई और तपश्चर्या छिपी हुई है, जिसने भारतीय समाज में देवताओं को जन्म लेने के लिये विवश किया। उसकी असीम करुणा और दया का आनन्द लेने के लिये भगवान को भी मानवी के आँगन में आकर क्रीड़ा करनी पड़ी। वास्तव में मातृत्व की गरिमा ही बच्चों को गम्भीर, आत्मबल-सम्पन्न, समर्थ और तेजस्वी बना सकती है। भारतीय समाज की इसी विशेषता ने यहाँ काल-पुरुष पैदा किये हैं। आधुनिक नारी को उसका महान मार्गदर्शन करने के लिये माँ शारदा का जन्म हुआ।

वे पश्चिमी बंगाल के एक अत्यन्त साधारण गाँव जयरामबाटी में जन्मी थीं। पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। पर वे बड़े ही नेक और ईमानदार थे। बड़े परिश्रमी स्वभाव के थे। वही संस्कार उन्होंने बेटी शारदा पर भी डाले। धन का अभाव था पर वात्सल्य का नहीं। उसी के सहारे उन्होंने शारदा में सेवा, दया, ममता और उद्यमशीलता आदि गुणों का विकास किया।

एक दिन कामारपुकूर के कुछ लोग जयरामबाटी आये। उन्होंने सीधे शारदा के घर पहुँचकर उनके पिता से अपनी कन्या का हाथ रामकृष्ण देव को देने का आग्रह किया। उन दिनों शारदा की आयु ६-७ वर्ष की ही थी, रामकृष्ण देव २४ वर्ष के थे। आयु में काफी अन्तर था। पर इतनी आयु में ही परमहंस देव ने अपनी साधनाओं का इतना तीव्र विकास कर लिया था कि उनकी ख्याति बंगाल प्रान्त में दूर-दूर तक पहुँच चुकी थी। शारदा ने भी उनकी यश-गाथायें सुनी थीं। थी तो वह बालिका पर मन में उनके दर्शनों की तीव्र अभिलाषा जाग्रत हो उठी थी। स्थिति ऐसी थी जिस तरह भगवती पार्वती और भगवान शिव के विवाह में हुई थी। नारद-देव ने समझाया—बेटी उमा ! शिव सदैव अमंगल वेश में रहते हैं। अपनी उन्हें चिन्ता नहीं, विश्व-कल्याण ही उनके जीवन का उद्देश्य है, वहाँ तुम गृहस्थ-सुख की कल्पना भी मत करना।

गुरुदेव की गूढ़वाणी सुनकर पार्वती ने कहा—मुझे उनके सांसारिक-स्वरूप की केवल उतनी ही आवश्यकता है कि सेवा के आनन्द से वंचित न होऊँ, अन्यथा मुझे तो उनकी आध्यात्मिक परिपूर्णता में ही योगदान देना है। व्यक्ति अपने आप में भावनात्मक दृष्टि से अपूर्ण है। यदि नारी उस भाव को पूर्ण कर देती है, तो व्यक्तित्व पूर्ण और सार्थक हो जाता है। भगवान के भोगी स्वरूप की तो मैंने कल्पना भी नहीं की, मुझे तो 'योगी शंकर' ही अभीष्ट है।

ऐसा लगता है कि कोई भाव की भाषा पढ़ सका होता तो वह देवी शारदा के अन्तःकरण से भी यही सुन लेता। अन्तर कुछ नहीं, बस इतना था कि उन्होंने बिना किसी वार्तालाप के इस विवाह की स्वीकृति दे दी थी। पार्वतीजी ने जो कुछ कहा था, उसे उन्होंने आजीवन निवाहा। इस प्रकार उनका जीवन एक 'पूर्ण-तपस्या' बन गया। उस तप ने ही स्वामी विवेकानन्द जैसे तेजस्वी बालक और निवेदिता जैसी श्रेष्ठ बालिकायें पैदा की थीं।

पुत्र की कामना उन्हें हुई नहीं थी क्या ? विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद जब कभी वे जयरामबाटी आतीं तो गाँव की स्त्रियाँ उन्हें समझातीं—बेटी, सन्तान के बिना स्त्री अपूर्ण रहती है फिर तुम्हारे पतिदेव इतने महान हैं, उनकी सन्तान और भी महान ही होगी। माँ शारदा वह सब सुनतीं और चुप रह जातीं। वह वेदना धीरे-धीरे हृदय में विकसित होती रही। एक दिन जब वे पति के पाँव दाब रही थीं तो पूछ ही लिया "आप मुझे किस भाव से देखते हैं ?" रामकृष्ण देव ने कहा—माँ के रूप में। पर उन्होंने देवी शारदा के हृदय की पीड़ा का भी पता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पा लिया था इसलिये दूसरे ही क्षण बोले—तुम्हें सन्तान का अभाव कष्ट नहीं देगा। मैं तुम्हें ऐसे पुत्र प्रदान करूँगा, जो हजार वर्षों की तपस्या के बाद भी नहीं मिलते।

किसी के मन में वासना प्रधान रही होती तो सम्भव है, कुछ और बात बढ़ती पर माँ शारदा ने उतने से ही भावी जीवन का पता लगा लिया। इस बार जब उनसे ग्रामीण महिलाओं ने पुनः कहा—बिना सन्तान स्त्री कोई श्रेष्ठ कार्य नहीं कर सकती तो उन्होंने उत्तर दिया "बहन, पुत्र भावनाओं की मान्यता है, फिर हम अपने को एक-दो बच्चों की सीमा तक ही क्यों बाँधें ? संसार के सभी बच्चे क्या हमारे बच्चे नहीं हैं ? आत्म-भाव से देखने में कोई भी बच्चा अपना ही बच्चा है। इस तरह जिनके जीवन स्नेह और आदर के अभाव में रिक्त हैं, उन्हें अपनी सेवा देकर क्या महान् नहीं बनाया जा सकता ?"

बेचारी अनपढ़ महिलायें कुछ न समझतीं पर विवेकवान स्त्रियाँ उनकी बड़ी सराहना करतीं और उनकी शिक्षाओं को आदर्श मानकर जीवन में ग्रहण भी करती थीं। देवी शारदा ने अब अच्छी तरह समझ लिया था कि उनका जीवन विशुद्ध तपश्चर्या है। इसलिये रामकृष्णदेव की साधना की तैयारी कर देने के बाद वे स्वयं भी तप-साधना में लग जातीं। निर्धारित समय पर वे आध्यात्मिकविषयों पर चर्चा करतीं और अपनी ज्ञानवृद्धि करतीं। इसके बाद एक आदर्श-पत्नी के कर्त्तव्य पालन के लिये तैयार हो जातीं। रामकृष्ण देव के समीप वे कभी रूखे मन से नहीं गईं। वे परम सौन्दर्य युक्त प्रतीत होती थीं। सौन्दर्य की विशेषता सात्विकता होती, उन्होंने कभी कोई ऐसा हाव-भाव या साज-शृंगार प्रदर्शित नहीं किया जिससे श्री रामकृष्ण को सांसारिक-वासनाओं में उतरने की आवश्यकता पड़ती। वे स्वयं कहा करते थे—वह (शारदा) इतनी भली न होती और विवेक खोकर मुझ पर जबर्दस्ती करती, तो कौन कह सकता है कि मेरा संयम-बाँध टूटकर मुझ में देह बुद्धि की प्रबलता न हो जाती।

संयम-साधना की निष्ठा वे पहले ही व्यक्त कर चुके थे। पत्नी के आध्यात्मिक उत्थान की आवश्यकता वे मृत्युपर्यन्त पूरी करते रहे। वे उन्हें भगवान के समीप लाने के लिये उपदेश भी करते थे। और अपनी साधना की सूक्ष्म प्रकाश-किरणों द्वारा उनके अन्तर तत्त्व को भी उद्दीप्त करते थे। भावनायें माताओं में पहले ही होती हैं, इस तरह रामकृष्ण देव के अन्तिम दिनों तक वे शक्ति और देवत्व की साक्षात् प्रतिमा बन गईं।

स्वामी रामकृष्णदेव ने अब तक अपनी आवश्यकतायें पूर्ण कर लीं और समय पर परमात्मा के प्रकाश में अपने आपको विलीन भी कर दिया। पर श्री माँ ने उसके बाद भगवान के कार्य को अपने हाथ में संभाला। प्रारम्भ के कुछ दिन बड़ी वेदना और उदासी में बीते। पति के देहावसान की विरह-व्यथा उनके लिये असह्य हो उठी। इसलिए कुछ दिन के लिये उन्होंने वृन्दावन, जगन्नाथपुरी आदि की तीर्थ-यात्रायें पूरी कर लीं। उससे चित्त काफी शान्त हुआ। इसी बीच योरोप का महायुद्ध हुआ था और उसके कारण मानव-समाज में ऐसे दुःख बढ़ गये थे, जिन्हें मातृत्व के छाया में ही शीतल किया जा सकता था। इसीलिये श्री माँ बैल्लूर में आ गईं। यहाँ गुरु और माता दोनों कर्त्तव्यों का धैर्य और साहस के साथ पालन किया। उन्हीं के प्रयास से बैल्लूर-मठ की स्थापना हुई और उन्हीं की प्रेरणा से रामकृष्ण मिशन का प्रादुर्भाव। वे स्वयं भी दिन-दिन भर परिश्रम करती थीं। ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का भेदभाव किये बिना भोजन परोसने से लेकर पत्तल उठाने और आश्रम की सफाई से लेकर व्यवस्था तक का सारा काम वे पूर्ण लगन और निष्ठा के साथ देखती थीं। उनकी इस आत्मीयता और साधना ने शिष्यों में कर्मठता और सेवा की एक नई और युगान्तरों तक भी शांत न होने वाली कसक पैदा कर दी। आज भी रामकृष्ण मिशन में वह लगन, तत्परता और सेवाभाव देखा जाता है। वह सब माँ शारदा के प्राणों का ही प्रकाश है। रामकृष्णदेव तो उसके मार्ग-दृष्टा मात्र थे।

अज्ञान का कारण अलगाव

"माँ ! हम लोग अलग-अलग सुदूर एकान्त में तप हेतु जाना चाहते हैं।" समूह में से एक युवा संन्यासी ने सकुचाते हुए विनम्र स्वरों में याचना की। उसके स्वर सभी के दिलों में उमड़ रहे भावों को उड़ेल रहे थे।

"अलग-अलग।" जैसे उन्होंने इसके अतिरिक्त और कुछ सुना ही नहीं। इधर कई दिनों से जब से वह तीर्थ यात्रा करके लौटी बड़ी व्यथित-सी रहने लगी थीं। मानो तीर्थ-भ्रमण करके व्यथा बटोरी हो। उफ ! क्या दशा हो गई है आज देश की। हर कहीं दिखाई दे रही है, उसकी बेहाली। एक-एक दाने के लिए तरसते भूखे-नंगे इन्सान। पर्याप्त श्रम करके जिन्होंने अपनी हड्डियों से लहू की बूँदें तो निचोड़ी हैं पर रोटी के लिए मोहताज हैं। स्टेशनों पर जूठे पत्तलों के लिए कुत्तों से होड़ लगाते बच्चे। नारियाँ जिनकी किस्मत के अक्षरों में आजन्म कारावास, गुलामी, बेबसी, सिसकियाँ, घुटन इसके सिवा कुछ और बचा ही नहीं है।

क्या यही है वह भारत ? वह अपने कल्पना नेत्रों के सामने उभर रहे वर्तमान भारत की तुलना सुदूर अतीत से करने लगीं। नहीं-नहीं कुछ और भी है। वर्तमान में वे आलीशान कोठियाँ, एक से एक बढ़कर कीमती आलीशान सामानों के ढेर उन्हें तो नाम भी नहीं मालूम। कहाँ से आते हैं ये सब ? क्या कमी है, आज के भारत में ? वही धरती है, ठीक वही रत्नगर्भा, स्वर्णगर्भा लहलहाती फसलें, मीठे पानी के स्रोत, गंगा, यमुना घाघरा, नर्वदा सब कुछ पहले जैसे हैं। बूढ़ा हिमालय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसने तो जैसे न बदलने की कसम खा रखी है। अपनी अगाध जल-राशि को सर्वहित के लिए समर्पित करता हुआ सागर, वह भी वही। सभी एक सूत्र में बँधे रहना चाहते हैं, सिवा इन्सान के। कितना बदल गया है इन्सान, जिसकी एक ही रट है "अलग-अलग ?"

"क्या सोचने लगीं माँ ?" पूछने वाला उन्हें इस तरह चुप्पी साधते देख, सहम गया था। कहीं उसकी बात से उन्हें कष्ट तो नहीं पहुँचा। वह इन सभी के अन्तर की गहराइयों में छुपी श्रद्धा का घनीभूति रूप थीं और ये सभी तरुण उच्चशिक्षित, प्रखर मेधा-सम्पन्न, दृढ़ शरीर बल के धनी जिनका चरित्र बज्रवत दृढ़ था। सबने जीवन के उच्चतर सोपानों पर आरूढ़ होने के लिए गृह-त्याग किया था। अभी कुछ ही वर्षों पहले उनके पथ प्रदर्शक, गुरु, आराध्य कुछ भी कहें देह त्यागकर महाकारण में विलीन हो गए थे।

अब उन सबकी राह का एकमेव दीपक यही गुरु माता थीं, जिन्हें ये सभी प्यार से माँ कहकर पुकारते थे। 'माँ' इस एक शब्द में कितनी मधुरिमा छुपी है। यों आयु की दृष्टि से वह यही करीब चालीस-बयालिस के आस-पास रही होंगी किन्तु उनके हृदय से निरन्तर वात्सल्य की पयस्विनी प्रवाहित होती थी, जिसका मृदुल स्पर्श अनेक में नए प्राण भरता था।

सभी उनकी ओर देख रहे थे, उत्तर की प्रतीक्षा में किन्तु उन्होंने उत्तर देने की जगह प्रश्न के जबाव में प्रश्न किया—"देश की इस गई-गुजरी दशा का कारण क्या है ?" कहने के साथ उन्होंने एक बार सबकी ओर देखा।

सभी मौन थे किन्तु बाहरी तौर पर, भीतर तो सभी के अन्दर गुनगुनाहट चल रही थी। भला माँ को क्या बताएँ ?

उत्तर न पा, वह स्वयं बोलीं—अरे ! बताते क्यों नहीं ? तुम लोग तो बहुत पढ़े-लिखे हो। नरेन तू ही बता। इशारा एक सत्ताइस-अट्ठाइस साल के तरुण की ओर था।

अज्ञान, शोषण, कुरीतियाँ यही सब न। युवक ने कहा, पर यह सब क्यों है ?

कुरीतियों, मूढ़-मान्यताओं का कारण तो अज्ञान है पर अज्ञान का कारण ? क्या जबाव दें।

शरत् तू बोल, शशी तू बोल, निरंजन तू बता बेटा, राखाल तू कह, लाटू रे तू तो बहुत सोचता है तू ही कुछ कह, तारक तू सबको एक-एक बारगी पूछ लिया किन्तु कुछ सुझाई दे तब तो बताएँ। अद्भुत है यह माँ भी अब लो, बताओ अज्ञान का कारण। इसका कारण तो सारी जिन्दगी माथा-पच्ची करने के बाद आचार्य शंकर तक को नहीं मिला। आखिरकार हैरान-परेशान हो उन्होंने अपनी सारी अला-बला 'माया' के सिर थोपकर छुट्टी ली।

"नहीं ढूँढ़ पाए तो सुनो इन सब का कारण है, अलगाव। यही सारी समस्याओं की जड़ है, यहाँ तक कि अज्ञान की भी।" सीधी-साधी पर सूत्रमयी भाषा में उनका समाधान था।

सबके मूल में अलगाव, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। सब आपस में एक-दूसरे का चेहरा ताकने लगे। खुलकर कोई नहीं कह पा रहा था।

उन्होंने सबके मनोभाव भाँप लिये। समझ लिया कि अभी इनके गले में बात नहीं उतरी। समझाते हुए कहा "सृष्टा ने अपनी सृष्टि में कहीं विभाजन की दरारें नहीं डालीं। यह तो अपने को अक्लमन्द कहने वाले मनुष्य के करतब हैं, जिसने दुनिया को देशों में बाँटा। देशों को क्षेत्रों में, क्षेत्रों को उप क्षेत्रों में, धरती बाँटी, सागर बाँटे, पर्वत, जंगल बाँटे यहाँ तक कि अपने को बाँट डाला।"

अपने को . . . . . । उन्हें ऐसा लग रहा था जैसे एक के बाद दूसरी पहेली में उलझते जा रहे हों। हाँ अपने को! उनकी वाणी में दर्द था। इन्सान जातियों में बँटा, जातियाँ, उपजातियों में, इतना ही नहीं धर्म के आधार पर बँटवारा हुआ। हिन्दू मुस्लिम, सिख, ईसाई पारसी, इनमें से प्रत्येक के अन्दर सहस्रों विभाजन। न जाने कितने प्रकार से मानवता के ऊपर कुल्हाड़ियाँ चली हैं ? इन्सानियत के जिस्म को किस बेदर्दी के साथ नयी-नयी आरियों से काटा गया है। उनके चेहरे पर सारा दर्द उभर आया। व्यथा आँसू बनकर ढुलक पड़ी।

पर यह सब तो अज्ञान के कारण हुआ। एक तरुण ने तनिक धीरे से कहा और अज्ञान इसलिए पनपा क्योंकि तुम जैसे ज्ञानियों ने "**ब्रह्मसत्यं जगत् मिथ्या**" का नारा लगाकर समाज से छुट्टी ले ली। गुफा-कन्दराओं, वनों में भाग जाने में अपना कल्याण समझा। स्वर में रोष झलक रहा था।

माँ ! माँ कहकर सभी ने सिर झुका लिए। इन सबके चेहरों पर उमड़ रहीं घबराहट ने उनका रोष प्रेम भरे वात्सल्य में बदल दिया। स्नेह-विगलित स्वर में बोली बेटा ! यदि ज्ञानियों ने अपने ज्ञान की धरोहर को कंजूस बनियों की तरह न छुपाकर मुक्त हाथों से वितरित किया होता तो क्या जन चेतना इसी तरह मरे मुर्दों से होड़ लगाकर सोती और उसके जिस्म को ये मानवता घाती कुत्तों, स्यारों, कौओं, गिद्धों की तरह खाने की हिम्मत जुटा पाते ? नहीं, कभी नहीं। जवाब उनके अन्दर से फूट पड़ा।

हम सब तो आपके आदेश के प्रार्थी हैं। उग्रतेजा तपोमूर्ति महादेवी के सम्मुख सभी नत थे। आज की दशा में समाज की आत्मा को जाग्रत कर उसके शरीर को पुनः बलशाली बनाने का एक ही उपाय है "संगठन"। एकता और समन्वय इसी की उपज है। काश ! बहुत बढ़-चढ़कर बातें बनाने वाला मनुष्य चीटियों, मधुमक्खियों, दीमकों से ही कुछ सीखता। लाज लगे ऐसी अकल पर, जो या तो पोथियों के पन्नों या दिमाग के कब्रिस्तान में दफन रहेगी या फिर बने-बनाये भवन को ढहाएगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

हम लोग संघबद्ध रहेंगे माँ। उनमें से कोई उनके दुःख को बढ़ाना नहीं चाहता था।

हाँ बेटा! तुम लोग संघबद्ध रहना। ठाकुर इसीलिए आए थे। उन्होंने सारे जीवन विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों के बीच की खाइयों को पाटा है। जातियों की दरारों को अपने प्रेम के लेप से भरा है। ब्राह्मण होकर भी रसिक भंगी की सेवा करने से नहीं चूके। उनके शिष्य होकर तुम। उनके कार्यों के लिए प्राण होम देंगे। अनेक कण्ठ स्वर उभरे। धन्य हो तुम सब। ध्यान रखना संगठन का प्रधान तत्त्व है—आत्मीयता भरा प्रेम। बड़े संगठन में व्यवस्था की दृष्टि से लोग छोटे-बड़े दिखे भले पर असलियत में सभी समान हैं। भवन को देखते ही लोग समझते हैं कि कँगूरे वाली ईंटें ज्यादा उत्तम हैं। पर नहीं जो ईंट जितना नीचे है उस पर उतना ही अधिक भार है। एक भी ईंट खिसकी कि इमारत ढही। लाटू उतना ही महत्वपूर्ण है जितना नरेन। क्यों रे लाट् ? कहकर उन्होंने एक युवक की ओर स्नेह भरी "आँखों से देखा। फिर बोली" अब कभी अलग होने की बात मत कहना।"

"नहीं माँ, कभी नही" अनेक कण्ठ एक साथ मुखरित हुए। वे सब प्रणाम कर चलने के लिए उद्यत ही हुए थे कि माँ ने रोक दिया "नहीं रे ! भोजन करके जाना। माँ के यहाँ से क्या कोई बिना खाए जाता है ?" अपने स्नेह नीड़ में एक महान संघ का पालन-पोषण करने वाली माँ थीं श्री माँ शारदा—श्री रामकृष्ण देव की लीला सहचरी।

जिसकी चरण-रज ने ब्राह्मणों का ललाट पावन किया—रानी रासमणि

बड़ी हार्दिक अभिलाषा थी रानी रासमणि की कि काशी जाकर भगवान विश्वनाथ के दर्शन करे। इसके लिए उन्होंने एक भारी रकम सुरक्षित पृथक् ही रख रखी थी। परन्तु उस समय बंगाल का कोई भी नैष्ठिक ब्राह्मण उन्हें विश्वनाथ जी के दर्शन कराने ले जाने के लिए तैयार नहीं हुआ-क्योंकि वे जाति से केवट थीं।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यावधि दशकों की बात है। तब कलकत्ता के दक्षिण अञ्चल में स्थित जान बाजार की एक बस्ती पर रानी रासमणि का शासन था। वे उसी बस्ती में रहा भी करती थीं। कलकत्ता और बंगाल के ब्राह्मणों को तो यह कब स्वीकार था कि कोई नीच जाति का व्यक्ति राजा बने। परन्तु किन्हीं कारणों से रानी रासमणि का पति कुल राजवंश धारण कर चुका था। उनके श्वसुर तत्कालीन अँग्रेज गवर्नर वारेन हैस्टिंग्ज के दाहिने हाथ थे। कई मामलों में हैस्टिंग्ज की सहायता करते रहने के कारण उसने उन्हें जान बाजार का राजा बना दिया। रानी के श्वसुर ने हैस्टिंग्ज की कृपा से काफी धन- सम्पत्ति भी एकत्र कर ली थी। उनका देहान्त हो जाने के बाद उनके पुत्र रासमणि के पति रामचन्द्र बसु राज्य के उत्तराधिकारी बने। कम्पनी सरकार की खूब सेवा करने के कारण उन्होंने भी काफी धन इकट्ठा किया था।

अब उन्हें भी मरे चार साल हो चुके थे और रानी भी जीवन की सन्ध्या से गुजर रही थीं। रानी ने चार कन्याओं को जन्म दिया था और पुत्र एक भी नहीं। इसलिए पति तथा श्वसुर द्वारा इकट्ठे किये गये धन को स्वाभाविक ही धर्म कार्यों में खर्च करने की अभिलाषा हुई। जीते जी तीर्थ कर कोई पुण्य लाभ कमा लेने की उमंग उन्हें उठी। यों वे धर्मात्मा और श्रद्धालु भी खूब थीं परन्तु निर्धनों की सेवा, दान और अन्य परमार्थ परक प्रक्रियाओं में ही उनकी अधिक आस्था थी। उन्होंने इन कार्यों में प्रचुर धन खर्च किया था। जान बाजार के नागरिकों में ही नहीं आसपास के क्षेत्रवर्ती इलाकों में भी उनका सुयश फैलता जा रहा था और जैसे-जैसे उनकी ख्याति बढ़ती गयी, ब्राह्मणों का सिर दर्द भी बढ़ता गया।

रानी रासमणि ने अपनी तीन पुत्रियों का विवाह कर दिया था। उनके दामाद राज्य प्रबन्ध में पर्याप्त सहायक सिद्ध होते थे। विशेषत: मथुरामोहन विश्वास तो सब काम-काज में रानी के दाहिने हाथ ही थे। इसलिए वाराणसी यात्रा की पण्डितों से कोई व्यवस्था न मिलने पर भी उन्होंने स्वयं ही काशी के लिए जाने की तैयारी करली।

१८४८ में वाराणसी यात्रा की पूरी तैयारियाँ हो गयीं। निर्धारित दिवस पर पूजोपकरण और अन्य द्रव्यादि नावों पर लादा गया। वह रात उन्होंने गंगाजी के तट पर बितायी, जहाँ आजकल दक्षिणेश्वर का काली मन्दिर है वहीं उन्होंने सारी रात विश्राम किया। रात को वे विगत घटनाओं के बारे में सोचती रहीं। उन धर्मनिष्ठ निर्धन और गरीब जातियों के सम्बन्ध में—जो धर्मानुष्ठान के लिए लालायित रहती होगीं और ब्राह्मणशाही के कारण बिचारे उन नागरिकों की यह लालसा अधूरी ही रह जाती होगी। तब हरिजन जातियों को मन्दिर-प्रवेश का अधिकार बिल्कुल भी नहीं था।

मन्दिर के आँगन में कुत्ते और गधे भले ही घुसकर टट्टी-पेशाब करते रहें परन्तु, अवर्ण हिन्दू नहीं घुसना चाहिए। यह मर्यादा थी, ब्राह्मणों की और वही अवर्ण ईसाई या मुसलमान बनकर किसी अधिकारी के रूप में वहाँ आता तो ये लोग उसके आगे-पीछे घूमने लगते। स्वभावतः ऐसे ही वातावरण और परम्पराओं ने हिन्दू जाति को बड़ी ठेस पहुँचायी। हजारों लोग इन अन्ध मूढ़ परम्पराओं से खिन्न होकर हिन्दुत्व छोड़ गये थे। जान बाजार बस्ती में ही कई निम्न कही जाने वाली जाति के लोग ईसाई बन गये थे। अपने परिप्रेक्ष्य में हिन्दू-जाति की हुई इस हानि से तो वे परिचित हुई हीं साथ ही इस परम्परा के औचित्य पर भी विचार करने लगीं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगवान सबका पिता है। उसे तो अपने सभी पुत्र समान रूप से प्यारे हैं। प्रभु की पूजा-उपासना के लिए बनाये गये विशेष स्थलों में किसी को प्रवेश से वञ्चित कर देना किसी भी दृष्टि से उन्हें उचित न जान पड़ा। विचार-मन्थन और चिन्तन की यह प्रक्रिया इतनी प्रखर तथा तीव्र चली कि रानी रासमणि विश्वनाथ यात्रा पर पुनर्विचार के लिए बाध्य हो गयीं। अब इस स्थान पर उन्हें दूसरा विचार आ रहा था और वह था एक ऐसे मन्दिर का निर्माण, जिसमें हर जाति का, हर धर्म का व्यक्ति देव दर्शन कर इच्छा पूरी कर सकें और आत्म-सन्तोष का लाभ उठा सके। यद्यपि वाराणसी विश्वनाथ यात्रा की पूरी तैयारियाँ हो चुकी थीं। भोर होने भर की देर थी और चल देना था परन्तु इस विचार ने उनकी बनी बनाई योजना-व्यवस्था को निरस्त करवा दिया। शैया पर से वे उठीं—साथ में जाने वाले सभी लोग सो रहे थे। जैसे आगे के श्रम और पानी के तेज बहाव से संघर्ष के लिए शक्ति संचित कर रहे हों। रानी ने उन्हें उठाया और कहा-मैंने वाराणसी-यात्रा का विचार निरस्त कर दिया है। अब यह सब कुछ समेट लेना चाहिए।'

रात को सोते समय तो रानी जी सुबह के लिए न जाने क्या-क्या निर्देश दे रही थीं ? दो-चार घण्टे के समय में ही अचानक यह परिवर्तन कैसे हो गया ? सबको आश्चर्य हुआ। कुछएक ने इस परिर्वतन का कारण भी पूछा तो वे बोली—'अब मेरी इच्छा है कि इसी स्थान पर एक भव्य-मन्दिर बनाया जाय।' जिसमें हर वर्ग और हर जाति का व्यक्ति प्रवेश कर सके। मुझे यह स्थान बहुत सुन्दर लगा है और मुझे लग रहा है कि यह प्रेरणा भी भगवती माँ से ही मिल रही है।

रानी माँ आद्याशक्ति की श्रेष्ठ उपासिका थीं। प्रत्येक शुभकार्य का आरम्भ ही भगवती के स्मरण-वन्दन से होता। रियासत के कागज पत्रों में अपने हस्ताक्षर करने से पूर्व वे कालीपद अभिलाषिणी श्रीमतिरासमणिदासी की मोहर लगाया करती थीं। कथित नीच कुल में केवट परिवार में जन्म लेकर उन्होंने प्रचलित इस धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया था कि मनुष्यों में एक ऐसा भी वर्ग होता है, जो अध्यात्म-साधनाओं, धर्म भावनाओं और पुण्य-प्रक्रियाओं के सर्वथा अयोग्य होता है।

काशी-यात्रा का कार्यक्रम स्थगित हो जाने के बाद उस स्थान पर जहाँ रानी ने वह रात बितायी थी, एक मन्दिर की आधारशिला रखी गयी। ब्राह्मणों ने इसका खूब विरोध किया। यहाँ तक कि रानी के इस प्रयास को अधार्मिक और अनधिकार चेष्टा भी बताया। परन्तु रानी ने तो इस कठमुल्लापन के विरोध का निश्चय कर लिया था। ब्राह्मणों के विरोध की उन्होंने कोई परवाह नहीं की।

शास्त्रों और धार्मिक-कर्मकाण्डों में उनकी पूर्ण आस्था थी। वे इनके मर्म को भली-भाँति समझती थीं। इसीलिए उन्होंने मन्दिर-निर्माण का कार्य किसी कर्मकाण्डी योग्य ब्राह्मण की देख-रेख में आरम्भ करवाना चाहा। परन्तु ब्राह्मण तो उनसे चिढे हुएं थे। आखिर यह काम तो किसी तरह सम्पन्न हो गया। कई वर्षों तक काम चला-फिर भी मन्दिर का काम थोड़ा बहुत शेष रह गया।

ब्राह्मणों के विरोध से वे भली-भाँति परिचित थी। इसीलिए उन्होंने प्राण-प्रतिष्ठा और मूर्ति-स्थापना के लिए अभी से तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। उन दिनों कर्मकाण्ड के विधि-विधानों पर ब्राह्मणों का ही एकाधिकार था। ये पद्धतियाँ और किसी को वे लोग सिखाते भी नहीं थे। इसलिए प्राण-प्रतिष्ठा तथा पूजादि के क्रम हेतु उन्होंने किसी सुधारवादी उदार-ब्राह्मण को ही तलाशना उचित समझा।

कई ब्राह्मण-पण्डितों की उन्होंने मिन्नत-चिरौरी की परन्तु, कोई तैयार ही नहीं होता था। अन्ततः प्रयत्नपूर्वक खोज करते हुए झामापुकुर में एक पाठशाला चला रहे पण्डित रामकुमार ने यह व्यवस्था दी। रानी ने इच्छा व्यक्त की कि वे यह मन्दिर और इसकी सम्पत्ति भी उन्हें ही सौंपना चाहती हैं। परन्तु निःस्पृह लोकसेवी रामकुमार ने नम्रतापूर्वक क्षमा माँग ली। स्मरणीय है पण्डित रामकुमार उन दिनों लोकहितार्थ झामापुकुर में पाठशाला चला रहे थे। रानी रासमणि ने इस पर अपने कुलगुरु के वंशजों से पूजकपद ग्रहण करने का आग्रह किया। लेकिन वे लोग तो पूजा-प्रतिष्ठा के विधि-विधान का क ख ग भी नहीं जानते थे। अब रानी ने रामकुमार से ही आग्रह किया और स्वयं को सर्वथा निरुपाय बता दिया।

प्रेमपूर्ण आग्रह के आगे विवश से होकर पं० रामकुमार ने पूजक का पद स्वीकार किया। १८५५ ई० की ३१ मई को एक बड़ा महत् समारोह आयोजित किया गया। इससे पूर्व ही रानी कठोर तपस्या करने लगी थीं। वे तीन बार स्नान करतीं, हविष्यान्न ही खातीं, भूमि पर सोती और हर समय जप-पूजन करती थीं। लेकिन ब्राह्मणों की दृष्टि में उनका शूद्रत्व नहीं गया। उनकी कालीमाँ भी ब्राह्मणों के लिए अस्पृश्य बन गयीं। रामकुमार ने अपने छोटे भाई के साथ सारा कर्मकाण्ड सम्पन्न करवाया। उनके छोटे भाई-रामकृष्ण तब बारह-तेरह वर्ष के ही थे। इनकी साधना बाद में इसी दक्षिणेश्वर मन्दिर में चली और बारह-तेरह वर्ष का वह किशोर आगे चलकर स्वामी रामकृष्णपरमहंस के नाम से विश्व विख्यात हुआ। जिन्होंने दुनिया को स्वामी विवेकानन्द जैसी महानतम विभूति भेंट की।

उन्हीं दिनों की बात है। दक्षिणेश्वर मन्दिर के बगीचे से उत्तर की ओर गंगा के तट पर एक विशाल बरगद का पेड़ है। इस पेड़ का तना और शाखा प्रशाखायें कई बीघे क्षेत्रफल में फैली हुई हैं। तब इस पेड़ के बगल में एक कुटिया थी और उसी कुटिया के सामने एक ब्राह्मण चुपचाप कहीं से आकर बैठ गया। वह ब्राह्मण दिन भर वहीं बैठा रहा। शाम को रानी रासमणि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.८ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

ने उसे देखा तो वे बड़ी दुःखी होती हुई बोलीं-ब्राह्मण देव ! इस प्रकार बैठे रहे और मुझसे कुछ भी न बन पड़ा।

ब्राह्मण ने रानी रासमणि के चरणस्पर्श कर लिए और कहा—मैं माता के दर्शन करने आया था।

रानी ने कहा-'तो चलिये कीजिये।'

'नहीं, मुझे साक्षात् माँ के दर्शन हो गये हैं।'

'कहाँ, कैसे'—रासमणि ने पूछा।

'जिसके पुण्य-प्रताप से यह सब कुछ अपूर्व सम्पन्न हुआ है वह क्या माँ नहीं है।'

ब्राह्मण ने कहा और रानी की आँखों से अश्रु बिन्दु टपकने लगे। ब्राह्मण ने जब रानी के हाथ का पका हुआ चावल खाया और इसका पता अन्य ब्राह्मणों को चला तो वे बड़े बौखलाये और तरह-तरह से उसे डाँटने लगे। एक ने तो यहाँ तक कह दिया कि तुम ब्राह्मण हो ही नहीं। मुझे अभी-अभी पता चला है कि तुम चमार हो ?

चमार मैं नहीं, चमड़े की परख जानने वाला होता है उस-ब्राह्मण ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया। विवाद होता रहा और ब्राह्मण शान्तिपूर्वक उसका उत्तर देता रहा। भोजन करने के बाद ब्राह्मण ने रासमणि से जाने के लिए कहा और एक अनुरोध किया—बारकपुर की छावनी में जो बड़े साहब हैं कमांडिंग जनरल उनकी स्त्री शुभदा ब्राह्मण कन्या है। भारत में शीघ्र ही एक महा उत्पात उठेगा, जिसमें सब फिरंगी भस्म हो जायेंगे। मेरा आपसे इतना ही अनुरोध है कि आप उसे मित्र बनायें और उसके सौभाग्य को संरक्षण दें।

शुभदा—एक ब्राह्मण पुत्री थी। परन्तु, उसने एक ब्रिटिश अधिकारी से विवाह किया था। उन दिनों ५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम की तैयारी चल रही थी। रानी रासमणि वचन दे देने के कारण उससे और उसके पति से मिलने के लिए। शुभदा के घर पहुँचने पर रानी को पता चला कि उसके पति तो छावनी गये हुए हैं। एक सिपाही का कोर्ट मार्शल होने वाला था। उसने अपने अफसर पर गोली चलायी थी। वह जान गया था कि छावनी के लोगों को जो कारतूस इस्तेमाल के लिए दिये जा रहे हैं, उनमें गाय और सूअर की चर्बी लगी हुई है तथा उन्हें प्रयोग करने से पूर्व दाँतों से काटना पड़ते थे। इसी बात में उत्तेजित होकर उक्त सिपाही ने अपने अधिकारी पर गोली चला दी थी। और उसका कोर्ट मार्शल होने जा रहा था।

रानी को यह सुनकर बड़ा बुरा लगा कि इस प्रकार हिन्दुओं को धर्म भ्रष्ट किया जा रहा है। जिस कम्पनी सरकार की बुनियाद को उनके पति तथा श्वसुर ने अनर्थक प्रयत्नों से सींचा था, रानी रासमणि उसी की विरोधी हो गयीं। सिद्धान्त और आदर्शों के लिए अपने आभूषणों को भी दुत्कार देने की अभूतपूर्व मिसाल रानी रासमणि ने कायम की है।

अरविन्द-आश्रम की अधिष्ठात्री माताजी

श्री माताजी का जन्म फ्रांस में एक धनीमानी परिवार में २१ फरवरी १८७८ में हुआ था। बचपन में ही इन्हें कुछ ऐसी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हुईं, जिनके फलस्वरूप इन्हें दृढ़ प्रतीति हो गई कि भगवान नाम की एक महान् सत्ता है और मनुष्य उसका साक्षात्कार कर सकता है, उसे अपनी चेतना और कर्म में पूर्णतः प्रकट कर सकता है। इसके पश्चात् ये अपने ही अन्तर से प्राप्त पथ-प्रदर्शन तथा स्वप्न और जाग्रत अवस्था में किन्हीं सूक्ष्म सत्ताओं द्वारा प्राप्त सहायता के अनुसार साधना करने लगीं।

२९ मार्च, १९१४ को पांडुचेरी में श्री माताजी पहले पहल श्रीअरविन्द से मिलीं। उस समय इनकी अवस्था ३७ वर्ष की थी। श्रीअरविन्द महर्षि की प्रेरणा से यह निश्चित हुआ कि योग और ज्ञान के समन्वय का एक पत्र निकाला जाय। तदनुसार १५ अगस्त, १९१४ को श्रीअरविन्दजी के जन्म-दिवस पर 'आर्य' नामक मासिक-पत्र का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ।

२२ फरवरी, १९१५ को प्रथम-विश्वयुद्ध के कारण श्रीमाताजी फ्रांस लौट गईं। २४ अप्रैल, १९२० को वे फिर भारत आईं और उसी आश्रम में स्थायी हो गईं, जिसमें श्रीअरविन्द उन दिनों रहते थे। इसके ठीक छः वर्ष बाद २४ नवम्बर को श्री माँ तथा श्रीअरविन्द को सिद्धि प्राप्त हुई और उसी दिन आश्रम का सारा भार श्री माँ को सौंपकर श्रीअरविन्दजी स्वयं एकान्तवास में चले गये। आश्रम की साधना का केन्द्र-बिन्दु तब से श्री माताजी ही हैं। वे केवल आश्रम का संचालन ही नहीं करतीं थीं वरन् साधकों के जीवन एवं साधना का सूत्र भी अपने हाथ में लिये हुए थीं।

श्रीमाताजी का परिचय देते हुए स्वयं श्रीअरविन्द एक जगह कहते हैं—"श्री माताजी अति मानसिक सत्य को नीचे उतार लाने के लिये ही यहाँ पृथ्वी पर आई हैं और अतिमानस का यह अवतरण ही यहाँ भगवान की पूर्ण अभिव्यक्ति को सुन्दर बना सकता है।"

श्रीमाताजी ने अपनी 'राधा की प्रार्थना' में लिखा है—'हे प्रभो! मेरे सब विचार तेरे हैं, मेरे हृदय के समस्त आवेग और भावनाएँ, मेरा सब इन्द्रिय ज्ञान, मेरे प्राण का प्रत्येक स्पन्दन, मेरे जीवन की प्रत्येक गतिविधि, मेरे शरीर का एक-एक अणु, मेरे रक्त का एक-एक बिन्दु तेरा है। मैं सब प्रकार से और समग्र रूप से तेरी हूँ। मेरे लिये तू जो कुछ चाहेगा, मैं वही हो जाना चाहूँगी। मेरे लिये तू जीवन चुने या मरण, हर्ष लाये या शोक, सुख दे या दुःख जो कुछ भी तेरी ओर से मिलेगा, वह सब मुझे शिरोधार्य है। तेरी प्रत्येक देन मेरे लिये सदा ही एक-एक दिव्य वरदान होगा। अपने साथ परम आनन्द लाने वाली दिव्य देन होगी।'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन उद्‌गारों में मन, बुद्धि, हृदय, प्राण और शरीर की भावना से सम्पूर्ण एकता दिखाई देती है। जीवन की प्रत्येक घटना में भगवान की इच्छा का स्पष्ट दर्शन होता है। अरविन्दाश्रम में ध्यान, धारणा, काम-काज, सेवा सबका लक्ष्य है, समर्पण के माध्यम से परमात्मा-प्राप्ति। श्रीमाताजी साधकों का पथ-निर्देशन करती और अपनी शक्ति से उन्हें साधना के पथ पर अग्रसर करती रही हैं। अपने सम्पूर्ण प्रेम, ज्ञान, शक्ति एवं चेतना के साथ वे प्रत्येक सोये साधक को सहारा देती रहती थीं।

श्री माताजी का कहना है कि भौतिक एवं सांसारिक वस्तुओं की उपेक्षा अज्ञान और जड़ता का लक्षण है। यदि हम भौतिक वस्तुओं का सही-सही उपयोग न कर सकें, तो उन्हें रखने का भी हमें अधिकार नहीं है। भौतिक वस्तुओं की देख-रेख किसी आसक्तिवश नहीं, वरन् इसलिये करनी चाहिए कि वे भागवत चेतना और उसकी उपयुक्तता को अभिव्यक्त करती हैं। इसलिये आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ आश्रम में बाह्य संगठन और व्यवस्था भी अति उत्तम एवं आधुनिक हैं। शरीर, मन, आत्मा सभी का विकास यहाँ होता है, यद्यपि अधिक बल आध्यात्मिक जीवन पर ही दिया जाता है।

आश्रम का एक प्रमुख और महत्त्वपूर्ण भाग है—श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र, जिसके निर्माण और विकास का सारा भार श्री माताजी पर है। यहाँ का जीवन श्रीअरविन्द की कल्पना का साकार मूर्तिमान विग्रह है। इसमें पूरब और पश्चिम का समन्वय है—पश्चिम की क्रियाशीलता और पूर्व की योगमुक्तता। श्रीअरविन्द ने चालीसवर्ष की अखण्ड-एकान्त-साधना में जो कुछ उपलब्ध किया, उसी को सजीव आकार देने का प्रयास यहाँ हो रहा है। उन्होंने बताया है कि मानवजाति की एकता की स्थापना आत्मा के आधार पर—आध्यात्मिकता के आधार पर ही हो सकती है। यहाँ शिक्षा में व्यावसायिकता नहीं है। श्री माताजी के ये वचन सदा स्मरण रखने योग्य हैं—

''मैं शिक्षा का विक्रय कदापि नहीं करूँगी।''

श्रीमाताजी की वात्सल्य-छाया में ही आश्रम का जीवन-कमल की तरह पवित्र, प्रसन्न और सुरभित हुआ। आज आश्रम में पुरुष हैं, स्त्रियाँ हैं, युवा हैं, युवतियाँ हैं, बालक-बालिकायें और शिशु सभी खिलते फूल की तरह हँसते, उन्मुक्त पक्षियों की तरह चहकते हैं। उदासी क्या होती है ? मनहूसियत क्या बला है ? यह वहाँ कोई नहीं जानता। आश्रम की भीतरी-बाहरी स्वच्छता और पवित्रता, यहाँ का उमड़ता हुआ आनन्द और मुसकाता हुआ सौन्दर्य मन को मोह लेता है। श्रीअरविन्द कहते हैं कि सारा जीवन ही योग है और इसी को यहाँ चरितार्थ किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और मानवमात्र की एकता को सिद्ध करने के लिये श्री माताजी ने 'अरोबिल' नामक एक अपूर्व नगर के निर्माण की योजना बनाई। जहाँ संसार भर से ऐसे लोग आकर बसे हैं, जो विश्व-भ्रातृत्व और विश्व-एकता में विश्वास करते हैं। वाकई यह नगर मानव के उस सपने को साकार कर रहा है, जो वह सदियों नहीं, युगों से सँजोये आ रहा है। जिसकी कल्पना श्रेष्ठ विचारकों और कवियों ने की है और जिसे मूर्तिमान करने की दिव्य-प्रेरणा श्रीमाताजी को मिली थी। भारत के लिये यह परम सौभाग्य की बात है कि श्री माताजी जैसी भगवदीय विभूति ने यहीं रहकर इस पृथ्वी पर मनुष्य जाति के लिये एक दिव्य-जीवन की नींव रखी, जो समय आने पर अवश्य फूले-फलेगा।

वैदिक-युगीन-धर्म प्रचारिका—ब्रह्मवादिनी घोषा

वैदिक-युग को सुवर्णयुग कहा जाता है, जो भारतीय-संस्कृति का प्राचीनतम समय है। उस समय संसार का कोई मानव-समाज भारतीय जनता से सभ्यता में आगे बढ़ा हुआ नहीं था, बल्कि संसार में अभी सुधार, अन्वेषण एवं मानवता का सूर्य उगने को ही था, जो भारत में अपनी पूरी दमक दिखा रहा था। भारत को जगद्‌गुरु की उपाधि सर्वप्रथम इसी युग के बल से प्राप्त हुई।

वैदिकयुग में भारत के सर्वांगीण विकास के कारणों का यदि हम पता लगावें तो मालूम होगा कि उस वख्त स्त्रियों की समान उन्नति भी एक प्रमुख कारण था। साधारण रूप में स्त्री-पुरुषों की संख्या समाज में एक समान ही रहती आई। अत: स्त्रियों की उन्नति की उपेक्षा का अर्थ आधे समाज की अवहेलना ही हो सकता है। यही नहीं, अपितु भावी पुरुषों एवं भावी माताओं का लालन-पालन भी स्त्रियों की गोदी में ही हुआ करता, जिससे उनकी अवनति-उन्नति पर समूचे भावी राष्ट्र का बनना-बिगड़ना निर्भर होता है। मतलब यह है कि स्त्रियों की उन्नति के सिवा कोई राष्ट्र कभी अपना सर्वांगीण विकास करने में समर्थ नहीं होता। जिस वैदिक सतयुग का हम गौरव-गीत गाते नहीं थकते, उस युग के समाज ने इस सिद्धान्त के महत्त्व को पूरी तरह जानते हुए समस्त भारतीयस्त्रियों की सर्वांगीण उन्नति को अपना परम आवश्यक कर्त्तव्य समझ लिया था।

वैदिक-युगीन-स्त्रियों का स्थान, मान, समाज में बहुत ऊँचा था। उन्हें समान स्वतन्त्रता, समान विद्या तथा समान सन्धि दी जाती थीं। स्त्रियाँ पुरुषों की भोग सामग्री नहीं, अर्धांगिनी समझी जाती थीं, जिनके सिवाय पुरुषों का धर्म कार्य भी अधूरा माना जाता था। समाज की सभी प्रकार की उन्नति करने में हाथ बटाने का उन्हें पूरा अधिकार तथा सामर्थ्य प्राप्त थी। वैदिक-संस्कार और ज्ञान प्राप्त करने का भी उन्हें पूर्णाधिकार था, बल्कि उपनयन संस्कारपूर्वक वे वेदाध्ययन तथा अग्निहोत्र की अधिकारिणी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बन जाती थीं। इतना ही नहीं, उस युग की ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ ऋषियों के समान ही मन्त्रदृष्टी ऋषिकाएँ थीं, जिन्होंने स्वयं वैदिक सूक्तों की रचना की। अदिति, रोमशा, अपाला, वाग्देवी, शश्वती, जुहू, दक्षिण, सूर्या, विश्ववारा, लोपामुद्रा, इन्द्राणी आदि मन्त्रदृष्टी देवियों की रचनाएँ आज भी वेदों में निहित हैं।

उपर्युक्त वैदिक-महिलाओं में वेदप्रचारिका 'घोषा' का स्थान बहुत ऊँचा है। यह कुक्षिवान मुनि की कन्या थी, जो अपने पिता के ही समान विद्वान तथा विख्यात थी। इसके पिता वैदिक-ज्ञान के अच्छे प्रचारक थे। यह भी महिलाओं में प्रचार करती थी। घोषा शब्द का अर्थ ही है ब्रह्मचारिणी कन्या, जो वेदाध्ययन कर ईश्वरीज्ञान की सर्वत्र घोषणा करे, सर्वत्र प्रचार करे।

घोषा को कोढ़ यानी कुष्ट (महारोग) की बीमारी थी, जिससे उसके साथ कोई विवाह करना नहीं चाहता था। परन्तु कोढ़ की बीमारी कभी अच्छी नहीं हो सकती, ऐसी गलत धारणा वैदिक-समाज में नहीं थी। आर्यों के चिकित्सक वैद्यराज अश्विनीकुमार के प्रयत्नों द्वारा उसका रोग दूर हो गया और एक विचारशील गुणाढ्य युवक ने उससे शादी की। उसे विश्वास था कि कोढ़ का दौर निकल जाने पर खून में कोई खराबी नहीं रह सकती, जिससे कोढ़ियों को घृणा या भय की दृष्टि से देखा जाय।

विवाह होने के उपरान्त भी घोषा ने अपना प्रचार कार्य जारी रखा। प्राचीनतम ऋग्वेद के दशम-मण्डल के ३९ तथा ४०वें सूत्रों की दृष्टी ऋषिका यही है, जिनमें कुमारीकन्या के वेदाध्ययन के समय से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते समय तक के समस्त कर्त्तव्यों का उल्लेख है। घोषादेवी ने जो सामुदायिक वृत्ति से प्रार्थनाएँ लिखी हैं उनसे उनके ऊँचे विचारों एवं भावनाओं के दर्शन होते हैं। कुछ प्रार्थनाओं का भावार्थ संक्षेप में निम्न प्रकार है—

"हे प्रभो ! आपका जो रथ विचारशील और सुगठित है, जो कर्मशील, ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न लोगों द्वारा आदर करने योग्य है, वह रात-दिन हमारे घर में रहे। इसके लिए हम उपासिकाएँ आपकी श्रद्धापूर्वक प्रार्थना करती हैं। जो नर-नारी पितृनाम की तरह समयदेव का आदर करती हैं वे सदा खुश होती हैं।" हे भगवान ! आप हममें मुधर-वचन बोलने की प्रेरणा करें। हमारे कार्यों को पूरा करें। हममें विकासशील बुद्धि उत्पन्न करें। हम उपासिकाएँ सत्यवचन, सफलकर्म तथा सर्वसमर्थ बुद्धि की कामना करती हैं, आप पूर्ण कीजिये।

"हे गुरुदेव ! आप निष्कपट, असहाय और असमर्थ जीवों के ऐश्वर्य हैं। भूखे, दीन, अन्धे, दुबले पुरुषों के आप रक्षक हैं। आप ही नाना प्रकार के क्लेश एवं दुःखों से पीड़ित रोगियों के वैद्य हैं। आपकी कीर्ति गाथा मैं समाज को सुनाती हूँ। हमें ऐसे उपाय सुझाइए कि हमारे शत्रु भी हमारे प्रति श्रद्धा रखें।

"हे सत्यदेव ! मैं वेद की घोषणा और वेद का सन्देश पहुँचाने वाली प्रचारिका हूँ। मैं चारों तरफ घूमकर आपकी ही स्तुति गाती हूँ। विद्वानों से आपके विषय में चर्चा करती हूँ। आप रात-दिन अवश्य मेरे पास रहें और मेरे इन इन्द्रियरूपी घोड़ों से जुते हुए शरीररूपी रथ सहित मनोरूप अश्व का आप दमन करें।

हे नाथ ! आपकी कृपा से ऐसा हो कि जब कोई ब्रह्मवादिनी प्रचारिका विवाह की इच्छा करे, तब उसे गुणवान, सुन्दर और युवा वर प्राप्त हो। वह कैसा हो ? उद्योग के द्वारा जिसके घर में गेहूँ, जौ आदि विविध प्रकार के अन्न उत्पन्न होते हों, जिसके यहाँ दया, परोपकार आदि गुण ऊपर से गिरने वाली नदी की तरह बहते हों, जो रोग, व्यसन आदि से रहित हों और जिसके मकान में स्नेह, माधुर्य,सौन्दर्य आदि का वास हो।

ब्रह्मवादिनी घोषा की जीवनी हमारे नारी-समाज को अपनी सर्वांगीण उन्नति करने तथा अपने ज्ञान का सर्वत्र प्रचार करने के लिये प्रेरित करे, यहीं मैं चाहती हूँ। यदि ऐसी स्त्रियाँ भारत में आज आगे बढ़ने लगीं तो भारत शीघ्र ही अपने पूर्व वैभव को प्राप्त हुआ समझना चाहिए।

प्रेम की देवी की गोद में अवतार

"दुग्धोवा कहाँ है ?" सुबह नाश्ता करते समय छोटी बेटी को न देखकर पिता ने सामान्यभाव से पूछा।

"दुग्धोवा ! अरी दुग्धोवा ! कहाँ है तू ?—" माँ ने वहीं से पुकारा। कहीं से कोई उत्तर न पाकर स्वयं उठी। इधर-उधर कहीं न देख उनके माथे की लकीरें गहरी हुई। कहीं आज फिर तो नहीं . . . . . । अपने भारी भरकम शरीर को सँभालते हुए वे उसी कमरे की ओर लौटीं और दूर से ही बोली "लगता है आज फिर उसी जादूगरनी के यहाँ चली गई और चढ़ाओ उसे सिर पर।"

कहाँ गई ? वह ऐसे चौंककर उठे जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो।

"वह तो कब की पहुँच गई होगी।" उनके बड़े बेटे ने शिथिल स्वर में कहा—

"हे भगवान !" गृहस्वामी ने दोनों हाथों से अपना सिर थाम लिया।

अब क्या होगा ? पत्नी की आँखें स्थिर हो गईं। वह पति के कन्धे पर हाथ रखकर खड़ी हो गईं।

अभी कल ही उनकी लड़की उस जादूगरनी के यहाँ गई थी। कितने रुष्ट हुए थे, उपासना घर के प्रधान पुजारी। किन्तु कल की बात और थी। 'किप्पूर' का दिन साल में रोज-रोज तो आता नहीं। आज जब लोगों को यह खबर मिलेगी तब समाज की सारी परम्पराएँ एक साथ उनके छोटे-से परिवार पर टूट पड़ेंगी। मांगियों के प्रधान देवता का क्रोध पता नहीं कौन-सी विपत्ति ढहाए।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ग्यारह साल की गोल मुख, सुनहले बाल, भूरी भोली आँखों वाली गोल-मटोल गुड़िया जैसी चंचल बालिका दुग्धोवा। अभी उसे इतनी समझ कहाँ है ? कल भी वह चली गई थी, इसी तरह चली गई थी बिना किसी से कुछ कहे, सुने।

"बेचारी बुढ़िया बीमार है। उससे उठा-बैठा नहीं जाता। उसे कोई पानी देने वाला भी नहीं।" कल सीधे उपासना घर में बाहर से दौड़ी-दौड़ी दुग्धोवा आयी। प्रमुख पर्व की वजह से भीड़ भी ज्यादा थी। लेकिन वह सभी के बीच से गुजरते प्रधान पुजारी का लबादा थामकर कहने लगी "मैंने उसके लिए 'आहुरमज्द' से प्रार्थना की है। आप भी उसके लिए प्रार्थना करें।"

'तू किसकी बात कर रही है ?' प्रधान मांगी ने स्नेहपूर्वक उसका गाल थप-थपाकर पूछा।

"वह जो अपनी बस्ती के बाहर थूहरों के घेरे में सफेद बालों वाली बुढ़िया रहती है।" दुग्धोवा बाल सुलभ सरलता से बोली। "वही जिसने जानवरों की भीड़ जुटा रखी है, पोपले मुख वाली बुढ़िया" 'दुराशषो !' प्रधान पुजारी चौंककर दो कदम पीछे हट गए "तूने मुझे भी छूकर अपवित्र कर दिया।"

"यह बच्ची है। मैं क्षमा चाहता हूँ इसकी ओर से।" उसके पिता सहमते हुए पुजारी के सामने आए। पुत्री को खींचकर पीछे कर दिया था उन्होंने।

"अच्छी बात है।" मांगियों में प्रधान के मुख पर रोष की रेखाएँ अभी भी थीं। किप्पूर तो अपराध क्षमा दान का पर्व है। इस दिन यदि मनुष्य के अपराध मनुष्य नहीं क्षमा करेगा तो वह 'आहुरमज्द' से स्वयं के अपराध की क्षमा पाने की आशा कैसे रखे। इस दिन क्षमा दान-पुजारी की विवशता थी।

बेचारी जादूगरनी कौन करता उसके लिए क्षमा याचना ? एट्रोपाटेन की समूची बस्ती में उसके बारे में तरह-तरह की अफवाहें फैली थीं। उसने शेर-चीते, रीछ, सर्प पता नहीं क्या-क्या पाल रखे हैं ? सुना तो यह भी जाता है कि शैतान भी उसके काबू में है। उसे अपनी झोंपड़ी के साथ कबका जला दिया गया होता। किन्तु किसी का साहस उधर जाने का नहीं है। आखिर वह जादूगरनी जो ठहरी, पता नहीं क्या कर दे ? लेकिन सच्चाई यही है कि बस्ती के इतने निकट रहने पर भी कोई उसके सम्बन्ध में ठीक नहीं जानता। ऐसे भयावह स्थान पर दुग्धोवा कैसे चली गई ? पर कल तो किप्पूर था।

"दुग्धोवा को नगर से बाहर अकेले निकाल देना होगा।" प्रधान पुजारी ने उस दिन सायं प्रार्थना के बाद सभी की उपस्थिति में अपना निर्णय सुना दिया। मांगियों के प्रधान विवश थे, परम्पराओं के सामने। फूल-सी कोमल बालिका को दूर जंगल में अकेले छोड़ आने का दण्ड ऐसी भी क्या विवशता ? किन्तु मूढ़ताओं के घेरे में विवेक को स्थान कहाँ ? जब विवेक नहीं तब संवेदना का रक्षण कौन करे ? कौन उत्तर दे, सभी मौन थे, कुरीतियों के सामने किसकी मजाल जो बोल जाय।

चित्र-विचित्र परम्पराएँ थीं उनकी बस्ती में। उन्हीं असंख्य में एक यह भी थी कि जो महिला खुलकर बोले—पुरुषों के समान अपनी प्रतिभा को विकसित करना चाहे उसे डाइन करार कर दो, जादूगरनी कह दो। फिर तो उसकी एक ही सजा है, सामाजिक बहिष्कार। जो उसका साथ देना चाहे, उसकी भी यही गति। पुजारी के निर्णय का प्रतिवाद-अपने-आप में सबसे बड़ा अपराध है। सभी सन्न थे। दुग्धोवा के माता-पिता ? उनकी कौन कहे उपस्थित सभी जनों की आँखें भरी थीं। परम्पराओं की जकड़न में मानवता कसमसा रही थी।

तभी एक गड़रिया दौड़ता-हाँफता भीड़ में घुसा चला आया। नंगे पैर, फटे मैले कपड़े तिनकों और धूलि से भरे सिर तथा दाढ़ी के केश। शरीर और वस्त्र दोनों से भेड़ों से निकलने वाली गन्ध आ रही थी। किन्तु उसका ध्यान न अपनी ओर था और न उस भीड़ की ओर जो वहाँ जमा थी। सीधा प्रधान पुजारी के पास जाकर उसके चोगे का छोर चूमते हुए बोला "सबाटान पहाड़ का तपस्वी पर जिन कुरुस उतर आया है। वह इधर ही आ रहा है। जैसे ही मैंने देखा आपको सूचित करने भागा आ रहा हूँ।"

"सबाटान के तपस्वी आ रहे हैं बस्ती की ओर !" वहाँ जमा लोगों में कानाफूसी होने लगी। बड़ी उत्साहवर्धक खबर थी। इतने बड़े तपस्वी के स्वागत की चर्चा होने लगी। दुग्धोवा का निर्णय शाम तक के लिए स्थगित हो गया।

"ये तपस्वी कहाँ जा रहे हैं ?" नगर से बाहर पर्याप्त दूर स्वागत करने गए बस्तीवासियों को इस बात का आश्चर्य नहीं हुआ कि सालों से मौन इस तपस्वी के स्वागत समारोह की ओर उसने स्वयं ने आँख उठाकर भी नहीं देखा। वे सब तो तब चौंके, जब तपस्विनी बुढ़िया जादूगरनी के थूहरों वाले घेरे की ओर मुड़ा।

थूहरों के घेरे के बाहर सभी के पाँव ठिठक गए। एक अज्ञात भय से रोमांच हो आया—पता नहीं क्या है भीतर ? सिर्फ दो एक लोगों ने तपस्वी के साथ अन्दर जाने का साहस किया। प्रधानपुजारी भी उनमें से एक था। ये साथ जाने वाले अन्दर जाकर हतप्रभ रह गए, यहाँ तो कोई ऐसी-वैसी बात नहीं। दो बकरे, एक कुत्ता, तीन गधे बस ऐसे ही एक दो छोटे-छोटे पशु और थे। अन्दर की जमीन में साधारण साग-भाजी की क्यारियाँ थीं। कहीं भी तो नहीं था, कुछ जादू-टौने जैसा। उसने तो न जाने क्या-क्या देखने की आशा लगा रखी थी, पर यहाँ तो कुछ भी नहीं। लेकिन वह तो पिछले पचास सालों से न जाने क्या-क्या सुनता आया है ? तब तो वह पुजारी भी नहीं था। तो क्या वे सब बातें झूठी थीं। यहाँ तो दो चार बर्तन, एक घड़ा और एक चूल्हा भर दिखा। मूढ़-मान्यताओं का आधार कहाँ ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तपस्वी बलिका दुग्धोवा के चरणों पर झुक गया। बेचारी दुग्धोवा सहमकर उठ खड़ी हुई। सभी चकित थे। वह बहुत सालों बाद आज बोल रहा था "मुझे अकस्मात 'आहुरुमज्द' की वाणी सुनाई पड़ी। उस वाणी ने मुझे आदेश दिया कि मैं प्रेम की देवी दुग्धोवा का दर्शन करूँ। उस महिमामय मूर्ति का दर्शन जिसकी गोद में खेलने के लिए स्वयं आहुरमज्द लालायित हो उठे हैं। वे स्वयं अपने एक अंश से शीघ्र आने वाले हैं, नव-धर्म की संस्थापना के लिए जो नए युग का धर्म होगा। मानव प्रेम पर आधारित धर्म होगा।"

तपस्वी एक पल के लिए पीछे खड़ी भीड़ की ओर मुड़ा, किसी व्यक्ति विशेष की ओर देखे बिना बोलने लगा "मूर्खो ! समय विशेष की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाए गए नियम-नीति होते हैं। तुम जैसों का विवेकहीन अनुसरण इन्हें परम्परा के रूप में बदलता है। जब ये परम्पराएँ प्रगति के बढ़ते कदमों पर कुल्हाड़े बरसाने लगती हैं, तब ये कुरीति बन जाती हैं। इन कुरीतियों को सर्पहार की तरह लपेटे फिरना-मोह, है यही मूढ़मान्यता है।"

सभी चुप थे "अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है, अभी सँम्लह जाओ, स्वागत करो नए अवतार का। नए युग की नई रची नीतियाँ स्वीकारो, नयी संहिता बनाओ, नए संविधान जो तुम्हें अंधकार से प्रकाश की ओर ले जा सके। तुम ज्योति पुत्र कहा सको।" इतना कहकर तपस्वी वापस लौट गए जंगल में।

यही बालिका दुग्धोवा—महात्मा जरस्थुस्त्र की माँ बनी। प्रेम की देवी की गोद में आए इस अवतार ने पारसी धर्म के रूप में यही संदेश दिया कि "मानव-प्रेम अमर है, जो परम्परा इसके आड़े आए, तत्काल उसे अस्वीकार कर दो।"

शक्ति और शौर्य का साक्षात् अवतार—रानी दुर्गावती

भारतीय इतिहास का मध्यकाल अनेक दुर्भाग्यपूर्ण सामाजिक कुरीतियों का जनक रहा है। उस समय स्त्रियों को खरीदी गयी वस्तु का स्थान प्राप्त था। न उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व और न ही स्वतन्त्र आकांक्षा थी। उन्हें पुरुषों के नियन्त्रण में रहना पड़ता, उनकी आज्ञाओं पर अपने प्राणों को भी छोड़ना होता था, यहाँ तक कि जीवित ही पति की मृत्यु पर उसकी चिता के साथ जल जाना होता था। यह प्रथा थी और कैसी विस्मय की बात है कि पुरुष निर्धारित मर्यादाओं का पालन कर अपनी दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु का वरण करने वाली महिलाओं को उनकी मृत्यु के बाद सम्मानित किया जाता था। इसे पुरुष का उन्मत्त दानवी अहंकार हीं तो और क्या कहें ? इस सामाजिक कुरीति को—दानवी प्रतिबन्ध को तोड़ने का प्रथम साहस किया, गौडवाना रियासत की महारानी दुर्गावती ने।

दुर्गावती का जन्म अब से लगभग चारसौ वर्ष पहले हुआ था। वह कालिंजर के राजा कीर्तिराय की एकमात्र संतान थी, उसका लाड़-प्यार और पालन पुत्र की तरह ही हुआ था। वह बाल्यावस्था से ही अपने पिता के साथ जंगलों में जाती थी और उनसे शिकार के लिए शस्त्र चलाना सीखा करती थी। तेरह-चौदह वर्ष की आयु में ही वह शस्त्र चलाने में इतनी कुशल हो गई कि सिंह, तेंदुआ जैसे भयंकर वन्य जन्तुओं का शिकार सहज ही कर लेती थी।

अभी दो वर्ष पूर्व ही उनका विवाह गढ़मण्डला के राजा दलपतिशाह के साथ हुआ था। दलपतिशाह ने दुर्गावती को तारुण्य अवस्था में एक बार घुड़सवारी और शस्त्र-संचालन करते देखा था। यों राजकन्या होने के नाते शस्त्रसंचालन का अभ्यास कोई विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं था। परन्तु दुर्गावती जिस कुशलता, प्रवीणता और सधे हाथों से शस्त्र चलाती, वह क्षमता अन्य राजकन्याओं में दुर्लभ ही नहीं अलभ्य-सी ही कही जा सकती है। दलपतिशाह ने जब दुर्गावती को एक बार अपनी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय अभ्यास के समय देते देखा, तो वे बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने तत्क्षण निश्चय कर लिया कि वीरांगनादुर्गावती को ही अपनी अर्धांगिनी बनायेंगे।

इस निश्चय को कार्यान्वित करने—गढ़मण्डला को दुर्गावती की विशिष्ट प्रतिभा से लाभान्वित होने योग्य व्यवस्था बनाने में दलपतिशाह को कई कठिनाइयों और बाधाओं का सामना भी करना पड़ा। यहाँ तक कि युद्ध भी लड़ना पड़ा। पर दृढ़निश्चयी और संकल्पजयी दलपतिशाह ने उन सब बाधाओं पर विजय प्राप्त कर ही ली और दुर्गावती गढ़मण्डला की राजरानी अभिषिक्त हुई। दुर्गावती वीरांगना तो थी ही—अपूर्व रूप-यौवन की स्वामिनी भी थी। फिर भी विवाहोपरान्त केवल दाम्पत्य जीवन के उपभोग में ही लिप्त न रही। पति के प्रति अपने दाम्पत्य दायित्वों का निर्वाह करते हुए राज्य व्यवस्था के संचालन में भी उनका सहयोग देकर सच्चे जीवन साथी का कर्त्तव्य पालन करती रही। वर्ष भर बाद उन्होंने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया, जिसने विवाहित दम्पत्ति के जीवन में सरसता उत्पन्न करने के साथ-साथ राज्य में भी खुशियाँ बिखेर दीं।

लेकिन नियति ने शायद कुछ और ही निर्धारित कर रखा था। विवाह हुए अभी दो वर्ष ही हुआ था कि दलपतिशाह का असमय निधन हो गया। रानी ने पारिवारिक-जीवन का अभी भरपूर अनुभव और सुख भी प्राप्त नहीं किया था कि यह वज्रपात हुआ। राजपरिवार के सदस्य दलपतिशाह की चिता सजाने के साथ-साथ रानी को भी उनके साथ जलाने का प्रबन्ध करने लगे। रानी को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने आत्मदाह से साफ इन्कार कर दिया और कहा, मैं इस कायरतापूर्ण परम्परा का निर्वाह करने के लिए बिलकुल तैयार नहीं हूँ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राजपरिवार के वयोवृद्ध और बुजुर्ग सदस्यों ने काफी समझाया, पति के प्रति कर्त्तव्य, समाज के प्रति मर्यादा का और परिवार की कुल परम्पराओं का हवाला दिया। इन सब बातों का उत्तर रानी दुर्गावती ने यों कहकर दिया—''कर्त्तव्य, मर्यादा और कुल की परम्पराओं के औचित्य का एकमात्र आधार विवेक है और इस बात में क्या विवेक सम्मिता है ? वरन् मुझे तो पति के साथ आग में जल जाना कायरता से उनके सौंपे उत्तरदायित्वों से भागने जैसा ही लगता है। मैं अपने पति के प्रति उत्तरदायित्वों का निभाने का एक ही मार्ग देखती हूँ कि उनके पद चिह्नों पर चलते हुए उनके प्रति सच्ची श्रद्धा अभिव्यक्त करूँ। उनके बनाये सुदृढ़ राज्य को और अधिक मजबूत तथा शक्तिशाली बनाऊँ, इस राज्य को एक सुयोग्य उत्तराधिकारी भेंट करूँ।''

रानी होने के नाते दुर्गावती का प्रतिवाद तो किसी ने नहीं किया पर जनता से लेकर सामन्त, सभासदों तक में कानाफूसी होने लगी कि रानी इस जीवन में प्राप्त सुख-सुविधाओं और अधिकारों का मोह नहीं छोड़ पा रही है। लेकिन बात यह न थी। पति के मरणोपरान्त रानी दुर्गावती ने एक तपस्विनी का सा जीवन धारण किया और उन्होंने शृंगार प्रभृति समस्त सुखोपभोग साधनों, विलासिता का परित्याग कर सादी वेश-भूषा पहनी तथा अपनी आवश्यकताओं को भी कम कर एक सामान्य महिला की भाँति रहने लगी। इस कदम ने उन्हें लोक दृष्टि में ऊँचा उठाया। इसके बाद रानी ने अपना अगला कदम उठाया, सम्पूर्ण प्रतिभा, सम्पूर्ण क्षमता को राज्य के विकास में लगाने का श्री गणेश करके शासन का सारा सूत्रभार उन्होंने अपने हाथ में ले लिया और उनको जो संदिग्ध थे, राजव्यवस्था में छिद्र उत्पन्न कर रहे थे, ढूँढ़कर निकाल अलग करना आरम्भ किया। ये तत्त्व अपने स्वार्थों के लिए राजव्यवस्था में तो विकृति फैलाते ही थे, भ्रष्टाचारी और प्रजापीड़क होने के कारण जनता को भी काफी परेशान करते थे। ऐसे अधिकारियों को निकाल देने के कारण प्रथम तो प्रशासन में स्वच्छता आयी और दूसरे जनता को अपने कार्य करने में सुविधा होने लगी। अब तक राजा या रानी से मिलने के लिए सामान्यजनों को काफी कठिनाइयाँ उठानी पड़तीं कई अधिकारियों के सामने अपनी जेबें खाली करनी पड़ती थीं। जब से रानी ने स्वच्छ-प्रशासन के लिए उक्त कदम उठाने के साथ-साथ और भी कई प्रभावशाली निर्णय लिए तब से हर किसी को सुविधापूर्वक रानी से मिलने तथा अपने दुःख-दर्द, समस्याएँ कहने का मौका मिलने लगा। इस कारण जनता रानी को अपने प्राणों से भी अधिक चाहने लगी। उन्होंने स्वच्छ प्रशासन और जनता की कठिनाइयाँ दूर करने के साथ-साथ अन्य अनेक लोकोपकारी कार्य भी किये।

इस प्रकार अपना राज्य स्वच्छ बनाने के बाद उनका ध्यान पड़ौसी शत्रुओं से राज्य को सुरक्षित बनाने की ओर गया। आस-पास के पड़ौसी राजा समझते थे कि गौण्डवाने की रानी दुर्गावती एक अबला स्त्री है और इसे तो चुटकियों में परास्त कर गौण्डवाने को अपने राज्य में मिलाया जा सकता है। हर कोई समझता था कि गौण्डवाने को आसानी से जीता जा सकता है, वे मौके की तलाश में थे। सबसे पहला मौका ढूँढ़ा सिरोज के मिया ने। अपनी शक्ति के मद में उन्मत होकर वह सेना लेकर गौण्डवाने पर चढ़ दौड़ा। रानी भी असावधान नहीं थी। उन्होंने आन्तरिक सुव्यवस्था के साथ बाहरी खतरों से सुरक्षा का भी अच्छा प्रबन्ध किया था। अतः मिया सिरोज को मुँह की खानी पड़ी। मियासरोज को पराजित हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ था कि मालवा के बाजबहादुर ने गौण्डवाने पर आक्रमण कर दिया। इस बार शत्रु अधिक बलशाली था पर रानी दुर्गावती ने बाजबहादुर को भी करारी मात दी, गौण्डवाने की सेना से राजबहादुर को अपने प्राण बचाने भी कठिन हो गये। इस विजय के कारण रानी की आस-पास के राजाओं पर काफी धाक जम गई। यद्यपि राज्यविस्तार के लिए उनकी लार तो टपकती रही पर अपनी विवशता तथा गौण्डवाने की शक्ति को देखकर लोलुपी भावनाओं को उन्होंने मन ही मन में सीमित रखा।

इन्हीं दिनों दिल्ली के राजसिंहासन पर आसीन अकबर सारे भारतवर्ष का एक अधिपति बनने का सपना देख रहा था। इस सपने को पूरा करने के लिए उसने युद्ध से लेकर कूटनीतिक हथकण्डे भी अभियान स्तर पर जारी कर रखे थे। जब उसे पता चला कि गौण्डवाने की शासक एक महिला है तो तुरन्त गौण्डवाने की स्वतन्त्रता उसकी आँखों में काँटें की तरह चुभने लगी। अकबर ने अपने एक सूबेदार आसफखाँ को गौण्डवाना जीतने के लिए। युद्धअभियान पर जाने का आदेश दिया। आसफ खाँ ने पहले रानी दुर्गावती के राज्य की आन्तरिक शक्ति, सैन्यशक्ति और साधनबल को टोहना आवश्यक समझा अतः इस उद्देश्य से उसने कई जासूस भेजे। गौण्डवाने के सम्बन्ध में गुप्त सूचनायें प्राप्त करने के साथ गुप्तचरों को यह भी निर्देश दिया गया कि राज्य को आन्तरिक दृष्टि से निर्बल बनाने के लिए वहाँ की जनता में तोड़-फोड़ और अव्यवस्था पैदा करें। इस कार्य में उन देशघाती अधिकारियों ने भी सहयोग दिया, जो रानी से पहले ही जले-भुने बैठे थे। साथ ही कुछ ऐसे अधिकारी भी साथ हो गये, जो धन और पद के प्रलोभन में आ गये थे।

जब यह पक्का लगने लगा कि गौण्डवाने को जीता जा सकता है तो आसफखाँ ने दसहजार घुड़सवार सेना लेकर कूच कर दिया। रानी को इसका पता चला तो वे यह जानते हुए भी बिल्कुल नहीं घबड़ायी कि मुगलसेना की तुलना में गौण्डवाने के पास साधन भी कम हैं और सैनिक भी कम हैं। उन्होंने अपनी सेना को तैयार रहने के लिए कहा और अपने सोलहवर्षीय पुत्र को जनता का मनोबल बढ़ाने के लिए जन-सम्पर्क साधने तथा सैनिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तैयारियों का निरीक्षण करने के लिए नियुक्त कर दिया। वीरनारायण ने यह कार्य बखूबी किया। माँ बेटे ने मिलकर काफी जन उत्साह उभारा।

आसफखाँ की सेना जब बहुत पास आ गयी तो रानी दुर्गावती ने स्वयं अपनी सैनिक कमान सम्हाली और घोड़े पर सवार होकर शत्रुसेना की बीच रास्ते में ही अगुवानी की। एक स्त्री जिसे राजमहल की परम्परा के अनुसार चहारदीवारी में ही जीवन व्यतीत कर देने चाहिए घोड़े पर सवार होकर शत्रु से लड़ने युद्ध मैदान में पहुँची। सेना और जनता का उत्साह बढ़ाने के लिए यही कोई कम नहीं था, अत: वे प्राणपण से लड़े और ऐसी मारकाट मचायी कि शत्रु सेना में हाहाकार मच गया। गौण्डवाने के सीमित सैनिकों ने, अपने पुराने शस्त्रास्त्रों से दुश्मन के दाँत खट्टे कर दिये और तत्कालीन आधुनिक हथियारों से लैस, दस हजार सैनिकों का सेनानायक सिर पर पाँव रखकर भागा। यह इस बात का उदाहरण है कि दुश्मन को शस्त्रास्त्रों से नहीं आत्मबल से जीता जाता है।

युद्ध समाप्त हुआ और आसफखाँ हारकर भाग गया। यह आसफखाँ की नहीं, दिल्ली के बादशाह अकबर की हार थी अत: गौण्डवाने में एक ऐसी विजय की खुशी छा गयी, जो पहले कभी नहीं छायी थी। सैनिक और जनता विजयोल्लास में झूम उठे। कुछ दिनों के लिए सब लोग राग-रंग में मस्त हो गये और यही एक गल्ती हो गयी। एक देशद्रोही भेदिये ने आसफखाँ को सूचित कर दिया कि इस बार आक्रमण किया जाय तो विजय सुनिश्चित है क्योंकि सब लोग विजयोल्लास में इतने मस्त हैं कि उन्हें बाहरी परिस्थितियों का ध्यान ही नहीं है। आसफखाँ ने यह सुनहरा मौका हाथ से न जाने दिया और पुन: चढ़ दौड़ा। इस आकस्मिक आक्रमण की आशा दुर्गावती को भी न थी, फिर भी उन्होंने धैर्य से काम लिया और बिखरी हुई सेना को यकायक इकट्ठा किया। इस बार उन्होंने वीरनारायण को भी अपने साथ रखा। वीरनारायण रण-कुशल था परन्तु कुछ ईर्ष्यालु नायकों को उसकी यह वीरता अखरने लगी। परिणामस्वरूप उनका ध्यान बटा, सेना तो पहले से भी कम थी और इस बार शत्रुसेना पूर्वापेक्षा अधिक तैयारियों से लैस होकर आयी थी। रानी ने भी युद्ध में रणचण्डी का रूप धारण कर रखा था। उधर वीरनारायण वीरगति को प्राप्त हुआ—इधर लड़ते हुए शत्रु सैनिक का एक तीर रानी की आँख में लगा तथा दूसरा गर्दन में। वह घोड़े से गिर पड़ी—अब बच पाना मुश्किल देखकर रानी ने कटार अपने सीने में भोंक ली। वे जीवित शत्रु के हाथों न पड़ी और न ही बच सकीं। पर उन्होंने मध्यकाल में जब नारी पर कई प्रतिबन्ध थे यह सिद्ध कर दिया कि नारी, शक्ति का साक्षात् अवतार है।

नारी रत्न—येसुबाई

छत्रपति शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त उनके द्वारा स्थापित हिन्दू-महाराष्ट्र पर संकट के बादल छाने लगे थे। अब तक जिन चरित्रवान और देशभक्त नेताओं के हाथ में महाराष्ट्र का सूत्र-संचालन रहा था, वे तीनों अपने आप में निष्कलंक थे। समर्थगुरुरामदास, छत्रपति शिवाजी और माता जीजाबाई-तीनों की छत्रछाया वीर मराठों के सिर से उठ चुकी थी।

शिवाजी का उत्तराधिकारी संभाजी अपनी विलासिता के कारण शिवाजी के लिए भी सिरदर्द बन रहा था। शिवाजी ने उसके आचरणों से तंग आकर उसे पन्हाला के दुर्ग में कैद कर रखा था। यों वीरता और राज्य संचालन कला में वह पूरी तरह निपुण था, पर अपनी इस कमजोरी के कारण वह यशस्वी नहीं बन सका। शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त उनके उत्तराधिकारियों में देशभक्ति के स्थान पर व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ जागने लगी थीं। महाराष्ट्र की इस बिगड़ती स्थिति को अपने त्याग और तप से जिन थोड़े से व्यक्तियों ने सँम्हाला उनमे संभाजी की पत्नी येसुबाई का नाम शीर्षस्थ है।

इतिहास में अनेक ऐसे प्रसंग आते हैं, जहाँ पथ-भ्रमित पति को सती, साध्वी और विवेकशील पत्नी ने सत्पथ पर आरूढ़ किया। संभाजी को भी एक लंपट व्यक्ति से ऊपर उठाकर यशस्वी बनाने में येसुबाई का ही हाथ था। उनके ही सत्प्रयत्नों से संभाजी ने आगे चलकर बलिदान का जो आदर्श प्रस्तुत किया, वह हमारे इतिहास में गौरव की वस्तु तो है ही साथ-साथ ही इस तथ्य का परिचायक भी है कि बुरा से बुरा व्यक्ति भी, यदि उसकी आत्मा जाग उठे, तो आदर्शपूर्ण कार्य संपादित कर सकता है।

शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त संभाजी छत्रपति बने। उनके और उनके भाई राजाराम के बीच छत्रपति पद को लेकर संघर्ष भी चला। उस अवसर पर संभाजी ने राजाराम के समर्थकों की हत्या करवाने तक का प्रयास किया। अपने पति के इन निंदनीय कार्यों का येसुबाई ने विरोध किया। उन्हें खूब ऊँच-नीच समझाया। उनके पिता के आदर्श स्मरण कराये। अन्त में वे संभाजी को इन कुकर्मों से विरत करने में काफी हद तक सफल भी हुईं।

संभाजी ने छत्रपति बनते ही जिस वीरता और योग्यता का परिचय दिया, उसकी सरदारों को आशा नहीं थी। उन्हें आश्चर्य होता था कि संभाजी इस प्रकार परिवर्तित कैसे हो गए ? किन्तु यह सब सती साध्वी और विवेकशीला येसुबाई के सत्परामर्शों और साहचर्य का फल था कि उनके भीतर का पशुत्व मरता जा रहा था।

औरंगजेब के लाख सिर मारने पर भी हिन्दू महाराष्ट्र को समाप्त करने में सफलता नहीं मिल रही थी। उसे आशा थी कि विलासी संभाजी के छत्रपति बनते ही

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह उस पर विजय प्राप्त कर लेगा परन्तु वैसा संभव नहीं हो पा रहा था। हर ओर से उसे हार ही मिल रही थी।

येसुबाई संभाजी के पीछे छाया की तरह लगी रहती थीं। उनके मन को खाली बैठने ही नहीं देती थीं कि उसमें विलासिता और लपंटता के विचार अपनी करामात दिखाएँ। यों उनके संसर्ग में संभाजी का अंतरंग भी परिवर्तित होता जा रहा था।

दस वर्ष तक संभाजी विजय यात्राओं में उलझे रहे। इस बीच वे येसुबाई के सम्पर्क और राष्ट्र-देवता की सेवा में निरत रहकर बिल्कुल बदल चुके थे। उन्हें अपने पिछले जीवन पर बहुत पछतावा होता था।

वे जब पन्हाला और विशालगढ़ के बीच संगमेश्वर नामक स्थान पर अपने थोड़े से साथियों के साथ टिके हुए थे, तभी उनके वहाँ होने की सूचना गुप्तचरों द्वारा औरंगजेब को लग गयी। उसने मुकर्रबखान के नेतृत्व में एकहजार सैनिक उन्हें पकड़ने के लिए भेजे। संभाजी के गुप्तचरों ने इस बात की सूचना उन तक पहुँचा दी थी किन्तु संभाजी ने उस पर विश्वास नहीं किया। फल यह हुआ कि वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए भी वे अपने साथियों के थोड़े होने के कारण भागने में सफल नहीं हो सके और मुकर्रबखान द्वारा पकड़ लिए गए।

उन्हें औरंगजेब के सामने प्रस्तुत किया गया। औरंगजेब ने उन्हें मुसलमान बन जाने की शर्त पर छोड़ने की बात कही। संभाजी ने उसके इस अपमानजनक प्रस्ताव को ठुकरा दिया। क्रूर औरंगजेब ने उन्हें हजारों तरह की शारीरिक यातनाएँ दीं, परन्तु उन्होंने सब सह लीं, 'उफ' तक नहीं किया। उनकी आँखें निकाल ली गयीं, जीभ काट ली गयी पर उन्होंने औरंगजेब के सामने झुकना और धर्म-परिवर्तन करना स्वीकार नहीं किया। आश्चर्य होता है कि एक व्यक्ति जो कभी क्षणिक कामतृप्ति के लिए विवेक को ताक पर रख दिया करता था वह इतने शारीरिक कष्ट कैसे सह गया ?

इसका कारण वह ज्ञान था, जो उन्हें अपनी धर्मपत्नी येसुबाई से मिला था। येसुबाई ने पितृगृह में अपने कुलगुरु से गीता के कर्मयोग और शरीर तथा आत्मा के भेद को समझा था। श्वसुरगृह में शिवाजी, जीजाबाई और समर्थरामदास के जीवन में उसे साकार होते देखा था। उसी की घुट्टी उन्होंने कांतासम्मित उपदेश रूप में अपने पति को दी थी। हमारी उसी आध्यात्मिक विरासत के ज्ञानभंडार के एक कण को पाकर संभाजी का जीवन परिवर्तित हो गया था। अपने छत्रपति के इस गौरवपूर्ण आचरण की सूचना जब मराठा वीरों को मिली तो वे उनके पिछले आचरणों को भूल गए। संभाजी ने अपनी काम-लोलुपता रूपी पाप का प्रायश्चित मानकर इस दण्ड को सहज स्वीकार लिया था। उनके इस वीरतापूर्ण आचरण ने उन्हें शहीद बना दिया। इस बलिदान ने मराठा सामंतों के हृदयों में छाया व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा का कुहासा छितरा दिया और वहाँ पर देशभक्ति और जातीय स्वाभिमान हिलोरे लेने लगा।

संभाजी के पकड़े जाने, उनके अंग विच्छेद और तदंतर वध के समाचार येसुबाई को रायगढ़ में मिले। इस विषम स्थिति में एक भावुक और अबला नारी की तरह वे सिर पीटने नहीं बैठ गयीं वरन् उन्होंने उस समय के अपने कर्त्तव्य को समझा, अपने पद की मर्यादा को समझा और तुरन्त ही अपने देवर राजाराम को महाराष्ट्रीय वीरों का नेता बनाकर उन्हें महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता को अमर रखने के लिए रायगढ़ से विदा कर दिया।

उनको अब क्या करना है, यह उन्होंने निश्चय कर लिया। उनके पुत्र शिवाजी और साहू जी अभी निरे बालक ही थे। उनकी रक्षा और महाराष्ट्र की रक्षा का भार उन्होंने अपने कंधों पर अनुभव किया। राजाराम को मराठों का नेता बनाकर उन्होंने जिस त्याग का परिचय दिया था, उसने उस समय राष्ट्र-प्रेम की भावना जगाने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया था।

रायगढ़ पर दस महीने तक औरंगजेब का अधिकार नहीं हो पाया पर अन्त में सूर्याजी पिसानड नामक एक सरदार के विश्वासघात के कारण रायगढ़ का पतन हुआ। येसुबाई के सामने ही छत्रपति का सिंहासन तोड़ा गया, नगर लूटा गया, उन्हें पुत्रों सहित बन्दी बना लिया गया, पर वे यह सब देखकर भी विचलित नहीं हुईं। उन्हें सत्य, धर्म और ईश्वर पर अटूट विश्वास जो था।

सोलहवर्ष तक वे अपने पुत्रों के साथ दिल्ली में मुगल सम्राट के द्वारा नजरबंद रखी गयीं। इसमें भी उन्हें महाराष्ट्र का हित ही नजर आ रहा था। उन्हें विश्वास था कि ऐसी स्थिति में स्वाभिमानी मराठे निश्चय ही अपने देश और अपनी राजमाता के लिए संगठित होकर उन्हें छुड़ाने का और महाराष्ट्र को सबल बनाने का प्रयास अवश्य करेंगे।

दिल्ली रहते हुए भी उन्होंने अपने दो विश्वस्त सरदारों-भक्ताजी हुलरे व बंकी गायक्वाड़ द्वारा संदेश और मार्गदर्शन प्रदान करते हुए महाराष्ट्र को शक्तिशाली बनाया। औरंगजेब टक्कर मारता ही रहा पर उसे कहीं सफलता नहीं मिली।

उन्होंने राजाराम को विशालगढ़ से हटकर, जिंजी पहुँचकर, राजचिन्ह धारण कर और छत्रपति बनकर राज्य रक्षण की प्रेरणा दी। राजाराम छत्रपति बने। औरंगजेब यह देखकर जलकर खाक हो गया कि जिस छत्रपति और महाराष्ट्र को मिटाने की सोचा था, वह किसी एक व्यक्ति या वंश में नहीं है। वह तो सारे महाराष्ट्र में फैला है। येसुबाई ने पुनः इस सत्य को उजागर कर दिया था कि जब तक किसी भी देश या जाति के लोग व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं से ऊपर उठकर राष्ट्र व समाज को महत्त्व देते रहेंगे, तब तक उनको कोई पददलित नहीं कर सकेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.१६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

छत्रपति राजाराम येसुबाई की उदारता व त्याग से अत्यधिक प्रभावित हुआ, वह उन्हें मातृवत मानने लगा था। संभाजी के दुर्व्यवहार को वह भूल गया। दो बार उसने येसुबाई और राजकुमारों को छुड़ाने का उद्योग भी किया पर सफल नहीं हो सका। १७०० ई. में दस वर्ष तक छत्रपति रहकर राजाराम दिवंगत हुए। रामचन्द्रपंत नामक एक सुयोग्य सरदार येसुबाई के पुत्र साहूजी के नाम पर महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता को कायम रखते हुए मुगलों से लोहा लेते रहे।

औरंगजेब, शिवाजी के उत्कर्ष के समय से ही महाराष्ट्र को मटियामेट करने के लिए प्रयास कर रहा था। उसका यह प्रयास सफल नहीं हो रहा था। हर असफलता पर चोट खाये साँप की तरह वह और क्रुद्ध होकर आक्रमण करता था परन्तु हर बार उसे असफलता ही हाथ लगती थी। हिन्दुओं का कट्टर दुश्मन होने के साथ ही वह विशाल साम्राज्य का स्वामी भी था। उसके बल पर उसने दक्षिण में उठ खड़े हुए एक समर्थ भारतीय-राज्य को कुचलने के लिए अपना सारा जीवन खपा दिया पर वह अपने इस कुप्रयास में असफल ही रहा।

नजरबन्द रहकर भी येसुबाई ने अपने पुत्र साहू का विवाह कुलीन कन्या से करवाने में सफलता पायी। औरंगजेब की बड़ी पुत्री रोशनआरा और बेगम जहाँनआरा उनके चरित्र और व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित हुई थीं। उनका सहयोग भी येसुबाई को कम नहीं मिला था।

सत्रहवर्ष की नजरबन्दी भोगने के बाद साहू जी की मुक्ति हुई पर येसुबाई को बंधक रख गया। छत्रपति साहू के अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप १७१९ में उनकी मुक्ति हुई। औरंगजेब जैसे कुटिल सम्राट से वर्षों तक स्वदेश की स्वतन्त्रता को बचाए रखने के लिए जिन भारतीयों ने बलिदान दिए, अपने जीवन समर्पित किए उनमें येसुबाई का नाम अग्रगण्य रहेगा। वे एक वीर माता, देशभक्त महिला और विवेकशील कर्मयोगिनी के रूप में इतिहास में अमर हो चुकी हैं।

उन्नीस वर्ष तक अपनी मातृभूमि से दूर नजरबंदी का जीवन बिताते हुए भी जिस महिला ने कभी यह न जाना कि उदासी क्या है, हर ओर से बँधी रहने पर भी परिवार और राष्ट्र के लिए सतत् सेवारत रहकर उन्होंने जिस निष्काम भाव से दूरदर्शितापूर्ण कर्म किया, वह महाराष्ट्र को बनाये रखने के लिए संजीवनीबूटी सिद्ध हुआ। सत्तरवर्ष की आयु में उनका देहावसान हुआ। उनका यह कृर्तत्ववान जीवन भारतीय-महिलाओं के लिए युगों तक आदर्श का काम करेगा।

सद्गुणों की पुण्य प्रतिमा— महारानी अहिल्याबाई

अपने अलौकिक व्यक्तित्व के कारण अहिल्याबाई एक दिन इन्दौर की महारानी बनीं। उनका जन्म १७३५ में महाराष्ट्र प्रदेश के पाथडरी नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम मनकोजी सिंधिया था। मनकोजी सिंधिया एक साधारण व्यक्ति ही नहीं बल्कि गरीब आदमी थे।

उनकी बेटी अहिल्याबाई कोई अपूर्व सुन्दरी न थी। उसका रंग साँवला था। किन्तु वह अत्यधिक सरल तथा भोली थी। स्वभाव की सरलता तो उसे अपने उस सन्तोष से मिली थी, जिसको प्राप्त कर लेने से बाहरी परिस्थितियों में गरीब होते हुए भी मनुष्य अन्दर से बड़ा सम्पन्न एवं परिपूर्ण रहता है। जिसकी आवश्यकताएँ प्राकृतिक सीमा तक ही प्रतिबन्धित रहती हैं, उसका न तो अभाव खटकता है और न उसमें कोई दयनीयता आने पाती है। आत्मा और मन के पवित्र होने से अहिल्याबाई का मन भगवान के पूजन में बहुत लगता था, वह नित्यप्रति नियम से शिवजी के मन्दिर में पूजा करने जाती थीं। अहिल्याबाई का यह अटूट नियम देखकर अनेक बार उसकी सहेलियों ने पूछा—"अहिल्या ! तुम भोले बाबा से क्या माँगा करती हो ?" अहिल्या बड़े सरल भाव से उत्तर देती—"मैं तो जल, फूल चढ़ाकर चली आती हूँ, माँगती कुछ भी नहीं। जब मुझे किसी लौकिक चीज की आवश्यकता ही नहीं तब माँगू क्या ?"

वास्तव में उस सरलता एवं सन्तोष की प्रतिमा को कुछ चाहिये भी न था। लेकिन भक्त की निष्कामता भगवान में कामना बनकर गूँजने लगी। भगवान् की इच्छा हुई कि अहिल्या रानी बने। फिर क्या था योग जुड़ गया। नहीं तो कहाँ एक गाँव की किसी झोंपड़ी में पलने वाली अहिल्या और कहाँ इन्दौर की गद्दी ?

इन्दौर के महाराज मल्हारराव होल्कर पूना जाते समय मार्ग में पाथड़री गाँव में उसी शिवालय में रुके जिसमें अहिल्या नित्य पूजन करने आती थी।

प्रभात हुआ अहिल्याबाई पूजा करने आई। मन्दिर के चारों ओर बड़ी चहल-पहल, हाथी-घोड़े, रथ और आदमियों की भीड़ ही भीड़। किन्तु अहिल्याबाई बिना किसी ओर देखे सीधे मूर्ति-मन्दिर को लक्ष्य किये उपराम भाव से चली आई, लोग मौन होकर मार्ग छोड़ते गये। कन्या ने नित्य की भाँति एक मन से यथावत् पूजा की और ठीक उसी उपराम भाव से वापस चली गई। उस पर न तो उस भीड़ का कोई प्रभाव पड़ा और न वह चिन्तित हुई। तथा न उसके मन में किसी भय अथवा संकोच का भाव आया। वे निर्विकार भाव से आई और निर्लिप्त भाव से ऐसे चली गई जैसे वहाँ कोई था ही नहीं। अहिल्याबाई को सबने आते-जाते देखा किन्तु उसने किसी को भी नहीं देखा। यह मन की परिपूर्णता का लक्ष्य था।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महाराज मल्हारराव ने भी देखा। किन्तु उनका देखा, विचार-क्रिया में बदल गया। वे सोचने लगे—क्या संसार में ऐसा भी संभव है कि किसी महाराज का वैभवपूर्ण शिविर लगा हो, चारों ओर घोड़े हिनहिना रहे हों, हाथी झूम रहे हों और कोई एक—सो भी साधारण-सी ग्रामीण लड़की आए और बिना किसी प्रभाव के इतने तटस्थ भाव से चली जाए, मानो वहाँ राजा तो राजा एक छोटा-सा प्राणी भी न हो। जबकि अच्छे-अच्छे स्थैर्यवान राजवैभव को भय और विस्मय के भाव से देखने पर विवश होते हैं और कुछ नहीं तो कम से कम राजैश्वर्य, असामान्य एवं अस्वभाविक विशेषता के कारण कौतूहल का विषय तो होता ही है। महाराज होल्कर के हृदय में अहिल्याबाई की यह तटस्थता, तन्मयता एवं निर्भयता श्रद्धा बनकर बैठ गई। वे बेचैन हो उठे।

इन्दौर महाराज ने अहिल्या के पिता को बुलवाया और कहा—सिंधिया मैं आपकी सुलक्षणा बेटी को अपनी पुत्र वधू बनाना चाहता हूँ। आशा है तुम मुझे निराश न करोगे।

मनकोजी को महाराज की बात सुनकर तारे दीखने लगे। उन्हें सहसा अपने कानों पर विश्वास न हुआ। पर महाराज मल्हारराव ने आश्वासन देकर वापस कर दिया।

मनकोजी भागे-भागे घर आये। उस समय अहिल्या गऊ का गोबर उठाकर हाथ धोने जा रही थी। पिता ने उसके दोनों हाथ पकड़कर खुद धुलाते हुए गद्‌गद् कण्ठ से कहा—"बेटी ! अब यह हाथ गोबर में कभी न सनेंगे। अब यह इन्दौर की राज-सत्ता में हाथ बटायेंगे।" अहिल्या को पिता का यह कथन ही नहीं समझ में आया। उसकी माता भी विस्मय के साथ यह कहती हुई आ गई कि "आज आप यह क्या कर रहे हैं ? यह क्या कह रहे हैं ?"

"हाँ ठीक ही कह रहा हूँ। इन्दौर-महाराज मल्हारराव होल्कर ने अहिल्या को अपनी पुत्र-वधू बनाने के लिये आज ही तो सबेरे मुझ से माँग लिया है। इसी याचना के लिये ही तो उन्होंने मुझे बुलाया था।" अहिल्या यह सुनते ही कोठरी में भाग गई और माता-पिता उसे ऐसे देखते रहे मानो वे अहिल्या के माता-पिता होने के योग्य न थे।

माता-पिता बेटी की विदाई के विषय में कुछ बात करने ही वाले थे कि तब तक बाहर से आवाज आई मनकोजी, कन्या को अभी जैसी बैठी हो भेज दीजिये।" महाराज ने पड़ाव उठा दिया है। मनकोजी ने बाहर आकर देखा तो दरवाजे पर चाँदी के डण्डों वाली और जरीदार मखमली परदें की पालकी द्वार पर रक्खी हुई थी, और महाराज का मुख्य प्रबन्धक खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था।

अहिल्या के पास कोई और वस्त्र थे ही नहीं, बदलवाये क्या जाते ? उसी सफेद मोटी-गाढ़े की धोती में, जो कि वह पहने थी, पालकी में आदर एवं भद्रता से पूर्ण वातावरण में बिठा दी गई।

अहो ! मनुष्य में देवत्व के प्रतिनिधियो ! अभ्युदय के प्रत्यूषपर्व के समान सौभाग्य के प्रवर्तकों ! सात्विकता की सन्तानो—गुणों ! तुम्हारी जय हो। तुम्हें अपनाकर जमीन का एक जर्रा भी आकाश का चाँद बन जाता है तब अहिल्या तो एक कन्या थी, पवित्र मानवी थी।

महाराजहोल्कर इन्दौर लौट चले। अहिल्या के आगे-आगे अपनी सवारी में वे इतनी प्रसन्नता, पुलक तथा उत्साहपूर्वक जा रहे थे मानो दिग्विजय करके लौट रहे हों। इन्दौर पहुँचकर मल्हारराव ने अहिल्या का विवाह अपने पुत्र खंडेराव से कर दिया।

अब अहिल्या इन्दौर की युवरानी बन गई थी। किन्तु अहिल्याबाई ने कोई अभिमान अनुभव करने के बजाय उत्तरदायित्व का अधिक अनुभव किया। ऐश्वर्यपूर्ण राजमहल की परिस्थितियों में पहुँचकर उसकी सादगी तथा सरलता में कोई अन्तर न आया। बल्कि उसके आगमन से राजमहल के वातावरण में सात्विकता का समावेश हो गया।

अहिल्या की सेवा तथा कर्त्तव्यनिष्ठा से प्रसन्न होकर मल्हार राव ने उसको राज-काज की दीक्षा देनी शुरू कर दी। वे इस विषय में पुत्र की अपेक्षा पुत्र-वधू पर अधिक विश्वास करने लगे। श्वसुर के तत्त्वाधान में अहिल्याबाई ने राज-काज में इतनी दक्षता प्राप्त करली कि जब कभी मल्हारराव किसी काम से बाहर जाते थे, वे राज-काज देखने का काम अहिल्याबाई को सौंप जाते थे। जब वापस आते, तो पाते थे कि अहिल्याबाई ने सौंपा हुआ कार्य इतनी दक्षता से किया, जिसकी उन्हें आशा न थी। इस प्रकार धीरे-धीरे मल्हारराव का विश्वास अपनी पुत्र-वधू की योग्यता में बढ़ता गया।

विवाह के बाद अहिल्याबाई के एक पुत्र तथा एक कन्या दो सन्तानें हुईं, जिनका कि नाम मालीराव और मुक्ताबाई रखा गया। इस प्रकार नौ वर्ष तक आनन्द, उत्साह के बीच जीवन बिताने पर अहिल्याबाई की अग्नि परीक्षा का समय आ गया।

उन दिनों मराठे अपनी सत्ता का विस्तार करने में लगे हुए थे। भारत के लगभग सभी राज्यों से वे चौथ वसूल करते थे किन्तु भरतपुर के जाट राजाओं ने चौथ देने से इन्कार कर दिया। इस पर पेशवा के परामर्श से मल्हारराव ने अपने पुत्र खण्डेराव को साथ लेकर भरतपुर पर चढ़ाई कर दी। जाटों के साथ इस लड़ाई में खण्डेराव मारे गये।

खण्डेराव के खेत रहने का समाचार जब इन्दौर पहुँचा तो अहिल्याबाई पति के साथ सती होने को तैयार हो गई। अहिल्याबाई का यह निश्चय सुनकर मल्हारराव पुत्र का शोक भूल गये और पुत्र-वधू को सती होने से रोकने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने समझाया कि पति-भक्ति सती होकर आत्मघात करने में नहीं वरन् ईश्वर प्रदत्त मानव-जीवन अधिकाधिक उज्ज्वल एवं उत्कृष्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बनाकर, पति का गौरव एवं यश बढ़ाने में है। अहिल्याबाई को श्वसुर का तर्क एवं विवेकपूर्ण परामर्श शिरोधार्य कर सती होने का अपना निश्चय छोड़ना ही पड़ा।

कुछ समय बाद उत्तर-भारत के एक मुहिम में मल्हारराव की भी मृत्यु हो गई। अहिल्याबाई ने श्वसुर की मृत्यु का आघात भी अपने चिर-सिद्ध-स्थैर्य एवं धैर्य की सहायता से सम्हाल लिया और निराश होकर घर में पड़े रहने के स्थान पर उनका प्रतिनिधित्व करके उनकी आत्मा को सन्तोष देने का निश्चय कर लिया।

बाबा के मृत्यु के बाद मल्हारराव का पोता मालीराव गद्दी पर बैठा किन्तु वह बड़ा विलासी तथा क्रूर था। प्रजा का शोषण और उस पर अत्याचार करना उसका स्वभाव बन गया था। अहिल्याबाई को अपने इस कुपुत्र का बड़ा दुःख था और इसके पहले कि वे उसे गद्दी से उतारकर किसी सुयोग्य-व्यक्ति को शासन सौंपे, मालीराव की नौ-माह बाद मृत्यु हो गई।

आगे कोई उत्तराधिकारी तथा उपाय न देखकर इन्दौर की बागडोर अहिल्याबाई ने स्वयं अपने हाथों में ली और गंगाधर नामक एक व्यक्ति को मन्त्री बनाकर प्रजा की सेवा करने लगीं। किन्तु अहिल्या का विश्वास-पात्र गंगाधर बड़ा स्वार्थी और राज्यलोलुप निकला। उसने अहिल्याबाई को किसी बच्चे को गोद ले लेने और राज्य-सत्ता उसके अधिकार में सौंपकर भगवत् भजन करने का परामर्श दिया। दूरदर्शिनी अहिल्याबाई ने गंगाधरराव के परामर्श के पीछे उसकी स्वार्थपूर्ण दुरभिसंधि को समझ लिया था। उन्होंने अपना साहस सँभाला और गंगाधरराव का प्रस्ताव कठोरतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। गंगाधरराव अपने चाचा रघुनाथराव पेशवा को इन्दौर पर चढ़ा लाया किन्तु रघुनाथराव अहिल्या की दृढ़ता, साहस, तैयारी तथा जनता का सहयोग का संगठन देख बिना लड़े ही वापस चला गया।

इन अनेक आकस्मिक अस्त-व्यस्ताओं के कारण राज्य में अनेक चोर, डाकू बढ़ गये थे। अहिल्याबाई ने उनका दमन करने के लिये घोषणा कर दी कि जो भी व्यक्ति उनका दमन करेगा, उसके साथ वे अपनी बेटी मुक्ताबाई का विवाह कर देंगी। अहिल्याबाई की इस घोषणा में उनकी बहुत बड़ी दूरदर्शिता एवं बुद्धिमत्ता छिपी हुई थी। इस प्रकार एक तो चोर-डाकुओं का दमन हो जायेगा और उनके जामाता के साहस एवं योग्यता की परख भी हो जायगी, साथ ही बेटी के विवाह के लिए राजनीतिक लोलुपता की संभावना समाप्त हो जायगी।

निदान एक साहसी नवयुवक यशवन्तराव ने डाकुओं के दमन का बीड़ा उठाया और अपना कर्त्तव्य पूरा कर मुक्ताबाई को प्राप्त कर लिया। किन्तु अहिल्याबाई का यह धैर्य ज्यादा दिन न चल सका। कुछ ही समय बाद उनकी पुत्री तथा जामाता की ही मृत्यु न हो गई बल्कि उनकी मातृ तुल्य सास का भी स्वर्गवास हो गया और वे संसार में सर्वथा एकाकी रह गईं। किन्तु अहिल्याबाई ने धैर्य न छोड़ा और साहसपूर्वक अपना कर्त्तव्य करती रहतीं। जिसने आत्मा को अपना मित्र बना लिया होता है, अपने को कर्त्तव्य की वेदी पर समर्पित कर दिया होता है, परोपकार एवं परमार्थ को अपना ध्येय बना लिया होता है वह अकेला होने पर भी अकेला नहीं रह सकता। पुण्य उसके साथ होता है और परमात्मा उसकी रक्षा करता है।

लगभग साठ वर्ष की अवस्था में प्रजा की सेवा, आत्मा की परीक्षा और परमात्मा की इच्छा पूरी कर महारानी अहिल्याबाई अपने सुयोग्य, विश्वस्त एवं चरित्रवान् सेनापति तुकोजीराव को राज्य का उत्तराधिकार तथा प्रजा का उत्तरदायित्व सौंपकर निर्विकार भाव से देह मुक्त होकर अपने सास, श्वसुर तथा पति, पुत्र, पुत्री, के पास चली गई।

नारी जाति का मुख उज्ज्वल करने वाली महारानी लक्ष्मीबाई

बिठूर (कानपुर) में पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नानासाहब तथा उनके मित्रगण हाथी पर चढ़कर हवाखोरी के लिये जा रहे थे। सात वर्ष की आयु की बालिका लक्ष्मीबाई ने भी हाथी पर चढ़ने की जिद की। बाजीराव ने नानासाहब से बार-बार लक्ष्मीबाई को भी साथ में बैठाकर ले जाने को कहा पर वे न माने।

यह देखकर लक्ष्मीबाई के पिता मोरोपन्त ने नाराज होकर अपनी पुत्री को डाँटा और कहा—"क्या तेरी तकदीर में हाथी पर बैठना लिखा है ? क्यों व्यर्थ में हठ करती है।" लक्ष्मीबाई ने तड़ाक से उत्तर दिया—"मेरी तकदीर में तो दस हाथियों पर बैठना लिखा है।"

उस समय तो सबने इस बात को उसकी बालसुलभ चपलता ही समझा पर एक-दो वर्ष बाद ही उसका विवाह झाँसी के राजा गंगाधरराव के साथ हो गया और वह वास्तव में दस हाथियों की स्वामिनी बन गई।

रानी लक्ष्मीबाई (सन् १८३४ से १८५७) पेशवाओं के एक मरहठा कर्मचारी की पुत्री थीं। उनके पिता मोरोपन्तबाजीराव के भाई चिमनाजीअप्पा के यहाँ सामान्य लिखा-पढ़ी और हिसाब-किताब का काम किया करते थे। जब अँग्रेजों ने पेशवा के राज्य पर कब्जा कर लिया तो चिमनाजी भी काशी जाकर रहने लगे। मोरोपन्त भी उनके साथ काशी आये और वहीं उनकी पत्नी भागीरथी बाई ने १६ नवम्बर, १८३४ को लक्ष्मीबाई को जन्म दिया। पर वह अधिक समय तक मातृ-प्रेम का उपभोग न कर सकीं। जब उसकी आयु ३-४ वर्ष की थी, तभी भागीरथी का स्वर्गवास हो गया। चिमनाजी का शरीरान्त इसके पहले ही हो चुका था। ऐसी परिस्थिति में मोरोपन्त बिठूर आये और बाजीराव के आश्रय में वहीं निवास करने लगे।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस समय बालिका लक्ष्मीबाई बिठूर में पेशवाई राजमहलों में रहने लगी, उस समय बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब, उनके भाई बालासाहब और भतीजे राव-साहब भी वहीं रहते थे। बाजीराव ने इन सब बालकों की शिक्षा की अच्छी व्यवस्था कर रखी थी। उनको पढ़ना-लिखना सिखाने के साथ ही अस्त्र-संचालन और घुड़सवारी की शिक्षा भी दी जाती थी। लक्ष्मीबाई (जिसका नाम उस समय मनुबाई था) यद्यपि आयु में छोटी थी, पर पेशवा के बालकों के साथ सब प्रकार की शिक्षा प्राप्त करती रहती थी। उसी समय से घुड़सवारी और हथियार चलाने का शौक लग गया, जो आगे चलकर उसे आदर्श वीरांगना बनाने वाला सिद्ध हुआ। पेशवाबाजीराव उसकी सुन्दर और भोली आकृति को देखकर बड़े प्रसन्न होते थे और उसे 'छबीली' कहकर पुकारते थे।

जिस समय बिठूर में लक्ष्मीबाई इस प्रकार शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करके बड़ी हो रही थी, उसी समय झाँसी में महाराज गंगाधरराव राज्य-गद्दी पर बैठ गये थे। यद्यपि अँग्रेज सरकार उनको गद्दी का हकदार नहीं मानती थी और सन् १८३८ से १८४१ तक, चार वर्ष उसने अपना प्रतिनिधि रखकर झाँसी का शासन-कार्य चलाया भी था, परन्तु फिर कुछ सोच-विचार को गंगाधर राव को गद्दी दे दी गई तो भी अभी वे पूर्ण रूप से अंग्रेजी सरकार के आश्रित ही थे। उनको यह शर्त स्वीकार करनी पड़ी कि वे अपने यहाँ अँग्रेजी सेना की एक टुकड़ी रखेंगे और खर्च के लिए प्रति वर्ष सवादोलाख रुपये वार्षिक खर्च देते रहेंगे।

अँग्रेजों की उन दिनों यही नीति थी कि एक-एक करके यहाँ के देशी राज्यों को आत्मसात् कर लिया जाय। पहले तो वे राजाओं से मित्रता करने का बहाना करते थे, उनके यहाँ अपना प्रतिनिधि नियुक्ति करते थे और बाद में जब किसी कारण उन्हीं राजाओं की स्थिति कमजोर पड़ती दिखाई देती, तो कोई बहाना निकालकर उसे हड़प जाने की कोशिश करते। झाँसी के साथ भी उन्होंने इसी नीति का प्रयोग किया। पहले उन्होंने झाँसी के राजा शिवराम भाऊ से बराबरी की शर्तों पर संधि की थी। परन्तु उनके देहान्त होने पर जब उनके उत्तराधिकारियों में वैमनस्य होने लगा तो वे यहाँ अपना प्रभाव बढ़ाने लगे और गंगाधर राव के समय तक उसकी स्थिति पूर्णरूप से अपने आश्रितराज्य की तरह बना दी।

गंगाधरराव दयालु और प्रजा-हितैषी राजा थे। जनता के सुख-दुःख का उनको सदा ध्यान रहता था। लोग प्रेम से उनको 'काकासाहब' कहकर पुकारते थे। झाँसीराज्य के भविष्य की उनको सदा चिन्ता रहती थी, क्योंकि वे अँग्रेजों की स्वार्थयुक्त नीति को भली प्रकार समझ गये थे। खासकर लक्ष्मीबाई के विवाह को ८ वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी उनकी कोई सन्तान नहीं हुई तब तो उनकी चिन्ता और भी बढ़ गई। वे जानते थे कि यदि कोई उत्तराधिकारी न हुआ, तो अँग्रेज अवश्य ही झाँसी पर अधिकार कर लेंगे।

अब उनका ध्यान धार्मिक-कार्यों की तरफ अधिक जाने लगा। वे तीर्थ-यात्रा के लिये रवाना हुए और कई महीने तक अनेक तीर्थों में जाकर खूब दान-पुण्य किया। जब वे तीर्थयात्रा से लौटे तो लक्ष्मीबाई गर्भवती हो गई और सन् १८५१ में उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया। इससे राजा और प्रजा सबको बड़ी खुशी हुई, पर यह बालक तीनमास की आयु में ही जाता रहा। गंगाधरराव को तो इससे इतना शोक हुआ कि उनका स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरने लगा और दो साल बाद ही उनका देहान्त हो गया। मरने से एक-दो दिन पहले उन्होंने अपने वंश के एक बालक दामोदरराव को दत्तक लिया और अंग्रेज अधिकारियों को सूचित किया कि उनके पश्चात् उसे राज्य का उत्तराधिकारी माना जाय।

पर झाँसी की निर्बल दशा देखकर अंग्रेजों के मन में बेईमानी का भाव उत्पन्न हो गया था। उसके झाँसी स्थित प्रतिनिधियों ने महाराज के मरते ही खजाने और किले पर अधिकार कर लिया और महारानी लक्ष्मीबाई को नगर स्थित राजमहल में रहने का आदेश दिया। उन्होंने उनके खर्च के लिये केवल ५ हजार रुपया सालाना की पैंशन मन्जूर की।

जिस समय की यह घटना है, उन दिनों भारतवर्ष का शासन सूत्र लार्ड डलहौजी के हाथ में था। उसकी नीति स्पष्ट रूप से देशी-राज्यों का अस्तित्व मिटाकर उन सबको अँग्रेजी-शासन के अन्तर्गत ले आने की थी। दो-चार वर्ष के भीतर ही उन्होंने केवल झाँसी को ही नहीं, वरन् नागपुर, सतारा, लखनऊ आदि कितने ही बड़े-बड़े राज्यों को 'उत्तराधिकार' की शर्त के नाम पर जब्त कर लिया था। पेशवा बाजीराव के मरने पर उनके दत्तक पुत्र नानासाहब को अनधिकारी बतलाकर उनकी ८ लाख की पेंशन भी बन्द कर दी गई थी।

महारानी लक्ष्मीबाई ने सरकारी आज्ञा का बड़ा विरोध किया और दृढ़तापूर्वक कहा—"मैं झाँसी नहीं दूँगी।" उन्होंने ५ हजार की पेंन्शन न लेकर अपने दत्तक पुत्र दामोदरराव की तरफ से इंग्लैण्ड की सर्वोच्च न्याय संस्था तक अपील की। पर जब उसका कोई परिणाम नहीं हुआ तो, वे उचित समय की प्रतीक्षा में चुप होकर बैठी रहीं।

इधर अँग्रेज अधिकारियों की नीति के विरुद्ध समस्त देश में असन्तोष की भावना दिन पर दिन गहरी हो रही थी। उधर भारतीय सेना में जो नई तरह के कारतूस आये उनके लिये अफवाह फैली कि उनमें गाय और सुअर की चर्बी लगी है और उन्हें चलाते समय दाँतों से काटना पड़ेगा। इससे हिन्दू-मुसलमान दोनों धर्मों के सिपाहियों ने क्रोधित होकर उनको व्यवहार में न लाने का निश्चय किया। अँग्रेजों के विरुद्ध इस देश-व्यापी असन्तोष को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

देखकर कुछ भारतीय राजनीतिज्ञों ने, जिनमें प्रमुख नाम नानासाहब पेशवा का था, विद्रोह की योजना बनाई। सन् १८५७ की १० मई को मेरठ छावनी के भारतीय सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। जिसका कठोरतापूर्वक दमन किया गया। इससे देशभर में असन्तोष की अग्नि भयंकर रूप धारण करने लगी और ४ जून को कानपुर और झाँसी दोनों स्थानों की सेनाओं ने विद्रोह करके अँग्रेज अफसरों को मार दिया।

महारानी लक्ष्मीबाई का आरम्भ में इस विद्रोह से प्रत्यक्ष में कोई सम्बन्ध न था। इतना ही नहीं जब विद्रोही सिपाहियों ने झाँसी के किले में ७० अँग्रेज पुरुष-स्त्रियों को घेर लिया तो वे तीन दिन तक उनके खाने के लिये छिपे तौर पर रोटियाँ भेजती रहीं। परन्तु उसके पश्चात् जब उन्होंने झाँसी नगर को सब प्रकार से अरक्षित देखा तो खाली किले पर अधिकार करके उसे फिर से युद्धोपयोगी बनाया। कई हजार पुरुषों को नई सेना में भरती की गई, बहुत-सी तोपों को ठीक करके बुर्जों पर लगाया गया और सब प्रकार की युद्ध-सामग्री तथा संघर्ष की तैयारी कर ली गई।

इस तरह नौ महीने बड़ी योग्यता और दूरदर्शिता के साथ झाँसी का शासन किया। इस बीच में उन्होंने दो आक्रमणकारियों को, जो झाँसी को बिना मालिक का समझकर उस पर अधिकार जमाने को आये थे, हटाकर भगा दिया। पर जब अँग्रेजों की नई सेनायें इंग्लैण्ड से आ गईं और उनके सेनानायक—सर ह्यूमरोज एक-एक करके कितने ही विद्रोही राजाओं को हराते हुये झाँसी पहुँचे तो वहाँ बड़ा कठिन संग्राम हुआ। इसमें लक्ष्मीबाई ने जो वीरता और प्रबन्ध कुशलता दिखाई, उससे उनका नाम चारों तरफ फैल गया। १८ दिन तक अँग्रेजों की सुसंगठित सेना झाँसी के किले से टक्कर मारती रही पर हर बार उसे पीछे ही वापस आना पड़ा। अन्त में जब ३ अप्रैल, १८५८ को किले पर अँग्रेजों का अधिकार हो गया तब लक्ष्मीबाई मर्दानी पोशाक पहिनकर कुछ सिपाहियों के साथ अँग्रेजी सेना के घेरे को तोड़कर बाहर निकल गई और काल्पी पहुँचकर गदर के अन्य नेताओं के साथ मिलकर अँग्रेजों का मुकाबला करने लगी।

काल्पी और ग्वालियर के युद्धों में महारानी लक्ष्मीबाई ने जिस अप्रतिम साहस और रण-कुशलता का परिचय दिया, उससे उसका नाम भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास में अमर हो गया। जबकि अन्य विद्रोही नेता कठिन अवसरों पर पीछे हट गये, रानी लक्ष्मीबाई ने ऐसी वीरता के साथ घमासान युद्ध किया कि शत्रु और मित्र दाँतों तले अँगुली दबाने लगे। अन्त में ग्वालियर के युद्ध में १७ जून को अँग्रेजी सेना के व्यूह में घुसकर उसने ऐसी तलवार चलाई कि जो सामने आया उसी का सर धड़ से अलग होता चला गया। पर अंग्रेज सिपाहियों की गोलियों से उसका घोड़ा इतना घायल हो गया कि वह मैदान से भाग खड़ा हुआ। स्वयं रानी भी बहुत अधिक घायल हुई थी, जिससे कुछ दूर जाकर वह भी गिर गई।

इस प्रकार इस वीर महिला का अन्त हो गया, परन्तु उसने वीरता का अनुपम आदर्श दिखाकर भारतीय नारियों पर 'अबला' और डरपोक होने के आक्षेपों का पूरी तरह निराकरण कर दिया। इसी प्रकार उन्होंने अपनी शासन सम्बन्धी योग्यता से यह भी सिद्ध कर दिखाया कि स्त्रियों को अवसर दिया जाय तो वे भी सब तरह के सार्वजनिक कार्य सफलतापूर्वक कर सकती हैं। विजयी अँग्रेजी सेना के प्रधान सेनापति सरह्यू रोज ने उसके मरने का समाचार पाकर कहा कि—"अगर विद्रोही नेताओं में कोई 'मर्द' था तो वह झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ही थी।"

मेवाड़ सिंहनी—महारानी कर्मवती

आपत्ति के समय जो व्यक्ति कायर की तरह परिस्थितियों को आत्म-समर्पण न कर कर्त्तव्य-पथ का अनुसरण कर हर बलिदान देने को तत्पर हो जाते हैं, अन्तत: विजय उन्हीं की होती है—महारानी कर्मवती का जीवन इस सत्य का एक जीता-जागता उदाहरण है।

राणा समरसिंह की मृत्यु हो जाने के बाद मेवाड़ का शासन-सूत्र उनकी विधवा रानी कर्मवती के हाथों में आया। रानी ने जीवन की हर सुख-सुविधा का त्याग कर अपने कर्त्तव्य में निष्ठा स्थापित की। मेवाड़ का राज-काज ठीक तरह से चलने लगा।

भारत में उन दिनों मोहम्मद गौरी अपनी सत्ता का प्रसार कर रहा था। उसने छोटे व निर्बल राज्यों को हड़पने की नीति अपना रखी थी। जहाँ भी वह किसी राज्य के कमजोर होने का समाचार सुनता था, वहाँ आक्रमण कर देता था और राज्य छीनकर अपने साम्राज्य में मिला लेता था। इस प्रकार उसने भारत का एक लम्बा-चौड़ा क्षेत्र अपने अधीन कर लिया था। मेवाड़ की स्थिति का उसे पता चला तो उसका अहं—यह सोचकर हँस उठा—एक औरत राज करेगी—क्या खूब ! हुकूमतों की जो बागडोर अच्छे-अच्छे मर्दों के हाथों में ठीक से नहीं ठहरती, उसे एक औरत ने अपने हाथों में ले रखा है। अहंकारी अपने सिवाय और किसी को कुछ गिनता ही नहीं। अपने सामने उसे संसार के सारे लोग तुच्छ दीखते हैं। इसी मूर्खता के कारण ही तो मदमत्त घमण्डी बात ही बात में नीचा देखकर अपना मुँह काला कर लेता है।

मुहम्मद गौरी ने धमकियों से भरा पत्र मेवाड़ भेजा—जिसमें कहा गया था कि अगर मेवाड़ हमें सौंप दिया गया, तो मैं उसकी हर तरह से रक्षा भी करूँगा और उन्नति का प्रयत्न भी करूँगा। रानी कर्मवती को वजीफा बाँध दूँगा और सभासदों का पद इसी तरह रखूँगा और अगर इसका विरोध किया तो मेवाड़ की ईंट से ईंट बजाकर उसे राजपूतों के खून में डुबा दिया जायेगा।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पत्र पढ़ा गया तो मेवाड़ के राज-दरबार में सन्नाटा छा गया। सब जानते थे कि आत्म-समर्पण के बदले में गौरी के पत्र में जो हरियाली दिखलाई गई है, वह सिर्फ जाल में फाँसने के लिये एक छल है। सत्य तो पत्र का अन्तिम भाग है। आततायी यवन आत्म-समर्पण और संघर्ष दोनों दशाओं में अत्याचार ही करेगा। बल्कि पराधीनता का जीवन तो बलिदानपूर्ण स्वतन्त्रता से कहीं अधिक कष्ट एवं अपमानजनक होगा। सारे सरदार और सभासद् चिन्तित होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठे। किसी की समझ में न आया कि क्या उत्तर दिया जाये ? रानी कर्मवती ने उस कायरता पर सबको धिक्कारा और स्वयं उत्तर लिखकर गोरी के पास भेज दिया।

पत्र गौरी के दरबार में पढ़ा गया। उसमें लिखा था, मोहम्मद गौरी! तुम्हारे लोभ ने तुम्हारी बुद्धि नष्ट कर दी है। तुमने मेवाड़ के उस राज्य पर दृष्टि डाली है, जिसमें घर-घर बलिदान की वीर-गाथा ही गाई जाती हैं। तुम्हारा यह सोचना भूल है कि मेवाड़ का शासन-सूत्र एक अबलानारी के हाथ में है। तुम अच्छी तरह यह समझ लो कि जिसे तुम अबला समझते हो, वह एक राजपूतानी है, जिसने सिंहनी का साहस पाया है। अपने मस्तिष्क से मेवाड़ विजय का स्वप्न निकाल दो, इसी में तुम्हारा कल्याण है अन्यथा अपनी दुर्बुद्धि का फल पाये बिना न रहोगे।

देखते ही देखते मेवाड़ यवन सेना से घिर गया। यह देख राजपूत सरदारों का साहस एक बार फिर गिर गया लेकिन जब महारानी कर्मवती सैनिक वेश में दरबार में गरजी तो राजपूतों की तलवारें म्यान से निकल आईं। रानी ने ललकारा—यह संघर्ष न्याय और अन्याय, धर्म और अधर्म का संघर्ष है। अब हमें अपना स्वाभिमान और स्वतन्त्रता बचाने के लिए बलिदान पथ के सिवाय और कोई मार्ग नहीं है। हम संघर्ष करेंगे, अन्तिम श्वाँस तक। बस फिर क्या था, राजपूत वीर भूखे सिंह की तरह शत्रु पर टूट पड़े और इस तेजस्विता से लड़े कि दुश्मन को मेवाड़ छोड़कर भागना ही पड़ा।

वीरांगना—वेलु नाचियार

एक और एक ग्यारह होना तो सामान्य बात है परन्तु कभी-कभी एक और एक ग्यारह सौ भी होते हैं। मद्रास राज्य की शिवगंगा रियासत का अधिपति मुथु बटुकनाथ और उनकी वाग्दता वेलु नाचियार ऐसे ही दो व्यक्ति थे, जो मिलकर ग्यारह नहीं ग्यारह सौ हो जाते हैं और ऐसे वीर साम्राज्यवादियों का सिर दर्द भी कम नहीं होते। वेलु नाचियार और मुथु बटुकनाथ भी अँग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी सरकार के लिये अच्छे-खासे सिर दर्द बन चुके थे।

दक्षिण-भारत से उठती हुई उस आँधी को मराठों ने भले ही न जाना हो पर अँग्रेजों ने बखूबी समझा था। हैदरअली ने भी खूब समझा था। इस व्यापारी कौम को जो भारत पर राज्य करने नहीं, रक्त चूसने के लिये आयी थी यहाँ पर यह आँधी उसी की उठायी हुई थी। यह बात दूसरी है कि इतिहासकार उस तथ्य को भूल गये हों या उन्होंने जान-बूझकर उन तथ्यों को नकार दिये हों कि १८५७ के पहले ही एक क्रान्तिदृष्टा ने क्रान्ति का अलख जगाया था। उसके लिये अपना सारा राजपाट और साथ में सुख-वैभव भी होम दिया था ।

हैदरअली, गुलबर्गा के एक सामान्य से सिपाही का पुत्र, वह अपनी प्रतिभा और योग्यता के बल पर निजाम का राजा बना था, उसने अँग्रेजों का नाम निशान ही मिटा देने की शपथ खायी थी। मराठे उसकी बात की गहराई को समझे नहीं थे। इसी कारण उन्होंने हैदर का साथ न देकर अँग्रेजों का साथ युद्ध में दिया था उस तब वे लोग शिवाजी के और समर्थ के—

''देव महत की धरावा अवधा हल कल्लोल कराया।

मुलख बड़वा बुडवाया धर्म संस्थापना साठी।।''

के आदर्श भुलाकर राज्य-लिप्सा में डूब चुके थे, वे भला हैदरअली के उस उद्योग को कैसे समझते ?

हैदर का पुत्र टीपू सुल्तान उसी के पद चिन्हों पर चल रहा था। क्रान्ति कभी मरती नहीं है। उसके उपासक अकेले चलने का साहस भी रखते हैं और चलते हैं। उन्हें समझने वाले भी मिलते हैं और साथी भी। हैदर अली को न सही टीपू-सुल्तान को साथी मिल चुका था शिव गंगा रियासत का अधिपति मुथु बटुकनाथ। अँग्रेजों से कम से कम दक्षिण को तो स्वतन्त्र करा ही लिया जाय, इस आशय से भीतर ही भीतर तैयारियाँ चल रही थीं।

वेलू नाचियार समरांगण में दमकने वाली दामिनी भी थी, मात्र पुरुष के पीछे चलने वाली अबला नारी नहीं। अतः वह भी पूरे उत्साह के साथ इस क्रान्ति के अभियान में भाग ले रही थी। उसने तो प्रतिज्ञा भी कर ली कि जब तक दक्षिण-भारत से अँग्रेजों का राज्य समाप्त नहीं हो जायेगा, वह विवाह नहीं करेगी। टीपू सुल्तान उसका धर्म-बन्धु था। हिन्दू और मुसलमान मत के मानने वाले होते हुए भी वे संकीर्णमना नहीं थे, अपने धर्म को बखूबी समझते थे—क्रान्ति धर्म को, राष्ट्र धर्म को।

गुपचुप तैयारियाँ चल ही रही थीं पर मुथुबटुकनाथ और वेलु नाचियार को क्या पता कि स्वार्थ जाने कब किसे अन्धा बनाकर रख दे ? उन्हीं के एक साथी के सिर पर स्वार्थ चढ़ बैठा। उस देशद्रोही का नाम था कट्टू। जहाँ टीपू वेलु और मुथु भारत की स्वतन्त्रता का उच्च स्वप्न देख रहे थे उस कृतघ्न के मन में संकीर्ण एषणा, शिवगंगा का राज्य पाने की जागी। फिर क्या था, उसने अँग्रेजों की ओर रुख किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वह मद्रास के कलक्टर जेक्सन के पास पहुँचा। अँग्रेजों की यही नीति रही थी कि भारतवासियों को एक होकर सोचने नहीं दिया जाय। स्वार्थ की खातिर एक को दूसरे से लड़ा दिया जाय। कट्टू ने जब जेक्सन से महत्वपूर्ण सूचना देकर शिवगंगा स्टेट का अधिपति बनने की अभिलाषा प्रकट की तो उसने तुरन्त ही उसे आश्वासन भी दे दिया, साथ ही वेलु के अपहरण की योजना भी बना डाली ताकि शिवगंगा का अधिपति टीपू सुल्तान के साथ कन्धे से से कन्धा मिलाकर अंग्रेजों की अभिलाषाओं को धूल में मिलाने का उद्योग करे, उसके पहले ही उसे अकेले घेर लिया। वेलु का अपहरण उसी दुश्चक्र की एक कड़ी था।

कट्टू की आँखों में तो शिवगंगा स्टेट का अधिपति होने के सपने तैर रहे थे। उसने अपने स्वामी के साथ विश्वासघात किया। एक दिन अवसर देखकर कम्पनी के कुछ छद्मवेश धारी सैनिकों की सहायता से उसने वेलु को बन्दी बना लिया। उसके हाथ-पाँव बाँधकर घोड़े पर डालकर वह चल दिया जेक्सन के पास। वेलु अपने इस सहयोगी की इस गद्दारी पर बहुत दु:खी थी और क्रुद्ध भी पर क्या करती, हाथ पाँव जो बँधे थे उसे इस दुष्टता का मजा चखाती भी तो कैसे ? किन्तु विवशता को विवशता मान लेना भी तो कमजोरी ही होती है और वेलु उस कमजोरी से मुक्त थी। उसने दाँतों से अपने हाथों के बन्धन काट डाले। फिर क्या था उसी की कमर में लटकती कटार निकालकर विद्युत की सीत्वरा से कट्टू के सीने में उतार दी। और उसे देशद्रोह की सजा मिल गई और कट्टू के साथी भाग निकले।

उन भागे हुए सैनिकों ने मद्रास के कलक्टर जेक्सन को कट्टू के मारे जाने और वेलु के पराक्रम की कहानी सुनी तो उसने तुरन्त ही कुछ करने का निश्चय कर लिया। उसने अपने उच्च अधिकारी से सैन्य सहायता की माँग की। बाजोर नामक सेनापति के नायकत्व में उसे इच्छित सहायता मिल गयी। वह अचानक शिवगंगा स्टेट पर चढ़ बैठा।

अपनी सेना से पाँच गुनी सेना के साथ अचानक चढ़ आयी अँग्रेजी सेना का मुकाबला मुथु बटुकनाथ ने बड़ी वीरता से किया। युद्ध में सैनिकों के संख्या बल और शस्त्रास्त्र बल की नहीं मनोबल की विजय होती है। मुथु बटुकनाथ ने इस युद्ध में जिस अपूर्व वीरता और साहस का परिचय दिया, उससे उसके सैनिकों के हौंसले आकाश छूने लगे। किन्तु इस युद्ध में वह वीरगति को प्राप्त हुआ। वेलु भी उसके साथ ही मदनि वेश में लड़ रही थी। राजा के मरते ही सैनिकों में भगदड़ मच गयी। पर तभी वेलु ने सबको ललकारा और स्वयं दूने वेग से युद्ध करने लगी। उसे देखकर सैनिकों ने भी पुन: अंग्रेजों के दाँत खट्टे करना आरम्भ कर दिया। देखते ही देखते जेक्सन और बांजोर जैसे कुशल सेनापतियों को भाग खड़ा होना पड़ा और उनकी करारी हार हुई। अँग्रेज सेना अपने से पाँचवा हिस्सा देशी रियासती सैनिकों से हारकर भाग खड़ी हुई।

वास्तव में यह विजय मुथु बटुकनाथ और वेलु नाचियार के पराक्रम के कारण मिली थी। स्वयं वेलु इस युद्ध में इतनी घायल हो गई थी कि उसके बचने की कोई आशा नहीं थी। अँग्रेजों के भाग खड़े होने तक तो वह जाने किस जोश से लड़ती रही पर बाद में वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। उपचारादि की व्यवस्था हुई पर सब व्यर्थ उसकी हालत बिगड़ती ही चली गयी।

अँग्रेजों द्वारा अचानक अपने सहयोगी और मित्र पर आक्रमण किये जाने की सूचना जब टीपू सुल्तान को मुथु के सन्देशवाहक से मिली तो वह अपनी धर्म बहिन और उसके पति की सहायता करने के लिये बड़ी-सी सेना लेकर युद्ध क्षेत्र में आ पहुँचा । पर यहाँ पहुँचकर उसने जो दृश्य देखा वह अदुभुत था। मुथु के शव पर सिर रखे उसकी बहिन की निष्प्राण काया तो पड़ी थी। पर उसमें निहित आत्म-ज्योति परमात्मतत्व में विलीन हो चुकी थी।

एक बार इतिहास फिर अपने को दोहरा रहा था। कर्मवती की सहायता को आया हुमायूँ भी अपनी बहिन को नहीं पा सका था और न टीपू ही। अन्तर इतना सा कि वेलु विजयश्री वरण करने के अनन्तर मरी थी। टीपू की आँखों में आँसू आ गये, अपने सहयोगियों की मृत्यु के कारण नहीं, वेलु की वीरता और स्वतन्त्रता भावना के लिये किये गये प्राणोत्सर्ग को देखकर। साथ ही बहिन की ममता खो जाने की वेदना भी कम न थी। क्रान्ति का स्वरूप भले ही बदला हो पर उसकी आवश्यकता तो आज भी उतनी ही है, जितनी उस समय थी। वीरांगना वेलु की आत्मा हमें भी वह शक्ति प्रदान करे कि हम अपने उस धर्म को निभा सकें। जब-जब भी समाज में और राष्ट्र में दु:स्थितियाँ, विपन्नताएँ और विकृतियाँ पैदा होती हैं, जन-साधारण का जीना दूभर हो जाता है, तब क्रान्ति की आवश्यकता होती है। वर्तमान की परिस्थितियाँ भी कुछ ऐसी ही हैं, जिनमें की वेलु नाचियार जैसी वीरांगना की आवश्यकता है।

सूझ-बूझ की जादूगरनी—उमाबाई

कैप्टन ब्राउनी के नेतृत्व में एक अँग्रेजी सेना नागपुर पहुँची और बलपूर्वक महल में प्रवेश करके राजा अप्पासाहब तथा उनके दोनों मन्त्रियों को कैद कर लिया। कोई आरोप न मिलता देख अँग्रेजों की ओर से कहा गया कि इन्होंने परसोजी की हत्या की है।

अप्पा को कैद करने के बाद कड़ी सैनिक निगरानी रखी गई। उन्हें नागपुर से इलाहाबाद ले जाने की योजना बनाई गई। नागपुर राज्य जैसे अनाथ हो गया हो। कोई ऐसा साहस दिखाने को तैयार न था कि अप्पा को अँग्रेजी सेना के चंगुल से निकाला जा सके।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसे आपत्तिकाल में अप्पा की १९ वर्षीय पत्नी उमाबाई ने जो कार्य कर दिखाया, उस पर सहज रूप में विश्वास नहीं होता, अन्य स्त्रियों की तरह उसने आँसू बहाना नहीं सीखा था। उसमें धैर्य धारण करने की शक्ति थी और थी सूझ-बूझ, जिसके द्वारा अंग्रेजों को ऐसा जलील किया कि वह भी वर्षों तक भारतीय-नारी की साहसपूर्ण-गाथा को भूले न होंगे।

रानी उमा ने अपने विश्वस्त सेवक गंगासिंह के नेतृत्व में १६ सैनिकों की एक टुकड़ी तैयार की और अँग्रेजी सैनिकों की, वर्दी पहनाकर आवश्यकतानुसार मार्ग व्यय तथा अन्य खर्च देकर विदा किया। वह सैन्य टुकड़ी जबलपुर की ओर चल दी, उसे पता लगा कि ब्राउनी जबलपुर के मार्ग से अप्पा को इलाहाबाद ले जाया जा रहा है। फिर क्या था उस पहाड़ी और जंगली मार्ग से पता लगाते हुये सैन्य टुकड़ी आगे बढ़ने लगी। उस क्षेत्र में गोंड लोगों का राज्य था।

इधर ब्राउनी भी तेज गति से एक के बाद दूसरे क्षेत्र छोड़ने के लिये अपने सैनिकों को आज्ञा देता जा रहा था, उसे इलाहाबाद पहुँचने की जल्दी थी। मार्ग में अप्पाजी के रामटेक में दर्शन करने की इच्छा व्यक्त की पर ब्राउनी ने सुनी, अनसुनी कर दी।

५ मई, १८१८ को गंगासिंह के नेतृत्व वाली सैन्य टुकड़ी ने पुजढार नामक स्थान पर ब्राउनी को जा घेरा। उसे उन सैनिकों पर संदेह हो गया। ब्राउनी ने तुरन्त आत्मसमर्पण की आज्ञा दी, पर वे सब पूरी तैयारी से आये थे। गंगासिंह ने आगे बढ़कर कैप्टन को एक बन्द लिफाफा दिया, जो चलते समय रानी उमा के द्वारा उसे मिला था। लिफाफा खोला गया, उसमें इलाहाबाद के दुर्ग रक्षक कैप्टिन डेसम्यूर के हस्ताक्षर थे और लिखा था कि १६ सिपाही बड़े विश्वसनीय हैं, इन्हें पहरेदारों में स्थान दिया जा सकता है।

एक साधारण से पत्र ने गंगासिंह को कैप्टन का विश्वसनीय सैनिक बना दिया। दो-तीन दिन बाद उन सैनिकों को अप्पाजी से मिलने की सुविधा दे दी गई। अँग्रेज सैनिकों को खास पहरे से हटाकर इन सोलह सैनिकों को लगा दिया गया, वे अप्पाजी के साथ-साथ चलने लगे।

१२ मई को जबलपुर से तीस मील दूर राचूर नामक स्थान पर रात्रि को सभी ने विश्राम किया। सोते समय उनके पलंग के आस-पास छः सैनिकों का पहरा रहता था। रात को उन सोलह सैनिकों में से ६ सैनिकों ने पहरा दिया, अन्य दस सैनिक व्यवस्था में लगे रहे। रात के तीन बजे उनकी ड्यूटी समाप्त होने को थी, इससे पूर्व ही घोड़ों का प्रबन्ध करके अप्पाजी को दस सैनिकों के साथ उस कैद से छुड़ाकर भगा दिया गया। जो ६ सैनिक शेष रह गये थे, उन्होंने ३ बजे अपनी ड्यूटी अन्य अँग्रेज सैनिकों को सौंप दी और सुबह होने से पहले वे भी मौका देखकर नौ दो ग्यारह हो गये।

सबेरा हुआ। रोज की तरह अप्पा सोकर न उठे तो एक सैनिक उन्हें जगाने गया। चादर हटाकर देखा तो वहाँ अप्पा न थे वरन् दो लम्बे तकिये, चादर में ढके रखे हुये थे। ब्राउनी को जैसे ही यह पता चला, उसमें इस समाचार को सुनने की शक्ति न रह गई थी, वह तो चक्कर खाकर जमीन में गिर पड़ा था। अब क्या होगा ? उसके मुँह से निकला।

चारों दिशाओं में घोड़े दौड़ाये गये। दो दिन तक निरन्तर खोज-बीन की गई। जिस ओर जाकर पूछा जाता कुछ भी पता न लगता। पूरब दिशा में घुड़सवार सैनिक तलाश करने गये तो राहगीरों ने कहा 'शायद पश्चिम की ओर गये हों, इधर तो कोई वर्दीधारी सैनिक नहीं दिखाई दिया।' इस तरह ब्राउनी के सैनिकों को खूब चकमा दिया गया और रानी उमा की योजना पूर्ण रूप से सफल हुई।

अँग्रेज सरकार के द्वारा दस लाख रुपये का इनाम घोषित किया। जो कोई अप्पा साहब को जीवित या मृत स्थिति में लायेगा उसे इस इनाम के अतिरिक्त दस हजार रुपये वार्षिक की जागीर भी भेंट की जायेगी। पर किसी ने लालच में पड़कर अप्पा साहब का न पता बताया और न पकड़वाने में रुचि ली।

ब्राउनी को असावधानी के आरोप में कैद कर लिया गया। डेसम्यूर को भी उस पत्र की पूछताछ के लिये न्यायालय के सम्मुख उपस्थित होना पड़ा। उसने यह स्वीकार किया कि यह हस्ताक्षर मेरे हैं। पर आश्चर्य यह है कि इस पत्र को न मैंने लिखा है और न हस्ताक्षर किये हैं। फिर हस्ताक्षर आ कहाँ से गये ? इतना कहते ही ब्राउनी को मुक्त कर दिया गया।

विस्मृत वीरांगना—रानी तलाश कुँवर

१८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने वाली ऐसी कितनी ही वीरांगनाएँ हैं, जिनका ऐतिहासिक उल्लेख अप्राप्य ही है। वैसी ही वीरांगनाओं में से एक उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में स्थित अमोढ़ा राज्य के राजा जंगबहादुर की रानी तलाश कुँवर हैं, जिन्होंने १८५७ की क्रान्ति में भाग लिया था।

पति की मृत्यु के पश्चात् राज्य-व्यवस्था का सम्पूर्ण कार्यभार रानी के कन्धों पर आ गया। पति के साथ सती होने की अपनी उत्कट अभिलाषा को उन्होंने प्रजा एवं राज्य-व्यवस्था की बलिवेदी पर बलिदान कर दी।

रानी ने अपने सम्पूर्ण मनोयोग, योग्यता एवं दक्षता से राज्य की व्यवस्था प्रारम्भ कर दी। कुछ ही समय में रानी ने एक कुशल संरक्षिका के रूप में प्रसिद्धि पा ली और अपने राज्य को दुगुना बढ़ा लिया। प्रजा की सुख-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समृद्धि में वृद्धि होने लगी, राज्य का वैभव बढ़ने लगा। रानी तलाश कुँवर ने अपनी व्यवहार कुशलता द्वारा शीघ्र ही प्रजा का स्नेह और विश्वास पा लिया।

राज्य संचालन करते कुछ ही समय बीता और गोंडा के महाराजा देवीबक्ससिंह ने उन्हें स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय सहयोग देने का सन्देश भेजा। रानी ने इसे अपना धर्म समझकर उन्हें पूर्ण सहयोग देने का वचन दिया।

अपने वचनानुसार तलाश कुँवर ने एक छोटी-सी सैनिक टुकड़ी राजा देवीबक्ससिंह के पास भेज दी। इस सैनिक टुकड़ी के सैनिकों ने शत्रुओं से जमकर लोहा लिया।

इन सैनिकों ने अँग्रजों के एक जहाज, जिसमें सैनिक तथा युद्ध सामग्री भरी पड़ी थी उस पर जबरदस्त आक्रमण कर दिया। घमासान युद्ध हुआ। रानी के सैनिकों की विजय हुई। अधिकांश अँग्रेज सैनिक खेत रहे। जो बचे थे उनकी अनुनय-विनय पर रानी के सैनिकों को दया आ गई, उन्होंने उन्हें छोड़ दिया।

बस फिर क्या था ? प्रतिशोध की ज्वाला दावानल बनकर भड़क उठी। अँग्रेज-शासकों द्वारा गाँव के गाँव नष्ट कर दिये गये। घर राख हो गये। सर्वत्र हाहाकार छा गया। बूढ़े-बच्चे आदि जो भागने में असमर्थ थे, वे गोली का शिकार बन गये।

प्रजा पर संकट आया देख रानी तलाशकुँवर ने अपने मुट्ठी भर सैनिकों को साथ ले वीर-वेश धारण कर उनकी रक्षा के लिये अँग्रेजों से जमकर लोहा लिया। उन्हें जहाँ एक ओर स्वाधीनता और मातृभूमि के लिये हँसते-हँसते फाँसी का फन्दा चूमने वाले बलिदानी योद्धा मिले, वहाँ दूसरी ओर पैसे के लालच में रानी तथा देशवासियों के प्रति गद्दारी करने वाले भी निकले।

रानी तलाश कुँवर की छोटी-सी देशभक्तों की अप्रशिक्षित और देशी हथियारों वाली सेना ने अंग्रेजों की आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित, प्रशिक्षित सैनिकों की सेना के छक्के छुड़ा दिये। उन्हें पीछे हटना पड़ा और मानना पड़ा कि कोमलांगी कही जाने वाली नारी समय पड़ने पर रणचण्डी भी बन सकती है।

दूसरी बार उन्होंने कुछ देशद्रोहियों की अपनी ओर मिलाकर रानी को पराजित करने में सफलता पायी। पर वह जीते-जी पराजित नहीं हुई। उसके खेत रहने पर ही अमोढ़ा के छोटे-से दुर्ग पर 'यूनीयन जेक' लहरा सका। रानी तलाश कुँवर अपनी इस वीरता और साहस की स्मृति के रूप में आज भी जीवित है।

भारतीय नारीरत्नों यथा रानी लक्ष्मीबाई, दुर्गावती, चाँदबीबी, महारानी कर्मवती, वीरांगना रत्ना आदि ने शौर्य और साहस के क्षेत्र में अपना वर्चस्व स्थापित करके यह सिद्ध कर दिया है कि अन्याय और अनीति से संघर्ष करने का जब समय आता है, तो नारियाँ भी बिजलियाँ बनकर समरांगण में जूझ सकती हैं। रानी तलाश कुँवर भी उसी परम्परा की रक्षिका थी। इस परम्परा को आज भी पुनर्जीवित रखने की आवश्यकता है। आज भी नारी को छुई-मुई समझकर उसकी ओर आँख उठाकर देखने वालों को उसका वैसा ही रूप नजर आना चाहिए, जैसा रानी तलाश कुँवर ने विदेशी शासकों को दिखाया था।

नारी शक्ति की मूर्तिमान प्रतिमा— राजकुमारी रत्ना

मरुप्रदेश के महाराज रत्नसिंह के सदा खिले रहने वाले मुख मंडल पर आज चिन्ता की रेखाएँ पड़ी हुई थीं। वे किसी गहन-चिंतन में निमग्न थे। कोई समस्या ग्रन्थि बनकर उनके मस्तिष्क को चुनौती दे रही थी। उन्हें अपने भरे-पूरे जीवन में एक अभाव खटक रहा था। जब वे समस्या को सुलझा नहीं सके तो उनके मुँह से दीर्घ नि:श्वास निकल गयी।

उसी समय उनकी एकमात्र पुत्री रत्ना ने उनके कक्ष में प्रवेश किया। अपने पिता के मुख से निकला यह दीर्घ नि:श्वास और चिंतित मुख देखकर रत्ना गहरे सोच में पड़ गयी। उसने अपने पिता से पूछा "महाराज ! किस सोच में डूबे हैं आप ? क्या मुझे उस समस्या का सुनने का अधिकार नहीं है ? जो आपको व्यथित किए हुए है।"

"कुछ नहीं राजकुमारी"

"नहीं महाराज कुछ तो है, आपको मेरी सौगंध जो आप मुझसे कुछ छिपाएँ।"

"हमारे गुप्तचरों ने सूचना दी है कि हमारे राज्य पर दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का सेनापति मलिक काफूर आक्रमण करने वाला है। वह जोधपुर के महाराज को परास्त कर जैसलमेर राज्य की ओर बढ़ रहा है, उसके पास विशाल वाहिनी है। आमने-सामने युद्ध करने की स्थिति में हमारी पराजय निश्चित है। यहाँ जैसलमेर दुर्ग में रहकर लोहा लें तो खाद्यानों की समस्या सामने आएगी। अभी हमारा अन्न-भण्डार बहुत कम है और फिर इस विकट मरु-प्रदेश में अन्न का एक दाना उपलब्ध होना भी कठिन है। तुरन्त ही तो ऐसी कोई व्यवस्था नहीं हो सकती। दुर्ग में जो सामग्री है, वह सौ सैनिकों के लिए ही पर्याप्त है। यदि सारे सैनिकों को दुर्ग में रखा जाय तो हम भूख से मर जायेंगे क्योंकि मलिक काफूर आसानी से घेरा नहीं उठायेगा।"

रत्ना अपने पिता की समस्या सुनकर कुछ क्षण गहन चिंतन में डूबी रही फिर बोली—"तो इसमें चिन्ता करने की क्या बात है ? आप अपने सैनिकों के साथ दुर्ग से बाहर निकल जाइए और दुर्ग अपने किसी नायक को सौंप दीजिए। दुर्ग की रक्षा के लिए सौ सैनिक छोड़ दीजिए।"

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

''यही मेरी भी योजना है किन्तु वह नायक मुझे नजर नहीं आ रहा है, जो दुर्ग की रक्षा करने की वीरता व बुद्धिमत्ता दोनों रखता हो। काश ! मेरे कोई पुत्र होता।''

''मैं दुर्ग की रक्षा करूँगी महाराज ! आपकी रत्ना आपके पुत्र की तरह ही दुर्ग की रक्षा करेगी। उसकी धमनियों में भी वही राजपूती रक्त बह रहा है, जो राजपूत वीरांगनाओं को समरांगण में शत्रु से लोहा लेने के लिए और समय पड़ने पर हँसते-हँसते जौहर करने के लिए प्रेरित करता है। आप ही तो कहते थे मेरी रत्ना बेटी नहीं बेटा है। पालन-पोषण भी तो आपने उसी ढंग से किया है। क्या आप मुझ पर विश्वास नहीं करते ?''

''करता हूँ बेटी ! सचमुच मैं तुम्हारा उचित मूल्यांकन नहीं कर सका था। तुमने मेरी परेशानी समाप्त कर दी है। मैं कल ही दुर्ग से प्रस्थान करता हूँ।''

दूसरे दिन सूरज की पहली किरण के साथ ही रणबाँकुरे राजपूतों की वाहिनी जैसलमेर दुर्ग से निकलकर मरु प्रदेश की ओर बढ़ रही थी। रत्ना ने वीर वेश में सजे अपने पिता के मस्तक पर चन्दन का टीका लगाकर आरती उतारी और उन्हें युद्ध क्षेत्र में जाने के लिए विदा किया। महाराज रत्नसिंह आज बड़े प्रसन्न दीख रहे थे। अपनी पुत्री की नारी सुलभ ममता, सरसता और पुरुष सुलभ दृढ़ता, बुद्धिमत्ता ने उनके पुत्राभाव के गड्ढे को पूर दिया था। उनके जाते ही रत्ना ने दुर्ग की रक्षा का भार अपने कंधों पर सम्हाल लिया।

इस घटना को एक सप्ताह भी नहीं बीता था कि जैसलमेर के पूर्वाकाश में धूल का एक बवंडर उठता दिखाई पड़ा। मरुभूमि में अंधियाँ उठती ही रहती हैं, इसलिए दुर्गवासियों ने उस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। यह धूल मलिक काफूर के नेतृत्व में जैसलमेर विजय के लिए आ रही सेना के कारण उड़ रही थी। सेना ने आते ही दुर्ग को घेर लिया। जैसलमेर का विकट दुर्ग यों ही उनके अधिकार में आ जाना संभव नहीं था। अत: मलिक काफूर को विवश हो घेरा डालना पड़ा। वह उसे जीतने का उद्योग करने लगा।

मलिक काफूर अपनी वीरता व कूटनीति के कारण सारे भारत में प्रसिद्ध हो गया था। साधारण से गुलाम से सेनापति वह अपने उन्हीं गुणों के कारण बना था। उसने कई राजाओं को हराया था। मदोन्मत काफूर ने अपने सैनिकों को दुर्ग पर प्रबल आक्रमण करने की आज्ञा दी। किन्तु रत्ना भी कम नहीं थी। वह पुरुष वेश में कमर में तलवार बाँधे, हाथ में धनुष बाण लिए, पीठ पर तरकश बाँधे किले में घूमती रहती। अपने थोड़े-से सैनिकों से ही ऐसी मोर्चाबंन्दी की थी कि टिड्डियों की तरह उमड़कर आने वाले शत्रु दल को हर बार पीछे हटना पड़ता।

एक दिन शत्रु के सैनिक किले की दीवारों पर चढ़ने लगे। ऊपर से बरसने वाले तीरों की परवाह न करते हुए वे ऊपर ही चढ़े चले आ रहे थे। उसी समय ऊपर से गर्म तेल, पत्थर, मिर्च से घोला हुआ खौलता पानी गिराया गया। फलत: वे अपने इस दु:साहस का अच्छा फल पा गए।

मलिक काफूर को घेरा डाले कई दिन हो गए। उसे दुर्ग विजय के कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे। उसकी हर चाल का उत्तर रत्ना इस कुशलता व तत्परता से देती थी कि वह अपना मुँह लेकर रह जाता। उसने देखा कि उसे यों युद्ध करते हुए तो दुर्ग पर अधिकार करने में कई वर्ष लग जायेंगे। तब उसने दूसरा रास्ता अपनाया। वह कूटनीतिक चाल खेलने पर उतर आया।

साँझ-धीरे-धीरे मरुभूमि पर उतर रही थी। सूरज किसी अज्ञात प्रदेश की यात्रा पर जा रहा था, मरु धरती को छोड़कर। ऐसे ही समय एक मनुष्य की छाया दुर्ग की ओर अग्रसर हुई और दीवार पर चढ़ने लगी। रत्ना बुर्ज पर खड़ी उसके क्रिया कलाप देख रही थी। उसने कड़क कर पूछा—''कौन है ?''

''आपके पिता का संदेशवाहक।''

''क्या संदेश लाए हो, बोलो।''

''नहीं, वहीं आकर बताऊँगा।''

''बताओ, नहीं तो प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।''

उसकी यह चेतावनी अनसुनी करके वह छाया दीवार पर चढ़ती ही रही। रत्ना ने ऊपर से निशाना साधकर तीर छोड़ा। वह धरती पर गिर पड़ा और मर गया। सबने देखा, वह शत्रु का सैनिक था।

मलिक काफूर ने यह द्वार रक्षक को घूस देकर अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया। उसे काफी सोना दिया गया। द्वार रक्षक पूरी तरह ईमानदार व कर्त्तव्यनिष्ठ था। उसने राजकुमारी के सामने जाकर सभी बातें कह दीं—''मलिक काफूर ने यह सोना मुझे इसलिए दिया है कि मैं रात्रि में द्वार खोल दूँ, जिससे काफूर अपने चुने हुए सैनिकों के साथ दुर्ग में प्रवेश कर सके।''

राजकुमारी ने उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा की सराहना करते हुए कहा कि तुम उस समय द्वार खोल देना और मलिक काफूर और उसके चुने हुए सैनिकों को भीतर लेकर फिर द्वार बन्द कर देना और गुप्तद्वार से मेरे पास आ जाना। उसने ठीक वैसा ही किया जैसा राजकुमारी ने उसे आदेश दिया था। मलिक काफूर व उसके सैनिकों को भीतर लेकर उसने द्वार बन्द करके ताला लगा दिया और अंधेरे में ऐसा लोप हुआ कि उन्हें कुछ पता ही न चला। इस प्रकार काफूर अपने सैनिकों सहित चूहेदानी में फँसकर रह गया।

जैसलमेर का घेरा डाले महीनों बीत गए और किला हाथ नहीं आया वरन् उसका चतुर और वीर सेनापति एक लड़की से मात खाकर बंदी हो गया है-यह समाचार जब अलाउद्दीन खिलजी तक पहुँचा तो उसने जैसलमेर विजय करने का इरादा ही छोड़ दिया। जिस देश में ऐसी वीर और बुद्धिमती कन्याएँ हों, उसे जीत पाना उसके वश में नहीं था। अत: उसने महाराज रत्नसिंह के पास दूत भेजकर संधि कर ली।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मलिक काफूर जो एक गुलाम था, उसे स्नेह, सहानुभूति व मानवतापूर्ण व्यवहार कहीं नहीं मिला था। इसी कारण वह क्रूर हो गया था। उसने रत्ला का दुर्ग की रक्षा करते समय जो रूप देखा था, उससे कुछ भिन्न स्वरूप अपने बंदी काल में देखा। बन्दी होते हुए भी उसके व उसके सैनिकों के साथ राजकुमारी ने सहृदयतापूर्ण व्यवहार किया था। उन्हें वही भोजन दिया जाता था, जो दुर्ग के अन्य सैनिकों को दिया जाता था जब घेरा लम्बा होने लगा, दुर्ग की खाद्य सामग्री कम पड़ने लगी तो राजकुमारी ने उन्हें अपने सैनिकों की अपेक्षा अधिक ही भोजन दिया। उसके इस मानवीय व्यवहार से वह बहुत प्रभावित हुआ था। राजकुमारी ने उसके शरीर को ही बन्दी बनाकर पराजित नहीं किया था। वरन् उसके मन को भी पराजित किया था। तलवारों की भाषा जानने वाले इस सेनापति ने यहाँ आकर यह भी देखा कि मनुष्यता में, मानवीय व्यवहार व भावनाओं में भी एक शक्ति होती है, जो शस्त्रों से कई गुना श्रेष्ठ होती है।

रत्ला ने दुर्ग की रक्षा के साथ-साथ अपने दुर्ग में रहने वालों को भी परिवार के कर्त्ता-धर्ता की तरह पाला था। अन्न की कमी होने पर उसने दुर्ग में सबसे कम अन्न खाना आरम्भ कर दिया था। दुर्गवासियों के लाख आग्रह करने पर भी उसने उस निश्चित मात्रा में किंचित मात्र भी वृद्धि नहीं की थी। इस कमी करने से उसका शरीर कुछ दुर्बल हो गया था किन्तु चेहरे की कांति व आत्मिक तेज और भी बढ़ गया था।

एक दिन उसने दुर्ग की प्राचीर पर खड़े-खड़े देखा कि सुल्तान की सेना अपने डेरे-डंडे उखाड़कर जा रही है। सुदूर मरु प्रदेश से भगवा ध्वज फहराती हुई राजपूत सेना दुर्ग की ओर बढ़ी चली आ रही है। निकट आने पर देखा महाराजा रत्नसिंह सबसे आगे चपल अश्व पर बैठे गर्व से सीना फुलाए जैसलमेर लौट रहे थे। रत्ला के हर्ष का पारावार न रहा, उसने जो वचन अपने पिता को दिया था, वह पूरा हो चुका था।

दुर्ग में स्वागतसूचक तुरही बज उठी। दुर्ग के द्वार खोल दिए गए। रत्ला ने श्रद्धावनत हो पिता को प्रणाम किया तो उन्होंने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा—"सचमुच तूने देश की लाज रख ली। तू बेटी भी है और बेटा भी। आज मेरा मस्तक गर्व से ऊँचा हो गया। लोग व्यर्थ ही पुत्र के लिए आग्रह रखते हैं, जबकि पुत्री पुत्र से किसी कदर कम नहीं होती।

वीरांगना वीरमती— जिसने देशद्रोही पति को स्वीकार नहीं किया

भारतीय नारियाँ अपने आदर्श, चरित्र, सतीत्व-रक्षा और वीरता के लिए संसारभर में प्रसिद्ध रही हैं। जब भी देश को आवश्यकता पड़ी है, उन्होंने हँसते-हँसते अपने प्राण गँवाए हैं। अग्नि-शिखाओं का आलिंगन कर जौहर-व्रत का पालन किया है। देश और जाति की रक्षा के लिए न केवल अपने को ही उत्सर्ग किया है वरन् पतियों को भी उनके कर्त्तव्य पालन के लिए पूरी-पूरी प्रेरणाएँ दी हैं।

वीरांगना वीरमती ऐसी ही आदर्श नारियों में से हैं, जिन्होंने देश-द्रोही पति के साथ जीवित रहना कलंक समझा। देश-धर्म की कीमत उन्होंने अपने पति के जीवन से भी बढ़कर समझी। फलस्वरूप अपनी ही नंगी तलवार द्वारा उसका प्राणांत कर आप भी स्वर्ग सिधार गईं।

चौदहवीं सदी में राजा रामदेव अपनी वीरता और प्रजापालन के लिए प्रख्यात थे। देवगिरि उनकी राजधानी थी। उन्हीं दिनों दिल्ली में अलाउद्दीनखिलजी राज्य करता था। उसकी क्रूरता से सारा देश परिचित हो चुका था। हिन्दुओं को नष्ट करने, उनकी बहू-बेटियों की इज्जत लूटने और हिन्दूराजाओं का राज्य हड़प लेने के लिए वह बेतरह तुला हुआ था। इसी उद्देश्य को लेकर उसने चित्तौड़ पर चढ़ाई की थी। चित्तौड़ तो उसे मिल गया पर जिसके लिए इतनी खून खराबी करनी पड़ी वह पद्मिनी उसे न मिल सकी। अपने बचाव का कोई उपाय न देखकर रानी ने जौहरव्रत करके अग्नि माँ की शरण ले ली थी। साथ में बारह हजार क्षत्राणियाँ और भी जल मरी थीं।

वहाँ से निराश अलाउद्दीन की आँखें देवगिरि पर जा टिकीं। उस छोटे से राज्य ने खिलजी को साफ-साफ बता दिया था कि देवगिरि अपनी स्वाधीनता अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए खून को पानी की तरह बहा सकता है। राजा अपने वीर मराठा सेनापति पर बड़ा भरोसा रखता था। सचमुच ही उसके रहते यवनों की दाल वहाँ न गल सकी। परन्तु दुर्भाग्य कि वह एक अन्य लड़ाई में अपना वीरव्रत पालन करते हुए स्वर्ग सिधार गया।

राजा को अपने इस सुयोग्य और बहादुर सेनापति के निधन का अपार दुःख हुआ। वैसा निष्ठावान, देशभक्त और विश्वासपात्र सेनापति मिलना अब कठिन था फिर भी उस स्थान की पूर्ति तो किसी तरह करनी ही थी। अतएव उसके ही जामता श्रीकृष्णराव को सेनापति नियुक्त किया गया। कृष्णराव का विवाह मृत सेनापति की उस एकलौती पुत्री से हुआ था, जिसका नाम वीरमती था।

वीरमती जब बहुत छोटी थी, तभी उसकी माँ स्वर्ग सिधार गई थी। पिता बराबर लड़ाई के कार्यों में ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यस्त रहा करते थे। अतएव उसका पालन-पोषण राजमहल में ही हुआ था। माँ का प्यार तो न मिल सका था परन्तु राजा-रानी इसे अपने ही बच्चों की तरह मानते थे। एक राजकुमारी की भाँति उसका पालन-पोषण हुआ था। राजा के परामर्श से ही पिता ने इसका विवाह कृष्णराव के साथ सम्पन्न किया था।

कृष्णराव में यों तो वे सभी गुण विद्यमान थे, जो एक सेनापति में होने चाहिए। वह बहादुर था, इसमें कोई संदेह नहीं। वह कुशल लड़ाकू था, यह भी बात सत्य थी। परन्तु सबसे बड़ा जो दुर्गुण था वह यह कि वह विश्वासपात्र न था। लोभ, मोह और प्रलोभनों के अवसरों पर वह क्या से क्या कर बैठेगा-यह कुछ भी कहना कठिन था। इससे ही वीरमती दु:खित रहा करती थी। कारण कि स्वयं उसके अपने स्वभाव के यह विपरीत था। पिता के सभी गुण उसमें विद्यमान थे। वह उनके ही जैसी निश्छल, साहसी, पराक्रमी और निर्भीक थी। स्त्री होते हुए भी वह सच्चे शूरवीरों जैसा हृदय रखती थी।

अवसर देखकर अलाउद्दीन ने देवगिरि पर चढ़ाई कर दी। राजा के नेतृत्व में सैनिक उसका मुँह तोड़ उत्तर देने के लिए चल पड़े। उनके संगठन, शक्ति, वीरता और रण-कौशल के कारण अलाउद्दीन को हार खानी पड़ी और वह भाग खड़ा हुआ। भागते हुए उसे इस बात का आभास मिल गया था कि कृष्णराव से उसको पूरी-पूरी मदद मिल सकती है, बशर्ते जीत जाने पर उसे राज्य में कोई ऊँचा पद प्रदान किया जावे। खिलजी ने इस बात को मन ही मन स्वीकार कर लिया था।

कुछ ही दिनों बाद बड़ी तैयारी के साथ अलाउद्दीन ने पुन: देवगिरि पर चढ़ाई कर दी। पहले की अपेक्षा सेना भी इस बार दूनी थी। राजा आश्चर्य में पड़ गया। परन्तु वीर सैनिकों ने पुन: उसी बहादुरी से लड़ने का आश्वासन दिया। इसी बीच कृष्णराव ने एक चाल चली। उसने कहा—"यह अच्छा होगा कि पहले शत्रु सेना की ताकत और रसद का पता लगा लिया जाय। इससे अपने मोर्चा बनाने और शत्रु पर फतह पाने में सुविधा होगी।" प्रश्न खड़ा हुआ, आखिर यह कठिन काम करे कौन ? शत्रु सेना में घुसकर उसका पता लगाना, प्राणों की बाजी लगाना था। परन्तु कृष्णराव ने कहा—"वह स्वयं ही इस कठिन कार्य को करेगा।"

कृष्णराव की बहादुरी और साहस के लिए सभी लोग शाबाशी देने लगे। किसी को इस बात का भान न हुआ कि वह अपनी फौज का सारा रहस्य शत्रु को देने वाला है। परन्तु प्रखर बुद्धि और पति का स्वभाव जानने वाली वीरांगना वीरमती को शक हो गया। उसे दाल में काला दिखाई देने लगा। उसने पति से कहा—"दुश्मन की सेना असंख्य है। मैं यह नहीं चाहती कि जीते जी आप दुश्मन के हाथों पड़ जाएँ। अतएव आप इस तरह अकेले न जावें।"

कृष्णराव तो एक दूसरा ही स्वप्न देख रहा था। उसने कहा—"प्रिये ! आप किसी बात का तनिक भी भय न मानें, मैं सकुशल ही वापस लौट आऊँगा।" यह कहते हुए वह चल दिया।

वीर सरदार की वीर पुत्री वीरमती बहुत ही सोच में पड़ गई। उसे सोच इस बात का न था कि उसका पति वापस लौट सकेगा वरन् सोच तो इस बात का था कि निश्चय ही अपने राजा और उसकी सैन्य शक्ति का पूरा का पूरा भेद वह दुश्मन को खोल देगा। भेद खुल जाने, रहस्य पा जाने के पश्चात् शत्रु तदनुसार अपना मोर्चा बनावेगा, अपनी तैयारियाँ करेगा। फलस्वरूप देवगिरि पर फतह पाने में उसे अधिक कठिनाई न होगी। देवगिरि का राज्य तो जावेगा ही, साथ ही प्रजा भी तबाह होगी।

वीर रमणी को चैन न पड़ा। तुरन्त ही उसने पुरुष वेश धारण किया, तलवार उठाई और घोड़े पर सवार होकर चुपके-चुपके पति के पीछे चल पड़ी। कुछ ही दूर गई होगी कि चलते-चलते उसका घोड़ा रुक गया। उसने देखा कि एक झाड़ी में छिपकर अलाउद्दीन का सेनापति कृष्णराव से भेद ले रहा है। अब तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। उस वीर सिंहनी के सम्पूर्ण शरीर में रोष की बिजली दौड़ गई। उसे निर्णय करते देर न लगी कि इस समय क्या करना चाहिए? सोचा, "ऐसे पति की अपेक्षा राष्ट्र के गौरव, मर्यादा और प्रतिष्ठा की कीमत बहुत अधिक है।"

उसने बिना एक क्षण रुके तेजी से अपना घोड़ा आगे बढ़ाया। कृष्णराव के ऊपर गरजते हुए सिंह की तरह टूट पड़ी और उसके कलेजे में देखते ही देखते तलवार भोंक दी। यह भयावह दृश्य देखकर यवन सेनापति चीखकर भाग गया। कृष्णराव ने कराहते हुए उसकी तरफ देखा और दीन स्वर में बोला—"प्रिये वीरमती !" तुरन्त ही उत्तर मिला, "तुम्हारी प्रिया, तुम्हारी लोभ-लिप्सा है। ऐसे नीच पापी की प्रिया मैं नहीं।" उसने आगे कहा—"पति के बिना अब संसार भी सूना ही है। अस्तु, मुझे भी अब वही करना चाहिए जो पति के मरने के बाद पत्नी का धर्म-कर्त्तव्य होता है।" दूसरे ही क्षण उसने अपने कलेजे में भी तलवार भोंक ली और पति के साथ ही सदा के लिए अनंत की गोद में सो गई।

जिस देश में ऐसी-ऐसी नारी रत्न हों, उस देश का मस्तक कीर्ति, गौरव और यश से सदैव उन्नत बना रह सकता है। वहाँ पहुँचकर दुश्मन को भी परास्त ही होना पड़ेगा।

स्वातन्त्र्य यज्ञ की महिला अध्वर्यु—सुवर्ण

'मातृभूमि की रक्षा के लिए असह्य वेदना और दारुण कष्टों को झेलना केवल पुरुष के अधिकार की ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बात नहीं, अपितु भारतीय नारी भी इसकी पूरी क्षमता रखती है'—ऐसा प्रफुल्ल वाला बख्शी का कथन है लोग सोचते हैं, साहसपूर्ण युद्धादि कार्य पुरुष ही कर सकते हैं, नारियाँ तो कोमलांगी होती हैं। परन्तु भारतीय नारियों ने सदैव से ही पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर हर क्षेत्र में यहाँ तक कि रण क्षेत्र में भी अपना कौशल दिखलाया है। यह बात दूसरी है कि सामन्तवादी युग में उन्हें 'अवला', 'दासी' आदि बना दिया तथा उसके मन को भी वैसी ही भावनाओं से ग्रसित कर दिया।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में पुरुषों के साथ-साथ अनेकानेक वीरांगनाओं ने भी अपने प्राणों का मोह-छोड़ कर जौहर दिखलाया था। परन्तु खेद का विषय है कि आज इन वीर-बालाओं को हम विस्मृति के गर्त में डाले बैठे हैं। देश की स्वतन्त्रता में इन्होंने जो योगदान दिया वह विस्मृत नहीं किया जा सकता।

बाल विधवा सुवर्ण ने जब इण्टरमीडिएट की परीक्षा पास की तो लोगों ने उसे नौकरी करने की सलाह दी। उनका कथन था—'तुम्हारे लिए इतना ही पढ़ना काफी है। अपने भरण-पोषण के लिए आजीविका तो कमा ही सकती हो। अब आगे पढ़कर क्या करोगी ?' परन्तु सुवर्ण ने स्पष्टत: कह दिया कि मैं नौकरी के लिए नहीं अपितु ज्ञान प्राप्ति के लिए, बुद्धि-विकास के लिए पढ़ रही हूँ।

वे वाराणासी विश्वविद्यालय की छात्रा बन गयीं। कालिज में अध्ययन करते हुए ही उनका परिचय एक क्रान्तिकारी से हुआ। सुवर्ण ने सोचा कि आजाद देश को शिक्षित युवक-युवतियों की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए अपना जीवन समर्पित करने वाले देशभक्तों की है। अतएव उन्होंने अध्ययन के साथ-साथ क्रान्तिकारी-दल में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया।

वहाँ उन्होंने अनुभव किया कि स्वयं रचनात्मक कार्यक्रमों को करना तो उचित है ही साथ ही क्रान्तिकारियों की सहायता करना, भोजनादि की सुविधाएँ उपलब्ध कराना भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। क्रान्तिकारी अपनी जान हथेली पर रखकर घूमा करते थे। अँग्रेज पुलिस हाथ धोकर उन्हें पकड़ने के लिए घूमती थी तथा उनके घरों पर छापा मारा करती थी। ऐसी स्थिति में नारियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निवाहती थीं। वे आवश्यक सामग्री पुलिस की नजरों से बचाकर फरार क्रान्तिकारियों तक पहुँचाया करती थीं। महिला होने के कारण पुलिस का उन पर सन्देह भी कम ही होता था।

सुवर्ण ने अपने सारे आभूषण बेचकर धन एकत्रित किया। उससे वे क्रान्तिकारियों की दवा, भोजन तथा कारतूस आदि का प्रबन्ध करती थीं। महीनो-महीनों वह उन्हें अपने घर में छिपाये रखतीं। जब वे भूमिगत हो जाते थे तो कुशलतापूर्वक हथियार तथा आवश्यक कागज उन तक पहुँचाती थीं।

सुवर्ण क्रान्तिकारी दल में 'दीदी' के नाम से प्रसिद्ध थीं। वे अँग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध लड़ने को अपने दल को प्रेरित करती रहती थीं। काकोरी केस के बाद वाराणसी के आतातायी सी. आई. डी. पर दिन-दहाड़े गोली चलवाने की प्रेरणा भी सुवर्ण ने ही दी थी। यद्यपि वे स्वयं ही सी. आई. डी. को मारना चाहती थीं तथापि उनके दल के सदस्यों को यह स्वीकार न हुआ क्योंकि सुवर्ण दीदी पर ही क्रान्तिकारियों की व्यवस्था का पूरा-पूरा भार था।

सरदार भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद के साथी के रूप में सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। यदि उन्हें इनका सहयोग न मिलता तो कार्य कठिन हो जाता। ये दोनों क्रान्तिकारी नारियाँ दल का दायाँ-बायाँ हाथ बनी हुई थीं।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगतसिंह की गौरव-गाथा के पीछे सुशीला देवी का अथक् परिश्रम छिपा पड़ा है। ये भगतसिंह पर भाई के समान स्नेह रखती थीं तथा उनके कार्यों में सहयोग देने को सदैव तत्पर रहती थीं। भगतसिंह के मुकदमे के लिये धन की आवश्यकता थी परन्तु क्रान्तिकारी दल के पास इतना पैसा कहाँ से आया ? उसे तो स्वयं ही धन की आवश्यकता थी। ऐसे संकट के समय में सुशीला जी गली-गली में घूमतीं, लोगों को समझातीं तथा चन्दा एकत्रित करती थीं। सुभाष बाबू भी इनसे प्रभावित होकर इन्हें सहयोग देने लगे।

अँग्रेज सरकार को इनकी गतिविधियों का सुराग मिला। फलत: उनकी गिरफ्तारी का वारंट निकल गया। वे चार साल तक पुलिस की आँखों में धूल झोंककर फरार रहीं। इस काल में भी वे अपने दल को महत्त्वपूर्ण सहयोग देती रहीं। अपने प्राणों की भी चिन्ता न कर दल के कार्यों में लगी रहीं। ये छद्म वेष में चार बार जेल जाकर भगतसिंह से मिलीं क्योंकि चन्द्रशेखर आजाद भगतसिंह को जेल से छुड़ाना चाहते थे और भगतसिंह को इसके लिए तैयार करने का तथा योजना समझाने का भार उन्होंने दीदी पर ही रखा था।

इन्हें गिरफ्तार करने के लिए दो हजार रुपयों का इनाम घोषित किया गया तथा जगह-जगह इनके फोटो चिपकवा दिये गये। परन्तु फिर भी ये निर्भय होकर कार्य करतीं। कभी भगतसिंह को छुड़ाने में परामर्श लेने के लिए दुर्गा भाभी के पास जातीं, तो कभी गाँधी जी के पास दौड़ लगातीं। 'इन्दुमती' का छद्म नाम रखकर इन्होंने सत्याग्रह में भाग लिया तथा इसी प्रसंग में दो बार जेल भी काटी।

दुर्गादेवी प्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगवतीचरण बोहरा की पत्नी थीं। इनकी माँ शैशव काल में ही भगवान के यहाँ चली गयीं थी। बालिका दुर्गा नित्य प्रति ही देशवासियों पर अँग्रेजों के अत्याचार देखती और सिहर उठती। बचपन में वह कहा करती थीं—'मैं भी बड़ी होकर महारानी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुर्गावती की भाँति बहादुर बनूँगी। अँग्रेजों से लड़ूँगी।' पिता सुनते तो हँस देते। बच्चे बचपन में अनेकों प्रकार की बातें किया करते हैं, आखिर वे सब ही तो सच नहीं हुआ करतीं।

अध्ययन काल में ही ये भगवतीचरण के सम्पर्क में आयीं, उनकी विचारधारा तथा साहसपूर्ण कार्य-कलाप से अत्यधिक प्रभावित हुयीं। इन्होंने अनुभव किया कि भगवतीचरण से विवाह करके उनके साथ-साथ ये देश रक्षा में समर्पित हो जीवन का सदुपयोग कर सकतीं।

पति, पुत्र, धन तथा जीवन—सर्वस्व ही क्रान्ति पर न्यौछावर करके ये आगे बढ़ती रहीं। अपनी एकमात्र पुत्री को विप्लव पथ पर जाते देखकर पिता नाराज थे परन्तु इन्होंने कर्त्तव्य को महत्ता दी।

दुर्गादेवी का एक-एक क्षण अत्यन्त व्यस्त रहता था। एक ओर तो उनके ऊपर पति तथा बच्चों की जिम्मेदारी थी—दूसरी ओर पार्टी के कार्य तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की रोज-रोज की दौड़-धूप। तथापि इन्होंने कभी भी हिम्मत न हारी तथा पर्दे के पीछे रहकर पति तथा दल को पूरा-पूरा सहयोग देती रहीं।

स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर किया गया शान्ति घोष तथा सुनीता चौधरी का बलिदान भी भुलाया नहीं जा सकता। भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को जब फाँसी की सजा हुई तो समस्त देश में विद्रोह की लहर फैल गयी। इन दोनों के मन में भी अँग्रेज अधिकारियों के प्रति विद्रोह की भावना प्रबल हो गयी ! शान्ति तथा सुनीता ने परस्पर कुछ विचार-विमर्श किया और पिटरा के जिलाधीश स्टीवेन्स से भेंट करने निकल पड़ीं।

यह घटना १४ दिसम्बर, १९३१ की है। पिटरा के जिलाधीश के सम्मुख १५-१६ वर्ष की दो किशोरियाँ खड़ी तैराकी की प्रतियोगिता में भाग लेने की अनुमति माँग रहीं थीं। जिलाधीश ने कुछ कहने को मुख खोला ही था कि धाँय-धाँय करके दोनों की पिस्तौलें गूँज उठीं और स्टीवेन्स धराशायी हो गये।

तुरन्त ही इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिस को इस घटना के पीछे बहुत बड़े षड्यन्त्र का आभास हुआ। वह हर प्रकार से प्रयास करके हार गयी परन्तु कुछ भी मालूम न कर सकी। 'स्पेशल ट्रिब्यूनल' के सम्मुख इन्होंने स्टीवेन्स पर गोली चलाने की बात तो स्वीकार की परन्तु अन्य कुछ बताने से स्पष्ट इन्कार कर दिया।

कुछ समय तक इन्हें जेल में रखा गया। इन किशोरियों की साहसपूर्ण गाथा को सुनकर अनेक लोग मिलने आते। वे पूछते—'आपने जिलाधीश की हत्या क्यों की' ये उत्तर देतीं—'हमें जिलाधीश से व्यक्तिगत रूप से कोई विद्वेष नहीं, अपितु वह जिस अँग्रेज सरकार का प्रतिनिधित्व करता है—उससे हमें द्वेष है। जनता में फैली विद्रोहभावना की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए गोली चलाई थी।'

शान्ति घोष तथा सुनीता चौधरी दोनों पर मुकदमा चला तथा २७ फरवरी, १९३२ को काले पानी की सजा सुना दी गयी। इनके त्याग से जनता को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला तथा क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ तीव्रतम हो उठीं।

मातृभूमि की बलिवेदी पर वीणादास का समर्पण भी चिरस्मरणीय रहेगा। उन दिनों देश के कोने-कोने में अँग्रेजी शिक्षा पद्धति के प्रति तीव्र आक्रोश छाया हुआ था। यह माँग की जा रही थी कि हमें स्वाभिमान जाग्रत करने वाली, चरित्र उन्नत बनाने वाली शिक्षा दी जाये—संस्कृति से घृणा कराने वाली नहीं। परन्तु सरकार के कान पर जूँ भी न रेंगती थी। उसका उद्देश्य तो 'काले साहब' तैयार करना था, जो उसकी हाँ में हाँ मिलाते रहें।

वीणा ने अपनी साथिनों से कहा "हमें कोई ऐसा साहसपूर्ण कार्य करना चाहिये, जिससे सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया जा सके।" उन्हीं दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालय में समावर्तन-संस्कार होने वाला था तथा मुख्य अतिथि के रूप में बंगाल के गवर्नर सर स्टेनलेजेक्शन आने वाले थे। वीणा ने अपनी साथिनों से एक गुप्त योजना पर परामर्श किया तो उन्होंने कह दिया—'तुम भूल जाती हो कि लड़की हो। यह सब तुम कैसे करोगी ? पकड़ी जाओगी तो बहुत बुरी गति होगी। न बाबा, हम इसमें सहयोग नहीं दे सकेंगे।' अन्ततः वीणा ने अकेले ही इस कार्य को करने की ठान ली।

वीणा भी अन्य सहपाठियों के साथ बी. ए. की डिग्री लेने गयी थी। विश्वविद्यालय के भव्य-मण्डप में गवर्नर साहब का भाषण हो रहा था। तभी वीणा ने उन पर गोली चला दी। सभा में भगदड़ मच गयी। जब वस्तु स्थिति का पता लगा तो उसे गिरफ्तार कर लिया गया। साथियों ने जब पूछा—'तुमने जान-बूझकर फाँसी का फन्दा अपने गले में क्यों डाला' तो वीणा बोली—'मैं ऐसा कार्य करना चाहती थी, जिससे कि अँग्रेजी सरकार का ध्यान इस ओर भी आकर्षित हो। यदि आप लोग त्याग-बलिदान की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए शिक्षा पद्धति में परिवर्तन करा देश के युवकों में भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर सकें तो मेरा बलिदान सार्थक हो जायेगा।'

कल्पनादत्त चटगाँव की निवासिनी थीं। वे एक कर्मठ क्रान्तिकारिणी थीं। ये उन लोगों में से थी जो यह विश्वास करते थे कि यदि देश को अहिंसा से सफलता न मिले तो हिंसात्मक मार्ग अपनाना चाहिए। अँग्रेजी सरकार के विरुद्ध लोहा लेने के लिये इन्होंने लोगों में अदम्य प्रेरणा भरी थी। आये दिन इनके नेतृत्व में कोई न कोई विस्फोट होता ही रहता था। अन्ततः ये पकड़ी गयीं और आजन्म काले पानी की सजा दी गई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.३० यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

क्रान्तिकारियों के दल सीमित साधन युक्त थे, परन्तु पारुल मुखर्जी ने एक साधन सम्पन्न विशाल संगठन बनाने की आवश्यकता अनुभव की। वे कहती थीं कि अँग्रेजों की विशाल सेना का सामना करने के लिये हमें ऐसा करना ही होगा। ये गली-गली घूमकर हजारों लोगों में प्रेरणा भरतीं तथा उन्हें क्रान्तिकारी दल में भर्ती करतीं। अँग्रेजी सरकार इनके कार्यों से बहुत अधिक चिन्तित हुई और इनके नाम का वारण्ट निकलवा दिया। बहुत समय तक ये भूमिगत रहीं। अन्त में २० फरवरी, १९३६ को टीटागढ़ के एक केन्द्र से पकड़ ली गयीं। इन्हें पाँच वर्ष की जेल की सजा दी गयी। जेल में भी ये चुपचाप न बैठी रहीं। वहाँ पर इन्होंने अपराधियों और डाकुओं को अपनी विचारधारा से प्रभावित किया तथा क्रान्तिकारी बनने की प्रेरणा दी। इनमें से अनेक क्रान्तिकारी बनकर निकले।

लीलावती नाग ने अनुभव किया कि सरकार की दृष्टि से छिप-छिपकर अधिक कार्य नहीं किया जा सकता और न ही जनसाधारण को इस प्रकार देश की स्वतन्त्रता के लिए कटिबद्ध किया जा सकता है। उन्होंने स्त्रियों में जागरण लेने के लिए 'दीवाली-संघ' नाम की एक संस्था चलायी। एक पत्रिका भी छपी, जिसमें क्रान्तिकारियों के सन्देश छपते थे। देश को क्रान्तिकारियों के साहसपूर्ण कार्यों से परिचित कराने वाली तथा जनता में उत्साह भरने वाली इस पत्रिका ने जन-मन के उद्बोधन में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। फलत: २० दिसम्बर, १९३१ में ये गिरफ्तार कर ली गयीं और १९३८ में नजरबन्दी से रिहा की गयीं।

लीला कमाल महाराष्ट्र की रहने वाली थीं। ये क्रान्तिकारी-दल की अत्यन्त उत्साही सदस्या थीं। एक बार दल को धन की परम आवश्यकता हुई। तब ग्रिण्डले बैंक को लूटने की योजना बनाई गयी। इन्होंने इसमें अत्यधिक योगदान दिया फलत: ये काफी समय तक जेल में रहीं।

श्रीमती ननीबाला क्रान्तिकारी आन्दोलन का चमकता हुआ सितारा थी। क्रान्तिकारियों को आश्रय देने, उनके अस्त्र-शस्त्र छिपाने तथा पुलिस की आँखों में धूल झोंकने में ये अत्यन्त पटु थीं। इन्हें गिरफ्तार करने का आदेश सरकार ने दे दिया परन्तु इनका पता लगाने में पुलिस को गली-गली की धूलि फाँकनी पड़ी।

१९१७ में ननीबाला देवी फरार हो गयीं। छद्मवेश धारण करके ये पेशावर पहुँच गयीं। परन्तु दुर्भाग्यवश कुछ देशद्रोहियों ने पुलिस को सूचना दे दी और ये गिरफ्तार कर ली गयीं। पहले तो इन्हें बनारस जेल में और बाद में कलकत्ता जेल में और सी. आई. डी. पुलिस दफ्तर इलिशियम में रखा गया। यहाँ पर इन्हें अनेक दारुण यातनाएँ दी गयीं, जिससे कि ये दल की सारी गुप्त बातें तथा योजनाएँ बता दें। परन्तु ननीबाला ने तो मानो अपने होठ सीं लिये थे। मुँह से 'उफ' भी न करते हुए भी ये सब कुछ चुपचाप सहती रहीं। परन्तु एक दिन सी. आई. डी. पुलिस के स्पेशल सुपरिण्टेण्डेण्ट मि. गोल्डि से अपनी संस्कृति और देशवासियों की लांछना सुनकर इससे न रहा गया और उसके मुँह पर कई थप्पड़ जड़ दिये। परिणामत: और भी कठोर सजा मिली तथा १९१९ के रेगुलेशन तीन के अनुसार राजबन्दी बनाकर प्रेसीडेन्सी जेल में रखा गया।

जेल के कठोर वातावरण में भी ये प्रसन्न रहती थीं। एक बार भीषण कठिनाइयों में रहते हुए भी इन्होंने अपने को लिखा था—मैं अच्छी तरह हूँ और आप लोग मेरी चिन्ता न करें—सिर्फ बच्चों की देखभाल करें। उन्हें तकलीफ न हो।

माजगाँव स्टेशन पर एक भयंकर अग्निकाण्ड हो गया। स्टेशन की सारी व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो गई। पुलिस ने उषा मेहता को दोषी ठहराया तथा उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उनके ऊपर अनेक अभियोग लगाये तथा बीस वर्षों से भी अधिक समय के लिए कारावास का दण्ड दिया गया, इतनी कठोर सजा सुनते समय भी ये तनिक भी विचलित न हुईं अपितु भारत-माता के लिए कुछ कर सकने के सन्तोष की आभा से मुख दैदीप्यमान था। जेल में रहकर भी ये गुप्तरूप से देशहित के लिए कुछ न कुछ करती रहीं।

उज्ज्वला मजूमदार को चौदहवर्ष के कठोर कारावास की सजा मिली। घटना इस प्रकार घटी कि १९३४ में ८ मई को दार्जिलिंग में गवर्नर एण्डरसन को गोली चलाकर मारने का प्रयास किया गया। उज्जवला को इसी सन्देह में गिरफ्तार किया गया था। देश रक्षा की दीवानी इस नारी ने यह प्रतिज्ञा भी ली थी कि जब तक मातृभूमि के हाथ-पैर परतन्त्रता की बेड़ियों से जकड़े रहेंगे—ये विवाह न करेंगी। अपनी प्रतिज्ञा को इन्होंने पूर्णत: निबाहा तथा भारत स्वतन्त्र होने के बाद १९४८ में विवाह किया।

सम्पूर्ण भारतवर्ष में जाग्रति की लहर तथा देश के विभिन्न स्थानों में होने वाली विस्फोटक स्थितियों को देखकर अँग्रेज सरकार ने अस्त्र रखने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। परन्तु बी. ए. की छात्रा ज्योतिकण ने इस आदेश का उल्लंघन किया। उन्होंने कालिज-छात्रावास अपने निवास स्थल में कई पिस्तौलें रख छोड़ी थीं आवश्यकतानुसार उनका उपयोग किया करती थीं। सन्देह होने पर इनकी तलाशी ली गयी, पिस्तौल मिली तथा चार साल की सजा मिली।

आज हमारा देश स्वतन्त्र है तथा इस प्रकार के विप्लवों की अब आवश्यकता नहीं तथापि युग की पुकार है कि भारतीय नारियाँ सांसारिक क्रान्ति का शंखनाद करें। नीति की स्थापना के लिए अनीति का उन्मूलन भी आवश्यक है। उसमें पुरुषों की तरह ही नारी का भी योगदान रहना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निस्पृह देश-सेविका—कुमारी वीणादास

कुमारी वीणा दास ने न्याय के लिये नियुक्त विशेष न्यायाधिकरण के सम्मुख बयान देते हुए कहा—

"मैं स्वीकार करती हूँ कि कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर मैंने अध्यक्षता करने वाले बंगाल के अँग्रेज गवर्नर सर स्टेनलेजेक्सन पर गोली चलाई। किन्तु वे अपनी पत्नी तथा बच्चों के भाग्य से बच गये। इस काण्ड के लिये मैं अकेली उत्तरदायी हूँ। किसी दूसरे का इससे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कोई सम्बन्ध नहीं है।"

"मैंने अपनी मातृभूमि भारत के प्रेम से प्रेरित होकर गोली चलाई। अपनी उस मातृभूमि के प्रेम से प्रेरित होकर जिसको अँग्रेजी-शासन द्वारा बुरी तरह से पीड़ित, शोषित, अपमानित तथा तिरस्कृत किया जा रहा है। गवर्नर की हत्या का यह प्रयास मैंने देश हित की दृष्टि से किया। यद्यपि यह कार्य मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति के सर्वथा प्रतिकूल था तथापि मैं अपने मनोवेग को नहीं रोक सकी और हिंसा की दिशा में प्रवृत्त हो गई। किन्तु मुझे प्रसन्नता है कि भगवान ने सरस्टेनलेजैवसन के जीवन की रक्षा कर ली और श्रीमती जैक्सन तथा उनके बच्चे दुर्भाग्य की विभीषिका में पड़ने से बच गये। इसके लिये मैं ईश्वर को धन्यवाद देती हूँ।"

"गवर्नर की हत्या के प्रयास में मेरा उद्देश्य निरंकुश अँग्रेजी-शासन के विरुद्ध प्रभावशाली ढंग से अपने हार्दिक-क्षोभ को प्रकट कर बलिदान हो जाना था।"

"गवर्नर को गोली मारने का निश्चय करने से पूर्व मेरे मन में विचारों का द्वन्द्व चलता रहता—कभी यह विचार प्रबल हो जाता था कि क्यों न महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक संघर्ष में भाग लेकर देश की स्वाधीनता के लिये तिल-तिल मिटकर बलिदान दे दिया जाये—तो कभी यह विचार जोर पकड़ जाता था कि इस दासता पाश में ज्यादा दिन जकड़े रहकर और अन्यायपूर्ण अत्याचार को सहते हुये ज्यादा दिन जीवित रहने से क्या लाभ ? क्यों न आतंकपूर्ण कोई काम सम्पादित कर धधककर एक ही बार में भस्म हो जाऊँ, जिससे अँग्रेज सरकार यह जान जाये कि भारत में शस्त्र-बल द्वारा स्वाधीनता ले सकने का तेज भी विद्यमान है। गवर्नर को मारकर फाँसी लग जाने पर शायद भारत अपनी एक पुत्री और इंग्लैण्ड अपने एक पुत्र के बलिदान से अपने-अपने पक्ष में दासता के पाप और अन्यायपूर्ण अत्याचार के प्रति सजग हो उठें। यह परस्पर विरोधी विचार मेरे मस्तिष्क को महीनों मथते रहे। अन्त में आतंकवादी विचारों की ही विजय हुई और आत्मा द्वारा हिंसा-काण्ड के विरोध में आवाज देते रहने पर भी मैं अपने तरुण-मनोवेग को रोक न सकी और गवर्नर की हत्या का निश्चय कर लिया। मुझे फाँसी हो—इसकी मुझे प्रसन्नता होगी—आज भी मैं सोचती हूँ कि इस प्रकार विदेशी सरकार के आतंक तथा अन्याय के नीचे पिसते हुये भारत में अधिक दिन जीने से क्या लाभ ?"

कु. वीणादास का अप्रतिहत गति से चलने वाला प्रभावोत्पादक वक्तव्य समाप्त हुआ और न्यायाधिकरण के तीनों न्यायाधीशों की अवाक् तन्मयता भंग हुई और उन्होंने एक मत से यह निर्णय देकर वीणादास को १३ वर्ष का कठोर कारावास दे दिया कि कु. वीणा दास ने यद्यपि बंगाल के गवर्नर सर स्टेनले जैक्सन की हत्या का प्रयास किया है, तथापि उन्होंने यह अपराध अन्यायपूर्ण किसी निजी द्वेष अथवा स्वार्थ के वशीभूत होकर नहीं किया। इसके पीछे ज्वलन्त राष्ट्र-भक्ति की प्रेरणा थी। साथ ही उनके वक्तव्य से स्पष्ट आभास मिलता है कि उन्हें अपने इस अनुचित कृत्य पर ग्लानि और गवर्नर महोदय के बच जाने पर हर्ष तथा प्रसन्नता है, जिससे सिद्ध होता है कि वे भावुकता के प्रवाह में बह गईं। वैसे उनकी स्वाभाविक प्रकृति अपराध के अनुकूल नहीं है। फाँसी के बजाय कठोर कारावास का दण्ड ही अपराध के प्रायश्चित के लिये पर्याप्त होगा।" कुमारी वीणा दास जेल पहुँचा दी गईं।

कुमारी वीणादास का जन्म १९११ में चटगाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम वेणीमाधवसेन है। वे एक प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री तथा ब्रह्म-समाजी नेता थे। सुयोग्य पिता की सुयोग्य पुत्री वीणा ने १९२६ में हाईस्कूल पास कर कालिज में प्रवेश किया और अपने भावनापूर्ण विचारों से शीघ्र ही कालिज में आकर्षक स्थान बना लिया। कु. वीणादास धार्मिक विचार की लड़की थी और महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक संघर्ष में विश्वास रखती थीं किन्तु अपनी बड़ी बहन कल्याणी के प्रभाव में आकर आतंकवाद की ओर झुक गई थीं। उनकी बहन कल्याणी बंगाल विद्यार्थी संघ की उपाध्यक्षा तथा मंत्राणी थीं। यह संस्था हिंसात्मक संघर्ष में विश्वास रखती थी और आतंकवादी मार्ग से स्वाधीनता के लक्ष्य पर पहुँचने में सुविधा एवं सरलता समझती थीं।

मायावी साइमनकमीशन ने जहाँ एक ओर असहयोग आन्दोलन में तीव्र गति भर दी थी, वहाँ बंगाल के क्रान्तिकारी तरुण वर्ग में भी आतंकवादी आग को बुरी तरह भड़का दिया था। जिस समय महात्मा गाँधी ने अपनी इतिहास प्रसिद्ध डाँडी यात्रा आरम्भ की, उसी समय बंगाल के क्रान्तिकारी तरुणवर्ग ने चटगाँव का शस्त्रागार लूट लिया। सरकार इस काण्ड से बौखला उठी और उसने उसका बदला लेने के लिये चटगाँव की निरपराध जनता पर अत्याचार के पहाड़ तोड़ दिये। हजारों स्त्री, पुरुष, वृद्ध एवं बालक तोपों, गोलियों तथा संगीनों के शिकार बना दिये गये। गाँव के गाँव मनुष्यों तथा पशुओं के साथ जीवित जला दिये गये। लूट की आज्ञा से उन्मत्त गोरे सैनिकों ने न जाने कितनी बहू-बेटियों की लाज लूटकर उनका सर्वनाश कर डाला। इस भयानक दमन तथा अमानवीय अत्याचार के पीछे बंगाल के तत्कालीन गवर्नर सर स्टेनले जैक्सन का भारी दुर्भाव तथा षड्यन्त्र था। इसलिये बंगाल के आतंकवादी तत्त्वों ने उसको ही उस हत्या-काण्ड का प्रमुख हेतु समझा और उसकी हत्या कर दी जाने का प्रस्ताव पास किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.३२ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

अपनी जन्मभूमि चटगाँव की दुर्दशा तथा बड़ी बहन के प्रभाव से कुमारी वीणा का अबोध हृदय क्षोभ से तथा रोष से भर गया, जिसने उन्हें इस गुप्त मीटिंग में जाने के लिये प्रेरित किया, जो कि चटगाँव-काण्ड पर विचार तथा कर्त्तव्य निर्णय करने के लिये क्रान्तिकारियों द्वारा की गई थी। गवर्नर की हत्या का प्रस्ताव पास होते ही भावुक वीणा ने उसका सम्मान प्राप्त करने के लिये अपनी सेवायें अर्पित कीं, जो स्वीकार कर ली गईं।

कुमारी वीणा ने उस वर्ष अँग्रेजी मैं ऑनर्स के साथ बी. ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की थी और बी. टी. की तैयारी कर रही थीं। यद्यपि दल के अनेक हित-चिन्तकों ने कुमारी वीणा को वह भयानक काम अपने हाथ में न लेने और शिक्षा पूरी करने के लिये परामर्श दिया। किन्तु उसका दृढ़ संकल्प अतिशय आग्रह देखकर और यह कथन सुनकर कि आप लोग मातृ-भूमि की सेवा का यह स्वर्ण अवसर मुझे देना नहीं चाहते अथवा मेरी दृढ़ता तथा साहस पर सन्देह करते हैं, चुप हो गये।

कुमारी वीणा ने गवर्नर को मारने का अवसर निश्चित कर लिया। वह था कलकत्ता विश्व-विद्यालय का दीक्षान्त-समारोह, जिसमें कुलपति की हैसियत से सर स्टेनले जैक्सन को अध्यक्षता करने के लिये आना ही था और कुमारी वीणा को भी अपनी उपाधि लेने जाना ही था।

व्यग्र प्रतीक्षा के बाद आखिर ६ फरवरी, १९३२ का वह दिन आ ही गया। कलकत्ता विश्व-विद्यालय का सीनेट हाल दर्शकों, अतिथियों, प्रोफेसरों, डीनों, अधिकारियों एवं उपाधि प्राप्त छात्र, छात्राओं से खचाखच भर गया। उसमें एक कुमारी वीणा भी थी, जो बड़ी उत्सुकता तथा रोषपूर्वक गवर्नर के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। ठीक समय पर सर स्टेनलेजैक्सन आया और ज्यों ही स्वागत का उत्तर देकर अपनी कुरसी पर बैठा त्यों ही घाय के भयानक घोष के साथ कुमारी वीणा बी. ए. ऑनर्स की पिस्तौल गरज उठीं। किन्तु गवर्नर बच गया। ज्योंही वीणा का रिवाल्वर दुबारा सीधा हुआ और उसने चाहा कि फायर करें, त्योंही पास खड़े गवर्नर के एक सतर्क अंगरक्षक ने उसका हाथ पकड़ लिया। वीणा तत्काल पुलिस के हवाले कर दी गई।

जेल की एकान्त कोठरी में वीणा जब-तब सोचा करती थी, क्या उसका वह काम ठीक था ? क्या एक हत्या कर देने से उसका देश स्वतन्त्र हो जाता। यदि उसने वह काम न किया होता और अहिंसात्मक ढंग से स्वाधीनता-संग्राम में भाग लिया होता, तो वह यों आज अपना जीवन बेकार न खोती। अब तक न जाने देश की कितनी सेवा कर चुकी होती। आतंकवादी मार्ग अपनाने के बजाय यदि उसने सृजनात्मक कार्यक्रम अपनाये होते, तो वह स्वाधीनता की दिशा में अब तक न जाने कितना समाज का हित कर चुकी होती ? उसे हत्या करने का प्रयास करने का कलंक भी लगा और गवर्नर भी बच गया। मेरी इस असफलता का एक ही कारण था कि मैंने वह काम भावुकतावश अपनी आत्मा के विरुद्ध करना स्वीकार किया था। विवेक का संकेत और आत्मा की आवाज दबाकर जो काम किये जाते हैं, वे प्राय: असफल ही रहते हैं। कोई भी काम कितना ही महान तथा महत्त्वपूर्ण क्यों न दीखता हो, यदि उसमें व्यक्ति के विवेक तथा आत्मा की पूर्ण सहमति नहीं होती, वह उसके लिये पाप के समान ही होता है। मुझे अपनी आत्मा के विरुद्ध उस काम को नहीं करना चाहिये था। फिर भी मुझे न कोई पश्चाताप ही है और न आत्म ग्लानि। मैं प्रसन्न हूँ कि मेरी उस असफलता ने मेरी आत्मा को और अधिक सजग तथा विवेक को और अधिक प्रमाणिक बना दिया है।

कुछ समय बाद प्रान्तीय स्वराज के अधिकार मिल जाने पर गाँधीजी के प्रयास स्वरूप कुमारी वीणा को मुक्त कर दिया गया। मुक्ति के बाद से देश की स्वतन्त्रता तक वे महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक आन्दोलनों में भाग लेती रहीं और १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लेने के कारण पुन: जेल भेज दी गईं। अनन्तर १९४५ में कलकत्ता के महिला निर्वाचन क्षेत्र से जनता ने उन्हें बंगाल-विधान-सभा का सदस्य चुनकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। सन् १९४७ में जब भारत पूरी तरह से अँग्रेज-दासता से मुक्त हो गया, तब उन्होंने अपने क्रान्तिकारी सहयोगी प्रोफेसर जतीश भौषिक से विवाह कर अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी कर ली कि मैं पराधीन भारत में विवाह नहीं करूँगी। उसके बाद उन्होंने १९३२ की अपूर्ण बी. टी. शिक्षा को पूरा किया और कलकत्ते के एक बालिका विद्यालय में वाइस-प्रिंसिपल का पद स्वीकार कर शान्तिपूर्वक जीवनयापन करने लगीं। अन्य की भाँति उन्होंने न तो अपनी सेवाओं के लिये राष्ट्र से कुछ माँगा और न वर्षों तक पीड़ा सहन के लिये राष्ट्रीय सरकार से पेंशन चाही।

क्रान्ति की अग्रदूत—ये भारतीय वीरांगनाएँ

भारतवर्ष के स्वतन्त्रता संग्राम में अनेकानेक स्त्रियों ने अपना जीवन हँसते-हँसते मातृभूमि की बलिवेदी पर अर्पित कर दिया था। यह हमारे देश का गौरव रहा है कि प्राचीनकाल से ही इसमें ऐसे नारी-चरित्रों की अटूट शृंखला मिलती है, जिनकी उदात्तता और गौरव-गरिमा के सम्मुख मस्तक श्रद्धावनत हो जाता है। प्रस्तुत स्थल पर कतिपय ऐसी नारी-पात्रों की चर्चा की जाती है, जिन्होंने अपने सुख-स्वार्थ की परवाह न कर, बिना किसी लोकेषणा के सामाजिक तथा राजनैतिकक्रान्ति के लिए जीवन न्यौछावर कर दिया। यद्यपि आज हम इनके नाम पर गोष्ठियाँ नहीं करते, इनके चित्रों पर पुष्पमाला नहीं चढ़ाते—तथापि यशकामना से परे इन देवियों का त्याग और बलिदान सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्नीसवीं शताब्दी की सुप्रसिद्ध कवयित्री तरुदत्त ने अपने सशक्त काव्य द्वारा जनता को नूतन उद्‌बोधन दिया। उन्होंने अँग्रेजों तक कोटि-कोटि भारतीयों को यह स्वर पहुँचाया कि किसी देश पर इस प्रकार अपना आधिपत्य स्थापित करना अनुचित तथा अनैतिक है। इससे अँग्रेज तथा भारतीय दोनों को ही हानि होगी तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध कटुतम होते चले जायेंगे। अच्छा यही है कि वे भारतवर्ष को स्वतन्त्र करें तथा भारतीयों के साथ मित्रवत् व्यवहार करें। इंग्लैण्ड की जनता के समक्ष भी उन्होंने भारतीयों के पक्ष को रखा तथा 'भारत को स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए' इस मनोभूमि के निर्माण में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। अपनी चार वर्ष की विदेश-यात्रा के दौरान भी उन्होंने विभिन्न देशों के सम्मुख भारतीयों के स्वतन्त्र-अधिकार को अत्यन्त कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया।

कलकत्ता नगर में ४ मार्च, १८५६ को जन्मी यह प्रतिभाशालिनी कवयित्री २२ वर्ष की अल्पायु में ही ईश्वर के यहाँ चली गयीं, जब तक वे जीवित रहीं— अनेक लोगों में देश-प्रेम की भावना भरती रहीं।

समृद्ध-हिन्दू-परिवार में जन्मी रमाबाई अल्पायु में ही विधवा हो गयी थीं। उन्होंने कुलीन कही जाने वाली हिन्दू-नारियों और विशेषत: विधवा-स्त्रियों पर किये जाने वाले अत्याचारों का अनुभव किया तो उनका मन रो उठा। 'कुलीनता' के नाम पर स्त्रियों पर कठोर अत्याचार किये जाते थे। पर्दे के बन्धन में जकड़कर उनकी शारीरिक, मानसिकशक्ति तथा प्रतिभाएँ कुण्ठित बना दी गयी थीं। पशुओं को भी खुले मुँह स्वच्छन्द घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता होती है परन्तु हिन्दू नारियों को इतना भी अधिकार न था। उन दिनों छोटी-छोटी लड़कियों का विवाह कर दिया जाता था। अल्पायु में ही गृहस्थी का भार आ पड़ने से मासूम बालिकाओं का स्वास्थ्य अत्यन्त दुर्बल हो जाता था तथा असमय ही मातृत्व पद प्राप्त होने से अनेक की मृत्यु हो जाती थी। जब इच्छा होती थी पति, स्त्रियों को मारपीट कर घर से निकाल देते थे। समाज में न उनका कोई स्थान था, न कोई अधिकार। वे अत्यन्त पिछड़ी तथा अवनत दशा में थीं।

पद-दलित भारतीय नारी की सुप्त चेतना और स्वाभिमान जगाने के लिए रमाबाई ने अपना सम्पूर्ण जीवन ही लगा दिया। धर्म की आड़ में स्त्रियों पर जो विविध अत्याचार किये जाते थे, उन्होंने सर्वप्रथम उनके विरुद्ध ही झंडा गाड़ा। वे कहा करती थीं कि धर्म ग्रन्थों की रचना हमारे लिए होती है, न कि हमारा जन्म धर्म-ग्रन्थों के लिए। प्रत्येक धर्म और रीति-रिवाज प्राय: अनेक कारणों के परिणाम हुआ करते हैं। यह आवश्यक नहीं कि हजारों वर्षों से जो रीति-रिवाज चले आ रहे हैं, आज भी उनका वैसी स्थितियाँ न रहने पर, अनावश्यक रूप से पालन किया जाये। अभिप्राय यह है कि कोई भी धर्म या परम्परा अनन्त-काल के लिए पर्याप्त नहीं हो सकती। युग और काल के अनुरूप उसमें परिवर्तन आता ही है।

रमाबाई ने घर-घर घूमकर एक महिला-मण्डली बनायी तथा नारियों की सोई हुई चेतना को जाग्रत किया। वे पर्दा-प्रथा, बाल विवाह के दुष्परिणामों को स्त्रियों के सम्मुख रखतीं तथा इनका धीरे-धीरे बहिष्कार करने की प्रेरणा देती थीं। घर की बड़ी-बूढ़ियों को समझाने में उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा क्योंकि उनके वृद्ध मस्तिष्क पर जो संस्कार जम गये थे, उन्हें बदलना सहज न था। परन्तु रमाबाई अपने मान-अपमान की चिन्ता किये बिना उनके समीप जातीं और घण्टों उन्हें समझातीं। सतत् प्रयास से रस्सी भी पत्थर को घिस देती है फिर रमाबाई अपने प्रयास में सफल क्यों न होतीं ? इनके प्रयासों के परिणामस्वरूप स्त्रियों में चेतना की नयी लहर उठी और वे अपने अधिकारों को पहिचानने लगीं।

रमाबाई ने अनेक पुस्तकें भी लिखीं, जिनमें स्त्रियों की समस्याओं का तथा उन पर किये जाने वाले अत्याचारों का सजीव वर्णन था। इनकी पुस्तकों तथा विचारधाराओं का शिक्षित-वर्ग में अत्यन्त आदर हुआ तथा स्त्रियों की स्वतन्त्रता की देशव्यापी माँग उठने लगी। अनेक पुरुषों ने, जो कभी स्त्रियों को घर से बाहर निकलने देना भी अपना अपमान समझते थे, रमाबाई के इस पुनीत कार्य में सहयोग देने के लिए अपनी पत्नियों को प्रोत्साहन दिया।

महिलाओं की उन्नति के लिए श्रीमती रमाबाई ने प्रसिद्ध समाज सुधारक महर्षि कर्वे के साथ भी कार्य किया। इनकी अथक् लगन तथा क्रियाशीलता से वे अत्यन्त प्रभावित हुए। महर्षि के पास कार्य भार का आधिक्य था परन्तु इन्होंने कुशलता से समस्त भार सँम्हाल लिया और शीघ्र ही उनका दाहिना हाथ बन गयीं। परिणाम यह हुआ कि महर्षि कर्वे अकेले जितना कार्य कर सकते थे, दोनों ने मिलकर उससे चौगुना-सौगुना अधिक कार्य किया। अहमदाबाद और महाराष्ट्र में स्थापित संस्थाएँ आज भी इनके आदर्शों पर चलकर श्रद्धांजलि अर्पित कर रहीं हैं।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथटैगोर की भगिनी स्वर्णकुमारी देवी ने अपने ही ढंग से तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध क्रान्ति की। उन्होंने महिलाओं—विशेषत: विधवाओं तथा प्रौढ़ाओं की शिक्षा के लिए आश्रम की स्थापना की तथा उन्हें स्वावलम्बी बनने की शिक्षा दी। कुटीर-उद्योगों के साथ-साथ उनके मानसिक स्तर को उन्नत बनाने वाली शिक्षा भी दी जाती थी। इसी आश्रम में सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध व्यापक अभियान छेड़ने वाली अनेक सफल कार्य-कर्त्रियाँ भी तैयार की गयीं। जिन्होंने नारी जाति के उत्थान के लिए विविध प्रयास किये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.३४ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

सोफिया सोमजी ने भारतीय-नारियों में स्वतन्त्रता की चेतना जगायी तथा देश-रक्षा के लिए बढ़-चढ़कर बलिदान करने की प्रेरणा दी। बम्बई में इन्होंने 'बीमेन वालटियर कोर' का गठन किया तथा अनेक देशभक्त कार्य-कर्त्तियाँ तैयार की। इनके सफल नेतृत्व में स्त्रियों ने अनेक साहसपूर्ण कार्य किये, जिससे क्रान्तिकारियों को भी प्रेरणा मिली।

सोफिया सोम जी की महान सेवाओं के फलस्वरूप बम्बई की जनता इनसे सुपरिचित थी तथा अत्यन्त श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखती थी।

पुलिस ने इन्हें कई बार गिरफ्तार किया। घर पर छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर ये जेल जाती थीं। बालकों के विषय में प्रश्न पूछे जाने पर कहतीं "जिनकी माँ नहीं होती, उन बच्चों का भी तो लालन-पालन होता है। बालकों को परिवार के वृद्ध भी भली-भाँति पाल सकते हैं। स्त्रियों को घर-गृहस्थी की चिन्ता में ही न रहकर देश-रक्षा के कार्य में योगदान देना चाहिए।"

सोलह वर्ष तक गाँधी जी के निजी सचिव के रूप में काम करने वाली, आजन्म-ब्रह्मचारिणी, राजकुमारी अमृतकौर की सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी। इन्होंने दीन-दुःखियों की सेवा में ऐसी तत्परता दिखलायी कि अल्पकाल में ही अत्यन्त लोकप्रिय हो गयीं और जालन्धर नगरपालिका की सदस्य चुन ली गयीं। इन्हीं दिनों १९३४ में, आसाम में बाढ़ का प्रलयंकारी प्रकोप हुआ और गाँव के गाँव जल समाधि लेने लगे। लाखों आदमी काल-कवलित हो गये और लाखों बेघरबार होकर भूखे मरने लगे। परन्तु अँग्रेज सरकार को इस सब पर ध्यान देने की फुरसत भी कहाँ थी ?

देशवासियों पर आये इस भीषण-संकट को देखकर राजकुमारी चुपचाप न बैठ सकीं। उन्होंने दिन-रात स्थान-स्थान पर दौड़कर बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए अन्न-वस्त्र एकत्रित किये तथा जनता को सहायता कार्य करने के लिये प्रेरित किया। इनकी गोष्ठियों और भाषणों का परिणाम यह हुआ कि अनेक स्वयं-सेवक इस कार्य के लिए आगे आने लगे और देशव्यापी सहायता की लहर उठ खड़ी हुई।

नारी-समाज की दशा सुधारने के लिए अमृतकौर ने भगीरथी प्रयास किया। जब तक वे सेवाग्राम में रहीं, ग्रामीण महिलाओं को शिक्षित बनाने तथा उनका मानसिक स्तर ऊँचा उठाने का कार्य करती रहीं। ग्रामीण स्त्रियों में फैली हुई अनेक कुरीतियों, अन्ध-विश्वासों और रूढ़ियों को दूर करने का भी इन्होंने अथक् प्रयास किया। नारी सुधार के लिए राजकुमारी अमृतकौर ने अखिल-भारतीय महिला-परिषद् तथा महिला-शिक्षा-निधि की भी स्थापना की। तत्कालीन समाज में फैली हुई कुरीतियों बहुपत्नी प्रथा, अनमेल विवाह, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा आदि के विरुद्ध तीव्र अभियान चलाया। वस्तुतः समाज के पुनर्जागरण के लिए इन कार्यों को हाथ में लेना परमावश्यक था। जब तक किसी देश का आधा अंग नारी समाज उन्नत न होगी—उसकी प्रगति की आकांक्षाएँ स्वप्न-मात्र ही बनी रहेंगी। जाति और लिंग के नाम पर भेदभाव अनैतिक, अमानवीय और तर्क शून्य है। नारी जगत की समस्याओं को लेकर राजकुमारी जी ने 'टू वीमेन' तथा 'चैलेंज टू वीमेन' नामक दो पुस्तकें भी लिखीं, जो अत्यन्त लोकप्रिय हुयीं।

भारतवर्ष के स्वतन्त्रता-संग्राम में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। १९४२ के आन्दोलन में अन्य नेताओं के साथ ये भी जेल गयीं। देश स्वतन्त्र होने पर अमृतकौर को भारत के प्रथम-मन्त्रिमण्डल में स्वास्थ्य-मन्त्री का कार्य भार दिया गया। इस पद पर रहते हुए इन्होंने अत्यन्त कुशलतापूर्वक कार्य किया। १९४८ में ये इण्डियन-रेडक्रास-सोसायटी की अध्यक्ष चुनी गयीं। ४९ में कुष्ठ निवारक-संघ तथा अ. भा. यक्ष्मा-संगठन की भी अध्यक्षा चुनी गयीं तथा अपनी महान सेवाओं से जनता को लाभान्वित करती रहीं। आपके महान सेवा कार्यों के कारण १९५७ में 'लीग ऑफ रेडक्रास सोसाइटी' ने 'काउन्ट वर्ना डोटे' स्वर्ण-पदक से सम्मानित किया।

६ फरवरी, १९६५ को यह त्यागशीला समाजसेविका सदैव-सदैव के लिए हमें छोड़कर चली गयी। इनकी मृत्यु के समय तत्कालीन उपराष्ट्रपति डा. जाकिरहुसैन ने कहा था—'संस्कृति, शिष्टाचार और सेवा का एक महान प्रतीक विश्व से उठ गया।' राजकुमारी जी के जीवन से हम सबको पीड़ित मानवता की निःस्वार्थ सेवा का व्रत लेना चाहिए, तभी हमारा जीवन सार्थक हो सकता है और हम आने वाली पीढ़ी के लिए एक अच्छी मिसाल कायम कर सकते हैं।

फ्रांस में देवी जोन ऑफ आर्क को बड़े ही आदर तथा सम्मान के साथ याद किया जाता है। उनके बलिदान को वहाँ के व्यक्ति जाति के लिये गौरव का विषय मानते हैं तथा उस दिन को—जिस दिन इस देवी को बीच शहर में जिन्दा जला दिया गया था—एक पावन पर्व की भाँति मानते हैं।

जोन ऑफ आर्क ने फ्रांस की स्वतन्त्रता के लिये महान त्याग किया। अदम्य उत्साह की धनी उस स्वातन्त्र्य सिंहनी ने "अँग्रेजो ! फ्रांस छोड़ो" का नारा बुलन्द किया। राजद्रोह का आरोप लगाकर उसे गिरफ्तार कर लिया गया तथा प्राणदण्ड दिया गया। दण्ड की आज्ञा अँग्रेज सेनापति बेडफोर्ड ने सुनाई। बात १९ मई सन् १४२९ की है। अपने देश को स्वतन्त्र कराने के प्रयत्न में उसने वह आज्ञा हँसते-हँसते शिरोधार्य की और हजारों फ्रांसीसियों के देखते-देखते उसे बीच बाजार में जिन्दा जला दिया गया।

डा.गेडीक्रस्गरनिइलैण्ड जर्मनी की पहली और एकमात्र महिला जज हैं। न्याय-विभाग में इतने ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित होना सचमुच ही नारी जाति के लिये गौरव

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का विषय है। वे सन् १९५१ से कार्ल्स रूटे में हाईकोर्ट में हैं जहाँ सन् १९६५ से वे एक डिवीजन की प्रमुख हैं।

दीर्घायु तथा दानशीलता का समन्वय देखना हो तो रंगून की एक सौ दो वर्षीया अहमेथीन नामक महिला से मिलिये। इनका स्वास्थ्य अभी तक ठीक है। यहाँ के बौद्ध मठ में इन्हें एक सम्मानसूचक ताम्र पत्र भेंट किया है। दीर्घायु होने के साथ-साथ सबसे बड़ी विशेषता इनमें यह है कि निजी सम्पत्ति को लोक-कल्याण में व्यय करने में ये अपार सन्तोष का अनुभव करती हैं। उन्होंने दो हजार पौण्ड कीमत की एक इमारत धार्मिक कार्यों के लिये दान की है। अभी तक वे विभिन्न धार्मिक कार्यों पर पन्द्रहलाख च्यात (वर्मी सिक्का) खर्च कर चुकी हैं।

लेखन के क्षेत्र में भारतीय कु. आशा कँवर की संयुक्त-राष्ट्र-संघ के सम्वाददाताओं के एसोसिएशन ने सन् १९६५ की ''हैमर शील्ड स्मारक विदुषी'' घोषित किया था। इस पुरस्कार के विजेता को कोलम्बिया विश्वविद्यालय के न्यूयार्क स्थित 'ग्रेजुएट स्कूल ऑफ जर्नलिज्म' में एक वर्ष तक अध्ययन करने की सुविधा प्रदान की जाती है। ये शिमले की रहने वाली एक स्वतन्त्र लेखिका हैं। केवल २५ वर्ष की अल्पायु में यह सफलता निःसन्देह सराहनीय है।

नारी का अदम्य-साहस यदि जाग पड़े तो वह इस क्षेत्र में भी पुरुषों से कम नहीं। इस क्षेत्र में गुएन दिन नामक ३५ वर्षीय महिला का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। ये दक्षिण विएट नाम के छापामारों की कमांडर थीं। १० वर्ष की आयु से ही आपने क्रान्तिकारी-कार्यों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था।

राजनीति का क्षेत्र भी महिलाओं के पदांकन से अछूता नहीं रहा है। संसार का सर्वोच्च-संगठन 'संयुक्त राष्ट्र-संघ' उसके महासचिव के पद पर रह चुकीं हैं श्रीमतीविजयलक्ष्मीपंडित। यह सम्पूर्ण भारतीयों विशेषतः महिलाओं के लिये गौरव का विषय है। भारत तथा श्रीलंका की प्रधानमन्त्री महिलाएँ अपने समय में विख्यात रही हैं।

राजनैतिक-स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये यहाँ जो आन्दोलन हुये, उनमें भी महिलाएँ पुरुषों से पीछे नहीं रहीं। श्रीमती सरोजिनीनायडू, कस्तूरबा गाँधी, श्रीमती कमला नेहरू, मीराबेन, भीका जी कामा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

जिनमें तनिक भी प्रतिभा, क्षमता तथा उत्साह है, उन्हें आगे बढ़कर लोकहित में अपना जीवन लगाकर उसका सदुपयोग करना ही चाहिये।

स्वाधीनता की रक्षक—रानी सारंधा

बुन्देलखण्ड के महाराज रुद्रप्रताप के वंशज ओरछा नरेश राजाचंपतराय जब से गद्दी पर आसीन हुये, अपने बाहुबल से राज्य का विस्तार करते जा रहे थे। उन्होंने मुगल बादशाह शाहजहाँ को कर देना बन्द कर दिया था। मुगल सेनायें आक्रमण करतीं पर उन्हें मुँह की खाकर वापस लौटना पड़ता। नरेश चम्पतराय की वीर गाथायें बुन्देलखण्ड के बच्चे-बच्चे की जवान पर छायी हुई थीं। उनका विवाह भी टेकड़ी के राजा अनिरुद्ध सिंह की बहन सारन्धा से हुआ था।

सारन्धा, नरेश की वीरता से ही उनकी ओर आकर्षित हुई थी। चम्पतराय भी ऐसी वीर हृदया पत्नी पाकर बड़े प्रसन्न हुए थे। उतार-चढ़ाव हर व्यक्ति के जीवन में आते हैं। चम्पतराय के जीवन में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ आयीं कि वह मुगल बादशाह का समर्थक एवं आश्रित बन गया। शाहजहाँ तो ऐसे अवसर की ताक में ही था। उसने चम्पतराय का दिल्ली में भव्य स्वागत किया। उस समय कुम्हारगढ़ की जागीर स्वतन्त्र थी पर शाहजहाँ उसे अपने राज्य में मिलाना चाहता था। उसने इस कार्य हेतु चम्पतराय को भेजा। साहसी चम्पतराय ने इस कार्य को बड़ी बहादुरी के साथ सम्पन्न किया, फिर क्या था ? वे थोड़े ही समय में शाहजहाँ तथा उसके ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह के कृपा पात्र बन गये। दारा ने उन्हें नौ लाख रुपये वार्षिक की जागीर पुरस्कार में प्रदान की।

वैभव-विलास के जीवन ने नरेश चम्पतराय को पतनोन्मुख कर दिया। धन की मादकता में वे स्वाभिमान को छोड़ बैठे। स्वाधीनता के स्थान पर पराधीनता के जीवन में उन्हें आनन्द आने लगा, परन्तु सारन्धा को ये सुविधायें मानो काटने को दौड़ रही थीं। उसका सौन्दर्य मंडित मुख उदास रहने लगा। एक दिन चम्पतराय ने पूछ ही लिया—'प्रिये ! जब से तुम दिल्ली में आयी हो, तब से प्रसन्न दिखाई नहीं देतीं। तुम्हारे मुख-मण्डल की आभा न जाने कहाँ लुप्त होती जा रही है ? जब मैं रात-दिन युद्ध में व्यस्त रहता था, उस समय तुम सुखी और संतुष्ट दिखाई देती थीं और अब सुख-चैन का समय आया तब तुम्हारा चेहरा कुम्हलाया दिखाई देता है। इसका क्या कारण है ?'

सारन्धा तुनककर बोली—उस समय मैं स्वतन्त्र थी और अब परतंत्र हूँ। मैं ईश्वर को छोड़कर और किसी की भी दासता स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ। एक दिन मैं स्वाभिमानी राजा की रानी थी और आज एक मुगल बादशाह के सेवक की पत्नी हूँ। मन में बार-बार यही आता है कि स्वाभिमानी जीवन कभी लौटेगा या नहीं ? मुझे स्वतन्त्रता प्यारी है मैं सर्वस्व समर्पित करके भी उसे प्राप्त करने की इच्छा रखती हूँ। आज मैं गुलामी की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रोटियाँ खा रही हूँ। गुलामी के जीवन की सुविधाओं से स्वतन्त्रता का अभावग्रस्त जीवन कहीं अच्छा है। पर न जाने क्यों ये बातें आपके गले नहीं उतरतीं। आपको मातृभूमि की याद नहीं सताती। आप भले ही सुख की नींद सोयें पर सारन्धा का हृदय बच्चों के करुण-क्रन्दन से फटा जा रहा है।

सारन्धा की दर्द भरी वाणी उसे बेचैन करने लगी। मातृभूमि के लिये उसका मन तड़फने लगा। दाराशिकोह भी उससे असंतुष्ट हो गया और अपनी जागीर वापस ले ली। चम्पतराय अपने अपमान को न सह सका। वह ओरछा वापस लौट आया और बिखरी हुई शक्ति को संगठित करने लगा।

औरंगजेब चम्पतराय और रानी सारन्धा को अपने मार्ग का काँटा समझकर इनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगा। उसने विशाल सेना बुन्देलखण्ड में भेजी। घमासान युद्ध हुआ। सारन्धा स्वयं सैन्य वेशभूषा में हाथ में नंगी तलवार ले दुर्गा की तरह मुसलमान शत्रुओं को गाजर मूली की तरह काटने लगी। समरांगण में भगदड़ मच गई। सीमित साधन होते हुए भी दोनों के पराक्रम ने चम्पतराय को विजयी बना दिया।

औरंगजेब भला अपनी पराजय को कैसे सहन करता, दूसरी बार उससे भी अधिक शक्तिशाली सेना बुन्देलों को हराने के लिये भेजी। चम्पराय को अपनी जीवन रक्षा के लिये भूखे-प्यासे जंगलों में भटकना पड़ा। विपन्नावस्था में जब चम्पतराय निराश हो जाता, उस समय सारन्धा ही शक्ति का संचार कर उसे आशा बँधाती और उज्ज्वल भविष्य के सुहावने सपने सामने रखकर संघर्ष को जारी रखने की प्रेरणा देती।

आपत्ति की इन घड़ियों में उन्होंने सोचा कि सहरा के जमीदार इन्द्रमणि के यहाँ आश्रय लिया जाये और वहाँ भूमिगत होकर सेना का पुन: संगठन करके सुरक्षा पंक्ति को दृढ़ किया जाये। दोनों को सम्मानपूर्वक आश्रय तो मिल गया पर मुगलशासन से यह बात छिपी न रह सकी। शीघ्र ही दुर्ग पर घेरा डाल दिया गया। युद्ध प्रारम्भ हुआ। आश्रयदाता इन्द्रमणि बेमौत मारा गया। दुर्ग में हाहाकार मच गया। वहाँ केवल स्त्रियाँ और बच्चे ही शेष रह गये थे। रसद के न आने से सबके बुरे हाल थे। ऐसे में चम्पतराय का भी स्वास्थ्य खराब हो गया। उठने-बैठने की भी शक्ति उनमें न रही। सारंधा ने अपने पति को यही सलाह दी—'हम लोगों की वजह से ही दुर्ग में रहने वाले निरपराध मनुष्यों की दुर्दशा हो रही है, मुझ पर तो इनके दु:ख अब देखे नहीं जाते। यदि हम लोग इस स्थान को छोड़ दें, तो सेना का घेरा उठा लिया जायेगा और ये लोग मरने से बच जायेंगे।

चम्पतराय को सारन्धा का सुझाव बहुत पसन्द आया। सारन्धा अपने पति को पालकी में बिठाकर कुछ सैनिकों के साथ दुर्ग से बाहर निकल गई। उस समय युद्ध चल रहा था। अत: किसी का ध्यान इस ओर न गया। ऐसी विपत्ति के समय चम्पतराय ने अपने बहनोई से सहायता माँगी पर उन्होंने मना कर दिया। 'विपत्ति काल में अपने भी पराये हो जाते हैं' वाली कहावत उन्हें सही होती दिखाई दी।

दुर्ग से बच निकलने की बात मुस्लिम सेना से छिपी न रह सकी। उसने पीछा किया और कुछ मील जाकर पुन: घेर लिया। सारन्धा के साथी सैनिकों ने यह अच्छी तरह जान लिया कि अब अन्तिम अवसर है, अत: पूरी शक्ति से शत्रु सेना का सामना किया गया। मुट्ठी भर सैनिक कब तक दम मारते ? अस्वस्थ हुए भी चम्पतराय अपने को रोके न रह सके। वह भी बीमार शेर की तरह प्रतिरोध की भावना से पालकी से बाहर निकलने पर कमजोरी के कारण उनके हाथ से तलवार जमीन पर गिर पड़ी और वह भी मूर्छित होकर गिर गये। सारन्धा ने दौड़कर उनका सिर अपनी गोद में रख लिया। अब चम्पतराय रानी से उन पर तलवार चलाने को कहने लगे, जिससे वे बन्दी होने के अपमान से बच सकें।

सारन्धा चीख पड़ी। उसे अपने कानों पर विश्वास न हो रहा था। वह अपने ही हाथों यह अनर्थ कैसे करेगी ? जिस हृदय के लिये वह अपना सर्वस्व समर्पित करने को तैयार रहती थी, उसी पर तलवार का वार वह कर सकेगी, यह कैसे संभव है ? अन्तिम बुन्देला लड़ते-लड़ते जमीन पर गिर पड़ा। मुगल सैनिक चम्पतराय को पकड़ने के लिये लपके। नरेश ने अपनी रानी सारन्धा की ओर आशा भरे सजल नेत्रों से देखा। मानो कह रहे हों 'इसी जीवन पर तुम्हें गर्व था। आन की रक्षा के लिये तुम मुझे समय-समय पर उत्साहित करती रहती थीं और जब परीक्षा की घड़ी आई तब तुम्हीं विचलित होना चाहती हो। देख लिया तुम्हें भी साहस करो।'

बढ़ते हुये मुगल सैनिकों ने जैसे ही चम्पतराय को पकड़ने का प्रयास किया कि बिजली की तरह लपककर सारन्धा ने अपनी तलवार अपने प्रियतम के उस हृदय में भोंक दी, जिससे उसे अविरल प्रेम प्राप्त होता था, जिस हृदय की सुखानुभूति उसे आत्म विभोर कर देती थी। आज उसी हृदय से रक्त की धारा प्रवाहित हो रही थी। चम्पतराय सदैव के लिये सो गये।

सेनापति इस भयानक दृश्य को देखकर स्तब्ध रह गया। उसने आगे बढ़कर कहा—'रानी साहिबा ! खुदा गवाह है। आखिरी समय आपको जो हुक्म हो, उसे बजाने के लिये तैयार हूँ।'

'यदि हमारे पुत्रों में से कोई जीवित हो तो हमारी दोनों लाशें उन्हें सौंप देना। बस यही सबसे बड़ी महरवानी होगी।' सारन्धा ने इतना कहकर तलवार की नोंक अपने हृदय में जोर के भोंक ली और पीछे-पीछे अपने पति से जा मिली।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रान्ति की आग में अपनी आहुति देने वाली—मैना

सन् १८५७ भारतीय-स्वतन्त्रता की पहली लड़ाई, अँग्रेजों के बढ़ते हुये अत्याचार तथा राज्यों को हड़पने की नीति ने शासन के प्रति अविश्वास पैदा कर दिया था। जनता के मन में विद्रोह की आग सुलगने लगी। कानपुर और दिल्ली दो प्रमुख केन्द्र थे।

उस समय कानपुर की क्रान्ति का नेतृत्व नाना साहब पेशवा कर रहे थे। उन्हें दूसरे स्थानों की व्यवस्था देखने जाना था। अत: उन्होंने अपनी वीर बेटी मैना के हाथों में क्रान्ति की सारी बागडोर सौंप दी और वे अन्य स्थानों पर चले गये। शेर को भला अपनी बेटी पर अविश्वास क्यों ? उस समय वीर सेनानी तात्याटोपे और बालासाहब वहीं थे।

देखते ही देखते कानपुर पर विद्रोहियों का कब्जा हो गया। हजारों अँग्रेज मौत के घाट उतार दिये। सूचना इलाहाबाद तक पहुँची, अँग्रेजों की सेनाओं ने तुरन्त ही कानपुर की ओर मार्च कर दिया। कानपुर चारों ओर से घेर लिया गया। शेरनी मैना ने अपने सैनिकों को अलग-अलग कई टुकड़ियों में बाँटकर अँग्रेजी सेना पर आक्रमण कर दिया। अँग्रेजों को भागते ही बना, नगर के स्थान-स्थान पर लड़ाई शुरू हो ही चुकी थी, तब तक जनरल आउट्रक भी कई हजार सैनिक लेकर वहाँ आ पहुँचा।

अब अँग्रेजों के पैर फिर से जमने लगे और उन्होंने विद्रोहियों को गाजर-मूली की तरह से काटना शुरू कर दिया। उनके घेरे में तात्याटोपे भी फँस चुके थे। १३ वर्षीय बालिका मैना ने जब यह स्थिति देखी तो एक क्षण के लिये वह हतप्रभ-सी रह गई उसके मन में आया 'तात्याटोपे' का जीवन सभी सैनिकों में सबसे महत्त्वपूर्ण है। इतनी सूझ-बूझ वाला तथा अँग्रेजों को चकमा देकर अपना काम बनाने वाला नेता फिर कहाँ से मिल सकेगा ? तात्या के जीवन के साथ स्वतन्त्रता का यह खेल ही समाप्त हो सकता है अत: क्या ही अच्छा हो उसके स्थान पर मैं अपने प्राण देकर उसे इस घेरे से बचा दूँ। मेरे मरने के बाद मुझ जैसी सैकड़ों बालायें युद्ध में कार्य करने वाली मिल जायेंगी, पर तात्या जैसा वीर न मिलेगा।

दूसरे ही क्षण मैना ने अपने को तात्या के पास खड़ा पाया। उसने धीरे से तात्या के कान में कुछ कहा और शेरनी की भाँति सामने खड़े अँग्रेजों पर टूट पड़ी। एकदम अँग्रेज अपने को न सँभाल सके और तात्या को उस घेरे से निकल भागने का अवसर मिल गया। मैना काफी देर तक अँग्रेजों को पीछे खदेड़ती रही। कई घण्टे युद्ध करते-करते मैना थक गई थी उसे कुछ क्षण विश्राम की आवश्यकता थी, कि अचानक दूसरी ओर से गोरों पर सूबेदार टीकमसिंह ने आक्रमण कर दिया। शत्रुओं में खलबली मच गई।

मैना अवसर पाकर वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गई और गंगा के किनारे तात्या के पास आ खड़ी हुई। तात्या से उसकी बात-चीत चल ही रही थी कि घुड़सवार सैनिक उसके सामने आ खड़े हुए, उन्हें देख तात्या गंगा में कूदकर उस पार निकल गया। रह गई अकेली मैना, उसके चारों ओर घुड़सवार सैनिक खड़े थे। वह उन्हें देखकर गिड़गिड़ाई नहीं और न जीवन दान के लिए चिल्लाई ही, वरन् तलवार निकालकर सैनिकों के रक्त से उसकी प्यास बुझाई। वे सैनिक, घोड़ों पर से नीचे लुढ़क गये। मैना उनमें से एक घोड़ा लेकर भागने ही वाली थी कि अन्य सिपाहियों ने आकर उसे घेर लिया।

शत्रुओं के रक्त से तलवार की प्यास पूरी तरह न बुझ पाई थी अत: उसने सामना करने वाले गोरे सैनिकों पर जैसे ही हाथ उठाया कि दुर्भाग्य से तलवार उसके हाथ से छूटकर जमीन पर गिर गई। शत्रुओं के लिए इससे अच्छा अवसर कौन-सा हो सकता था? उन्होंने उसे बन्दी बना लिया और सेनापति के सामने लाकर उपस्थित कर दिया।

सेनापति ने अकड़ के साथ उससे पूछा 'तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है ?'

'मेरा नाम मैना है और मैं नानासाहब पेशवा की बेटी हूँ।'

अच्छा जो हम लोगों का एक नम्बर का शत्रु है। तब तो तुम्हें अपने पिता का पता अवश्य मालूम होगा। पता बताने पर तुम्हें बहुत बड़ा इनाम मिलेगा और यदि तुमने पूछी गई बातों के सही-सही उत्तर न दिये तो तुम्हें जिन्दा ही जलवा दिया जायेगा। अब तुम्हारे सामने दो मार्ग हैं, जो चाहो उसे चुन सकती हो।'

मौत से खेलने वाली मैना भला उन क्रान्तिकारियों की परम्परा को तोड़ती, जो हँसते-हँसते अपने प्राण दे सकते थे पर दल का भेद न बताते थे। उसका स्वाभिमान जाग उठा। गोरे सरदार ! तुम्हें शायद भारतीय वीरांगनाओं के इतिहास का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं। जलाने की धमकी सुनकर मुझे हँसी आती है क्योंकि यहाँ की वीरांगनाओं की आपत्ति के समय उसी ने तो लाज रखी है। भेद बताने से पहले तो खुशी-खुशी प्राण देना मैं अच्छा समझती हूँ।

जनरल को इस तेरहवर्षीय बालिका से यह आशा न थी। वह तो समझता था कि खाने और खेलने की इस उम्र में उसके प्रलोभन तथा भय का कुछ प्रभाव होगा पर वह अपनी असफलता को देख खीझ उठा, उसने चिल्लाकर कहा, सेनापति 'यह कोई शैतान लड़की मालूम पड़ती है। जो किसी प्रकार का भेद देना नहीं चाहती अत: ले जाकर इसे आग में जिन्दा जला दो।'

सजा सुनकर मैना का चेहरा दमक उठा। उसे प्रसन्नता हुई कि आज मुझे देश के लिए अपना जीवन समर्पण करने का अवसर मिल रहा है। उसने कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

'सेनापति मुझे कोई भी दण्ड दो, इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं है। पर याद रखो तुम्हें हिन्दुस्तान शीघ्र ही खाली करना होगा, तुम इसे अब अधिक समय तक गुलाम बनाकर न रख सकोगे।'

और दूसरे दिन पौ फटने से बहुत पहले ब्रह्ममुहूर्त में ही उस बालिका को खम्भे से बाँधकर अग्नि को समर्पित कर दिया। जलते-जलते उसने नारे लगाये 'हिन्दुस्तान जिन्दाबाद ! भारत माता जिन्दाबाद।'

मैना हमेशा के लिये चली गई पर उसका बलिदान क्रान्ति के इतिहास की धरोहर बन गया है। भला जिस देश में ऐसे बहादुर बालक, बालिकायें जन्म लेते हों, उसे किसी देश से डरने की भी आवश्यकता है ?

नारीत्व की गौरव मूर्ति—जीजाबाई

सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में भारत के सम्राट शाहजहाँ ने अपने तीसरे पुत्र औरंगजेब को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा। वह स्वभाव से महत्त्वकांक्षी था राज्य-विस्तार के लिए तीव्र उत्सुकता रखता था। दक्षिण में उन दिनों गोलकुण्डा, बीजापुर और हैदराबाद तीन बड़ी रियासतें थीं। औरंगजेब १६३३ से १६४४ तक दक्षिण का सूबेदार रहा और इन तीनों बड़ी रियासतों को मुगल सल्तनत में मिलाने के लिए कई लड़ाइयाँ लड़ीं। दक्षिण राज्यों पर पूर्ण अधिकार करने के लिए सर्वप्रथम उसने निजामशाही को समाप्त करना आवश्यक समझा।

हैदराबाद के निजाम ने इस समय बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। उसका प्रधान सेनानायक मालवजी स्वर्गस्थ हो चुके था। मालवजी कुशल राजनीतिज्ञ, वीर, राजनीति में निष्णात और पराक्रमी थे। इन्हीं गुणों का विकास उन्होंने अपने पुत्र शाहजी में भी किया था। पिता से सैन्य संचालन, राज-व्यवस्था और राजनीति में कुशलता प्राप्त शाहजी को निजाम ने उनके पिता के पद पर बैठा दिया।

शाहजी के हाथ में सैन्य-विभाग सौंपकर वे निश्चिंत से हो गये। औरंगजेब की फौजें हैदराबाद को लीलने के लिए कई बार बढ़तीं इसका समाचार, यत्र-तत्र फैले गुप्तचर शाहजी तक पहुँचा देते और वे अपने थोड़े से वीर सैनिकों को साथ ले गुप्त मार्गों से जाकर रास्ते में ही रोक देते। आकस्मिक आक्रमण से घबराकर औरंगजेब के सैनिक जान बचाकर भाग निकलते। परन्तु वे अपने अधिपति की आकांक्षा से हैदराबाद जीतने के लिए बार-बार आक्रमण करते थे। इन आक्रमण का सामना करने के लिए दिन-रात व्यस्त रहने वाले शाहजी का उनके निजामशाही का अंग बने रहना उनके श्वसुर जाधवराव को पसन्द नहीं आया। जाधवराव भी निजाम की सेना में मुख्य पद पर थे परन्तु रोज का यह संग्राम उनसे नहीं होता था। वार्धक्य और अशक्तता उन्हें अब विश्राम के लिए बाध्य कर रही थी। शाहजी के क्रियाशील होने के कारण उनकी प्रतिष्ठा भी स्वाभाविक रूप से बढ़ी। जाधवराव अपने दामाद की बढ़ती प्रतिष्ठा से स्वयं को फीका होते अनुभव करने लगे। इस कारण वह उनके ईर्ष्या का विषय भी बना।

शाहजी को अपना सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी मानकर जाधवराव ने षड्यन्त्र रचकर उन्हें पकड़ने का प्रयास किया। शाहजी अपनी पत्नी सहित राजमहल से भाग निकले। जाधवराव ने उन दोनों का पीछा किया परन्तु हाथ आई केवल उनकी अपनी ही बेटी और शाहजी की पत्नी—जीजाबाई। जीजाबाई उस समय गर्भवती थी। बेटी को देखकर पिता का ममत्त्वपूर्ण हृदय जागा और यह संभावना भी लगी कि शायद पत्नी के कारण शाहजी उनके हाथ में आसानी से आ जायेगा।

जाधवराव ने अपनी बेटी से घर चलकर रहने का प्रस्ताव किया परन्तु जीजाबाई को पतिव्रत-धर्म का तकाजा लगा। एक निष्ठावान हिन्दू-विवाहिता स्त्री को अपने पति का साथ देना चाहिए। खासकर उस समय तो यह और भी अधिक आवश्यक है, जब परिवार पर कोई धर्म संकट आया हो। अतः दृढ़तापूर्वक जीजाबाई ने इन्कार कर दिया—"मैं अपने पति को इस दशा में छोड़कर स्वयं सुख-चैन से कैसे रह सकती हूँ। पिताजी ! आप मुझे उनके साथ ही जाने दीजिए ?"

"अपना नहीं तो अपनी सन्तान का तो ध्यान रखो बेटी। इस विपत्तिग्रस्त स्थिति में उसका भविष्य और जीवन कैसे सुरक्षित रह सकेगा।"

"सन्तान जन्म कर मर जाये तो कोई बात नहीं परन्तु मेरे लिए धर्म मूल्यवान है। आप अपने दामाद से मधुर सम्बन्ध होने पर मुझे स्नेहपूर्वक आमन्त्रित करते तो मैं बड़ी प्रसन्नता से आपके पास रह सकती थी। परन्तु अब धर्म और आपके महत्व में टकराव है, तो धर्म का चुनाव ही सब भाँति उपयुक्त समझती हूँ।"

सच कहा था जीजाबाई ने। पिता ने अपनी पुत्री को आदर और स्नेह से नहीं विवशता का लाभ उठाने के लिए अपने पास रहने के लिए कहा था। स्नेह और ममत्व तो बाद में जागा था, जो कुछ भी हो जीजाबाई ने अपनी विवेक-बुद्धि से उचित-अनुचित का भेद कर अपना रुख निर्धारित कर लिया। किसी प्रकार बेटी कहना मानने के लिए तैयार नहीं है, तो पिता की कुटिलता उजागर होकर सामने आई। अपने सैनिकों से जीजाबाई को कारावास में भेजने के लिए कहकर वे आगे बढ़ गये।

ईर्ष्या और प्रतिद्वन्द्विता का भाव किस प्रकार मनुष्य को पतित बना देता है ? प्रतिष्ठा और मिथ्या शान का विषैला धुआँ व्यक्ति से अपने पराये को देखने की नेत्र ज्योति भी छीन लेता है। पिता और पति के प्रति अपनी श्रद्धा और प्रेम कर्त्तव्य का भेदकर उचित को स्वीकार करने वाली जीजाबाई को अपने पिता के व्यवहार से बड़ी ठेस पहुँची। उन्होंने जाधवराव को बहुत बुरा-भला कहा। परन्तु उसके मन में ममत्व की अपेक्षा अपने प्रतिद्वन्द्वी को

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नष्ट करने की भावना अधिक बलवती थी। बेटी को दामाद पर अधिकार करने के लिए एक साधन रूप में उपयोग करने की परम्परा आज भी तो कई घरों में प्रचलित देखी जा सकती है। भले ही प्रतिद्वन्द्विता का भाव न हो, बेटी के सुख का मोह ही हो परन्तु पत्नी के प्रति प्रेम का अनुचित लाभ उठाकर उन्हें गलत रास्ते पर, पारिवारिक विग्रह के मार्ग पर ढकेलने वाले कम नहीं हैं।

इस प्रकार प्रत्येक परिस्थिति में पति का साथ देने के लिए सतत् तैयार जीजाबाई का जन्म अहमद नगर राज्य में सरदार जाधवराव जी के परिवार में हुआ। बचपन में उन्होंने रामायण, महाभारत की कहानियों का अध्ययन किया था। राजपूत वीरांगनाओं, धर्म पत्नियों तथा माताओं की प्रेरणा भरी कहानियाँ उसने अपनी माँ से सुनी थीं। फलस्वरूप उनके बाल-मानस में ही इन आदर्शों के प्रति गहरी निष्ठा जम गयी थी।

कारावास में उन्होंने अपनी तथा अपने पति की परेशानियों का गहन चिंतन किया। मुसलमान बादशाहों के लिए दर-दर ठोकरें खाते फिरना और उनके हाथों लुटते रहना व्यर्थ ही नहीं, स्वयं अपने लिए, धर्म जाति और देश के लिए भी हानिकारक है। इस दृष्टि से न तो उनके पति ही औचित्य के लिए कष्ट झेल रहे थे और न ही उनके पिता का रवैया ही ठीक था। गलत दिशा में दोनों ही थे। कठिनाइयों और विपत्तियों में शान्त-वातावरण मिलते ही व्यक्ति अपने कार्यों और गतिविधियों का कई पक्षों से अध्ययन करता है।

विभिन्न पक्षों से जीजाबाई ने भी विचारा। वे सोचने लगीं कि क्या ही अच्छा हो इतने कष्ट, धर्म और न्याय की रक्षा के लिए सहे जायँ। मराठों पर—इस देश के निवासियों पर तो दोनों ओर से ही आक्रमण होते हैं। न मुसलमान मानते हैं और न ही दिल्ली के मुगल। जीजाबाई के विचारों और भावनाओं ने एक नयी दिशा पकड़ी और उन्होंने निश्चय किया कि अवसर मिला तो वे अपने पति को इस कार्य के लिए प्रेरित करेंगी।

साथ ही भगवान से प्रार्थना करती रहतीं कि मेरे कोख से ऐसा पुत्र जन्म ले, जो देश को इन विधर्मियों और ऐय्याश सम्राटों के चुंगल से मुक्त करे। अहर्निश देशोद्धार के विचारों से ओत-प्रोत रहने के कारण उन्होंने अपनी आशाओं को पूरा करने वाला पुत्ररत्न ही जन्मा। जिस समय में शिवाजी का जन्म हुआ, उस समय उनकी माता अपने पिता के कारागृह में थीं। इस प्रकार जन्म और जन्म से पूर्व शिवाजी को युद्ध मैदान और कारागृह की परिस्थितियाँ मिलीं।

उधर शाहजी पुनः राज्यप्राप्ति के लिये प्रयत्न कर अपनी स्वामिभक्ति का परिचय दे रहे थे। कुछ समय बाद बीजापुर राज्य की स्थिति ठीक होने के बाद वे वहीं चले गये। बीजापुर के नवाब आदिलशाह ने उनका बड़ा मान-सम्मान किया और अपना परामर्शदाता नियुक्त कर लिया। आदिलशाह ने हैदराबाद की निजामशाही का अन्त कर उसे अपने राज्य में मिला लिया था। जीजाबाई भी अब तक अपने पिता की कैद से मुक्त हो चुकीं थी। जाधवराव ने भी निजाम का पतन होने के बाद शाहजी का पीछा छोड़ दिया।

जीजाबाई के सम्मुख अब राष्ट्रोद्धार का प्रश्न था। उन्होंने अपने पति को पहले तो इस बात के लिए समझाया कि यवनों की गुलामी छोड़कर मराठा-राज्य की स्थापना के लिए प्रयत्न करें। शाहजी को किसी भी प्रकार जीजाबाई की सलाह अच्छी नहीं लगी। जीजाबाई फिर भी निराश न हुईं। पति के हाथों अपने स्वधर्म की रक्षा न होते देख उनकी आशाओं का एकमात्र केन्द्र वह अबोध बालक बन गया।

जीजाबाई को बचपन की सुनी राजपूतानी वीरांगनाओं की कहानियाँ याद थीं, जो अपनी सन्तान को शेर से मुकाबला कराने के योग्य भी शौर्यशाली बना देती थीं। सन्तान का निर्माण माँ के हाथों में होता है। एक समझदार और सन्तान-पालन में दक्ष स्त्री अपने बच्चे को मनचाही दिशा प्रदान कर सकती है। जीजाबाई ने दृढ़ संकल्प कर लिया कि सन्तति-निर्माण की उसी कला और पद्धति का अनुसरण कर मैं भी अपने पुत्र को राष्ट्र का उद्धारकर्त्ता और धर्म का रक्षक बनाऊँगी।

बाल्यावस्था से ही उन्होंने शिवाजी के पालन में सावधानियाँ रखनी आरम्भ कर दीं। वे शिवाजी को अपने पिता के प्रभाव और दासता के संस्कारों से बचाती रहीं। शाहजी से उनके सम्बन्ध अच्छे थे। कठिन परिस्थितियों और विपन्न अवस्थाओं में भी अपने पति का अनुगमन करने वाली पतिपरायणा जीजाबाई उस व्रत से कैसे हट सकती थी ? मतभेद था—थोड़ा-सा, शाहजी के दायित्व और अपने कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में। सो अपने पक्ष का निर्वाह कर दोनों ने दाम्पत्य जीवन में सहनशीलता का अपूर्व परिचय दिया।

शिवाजी को जीजाबाई ने अपने पास ही रखा। वे स्वयं भी शाहजी के साथ नहीं रहीं। कारण था कि बीजापुर के वातावरण में देशभक्ति के जो बीज जीजाबाई अपने पुत्र की मनोभूमि में उगाना चाहती थीं कहीं अनंकुरित न रह जायें। शाहजी को इसमें कोई आपत्ति नहीं हुई। वे समय-समय पर अपनी पत्नी और पुत्र के पास देखभाल करने के लिये आया करते थे।

जीजाबाई ने शिवाजी को रामायण और महाभारत के वीरता, धर्म निष्ठा, शौर्य, मर्यादा और धैर्य की प्रेरणा देने वाले प्रसंग सुनाना आरम्भ कर दिये। कहानियाँ बच्चों को वैसे ही आकृष्ट कर हैं और यह तन्मय आकर्षण उनके बालमन को बड़ा प्रभावित भी करता है। इस बालवृत्ति में जीजाबाई ने तत्कालीन परिस्थितियों और देश-काल के सन्दर्भों में परिवर्तन-संघर्ष का हौंसला भर दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.४० यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :-

शिवाजी जब भी कभी इस प्रकार की कहानियाँ सुनते तो कह उठते-माँ मैं भी राम की तरह आज के इस औरंगजेबी रावण का अन्त करूँगा।

मनोभूमि को दृढ़ बनाने के साथ-साथ जीजाबाई ने शिवाजी को लिखना, पढ़ना, घुड़सवारी करना, युद्ध लड़ना आदि बातों की जानकारी और शिक्षण देना भी आरम्भ किया। प्रयास नैरंतर्य से शिवाजी में धीरे-धीरे ये सभी गुण समाविष्ट होने लगे। शिवाजी ने अपनी माँ की प्रेरणा से किशोरावस्था में ही एक छोटी-सी सैनिक टुकड़ी बना ली। इस सैनिक टुकड़ी में उनके हम उम्र लड़के ही थे। इन छोटे-छोटे बालवीरों ने शिवतेरी किले की छोटी-छोटी जागीरों को अपने अधिकार में करना आरम्भ कर दिया। माँ जीजाबाई उन्हें हमेशा प्रोत्साहित करती रहीं।

उनकी धर्म-निष्ठा ने शिवाजी को भी प्रभावित किया और वे भी अपनी माँ के समान दुर्गा शक्ति के उपासक बने। शिवाजी ने आगे चलकर इतिहास को बदल देने वाले जो कार्य किये, इसका अधिकांश श्रेय जीजाबाई को ही जाता है। पालन-पोषण और प्रेरणा प्रवाह में दक्ष जीजाबाई शिवाजी की परम आराध्या बनी रहीं। सन्तान अपनी सफलताओं के मूल में माता-पिता को जितना अधिक सहयोगी रूप में देखती है उतनी ही उसके मन में श्रद्धा भावना उमड़ने लगती है।

मराठा राज्य की स्थापना से लेकर, सफल विजय अभियान चलाने और शिवाजी को सुयोग्य शासक बनाने में जीजाबाई का जो हाथ रहा, वह भारतीय-मातृत्व की गौरव-गरिमा का ही प्रतीक है।

८० वर्ष की आयु में सन् १६७४ में जीजाबाई का स्वर्गवास हो गया। नारीत्व की सार्थकता भारतीय संस्कृति ने उसके गार्हस्थ-जीवन और मातृत्व की दायित्व दक्षिता में ही मानी है। राजमाता जीजाबाई इस कसौटी पर ज़ितनी खरी रहीं—वह सभी के लिये आदर्श है।

क्रान्ति की एक अमर शिखा—

बेगम हजरतमहल

अवध के नवाब वाजिदअली शाह की सैकड़ों बेगमों में से बेगम हजरतमहल भी एक थी। अपने रंग-रूप तथा व्यवहार कुशलता के कारण हजरतमहल पर नवाब की विशेष कृपा दृष्टि थी। उसे अन्य बेगमों की तुलना में अधिक सुविधाएँ प्राप्त थीं। उसे केसर बाग में एक अलग कोठी, पचासों दास-दासियाँ, सजाब, शृंगार तथा विलास सामग्री के अतिरिक्त ढाई-तीन हजार मुद्रायें अपने निजी खर्च के लिए अलग से मिलती थीं।

वाजिदअली शाह का सम्पूर्ण जीवन भोग-विलास की विभीषिका कहा जा सकता है। दिन-रात स्त्रियों के संग नाच-रंग और शराब-कवाव में डूबा रहना उसका दिन-रात का काम बना हुआ था। हास-परिहास, व्यंग, विनोद, नाटक, स्वाँग और भाँड़ों की लीलायें उसके नवाबी जीवन की शान-शौकत बन गई थीं, प्रजा की क्या दशा है, राजनीति किधर जा रही है, आस-पास सारे देश में क्या हो रहा है, राज्य प्रबन्ध का क्या हाल है ? इन सब बातों की न तो वाजिदअलीशाह को खबर रहती थी और न वह इसकी आवश्यकता अनुभव करता था। उसी के अनुसार उसके दरबारी, मन्त्री, सरदार, सैनिक तथा महल की सारी बेगमें भी दिन-रात इन्हीं खुराफातों में रहती थीं। भोग-विलास तथा हास-परिहास के सिवाय किसी को दीन-दुःखियों की कुछ खबर ही नहीं थी। पूरा अवध आलस्य, विषय, विलास और अज्ञान में डूबा हुआ था।

अवध के इस अन्धेरे और बेखबरी के माहौल में एक व्यक्ति ऐसा भी था, जो सबसे अधिक सुविधा-सामग्री होने पर भी इससे ऊपर उठा हुआ था और वह थी बेगम हजरत महल। हजरतमहल वाजिदअलीशाह की बहुत प्यारी बेगम थी। वह उसकी प्रसन्नता के लिए सर्वस्व निछावर कर देने को तैयार रहता था। उसने इस बेगम के लिए नाच-गाना सीखने के लिये विशेष प्रबन्ध कर दिया था। किन्तु हजरतमहल के अधरों पर वह विषय-विषाक्त मुस्कान कभी नहीं आ पाती थी, जिसे देखने के लिए वाजिदअलीशाह सदा लालायित रहता था। हजरतमहल प्रायः गम्भीर रहकर कुछ सोचती-सी रहती थी। भोग-विलास और हास-परिहास में उसे जरा भी रुचि नहीं थी।

जब अन्य सारी बेगमें रात के नाच-रंग और शराब-कवाव की खुमारी में सबेरे धूप चढ़ जाने तक सोती रहती थीं, तब बेगम हजरतमहल अलख सुबह ही उठकर नित्यकर्मों से निवृत्त होकर नमाज नियाज में लग जाती थी। उसकी चिन्ता तथा गम्भीरता का कारण जब बहुत बार अन्य बेगमों ने पूछा और कहा कि—"क्या मुर्दों जैसी जिन्दगी बनाये रहती है ? खुदा का दिया जब सब कुछ पास है तो दुनियाँ के मौज-मजे लूट। छोटी-सी जिन्दगी को इस तरह फिकरों और परेशानियों में गँवा डालने में कौन-सी अक्लमंदी है ?"

इस पर हजरतमहल का एक ही उत्तर होता, जिसे सुनकर सारा हरम उसकी मजाक बनाता और मखौल उड़ाता। वह कहती—"जब अवध की सल्तनत पर काले बादल मँड़रा रहे हैं, पूरे मुल्क में फिरंगी अपने पैर जमाते जा रहे हैं, आजादी, इज्जत और हकूक खत्म होते जा रहे हैं, जगह-जगह जुल्म और लूट-खसोट का बाजार गर्म है, मजहब और ईमान के सामने खतरा खड़ा हुआ है, तब हिन्दुस्तानियों और खासतौर से शाही खानदानों को जिन पर रिचाया की खुशहाली, बहबूदी और हिफाजत मुनहस्सिर है, इस तरह ऐशो इशरत की गन्दी जिन्दगी जीना किसी तरह भी मुनासिब नही है। अँग्रेज आज हिन्द का **गनीम** बन गया है। कम्पनी सरकार अजदहे की तरफ पूरे मुल्क को निगलती चली जा रही है। ऐशो इशरत

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की गन्दी जिन्दगी एक तो यों भी इन्सानी जिन्दगी नहीं है। फिर जिस वक्त मुल्कचारों तरफ से खतरा घेरे हुये हो, विकार और विरासत खतरे में पड़ी हो, तब तो यह नाच-रंग और हँसी-खेल का वक्त नहीं है। यह वक्त है लड़ने-मरने और मुल्क में एका पैदा करने का वक्त, जिससे कि पूरे पैर जमाने से पहले ही फिरंगी को हिन्द से बाहर निकाला जा सके। खुदा न करे, अगर अवध और अवध के शाही खानदान की यही हालत रही और उसने वक्त रहते आँखें न खोलीं तो हो सकता है कि आज का यह शाही विकार किसी बड़े खौफनाक खतरे में पड़ जाये।''

हरमसरा का पूरा अमला हजरत महल की बात सुनता, खिल्ली उड़ाता और कहता लो यह तो वेवक्त ही बूढ़ी हो गई, इस पर तो खुदा की मार ही समझो, जो उन सब फिकरों को अपने सिर पर ले बैठी है, जिनसे हम बेगमों को कोई सरोकार नहीं है। अपनी सल्तनत खुदा बचाये रखे, हमें सारे मुल्क से क्या लेना-देना, चाहे बचे व फिरंगियों के पेट में चली जाये। ऐसे शानदार और गरीब परिवरदिगार अपने बादशाह सलामत की तरफ, ऐसी किसकी जुर्रत है, जो नजर उठा कर देखे। खुदा की कसम, जिस दिन यह फिरंगी अवध की तरफ मुँह करेंगे, इन पर ऐसा कहर बरसेगा कि जमीन आसमान कहीं भी तो ठिकाना न मिलेगा। बुद्धिमती हजरतमहल उन मूर्खों पर एक हसरत भरी नजर डालती और मन ही मन रोकर परमात्मा को याद कर लेती।

बेगम हजरतमहल ने अपने लिये भोग-विलास और हास-परिहास के सारे द्वार बन्द कर दिये और भयानक भविष्य से जिसको कि वह अपनी दूर दृष्टि से देख रही थी, टक्कर लेने की तैयारी करने में जुट गई। वह नित्यप्रति घण्टों पढ़ती, बाहर की गतिविधि जानने के लिये अपने आदमी भेजती, फिरंगियों की चालों को लिखती और उन पर विचार करती। दरबारियों, सरदारों तथा शाही खानदान के लोगों को राष्ट्रीय-प्रेरणा देती। सरकारी कागजात पढ़ती, राज-काज में दिलचस्पी लेती, सेना और शक्ति का अनुमान लगाती और राजनीतिक गतिविधियों का अध्ययन करती। वह जो कुछ हरम की चहारदीवारी और घने परदे में रहकर राज्य और जनता के हित में जो कुछ कर सकती थी करती रहती थी। किसी विद्वान की इस उक्ति को कि ''नारी अबला कदाचित प्रकृति से नहीं, परिस्थितियों से अधिक हो जाती है और यही परिस्थितियाँ उसे सबला बना देती हैं। उन परिस्थितियों में नारी अपने सारे बन्धनों से मुक्त होकर आग-पानी और तूफान से भी संघर्ष लेने में पीछे नहीं हटती''—बेगम हजरत महल ने अपने जीवन से चरितार्थ कर दिखाया।

सन् अठारह सौ छप्पन-सत्तावन के उस उथल-पुथल के समय में जो होना था, वह वाजिद अलीशाह का भी हुआ। अँग्रेजों ने मौका पाते ही नवाब वाजिदअलीशाह को कैद कर लिया और अवध का राज्य कम्पनी साम्राज्य में मिला लिया। अँग्रेजों के इस अन्याय से बेगम हजरत महल का हृदय भयानक रोष से भर गया और समय की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करती हुई स्वतन्त्रता के लिए तैयारी करती रही।

समय आया और पूरे भारत में सन् अठारहसौ-सत्तावन का इतिहास प्रसिद्ध विद्रोह भड़क उठा। हजरत महल तो इस समय की प्रतीक्षा कर रही थी। उसने शासन-सत्ता अपने हाथ में लेने की घोषण के साथ २० मई १८५७ को लखनऊ के किले से विद्रोह सूचक तोप लगवा दी। सबसे पहले बेगम हजरत महल ने जनता के लिए इस आशय का एक फरमान निकाला—

''हर हिन्दू-मुसलमान को मालूम हो कि हर इन्सान को तीन चीजें सबसे ज्यादा प्यारी होती हैं। धन, धर्म और इज्जत। इन चीजों की रक्षा आजादी विदेशी शासन में ही हो सकती है। फिरंगी इन चीजों के दुश्मन हैं। इसलिये हर हिन्दू, मुसलमान को चेतावनी दी जाती है यदि अपने धर्म, ईमान की रक्षा चाहते हो तो फिरंगियों को अपने देश से मार भगाओ। उन्हें अपने पास पनाह मत दो और हमारी सरकार की फौज में शामिल होकर उनसे युद्ध करो।''

बेगम हजरतमहल के इन उद्‌गारों का बड़ा प्रभाव पड़ा और अवध की जनता संगठित होकर अँग्रेजों के साथ लड़ने को तैयार हो गई। अनन्तर उसने लखनऊ के पुराने सरदारों, मन्त्रियों तथा दीवानों को फिर बुला लिया और राज्य प्रबन्ध तथा सेना में उन्हें समुचित सम्मान के साथ स्थान दिया। उसने अनुभवी तथा तपे सरदार रघुनाथसिंह, घमण्डीसिंह, रामभजन, गजाधरसिंह, शाहबुद्दीन खाँ, मखदुमबक्स आदि को क्रान्तिसेना का सेनानी तथा विचार एवं संचालन सभा का पारिषद् बनाया। साथ ही उसने अवध की सारी सेना फिर वापस बुला ली थी, जिसको अँग्रजों ने वाजिद अलीशाह की गिरफ्तारी के बाद बरखास्त कर दिया था।

इस प्रकार पूरी तैयारी के बाद बेगम हजरतमहल ने अँग्रेजों के खिलाफ लड़ाई शुरू कर दी और आप सेना का संचालन करने लगी, उसने अपनी ताकत बढ़ाने के लिए अवध के मातहत, जमींदारों एवं जागीरदारों को एक भाव भरा युद्ध-निमन्त्रण भेजा जो इस प्रकार था—''खुदा ताला ने हमारे बाप-दादा का मुल्क हमें फिर वापस दे दिया है। अब फिरंगियों को मुल्क के बाहर मार भगाना आप लोगों का काम है। सब लोग मिलकर मैदान जंग में आयें और जगह-जगह छिपे फिरंगियों को ढूँढ़-ढूँढ़कर मुल्क के बाहर खदेड़ दें। हमारी सरकार पहले से अधिक आप लोगों की इज्जत करेगी और हो सका तो जल्दी ही लगान की माफी कर आपके इलाके में आप लोगों को आजाद कर देगी। इसलिए आप लोग आइये और मुल्क की आजादी की लड़ाई में हमारा साथ दीजिये।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.४२ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :-

बेगम हजरतमहल के इस आह्वान पर गुसारगंज, गोंडा, सैदपुर, नानयारा व महमूदाबाद आदि क्षेत्रों के जमींदार व जागीरदार सोना तथा सामान लेकर बेगम की मदद को लखनऊ आ पहुँचे। इस प्रकार अपनी ताकत संगठित कर उसने अँग्रेजों के विरुद्ध भयानक अभियान प्रारम्भ कर दिया।

बेगम हजरतमहल अपनी कोठी में सप्ताह में तीन दरबार लगाती, क्रान्ति तथा युद्ध की स्थिति पर विचार-विमर्श करतीं, युद्ध को आगे बढ़ाने की योजना बनाती। सरदारों तथा सेना में अपने मार्मिक वक्तव्यों द्वारा प्रेरणा तथा विश्वास बढ़ातीं और मोर्चों की स्थापना करती। इतना ही नहीं वह परदानशीन बेगम केवल महल में बैठकर ही यह सब प्रबन्ध करती हो, बल्कि वह हाथी पर खुले हौदे में बैठकर और एक हाथ में क्रान्ति का झंडा और एक हाथ में तलवार लेकर खुद मोर्चों पर जाती और रणक्षेत्र में सेनाओं का संचालन करती। बेगम हजरतमहल की इस वीरता का इतना प्रभाव पड़ा कि पूरा अवध प्रान्त जागरूक होकर उठ खड़ा हुआ और लखनऊ से अँग्रेजों के पैर उखड़ गये।

उसके इस हौसला, पुरुषार्थ, वीरता और सम्मान को देखकर अन्य बेगमें ईर्ष्या से जलने लगीं। उन्होंने उसका विरोध किया और कलकत्ता में कैद अपने पति को लिखकर भेजा कि हजरतमहल ऐसी आफत की परकाली हैं कि खुद हाथी पर खुले हौदे में बैठकर बिना किसी परदे के तिलंगों के आगे-आगे फिरंगियों से जंग लड़ने जाती हैं। उसकी आँखों का पानी मर गया है। उसे शाही इज्जत तथा विचार का मुतलक भी ख्याल नहीं रह गया है। मरदाने कपड़े पहनकर मर्दों की तरह मर्दों के बीच आती जाती, बैठती और बात करती है। उसने हुकूमत की बागडोर भी अपने हाथों में लेली है। किन्तु महामना हजरत महल ने इसकी तनिक भी परवाह नहीं की और साफ कह दिया। हया औरत के दिल में रहने वाला सवाल है, उससे कपड़ों और जरूरत के काम करने से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब इस तरह की मुसीबत आई हुई हो तब मैं परदे में छिपकर किसी तरह भी नहीं बैठ सकती। मैं अपना फर्ज पूरा करूँगी और जरूर पूरा करूँगी, इससे मुझे कोई ताकत या ताकीद नहीं रोक सकती।

लखनऊ से पैर उखड़ते देखकर अँग्रेजों के चारबाग, बेलीगारद, आलमबाग और गोलगंज आदि मोर्चों पर अपनी सारी ताकत झोंक दी लेकिन हजरतमहल ने उनके पैर टिकने न दिये। उसकी शक्तिशालिनी तोपें और बाकी से प्रेरित सिपाही जी-जान से जूझ पड़े।

अन्त में फैजाबाद तथा दिल्ली से मौलवी अनेमअली तथा फिरोजशाह के साथ असमद अल्लादशाह ने क्रान्ति के लखनऊ संगठन में फूट डालकर बेगम की ताकत कमजोर कर दी। बेगम को लखनऊ छोड़कर बूँदी आना पड़ा। रानी लक्ष्मीबाई की तरह बेगम हजरतमहल का भी पीछा किया गया और बूँदी में घेर लिया। नेपाल के राणा बहादुरजंग ने उस वीर बाला को आश्रय दिया। जहाँ वह इज्जत से जीती हुई अप्रैल सन् १८५७ में स्वर्ग सिधार गई।

कहना न होगा कि बेगम हजरतमहल ने देश के लिये जो कुछ किया जा सकता था, कर दिखाया कि नारी जब अपना स्वरूप सँभालती है, तो अबला से सबला बनकर बड़े-बड़े काम कर दिखाती है।

कुशल और नि:स्पृह प्रशासिका— रानी भवानी

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशक की बात है। बंगाल के नाटौर प्रदेश की रानी भवानी गया में पिंडदान करने पहुँची। गया तीर्थ के प्रधान पंडे ने इस कार्य के लिए पाँचलाख रुपये से कम दान राशि लिए बिना उन्हें विष्णुपाद पर पिंडदान करने की आज्ञा प्रदान करने से इन्कार कर दिया।

रानी के लिए पाँच लाख रुपये कोई कठिन कार्य नहीं था। वह सहज ही इतनी धनराशि देकर पिंडदान कर सकती थीं किन्तु रानी भवानी अपने आपको राज्य की संरक्षिका भर मानती थीं। इस कारण उनके मन-मस्तिष्क में यह बात आए बिना न रही कि जब मेरे साथ भी पंडे लोग इस तरह का लालची व्यवहार करते हैं, तो साधारण यात्री के साथ कैसा करते होंगे ? तीर्थयात्रा और दान-पुण्य का यह अर्थ तो नहीं होता कि धर्मजीवियों को अपना घर भरने का अंध योग मिल जाय। यह तो लोगों की धर्म-श्रद्धा का अनुचित लाभ उठाना ही हुआ।

रानी ने प्रधान पंडे को सीख देने का निश्चय कर लिया ताकि तीर्थों के पंडे यात्रियों को व्यर्थ में परेशान करने की हिमाकत न करे। तीर्थ गुरु यात्रियों द्वारा स्वेच्छया दिए जाने वाले दान के अधिकारी हैं न कि उन पर जोर-जबरदस्ती करने के। सो उन्होंने गया में पिंडदान का अपना कार्यक्रम स्थगित कर दिया तथा अपने दीवान के द्वारा नवाब के दरबार में प्रधान पंडे के विरुद्ध नालिश करवा दी।

रानी भवानी के द्वारा की गयी नालिश विवेक और युक्तियुक्त थी, साथ ही नवाब उनका मान भी करता था। अत: पंडे को कठिन दण्ड दिया गया। इतना ही नहीं, सरकारी लगान बाकी रख छोड़ने के अपराध में उसकी सारी जमींदारी भी कुर्क कर ली गई। रानी ने बीच-बचाव करके पंडे को दण्ड से मुक्ति दिलवा दी, स्वेच्छया उसे समुचित दान भी दिया उसके मन-मस्तिष्क में उग आयी स्वार्थपरता को झाड़-बुहार दिया।

वे जानती थीं कि उस समय तक पंडों की भी उपयोगिता थी। यात्रियों के मार्गदर्शन और आवास आदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की व्यवस्था करने की दृष्टि से ये लोग उपयोगी थे। इससे उनकी आजीविका भी चलती थी और यात्रियों का प्रयोजन भी पूरा हो जाता था। पर इससे आगे बढ़कर वे अपना अनुचित प्रभुत्व ही जमाने लग जायँ, तो फिर उन्हें सही मार्ग पर लाना भी बहुत आवश्यक था।

रानी भवानी ने जिस समय पंडा लोगों की अनुचित धाँधली के विरुद्ध यों पग उठाया था, वह युग आज का-सा प्रगतिपरक नहीं था। इसे उनका साहस ही कहना चाहिए।

ऐसी साहसी रानी भवानी की गणना उन थोड़ी-सी भारतीय महिलाओं में की जाती है, जिन्होंने राज्य-प्रबन्ध और कुशल-प्रशासन के क्षेत्र में महिलाओं के अनूठे पात्रत्व को सिद्ध किया था। इस दृष्टि से वे इंदौर की महारानी अहिल्याबाई के समकक्ष ठहरती हैं। प्रजावत्सलता, कुशल प्रबन्ध-प्रशासन के कारण वे इतिहास की एक स्मरणीय पात्र बन चुकी हैं।

उनका जन्म बंगाल के राजशाही जिले के छातिम ग्राम निवासी आत्माराम चौधरी नामक एक ब्राह्मण जमींदार के घर हुआ था। आठ वर्ष की अल्पायु में ही उनका विवाह नाटौर के महाराज रामजीवन के दत्तक पुत्र रामकांत के साथ हो गया। पिता की मृत्यु के बाद रामकांत सिंहासन पर बैठा। किन्तु राज्य के अन्य दावेदारों ने उसका गोद लिया जाना झूँठा बताकर नवाब मुर्शिदाबाद के पास शिकायत कर दी। इस आपत्ति को दूर करने में रामकांत को अपनी बुद्धिमती पत्नी रानी भवानी की बड़ी सहायता मिली। मुर्शिदाबाद के जगत सेठ की सहायता से उसने नाटौर राज्य का सच्चा उत्तराधिकारी होने की पुष्टि कर दी और नाटौर का राज्य उसे मिल गया।

रामकांत धर्मात्मा, प्रजापालक व कुशल राजा थे। रानी भवानी उनके उपयुक्त सहधर्मिणी सिद्ध हुईं।

रानी भवानी का सौभाग्य-सुख अल्पकालीन था। १७५६ में उनके पति राजा रामकांत परलोकगामी हुए। उनकी एकमात्र कन्या तारा, जिसका विवाह भी हो चुका था, वह भी विवाह के कुछ ही वर्षों बाद विधवा हो गयी थी। उस समय प्रचलित **'अष्टवर्षा भवेत गौरी . . . . . '** की मूढ़ मान्यता के कारण बाल-विवाह होना आम बात थी। तारा का विवाह भी आठ वर्ष की अल्पायु में ही कर दिया गया था। फलतः युवावस्था को प्राप्त होने के पूर्व ही वह विधवा हो गयी थी।

पहले बेटी का वैधव्य और फिर पति की मृत्यु, इन दो-दो आघातों ने रानी को बहुत दुःखित कर दिया था। ऐसी विषम स्थिति में नाटौर राज्य का सारा प्रबन्ध भार रानी भवानी के कंधों पर आ पड़ा था। सारे सांसारिक सुखों की इतिश्री हो जाने पर भी रानी भवानी पलायनवादी नहीं हुईं वरन् एक कर्मयोगिनी की तरह वे राज्य प्रबन्ध करने लगीं।

उनका राज्य-प्रबन्ध आदर्श था। वे प्रजा का पुत्रवत् पालन करती थीं। उनका जी तो बहुत करता था कि वे काशीवास करते हुए भगवद् भजन करें। यह आत्म कल्याण का एक सहज-मार्ग था। पर दूसरा भी मार्ग था जो कठिन और तपपूर्ण था। रानी ने उस दूसरे मार्ग को ही चुना। वह मार्ग था राज्य-प्रबन्ध।

उनका राज्य करना किसी भोग या ऐश्वर्य की कामना से प्रेरित होकर नहीं था वरन् कर्त्तव्य-भावना से, धर्म-भावना से प्रेरित था। महलों में भी वे तपस्विनी का सा जीवनयापन करती थीं। एक प्रहर रात्रि रहते ही उनकी दिनचर्या आरम्भ हो जाती थी। नित्य कर्म से निवृत्त होकर वे उपासना करती थीं। तदुपरांत दीन-दुःखियों की हर प्रकार से सहायता करने के लिए वे उनसे सम्पर्क करती थीं। उसके बाद कहीं वे स्वयं भोजन करती थीं। दिन में वह राजसभा में बैठकर राज कार्य सँभालती थीं।

उनके सात्विक, सरल और तपपूर्ण जीवन ने उनके व्यक्तित्व को और भी प्रखर बना दिया था, प्रजाजन उन्हें अपनी माता की तरह मानते थे। उनके वस्त्र बड़े सादे और सस्ते होते थे। वे दिन-रात में केवल एक बार ही बहुत सादा भोजन लेती थीं।

नीतिमती और बुद्धिमती भी वे कम नहीं थीं। यदि ऐसा न होता तो वे वर्षों तक नाटौर का राज्य-प्रबन्ध कैसे कर सकती थीं ? उनकी पुत्री तारा के रूप-सौंदर्य की चर्चा सुनकर उसे अपनी बेगम बनाने के लिए उतावले सिराजुद्दौला से उन्होंने तारा और अपने राज्य को जिस बुद्धि चातुर्य से बचाया, वह इस बात का परिचायक है कि कभी-कभी झूठ बोलना भी सत्य की अपेक्षा अधिक जगत हित में होता है। उन्होंने सिराजुद्दौला से पिंड छुड़ाने के लिए न केवल अपनी पुत्री तारा की मृत्यु का झूठा समाचार प्रचारित किया था वरन् उसकी नकली अर्थी भी निकाली थी। इस प्रकार उन्होंने एक बहुत बड़ी विपत्ति से छुटकारा पा लिया था।

जनहित के लिए रानी भवानी प्रतिवर्ष लाखों-करोड़ों रुपये दान करती थीं। वे राज्य-कार्य में बड़ी कुशल थीं। प्रजा की सुख-सुविधा के लिए उन्होंने मुक्त हस्त से धन खर्च किया। वे राज्य की मात्र ट्रस्टी थीं। चौबीस घण्टे में केवल एक समय सादा भोजन करने व गाढ़े के मोटे वस्त्र पहनने वाली रानी भवानी ने एक सामान्य से भृत्य जितना खर्च अपने लिए लेकर शेष सब नाटौर की जनता के लिए खर्च किया। यह भी एक आत्म-कल्याण का कठिन और दुष्कर मार्ग था। इसी में उन्होंने अपने जीवन की सार्थकता देखी थी। सन् १८१० में जब उनकी मृत्यु हुई तो लाखों लोगों ने अनुभव किया कि वे अनाथ हो गए हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दक्षिण भारत की लक्ष्मीबाई— रानी चेन्नम्मा

प्रसंग सन् १८२४ का है। कम्पनी सरकार अपनी सत्ता स्थापित करने के अन्तिम चरण में चल रही थी। उस समय दक्षिण की एक छोटी-सी रियासत किन्नूर अजगर गति से बढ़ते अँग्रेजों के लिए एक ऐसा अवरोध बन गई कि उन्हें सोचना पड़ा कि भारतभूमि कोई साधारण भूमि नहीं है ? इसे विजित करने में कदम-कदम पर रक्तदान करना होगा। छोटे-से लेकर बड़े और साधारण से लेकर असाधारण व्यक्ति में ज्वलंत देश-भक्ति और अखंड स्वाधीनता की भावना भरी हुई है। भारतीय जितने धर्मवीर हैं, उतने ही तलवार के धनी भी हैं।

किन्नूर कोई बड़ा राज्य नहीं था। यह तीन-सौ अट्ठावन गाँवों का एक सामूहिक संगठन था, जो आत्म-निर्भरता के आधार पर अपना सुख-समृद्धिमय जीवनयापन कर रहा था। छोटा होने पर भी यह राज्य दक्षिण के किसी भी बड़े राज्य से किसी बात में कम न था। किन्नूर की जनता बड़ी धर्मपरायण तथा राष्ट्रनिष्ठ थी। किन्नूर का वणिक वर्ग ईमानदार था, जिससे व्यापार में दिन-दिन उन्नति होती थी। किसान, मजदूर इतने परिश्रमी थे कि भोजन, वस्त्र तथा जीवन की अन्य आवश्यकताओं के लिए किन्नूर को किसी दूसरे पर निर्भर नहीं होना पड़ता था। सहकारिता तथा संगठन किन्नूर की विशेषता थी। ग्राम-ग्राम में अखाड़े और व्यायामशालाएँ चलती थीं जिसमें तरुणों को शस्त्र शिक्षा भी दी जाती थी। शिक्षा तथा कला-कौशल का इतना प्रचार था कि किन्नूर उस समय संस्कृति तथा सभ्यता में अपना उच्च-स्थान बनाए हुए था और अपनी विशेषताओं के कारण बड़े-बड़े राज्यों के समकक्ष गिना जाता था। वीरता किन्नूर की परम्परा थी।

यही तो सब कारण थे, जिससे कम्पनी सरकार को सम्पूर्ण दक्षिण भारत पर निष्कंटक प्रभुत्व स्थापित करने में किन्नूर हिमालय जैसी बाधा लगता था। जिस अँग्रेज शक्ति ने टीपू जैसे प्रचंड सुल्तान को पराजित कर लिया था, मराठों को दो बार युद्ध में हरा दिया था, उसको अपने संगठन तथा सतर्कता के कारण किन्नूर दुर्लंघ्य-सा लगता था। किन्तु अँग्रेज अपने स्वभाव के कारण किन्नूर के विरुद्ध दुरभिसंधि में लगे ही रहे और बड़ी से बड़ी हानि उठाकर भी किन्नूर को विजित करने की तैयारी करते रहे थे।

जब से हीरेमल्ल शेटी नामक एक वीर पुरुष ने अपनी योग्यता तथा वीरता के बल पर किन्नूर राज्य की स्थापना की थी, तब से ढाई सौ वर्ष या बारह पीढ़ियों से किन्नूर स्वाधीन चला आ रहा था। किन्नूर के स्वाधीनता प्रिय रणबाँकुरों की ज्वलंत देश-भक्ति ने किसी भी राजा अथवा नवाब को अपनी मातृभूमि की ओर आँख उठाकर भी न देखने दिया। तत्कालीन राज सत्ताओं ने किन्नूर की इस पवित्र मातृभूमि का सम्मान किया और संधिपूर्वक रहते हुए कोई छेड़छाड़ करने की मूर्खता नहीं की। किन्तु अँग्रेज तो उस समय सम्पूर्ण भारत पर एकछत्र साम्राज्य का स्वप्न देख रहे थे। भोग-विलास से जर्जर राजा-महाराजाओं तथा नवाब-सुल्तानों के लोभ, अयोग्यता तथा असंगठन का लाभ उठाकर उन्हें अपने वश में कर लेने के अभ्यास से उन्मत्त अँग्रेज किन्नूर को स्वतन्त्र कैसे देख सकते थे ? लाभ प्रति लाभ से उत्पन्न होने वाले लोभ को न रोक सकने वाले मनुष्य इसी प्रकार स्वार्थी, शोषक तथा अनीतिवान हो जाया करते हैं।

उस समय मल्लसर्ज नाम का राजा किन्नूर का शासक था। वृद्धावस्था के कारण वह राज-काज का भार भली-भाँति से वहन नहीं कर पाता था। किन्तु उसकी रानी चेन्नम्मा बड़ी ही कुशल, वीर तथा उत्साही महिला थी। गुरु सिद्दप्पा, मल्लप्पा शेट्टी तथा वेंकटराम नाम के तीन मंत्रियों की एक परिषद् के साथ लेकर रानी चेन्नम्मा शासन तथा प्रशासन का सारा काम स्वयं चलाती थीं। राजा की शिथिलता के कारण उसने राज्य प्रबन्ध में कोई कमी अथवा अव्यवस्था न आने दी। वह सबेरे तीन बजे उठतीं, नित्यकर्म, पूजा-प्रार्थना तथा जलपानादि से निवृत्त होकर आठ बजे राजकार्यों में लग जाती थीं और रात के नौ-दस बजे तक काम करती रहती थीं। कभी-कभी कार्य व्यस्तता के कारण दोपहर का भोजन तथा विश्राम उल्लंघित हो जाता था किन्तु रानी चेन्नम्मा इन व्यक्तिगत कष्टों की जरा भी परवाह नहीं करती थीं। वे चारों ओर से दिन-दिन बढ़ते हुए अँग्रेजों के खतरे को स्पष्ट देख रही थीं। वे राज्य को अँग्रेजों से बचाए रखने के लिए हर तैयारी के साथ तत्पर रहना चाहती थीं और चाहती थीं कि उसकी सम्पूर्ण जनता भी उस खतरे के प्रति सावधान रहे और पूरी तरह तैयारी करती रहे।

राजा को निर्बल समझकर राज्य में अवांछनीय तत्वों ने सिर उठाने का प्रयत्न किया। चोर, डाकू भी बढ़ने लगे किन्तु चेन्नम्मा ने सबका बुरी तरह दमन कर दिया। उसने सीमाओं तथा अरक्षित स्थानों पर चौकियाँ स्थापित कर दीं, जिनकी जाँच वह जब-तब वेश बदलकर स्वयं करने जाती थीं। नगरों में तो नागरिकों के से पुरुष वेश में घूमकर जनता की दशा और अवांछनीय तत्त्वों का पता लगाना, उनका नित्य प्रति का मनोरंजन बन गया था। ग्रामों में सुरक्षा दलों और नगरों में सेवा-सैनिकों के संगठन बनाकर पूरे राज्य में सैनिक प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया। शस्त्रागारों तथा सेना की नई व्यवस्था की।

शिक्षा-संस्थाओं का उन्होंने स्वयं निरीक्षण किया। उनका पाठ्यक्रम निश्चित किया और वीर-भावना से ओत-प्रोत ज्वलंत-राष्ट्रीयता का एक नवीन-पाठ्यक्रम बढ़ा दिया। विद्यालयों से लेकर सैनिक छावनियों तक में एक राष्ट्रीय-प्रार्थना को अनिवार्य कर दिया, जिसके अन्त में सारे सैनिक तथा विद्यार्थी इस सामूहिक संकल्प को नित्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दोहराते थे—"हे परम पावन जननी जन्मभूमि ! हम सब तेरे बच्चे तेरी शपथ लेकर यह संकल्प करते हैं कि यदि किसी ने तेरी भूमि पर आक्रमण करने का दु:साहस किया तो हम प्राण-पण से तब तक लड़ते रहेंगे, जब तक एक-एक शत्रु का सिर धराशायी न हो जायेगा। हमारे रक्त में तेरा अन्न-जल समाया हुआ है, उसका आभार हम सब संकट के समय प्राण देकर भी चुकायेंगे।"

इस प्रकार बुद्धिमती तथा उद्योगशीला रानी चेन्नम्मा ने सामयिक परिस्थितियों तथा दूर-आगत भविष्य को दृष्टि में रखकर अपने राज्य को कील-कांटों से दुरुस्त कर दिया। रानी चेन्नम्मा राज्य की न केवल महत्त्वपूर्ण इकाई ही बन गई प्रत्युत वह सर्वाधिकार सम्पन्न शासिका मानी जाने लगी।

सारी सावधानी तथा सतर्कता रखने पर भी साधु हृदया रानी चेन्नम्मा यह बात अवसर निकल जाने पर जान सकी कि उसकी मंत्रि-परिषद् के दो मंत्री मल्लप्पा शेट्टी और वेंकटराम आस्तीन के साँप बनते जा रहे हैं। वे स्वार्थ के वशीभूत होकर विश्वासघाती और देशद्रोही बन रहे हैं। नि:सन्देह यदि यह दो अभाग्य-भोगी मंत्री विश्वासघात न करते तो राष्ट्र-नायिका का वह गौरव रानी चेन्नम्मा को मिलता जो तैंतीस वर्ष बाद रानी लक्ष्मीबाई ने पाया। भारत का स्वातन्त्र्य संग्राम जो १८५७ में प्रारम्भ हुआ वह १८२४-२५ में प्रारम्भ हो गया होता और अवध-राज्य की तरह वह महासम्पन्न सुदूर दक्षिण के वेलगाँव और धारवाड़ नगरों के बीच बसा छोटा-सा किन्नूर राज्य बरबाद न होता, जिसकी बरबादी और लूट के बाद भी जहाँ से अँग्रेजों को तीन हजार घोड़े, आठ सौ हाथी, दो हजार ऊँट, छत्तीस तोपें और पाँच हजार से ऊपर बन्दूकों के साथ अतुल समर-सामिग्री मिली थी और जिसके राजकोषों की हीरे-जवाहरतों से भरी सम्पत्ति बड़े-बड़े चार सौ छकड़ों पर लादकर ले जाई गई थी।

राजा मल्लसर्ज की मृत्यु हुई और आयु तथा अनुभव में अपरिपक्व युवराज रुद्रसर्ज गद्दी पर आया। दोनों दुष्ट मंत्रियों ने उसे अपने मायाजाल में फँसाकर प्रभाव बढ़ा लिया और राजनीति को मनमाने ढंग से घुमाने लगे। उन्हीं दिनों अँग्रेजों तथा मराठों के बीच द्वितीय युद्ध छिड़ गया। मराठों के नायक पेशवा ने सहायता के लिए रानी चेन्नम्मा को लिखा। रानी ने तुरन्त मल्लप्पा शेट्टी वेंकटराय के नेतृत्व में सहायता कुमुक रवाना कर दी। किन्तु इन दोनों विश्वासघातियों के प्रपंच से उस सहायता का लाभ अँग्रेजों को पहुँचा। मराठे हार गए और अँग्रेजों का प्रभाव बढ़ गया। अँग्रेजों ने उन दुष्ट मंत्रियों के हमराह आई हुई किन्नूर की बहुत-सी ताकत अपने नीचे दबाकर रानी चेन्नम्मा के सामने संधि की शर्तें रख दीं। रानी विवश थी, उसे संधि का प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। किन्तु जब कुछ समय बाद अँग्रेजों ने अपना राजनीतिक प्रतिनिधि रखने और उसके परामर्श से शासन चलाने का संशोधन रक्खा, तब रानी से सहन न हो सका। इसको वह किन्नूर की प्रभुसत्ता में हस्तक्षेप मानती थी, निदान उसने क्रुद्ध होकर पूरी संधि ही रद्द कर दी। अँग्रेजों को अपनी सेना हटानी पड़ी। किन्नूर फिर पूरी तरह स्वाधीन हो गया।

किन्तु यह अँग्रेजों तथा किन्नूर के संघर्ष की विशाल भूमिका थी। रानी इससे अनभिज्ञ न थी। रुद्रसर्ज इतना बीमार हो गया कि उसके बचने की कोई आशा नहीं रही। उसके कोई संतान न थी। इसलिए उसने रानी चेन्नम्मा के परामर्श से गुरुलिंग मल्लसर्ज नामक एक बालक को गोद ले लिया। इस समारोह के दूसरे दिन ही रुद्रसर्ज स्वर्ग सिधार गया।

किन्नूर के राजा की मृत्यु और उसके दत्तक लेने का समाचार दक्षिण के कम्पनी प्रतिनिधि थैकरे के पास पहुँचा। तत्काल उसने अनाधिकारी होते हुए भी उस दत्तकता को अवैध घोषित कर दिया और चेन्नम्मा को लिख भेजा कि राज्य का सारा शासन भार दीवान मल्लप्पा शेट्टी को सौंप दिया जाये। रानी ने थैकरे को स्पष्ट लिख दिया—"थैकरे को कोई अधिकार नहीं है कि वह हमारे राज्य-प्रबन्ध अथवा उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप करे।"

मुँह तोड़ उत्तर पाकर थैकरे के कप्तान ब्लैक, कप्तान सिविल और लेफ्टीनेंट डेटन के नेतृत्व में एक बड़ी सेना किन्नूर को घेरने के लिए भेज दी। रानी तो प्रतीक्षा कर ही रही थी। उसने नगर-नगर में युद्ध घोषित कर दिया और राष्ट्रीय-प्रार्थना के बाद वाली प्रतिज्ञा देश-भक्त नागरिकों तथा सैनिकों के बीच गूँज उठी—"हम लोग तब तक लड़ेंगे, जब तक ब्रिटिश लोगों के सिर धराशायी नहीं हो जाते। हे माता ! तेरा अन्न खाया, तेरा रक्षण पाया है। इसलिए उसको आज प्राण देकर उऋण करेंगे।"

वीर पुरुष के वेश में रानी का नेतृत्व पाकर किन्नूर के रणबाँकुरे अँग्रेजों पर टूट पड़े। घमासान युद्ध हुआ और शत्रु पराजित होकर भाग खड़ा हुआ। किन्तु तभी समाचार पाकर सेनापति थैकरे स्वयं एक बड़ी सेना लेकर आ पहुँचा। पुन: घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। इधर रानी, उसके सरदारों तथा सैनिकों की बन्दूकें व तलवारें शत्रु का सफाया कर रहीं थीं और किले में चेन्नम्मा की सजाई तथा मोर्चों पर जमाई तोपें दुश्मन पर गजब ढा रही थीं। रानी के विश्वस्त सरदार रामण्या की गोली से सेनापति थैकरे का काम तमाम हो गया। उप-सेनापति चैपलिन घबराकर भागने को हुआ कि सहसा किले की तोपों ने दहाड़ना बन्द कर दिया। चैपलिन का साहस बँध गया किन्तु रानी आश्चर्य से जड़वत् हो गई। वह सहसा किले का निरीक्षण करने चल पड़ी। रानी को जाते देखकर सरदार हताश हो गए और सैनिक निराश। फिर भी वे किले की ओर हटते हुए युद्ध करते रहे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यद्यपि रानी मल्लप्पा शेट्टी और वेंकटराय जैसे गद्दारों को फाँसी दिलवा चुकी थी लेकिन अँग्रेजों ने राज्य के लालच देकर अनेक देशद्रोही तथा विश्वासघाती पैदा कर रक्खे थे। रानी जब किले में पहुँची तब पता चला कि समर-भंडारी शिवसप्पा ने बारूद में गोबर तथा बालू मिलवा दी है। इसी के कारण तोपें बेकार हो गई हैं। रानी ने तलाश किया किन्तु उस अव्यवस्था में वह विश्वासघाती न मिला। रानी जौहर की भावना से किले से बाहर की ओर चली ही थी कि अँग्रेज सेना किले में घुस आई। देशद्रोही शिवसप्पा ने अँग्रेजों से राज्य पाने के लालच में किले का सिंह द्वार खोल दिया था। एक गद्दार के कारण सुखद नाटक का उपसंहार दुखांत हो गया।

रानी अपने सरदारों के साथ कैद कर ली गई। सरदारों को तो तत्काल फाँसी दे दी गई किन्तु रानी चेन्नम्मा को पूरे परिवार के साथ कुछ दिन कैद रखकर और बाद में विष देकर मार डाला गया। इस प्रकार यद्यपि किन्नूर की वीर रानी चेन्नम्मा तो बहुत पहले चली गई किन्तु उसका यश आज भी विद्यमान है और आगे भी रहेगा। वह भारत की पुत्री-रत्न महान् लक्ष्मीबाई से किसी प्रकार कम न थी। अस्तु, उन्हीं के समान वे श्रद्धा एवं आदर की पात्रा हैं।

वीरांगना—भीमाबाई

होल्कर स्टेट इंदौर रियासत के साथ दो नारी रत्नों के नाम जुड़े हुए हैं। इतिहास के ये दो उज्ज्वल रत्न अपनी कभी लुप्त न होने वाली आभा से आज भी दिप-दिप करते चमक रहे हैं। उनमें से एक हैं कुशल प्रशासक और प्रजावत्सला रानी अहिल्याबाई होल्कर और दूसरी हैं भीमाबाई होल्कर। वीरता, कौशल, संगठन और गुरिल्ला युद्ध के माध्यम से अँग्रेजों के नाकों दम करने वाली भीमाबाई होल्कर।

भीमाबाई उन्हीं वीरवर यशवंतराव होल्कर की यशस्वी पुत्री थी, जिन्होंने १८०४ में मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तरप्रदेश को जोड़ने वाली उलट प्रवाही सलिला-चंबल के तट पर ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के सेनानायक कर्नल मोन्सुन को करारी हार का कड़वा घूँट पीने को विवश किया था। पर यशवंतराव की मृत्यु के बाद उनका पुत्र जो होल्कर स्टेट का अधिपति बना, वह उतना वीर और योग्य नहीं था। अत: १८१७ में महीदपुर की लड़ाई में अँग्रेजी सेनानायक कर्नल मालकम कर्नल मोन्सुन के समय की पराजय का बदला लेने में सफल हो गया।

इसे देश का दुर्भाग्य ही कहना होगा कि सम्राट हर्ष के पश्चात् भारतवर्ष को एक सुदृढ़ शासन के रूप में संगठित करने का प्रयास इने-गिने लोगों ने किया। उसका तात्कालिक प्रभाव भी हुआ। परन्तु फिर थोड़े समय में वही ढर्रा चलने लगा, अलग-अलग रहने का। अकेला चाहे कितना ही धीर, वीर, सुयोग्य क्यों न हो, अंतत: अकेला है। सामूहिकता का लाभ उठाने के बजाय पृथकता की हानिकारक नीति अपनाकर हम भारतवासी आज तक दु:खी होते आ रहे हैं। जबकि इतिहास इस बात को चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है—व्यक्तिवादी नहीं समाजवादी बनो। शक्ति व्यक्ति में भी है पर समाज की शक्ति उससे हजार गुना बड़ी है। उठना है तो समाज को उठाओ। अकेले उठने से कुछ अधिक बनता-बिगड़ता नहीं।

सत्रहवीं शताब्दी में समर्थ गुरु रामदास ने ऐसी जन चेतना पैदा की, जिससे भारत एक समर्थ महाराष्ट्र बने। शिवाजी ने उस चेतना से लाभ उठाया। समर्थ अपने लिए संन्यासी नहीं बने थे। अपने श्री, सम्मान और उत्कर्ष के लिए या आत्मकल्याण के लिए वे विवाह की वेदी से नहीं उठ भागे थे और न उनके शिष्य शिवाजी ने अपने यश और श्री के लिए राज्य का गठन किया था। वरन् वे तो शक्तिशाली भारत महाराष्ट्र के स्वप्न को साकार करने के लिए कर्मरत हुए थे। उनके उद्योग का फल तो निकला। उनके वंशधर इतने शक्ति सम्पन्न हुए कि सोये भारत में पुन: एक जाग्रति दिखाई देने लगी। कभी भारत भर में उनकी तूती बोलती थी। वे सभी राजाओं से चौथ वसूलते थे। पर जहाँ संगठन शक्ति और महाराष्ट्र के महान उद्देश्य को भुलाना आरम्भ हुआ, वहीं से पराभव होने लगा-भारत महादेश का भी और मराठों का भी। पहले वे एक थे और अब चार हो गए। बँटकर-होल्कर, सिंधिया, भोंसले और गायकवाड़ हो गए, मराठे नहीं रहे। नाम से भले ही कहलाते रहे हों पर उद्देश्य से तो च्युत हो चुके थे।

इसी बँटकर बिखर जाने की भूल का परिणाम हर एक को भुगतना पड़ा। होल्कर स्टेट के यशवंतराव पराक्रमी थे तो वे अँग्रेजों के दाँत खट्टे करते रहे पर उनके दिवंगत होते ही इंदौर स्टेट पर अँग्रेजों का वर्चस्व स्थापित हो गया। किन्तु भीमा बाई इस पराजय को भला कैसे स्वीकार कर सकती थीं ? महीदपुर में हुई पराजय के समय वह पतिगृह में थी। वह कभी पराजय और परतंत्रता को स्वीकार करने वाली नहीं थी, सो उतर पड़ी मैदान में, सब सुख-सुविधाओं को छोड़कर।

उसने वहीं से गिनना आरम्भ किया, जहाँ से महाराष्ट्र का शुभारंभ हुआ था। भीमा बाई ने भी छत्रपति शिवाजी की छापामार युद्ध कला का मार्ग अपनाया। उसने थोड़ी-सी सेना संगठित करके छापामार युद्ध करना आरम्भ किया। अँग्रेजी खजाने, चौकियाँ और रसद लूटी जाने लगीं। इन्दौर स्टेट पर अधिकार करके भी वे उसे भोग नहीं सके, जब तक भीमा बाई जीवित रही।

एक महिला द्वारा वर्षों तक ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी सरकार को नाकों दम किए रखने, हमारे इतिहास में छिपकर रहने और पुरुष दल का संगठन-संचालन करने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की यह अनौखी मिसाल है। अँग्रेज हैरान थे, परेशान थे कि जाने कहाँ से भीमा बाई के साथी छापामार योद्धाओं की टुकड़ी आती है और किसी भी चौकी पर, जाते हुए खजाने पर, रसद पर एकाएक आक्रमण करके उसे लूट ले जाती है। उनका राज्य होते हुए भी उनकी कोई बात चलती नहीं थी। किसी भी चौकी पर वे अपना स्थायी प्रभुत्व नहीं रख सके थे।

सर मालकम की रातों की नींद हराम हो गयी। ठीक औरंगजेब के लिए शिवाजी के आतंक की तरह भीमा बाई के छापामार युद्ध से कर्नल मालकम परेशान था। उसने प्राण-पण से प्रयत्न किया कि वह भीमाबाई को पकड़ सके, पर भीमा उस मिट्टी की नहीं बनी थी कि वह अँग्रेजों के हाथ आ जाती। वह तो उन्हें स्टेट से भगाना चाहती थी पर पर्याप्त शक्ति न होने से उसने इस लम्बे तरीके को हाथ में लिया था।

भीमाबाई की शक्ति बढ़ती जा रही थी, मालकम को लगने लगा था कि उसे भागना पड़ेगा। उसे पकड़ने के लिए उसने राज्य में गुप्तचरों का जाल-सा बिछा दिया। पर जब तक उसकी उपस्थिति की सूचना उस तक पहुँचती, तब तक वह स्थान बदल चुकी होती थी। भीमाबाई का यह वन-वन भटकना महाराणाप्रताप द्वारा अपनायी गयी वन-साधना जैसा ही दुष्कर और दुर्वह कार्य था, जिसे वह अपना स्वतन्त्र धर्म समझकर पाल रही थी। इस प्रकार के जीवन में शारीरिक कष्टों का आना तो सहज स्वाभाविक है। पर इसमें भी एक आत्मिक सुख मिलता है, जो इन कठिनाइयों से कई गुना महत्त्वपूर्ण होता है। इस सुख का स्वाद आदर्शों के पथ पर चलने वाले ही जान सकते हैं। सत्य तो यह है कि सुख और दु:ख तो मन की वस्तु हैं। एक जिसे सुखकारक मानता है, वही किसी अन्य के लिए दु:खकारक भी हो सकता है। अत: इस सम्बन्ध में विवेक से काम लेना ही हितकर होता है।

एक दिन दुर्योग से भीमाबाई और उनके एक साथी पर, आखेट के लिए गए हुए सर मालकम की दृष्टि पड़ गयी। सर मालकम ने देखा कि अब वे अपने सिर दर्द से छुटकारा पा सकेंगे। यही सोचकर उन्होंने तुरन्त उनके चारों ओर घेरा डाल दिया। भीमाबाई के संकेत पर उनका साथी सैनिक भाग खड़ा हुआ। मालकम भीमा के आत्म-समर्पण को सुनिश्चित जान अत्यधिक प्रसन्न हो उठा। उसने सोचा कि वह अँग्रेजीराज्य की इस सिर दर्द को जीवित ही पकड़ लेगा। इसी आशय से अपना घेरा निरन्तर तंग करता गया। भीमा अविचलित भाव से खड़ी हुई मालकम की तैयारी को तौल रही थी। निरन्तर सिमटते सिपाहियों का घेरा जब बहुत संकुचित हो गया, तो उसके लगाम के संकेत पर घोड़े ने ऐड़ लगाई। घोड़े की टाँगें ठीक मालकम के सिर की ओर उठीं। उससे बचने के लिए हड़बड़ी में मालकम इधर-उधर हुआ तब तो उसका घोड़ा छलाँग लगाकर घेरे से बाहर निकल चुका था। बाहर निकलकर वह जो सरपट भागा कि मालकम के सिपाही उसकी छाया भी न छू सके।

भीमाबाई जब तक जीवित रही, वह विदेशी साम्राज्य लिप्सु अँग्रेज-कम्पनी-सरकार के अफसरों के लिए सिर दर्द बनी रही। स्वतन्त्रता के लिए उसके और उसके साथियों ने अपार दु:ख और कष्ट झेला किन्तु अपने प्रयासों द्वारा स्वातन्त्र्य ज्योति को उस समय भी प्रज्ज्वलित रखा, जिस समय सब ओर अधंकार ही अधंकार था। भीमा बाई के द्वारा जलायी गयी यह ज्योति भविष्य में प्रखर प्रकाश के रूप में उद्भासित होकर रही। उनका बलिदान व्यर्थ नहीं गया। महाकवि रवीन्द्र के 'एकला चलो' का मन्त्र भी आदर्शोन्मुख व्यक्तियों के लिए कम प्रेरक नहीं है। आज के समय में भी ऐसी स्थिति हो सकती है—किसी क्रान्तिधर्मी के, आदर्शोन्मुख आत्मवादी के सामने। जब वह देखता है कि जमाना किसी और ही दिशा में जा रहा है, उसकी टेर सुनते हुए भी अनसुनी की जा रही है तो वहाँ भीमाबाई का व्यक्तित्व और कृतित्व उसे सहारा देता है, प्रेरणा-प्रकाश देता है।

देश के लिए नृत्य-गान और देश के लिए बलिदान—अजीजन

कानपुर की एक साधारण नर्तकी—अजीजन। पेरो नाम पर वह नाच-गाकर लोगों का मनोरंजन करती और अपने गुजारे के लिए अर्थ जुटाती परन्तु भावनात्मक स्तर पर देश के प्रति उसमें अगाध प्रेम था—अँग्रेजों के प्रति प्रचण्ड आक्रोश और आजादी के लिए मर मिटने की तमन्ना। घटना उस समय की है जब सन् १८५७ की ऐतिहासिक क्रान्ति के स्वर्ण पृष्ठ खून और लोहे से काल की छाती पर लिखे जा रहे थे।

सन् ५७ की क्रान्ति और स्वतन्त्रता-संग्राम के सूत्रधार तात्याटोपे थे और उनकी एक सहयोगिनी थी, अजीजन। इन दोनों ने मिलकर नानासाहब तथा झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को अँग्रेजों के खिलाफ़ तैयार किया था। राजनीति के खुले खिलाड़ी होने के कारण तात्या टोपे को हर कोई जानता था परन्तु अजीजन उतनी सामने नहीं आयी। उसका काम गुप्त रीति से दबे-छुपे चलता था। उसके नृत्य गान अँग्रेज छावनियों में चलते थे। उनका विश्वासपात्र बने रहने तथा गुप्त सन्देश प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक और उपयुक्त भी था।

कलकत्ता से मेरठ तक दोनों ने मिलकर भारतीय सेना की क्रान्ति आरम्भ करने की तिथि, उस समय क्या और कैसे करना है, किन स्रोतों से उन्हें सहायता मिलती रहेगी तथा किस प्रकार बिगुल बजेगा ? यह सब अच्छी तरह समझा दिया गया था। कमल और रोटी का प्रतीक लेकर स्वतंत्रता-संग्राम के महायज्ञ का संदेश लेकर दोनों ने बड़ी नियोजित पद्धति से भारतीय सैनिकों तक यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

संदेश पहुँचाया था। उन दिनों टोपे कानपुर में थे-किसी और कारणवश बाहर जाना पड़ा। यात्रा की तैयारी करते हुए तात्या टोपे ने अजीजन को बुलाया और कहा—"अजीजन। मैं तो एक आवश्यक कार्य से जरा बाहर जा रहा हूँ। कब लौटूँगा, कुछ कह नहीं सकता। परन्तु तुम्हें मेरा एक अत्यावश्यक कार्य करना होगा।"

"मैं भारत-माता की स्वतन्त्रता के लिए समर्पित हूँ श्रीमान् उसी के लिए गाती हूँ और उसी के लिए नाचती भी हूँ। यह तो आपसे छुपा है नहीं।"

"छुपा तो नहीं है और यह काम भी देश के लिए ही तुम्हें करना है।"

"आज्ञा कीजिए।"—अजीजन आतुरता से बोली।

"अजीजन ! आज्ञा नहीं भाई का परामर्श है। मेरे जाने के बाद तुम्हें यहीं रहना है। यहाँ की छावनी के अँग्रेजों का मित्र बनना है और उनकी सभी इच्छायें पूरी कर उनके राजों को जानना है और उन राजों को हम तक पहुँचाना है।"

"मित्र बनने और राज जानने की बात तो समझ में आती है भाई परन्तु उनकी इच्छा अजीजन ने कहा।

"कोई जरूरी नहीं। पर जरूरत पड़े तो देश के लिए"—तात्या का इतना कहना था कि अजीजन ने स्वीकृति सहमति सूचक मुद्रा में अपना सिर हिलाया।

तात्या टोपे कानपुर छोड़कर चले गये। अजीजन अपने भाई का सौंपा हुआ कार्य बड़ी मुस्तैदी के साथ करने लगी। उसने बड़े गुप्त से गुप्त सन्देश क्रान्तिकारियों के पास भेजे। इन्द्रिय वासना और नाचरंग के गुलाम अँग्रेजों का मुँह इस प्रकार खुलवा लेना मुश्किल नहीं था। फिर वह तो नर्तकी थी। वह क्या इन बातों को क्रान्तिकारियों तक पहुँचायेगी ? उस पर विश्वास भी सब सहज ही कर लेते थे। कानपुर की छावनी से सम्बन्धित नितान्त गोपनीय संदेश जब क्रान्तिकारियों के हाथ लगे और स्वतन्त्रता-संग्राम का शंखनाद हुआ, तो उन सूचनाओं के आधार पर कानपुर में उन्हें बड़ी सफलतायें मिलीं।

अपनी गुप्त स्थिति को इस प्रकार प्रकट होते और क्रान्तिकारियों द्वारा इन स्थितियों से लाभ उठाते देखकर अँग्रेज अधिकारियों का माथा ठनका। पहले तो उनका सन्देह अपने ही लोगों पर गया। शायद हमीं में से कोई देशद्रोहियों के साथ मिल गया हो। स्वतन्त्रता की माँग करने वाले क्रान्तिवीर उनकी दृष्टि में देशद्रोही तो ही हो सकते हैं। सो खोज तलाश हुई परन्तु कुछ नहीं मिला और उधर स्थिति नित-प्रतिदिन खराब होती जा रही थी। आखिर एक दिन अजीजन रंगे हाथों पकड़ी गयी और उसे सबके सामने अमानुषी पीड़ा पहुँचाई गयी। उससे क्रान्तिकारियों के राज भी पूछे गये। परन्तु पीड़ा सहकर भी उसने अपना मुँह नहीं खोला। आखिर एक गोरे अधिकारी से हँसते-हँसते यह वीरांगना प्राणोत्सर्ग कर गयी। देश के लिए नाचने गाने वाली अजीजन की मृत्यु भी देश के लिए ही हुई।

नीलकण्ठ बन विष पिया औरों को अमृत बाँट दिया—

आम्रपाली

बौद्धकालीन-सभ्यता और इतिहास के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान रखने वाले शिक्षित व्यक्ति जब भी आम्रपाली का नाम सुनते हैं, तो आँखों के सामने एक ऐसा नारी चित्र उपस्थिति होता है, जिसने वैभव-विलासिता और सुख-सुविधाओं के प्रलोभन में आकर अपने शील और चरित्र को बाजार में बिकने के लिए खड़ा कर दिया हो। परन्तु वस्तुत: ऐसा नहीं था। धर्मचक्र प्रवर्तन के लिए स्वयं को समर्पित करने से पूर्व तक आम्रपाली ने नगरवधू का-वेश्या का जो जीवन जिया, उसमें उसकी विवशता और तत्कालीन समाज की हीन व्यवस्था ही दोषी दिखाई देती है। आम्रपाली के जीवन वृत्त का संम्पूर्ण अध्ययन किया जाय तो प्रतीत होगा कि उन्होंने "नीलकण्ठ बन विष पिया और औरों को अमृत बाँट दिया" के नारी आदर्श को चरम रूप से अपने जीवन व्यक्तित्व में साकार कर लिया था।

वह एक राज पुरुष की अवैध सन्तान थी, जिसको माता ने कुमारी अवस्था में गर्भ में धारण कर लोकापवाद के भय से एक कूड़े के ढ़ेर पर फेंक दिया था। तत्कालीन समाज में इस प्रकार की घटनायें सामान्य थी, इसलिए लोगों में इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। परन्तु बालिका कुछ विशेष ही सुन्दर थी, सो राजमहल के एक कर्मचारी का ध्यान अनायास ही उसकी ओर आकृष्ट हो गया। दूसरे वह कर्मचारी निस्सन्तान भी था, इसलिए उसने शिशु को अपने घर ले जाना उचित समझा। नवजात शिशु को उक्त प्रहरी उन्हीं वस्त्रों में अपने घर ले गया और अपनी पुत्री की तरह पालने पोसने लगा। प्रहरी की प्रौढ़ा पत्नी भी इस प्रकार मातृत्व की आकांक्षा पूरी होती देख रोमांचित हो उठी और अपना समग्र वात्सल्य उस पर लुटाने लगी।

कुछ समय बाद राज-सेवा से निवृत्त होकर दम्पत्ति अपने पैतृक गाँव में जा बसे और वह कन्या भी, आगे आम्रपाली के नाम से विख्यात हुई। बालिका अपने अभिभावक माता-पिता की देख-रेख में बढ़ती रही। जन्मजात ही वह विशिष्ट राजपुरुषों की सन्तानों के समान सुन्दर थी और जब बचपन की सीमा लाँघकर कैशोर्य में पदार्पण किया तो यौवन की सहजता उसमें अपूर्व व अनुपमेयता के साथ रूप-सौन्दर्य भी बढ़ने लगा। असाधारण रूप से बढ़ती जा रही किशोरी की सुन्दरता को देखकर उसके अभिभावकों को कभी यह चिन्ता भी होती थी कि कहीं राजनियमों के अनुसार आम्रपाली को नगर वधू न बना दिया जाय। उस समय वैशाली में यह प्रथा थी कि जो लड़की सुन्दर और रूपवती

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो—राजपुरुष चाहें तो उसे नगर वधू के रूप में घोषित कर सकते हैं। यद्यपि नगरवधू को राजसी सुख-सुविधायें और सम्पूर्ण उपलब्ध विलास सामग्रियाँ उपलब्ध करायी जाती थीं परन्तु एक प्रतिबन्ध ऐसा था, जो उसके समग्र व्यक्तित्व को कलंकित कर देता था और वह यह कि घोषित नगर वधू किसी से विवाह नहीं कर सकती थी तथा उस पर राज्य के सम्पूर्ण नागरिकों का अधिकार समझा जाता था। आम्रपाली के साथ भी यही दुर्भाग्य घटित हुआ।

यह अभिशप्त परम्परा तत्कालीन शासन-व्यवस्था की देन थी और यह भी निश्चित था कि उस शासन के जीवित रहते इस परम्परा का उच्छेदन नहीं किया जा सकता था। इसलिए आम्रपाली की मान्यता थी कि नगर-वधू की इस कलंकित निन्द्य नियम-व्यवस्था को बदलने के लिए बाहरी शक्तियों का सहारा लेना पड़ेगा। अब वह सहयोग किस रूप में प्राप्त हो सकता है, यह परिस्थितियों पर निर्भर करता था। उस समय तो आम्रपाली के लिए वह नारकीय जीवन ही एकमात्र यथार्थ था।

नगरवधू का उत्तरदायित्व भली-भाँति निभाया जा सके इसलिए आम्रपाली को नृत्य, गान, संगीत और अभिसार की कला-विधाओं का समुचित शिक्षण दिया गया। यह उसकी चारित्रिक विशेषता ही थी कि उसने इन कलाओं को पूरे मनोयोग के साथ सीखा। कला की दृष्टि से नृत्य-संगीत सीखना कोई बुरा भी नहीं है। ईश्वर की आराधना समझकर कला का अभ्यास किया जाय तो कला साधना भी आनन्द और कल्याण की आयोजना बनती है। वैशाली जनपद की ओर से योग्य तथा पारंगत कलाविद् उसके प्रशिक्षण हेतु नियुक्त किये गये और आम्रपाली ने पूरे मनोयोग, एकाग्रता, उत्साह और लगन के साथ उन अपने गुरुजनों के प्रति निष्ठा रखकर इन कलाओं में निष्णात सिद्धि अर्जित की।

नगर-वधू का सामीप्य सुख प्राप्त करने के लिए वैशाली नगर के बड़े-बड़े धनपति, राजपुरुष, अतिथिगण और उच्चाधिकारी आया करते थे। उनके मनोरंजन हेतु आम्रपाली को नृत्य-सभा में अपनी कलायें प्रस्तुत करनी पड़तीं परन्तु जब यह क्रम चल पड़ा तो कला निरानन्द ही सिद्ध हुई। उसमें वह आनन्द नहीं आता, जिसकी एक झलक शिक्षण के समय मिलने लगी थी। जिन दिनों वह नृत्य-संगीत सीख रही थी, उस समय तो लगता था कि इस साधना के अभ्यास से नगरवधू के नारकीय जीवन की समस्त यंत्रणायें समाप्त हो जायेंगी परन्तु वह आशा दुराशा ही सिद्ध हुई। इसका एक बहुत बड़ा कारण था कि कला दक्षता का प्रयोग जब साधना की दृष्टि से किया जाता है तो वह आध्यात्मीकृत हो जाती है और जब प्रयोग का उद्देश्य औरों को प्रसन्न करना, दूसरों को रिझाना बन जाता है, तो उससे विषाद ही जन्म ले सकता है। सप्तभूमि प्रसाद में होने वाले नृत्यगान समारोह—भाग लेने वालों के मनोरंजन के लिए ही तो किये जाते थे। उनका उद्देश्य अभिजात्य जनों की पाशविकता को तुष्ट करना ही तो था। इसलिए आम्रपाली को नृत्य-समारोह आध्यात्मिक रस से सिक्त होकर नहीं भौतिक ऐषणाओं को तृप्त करने के लिए ही आयोजित करने पड़ते थे। फलतः उनका निरानन्द विषादपूर्ण रहना स्वाभाविक ही है।

यद्यपि इस प्रकार के जीवन में आम्रपाली को सम्मान भी खूब मिला था। वैशाली के हर युवा कण्ठ में उनका ही नाम था और हर हृदय में उनकी सामीप्य तृष्णा। इस सम्मान की आम्रपाली को न अपेक्षा थी, न आवश्यकता। वे तो एक सामान्य नारी का सहज जीवन व्यतीत करना चाहती थीं। जिसमें पति के प्रति समर्पण कर सकें, अपने परिजनों के लिए कुछ त्याग कर सकें। घर-परिवार के सदस्यों के साथ अभाव, कष्टों और अत्यल्प ही सही सुख-साधनों का भी उपयोग कर सकें। यह एक सहज नारी की अभीप्सा थी, जो अतृप्त ही रह गयी थी और बार-बार सालती रहती थी। दाम्पत्य-प्रेम और पारिवारिक स्नेह की यह रिक्तता शरीर-सौष्ठव और मनोविलास के लिए टपकती हुई लारों के रूप में मिला सम्मान-प्रतिष्ठा और प्रणय-निवेदन से कहाँ भर सकती थी ?

आम्रपाली के प्रति प्रणय-निवेदन करने वालों की भी कमी नहीं थी। कई लोग अपना प्रेम प्रस्ताव लेकर उनके पास छलने के लिए आते थे परन्तु अपनी स्थिति का विश्लेषण करते हुए वे सदैव ऐसे लोगों को टालती रहीं, जिनका दृष्टिकेन्द्र उनका हृदय नहीं शरीर था। जिन्होंने आम्रपाली के हृदय पर अपनी दृष्टि गड़ाई थी, उन्हें तो निराश ही होना पड़ा, क्योंकि राजनियमों के अनुसार वे किसी एक की बनकर नहीं रह सकती थीं। ऐसे प्रेमाभिभूत जन अपनी छाती पर पत्थर डालकर ही चुप रह जाते और उनका परिचय यदा-कदा आम्रपाली को मिलता तो वे भी खून का घूँट पी कर रह जातीं। अन्तस् में निरन्तर चलते रहने वाले इन द्वन्द्वों में कभी पिसती और कभी साक्षी बनकर देखती रह जातीं। आम्रपाली उस अवसर की प्रतीक्षा करती जीवन व्यतीत करने लगी, जिसमें कि वे इस व्यवस्था पर प्रहार कर सकें।

उन दिनों जब भगवान बुद्ध का अवतरण हुआ था तथा वैशाली में लिच्छवी जनपद था। भारत कई राज्यों में बँटा हुआ था। मगध, कौशल, पाँचाल, आदि कई राज्य अलग-अलग भू-भागों में सीमित थे। इनका शासन राजतन्त्र पद्धति से होता और राज्यों के इतिहास में जैसा कि होता आया है, सीमा का विस्तार, प्रभुत्व का विस्तार और अपनी शक्ति का विस्तार करने के लिए छोटे-छोटे राज्य भी अपने पड़ौसी राज्यों को लीलने के लिए लार टपकाया करते थे। एक-दूसरे के पतन-पराभव के लिए तरह तरह के षड्यन्त्र रचते रहते। जिस समाज व्यवस्था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ने आम्रपाली से एक सुगृहिणी के रूप में जीने का अवसर छीना हो उसे समूल नष्ट करने के लिए वह जो भी कर गुजरना चाहती, मानवीय स्वभाव की दृष्टि से थोड़ा ही रहता। भारतीय नारी की आकांक्षा और स्वरूप से जो भी अवगत हैं, वे भली-भाँति जानते हैं कि उस स्वरूप में दृढ़ आत्म महिला अपने अस्तित्व की मूलसत्ता पर आघात होते देख नागिन सी फुफकार उठती है।

आम्रपाली ने फिर भी अपने जीवन का यह ध्येय ही बना लिया था कि जिस व्यवस्था ने उसे नगर वधू बनने के लिए विवश कर दिया था वह मिटे, ताकि भविष्य में किसी और आत्मनिष्ठ युवती को अपना व्यक्तित्व इस प्रकार तोड़ने के लिए रौंदना न पड़े। यह आकांक्षा पूरी कर पाना उन परिस्थितियों में रहते हुए बहुत कम सम्भव था, परन्तु आम्रपाली निरन्तर ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में थी और वह अवसर भी शीघ्र आया।

एक बार वन-विहार करते समय आम्रपाली की भेंट मगध सम्राट बिम्बसार से हुई। आकस्मिक रूप से वे एक ऋषि के अतिथि बने थे। एक-दूसरे का परिचय प्राप्त कर दोनों परस्पर आकृष्ट हुए थे और यह आकर्षण इस सीमा तक बढ़ा कि बिम्बसार ने आम्रपाली से प्रणय-निवेदन कर दिया—यही नहीं विवाह कर महारानी बनाने का भी वचन दिया। इस पर आम्रपाली ने कहा था-'देव, आप जो कह रहे हैं, वह न तो अपकी मर्यादा के अनुकूल है और न ही मेरे लिए उचित।'

'क्यों'—बिम्बसार ने पूछा ?

इसलिए कि आप मगध के अधिपति पद पर आसीन हैं और मैं वैशाली जनपद के निन्द्य कानून का शिकार हुई नगरवधू। आपको भावनाओं में बहककर ऐसा कदम नहीं उठाना चाहिए और मुझे अपने स्वरूप का स्मरण रखते हुए किसी एक का नहीं होना चाहिए।'

'भावनाओं की बहक नहीं यह तो तप्त हृदय की एक प्यास है,—बिम्बसार ने कहा—'जिसे केवल तुम ही बुझा सकती हो।'

'तो उसके लिए वैध उपाय ही काम में लाना चाहिए।'

'मैं तुम्हारे लिए अपना सम्राटपद छोड़ने के लिए भी तैयार हूँ।'

नहीं राजन् ! जिस हृदय की प्यास को आप प्रेम कह रहे हैं, वह कर्त्तव्य-पथ से विमुख होना नहीं सिखाती।

'तो फिर क्या करूँ ?'

'पहला तो यह कि जिस समाज-व्यवस्था ने मुझे यह घृणित जीवन दिया है, उस व्यवस्था को उलटने की साध मैं अपने मन में बहुत दिनों से पाले हुए हूँ। काश उस साध को पूरी करने में आप मेरा सहयोग दे सकें।'—आम्रपाली ने उपयुक्त अवसर जानकर अपना मन्तव्य कह ही डाला और बिम्बसार ने वचन दिया कि शीघ्र ही वह कुमुक लेकर आयेगा और वैशाली को रौंदकर आम्रपाली की आकांक्षा पूरी करेगा, जो वह भविष्य में किसी और को अपनी जैसी यंत्रणामयी स्थिति न भोगने देने के लिए रखती है। सम्राट ने यह आश्वासन दिया कि लिच्छवि-गणतन्त्र को समूल नष्ट कर आम्रपाली को राजगृह के महालय में पट्टराज महिषी पद पर अभिसिक्त करूँगा।

और युद्ध की तैयारियाँ चलने लगीं। इन्हीं दिनों आम्रपाली के मन में भीषण अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा। एक व्यक्तिगत प्रतिशोध और उत्पीड़न के लिए वह समूची व्यवस्था से विद्रोह कर रही है। समाज ने उससे जिस त्याग की अपेक्षा की थी, बलात् ही सही उसे करना पड़ा और उस त्याग का परिणाम भी यह हुआ कि वैशाली गृह-युद्ध की आग में झुलसने से बच गया। अब वह दूसरी आग लगाने जा रही है। यह ठीक है कि व्यक्ति अपने उत्पीड़न का बदला ले। प्रतिशोध और आक्रोश उठना भी स्वाभाविक है, परन्तु वह प्रतिशोध व्यवस्था में सुधार द्वारा ही लिया जाना चाहिए, न कि समाज को नष्ट करले।

आम्रपाली के सम्मुख यह तथ्य आया कि मगध देश की सेनाएँ वैशाली पर आक्रमण करेंगी तो वह व्यवस्था तो बदल जायेगी, जिसकी वह आकांक्षा करती है परन्तु उसकी बड़ी भारी कीमत जनपद को चुकानी पड़ेगी और वह होगी दासता के रूप में। मगध राज्य को इस परम्परा से कुछ लेना-देना नहीं भी हो सकता है, बिम्बसार अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार ही मुख्य रूप से चाहते हों, यह कौन जानता है ? और यह उनके लिए हर्ष का ही विषय हो सकता है कि आम्रपाली जैसी अपूर्व सुन्दरी भी उनके विलास कक्ष की शोभा बढ़ाये। माना कि वे उसे महारानी पद भी दे दें परन्तु परम्परावादी और अपनी मर्यादाओं की भक्त वहाँ की जनता क्या इस स्थिति को स्वीकार कर सकेगी कि एक-दूसरे राज्य की वेश्या अपने राज्य की अधिष्ठात्री बने और स्वीकार भी कर ले तो यह उसका व्यक्तिगत ही लाभ तो होगा, जो समाज की स्वतन्त्रता को बेचकर खरीदा जायेगा।

इस तरह के अन्तर्द्वन्द्व ने आम्रपाली को विक्षिप्त-सा बना दिया और उन्होंने समय के तकाजे को पहचाना कि समाज उनसे पुनःएक त्याग की अपेक्षा कर रहा है। इस द्वन्द्व के सम्बन्ध में बिम्बसार को तो कुछ पता था नहीं। अतः उन्होंने अपना नया निर्णय सम्राट बिम्बसार तक पहुँचाया।

युद्ध को टाला नहीं जा सका। युद्ध को टालने के लिए वैशाली तन्त्र के प्रतिनिधियों की ओर से कई प्रयास किए गये परन्तु उनका कुछ परिणाम न हुआ। अन्ततः

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

युद्ध का होना अवश्यम्भावी ही रहा। सैनिक नियमों के अनुसार आम्रपाली का आवास प्रतिबन्धित कर दिया गया। वैशाली के युवक अपने आपात्काल का कर्त्तव्य स्मरण कर योद्धाओं के वेश में आ गये। बाल-वृद्ध और गृहिणियाँ सभी अपने-अपने कर्त्तव्य और दायित्वों पर स्वत: ही दृढ़तापूर्वक नियुक्त हुए। युद्ध जिस दिन आरम्भ होना था, उस दिन आम्रपाली ने युवाशक्ति का आह्वान किया और वैशाली की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राण तक न्यौछावर कर देने को ललकारा।

यद्यपि इस युद्ध में विजय श्री वैशाली के हाथों में ही रही परन्तु इसका बड़ा भारी मूल्य चुकाना पड़ा। हजारों-लाखों लोग युद्ध की दारुण लपटों में जल-भुन कर खाक हो गये। वैशाली श्रीहीन हो गयी थी। इस प्रकार वैशाली को विजय के बाद भी पराजय की सी स्थिति में रहने को विवश होना पड़ा था। तब-युद्ध के बाद-सप्तभूमि प्रासाद के द्वार जो बन्द हुए तो पूर्ववत् कभी नहीं खुले। एक तो वैशाली की श्री, सम्पदा और शूरता जाती रही, दूसरे आम्रपाली को यह आत्मग्लानि भी निरन्तर सालती रही कि उसके कारण समाज को कितनी हानि उठानी पड़ी है ? प्रत्यक्षत: वह हानि के लिए उत्तरदायी नहीं ही थी, फिर भी थोड़ी-सी उत्तेजना देना ही उसे ग्लानि के सन्ताप से बचा न सकी, कुछ भी हो।

आठ वर्षों के बाद भगवान बुद्ध को भोजन निमन्त्रण देते समय लोगों ने आम्रपाली को जिस रूप में देखा था। वह दस वर्षों पूर्व देखे गये रूप से सर्वथा भिन्न ही था। उस समय आम्रपाली के यौवन पर ललचाई आँखें टिकती तो अब उस व्यक्ति के प्रति श्रद्धा, स्नेह और आदर के भाव से लोगों के मस्तक झुक जाते। आम्रपाली के त्याग की घटना वैशाली के किसी भी नागरिक से छुपी न थी। वर्षों बाद लोगों ने आम्रपाली को उस समय सप्तभूमि प्रासाद से फिर एक बार बाहर आते देखा था। पहले भी वे बाहर आया करती थीं परन्तु भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए जाते समय उनका जो रूप दिखाई दिया और पहले जो रूप दीखता, उन दोनों में एक ही व्यक्तित्व नहीं था। पहले आम्रपाली का जो रूप दिखाई देता था उसमें अन्दर ही अन्दर तो जलती थी आग और बाहर था रूप-सौन्दर्य जिसके उपभोग की लालसा हर आँख से झाँकती थी और अब जो आम्रपाली दिखाई दी, उसमें आग तो बुझ गयी थी—क्योंकि वैशाली के जन अपनी कामुकता और विलासिता का अभिशाप तथा उसके दुष्परिणाम भोग ही चुके थे। आम्रपाली के मन की प्रतिशोध अग्नि भी ठण्डी पड़ चुकी थी, सो अब वहाँ विद्यमान थी एक गहन आध्यात्मिक तृष्णा।

आम्रपाली ने तथागत को भोजन निमन्त्रण दिया और तथागत ने उसे स्वीकार कर लिया। उसके बाद नगर के धनपति और प्रतिष्ठित जन वहाँ आए। उन्होंने भी भगवान बुद्ध को भोजन का निमन्त्रण दिया। लगता था उस समय हर कोई यह चाहता था तथागत अपने प्रवास में पहले दिन भोजन हमारे यहाँ ही करें। परन्तु तथागत ने कहा—"परन्तु आज का प्रथम भोजन निमन्त्रण तो आम्रपाली ने दिया है और मैं उसे स्वीकार भी कर चुका हूँ।"

निमन्त्रण देने आये नागरिकगण अवाक् से रह गये। इस निमन्त्रण से उन्हें आम्रपाली की भविष्य योजना और उनके व्यक्तित्व का वह तथ्य सामने आया, जिसकी ओर वे अभी तक पीठ ही किये हुए थे। उनकी प्रतिक्रिया यही रही 'आम्रपाली ने आज भी हमें पीछे कर दिया।' तथागत अपनी शिष्य मण्डली के साथ जब सप्तभूमि प्रासाद में भोजन करने गये, तब आम्रपाली ने उनका भव्य-स्वागत किया। तथागत की यह परम्परा थी कि जिस घर में भी वे भोजन करते, उस गृहपति का कुछ न कुछ उपकार करते। यह तो निश्चित है कि भौतिक दीनता और अभाव नहीं, आत्मिक दैन्य ही व्यक्ति को ज्याहद पीड़ित करने वाला होता है और तथागत समाज के व्यक्ति के आत्मिक दैन्य को ही मिटाने, उसे समृद्ध बनाने के लिए ही उत्सुक रहते। फिर भी पारिवारिक समस्याओं से लेकर आर्थिक और व्यावहारिक कठिनाइयों तक के समाधान हेतु तथागत मार्गदर्शन देते। एक तो यह भारतीय संस्कृति के उस आदर्श का भी प्रतीक था, जो बिना दिये किसी से कुछ लेने को पाप समझता है। तथागत भी उसी आदर्श के अनुसरता थे, सो उन्होंने आम्रपाली से कहा—'अब तुम्हारी क्या इच्छा है।' 'एक ही इच्छा है भगवान। यदि पूरी करना चाहें।' 'कह।' तथागत ने पूछा।

'अब मेरा मन काषाय लेने का है। कोई भिक्षु मुझे अपना उत्तरीय प्रदान करे—आम्रपाली ने कहा। काषाय लेने का अर्थ है—भिक्षु बनने की आकांक्षा, प्रतिज्ञा और बौद्ध धर्म के नियमानुसार काषाय लेने वाले दीक्षार्थी को अपना संकल्प इस प्रकार घोषित करना पड़ता था। तब तक तो भगवान बुद्ध ने किसी भी स्त्री को दीक्षा लेने की अनुमति नहीं दी थी, कोई इस आकांक्षा से आयी भी नहीं थी। और यह पहला प्रसंग था, जब किसी महिला ने भिक्षु जीवन के लिए प्रार्थना की हो। भगवान बुद्ध ने उन्हें सहर्ष अनुमति दी।

उनके प्रधान शिष्य आनन्द ने आम्रपाली को उत्तरीय भेंट किया और वह बोली—भगवान एक और निवेदन है। प्रश्न सूचक भाव से तथागत ने आम्रपाली की ओर देखा, वह बोली—'देव यह सारी सम्पत्ति मेरे जीवन की कलुषित कमाई है। मैं चाहती हूँ कि धर्म कार्यों में इसका उपयोग कर इसे सार्थक बनाया जाय। अत: यह प्रासाद की रत्नराशि और समस्त संपदा अब मैं श्रीचरणों में समर्पित करती हूँ।'

एवमस्तु—भागवान बुद्ध ने कहा और आम्रपाली के जीवन का एक नया अध्याय खुला। अब वैशाली जनपद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का नगर-वधू कानून कठोर नहीं था कि आम्रपाली को बाध्य होकर उसका पालन करना पड़े। उन्होंने अपनी इच्छा और आत्मनिर्णय का अधिकार मिलते ही अपने आपको धर्म की एक विनम्र सेविका के रूप में समर्पित किया।

आम्रपाली का कायाकल्प हुआ एवं वह वेश्या से साध्वी बन गयी। अपना वैभव बुद्ध को समर्पित कर वह बुद्ध की हो गयी। बुद्ध ने जो पाया था, उसे पाने के लिए आत्मिक प्रगति के सोपानों को पार करने के लिए वह छोड़ना आवश्यक था, जिसे वे स्वयं छोड़कर आये थे।

वैभव से आम्रपाली को कोई मोह न रहा, पर वैभव के नाते लोग जिस आदर दृष्टि से उसे देखते थे, वह दृष्टि न रही। अंदर ही अंदर यह कामना बनी रहती थी कि सम्मान मिलना चाहिए। कहीं कोई कमी है एवं यही उसे दु:खी करती रहती थी।

एक दिन यह अभाव गहरी धुंध के रूप में अंतराल पर छाया रहा। उदास मन से वह एकान्त में लम्बे समय तक बैठी रही। तथागत ने अन्त:दृष्टि से सब कुछ देखा व समझ गये। स्नेह से पूछा तो वह धुंध पानी की बूँदों के रूप में आँसू बनकर टपक पड़ी।

स्नेह भरे स्वर में भगवान बोले—"भद्रे तुम संसार को जो दे रही थीं, वह देना तुमने बन्द कर दिया है। उसके बदले में संसार तुम्हें जो दे रहा था वह भी देना बन्द करेगा ही ? भौतिक सुख के चले जाने का क्या दु:ख मनाना ?"

आम्रपाली कुछ आश्वस्त हुई, पर प्रश्न भरी दृष्टि तथागत के चेहरे पर डालकर पुन: नीचे देखने लगी। तथागत पुन: बोले "देवि ! दैवी चेतना जब किसी को दिशा विशेष में बढ़ाना चाहती है, तो वह एक द्वार बन्द करती है, दूसरा खोलती है। बन्द होते द्वार पर ध्यान देकर दु:ख मत बढ़ाओ। उसे किसी खुलते नये द्वार का संकेत मानकर अपनी चेतना को उधर ही ले जाने का प्रयास करो। खुलते द्वार की कल्पना मात्र से उल्लास बढ़ता है और उधर ध्यान देने से दिव्य अनुदान प्राप्त होते हैं।"

निर्धारित क्रम से साधना चलती रही। एक दिन साध्वी निर्धारित प्रव्रज्या करके लौट रही थी। मार्ग में अंधेरा हो गया। निकट के गाँव में पहुँची और रात बिताने के लिए किसी भवन में आश्रय चाहा। वहाँ कोई उसे जानता नहीं था। साध्वी वेश में ही सही एक अनजान युवती को कौन आश्रय दे?

साध्वी सहज भाव से गाँव से लगे सरोवर के किनारे वृक्ष के नीचे सो गयी। आधी रात के बाद शीत बढ़ी, ठण्ड लगी तो नींद खुल गयी। आम्रपाली ने कसम खायी "यदि कोई भवन"—पर तभी तथागत का कथन याद आया—"बन्द होते द्वार को नहीं, खुलते द्वार को देख।"

दृष्टि खोज में चारों ओर घूमी। अचानक उसका ध्यान सरोवर पर गया। पूर्णचन्द्र मध्य आकाश में आ चुका था। सरोवर की कुमुदनी, खिल गयी थी। दृश्य रोचक लगा। कुमुदनी से भरा सरोवर मन्द वायु के साथ झूमती खिली कुमदनी हल्की-हल्की लहरें, प्रत्येक लहर पर नृत्य करती चाँदनी तभी स्मृति में बिजली-सी कौंधी। दृश्य बदल गया। साध्वी को दिखा कि एक दिव्य आदान-प्रदान चलो रहा है—स्थूल तथा सूक्ष्म प्रकृति के बीच। हर कुमुदनी निर्मल चाँदनी को गोद में भरे उल्लसित हो रही है। वायु के साथ सरोवर की हर लहर थिरक रही है। चन्द्रमा अनन्त रूपों में प्रत्येक कुमुदनी प्रत्येक लहर के साथ अठखेलियाँ कर रहा है।

उसे लगा मेरी हृदय-कुमुदनी भी खिल रही है। प्राण सरोवर की लहरों की तरह तरंगति हो रहे हैं। मेरा इष्ट दिव्य प्रकाश बनकर प्राण की हर तरंग पर श्वाँस की हर गति पर, हृदय की प्रत्येक धड़कन के साथ चंद्रिका की तरह एक हो रहा है। कण-कण झिलमिला रहा है—! साध्वी को पता ही नहीं लगा इस दिव्य आदान-प्रदान में वह कब समाधिस्थ हो गयी?

प्रात: पक्षियों के कलरव ने सूर्य रश्मियों के ऊष्मा भरे स्पर्श ने उसे ध्यान समाधि से जगाया। साध्वी उठी एक नये बोध के साथ। उस बोध में आम्रपाली पूरी तरह घुल चुकी थी। अब साध्वी ही शेष थी—बोध की आभा से दीप्त मुखमंडल और शान्त अन्त:करण युक्त।

वह पुन: उन स्थानों पर गयी, जहाँ रात्रि में स्थान नहीं मिला था। धन्यवाद देने—उन्हें जिनने द्वार बंद रखा था। यदि वह द्वार बन्द न होते, तो बुद्ध द्वारा बताये गये दिव्य बोध कराने वाले द्वार तक वह कैसे पहुँचती ?

अपने ध्येय के साथ समर्पित

श्रीमती भीकारुस्तमजी कामा

१८ अगस्त, १९०७ जरमनी में विश्व समाजवादियों का एक सम्मेलन। एक हजार से अधिक प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। श्रीमती भीकारुस्तमजी कामा को भी सम्मेलन में आमन्त्रित किया गया था। जब वह मंच पर बोलने के लिये खड़ी हुईं, सम्मेलन के नेता जीन जौरस ने उनका परिचय हमसफर प्रतिनिधि के रूप में दिया। श्रीमती कामा की ओजस्वी वाणी सुनकर श्रोताओं के हृदय में हलचल उत्पन्न हो गयी। लोग सोच रहे थे कि एक परतन्त्र देश की महिला स्वतन्त्रता के शंख-नाद को जन मानस में किस प्रकार फूँक रही है ? उन्होंने सभा-मंच से कहना शुरू किया "संसार के स्वतन्त्रता प्रेमियों को भारत की स्वाधीनता में अवश्य सहयोग देना चाहिए। भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य का बना रहना, वहाँ के निवासियों के लिए अपमानजनक ही नहीं, हर दृष्टि से देश के लिए विनाशक है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्होंने अपनी वाणी को जैसे ही विराम दिया, श्रोताओं का अपार समूह उन्हें बधाई देने के लिए मंच की ओर दौड़ पड़ा। इस बीच वह और अधिक भावावेश में आ गईं, उन्होंने अपनी साड़ी का पल्ला फाड़कर लहराते हुए कहा कि 'यह है मेरे राष्ट्र का ध्वज।' उपस्थित जन-समूह ने करतल-ध्वनि के साथ नारा लगाना प्रारम्भ किया—'भारत चिरायु हो।'

श्रीमती कामा प्रथम भारतीय नारी थीं, जिन्होंने राष्ट्र की एकता को एक सूत्र में बाँधने के लिए राष्ट्रीय-ध्वज की कल्पना की थी। इसमें तीन पट्टियाँ थीं। ऊपर हरी, बीच में पीली और नीचे लाल। हरी पट्टी में आठ तारे बने हुए थे, जो उस समय के ८ प्रान्तों के प्रतीक थे। पीली पट्टी पर देवनागरी लिपि में गहरे नीले रंग में 'वन्दे मातरम्' लिखा था। लाल पट्टी पर बाईं ओर एक श्वेत सूर्य, चन्द्रकला तथा तारा था।

भारत के राष्ट्रीय-ध्वज के प्रारम्भिक स्वरूप की निर्मात्री श्रीमती भीकारुस्तमजी कामा का जन्म बम्बई के एक पारसी परिवार में २४ दिसम्बर, १८६१ को हुआ था। सोरावजी पटेल अपनी पुत्री को एलेक्जेंड्रिया कन्या विद्यालय में शिक्षा दिलाकर पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के वातावरण में ढालना चाहते थे। पर कामा तो भारत की मिट्टी में जन्मी थीं फिर भारत की दयनीय स्थिति से अपने को बचाकर कैसे रख सकती थीं ? यह वह समय था जब स्त्रियों की कौन कहे, पुरुषों को घर से निकलकर अँग्रेजी सरकार के विरुद्ध कुछ कहना मृत्यु का आह्वान करना था। ऐसी विकट परिस्थितियों के बीच कामा ने जिस साहस का परिचय दिया है, वह प्रशंसनीय ही है।

कामा का संवेदनशील हृदय देशवासियों की दीनता देखकर चीत्कार कर उठा। वह घर की चारदीवारी को तोड़ समाज-सेवा के क्षेत्र में कूद पड़ीं। जब भारतीय राष्ट्रीय-काँग्रेस का प्रथम अधिवेशन हुआ, तब उनकी आयु केवल २४ वर्ष ही थी। उन्होंने अधिवेशन में भाग लिया। विभिन्न नेताओं के ओजस्वी भाषणों को सुनकर उनके जीवन की दिशा ही बदल गयी। अब वह सक्रिय समाज सेविका के रूप में सामने आयीं। सर्वप्रथम उन्होंने महिलाओं को संगठित करने का कार्य अपने हाथ में लिया। वे आश्रयहीन और निर्धन महिलाओं की आर्थिक सहायता ही न करतीं वरन् उन्हें अपनी दुर्दशा के प्रति सचेत भी करती थीं ताकि प्रत्येक महिला अपने आत्म-अभिमान को जाग्रत कर विदेशी सत्ता से जूझने के लिए कटिबद्ध हो जाए। उन्होंने धर्म, सम्प्रदाय तथा जात-पाँत के भेदभाव को भुला दिया था। उनके सामने एक ही उद्देश्य था देश को आजाद कराना और इसी उद्देश्य के लिए वे समर्पिता थीं।

पिता ने अपनी पुत्री के क्रान्तिकारी विचार तथा साम्राज्य विरोधी गतिविधियाँ देखीं तो उन्होंने उनके रुख को घर की ओर मोड़ने के लिए रुस्तम जी कामा से विवाह कर दिया। रुस्तम जी एक अच्छे वकील, विद्वान और सम्पन्न परिवार के युवक थे। बाद में वे बाम्बे क्रांतिदल के संचालक हुए। विवाह के बाद भी उनकी सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पति ने भी उनके किसी कार्य में रुकावट नहीं डाली । इसका परिणाम यह हुआ कि वे दूने उत्साह से अपने कार्य में जुट गयीं।

सन् १८९६ में देश में भयंकर महामारी फैली। लोग जीवन रक्षा के लिए अपना स्थान छोड़कर अन्यत्र जाने लगे। भीका जी अपने जीवन की तनिक भी चिन्ता न कर रोगियों की सेवा में जुट गयीं। उन्हें बदले में प्लेग की महामारी का शिकार होना पड़ा। जितना समय स्वास्थ्य लाभ होने में लगा, तब तक तो वह चुप रहीं, स्वास्थ्य होने पर वह पुनः सेवा कार्य में जुट गयीं। दूसरी बार फिर उन्हें खतरनाक बीमारी ने आ दबाया। सन् १९०१ में चिकित्सकों ने चिकित्सा हेतु लन्दन जाने की सलाह दी। पति ने भी यह सोचकर कि बाहर जाने से उन्हें स्वास्थ्य लाभ तो मिलेगा ही साथ ही वे राजनीति से अलग हो जायेंगी, लंदन भेज दिया।

श्रीमती कामा इंग्लैण्ड में कुछ भारतीय क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आयीं, जिससे उनके विचार और सुदृढ़ होते चले गये। वे स्वाधीनता आन्दोलन की प्रबल समर्थक बन गयीं। स्वस्थ होकर जब वे भारत लौटने वाली थीं, भारतीय क्रान्तिकारी श्यामजी वर्मा से उनकी भेंट हो गई। फिर क्या था, वह उनके भाषणों को सुनने जाने लगीं। उनकी क्रान्तिकारी भावनायें अस्वस्थता के कारण सुसुप्त रूप में पड़ी थीं। पुनः जाग्रत होकर हिलोरें लेने लगीं। उनके मन में देश को स्वतन्त्र देखने की लालसा उत्पन्न हो गयी। उन्होंने भारत वापस लौटने का निश्चय छोड़कर वहीं स्वतन्त्रता संग्राम का श्री गणेश कर दिया।

श्यामजी वर्मा के साथ हाइड पार्क में श्रीमती कामा के भाषणों का भी क्रम चल पड़ा और वह भारतीय नारी शेरनी की तरह दहाड़ने लगी। उन्होंने एक क्रान्तिकारी साप्ताहिक पत्र 'वन्दे मातरम्' का भी प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया। अब उनकी वाणी और लेखनी दोनों ही अँग्रेजों के विरुद्ध आग उगल रही थीं। अँग्रेज सरकार अपनी ही धरती पर गुलाम देश की एक नारी की इस विद्रोही प्रवृत्ति को कैसे सहन कर सकती थी ? इण्डिया ऑफिस के अधिकारियों ने उन्हें समझाया कि वे भारत लौट जायें। अन्यथा उनके विरुद्ध कठोर कार्यवाही की जायेगी। श्रीमती कामा क्यों मानने वाली थीं ? उन्हें अपने जीवन से अधिक देश की चिन्ता थी। अँग्रेज सरकार उन्हें गिरफ्तार करने की योजना बनाने लगी। पुलिस अपने हिरासत में लेती उससे पूर्व ही मौका देखकर वह इंगलिश चैनल के रास्ते फ्रांस पहुँच गयीं। पेरिस को उन्होंने अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया। पेरिस में श्रीमती कामा का घर क्रान्तिकारियों का अड्डा बन गया था। रूस, फ्रांस और भारत के सारे भूमिगत क्रान्तिकारियों का वह शरण-स्थल था। यहाँ आकर उन्होंने कई बार भारत जाने का प्रयास किया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पर भारत सरकार विद्रोही गतिविधियों में भाग लेने के कारण उन्हें अपनी सीमा में नहीं आने देना चाहती थी। अँग्रेज अधिकारी भी श्रीमती कामा को फ्रांस सरकार से पाने के लिए प्रयत्न करते रहे पर फ्रांस सरकार ने ब्रिटिश सरकार को सौंपा ही नहीं। यदि वे ब्रिटिश सरकार के हाथ लग जातीं तो उन्हें असमय ही मृत्यु दण्ड दिया जाता।

वे ३५ वर्ष तक पेरिस में रहकर लोकमत को जाग्रत करती रहीं। श्यामजी वर्मा ने वहाँ 'इंडियन होम रूल लीग' नामक दल की स्थापना की थी। यह दल अँग्रेजी शासन को नष्ट कर भारत को स्वतन्त्र करना चाहता था। श्रीमती कामा इस दल की सक्रिय-सदस्य बनकर क्रान्तिकारी गतिविधियों में भाग लेने लगीं। उनके व्यक्तित्व और कार्यों से प्रभावित होकर लेनिन ने उन्हें रूस आने के लिए कई बार निमंत्रण दिया पर वहाँ कुछ कारणों वश न जा पायीं।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय श्रीमती कामा भारतीय सैनिकों को ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध भड़का रही थीं। उन्होंने लेख लिखकर भी भारतीयों की दयनीय स्थिति तथा अँग्रेजों के अत्याचारों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया। फ्रांस सरकार अपने मित्र राष्ट्र ब्रिटेन के विरुद्ध इस तरह की गतिविधियों को सहन न कर सका। परिणामस्वरूप श्रीमती कामा को नजरबन्द कर दिया।

७४ वर्ष की वृद्धावस्था में स्वदेश लौटने की इच्छा पुन: बलवती हो उठी। उन्होंने ब्रिटिश-सरकार से आज्ञा माँगी। इस शर्त पर आज्ञा मिल भी गई कि वे राजनीति में भाग न लेंगी। श्रीमती कामा ने सोचा कि अब वे वैसे ही कार्य करने के योग्य नहीं रह गयीं हैं। शरीर काफी क्षीण हो गया है, आये दिन कोई न कोई बीमारी उन्हें घेरे रहती है।

नवम्बर १९३५ में वह भारत लौट आयीं। जब उन्हें बम्बई जहाज से उतारा गया तो वे काफी बीमार थीं अत: उन्हें एम्बुलेंस द्वारा सीधे अस्पताल पहुँचाया गया। वहाँ ८ माह बाद १३ अगस्त, १९३६ को उनका स्वर्गवास हो गया। अंतिम समय उन्होंने 'वन्देमातरम्' का उच्चारण किया।

उन्होंने जो क्रान्ति की ज्वाला सुलगाई थी, वह आगे और भी तीव्र हुई। देशभक्तों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही संतोष की साँस ली।

उन्नीसवीं शताब्दी में जब अँग्रेजों की शक्ति का खुलकर सामना करने में पुरुषों को भी डर लगता था उस समय एक नारी ने जिस साहस का कार्य कर दिखाया वह भारतवासियों के लिए एक प्रेरणा की चीज है। जीवन के समस्त सुखों को त्यागकर देश सेवा की कंटकाकीर्ण राह पर अग्रसर होने वाली नारियों में श्रीमती भीका रुस्तम जी कामा को सदैव याद रखा जायेगा।

भारतीय महिला-मंडल की अग्रणी श्रीमती सरोजिनी नायडू

जिन दिनों श्रीमती सरोजिनी नायडू उत्तर प्रदेश के राज्यपाल की हैसियत से लखनऊ के 'राज भवन' में निवास करती थीं, एक परिचित नवयुवक उनके पास पहुँचा और कहने लगा—"मुझे अमरीका जाकर अध्ययन करने के लिए एक छात्रवृत्ति मिली है। परन्तु वहाँ के विषय में अभी मेरी कुछ भी जानकारी नहीं है। इसलिए आप मुझे कुछ ऐसी सूचनायें दें, जिनसे मैं वहाँ पहुँचने पर लोगों से ठीक व्यवहार कर सकूँ और बिल्कुल 'नौसिखिया" न माना जाऊँ।"

इस जिज्ञासा का कुछ उत्तर न देकर वे स्वयं यह प्रश्न कर बैठीं—"लेकिन खुद अपने देश के विषय में तुमने कितनी कुछ जानकारी संग्रहीत की है ?"

नवयुवक उनके प्रश्न को सुनकर चौंक पड़ा और शीघ्र ही कुछ जवाब न दे सका, तो वे फिर कहने लगीं—'मुझे मालूम है कि तुम्हें पढ़ने-लिखने का शौक है। गीता से लेकर गौतम और गाँधी तक सबको पढ़ चुके होंगे तुम, इसका भी मैं विश्वास कर सकती हूँ। लेकिन अपनी धरती, उस धरती पर रहने वाले लोगों—के बारे में तुम्हें कितनी जानकारी है ? जिस पर तुम खुद पैदा हुए हो, पले, पनपे और बढ़े हो ? क्या तुम्हें यह विश्वास है कि विदेश पहुँचकर तुम अपने लोकांचल का प्रतिनिधित्व कर सकोगे ? अमरीका और इंग्लैण्ड के लोग कैसे रहते हैं, कैसे खाते-पीते हैं, कैसे बातचीत करते हैं—यह जानकारी एकत्र करने से ज्यादा जरूरी बात यह है कि तुम उस धरती की विशेषताओं को जानो, जिस पर खड़े हो। जब तक तुम अपनी लोक-संस्कृति का मंथन नहीं कर लोगे, जब तक तुम्हारा विदेश जाना व्यर्थ है।'

यह सामान्य निजी वार्तालाप इस बात का परिचायक है कि श्रीमती सरोजिनी नायडू (सन् १८७९-१९४९) भारतीय-संस्कृति से कितना प्रेम रखती थीं और कितना महत्त्व देती थीं। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया था कि किसी व्यक्ति या समाज का सम्मान तब तक हर्गिज नहीं बढ़ सकता, जब तक वह निजी गुणों तथा विशेषताओं को प्रदर्शित न करे। दूसरों की अच्छी से अच्छी नकल कर लेने पर भी आप उन लोगों में आदरणीय नहीं हो सकते। वे आप की बात पर तभी ध्यान देंगे जब आप उनको अपने यहाँ की ऐसी बात बतलायेंगे, जिससे वे अभी तक अनजान हैं।

यही बात श्रीमती सरोजिनी नायडू से इंग्लैण्ड में अँग्रेजी-साहित्य के सिद्धहस्त समालोचक सर एडमण्ड गोसे ने कही थी। कुछ जन्मजात अभिरुचि और कुछ विशेष परिस्थितियों के प्रभाव से वे बहुत शीघ्र अँग्रेजी में कवितायें रचने लगी थीं, तेरह वर्ष की आयु में ही उन्होंने 'झील की रानी' शीर्षक ३१०० पंक्तियों की

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कविता लिखी थी, जिसकी कई विद्वानों ने प्रशंसा की थी। इस सफलता से उनकी योग्यता की चर्चा होने लगी और हैदराबाद के नबाव ने जहाँ की वे निवासिनी थीं, उनको एक छात्रवृत्ति देकर इंग्लैण्ड में शिक्षा प्राप्त करने की प्रेरणा दी। वहाँ भी अनेक ख्याति प्राप्त व्यक्तियों से उनका परिचय हो गया, जिनमें से एक सर गोसे भी थे। एक दिन सरोजिनी ने अपनी कुछ कवितायें उनके सम्मुख रखकर प्रश्न किया—'इनको देखकर बताने की कृपा करें कि ये कैसी हैं?'

गोसे ने काफी देर तक उनको ध्यानपूर्वक पढ़कर देखा और फिर कहा—''अगर आपको बुरा न लगे, तो मेरी सच्ची सम्मति यह है कि आप इन सबको रद्दी की टोकरी में डाल दें।''

जब सरोजिनी कुछ हतप्रभ होकर उनका मुँह देखने लगीं तो उन्होंने कहा—'मेरा आशय यह नहीं है कि ये कवितायें अच्छी नहीं हैं। पर मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि आपने इनमें जिस तरह पश्चिमी सभ्यता की भावनाओं को व्यक्त किया है, उससे आप हमारे सम्मान की अधिकारिणी नहीं हो सकतीं। वरन् आप जैसी बुद्धिमती महिला से, जिसने पश्चिमी भाषा और काव्यशास्त्र में दक्षता प्राप्त करली है, हम ऐसी रचनाओं की आशा करते हैं जिनमें केवल भारत ही नहीं सम्पूर्ण पूर्व की आत्मा के दर्शन हो सकें।'' सरोजिनी ने गोसे की शिक्षा को शिरोधार्य किया और उसके पश्चात् भारतीय और पूर्वीय भावनाओं को लेकर उन्होंने जो 'गोल्डनथ्रेशोल्ड', बर्ड ऑफ टाइम' आदि रचनायें प्रस्तुत कीं, जिनसे उनका नाम अँग्रेजी साहित्य में स्थाई हो गया।

विदेश से वापस आकर सरोजिनी ने मेजर नायडू से विवाह किया और हैदराबाद में ही रहकर सुखी गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगीं। धीरे-धीरे उनका ध्यान सार्वजनिक समस्याओं की तरफ जाने लगा और जब एक दिन वे भारत के प्रसिद्ध नेता स्व० गोखले से मिलीं तो उन्होंने कहा—

''यहाँ मेरे साथ खड़ी हो जाओ और इन तारों तथा पहाड़ियों को साक्षी बनाकर अपना जीवन, योग्यता, विचार, स्वप्न और सभी कुछ भारत-माता को अर्पित कर दो। हे कवियित्री ! इस पहाड़ी की चोटी के समान सत्य के दर्शन करके तुम भारत के सहस्रों गाँवों में बसे हुए किसानों तक आशा का सन्देश फैला दो। तभी तुम्हारी यह दैव प्रदत्त अनुपम काव्य शक्ति सार्थक हो सकेगी।''

इसके पश्चात् उन्होंने समयानुसार राजनीतिक आन्दोलन तथा सार्वजनिक हित के अन्य कार्यों में भाग लेना आरम्भ कर दिया। सन् १९१७ तथा उसके बाद भी उन्होंने प्रवासी भारतवासियों की सहायतार्थ कितने ही भाषण दिये और एक बार अफ्रीका जाकर, वहाँ भी उनके आंदोलन में भाग लिया। वे भारत की स्वराज्य की मांग का समर्थन करने कई बार इंग्लैण्ड गईं और एक बार अमरीका तथा कनाडा का दौरा भी किया। अपनी समन्वयात्मक मनोवृत्ति के प्रभाव से वे प्रत्येक देश में अपने अनेक सहयोगी और मित्र पैदा कर लेती थीं और जिन कार्यों के पूरा करने में बड़े-बड़े नेताओं को कठिनाई होती थी, उनमें वे अपनी वाणी और सहानुभूतियुक्त व्यवहार से शीघ्र ही सफलता प्राप्त कर लेती थीं।

पर उनका सबसे बड़ा योगदान महात्मा गाँधी के असहयोग और सत्याग्रह आंदोलन में रहा और उसी से वे स्वाधीनता-संग्राम के सेनानियों में प्रमुख स्थान पा सकीं। सन् १९२० में जैसे ही महात्मा गाँधी ने असहयोग की घोषणा की, श्रीमती सरोजिनी को अनुभव हुआ कि यही आंदोलन मेरे मनोनुकूल है। स्त्री होने के कारण अभी तक वे अधिक उग्र आंदोलनों में पूरी तरह नहीं कूद सकती थीं। पर महात्मा जी ने जो अहिंसात्मक, शान्तिमय आन्दोलन चलाने का निश्चय किया और साथ-साथ हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए खिलाफत के प्रश्न को भी उसमें शामिल कर लिया तो यह कार्यक्रम उनको सब तरह से अपने अनुकूल जान पड़ा। बस, उन्होंने असहयोग-प्रतिज्ञा पत्र पर सबसे पहले हस्ताक्षर किये और अपनी सेवाओं को पूर्ण रूप से गाँधीजी के अर्पित कर दिया। तब से जीवन के अन्तिम क्षण तक वे उनकी एकनिष्ठ अनुयायी बनी रहीं और कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आंदोलन में इस प्रकार सहयोग देती रहीं कि अन्त में उसकी सफलता का बहुत बड़ा श्रेय उनको प्राप्त हुआ।

सन् १९२५ में कॉंग्रेस के कानपुर अधिवेशन की सभानेत्री निर्वाचित की गईं और उसमें मुख्य बात उन्होंने यही कही कि ''स्वतन्त्रता के युद्ध में कायरता सबसे अक्षम्य अपराध और निराशा सबसे भयानक पाप है।'' सन् १९३० के नमक-सत्याग्रह में महात्मा गाँधी के धरसाना नामक गोदाम पर गिरफ्तार कर लिये जाने पर सत्याग्रहियों का नेतृत्व श्रीमती सरोजिनीनायडू ने ही किया और वे फौज से घिरी हुई एक ही स्थान पर ७२ घंटे तक जेठ की धूप में बिना अन्न-जल के डटी रहीं। उनकी इस दृढ़ता को देखकर बड़े-बड़े साहसी पुरुष भी दंग रह गये।

सन् १९४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में वे महात्मा गाँधी के साथ ही पकड़ी गईं और उनके साथ ही पूना के आगाखाँ महल में कैद रखी गईं। वहाँ पर जब महात्मा जी ने अनशन किया तो इन्होंने दिन रात एक करके उनकी देख-रेख की। ८ अगस्त, १९४७ में स्वाधीनता मिल जाने के बाद उनको उत्तर प्रदेश का 'गवर्नर' नियुक्त किया गया। उस समय यद्यपि आंदोलन में किये गये कठोर परिश्रम और कई बार जेलों में रहने के कारण उनका स्वास्थ बहुत निर्बल पड़ गया था, तो भी पाकिस्तान की स्थापना के कारण देश की संकटपूर्ण स्थिति को देखकर उन्होंने इस उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लिया और जीवन के अन्तिम क्षण (२ मार्च १९४९) तक उसे बड़ी योग्यता से पूरा करती रहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

श्रीमती सरोजिनी के राजनीतिक क्षेत्र में आगमन से पूर्व भारतीय स्त्रियाँ अपने सामाजिक बन्धनों के कारण सार्वजनिक आन्दोलनों से पृथक् ही रहती थीं। उस समय एकमात्र इन्होंने आगे बढ़कर भारतीय-महिला-समाज की इस त्रुटि का मार्जन किया। इसके उपलक्ष्य में वे देश और विदेश में भारतीय महिलाओं की प्रतिनिधि मानी गईं और स भी सरकारी 'कमीशनों' और 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला-सम्मेलनों' में भी उन्होंने भारतीय स्त्रियों का पक्ष उपस्थित किया। अब पिछले २२ वर्षों में जो अनेक भारतीय स्त्रियाँ मन्त्री, मुख्यमन्त्री, राजदूत, राज्यपाल आदि पदों पर नियुक्त की जा सकी हैं, इसका बहुत कुछ श्रेय श्रीमती सरोजिनी को ही है।

उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में काम किया और सब में सफलता प्राप्त करके उन प्रगति विरोधी लोगों के कथन को असत्य कर दिया, जो स्त्रियों को सार्वजनिक कार्यों के अयोग्य बतलाते हैं। श्रीमती शची रानी गुर्टू के कथनानुसार "उनका बहुगुण समन्वित रूप अत्यन्त विस्मयकारी था। वे सफल कवयित्री थीं, जो कल्पना-लोक की कोमल भावनाओं और करुण अनुभूतियों को हृदय में सँजोये एक दिन राजनीति के काँटों-भरे क्षेत्र में उतर पड़ीं। वे एक पटु राजनीतिज्ञ थीं, जिन्होंने निराशा और संघर्षों का सामना मुस्कान और गान के साथ किया था। वे एक कुशल वक्ता थीं, जिन्होंने अपनी वाणी के जादू से लाखों नर-नारियों के हृदय में घर बना लिया था। वे एक नि:स्वार्थ देश-सेविका थीं, जो अन्धकार के बीच आशा की किरण लेकर आई थीं। वे एक सफल पत्नी और गृहिणी थीं, जो अपने पति और घर की एकछत्र स्वामिनी थीं। इन सब के अतिरिक्त वे एक नारी थीं-एक ऐसी नारी, जिनमें उच्च भावना, प्रत्युत्पन्नमति और उत्कट प्रतिभा का अद्‌भुत सम्मिश्रण था।"

श्रीमती सरोजिनी का सबसे बड़ा उपकार भारतीय नारियों के लिए यही है कि उन्होंने मार्ग-दर्शन करके उनके लिए उन्नति के सब रास्ते खोल दिये हैं। उनका कर्त्तव्य है कि उनके उदाहरण से प्रेरणा प्राप्त करके अपने और समाज के उत्थान के लिए कुछ महत्वपूर्ण कार्य करके दिखलायें।

पुष्प से मृदुल किन्तु वज्र से कठोर—कु. प्रीतिलता

'सयानी लड़की है पर न जाने कहाँ घूमती रहती है ? न दिन देखे न रात—बस मुँह उठाये निकल पड़ती है। मैं तो यह सब देख नहीं सकती भइया। कल को पड़ौसी अँगुली उठायेंगे और आ-आकर तुम्हारी इस लाड़ली बिटिया की मुझसे ही शिकायत करेंगे।' बुआ का क्रोध बढ़ता ही जा रहा था।

'प्रीति' पिता ने आवाज लगायी। प्रीति के आने पर बिना कुछ उससे पूछे तड़ाक से उसके गाल पर तमांचे जड़ दिये और बोले 'घर से अब कभी कदम निकाले तो मारकर डाल दूँगा।' प्रीति ने पिता को समझाने का बहुत प्रयास किया कि वह क्रान्तिकारी दल की सदस्य है। पर पिता थे कि कुछ सुनना ही न चाहते थे।

प्रीतिलता के सम्मुख विकट परिस्थितियाँ थीं। एक ओर तो उसके पिता का कठोर आदेश और दूसरी ओर क्रान्तिकारी दल में की गयीं उसकी प्रतिज्ञाएँ और देश के लिए मर मिटने की अन्तरात्मा की पुकार। लगभग एक सप्ताह तक भावना और कर्त्तव्य के झूले में प्रीति दोलायमान होती रही। बार-बार उसके मानस में वही दृश्य सजीव हो उठता, जबकि क्रान्तिकारी दल में भारतमाता की भव्य-प्रतिमा पर रक्ततिलक लगाकर उसने प्रतिज्ञा की थी कि वह शरीर में खून की अन्तिम बूँद रहते समय तक अँग्रेजों के विरुद्ध लड़ेगी। अन्तत: एक दिन उसने दृढ़ निश्चय कर ही लिया। भावना पर कर्त्तव्य की विजय हुई। प्रीति पिता के लिए पत्र रखकर सदैव के लिए घर छोड़कर चली गयी।

भारतीय-स्वतन्त्रता-संग्राम के क्रान्तिकारी आन्दोलन की इस प्रथम महिला शहीद कुमारी प्रीतिलता का जन्म चटगाँव के एक गरीब परिवार में हुआ था। पिता की आय यद्यपि बहुत कम थी तथापि वे बालिका को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते रहे। प्रीतिलता ने किशोरावस्था में ही निश्चय कर लिया था कि वह अपने अध्ययन के कारण पिता पर अधिक भार नहीं डालेगी। कुछ समय तक हस्त-शिल्प के द्वारा भी उन्होंने धनाभाव की समस्या दूर की। प्रीतिलता अध्ययन में बहुत अधिक परिश्रम करती थीं। परिणामत: वे सदैव प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुईं तथा उन्हें छात्रवृत्ति मिलती रही।

स्वाभिमान और देश-प्रेम की भावना प्रीतिलता में बाल्यावस्था से ही थी। अन्य बालिकाएँ जहाँ अन्धानुसरण करतीं, प्रीतिलता स्थितियों को भली-भाँति देख समझकर कोई कदम उठाती। बचपन की एक घटना है—सेवा-भावना तथा 'प्रति-पल कुछ नया सीखने की इच्छा' से प्रीति ने 'गर्ल्स-गाइड' संस्था में अपना नाम लिखवाया। उस समय यह नियम था कि प्रत्येक बालचर को ईश्वर तथा ब्रिटिश सम्राट् के प्रति वफादारी की शपथ लेनी पड़ती थी। बालिका प्रीति ने सोचा—'अँग्रेज ही तो हमारे देश पर अत्याचार कर रहे हैं, देशवासियों का शोषण कर रहे हैं, मैं उनके सम्राट के प्रति वफादार की शपथ कैसे ले सकती हूँ ? मैं तो भारत-माता के प्रति वफादारी की शपथ लूँगी।' प्रीति ने न केवल स्वयं ही भारत-माता के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की अपितु अपनी साथिनों से भी ऐसा कराया।

बी० ए० करने के पश्चात् इनके पिता श्री जोगबन्धु इनके हाथ पीले कर अपने उत्तरदायित्व से मुक्त

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होना चाहते थे। परन्तु प्रीति ने तीव्र शब्दों में उनका विरोध करते हुए कहा—'पिता जी, यह आवश्यक तो नहीं कि शिक्षा समाप्ति के बाद विवाह किया ही जाये। मैं विवाह करके व्यर्थ के झंझटों में अपना जीवन बर्बाद न करूँगी। मुझे तो देश की सेवा करनी है, इसी कार्य के लिए भगवान ने मुझे भेजा है।'

चटगाँव में ही प्रीतिलता का परिचय एक अदम्य साहसी, क्रान्तिकारी नेता श्री सूर्यसेन से हुआ। सूर्यसेन उन दिनों एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी माने जाते थे और उनके शौर्य से ब्रिटिश-अधिकारी भी प्रकम्पित थे। सूर्यसेन ने प्रीतिलता जैसी विचारशील, परिश्रमी तथा साहसी युवती को अपने दल की सदस्या बनाने में अपना सौभाग्य समझा। सूर्यसेन की प्रेरणा से प्रीतिलता ने भी क्रान्ति का बिगुल बजाने के लिए स्वयं को पूर्णत: समर्पित कर दिया।

१७ अप्रैल, १९३० की रात को इस बहादुर क्रान्तिकारी दल ने ब्रिटिश सेना का शस्त्रागार लूट लिया। अब देश की स्वतन्त्रता के ये दीवाने ब्रिटिश सेना से संघर्ष करने की योजना बनाने लगे। एक दिन ये वीर ब्रिटिश सेना को आतंकित करने के उद्देश्य से जलालाबाद गये। वहाँ उन्होंने ब्रिटिश से लड़ाई छेड़ दी । दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। अनेक ब्रिटिश सैनिक मारे गये। क्रान्तिकारियों की भी काफी बड़ी संख्या हताहत हुई।

विवेकशीला प्रीतिलता ने सोचा कि अँग्रेजों के पास तो विपुल शस्त्र तथा सैनिक हैं परन्तु क्रान्तिकारियों के पास लड़ाई के सीमित साधन तथा कम व्यक्ति हैं। अतएव यों ही सीधे-सीधे संघर्ष में अपने साथियों को झोंक देना बुद्धिमत्ता नहीं है। इसलिए उन्होंने क्रान्तिकारियों के सम्मुख छापामार युद्ध करने का प्रस्ताव रखा। सभी सदस्यों ने एक स्वर से इसका समर्थन किया।

अब क्रान्तिकारियों की यह सेना छापामार ढंग से युद्ध करके अँग्रेजों को नाकों चने चबबाने लगी। अँग्रेज सरकार दिन प्रतिदिन किये जाने वाले इनके विस्फोटों और आक्रमणों से अत्यधिक परेशान हो गई तथा अन्तत: इन्हें गिरफ्तार करने के लिए पुलिस को इनके पीछे लगा दिया।

पुलिस के पीछे लग जाने पर भी क्रान्तिकारियों की यह लघु-सेना तनिक भी न घबरायी। यह अवसर पाते ही ब्रिटिश सैनिकों का सफाया कर देती और इधर-उधर तितर-बितर हो जाती। लेकिन एक दिन बड़ी गम्भीर स्थिति आ खड़ी हुई। कुछ क्रान्तिकारी बन्दी बनाये जाने की स्थिति में आ गये। सूर्यसेन ने अपने साथियों को हथियार सँभालने का आदेश दे दिया। इस नाजुक स्थिति में प्रीतिलता ने बहुत बहादुरी दिखाई तथा अनेक ब्रिटिश सैनिकों को धराशायी कर दिया। अपने साथियों को ब्रिटिश शस्त्रों की मार से बचाने का प्रीति ने पृथक् परिश्रम किया परन्तु उनके दो साथी अपूर्वसेन तथा निर्मल सेन शहीद हो ही गये। प्रीतिलता ने जब देखा कि ब्रिटिश सेना निरन्तर बढ़ती ही आ रही है तथा उसके आहत दलनायक सूर्यसेन किसी भी क्षण ब्रिटिश सेना के हाथों पड़ सकते हैं तो वह सूर्यसेन को लेकर भाग निकली।

ब्रिटिश-सरकार को सूर्यसेन सचमुच प्रचण्ड सूर्य बनकर विदग्ध किये हुए थे। सूर्यसेन के वीर साथी ब्रिटिश सैनिकों को नित्य प्रति ही परेशान किया करते थे। अतएव सरकार ने सूर्यसेन की गिरफ्तारी पर दस हजार रुपयों के इनाम की घोषणा कर दी। अब प्रीतिलता के कन्धों पर एक भारी उत्तरदायित्व आ गया था और वह था, अपने घायल दलनायक के प्राणों की रक्षा करना रुपयों के लालच में कोई भी देश-विदेशी व्यक्ति उन्हें पुलिस के हवाले कर सकता था। आतएव वे अपनी और उनकी जान हथेली पर रखकर निरन्तर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भागती रहती थीं।

जब से प्रीति के दो साथियों अपूर्वसेन तथा निर्मल सेन को ब्रिटिश सैनिकों ने मार दिया था, तब से उसके हृदय में अँग्रेजों से बदला लेने की भावना गहराई से जड़ जमाती जा रही थी। अन्तत: एक दिन उसने अपने दलनायक सूर्यसेन की अनुमति से योरोपीय क्लब पर आक्रमण करने की योजना बना ही ली।

२४ सितम्बर, १९३२ की गहन रात्रि थी। प्रीतिलता अपने साथ क्रान्तिकारियों का एक दल, पिस्तौल, बम्ब आदि युद्ध-सामग्री लेकर चटगाँव के पहाड़तली स्थित क्लब पर आक्रमण करने के लिए निकल पड़ी। इस क्लब में अर्धरात्रि के समय अँग्रेज अधिकारी मदिरा के प्यालों से मदमत्त हुए बैठे थे। उन्हें स्वप्न में भी आशा न थी कि इस समय, इतने कड़े पहरे में, कहीं से कोई आक्रमण भी कर सकता है। वे निश्चिन्त होकर राग-रंग में व्यस्त थे।

क्लब के द्वार पर पहुँचते ही प्रीतिलता का रौद्र स्वर गूँज उठा—'साथियो, आगे बढ़ो। आज एक भी अँग्रेज को यहाँ से जीवित न निकलने दो। शरीर में प्राण रहते समय तक इन नीचों से अपने साथियों की मृत्यु का बदला लो।'

प्रीति ने इतना आदेश दिया ही था कि अनवरत् बम वर्षा से क्लब का भवन काँप उठा। अँग्रेजों से अपने साथियों की मृत्यु का बदा लेने के लिए क्रान्तिकारियों की बन्दूकें धाँय-धाँय करके गूँज उठीं। इस आकस्मिक आक्रमण में तेरह अँग्रेजों को वे मौत के घाट उतारने में सफल हुए।

स्वतन्त्रता की देवी वीरों की बलि लेकर ही परितृप्त होती है। कुछ पाने के लिए कुछ खोना होता है। यह विश्व-नियम है। इस संघर्ष में भी क्रान्तिकारी दल को प्रीतिलता जैसी साहसी नारी खोनी पड़ी। बम छोड़ते समय प्रीति बुरी तरह घायल हो गयीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यह सोचकर कि उनका समय निकट आ गया है, प्रीति ने अपने साथियों को आदेश दिया-'आप लोग मुझे यहीं छोड़कर तेजी से भाग जायँ।' परन्तु अपनी प्रिय नेता को ऐसे संकटकाल में अकेले छोड़कर वे कैसे जा सकते थे ? उन्होंने प्रीतिलता से अनुनय की—'आपके प्राणों का मूल्य हमसे कहीं अधिक है। हम लोग आपको उठाकर यहाँ से ले जायेंगे।'

परन्तु प्रीतिलता न चाहती थीं कि उनके जीवन की रक्षा के लिए उनके साथी, अँग्रेज सरकार के हाथों में पड़ें। एक पल को कोई दृढ़ निश्चय उनके मुख मण्डल पर छा गया। यह सोचकर कि 'पकड़ लिए जाने पर अँग्रेजों के सम्मुख कोई भेद न प्रकट हो जाय' प्रीतिलता ने अपने वक्ष पर पिस्तौल रखकर घोड़ा दबा दिया। इससे पूर्व झुककर उन्होंने अपनी मातृभूमि का चुम्बन लिया तथा हृदय में असीम शान्ति तथा मुख पर मधुर स्मृति लिए प्रीतिलता चिरनिद्रा में निमग्न हो गयीं।

प्रीतिलता का यह अविस्मरणीय त्याग भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के गौरवमय इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है, जो आज भी अपनी तेज राशि से जन-जन को आलोकित किये हुए है।

त्याग और बलिदान की देवी—
'प्रीति वछादार'

सन् १९३२ का मई माह का शाम का समय था। धालघाट में क्रांतिकारी नेता सूर्यसेन के घर प्रीति वछादार बैठी क्रांतिकारी योजनाओं पर चर्चा कर रही थी कि किसी प्रकार पुलिस को इसकी खबर लग गई। पुलिस कप्तान कैमरान ने कुछ सिपाहियों को साथ लाकर उसका घर घेर लिया। बाहर पुलिस ने मकान पर मशीनगन लगा दी और अन्दर से रिवाल्वर चलने लगे।

प्रीति के लिए यह पहला अवसर था। इससे पूर्व उसे कभी इस भयंकर स्थिति का सामना न करना पड़ा था। कप्तान कैमरान तो वहीं ढेर हो गया पर प्रीति का साथी निर्मलदा भी उसमें बुरी तरह घायल हुआ । कप्तान के लुढ़कते ही पुलिस भाग खड़ी हुई। साहस के साथ इस संघर्ष का सामना करने वाली प्रीति निर्मलदा के बहते रक्त को देखकर रो पड़ी। वह कभी नहीं चाहती थी कि उसकी बजह से किसी साथी को खतरे से जूझना पड़े।

अवसर पाकर अपने कपड़े छोड़कर वह उस घर से निकल भागी। बाद में पुलिस ने उन कपड़ों को प्राप्त किया पर उसे यह आशा नहीं थी कि इसमें प्रीति का भी हाथ हो सकता है अत: वह सुरक्षित घर लौट आई।

अब सूर्यसेन की राय से प्रीति भूमिगत होकर क्रांति के कार्यों में सहयोग देने लगी। ५ जुलाई को पुलिस इन्सपेक्टर ने उसे पकड़ने के लिए घर पर छापा मारा तो वह पहले ही पुलिस को चकमा देकर घर से निकल चुकी थी। उसके लिए यह पहला अवसर नहीं था, जब पुलिस को चकमा देकर वह बच निकली हो।

कलकत्ता में जब रामकृष्ण विश्वास को फाँसी की सजा सुना दी गयी थी तब भी कितने ही फरजी नामों से जेल में जाकर मुलाकात कर चुकी थी पर पुलिस वालों और जेल अधिकारियों ने एक भी बार उस पर शंका न की। चाँदपुर कत्ल कांड में जब उसे अलीपुर सेन्ट्रल जेल में रखा गया था, तब तो वह जेल में ४० बार भेंट कर चुकी थी।

प्रीति साधारण परिवार की बालिका थी। पिता नगरपालिका कार्यालय में लिपिक थे। वही अपने घर का सारा खर्च चलाती थी क्योंकि पिताजी एक तारीख को अपना सारा वेतन उसी के हाथ पर रख दिया करते थे। एक दिन सूर्यसेन को क्रांतिकारी दल के युवक फण्ड हेतु ५००/-रुपये की आवश्यकता थी।

वह ४५०/- रुपये की व्यवस्था कर चुके थे। ५०/- रुपये जुटाने के लिए जी-तोड़ मेहनत कर रहे थे पर सफलता दूर और दूर होती जा रही थी। प्रीति को पता चला तो वह चुपचाप घर से ५०/- रुपये निकालकर सूर्यसेन को देने लगी।

दल के अन्य सदस्यों ने भी उससे ५०/- रुपये लेने से इन्कार कर दिया क्योंकि एक तो उसकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं है और पूरे महीने घर का खर्च ठीक से न चल सकेगा, तो परिवार के सभी सदस्यों को परेशानी उठानी पड़ेगी।

प्रीति को साथियों के यह तर्क पसन्द न आये उसने नेता से स्पष्ट कहा—'दादा ! कल ही तो पिताजी को वेतन मिला था, उनमें से ५०/- रुपये में ले आई हूँ। गृह-संचालन की व्यवस्था हेतु दल के सदस्यों को चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। फिर यदि पिताजी को कुछ कहना भी पड़ेगा तो मैं साफ-साफ बता दूँगी कि देश हित में मैंने ५०/- रुपये खर्च कर दिये हैं।' इतना कहने पर भी दल ने रुपया लेना स्वीकार नहीं किया तो वह फूट-फूटकर रोने लगी 'शायद देश के लिए गरीबों को कुछ भी त्याग करने का अधिकार नहीं है। आप मेरे उद्देश्य के प्रति जो प्रेम और ईमानदारी है, उसे भी सिद्ध करने का अवसर नहीं देना चाहते।'

इसके बाद दल के किसी भी सदस्य को कुछ भी कहने का साहस नहीं हुआ और नेता ने ५०/- रुपये चुपचाप रख लिए।

विद्यार्थी-जीवन में अँग्रेज प्राध्यापक उसे पढ़ाया करते थे 'ईश्वर और राजा के प्रति बफादार रहो क्योंकि राजा कोई गल्ती नहीं करता।' प्रीति पर तो देश-प्रेम का नशा छाया हुआ था। वह अपनी सहेलियों को सिखाया करती थी 'हमें ईश्वर और देश के प्रति बफादार रहना चाहिए।'

वह विद्यार्थी जीवन से ही महान वैज्ञानिक बनने का स्वप्न देखती थी पर सत्-साहित्य के अध्ययन में वह शक्ति है कि व्यक्तियों के दृष्टिकोण बदल जाते हैं और अपने पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के प्रति पुन: सोचने के लिए

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवश होते हैं। उसने झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का जीवन चरित्र पढ़ा तो वह आत्म-विभोर हो गई । उसका जीवन बदलने लगा। अब वह अपनी सहपाठिनियों से विज्ञान की चर्चा के स्थान पर देश को स्वतन्त्र कराने के तरीकों पर चर्चा करने लगी और सभी को क्रान्तिकारिणी बनने की सलाह देने लगी।

वह अच्छी तरह जानती थी कि यदि वार्षिक परीक्षा में अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण न हुई, तो बिना छात्रवृत्ति के कलकत्ता विश्व-विद्यालय में अध्ययन करना कठिन हो जायेगा क्योंकि घर वालों की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वह कुछ सहायता कर सकें। हुआ भी यही, लाख प्रयत्न करने के बाद भी वह गणित में अच्छे नम्बर न ला सकी क्योंकि उसका काफी समय क्रांतिकारी कार्यों में निकल जाता था। उसे छात्रवृत्ति न मिल सकी, वह ढाका विश्व-विद्यालय में प्रविष्ट हुई।

वहाँ 'दीपावली-संघ' नाम की एक संस्था थी। समय निकालकर वह उसमें जाने लगी और लाठी तथा तलवार चलाने का अभ्यास करने लगी। उसकी कार्य-पद्धति इतनी सरल थी कि जिस छात्रावास में वह रहती थी, उसकी अधीक्षिका भी उसके क्रांतिकारी स्वरूप को न जान सकीं। पुलिस को भी उसके क्रांतिकारी होने का पता तब लगा, जब उसने रामकृष्ण विश्वास पर धालं घाट में एक लेख लिखा।

ग्रीष्मकालीन अवकाश बिताने वह चटगाँव आती थी, वहीं उसका सम्पर्क चटगाँव के क्रांतिकारियों से हुआ। धीरे-धीरे वह भी सक्रिय रूप से क्रांतिकारियों को सहयोग देने लगी। इन्हीं छुट्टियों की बात है, लोक इन्स्ट्रक्शन के संचालक का एक आदेश प्रसारित हुआ। प्रीति ने अपने साथ कई छात्राओं को लेकर उस आदेश के विरोध में खास्तगीर विद्यालय के द्वार पर पिकेटिंग शुरू कर दिया। अनुशासनहीनता का आरोप लगाकर प्राचार्य ने इन छात्राओं को विद्यालय से निकाल दिया। बाद में पता चला कि दो छात्राएँ रह गई हैं। उस समय प्रीति पर होने वाली प्रतिक्रिया देखी जा सकती थी। उसने नाराज होकर कहा—अवश्य उन छात्राओं ने क्षमा माँग ली होगी।' अपने क्रांतिकारी साथियों से कभी-कभी कह भी देती थी कि यदि उन्होंने अपनी बुजदिली न छोड़ी तो वह नष्ट हुए बिना नहीं रह सकते।

प्रीति बी० ए० पास भी नहीं कर पाई थी कि उसके पिता की नौकरी छूट गई पर वह विपरीत परिस्थितियों के बीच भी झुकने वाली न थी। वह एक हाईस्कूल में अध्यापिका के पद पर कार्य करने लगी। और उससे जो वेतन मिलता, अपने माता-पिता तथा चार छोटे भाई-बहिनों का खर्च चलाती थीं। उसके पिता को अपनी बेटी से बहुत आशाएँ थीं वह भी अपने पिता को बहुत अधिक प्रेम करती और सम्मान देती थी।

प्रीति को अपने क्रांतिकारी साथियों राम-कृष्ण विश्वास तथा निर्मलदा के मारे जाने से बहुत दुःख हुआ। इस आघात को सहन करने में वह अपने को असमर्थ पा रही थी। उसने कई बार आत्म-हत्या की बात सोची पर पार्टी के नेता ने उसे ऐसा न करने दिया क्योंकि देश अभी स्वतन्त्र नहीं हुआ है और करने के लिए अनेक कार्य शेष हैं। प्रीति किसी क्रांतिकारी एक्सन के द्वारा कुछ कर दिखाना चाहती थी।

२४ सितम्बर, १९३२ का वह दिन भी आ गया, जिस दिन के लिए वह कब से छटपटा रही थी। चटगाँव में पहाड़तली रेलवे क्लब स्टेशन के पास ही है। जहाँ नित्य शाम को अँग्रेज दम्पत्ति आकर शराब पीते और कमर में हाथ डालकर नाचा करते थे। क्लब हँसी-मजाक से गूँज रहा था। रात के ९ बजे होंगे कि अचानक एक बम का धड़ाका हुआ। धाँय-धाँय गोलियाँ चलने लगीं। क्लब में सन्नाटा छा गया। अँग्रेज खिड़कियों से कूदकर बाहर निकलने लगे, पर बाहर भी वही भयावनी स्थिति। अतः लोग फिर उल्टे पाँव जान बचाने के लिए क्लब में घुसने लगे।

पन्द्रह मिनट बाद गोलियों की बौछार शान्त हुई। मजाक के स्थान पर जख्मियों के कराहने की आवाज सुनाई पड़ रही थी।

आतंकवादी आठ नवयुवक प्रीति के नेतृत्व में ऐक्शन करने आये थे। सभी नवयुवक साफ बच गये पर उनकी नेत्री प्रीति बछादार बम की चोट से घायल हो गई। वह क्लब से बीस फीट दूर बाहर पड़ी थी। उसकी छाती से रक्त प्रवाहित हो रहा था। जिस समय वह ऐक्शन के लिए आई थी मर्दाने कपड़े पहने थी। ऐक्शन के बाद घायल अवस्था में वह पुलिस के हाथों पकड़ी जाये, वह उसे सहन न था। जब-जब वे ऐसा अनुभव करती, उसे अपने पर बहुत घृणा होती थी। एक दिन कल्पना दत्त से उसने पोटेशियम साइनाइड प्राप्त कर लिया था और उसे हर समय अपने साथ ही रखती थी। पोटेशियम साइनाइड के उपयोग का समय अब आया था। उसे अपने बचने की आशा बिल्कुल न थी। वह जानती थी कि चन्द मिनटों में पुलिस आने वाली है अतः अपनी जेब से पोटेशियम साइनाइड निकालकर खा लिया और सदैव के लिए चिर निद्रा में लीन हो गई।

सूर्यसेन के दल में चार नवयुवतियाँ थीं। जिनमें दो तो जेल में अपने दिन काट रहीं थीं और दो इसी तरह ऐक्शन में काम आईं, जिनमें एक प्रीति भी थी। प्रीति के इस उदाहरण से लोगों में यह विश्वास घर करता जा रहा था कि देश को स्वतन्त्रता दिलाने के कार्य में पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी अपना योगदान दे सकती हैं। चटगाँव जिले का हर व्यक्ति यह कहते सुना जाता था कि मरते-मरते भी वह पुलिस के हाथों से अपने को बचाये रही।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चटगाँव शस्त्रागार पर हमला करने तथा अन्य क्रांतिकारी कार्यों के कारण सैकड़ों नवयुवकों को काले पानी तथा फाँसी की सजा दी गई थी पर प्रीति को रणक्षेत्र में जूझते हुए अपने प्राणोत्सर्ग करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। कितने ही देशभक्तों को उसके बलिदान से ईर्ष्या थी ?

प्रीति के मरने का समाचार उसके पिता ने जैसे ही सुना, वह बेहोश हो गये मानो उनका एक हाथ काट दिया गया हो। प्रीति जानती थी कि उसकी मृत्यु से परिवार वालों को कितना दुःख होगा पर उसने पारिवारिक कर्त्तव्य को राष्ट्र के कर्त्तव्य पर बलिदान कर दिया था।

माँ अपनी पुत्री के बलिदान पर गर्व अनुभव करती थी। जब कभी कोई बात होती, वह कहा करती थी, 'मेरी पुत्री ने देशहित में अपने प्राणों की बाजी लगादी।' प्रीति के त्याग पर आज भी हर भारतीय को गर्व है।

अपने नाम को सार्थक करने वाली श्रीमती दुर्गा भाभी

टन-टन-टन शहर के घण्टाघर की बारह चोटों ने उसकी चिन्तन कड़ियों को जैसे एक बारगी बिखरा दिया। लम्बी उसास भरकर उसने एक क्षीण दृष्टि निक्षेप सामने जल रही अँगीठी पर किया। अंगारों की धधकन को राख अपने आवरण में ढकने लगी थी। ऊष्मा-ऊर्जा पूरी तरह चुकती इसके पहले वह उठी। उठकर कुछ कोयले लाकर अँगीठी में डाले। हाथ से पंखा झलकर उन्हें नयी प्राण वायु दी। नयी हवा में साँस ले कोयले-अँगारे बन धधकने लगे और वह . . . . . , अपने चिन्तन की कड़ियों को बटोरने की कोशिश करते हुए बुदबुदाई—अभी तक नहीं आए-बारह से ऊपर तो हो गया।

एक छोटा कमरा और किचन-यही इनका क्वार्टर था। इसी में ये दो प्राणी रहते थे-पति और पत्नी। पति तो सुबह से निकल जाते रात्रि में कब लौटेंगे कुछ ठिकाना नहीं, लौटें भी या ना लौटें कौन कहे ? और पत्नी दिन भर अकेली बैठी-कमरे की ईंटों की संख्या का अनुमान लगाती रहती। खाना बनाने के अतिरिक्त करने के लिए इस काम के सिवा और था भी क्या ? सामान के नाम पर थोड़े-से बर्तन और बिछौने थे। इन सबके बीच बैठे-बैठे थक जाती तो पढ़ने लगती, पढ़ते-पढ़ते थकान लगती तो निद्रा की गोद में समा जाते। इससे उबरो तो पति की प्रतीक्षा, इस समय वही तो कर रही थी।

यही तो है सामान्य भारतीय नारी का जीवन, जिसकी वह प्रतिनिध थी। 'नारी' इन दो अक्षर और दो मात्राओं की चारदीवारों ने जैसे एक बाड़ा बना रखा है, जिसमें आधा मनुष्य समाज कैद है और कैदी का जीवन-जिसकी प्रतिभा-क्षमता, योग्यता-प्रगति के बीज की विवशता है कि वह घुने, सड़े और गले क्योंकि विकास के लिए जो उन्मुक्त आकाश-सुकोमल मिट्टी चाहिए वह उसकी नियति में कहाँ ? नियति न न नियति नहीं। नियति बनाने वाला कौन ? परमात्मा ! उसे यदि यही अपेक्षित होता तो नारी को 'जीवन वीणा' के रूप में क्यों गढ़ता ? जिसके हर तार में मार्मिक भावनाएँ भरी हैं। जिसकी हर झंकृति-किसी के दिल में प्रेरणा का राग भरती है। तब यह नियति कदापि नहीं यह है विपत्ति-जिसका निवारण उह कहते हुए उसने बुझने लगी अँगीठी की आग को फिर भड़काया।

वे जाने कब आयेंगे ? एक बज गया है। कुछ हो आदमी को अपनी देह की फिक्र तो करनी चाहिए। उसे अपने पति पर आक्रोश नहीं प्रत्युत गौरव है, उनके क्रांतिकारी होने पर। क्रांतिकारी अर्थात् भविष्य के समुज्ज्वल क्षितिज पर नए साज की रचना हेतु संकल्पित शिल्पी। वे यही थे ठीक ऐसे ही। तभी तो दिन उनके लिए दिन नहीं था, रात्रि-रात्रि नहीं। अहो रात्रि उन्हें अपने संकल्प की दुरूह राह पर बिना रुके, बिना थके चलना था और वे चल रहे थे। उसे इसमें आपत्ति कहाँ थी उल्टे खुशी थी। अन्यथा राजाओं जैसे ऐश्वर्य को छोड़ साधुओं से जीवन को वह क्यों अंगीकार करती ? पर ये शिल्पकार अपने कार्य में नारियों को बाधा क्यों समझते हैं ? यदि नहीं तो कुमार सिद्धार्थ पत्नी को क्यों सोता छोड़ गये ? क्या वह उन्हें महात्मा बुद्ध बनने से रोक लेती ?

सोचते-सोचते उसने तवा अँगीठी पर रख दिया। अब वह रोटी बना ही देगी। आटे की थाली को सामने की ओर खींचा और रोटी बेलने लगी। थोड़ी देर बाद उसने जीने पर पैरों की आहट सुनी। उसके मुख पर हल्की-सी स्मित की झलक आई। क्षण भर वह आभा उसके चेहरे पर रहकर चली गई और वह फिर उसी तरह काम में लग गई।

पति आए । उनके पीछे-पीछे तीन और उनके मित्र भी थे। ये आपस में बातें करते चले आ रहे थे और खूब गर्म थे। वे अपने मित्रों के साथ सीधे कमरे में चले गये। उनमें बहस छिड़ी थी। कमरे में पहुँचकर रुकी बहस फिर शुरू हो गई। भगवान जाने क्या होगा इस देश का, अस्थिर नेतृत्व-स्वार्थों की बंदर-बाँट-लोक सेवी का बाना पहने लोक शोषक। अविश्वसनीयता से उपजा अलगाव-असुरक्षा से आंतक की पैदावार। यह भी कोई मनुष्य का जीवन है। कीट-पतंगों, कुत्ते, बिल्लियों से भी बदतर। कौन कब मसल दे, जब तक नहीं मसल रहा तब तक पेट-प्रजनन के कीचड़ में डूबे रहो। मित्र के कथन को सुनकर वह बोल उठे—मनुष्य ने अपने हाथों अपनी दुर्गति की है, निर्माण के लिए भी उसे अपने फौलादी भुजदण्ड उठाने होंगे। भगवती बाबू ठीक कहते हैं, जुल्म को मिटाने के लिए अपनी खुशियों को तो होमना ही होगा। इससे वे डरें जो बुजदिल हैं। मातृभूमि के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने वालों को डर क्या ? तीसरे ने समर्थन किया।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ये सभी इसी तरह बातों में लगे थे, इतने में वह आयी और इन सबके बीच में चार थालियों में खाना लगा दिया, निकट ही पानी के गिलास रख दिये। उसे देखते ही सबके चेहरे की थकान मिट गई। भाभी आपने खाना देकर तो हम लोगों को नए प्राण दे दिये। एक ने कह ही दिया। जवाब में वह हल्के से हँस दी। भोजन के बीच-बीच में इसी तरह हँसी-मजाक और विचारपूर्ण चर्चा होती रही। भोजन की समाप्ति के बाद मित्र मण्डल चला गया।

अब वे दोनों ही थे—

"क्यों जी ! आपकी क्रान्ति में मैं भाग नहीं ले सकती ?" उसने-आज अपने मनकी बात कह दी। लगातार के इस बन्दी जीवन की अकर्मण्यता से वह ऊब गई थी। निठल्लापन किसे कुंठित और बोझिल नहीं करता?

"तुम"? भगवती बाबू शायद इस प्रस्ताव के लिए तैयार नहीं थे। उनकी आश्चर्यपूर्ण मुद्रा में इसी भाव की झिलमिलाहट थी।

"मैं क्यों नहीं?"

प्रति प्रश्न के उत्तर में उन्होंने समझाने के भाव में कहा, "इस काम में कहाँ-कहाँ नहीं भटकना पड़ता, न कोई मान-सम्मान। उल्टे अपमान भले हो जाए। कुछ निश्चित नहीं . . . . . " वे कहते जा रहे थे और सुनते हुए वह सोच रही थी। लाखों कोशिशें अनेकानेक संत-महात्माओं-महापुरुषों के प्रयत्न इस समाज का कायाकल्प नहीं कर सके, पुनर्रचना नहीं हो सकी, इसका सिर्फ यही कारण रहा कि जड़ की उपेक्षा कर वे पत्तों पर पानी छिड़कते रहे और जिसकी जड़ में दीमक लगी है, उस वृक्ष की सिंचाई "सोचकर वह हँस पड़ी। हँस क्यों रही हो ? बातों के बीच में इस तरह हँसना शायद उन्हें अच्छा नहीं लगा।"

"दीमक लगी जड़ वाले वृक्ष के पत्तों की सिंचाई की बात सोचकर हँस रही थी।"

दीमक, जड़, वृक्ष, सिंचाई करने वाला पहेलियाँ न बुझाओ साफ-साफ कहो।

"आप सुनें भी तो !"

"कुछ कहो भी या पहेलियाँ सुनता रहूँ।"

"समाज की जड़ नारी है। नारी के बिना क्या समाज की उत्पत्ति और प्रसार की कल्पना सम्भव है ? और आज वही जड़ कुरीतियों-मूढ़ताओं की दीमक से जर्जर प्राय: है। ऐसे में जड़विहीन वृक्ष रूपी समाज के विकास के लिए किए जाने वाले प्रयत्न क्या समग्र होंगे?" सुनते-सुनते उन्हें कथन की गूढ़ता और अपने भ्रम का भान होने लगा। अब वह किंचित गम्भीर हो सुनने लगे "नारी की जाग्रति-नारी के बिना सम्भव नहीं। पुरुष उसका बाड़ा गिरा सकता है। अर्गलाओं को तोड़ सकता है क्योंकि ये उसी की बनाई हैं, पर मानसिक भ्रान्तियाँ परिस्थितियों की विवशता के कारण उसके अपने मन की उपज है, जिसके निवारण के लिए नारी कर्त्तव्य अपेक्षित है। इस अपेक्षा को पूरा किए बिना न देशोद्धार सम्भव है और न समाज की नवीन रचना।"

अब कहने के लिए बचा ही क्या था ? सारी बातें साफ हो गयीं। भगवती बाबू की नींद काफूर हो गयी थी। वह सोचने के लिए विवश थे।

"तुम्हारी बात सौ फीसदी सच है" वे बोल पड़े "नारी को अपने और समाज की नयी नियति बनाने के लिए खुद जूझना पड़ेगा," "और पुरुष को?" इसके पहले वाक्य पूरा करें कि वह बोल उठे "उसमें सहयोगी।" दोनों की आँखों एक-दूसरे से मिलीं, संकल्प की एक दीप्ति उभरकर अधरों से फिसल गई। अपने क्रान्तिवीर पति भगवतीचरणव्होरा की सहधर्मिता निभाने वाली इस नारी रत्न को राष्ट्र ने दुर्गा के रूप में देखा जाना। भगतसिंह, सुखदेव, चन्द्रशेखर जैसे क्रान्तिधर्मी इन दुर्गा भाभी की प्रेरणा, स्नेह, सहयोग से ही धधकते अंगारे बने। समाज को आज भी नारियों से उसी क्रान्तिधर्मी भूमिका की अपेक्षा है।

स्वाधीनता की मशाल जलाने वाली— नागारानी गिडालू

'उस नन्हीं बहादुर लड़की ने अपनी देशभक्ति के जोश में एक विशाल साम्राज्य को चुनौती दी थी। मगर उसे कितनी यातना और घुटन सहनी पड़ रही है ? पहाड़ की ताजी खुशनुमा हवाओं में अब वह कभी नहीं जा सकेगी। पहाड़ की ढलानों पर जंगली कुंजों में अब वह कभी आजादी से नहीं घूम सकेगी। यह छोटी सी उन्मुक्त गिडालू रानी चुपचाप बैठी रहती होगी। अँधेरे में कैद। छोटी-सी कोठरी में अकेले, बिल्कुल अकेले अपनी यन्त्रणा को चुपचाप झेलते हुए और अफसोस यह है कि हिन्दुस्तान अपनी इस बहादुर बिटिया के बारे में जानता भी नहीं। भारत की यह बहादुर बेटी नागा पहाड़ियों की पवित्र सन्तान है, जिसकी साँस-साँस में पहाड़ी हवाओं की आजादी बसी हुई है। उसके प्रदेश के लोग उसे प्यार, इज्जत और दु:ख से याद करते हैं। एक दिन आयेगा जब सारा हिन्दुस्तान उसे याद करेगा, उसे इज्जत बख्शेगा और कैदखाने के दरवाजे खोलकर उसे बाहर ले आयेगा।'—ये शब्द हैं पं० जवाहर लाल नेहरू के जो उन्होंने नन्हीं गिडालू के कारावास के समय कहे थे।

नागारानी गिडालू का जन्म बर्फीली चोटियों, चीड़ और बुरुंश के जंगलों से ढके नागालैण्ड में नागाओं के कोबाई कबीले के एक पुरोहित के यहाँ हुआ था। उन दिनों पहाड़ी जन-जातियों में शिक्षा का प्रचार नहीं था। अधिकांशत: बालक-बालिकाएँ बचपन से ही खेती-बाड़ी आदि में लग जाते थे और आजीविका के लिए कठोर परिश्रम करते थे। परन्तु गिडालू की रुचि प्रारम्भ से ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पढ़ने-लिखने में बहुत अधिक थी—अतएव उनकी माता ने शिक्षा हेतु अपनी पुत्री को मिशन स्कूल में भर्ती कर दिया। क्रमशः कक्षाएँ पास करते हुए वे दसवीं श्रेणी में पहुँच गयीं।

विद्यालय के वातावरण का, शिक्षा-दीक्षा का बालक के कोमल मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव पड़ता है। गिडालू का विद्यालय देखने में तो साधारण-सा स्कूल लगता था पर वस्तुतः वह क्रान्तिकारी शिक्षकों की कार्य स्थली थी। अँग्रेजी सरकार के प्रति देशभर में व्याप्त विद्रोह की लहर को ये नागालैण्ड में तूफान के रूप में बदलकर स्वतन्त्रता की देवी का अर्चन करना चाहते थे। इन देशभक्त शिक्षकों ने विद्यार्थी वर्ग में अँग्रेजी हुकूमत के प्रति घृणा की चिनगारियाँ सुलगा दीं, जो देश भर में बढ़ते हुए आन्दोलनों की वायु का सहारा ले अग्नि-शिखा में वर्धित हो रही थीं।

१९३१ में सारे भारत में असहयोग-आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। नागालैण्ड भी उससे कैसे अछूता रह सकता था। छात्रों को उद्‌बोधित करते हुए एक दिन गिडालू रानी के प्राधानाचार्य ने कहा—'भारतमाता विदेशी बेड़ियों में जकड़ी हुई आज रक्त-रंजित हो रही है। देश के नौनिहालों ! तुम्हें अपनी मातृभूमि से तनिक भी प्यार हो तो, उसकी इन बेड़ियों को काटो, विदेशियों के चंगुल से उसे छुड़ाओ। पेट और प्रजनन वाला जीवन तो पशु भी जीते हैं, परन्तु मानव जन्म की सार्थकता इसी में है कि वह देश, जाति और धर्म के लिए उत्सर्ग हो सके।'

षोडशवर्षीया गिडालू के भावुक मन पर इन शब्दों का गहरा प्रभाव पड़ा। वह हर समय यही सोचती रहती कि किस प्रकार मेरा जीवन देश रक्षा के काम आ सके ? परोपकारी लोगों की ईश्वर भी सदा सहायता करता है। अन्ततः उन्हें वह मार्ग मिल ही गया जिस पर चलकर वे अमर हो गयीं।

उस किशोरी ने सर्वप्रथम कार्य यह किया कि १०-१५ सहपाठियों का एक संगठन बनाया। पहाड़ियों की गोद में खड़े होकर इन वीर बालाओं ने प्रतिज्ञा की 'जब तक रक्त की अन्तिम बूँद भी शरीर में शेष रहेगी, मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए लड़ते रहेंगे।' समीप ही बहने वाली ब्रह्मपुत्र नदी का भैरव निनाद मानो इनकी प्रतिज्ञा का अनुमोदन कर रहा था।

किशोरी-दल में अँग्रेजों के प्रति विद्रोह की आग दिन पर दिन धधकती जा रही थी। इनकी शिराओं में बहादुर पहाड़ी जाति का रक्त खौल रहा था, जो कुछ कर दिखाने को आतुर थी। अपनी साथिनों के इस जोश को गिडालू ने रचनात्मक कार्यक्रम में लगाया। इन्होंने सबसे पहले अपना कार्य क्षेत्र विद्यालय को ही बनाया। विभिन्न गोष्ठियों और भाषणों से इन्होंने छात्रों में नूतन चेतना भर दी। परिणाम यह हुआ कि इनका संगठन अत्यन्त व्यापक हो गया और अनेक युवक-युवतियाँ इस क्षेत्र में कूद पड़े।

इन बहादुर छात्र-छात्राओं ने समस्त नागालैण्ड में घूम-घूमकर अशिक्षित लोगों को परतन्त्रता का बोध कराया और स्वतन्त्रता-आन्दोलन को सक्रिय रूप देने के लिए संगठन बनाने प्रारम्भ किये। नागाओं के अनेक कबीले अँग्रेजी-सत्ता के विरोध में उठ खड़े हुए। स्थान-स्थान पर सभायें आयोजित कर जनता को अँग्रेजों को देश से खदेड़ने के लिए प्रेरित किया गया। नागालैण्डवासियों ने विदेशी वस्तुओं की होली जलायी और देशी सामग्री प्रयोग में लाने का व्रत लिया। अँग्रेजों के विरोध में जूलूस भी निकाला गया और अँग्रेजी झण्डा जला दिया गया। जनता सशस्त्र-क्रान्ति के लिए भी योजनाएँ बनाने लगी।

नागालैण्ड की इस जाग्रति का समाचार अन्ततः ब्रिटिश सरकार तक भी पहुँचा। जब उसे पता लगा कि इतनी बड़ी जनक्रान्ति का मूल एक सोलह वर्षीया किशोरी है, तो सरकार भी दाँतों तले अँगुली दबा गयी। उसने इस 'खतरनाक' लड़की को तुरन्त गिरफ्तार करने का आदेश दिया। गिडालू के साथियों को भी पकड़ लिया गया और उन्हें विविध यातनाएँ दीं। पुलिस ने निर्दयतापूर्वक अनेक बस्तियाँ जला डालीं और सैकड़ों नागाओं की हत्या कर दी।

गिडालू रानी से सरकार इतनी आतंकित थी कि उन्हें आजन्म कारावास की सजा दे दी गयी। इस समाचार को सुनकर सारे देश में शोक की लहर व्याप्त हो गयी। जो भी इस किशोरी की कुर्बानी सुनता—उसकी आँखों में नमी छा जाती। तत्कालीन नेताओं ने उनकी मुक्ति के अनेक प्रयास किये। पं० जवाहर लाल नेहरू ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में गिडालू की मुक्ति के लिए प्रस्ताव उठवाये। हरिपुरा काँग्रेस अधिवेशन में भी उनकी मुक्ति के लिए प्रस्ताव पास किये। परन्तु इन सब प्रयत्नों के उपरान्त भी वे मुक्त न हो सकीं। उनसे अँग्रेज इतने अधिक आतंकित थे कि किसी भी प्रकार छोड़ने को तैयार न होते थे। तत्कालीन वाइसराय ने तो आसाम असेम्बली में गिडालू रानी की मुक्तिविषयक प्रश्न पूछे जाने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया था।

प्रारम्भ में जेल की काल कोठरी में रानी गिडालू को बहुत अधिक कष्ट उठाने पड़े। कहाँ तो प्रकृति का उन्मुक्त वातावरण और कहाँ पिंजरे में बन्द यह नारकीय जीवन और भीषण यातनाएँ ! परन्तु इस सबके उपरान्त भी वे हतोत्साहित न हुईं। गिडालू को प्रसन्नता थी कि नागालैण्ड में विद्रोह की जो आग उन्होंने प्रज्ज्वलित की है, वह अँग्रेजी बन्धनों को जला डालेगी। जेल में भी वे अपने अन्य साथियों में आशा और विश्वास की ज्योति जलाती रहीं।

अन्ततः १५ अगस्त, १९४७ का वह शुभ दिन आया, जब भारतवासियों ने स्वतन्त्र वायु में साँस ली। स्वतन्त्रता के बाद भी नेहरू जी गिडालू रानी की मुक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का प्रयास करते रहे और १९ जुलाई, १९४९ के मंगलमय दिन गिडालू रानी जेल से मुक्त हुईं। १६ वर्ष की नवयुवती कारावास से निकलने पर ३७ वर्ष की प्रौढ़ा हो चुकी थीं। उनके जीवन के १८ मूल्यवान् वर्ष जेल में व्यतीत हुए। उनकी मुक्ति का सारे देश में स्वागत किया गया। नागालैण्ड तो अपनी इस तपस्विनी के आगमन पर खुशी से नाच उठा।

रानी गिडालू स्वतन्त्रता के पश्चात् भी देश की उन्नति में विविध प्रकार से योगदान देती रही। सरकार ने उस देवी के सम्मानार्थ आजीवन पेंशन देनी प्रारम्भ की परन्तु इसे भी इन्होंने सेवाकार्यों में ही लगा दिया। नागालैण्ड की चहुँमुखी प्रगति में गिडालू रानी का योगदान कदापि विस्मृत नहीं किया जा सकता।

आधुनिक भारत की विभूतिवान महिला— श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित

द्वितीय विश्वयुद्ध ने अँग्रेजों की अंतर्राष्ट्रीय सुदृढ़ता की जड़ें हिला डाली थीं। यद्यपि इस युद्ध में अँग्रेजों की ही विजय हुई थी परन्तु विजय का मूल्य भी उन्हें बड़ा भारी चुकाना पड़ा था। जैसा कि आजकल के युद्धों में होता है। युद्धों में किसी एक राष्ट्र के लाभ-हानि का पलड़ा भारी नहीं रहता। दोनों ही पक्षों को बराबर की क्षति उठानी पड़ती है और महायुद्ध जैसी लड़ाई, जिसमें विश्व के अधिकांश देशों ने भाग लिया था, उन सभी देशों के लिए कम-ज्यादा परन्तु सभी के लिए अनेकानेक समस्याएँ उपस्थित कर गयी थी।

अँग्रेजी सरकार के सामने इन समस्याओं में एक समस्या यह भी थी कि भारत में बढ़ती जा रही आजादी की माँग को सुना जाय और भारत को स्वतंत्र किया जाय। अब तक तो अँग्रेज शासक इस आवाज को दबाते आ रहे थे परन्तु अब इसके लिए उन पर अन्तर्राष्ट्रीय दबाव भी पड़ने लगा था। मित्र राष्ट्र इंग्लैण्ड पर दबाव डाल रहे थे कि वे भारत को आजाद कर दें। इस कारण अँग्रेज धन-धान्य से भरी इस शस्य-श्यामला भूमि पर शासन करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे थे। एक के बाद एक ऐसे पैंतरे बदले जा रहे थे कि विश्व का ध्यान इन प्रश्नों पर से हट जाए। इन्हीं पैंतरों में से एक था सन् १९४४ में मित्र राष्ट्रों का एक सम्मेलन। यह सम्मेलन सैन फ्रांसिस्को में हुआ और अँग्रेजों ने भारत का ऐसा दयनीय स्वरूप उपस्थित प्रतिनिधियों के सम्मुख रखा, जिसमें बताया गया कि "भारत पिछड़े युग में जीने वाला, अशिक्षा और अज्ञान के अंधकार में रहने वाला एक ऐसा निर्जीव देश है, जहाँ के लोग अपना शासन सम्हाल पाने में अक्षम हैं। वहाँ की असभ्य, अशिक्षित और जंगली जनता को बाहरी आक्रमणों और दूसरी शक्तियों के हस्तक्षेपों से बचाने तथा स्वयं समर्थ बनाने के लिए आवश्यक है कि अँग्रेज वहाँ बने रहें।"

यह चित्रण इस प्रकार किया गया था कि उपस्थित प्रतिनिधियों को विश्वसनीय लगा। यह संभावना हुई कि भारतीय स्वतंत्रता की धारणा को मिलने वाला अंतर्राष्ट्रीय समर्थन जाता रहेगा। परन्तु ऐसा नहीं होने दिया गया क्योंकि वहाँ उपस्थित थीं, भारतीय जनता की प्रतिनिधि विदुषी महिला विजयलक्ष्मी पंडित। तथ्यों, आँकड़ों और विवरणों के आधार पर उन्होंने उपस्थित प्रतिनिधियों के सम्मुख यह सिद्ध कर दिया कि अँग्रेजों द्वारा भारत के जिस स्वरूप का प्रस्तुतीकरण किया गया है, वह एकांगी है। गरीब और अशिक्षित लोग विकसित से विकसित देश में भी रहते हैं परन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं कि इस कारण वे क्षुद्र हों।

भारत के सभ्य, सुसंस्कृत और गरिमा मंडित रूप से परिचित होकर विदेशी हतप्रभ रह गये और उन्होंने एक भाव से यह अनुभव किया कि इस देश को अशिक्षित, असभ्य, जंगली और पिछड़ा हुआ कहकर हम उसे और भी अधिक अंधेरे में धकेलने के दोषी होंगे। श्रीमती पंडित ने वहाँ के सदस्यों को एक स्मरण पत्र भी दिया, जिसमें लिखा था कि "मेरी आवाज मेरे देश की आवाज है । इस आवाज का गला घोंटने के लिए अँग्रेजों ने फौलादी आज्ञाएँ और इस्पाती प्रतिबंध लगा दिये हैं। मैं न केवल अपने देश की आवाज में बोल रही हूँ वरन् फौजी शासन के बूटों से रौंद दिये गये पड़ौसी बर्मा, इंडोचीन और एशिया जैसे उन सभी पिछड़े राष्ट्रों की ओर से भी बोल रही हूँ, जो अब मुक्ति की वायु में स्वतंत्रता की साँसें लेते हुए जीने के लिए छटपटा रहे हैं।"

विजयलक्ष्मी पंडित द्वारा दिये गये व्यक्तव्य तथा स्मरण पत्र से अँग्रेजों द्वारा विदेशी प्रतिनिधियों के मस्तिष्क में उत्पन्न किए गये सभी भ्रम दूर हो गये और इसके लिए उन्हें लताड़ा भी गया। इस भ्रमभंजन का सुफल तीन वर्ष बाद ही भारतीय जनता के सामने आया जब इतिहास का दूसरा अध्याय ही नहीं, नया भाग खुल कर सामने आया। यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अगणित वीरों का बलिदान, त्याग और संघर्ष काम आया, परन्तु विदेशी प्रतिनिधियों और अंतर्राष्ट्रीय समर्थन के रूप में जो सहायता उपलब्ध हुई, उसका अधिकांश श्रेय पंडिता विजय लक्ष्मी को ही जाता है।

विजयलक्ष्मी पंडित के वंश, कुल के सम्बन्ध में कुछ अधिक न कहना होगा। उनका जन्म नेहरू परिवार में हुआ था। बचपन राजकुमारियों की तरह बीता। अग्रज के रूप में एकमात्र साथ मिला था—जवाहरलाल का और विजयलक्ष्मी जी अपने भैया के नाम को अपने नाम के साथ जोड़कर गाती थीं-"नन्हीं बेवी रानी-नन्हें भैया राजा।" पं० मोतीलाल नेहरू तथा माता स्वरूपरानी इन दोनों बच्चों को अपनी आँखों के तारे समझकर ध्यान से रखते थे। पंडितजी को अपने काम-काजी जीवन से जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समय बचता, वह पूरा स्वतंत्रता-आंदोलन में जाता। परन्तु इसके बावजूद भी वे अपने बच्चों के लिए पर्याप्त समय देते थे।

रात के समय माँ महापुरुषों के जीवन प्रसंगों को सुन्दर और सहज ढंग से सुनाया करतीं। भारत-माता के प्रति अनन्यनिष्ठा दोनों बच्चों को अपने पिता से विरासत में मिली और महान बनने की प्रेरणा माँ से। सेवा, शालीनता, शिष्टता और उदारता के गुणों से उन्होंने अपने व्यक्तित्व को अलंकृत कर लिया। अनंत वत्सला मातृ-हृदय ने व्यक्तित्व की ही नहीं, परिवार की दीक्षा भी अपनी बेटी को दी और उन्हें घर-गृहस्थी के काम-काजों में भी भली-भाँति निपुण बनाया।

कहा जा चुका है कि भारत-माता के प्रति भक्ति भाव विजयलक्ष्मी को पिता से विरासत में मिला था। घर के वातावरण ने दोनों भाई-बहनों को स्वातंत्र्य-योद्धा की पंक्तियों में ला खड़ा कर दिया। उन दिनों गाँधीजी का नारा-'अँग्रेजो ! भारत छोड़ो' तथा तिलक का उद्घोष-'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेंगे'-देश के कोने-कोने में गूँज रहे थे। सारा देश मोह निद्रा त्यागकर स्वतंत्रता के जागरण यज्ञ में भागीदार हो गया था। इसी प्रवाह में जवाहरलाल नेहरू भी काँग्रेस पार्टी में सम्मिलित हो गये और चलाए जाने वाले कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेने लगे।

पं० मोतीलालनेहरू और महात्मा गाँधी परस्पर घनिष्ठ सम्पर्क सूत्रों में आबद्ध थे। अपने पिता के साथ विजयलक्ष्मी भी गाँधीजी के पास दो-चार बार गईं और इन दर्शनों ने विजयलक्ष्मी को इतना प्रभावित किया कि अब वह प्रवाह रोके न रुक रहा था, जो पिता के व्यक्तित्व और भाई के कर्तृत्व से निर्झर बनकर फूटा था। विजयलक्ष्मी ने भी अपने पिता से काँग्रेस पार्टी में सम्मिलित होने की अनुमति माँगी। पिता को इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी ? उन्होंने सहर्ष अनुमति दे डाली और विजयलक्ष्मी काँग्रेस आंदोलन में उत्साहपूर्वक भाग लेने लगीं। स्वातन्त्र्ययज्ञ में जीवन आहुतियाँ देते समय ही विजयलक्ष्मी का परिचय श्री रणजीत सीताराम पंडित से हुआ। श्री रणजीत पंडित एक प्रतिभाशाली गुजराती युवक थे और वे भी स्वतंत्रता आंदोलन में निष्ठा व उत्साहपूर्वक भाग ले रहे थे। यह परिचय उन्हें स्वाभाविक ही निकट लाया और दोनों घनिष्ठ संगी बन गये।

इन्हीं दिनों विचार किया जाने लगा कि दोनों प्रणय सूत्रों में आबद्ध हो जाएँ परन्तु विचारणीय यह था कि विवाह कहीं भारत-माता की सेवा-आराधना में बाधक तो सिद्ध नहीं होगा, इसलिए दोनों ने मिलकर संकल्प लिया कि विवाह के बाद सामान्य दम्पत्ति की तरह जीवनयापन न करते हुए स्वतंत्रता के लिए और भी दूने उत्साह के साथ प्रयत्न करेंगे। तदुपरांत वे प्रणय-सूत्रों में बँध गये। अपना संकल्प पूरा करने के त्याग-संयम की शिक्षा आत्म-नियमन के रूप में शरीर के कण-कण को संसिक्त कर उठी थी।

स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रियरूप से भाग लेने के साथ-साथ विजयलक्ष्मी पंडित का व्यक्तित्व भी उभरकर सामने आया। प्रत्येक कठिनाई का वे साहस और दृढ़तापूर्वक सामना करती थीं। १९२९ में असहयोग आंदोलन के अंतर्गत पं० मोतीलाल नेहरू तथा जवाहर लाल नेहरू जी बार-बार जेल आए-गए । ऐसे समय में आनन्द भवन की देख-रेख का जिम्मा विजयलक्ष्मी का रहता। कई बार पुलिस आती, छापे पड़ते, जुर्माने होते और पुलिस वाले आनन्दभवन की मूल्यवान से मूल्यवान वस्तुएँ उठा ले जाते। परन्तु उन्हें इस प्रकार दीक्षित किया गया था कि वे संतुलन बनाए रखें। गाँधीजी के सत्य और अहिंसा के आदर्शों को गहराई से समझते हुए उन्हें अंगीकार कर वे चुपचाप सह जातीं और अत्याचार के विरोध का सिद्धान्त भी चरितार्थ करतीं।

इस आंदोलन के नये-नये आयाम सामने आते रहे। विजयलक्ष्मी भी उन आयामों के साथ नये-नये रूपों में सक्रिय होती गयीं। सन् १९२९ में काँग्रेस पार्टी ने पूर्ण स्वाधीनता को अपना लक्ष्य घोषित किया और इसका प्रारंभ हुआ नमक सत्याग्रह से। काँग्रेस कार्यकर्ता नमक पर लगे प्रतिबंध को तोड़ने के लिए गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले और घर-घर में जाकर नमक बनाने लगे। विजयलक्ष्मी भी इस आंदोलन को देशव्यापी बनाने के लिए घर-घर घूमने लगीं। वे लोगों के पास जातीं, नमक सत्याग्रह की क्रियापद्धति बतातीं। साहस तथा निर्भीकतापूर्वक किन्तु सत्य और अहिंसा पर दृढ़ रहने की प्रेरणा देते हुए अपने जन्मसिद्ध अधिकार को प्राप्त करने का उत्साह भरतीं।

भारत का बच्चा-बच्चा ऐसे उत्साह से भर उठा और अँग्रेजी शासन की कुंभकर्णी निद्रा को तोड़ने में भारतीय-आत्मा की आवाज सफल होने लगी। परन्तु इतनी आसानी से इतने बड़े साम्राज्य को हाथ से कैसे जाने दिया जा सकता था ? इसलिए अपने जाने-पहचाने अस्त्र दमन-चक्र का अँग्रेजी सरकार ने प्रयोग किया। अनेक नयी आज्ञायें प्रसारित की गयीं और प्रतिबंध लगाए गये। उस समय किसी जनसभा का आयोजन और उसमें भाषण देना तो क्या उसमें भाग लेने का दंड था—जेल। लेकिन विजयलक्ष्मी ने २६ जनवरी, १९३० को दिल्ली की एक सभा में भाषण देने का निश्चय किया। यह निश्चय क्रियान्वित हो ही रहा था कि अँग्रेज सिपाहियों ने उनको गिरफ्तार कर लिया। सुख-सुविधाओं भरे राजसी वातावरण में पली-पोषी विजयलक्ष्मी के लिए जेल-यातनाएँ असहनीय ही थीं। परन्तु उसे उन्होंने अपनी निष्ठा और देशभक्ति के उपहार के रूप में ग्रहण किया। जेल में जो समय बचता, उसमें विजयलक्ष्मी स्वाध्याय करतीं। अनभ्यस्त होते हुए भी विजयलक्ष्मी जी ने जेल-यातनाओं को एक वर्ष तक स्वाभाविक रूप से भोगा।

१९४२ में जब 'अँग्रेजो ! भारत छोड़ो' का उद्घोष हुआ तो सरकार ने यह आंदोलन छिड़ने से पूर्व

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही देश के कई नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। उस समय तक विजयलक्ष्मी भी स्वतंत्रता के नेतृवर्ग में समझी जाने लगीं थीं। इस कारण १२ अगस्त को उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। यही नहीं उनके पति रणजीत पंडितजी भी गिरफ्तार कर लिए गए और उनकी छोटी-सी बिटिया-लेखा को भी नहीं बख्शा गया। श्रीमती पंडित करीब नौ महीने जेल में रहीं। जेल के अस्वाभाविक और कठोर जीवन ने उनके स्वास्थ्य को गहरा धक्का पहुँचाया। वे बीमार रहने लगीं और बीमारी के कारण उन्हें कारावास की अवधि पूरी होने से पूर्व ही रिहा कर दिया गया।

आवश्यक तो यह था कि श्रीमती पंडित जेल से छूटने के बाद कुछ दिनों तक विश्राम करतीं, परन्तु विश्राम का समय कहाँ था, समय का तकाजा तो मन में सरफरोशी की तमन्ना उत्पन्न कर चुका था। श्रीमती पंडित उन्हीं कार्यक्रमों में पुन: प्रवृत्त हो गयीं, जिन्हें कि जेल जाने से पूर्व सक्रिय रूप से छेड़ा था। सक्रियरूप से इसलिए कि विचार और चिंतन-मनन तो जेल में भी आजादी का चला ही करता था।

इसके कुछ दिनों बाद ही श्रीमती पंडित के पति श्री रणजीत सीताराम पंडित का देहावसान हो गया। दोनों ने न तो अभी दाम्पत्य सुखों का उपभोग किया था और न समरसता के साथ गृहस्थ जीवन का सुख ही भोगा था कि विधि का यह वज्रपात हो गया। यकायक तो वे विक्षिप्ता-सी हो उठीं। परन्तु अपने जीवन ध्येय, कर्त्तव्य पथ और लक्ष्य-मंजिल की ओर देखकर उन्होंने मन को ढाढस दिया तथा जो कुछ भी हुआ, सो ठीक के भाव से ग्रहण किया। यातनाएँ और झंझावातों से भरे जीवन पथ पर वे अग्रसर होती रहीं।

इन्हीं दिनों संपन्न हुआ सैन फ्रांसिस्को का वह ऐतिहासिक सम्मेलन जिसमें भारत का सफल प्रतिनिधित्व किया श्रीमती पंडित ने। इस सफलता ने उन्हें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्रदान की। सन् १९४६ में संयुक्त-राष्ट्र-संघ का प्रथम सम्मेलन न्यूयार्क में हुआ। संयुक्त-राष्ट्र-संघ के इस सम्मेलन में श्रीमती पंडित के नेतृत्व में एक शिष्ट-मंडल भाग लेने के लिए भेजा गया। यह शिष्ट-मंडल प्रवासी भारतीयों पर अँग्रेजों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों को स्पष्ट करने के उद्देश्य से भेजा गया था। श्रीमती पंडित ने जिस सफलता और प्रभावोत्पादक क्षमता के साथ अपना उद्देश्य सम्मेलन में रखा और स्थिति को स्पष्ट किया उससे उनकी स्पष्टवादिता, निर्भीकता और राजनीतिक दक्षता की धाक सभी पर जम गयी। अमेरिका के समाचार-पत्रों ने विजयलक्ष्मी पंडित को सन् १९४६ की विलक्षणा नारी का संबोधन दिया और लिखा कि इस नारी ने दक्षिणी अमेरिका में भारतीयों पर किए गए अँग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध एक क्रान्ति की धूम मचा दी है।

अंतत: आया भारतीय-स्वाधीनता-संग्राम का वह दिन जिसके लिए इतने वर्षों से लड़ा जा रहा था। १९४७ की पन्द्रहवीं अगस्त को भारतीयों की चिरप्रतीक्षित साध पूरी हुई और स्वतन्त्र-भारत का उदय हुआ। स्वतन्त्र भारत की स्वतन्त्र सरकार ने विजयलक्ष्मी पंडित को अमेरिका में भारतीय राजदूत नियुक्त किया। इस पद पर रहते हुए श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने अपने दायित्वों को ईमानदारी और कर्त्तव्य निष्ठा के साथ पूरा किया। भारत सरकार ने बाद में उन्हें संयुक्त-राष्ट्र-संघ मे भारतीय प्रतिनिधि नियुक्त किया। उनकी प्रतिभाओं और विलक्षण बुद्धिमत्ता, सूझ-बूझों के कारण संयुक्त-राष्ट्र-संघ के विश्व भर के देशों के प्रतिनिधियों ने उन्हें राष्ट्र संघ का अध्यक्ष चुना। इस प्रकार श्रीमती पंडित को किसी कार्य क्षेत्र में प्रथम महिला और प्रथम भारतीय-महिला का दूसरी बार गौरव मिला। श्रीमती पंडित इससे पूर्व राजदूत के रूप में कार्य करने वाली भी संसार की प्रथम महिला थीं । उनकी विभूतियों और सफलताओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि भारतीय-नारी शोषण और उत्पीड़न के कितने ही कुटिल चक्रों में पिसती रही हो परन्तु उसकी जीवनी शक्ति और प्रतिभा क्षमता आज भी इतनी महिमामंडित है कि यदि उसे प्रकट होने का अवसर मिले तो निश्चय ही इस संसार का नेतृत्व और कायाकल्प कर सकती है।

देश प्रेम में तिल-तिल जलने वाली— श्रीमती पार्वती देवी

अमृतसर के जलियाँवाला बाग में क्रूर विदेशी शासकों द्वारा गोलियों से निरपराध, निहत्थे लोगों को असमय ही मृत्यु के मुख में जाते देख उनके भीतर प्रतिशोध की ज्वाला प्रज्ज्वलित हुई। उसी क्षण से उन्होंने बत्तीस वर्ष की अल्पायु में ही अपना संपूर्ण जीवन देशवासियों को इस क्रूर शासन से मुक्ति दिलाने के संग्राम में ही लगा दिया।

अपने देश बंधुओं पर हुए अत्याचारों को देखकर उनकी आत्मा रो उठी थी। उन्होंने जीवन की संपूर्ण अभिलाषाओं का दमन मुक्ति-संघर्ष का मोर्चा सम्हाल लिया। हँसते-हँसते तप और त्याग का वह कंटकाकीर्ण मार्ग अपनाया, जिस पर चलकर वे स्वयं भी धन्य हुई तथा अपने अनेक भाई-बहनों का पथ-प्रदर्शन किया।

त्याग और तपस्या की यह मूर्तिमान प्रतीक हैं श्रीमती पार्वती देवी, उनका जन्म अप्रैल १८८८ में अविभाजित पंजाब के लायलपुर जिले के कमालिया नामक ग्राम के एक संपन्न परिवार में हुआ था। पिता लेन-देन का व्यवसाय करते थे। लक्ष्मी की कृपा थी। स्वामी दयानंद के संपर्क में आने पर इनके पिता के जीवन में एक बहुत बड़ा मोड़ आया। उन्होंने अभक्ष्य भोजन का परित्याग कर शुद्ध, सात्विक जीवन आरम्भ कर दिया था। वे नियमित उपासना करने लगे थे। घर में आये दिन हवन होता रहता था। आय का एक निश्चित भाग वे समाज सेवा के लिए निकाला करते थे। पार्वती देवी पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

होता रहता था। आय का एक निश्चित भाग वे समाज सेवा के लिए निकाला करते थे। पार्वती देवी पर घर के इस धार्मिक वातावरण की जो छाप पड़ी, उसका प्रभाव उनके भावी जीवन में स्पष्ट परिलक्षित हुआ। उन्होंने अमृतसर के स्वराज्य आश्रम में कई वर्षों तक अपनी सेवाएँ निःस्वार्थ प्रदान की थीं। वहीं आश्रम में इनकी भेंट महात्मा गाँधी से हुई। देश-सेवा की उत्कट इच्छा तो उनके तन-मन में बसी ही थी। गाँधी का मार्गदर्शन पाकर ये आंदोलन में भाग लेने के लिए कटिबद्ध हो गयीं।

कुछ समय उपरांत अपने भाई के साथ लाहौर आ गयीं। वहाँ से अँग्रेजों के विरुद्ध जनमत तैयार करने हेतु पंजाब का दौरा करती रहीं।

इनका विवाह क्वेटा में डा० मिलखीराम के साथ हुआ था। किन्तु, दुर्भाग्यवश विवाह के ढाई वर्ष पश्चात् ही डा० साहब अचानक दुर्घटना के शिकार होकर असमय ही परलोक सिधार गये। इस वज्रपात को भी उन्होंने धैर्य के साथ सहा।

पत्नी के लिए अपने पति की मृत्यु से बढ़कर और कोई दुःखद घटना नहीं होती। किन्तु इस समय उन्होंने धैर्य तथा विवेक से काम लिया तथा इस घटना में मनुष्य-जीवन की नश्वरता की एक झाँकी देखी। उन्होंने सोचा—'पंच तत्त्व से बना यह मिट्टी का शरीर एक दिन मिट्टी में मिलेगा ही। गिनी-चुनी साँसें ईश्वर ने मनुष्य को दी हैं, न मालूम-कब समाप्त हो जायें ? जितना जल्दी इस शरीर को परमार्थ प्रयोजन में लगा दिया जाय, उतना ही अच्छा है। समाज का इतना अनुदान मिला है, क्यों न इसका ऋण चुकाया जाये और मानव जीवन का सदुपयोग किया जाय। सुर दुर्लभ मानव शरीर पाकर भी पेट-प्रजनन तक ही सीमित रही, तो यह जीवन व्यर्थ ही गँवा दूँगी।' यह सोचकर उन्होंने अपना भविष्य का पूरा जीवन देश-सेवा में ही बिताने का निर्णय ले लिया।

अपना खर्च जुटाने के लिए शिक्षिका पद पर नौकरी कर ली तथा बाकी बचा हुआ समय वे अन्य कार्यों के उपयोग में लगातीं।

इस समय महिलाओं को प्रेरित एवं उत्साहित कर उन्हें मार्गदर्शन देने वाली यह प्रथम तथा अकेली महिला थीं। उनके इस प्रकार देश-प्रेम से प्रेरित हो आंदोलनों में भाग लेने से अन्य महिलाओं में भी जागृति आने लगी थी। अब तक वे अपनी नौकरी से त्याग-पत्र दे चुकी थीं। कुछ ही वर्षों में इन्होंने राष्ट्रीय-महिला-समिति और कुमारी-सभा की स्थापना कर मजबूत संगठन तैयार कर लिया। सन् १९२२ से लेकर १९४२ के बीच इन्होंने छः बार जेल की लम्बी तथा कठोर यंत्रणाएँ सहन की थीं। फिर भी प्रत्येक बार और भी अधिक उत्साह एवं जोश से कार्य में जुट जाती थीं।

व्यर्थ बैठे रहना और समय बर्बाद करना इन्हें बहुत अखरता था। थकना तो जैसे वे जानती ही न हों। निरंतर नयी-नयी योजनाएँ बनाना व उन्हें कार्यान्वित करना ही इनका प्रमुख उद्देश्य था। अनीति एवं अन्याय का विरोध करने के लिए यदि कोई साथ नहीं देता, तो ये अकेली ही डटकर मुकाबला करने को उद्यत हो जातीं।

१९२२ के बाद यह प्रथम महिला थीं, जिन्होंने गाँधीजी के आन्दोलनों में भाग लिया। ब्रिटिश-शासन को जड़-मूल से उखाड़ने के लिए कई विशाल आयोजन एवं आंदोलन करती रहीं। इनमें सिस्टर निवेदिता तथा मीरा बहन की तरह अटूट आत्म-बल था।

अपने देशवासियों में स्वाधीनता के भाव भरने एवं ब्रिटिश-सत्ता के विरोध में ये खुलेआम भाषण देतीं और गिरफ्तार होकर जेल की सख्त सजाएँ भुगततीं। फिर भी इनके उत्साह में रत्ती भर भी कमी नहीं आई। दिन दूना और और रात चौगुना होकर इनका उत्साह बढ़ता ही जाता था।

मद्यपान के विरुद्ध आंदोलन छिड़ा तो ये शराब की दुकानों पर जाकर धरना देतीं। विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलाने में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती थी।

इनके साहसिक कार्यों को देखकर जनता बहुत प्रभावित होती थी। उनके हृदय में इनका गहरा स्थान था। महिलाओं के लिए तो जैसे ये अग्रदूत सेनानायिका की भूमिका ही अदा कर रही थीं। उनके निकट संपर्क में जो भी महिला आती, वह प्रभावित हो जाती थी।

सन् १९३२ तक तो इनकी कई सहयोगी महिलाएँ तैयार हो गयीं थी। इनके उत्साह में और भी वृद्धि हो गयी। उन्हें अपने सुनहरे स्वप्न पूर्ण होने की आशा की किरणें नजर आने लगी थीं। उन्हें विश्वास था कि इसी गति से यदि महिलाओं की संख्या बढ़ती गयी तो शीघ्र ही ब्रिटिश-सत्ता को नष्ट करने में सफलता मिलेगी।

अपने व्यस्त दैनिक कार्यक्रमों में से भी ये कुछ समय निकाल लेती थीं और चंदा इकट्ठा करके क्रांतिकारियों के परिवारों को आर्थिक सहायता देने का काम भी साथ-साथ ही करती जाती थीं।

कई बार उन्हें बस मालिकों से भी सत्याग्रह करना पड़ा था। जब उनके पास स्वयंसेवकों की भरमार हो जाती और एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए बस मालिक इन्कार कर देते तो ऐसी परिस्थितियों में उन्हें विवश होकर सत्याग्रह करने पड़ते थे। अनीति एवं अन्याय के विरुद्ध वे कभी सिर नहीं झुकाती थीं। आखिर बस मालिकों को पराजित होना पड़ता और वे अपनी बसों में उन सबको ले जाने के लिए तैयार हो जाते। ऐसे अवसरों पर भी वे कई बार जेल गयीं।

बार-बार उन्हें जेल जाते देख लोग यहाँ तक कहने लग गये कि पार्वती जी की अस्थियाँ भी जेलों में ही गलेंगीं। किन्तु पार्वती जी भला ऐसी छोटी-छोटी बातों से चुप बैठने वाली कहाँ थीं ? उनके हृदयकुंड में निरंतर प्रतिशोध की जो अग्नि जल रही थी, वह एक क्षण भी विश्राम नहीं करने देती।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनेक अवसरों पर उनके साहस की कठोर परीक्षा होती थी। यदि ऐसे समय में वे साहस एवं विवेक से काम न लेतीं तो हो सकता था, उनके सहयोगी निरुत्साहित हो जाते। आंदोलन मिट्टी में मिल जाता व भविष्य की सभी योजनाएँ गुड़-गोबर हो जातीं। यह तो उन्होंने निश्चय कर लिया था कि चाहे कितनी ही बाधाओं का सामना करना पड़े, अपने कार्यों से विमुख नहीं होएँगी।

उनके अंतर्मन में बार-बार यह प्रश्न उठता था कि आंदोलनों में सभी पुरुष ही पुरुष भाग लेते हैं। क्यों ? ईश्वर ने तो नर और नारी को समान प्रतिभाएँ दी हैं। क्यों नहीं वे अपने भाइयों का हाथ बँटाकर सहयोग देती हैं। अत: उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वे महिलाओं को भी तैयार करेंगी। इसके लिए प्रथम वे ही आगे बढ़ीं और अपनी बहनों को तैयार कर अपना संकल्प पूर्ण करने में सफल हुईं।

अपने लक्ष्य प्राप्ति की उत्कट इच्छा रखने वाले निंदा, आलोचना एवं उपहासों की चिंता नहीं करते, निरंतर अपने कर्त्तव्य पथ पर ही आरूढ़ रहते हैं। लोगों ने विशेषकर महिलाओं ने ही उन्हें तरह-तरह के उलाहने दिये "इस तरह गाँव-गाँव व घर-घर में जाने तथा पुरुषों के साथ काम करने से तुम्हें क्या मिलेगा ?" परंतु इन सभी उपहासों को वे अपनी परीक्षा मानकर सहन करती रहीं एवं अपने मार्ग से विचलित नहीं हुईं।

अपनी बहनों के उत्थान के लिए उन्होंने कई कार्य संपादित किए। इसके लिए उन्हें द्वार-द्वार खटखटाना पड़ा था तथा रूढ़िवादी महिलाओं की विभिन्न प्रकार की कटु आलोचनाएँ सुननी पड़ी थीं।

पर्दा प्रथा का इन्होंने घोर विरोध किया था तथा उसका अंत करने के लिए भरसक प्रयत्न किया था। महिलाओं को घर की चहारदीवारी में बंद देख उनका हृदय छटपटा रहा था। उन्होंने दृढ़ संकल्प लिया कि वे महिलाओं को वस्तुस्थिति का ज्ञान कराएँगी एवं उन्हें अपनी दीन-हीन स्थिति से ऊपर उठाने में कोई कसर नहीं रखेंगी।

युगों-युगों से पददलित रही नारी का एकदम आगे आना तो असंभव था। जो महिलाएँ काम तो करना चाहती थीं किन्तु अग्रणी नहीं हो सकती थीं। वे पार्वती जी को अग्रगामी देख उनके कार्यों में सहयोग देने को तैयार हो गयीं।

पर्दा प्रथा विरोध के साथ ही वे शिक्षा-प्रसार कार्य भी करती रहीं। निरक्षर नारियों को वस्तुस्थिति समझने तथा तदनुरूप ही स्वयं को ढालने में देर लगती है।

राष्ट्रीय-महिला-समिति में निरंतर महिलाओं की संख्या बढ़ती जा रही थी। अब तक कुमारी सभा के संगठन में भी मजबूती आ गयी थी। कुछ ही समय में उनमें ऐसी परिपक्वता आ गयी थी कि असंख्य नारियाँ पार्वती जी के नेतृत्व में पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर आंदोलनों में कूद पड़ीं। टोलियाँ बना-बनाकर पिकेटिंग करतीं, धरना देतीं। यह देख पार्वती जी की कार्य क्षमता और भी बढ़ गयी। इस प्रकार उन्होंने कर्मनिष्ठ महिलाओं को एक सूत्र में पिरोकर मजबूत संगठन तैयार कर लिया।

सन् १९२२ में इन्होंने एक विशाल महिला सभा का आयोजन किया था, जिसमें अपने ओजस्वी एवं विचारोत्तेजक भाषणों द्वारा ब्रिटिश शासन की तीव्र भर्त्सना की थी। इस आयोजन का प्रभाव नारियों पर इतना अधिक हुआ कि उनमें जागरूकता पैदा हो गयी। वे निर्भीकता से आंदोलनों में भाग लेने लगीं। सभी के रोम-रोम में देश प्रेम की लहर प्रवाहित हो गयी।

किन्तु इस आयोजन से अंग्रेजी सरकार की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उनकी आँखें तो इनकी ओर लगी हुई थीं ही, परिणामस्वरूप इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

जब इनको गिरफ्तार किया गया था, तब नारियों ने मिलकर इतना विशाल जुलूस निकाला, जिसे देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। यह जुलूस करीब आधा मील लंबा था।

इस अवसर पर लाठियाँ भी चली थीं। वे लाठियों की बौछारों को भी हँसते-हँसते सहन करती रहीं। उनके हृदय में जो देश-भक्ति समा गयी थी, देश-प्रेम का जो भूत सवार हो गया था, उससे वे निडर होकर बढ़ती जा रही थीं। उस समय का वह हृदयद्रावक दृश्य देखते ही बनता था।

अपने जीवन काल में उन्होंने पौने सात वर्ष की कठोर जेल यंत्रणाएँ झेली थीं। इतने संघर्षमय जीवन एवं विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी उनके चेहरे पर कभी उदासी देखने को नहीं मिली, न उनके उत्साह में किसी प्रकार की कमी आई।

वर्षों की दासता का कुप्रभाव इन थोड़े-से वर्षों में मिटता दिखाई नहीं देता है। आज भी महिला जागरण के लिए कई अग्रणी महिलाओं की आवश्यकता है। कौन नारी ऐसी है जो अपनी बहनों की वीरगाथाएँ सुनकर चुप बैठी रहेगी। यदि नारियों का खून पानी नहीं हुआ है तो उनके विषय में पढ़-सुनकर रक्त में उबाल आए बिना न रहेगा। इनके चरण-चिन्हों पर चलकर प्रत्येक नारी देश-सेवा के कार्यों में भाग लेने का साहस जुटा सकती है एवं अपने समाज तथा राष्ट्र की उन्नति में सक्रिय सहयोग दे सकती है।

देशभक्ति का अलख जगाने वाली— श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

माँ आयेगी तो हमारे लिए जलेबियाँ लायेगी—माँ की प्रतीक्षा कर रहे एक कुलीन परिवार के बच्चे तरह-तरह की कल्पनायें कर रहे थे। कोई कह रहा था कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

और बातें कर रहे उन बच्चों की पलकें नींद से बोझिल होने लगी थीं।

तभी मकान के दरवाजे से उन्होंने अपनी माँ को प्रवेश करते हुए देखा। रिक्शे से उतरकर रिक्शे वाले को उनकी माता ने पैसे चुकाये और साथ में जो थोड़ा-बहुत सामान था, वह उतारने लगीं। कमरे में बैठे बच्चे अपनी माँ को आयी देखकर दौड़ उठे और भागे वहाँ से। सामान अभी कमरे तक पहुँच भी नहीं पाया था कि बच्चों ने सारी खाना तलाशी ले ली।

और कुछ न पाकर आशा भरी दृष्टि से देखकर पूछा– माँ हमारे लिए मिठाइयाँ नहीं लायीं–

'लायी तो थी बेटे' परन्तु–

अभी बात पूरी न हो पायी थी कि जिस बच्चे ने अपने लिए खिलौने की कल्पना की थी, वह पूछ बैठा—और माँ हमारे लिए खिलौने–

खिलौने भी लायी थी बेटा–

इस बार भी माँ की बात अधूरी रह गयी और कपड़े वाला बच्चा पूछ उठा-और मेरे लिए कपड़े—

कपड़े भी लायी थी ' ' '

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि प्रयत्न करते तो उन्हें अच्छी-बढ़िया नौकरी भी मिल सकती थी परन्तु उन्होंने गुलाम देश के विदेशी तन्त्र का पुर्जा बनकर रहने की अपेक्षा चल रहे कुचक्र को तोड़ने में सहायक बनना बेहतर समझा।

थियोसॉफिकल स्कूल में पढ़ते समय सुभद्रा जी की आत्मा ने देश की पुकार सुनी और स्वतन्त्रता प्रथम आवश्यक कर्त्तव्य मानकर वे राष्ट्रीय-आन्दोलन में कूद पड़ीं। उनके पति भी इन गतिविधियों में खुलकर भाग लेने लगे थे। न्नागपुर के झण्डा सत्याग्रह में उन दोनों पति-पत्नी ने साथ-साथ भाग लिया। जिस जत्थे में वे सत्याग्रही थे, उस जत्थे ने तिरंगा झण्डा लेकर अँग्रेज छावनी में प्रवेश किया। सरकार ने उन्हें पकड़कर जेल में डाल दिया। मध्य-प्रदेश की वे प्रथम सत्याग्रही महिला थीं, जो इस प्रकार कारावास में गयीं।

जेल से लौटने पर वे अपने पति के साथ रहने लगीं। ठाकुर साहब कर्मवीर के सम्पादन विभाग में काम करते ही थे। अपने पति के साथ रहते हुए सुभद्राजी पं० माखनलाल चतुर्वेदी के सम्पर्क में आयी और चतुर्वेदी जी ने उनकी काव्य-प्रतिभा को पहचाना। सुभद्राजी वैसे भी बाल्यकाल में तुकबन्दी तथा पद्य रचना में अभिरुचि रखती थीं। चतुर्वेदी जी ने उनकी सृजन-क्षमता को पहचानकर काव्य रचना की प्रेरणा दी। देशभक्ति और स्वाधीनता के प्रति अटूट निष्ठा तो उनमें विद्यमान थी ही, चतुर्वेदी जी से प्रेरणा-प्रोत्साहन पाकर वह निष्ठा काव्य धारा बनकर गंगोत्री से गंगा की तरह बह निकली।

उनकी कविता में देश-प्रेम के अंगारे भभके। झण्डा ऊँचा रहे हमारा तथा खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी जैसी कविताएँ आज भी लोकप्रिय हैं और गली-मुहल्लों में छात्र-छात्राओं के होठों पर आज भी गुन-गुनाहट सुनाई देती है उन पंक्तियों की। यद्यपि ये कवितायें उस समय की परिस्थितियों और वातावरण को दृष्टिगत रखते हुए लिखी गयी थीं परन्तु वे कालजयी बन गयीं। देश-प्रेम कोई क्षणिक उत्तेजना या आवेश नहीं है, वह तो चिरस्थायी निष्ठा है, जो किसी भी राष्ट्र और समाज की प्रगति में आधारशिला का काम करती है।

सुभद्राजी ने अपनी भावनाएँ सर्व साधारण तक पहुँचाने के लिए सरल, सुबोध और चुभती भाषा में कवितायें लिखीं। उनकी कविता में भावों की मुक्ता-मणियाँ मिलेंगी और वह भी इतनी सरलता और सादगी से कि सीधे व्यक्ति के अन्त:करण तक उतर जायें। यही कारण है कि उनकी काव्य-साधना लोगों का मनोविलास और वाचनालय तथा पुस्तकालयों की सीमा तक ही बँधी न रही वरन् जन-जन के मन को हिला देने वाली, उसमें प्राण और जीवन का संचार कर देने वाली वस्तु बन गयी। काव्य-साधना के साथ-साथ उनकी सेवा भी चलती रही। जब उनके पतिदेव राष्ट्रीय-आन्दोलनों में व्यस्त रहते तो वे ठाकुर साहब को पारिवारिक उत्तरदायित्वों से सर्वथा मुक्त कर देतीं और अन्दर से बाहर तक गृहस्थी का मोर्चा सम्हालतीं। समय निकलता तो वे भी अपने पति के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर आन्दोलनों में भाग लेती।

पति को कई बार जेल जाना पड़ा। उस समय गृहस्थी का पूरा भार-बोझ उन्हीं के कन्धा पर आ पड़ा। कई एक बार तो पारिवारिक समस्यायें तथा आर्थिक कठिनाइयाँ इतनी जटिल हो जातीं कि लगता था यह उनके नियन्त्रण से बाहर की बात है। फिर भी वे एक बहादुर सिपाही की तरह उन समस्याओं से जूझती रहीं और स्वयं भी आन्दोलन में हिस्सा लेती रहीं। एक बार तो उन्हें अपनी नन्हीं-सी बच्ची ममता को साथ लेकर जेल जाना पड़ा था।

सुभद्राजी ने काव्य-साधना के साथ-साथ साहित्य की अन्य विधाओं पर भी कलम चलायी। उन्होंने कहानियाँ भी लिखीं जो 'बिखरे मोती' तथा 'सीधे सादे चित्र' में संग्रहीत हैं—काव्य संग्रह तथा बिखरे मोती उनकी पुरुस्कृत कृतियाँ हैं। उच्च आदर्शों और भावनाओं को क्रिया रूप में किस प्रकार परिणित किया जाय ? साहित्य के माध्यम से उन्होंने इसका अनूठा शिक्षण दिया है। साथ ही इन आदर्शों को अंगीकार करने की एक उत्साह की कसक भी पाठक को अनुभव होती है, उनका साहित्य पढ़कर। यह विशिष्टता बहुत कम साहित्यकारों में देखने में आयी है। 'वीरों का कैसा हो बसन्त' तथा 'चुनौती यह राखी की है आज तुमको' जैसी कवितायें हर पाठक को ऐसा कुछ कर गुजरने के लिए बाध्य करती हैं, जो व्यक्ति को राष्ट्र से संयुक्त करने में समर्थ बन सके।

१९४८ में वे अपने पुत्र के साथ नागपुर से लौट रही थीं। जिस कार में वे चल रही थीं। वह कार उनका मझला पुत्र विजय चौहान चला रहा था। रास्ते में सड़क के बीच उन्हें कुछ मुर्गी के बच्चे दिखाई दिए, सुभद्राजी को लगा कि ये बच्चे कहीं कार में कुचल कर मर न जायँ। मातृ हृदय का सहज वात्सल्य जाग्रत हुआ और उन्होंने अपने बेटे से उन्हें न कुचलने देने के लिए कार रोक देने को कहा, विजय चौहान ने जोर से ब्रेक लगाये और गाड़ी का सन्तुलन बिगड़ गया। कार सड़क के किनारे लगे हुए एक पेड़ से टकरा गयी और सुभद्राजी इसमें गम्भीर रूप से घायल हुईं। काफी उपचार कराया गया परन्तु वे बचायी न जा सकीं। जिस कला और ज्ञान की वे आजीवन आराधिका रहीं, उसी की अधिष्ठात्री भगवती सरस्वती के जन्म-जयन्ती दिन—बसन्त पंचमी पर उनका करुण अन्त हो गया। करुणा ममता और साथ ही निष्ठा, दृढ़ता, कठोरता और आक्रोश की वह दैवी प्रतिमा सर्व में विलीन हो गयी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.७० यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

था। फ्रांस की जनता त्राहि-त्राहि करती हुई रक्षा के लिए प्रभु से प्रार्थना कर रही थी। चारों ओर अन्धकार तथा निराशा का वातावरण छाया हुआ था। हर व्यक्ति अरक्षित तथा अशान्त था।

अँग्रेज सैनिक जहाँ जिस गाँव में जाते, वहाँ की जनता पर अत्याचार करते। घरों में घुस जाते और माल असबाब के साथ स्त्रियों की इज्जत भी लूटते। अँग्रेज सैनिकों के आगमन का समाचार सुनकर लोग घर-बार छोड़कर जंगलों में छिप जाते और जब उद्धत सैनिक मनमानी करके चले जाते तो जंगलों से निकलकर आते और उनके बिगाड़े हुए को बनाते। फ्रांस की जनता का यह एक साधारण कार्यक्रम बन गया था। प्रजा सोचती थी, उसका कोई रक्षक राजा नहीं और राजा सोचता था कि उसकी कोई राजभक्त प्रजा नहीं। बड़ा भयंकर तथा वीभत्स समय था। फ्रांस की जनता के लिए एक ईश्वर को छोड़कर अन्य कोई सहारा न रह गया था।

फ्रांस की देवी जोन ऑफ आर्क का जन्म ऐसे ही संक्रामक समय में हुआ था। कुछ तो अँग्रेजों के स्थायी आतंक और कुछ अपने स्वभाव के कारण जोन के माता-पिता नित्य-प्रति भगवान का भजन तथा प्रार्थना किया करते थे। वे दोनों अधिक से अधिक पवित्र रहने का प्रयत्न किया करते थे। जोन की माता तो एक प्रकार से भगवद्भक्ति की जीती-जागती प्रतिमा ही थी।

देवी जोन जब कुछ सयानी हुई, तब वह प्रार्थना पूजा के समय अपनी माता के पास बैठती और बड़े ध्यान से पूजा देखती तथा प्रार्थना सुनाती। वह धीरे-धीरे माता का अनुकरण करती हुई स्वयं भी उन जैसा क्रिया-कलाप करती और अस्फुट भाषा में प्रार्थना गुनगुनाती। बेटी की यह क्रियायें देखकर माता बड़ी प्रसन्न होती और अपने पास बिठालकर उसे बाइबिल सुनाती और महापुरुषों तथा बलिदानी वीरों के चरित्र सुनाती।

माता के इन्हीं कार्यक्रमों के साथ देवी जोन ने बाल्यकाल की पौरी पार की। अब वह न केवल बाइबिल और कथायें सुनती ही थी अपितु उनकी प्रतिक्रिया से संचालित होती थी। वह बलिदान की कथायें सुनकर कभी रोमांचित होती तो कभी आँसू बहाती।

किशोरावस्था में आते ही देवी जोन सब कुछ देखने, सुनने तथा समझने लगी। लारेन्स प्रान्त के छोटे से गाँव डुमरिम में कोई शिक्षा का प्रबन्ध न होने से जोन की पढ़ाई-लिखाई न हो सकी। उसकी माता ने अपनी योग्यतानुसार ही उसे इतना अवश्य पढ़ा दिया था कि अब वह अपने आप ही बाइबिल तथा अन्य वीरों तथा वीर-बालाओं की गाथायें पढ़ लेती थी।

अँग्रेजों के अत्याचार की कहानियाँ देवी जोन के कानों में भी आने लगीं, जिन पर विचार करते-करते वह आँसू बहाने, रोने लगती और देशवासियों के उद्धार के लिए परमात्मा से प्रार्थना करने लगती। देवी जोन का अधिकांश समय देशवासियों के उद्धार के लिए ईश्वर की प्रार्थना करने में ही व्यतीत होता। वह खेत पर पिता को भोजन पहुँचाने तथा घर के काम में माता का हाथ बटाने के बाद जो भी समय बचता, उसे देशोद्धार की चिन्ता तथा प्रभु प्रार्थना में ही लगाती।

देशोद्धार तथा मानवता की कल्याण कामना से दिन-रात प्रभुचिन्तन में लगे रहने से जोन की आत्मा प्रकाशित हो उठी, जिसकी चमक उसके भोले मुख पर एक विलक्षण सौन्दर्य बनकर दमकने लगी, जिससे वह साकार रूप की देवी की तरह आकर्षक हो उठी। उसके पवित्र हृदय का प्रसाद प्रसन्नता बनकर उसके अंग-प्रत्यंग में स्फुरित होने लगा।

देवी जोन के माता-पिता की हार्दिक इच्छा थी कि वह अपना विवाह करले और सुख-चैन का जीवन बिताये। किन्तु जिसके हृदय में देशोद्धार की आग लग चुकी है, जिसके कानों में पीड़ित मानवता की पुकार समा चुकी है, उसे विवाह जैसे सामान्य तथा साधारण संयोगों में सुख-शांति कहाँ ? उसे सुख-शांति तो उसी मार्ग में मिल सकती है, जिस पर चलते हुए बलिदानी वीरों के चरण घायल करने के लिए मानवता के शत्रुओं ने काँटे बिछा रखे हों। उसे शांति तो उसी बलिवेदी पर मिल सकती है जिस पर से कहे हुए उनके अन्तिम शब्द मानवोद्धार के ऐसे मन्त्र बनकर गूजें जो पीड़ितों को प्रकाश बनकर आततायियों के हृदय में विनाश का विश्वास बनकर ठहर जायें। उसके लिए दाम्पत्य जीवन की सुख सेज पर चैन कहाँ ? उसका सुख-चैन तो दीन-दुःखियों के उन आँसुओं में निवास करता है। जिनको वह उनकी आँखों से अपनी आँखों में भर ले।

देवी जोन के दिव्यतामय रूप-लावण्य की प्रशंसा सुनकर अनेक युवक उससे प्रणय याचना करने आये किन्तु सबको निराश होकर लौटना पड़ा। उसने अपने माता-पिता से स्पष्ट बतला दिया कि वह 'वर्जिन मेरी' की तरह आजीवन कुमारी रहकर भगवान के भरोसे मातृ-भूमि का उद्धार करने का प्रयत्न करेगी।

एक तो यों ही देवी जोन अँग्रेजों के अत्याचार की कहानियाँ सुन-सुनकर दुःखी हो रही थीं कि तब तक एक अँग्रेज सैनिक टुकड़ी ने जोन के गाँव पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने घर लूटे, जलाये और नारियों को अपमानित किया। अँग्रेजों का अत्याचार देखकर देवी जोन का करुण हृदय द्रवीभूत होकर शत-शत धाराओं में बह उठा। उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना की है कि "हे करुणाकर भगवान् ! या तो मुझे अत्याचार मिटाने की शक्ति दे अथवा इस पृथ्वी से उठा ले।" मुझसे मानवता की यह दुर्दशा देखी नहीं जाती।

इस प्रकार देवी जोन घण्टों एकान्त में बैठकर देशोद्धार के लिए परमात्मा से प्रार्थना करती, आँसू बहाती और आहें भरती। वह बहुत कुछ करना चाहती पर साधनहीन अबला होने से कुछ करते न बनता। एकमात्र,

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार देवी जोन घण्टों एकान्त में बैठकर देशोद्धार के लिए परमात्मा से प्रार्थना करती, आँसू बहाती और आहें भरती। वह बहुत कुछ करना चाहती पर साधनहीन अबला होने से कुछ करते न बनता। एकमात्र, साधन, सम्बल और सामर्थ्य जो कुछ भी देवी जोन के पास था वह था ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ विश्वास। वह अपने अखण्ड विश्वास के साथ प्रभु प्रार्थना तथा उसकी उपासना में लगी रहती।

ज्यों-ज्यों देवी जोन ईश्वर में लीन होतीं त्यों-त्यों एक शक्ति आती-जाती। ज्यों-ज्यों वे प्रभु का स्मरण करतीं त्यों-त्यों उनकी आत्मा में एक ध्वनि उठती जाती। धीरे-धीरे उनकी वह आन्तरिक आवाज उन्हें स्पष्ट सुनाई देने लगी। उन्हें ऐसा आभास होने लगा मानो कोई आकाशवाणी उनसे कह रही है—'जोन ! तू आचरणवती रहकर ईश्वर पर भरोसा रख।' उसकी स्वयं ही भावनायें देवदूतों का रूप रखकर उसके सामने प्रकट होकर कहने लगीं—जोन डीफन की सहायता के लिए युद्ध में प्रवृत्त हो और पतित देश का उद्धार कर।' जोन ने अबला होने तथा युद्ध कला से अनभिज्ञता प्रकट करते हुए कहा—'एक युद्ध कला अनभिज्ञ अबला किस प्रकार युद्ध कर सकती है ?' इस शंका का समाधान करते हुए उनकी अन्तरात्मा ने उत्तर दिया—स्त्री अबला नहीं वह एक जीवन्त ज्वाला है। जब तक वह अपने स्वरूप से अनभिज्ञ रहती है, अबला और भीरु बनी रहती है। पर ज्यों ही वह अपना स्वरूप पहचानती है, शक्ति की प्रतिमा बन जाती है। अब समय आ गया है उठ और अपने स्वरूप को पहचान कर फ्रांस के उद्धार के लिए आगे बढ़ और आतताइयों को संसार से मार भगा। तेरे आगे बढ़ते ही पूरा फ्रांस तेरी सहायता के लिए उठ खड़ा होगा। तू अपने कर्त्तव्य पथ पर आगे बढ़, देवता तेरी सहायता करेंगे।

देवी जोन को विश्वास हो गया कि फ्रांस के उद्धार के लिए उसे ईश्वरादेश प्राप्त हुआ है। ईश्वरीय आदेश की भावना आते ही उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। उसकी लवंग बल्लरी-सी सुकुमार देहयष्टि में शक्ति का विद्युत प्रवाह बहने लगा। वह उठी और उस सर्वशक्तिमान को नमस्कार करके कर्त्तव्य कर्म में प्रवृत्त होने का संकल्प किया।

जोन ने अपने आत्मालाप को अद्भुत अनुभव की तरह माता-पिता को सुनाया और देशोद्धार की आज्ञा माँगी। अपनी पन्द्रह वर्ष की बेटी के मुख से ऐसी बातें सुनकर माता ने तो विश्वास कर लिया, परन्तु पिता ने उसे उसका भ्रम बताते हुए घर रहने के लिए प्रेरित किया।

किन्तु जोन को लगन लग चुकी थी, उसका विश्वास अटल हो चुका था। अब घर ठहरना उसके लिए असम्भव था। वह अपनी बीमार चाची की सेवा-सुश्रूषा करने के बहाने पिता से आज्ञा लेकर अपने चाचा के पास वेकुलियर्स चली गई। वहाँ चाचा की सहायता से अनेक अधिकारियों तथा शासनकर्त्ताओं से सहायता पाकर वह डयूक ऑफ लारेन्स तथा चीनन जाकर राजा डफिन से मिली। राजा डफिन तथा डयूक दोनों ही उसके दिव्य व्यक्तित्व से प्रभावित हुए और परीक्षा लेने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कुमारी जोन अवश्य ही देवी है और उसका यह कथन सर्वथा ठीक है कि फ्रांस का उद्धार करने के लिए उसे ईश्वरीय आदेश प्राप्त हुआ है। तपस्या से पूर्ण जीवन में वास्तव में एक ऐसा दिव्य चमत्कार आ ही जाता है कि जो भी उसके सम्पर्क में आता है, वह प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

चीन में रहकर देवी जोन ने कुछ समय युद्ध शिक्षा ली और शीघ्र ही उसमें पारंगत होकर, सैनिकों के वीर वेष में एक काले घोड़े पर सवार होकर ब्लोइन्स नगर की ओर चल पड़ी। वहाँ की जनता ने उत्साहित होकर उसका अभूतपूर्व स्वागत किया और स्वतन्त्रता की देवी कहकर उसे सिर नवाया।

देवी जोन ने आर्लिन्स नगर के उद्धार से फ्रांस की स्वतन्त्रता का संग्राम छेड़ा। आर्लिन्स नगर में प्रवेश करते समय अँग्रेजों को इस आशय का पत्र लिखा कि वह रक्तपात को पाप समझती है और इसीलिए अँग्रेजों से अनुरोध करती है कि वे हम फ्रांसीसियों का देश छोड़कर अपने देश चले जायें, तब उनमें युद्ध की उत्तेजना फैल गई। देवी जोन ने ईश्वरीय इच्छा समझकर युद्ध प्रारम्भ कर दिया और कुछ ही समय में नगर पर अधिकार कर लिया। नगर के विजय-उत्सव में देवी जोन ने एक सामूहिक प्रार्थना सभा का आयोजन किया और ईश्वर को धन्यवाद दिया।

अनन्तर देवी जोन ने रीम्स, जार्गो, वर्गेसी तथा पेटे आदि नगरों तथा किलों पर अधिकार कर लिया, जिससे देवी जोन की कीर्ति पताका सारे फ्रांस में फहराने लगी। उसने रीम्स के प्राचीन धर्म-मंदिर में राजा डफिन को चार्ल्स सप्तम के नाम से फ्रांस के सम्राट पद पर स्वयं अभिषिक्त किया।

फ्रांस की स्वतन्त्रता निश्चित करके देवी जोन ने अनुभव किया कि उसका कर्त्तव्य पूरा हो चुका है। इतने काम के लिए ही उसे ईश्वर ने आदेश दिया था। अस्तु उसने चार्ल्स सप्तम से अपने गाँव जाने तथा माता-पिता के पास रहने की अनुमति माँगी। किन्तु चार्ल्स ने उसे अनुमति न दी और पेरिस पर आक्रमण करने की प्रार्थना की। देवी जोन सम्राट के उस अनुरोध को अस्वीकार न कर सकी।

देवी जोन ने इसे भी ईश्वर की इच्छा समझकर और यह विश्वास करके पेरिस के लिए प्रस्थान किया कि परमात्मा स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर उसका बलिदान चाहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.७२ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

देवी जोन घायल होकर गिरफ्तार हो गईं। एक वर्ष तक कारागार की भयानक यातनायें देने के बाद अँग्रेजों ने उस पर मुकदमा चलाया और कोई भी अपराध सिद्ध न होने पर भी आततायियों ने उसे ३० मई, १५३१ को रायन नगर के एक पुराने बाजार के चौराहे पर जिंदा जलाकर फ्रांस ही नहीं मानवता के महान इतिहास में अमर कर दिया।

देवी जोन के बलिदान के छब्बीस वर्ष बाद फ्रांस में जन क्रांति हुई और जहाँ देवी जोन को जलाया गया था, वहाँ फ्रांस की जनता ने उसकी एक प्रतिमा बनाकर स्वतन्त्रता की देवी की उपाधि दी। आज भी उधर से आते-जाते नागरिक उस देवी को अनन्त श्रद्धा के साथ अभिवादन करते हैं। सन् १४९२ में फ्रांस के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में एक किसान के घर जन्मी 'जोन ऑफ आर्क' की जीवन कथा नारी की शक्ति और साहस की कहानी है। एक चुनौती है, उन लोगों के लिए जो मातृशक्ति को अबला और रक्षिता कहकर उसे पुरुष की तुलना में महत्त्वहीन और गौण बताते हैं। जिस जाति के लोगों ने पाँच सौ वर्ष पूर्व अपनी ही जाति की इस वीरांगना को जीवित जला दिया था। उन्होंने ही बाद में उसे मनुष्यता का गौरव कहा। सन् १९०९ में रोम के पोप ने जोन ऑफ आर्क को बड़ी ही भावभीनी शब्दाबलि में श्रद्धाञ्जलि अर्पित की थी।

फ्रांस की स्वातंत्र्य सिंहनी- मादाम रोलां

स्त्रियों की जिन्दगी का क्रम, सामान्यत: एक निर्धारित शृंखला में ही बँधा हुआ चलता रहता है। लाड़-प्यार में बचपन बीतना, अपने घर जाकर एक छोटी-सी दुनिया बसा लेना- उसे सजाते-सँवारते रहने में ही अपना सारी आयु बिता देना और शरीर थक जाने पर मौत के दिन गिनने लगना।

किन्तु रोलां का जीवन इस क्रम से एकदम भिन्न था। बचपन ज्ञानार्जन की पिपासा में व्यतीत हुआ, यौवन क्रांति की ज्वालाएँ सुलगाने में-और वृद्धावस्था ? वह तो आ भी न पायी- और सिद्धांतों की उपासिका सिद्धांतों की बलिवेदी पर एक आहुति बनकर स्वाहा हो गयी।

फ्रांस में जन्म लिया था इस वीरांगना ने ! वह धनाढ्य परिवार की एकमात्र सन्तान। घर के सभी परिजनों की नेत्रज्योति बनकर आई थी वह। घर के प्रत्येक कोने में उसके लिए प्यार ही बिखरा हुआ था।

पर उसे यह सब तनिक भी अच्छा न लगता। सुख के साधन उसे काटते-से प्रतीत होते। ऐश्वर्य तथा वैभव उसे गरीबों का, असहायों का, गुलामों का तथा मानवता का मजाक उड़ाते हुए से प्रतीत होते।

रोलां की बुद्धि इतनी तीव्र थी कि यौवन आते आते वह धर्म, संगीत, इतिहास, दर्शन शास्त्र, चित्रकला, नृत्य तथा विज्ञान की अच्छी जानकार हो गयी थी। सारा समय विद्यार्जन में लगता या फिर तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के अध्ययन में।

अब माता-पिता की इच्छा हुई कि इसका विवाह कर देना चाहिए। प्रश्न सर्वथा सामयिक तथा उचित था। एक अत्यन्त रूपवान, स्वस्थ, धन-कुबेर ढूँढ़ा गया ! किन्तु माँ ने जब रोलां की इच्छा जाननी चाही, तो उसने स्पष्ट कह दिया कि 'मुझे किसी धनी के यहाँ विवाह नहीं करना है। गरीब व्यक्ति ही समान आदर्शवादी हो।'

पिता भी दु:खी हुए किन्तु रोलां को तैयार न किया जा सका। उसके मस्तिष्क में तो फ्रांस की वर्तमान अराजकता के प्रति गहरा विद्रोह मचा हुआ था।

तभी उसे एक पार्टी में जाने का अवसर मिला। वहाँ उसने देखा सभी स्त्रियाँ मूल्यवान परिधानों में तथा बहुमूल्य हीरे-जवाहरातों के आभूषणों से सज्जित हैं और गुलाम कड़कती ठण्ड में नंगे सेवा कर रहे हैं। कोई वस्तु लाने में एक दास को एक मिनट की देर हो गई। तभी पड़ा उसके गाल पर करारा तमाचा। और रोलां को लगा—जैसे चोट उसके कलेजे पर लगी हो।

एक बार फिर एक राजसी परिवार की पार्टी में उसे जाना पड़ा। वहाँ एक दास के हाथ से गिरकर एक कीमती शराब की बोतल टूट गई, आस-पास वालों ने कहा—"बहुत कीमती शराब थी।"

किन्तु काँच धँस जाने से लाने वाले दास के पैर में जो रक्त बह रहा था—वह रोलां ही को द्रवित कर सका—और किसी का तो ध्यान भी नहीं गया उस ओर। और सब तो उसे गाली देने तथा पीटने में ही लगे हुए थे।

इस घटना ने उसके कोमल हृदय पर इतना गहरा आघात पहुँचाया कि वह वहाँ बैठी न रह सकी, उठकर चली गयी और उसने विचार किया, "ऐसी व्यवस्थाओं को बदलना ही होगा—जहाँ शराब की कीमत अधिक हो—मनुष्य के रक्त से।"

और उसने क्रांतिकारी दलों से सम्पर्क स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया। विचार तेजी से कार्य करने लगे।

तभी एक पार्टी में उसकी भेंट हुई, एक पचपन वर्षीय वयोवृद्ध सज्जन से। उनसे बातचीत होने के पश्चात् रोलां को ज्ञात हुआ कि वे भी वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाओं से असन्तुष्ट हैं और अधिक परिचय के पश्चात् उसने पाया कि उसके विचारों की पूर्णता इन महापुरुष में है और उसने अपने पिता से कहा कि "मुझे मेरी पसन्द का पति मिल गया है।"

पिता ने 'पति' को देखा और अपना माथा ठोक लिया। साफ मनाकर दिया। पचपन वर्ष का वृद्ध वह भी गरीब आदमी।

किन्तु रोलां ने कहा "ठीक है तब मुझे कहीं दूसरी जगह भी विवाह नहीं करना है।" उसके मन में पता नहीं कैसी विरक्ति उत्पन्न हुई कि एक रात, घर से उठकर मन्दिर में चली

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गई। वहाँ दिन-रात धार्मिक-ग्रन्थों का अध्ययन करती हुई एक तपस्विनी का-सा जीवन बिताने लगी।

आखिर पिता को हार माननी पड़ी और रोलां का विवाह उक्त सज्जन से कर दिया गया।

रोलां अपने पति के साथ 'एमिन्स नगर में रहने लगी। बहुत प्रसन्न, बड़ी सन्तुष्ट। अत्यधिक तृप्त। उसे कभी आयु की असमानता न खटकती। विवाह उसके लिए शारीरिक मिलाप न होकर आत्मा का तथा विचारों का मिलन था। वह अपने पति को ऐसा ही प्रेम करती जैसा किसी उपास्य को किया जा सकता है। उसके सिद्धांत सहारा पाकर पुष्ट हो रहे थे, अब उसे लगता था कि मेरी कार्यक्षमता और भी बढ़ गई है।

तभी ये लोग एमिन्स नगर छोड़कर अपने गाँव चले गये। यहाँ रोलां ने गरीबी को और भी अधिक निकट से और भी अधिक स्पष्ट रूप में देखा। दिल का दर्द और भी बढ़ गया। घाव और भी गहरा हो गया।

इसी समय फ्रांस में युगान्तरकारी राज्य-क्रान्ति हो गयी। शोषित वर्ग शोषणकर्त्ताओं के ऊपर हावी हो गया। रोलां की तो ऐसे समय की प्रतीक्षा ही थी। उसके पति तथा वह दोनों क्रान्ति की इस पुकार को सुनकर सक्रिय रूप से उसमें भाग लेने चल पड़े।

रोलां के पति 'पुर-समिति' के वरिष्ठ सदस्य बनाये गये। सन् १७९१ में समिति की ओर से परिषद् की कार्यवाही में भाग लेने के लिए उन्हें पेरिस भेजा गया। रोलां भी साथ गई थी।

यहाँ रोलां ने ऐसे सारगर्भित तथा ओजस्वी भाषण दिये कि कई बुद्धिजीवी, विचारशील व्यक्ति उसके अनुयायी हो गये।

पर विरोधी दल का सामना यहाँ भी करना पड़ा।

यहाँ भी उन दिनों, 'पितियन', 'ब्रिसो' तथा बूजो आदि का बड़ा जोर था। ये लोग भी फ्रांस में प्रजातांत्रिक शासन स्थापित करना चाहते थे। किन्तु रोलां की तथा इनकी नीतियों में गहरा अन्तर था। फिर भी रोलां की बुद्धिमत्ता, साहस, कार्यक्षमता तथा योग्यता का उन पर अच्छा प्रभाव पड़ा था और उन्होंने प्रकट में उस समय कोई विरोध न किया।

अब रोलां का अधिकांश समय फ्रांस की राजनैतिक गुत्थियाँ सुलझाने में ही व्यतीत होता। उसे केवल एक ही धुन थी—फ्रांस में प्रजातांत्रिक शासन स्थापित करना।

उसके अनुयायी जितने भी थे, वे 'गिरोंडिस्ट' कहलाते थे।

आखिर को प्रयत्न सफल हुए। मादाम रोलां के अथक श्रम के फलस्वरूप शासन की बागडोर गिरोंडिस्ट दल के हाथ में आ गई। इस दल के नये मन्त्रिमंडल का निर्माण मोशिये रोलां (रोलां के पति) के नेतृत्व में हुआ। रोलां तो जैसे समस्त व्यवस्थाओं के कण-कण में ही व्याप्त थी।

किन्तु यह सब बहुत दिन तक नहीं चल सका। विरोधी दल अब और उग्र रूप धारण कर चुका था। उसे यह किसी भी प्रकार सहन न हुआ कि रोलां को विजयश्री की माला पहनने का श्रेय तथा सौभाग्य प्राप्त हो।

रोलां का मार्ग सत्य तथा ईमानदारी का था। उसका उद्देश्य राज्य में नीति, सदाचार, समानता तथा शांति की स्थापना करना था।

किन्तु विरोधी दलों का उद्देश्य इससे कुछ भिन्न ही केवल राजनैतिक गुण्डागर्दी मात्र था। उनका प्रभाव बढ़ा और शासन सत्ता की बागडोर गिरोंडिस्ट दल के हाथ से छूटकर विरोधी तत्त्वों के हाथ में चली गई।

किन्तु इतना सब होने पर भी विरोधियों की सन्तोष न हुआ। उन्हें निरन्तर यह भय बना रहा कि कहीं पुनः रोलां के नेतृत्व में जनता भड़ककर हमारी सरकार को पदच्युत न कर दे। अतः उसने रोलां तथा उसके पति को बुरी तरह बदनाम करने की योजना बनाई।

कुछ उल्टे-सीधे आरोप लगाकर पहले रोलां के पति को बन्दी बनाया गया। किन्तु प्रमाणों के अभाव में वे कुछ न कर सके और मोशिये रोलां निर्दोष घोषित स्वतन्त्र कर दिये गये।

पर इस बार अचानक ही एक दिन रोलां को घर से पुलिस बुलाकर ले गयी। रोलां ने सोचा "यह तो एक दिन होना ही था।" पूछा "कहाँ चलना होगा ?"

उत्तर मिला 'जेल' ! बिना किसी अपराध के जेल। कुछ समझ में न आया। पूछने पर पता चला कि उसका अपराध है "राजद्रोह" और सुरक्षा कानून के अन्तर्गत उसे बन्दी बनाया गया है।

वह जानती थी यह सब चाल है। पर वह चुप रही। उसे अपने सत्य पर, अपनी ईमानदारी पर तथा देश-भक्ति पर विश्वास था। झूँठ भले ही रस्सियों से कस दे परन्तु सत्य का गला नहीं घोंट सकता। हाँ—उसके उपासक का अवश्य, कभी-कभी उसकी रक्षा में, गला काट या घोंट दिया जाता है।

रोलां से मार्ग में एक अधिकारी ने कहा "आप वीर तथा साहसी महिला हैं। शांति तथा धैर्य से न्याय की प्रतीक्षा कीजिये।"

रोलां हँसी। पर कहा केवल इतना ही "न्याय ! यदि न्याय ही होता तो क्या में इस अवस्था में होती ?"

अधिकारी को चुप रह जाना पड़ा।

कारागर में रोलां को एक अँधेरी कोठरी में डाल दिया गया। पता नहीं पड़ता था, कब सूरज निकला और रोलां यह भी नहीं जान पाती थी कि रात कब हो गई।

पर उसे न तो किसी अदालत में बुलाया गया। न कोई बयान लिया गया। न किसी प्रकार की सफाई पेश करने का अवसर दिया गया। आदमी आता और भोजन रखकर चला जाता। एक सिंहनी को कैद करके उसकी गतिविधियों को निष्क्रिय बनाने का प्रयास था यह।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

एक बार तो ऊब उठी, वह इस निष्क्रियता से, जड़ता से। कर्म तथा गति ही जिसके जीवन की परिभाषा रही हो, उसे ऐसी स्थिति कैसे सहन होती ?

एक बार जी में आया क्यों न इस जीवन का अन्त ही कर डालूँ ? और सचमुच ही एक दयालु जेल कर्मचारी की सहायता से जहर का प्याला मँगाकर हाथ में ले लिया। किन्तु तभी उसे याद आया यह तो कायरता होगी और प्याला गिरकर टूट गया। वह बुद्धिबल की ही नहीं-आत्मबल की धनी थी।

तभी सुनाया गया उसे प्राण दण्ड ! बिना अभियोग बताये बिना मुकदमा हुए-बिना पैरवी हुए, ही प्राण दण्ड!

आठ नवम्बर सन् सत्तरह सौ बानवे। यही तिथि थी उसको फाँसी लगने की। वह शांत एवं स्थिर गति से आई। चेहरे पर अप्रतिम मुस्कान थी, जैसे मृत्यु को गले लगाने में वह अपार प्रसन्नता अनुभव कर रही हो। फाँसी पर चढ़ने से पूर्व उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और कहा ''कानून तुम्हारे नाम पर मनुष्यों ने कितने अपराध किये हैं।''

और इस अपराध की गुरुता को भी शायद अपराध करने वाले नहीं समझते थे।

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए जीवन होम देने वाली नारी को 'राजद्रोह' का एकपक्षीय आरोप लगाकर फाँसी दी जा रही थी।

और इस घटना को पढ़कर महान विचारक, नाटककार मोरिस मेंटर लिंक की वे पंक्तियाँ याद हो आईं हैं ''क्रांति की गति बड़ी मायाविनी होती है। अपने उपसंहार में, मैंने क्रांति को अपने ही सृष्टा की बलि से तृप्त होते देखा है।''

विलक्षण विभूति—सराह बर्नहर्ट

जोन ऑफ आर्क के बाद फ्रांस की किसी विभूति की गणना की जाती है तो वह है, सराह बर्नहर्ट। अपनी अद्भुत अभिनय पटुता के कारण लोग उसे संसार का आठवाँ आश्चर्य भी कहते हैं किन्तु इससे अधिक वह जिस सम्मानित नाम से याद की जाती थीं वह नाम था 'देवी सराह।'

अभिनेत्री और देवी ये दो सम्बोधन एक साथ जुड़ जाना भी अपने आप में आश्चर्य की बात है। अभिनेत्रियाँ प्रायः अपने रूप, देह, लालित्य व दैहिक आकर्षण के कारण ही लोकप्रिय होती थीं और होती हैं। उनकी लोकप्रियता का आधार कोई पवित्र भाव हो सकता है, ऐसा प्रायः नहीं होता। अभिनेत्रियाँ तो प्रायः अपने देहाकर्षण के कारण ही लोकप्रिय हुई हैं। किन्तु सराह बर्नहर्ट अपने इस रूप के कारण विख्यात नहीं हुई। उसके अभिनय से लोगों की उच्च भावनाओं को ही उभारने का अवसर मिला था, पाशविक वृत्तियों को नहीं। 'देवी सराह' इसी तथ्य का परिचायक है।

सराह बर्नहर्ट कलाकर्त्री थी, सच्ची कलाकर्त्री थी। उसे कला की शक्ति का भान था और वह यह भी जानती थी कि कला मनुष्य के भीतर छिपे हुए देवता को भी, नारायणत्व को भी जगा सकती है और उसके पशु को भी जगा सकती है। उसने कला की पवित्रता को अक्षुण्ण रखते हुए कला-साधना की और यही कारण है कि वह अपनी कला के लिए अमर हो चुकी थी।

सराह बर्नहर्ट का जन्म २३ अक्टूबर, १९४४ में सौन्दर्य और कला की नगरी पेरिस में हुआ था। बचपन में वे बहुत दुबली-पतली थीं। अपनी इस दुर्बलता के कारण कभी-कभी वह मूर्च्छित भी हो जाती थीं। पर इसी दुबली-पतली सराह ने आगे चलकर कमाल कर दिया।

कलानेत्रियों का जीवन प्रायः अति अल्प होता है। शरीर के ढलने के साथ ही उनकी लोकप्रियता में भी घाटा आने लगता है। अच्छी-अच्छी अभिनेत्रियाँ भी कठिनता से २०-३० वर्ष तक ही लोकप्रिय रह पाती हैं। किन्तु इसके विपरीत सराह बर्नहर्ट पूरे ६१ वर्ष तक कला के और लोकप्रियता के उच्चतम शिखर पर रहीं। राजा-महाराजे उसकी अभ्यर्थना करते थे, उस पर रत्नाभूषणों की वर्षा होती थी। भीड़ उसके मार्ग में कीमती वस्त्रों के पाँवड़े बिछा देती थी।

एक आलोचक ने उसके बारे में लिखा है—''वह हमेशा इस बात के लिये याद की जाएगी कि जिसने भी उसे देखा या सुना, वह एक ऐसे मनोवैज्ञानिक रहस्य से अभिभूत हो गया, जिसे कोई समझ ही नहीं पाया था, उसने नाटक लिखे थे। जिस चरित्र का उसने अभिनय किया, वह दर्शकों के सामने एक बारगी अवतरित हो गया।'

सराह के लिए कला एक प्रकार से जीवन-साधना थी। इस साधना का ही फल था कि उसका अभिनय दर्शकों को मन्त्र-मुग्ध कर देता था। उसका कण्ठ मानो स्वर्ण नूपुरों की झंकार, रजत मंदाकिनी का रव था। सौन्दर्य के लिए वह किसी आवश्यक परिधान को समय पर पहन लेती थी, समय पर उतार देती थी। उसका यह सौन्दर्य दैहिक नहीं था, आत्मिक था। दैहिकता यदि उसमें रही होती तो ६५ वर्ष की सराह युवती जोन ऑफ आर्क का अभिनय उस स्मरणीय सफलता के साथ कैसे कर पाती ?

वे जब ७१ वर्ष की थीं तब उनकी नाटक कम्पनी के अमेरिकी मैनेजर ने उनके बारे में लिखा था—''मैडम सराह बर्नहर्ट अनन्त शक्ति और उत्साह से परिपूर्ण हैं। मुझे कभी वे शान्त नहीं दिखायी दीं, न कभी ऊबी, उदास और उद्भ्रान्त !'' रात को चार बजे तक वह नाटक के रिहर्सल, उसकी साज-सज्जा, सेटों के निर्माण, नाटकों के प्रचार तथा प्रबन्ध में लगी रहती। इतनी रात गये कार्य करने पर भी वह सबेरे सात बजे उठ जाती। डाक्टरों ने चेतावनी दे दी थी कि उनकी दुर्बल काया इस अपरिमित श्रम का बोझ सह नहीं पायेगी और उसे इसका मूल्य अपने प्राण गँवाकर चुकाना पड़ेगा। इस पर भी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसकी यह कला-साधना, जो एक प्रकार से जीवन-साधना ही बन चुकी थी, रुकी नहीं। वे पूरे ७८ वर्ष जीवित रहीं, इतना श्रम करने पर भी वह बीमार नहीं पड़ीं।

सराह बर्नहर्ट एक पहेली थी। उस पहेली को सुलझा पाना हर किसी के बस का रोग नहीं था। वह जब छोटी बालिका थी, तब उसकी माता ने उसे उपेक्षित रखा था। उसे दादी ने पाला था। एक बार यह एक ऊँची कुर्सी पर बैठी हुई थी कि सुलगती हुई सिगड़ी ऊपर गिर पड़ी थी और बुरी तरह जल गयीं थी। इस कारण वह आग से बहुत डरती थी।

जिस सराह को आग के नाम से भय लगता था, उसी सराह ने एक दिन थियेटर से लौटकर देखा कि उसका मकान भयंकर आग में धू-धू करके जल रहा है और उसका बच्चा मकान में ही है, तो वह जलते हुए मकान में घुस गयी और अपने बच्चे को बचा लायी।

वहाँ कौन-सी शक्ति थी, जो क्षीणकाय सराह को ७८ वर्ष तक जिलाये और अथक् श्रम कराती रही थी, वृद्धावस्था में भी युवतियों की भूमिका पूरी सफलता से निभवाती रही थी, आग से आग से डरने वाली सराह से धू-धू करते जलते हुए मकान में से अपने बच्चे को बचवाती रही थी। निश्चय ही उसकी आत्मिक शक्ति थी।

जीवन से उसे जितना प्यार था, मृत्यु से भी उसे उतना ही अपनापन था। अपनी माँ के लाख मना करने पर भी उसने रोजवुड की एक शव पेटी अपने लिए पहले से ही बनवा ली थी। उसमें उसने बढ़िया साटिन की लाइनिंग लगवाकर अपने कक्ष में सजाकर रख लिया था। प्राय: वह उसमें सो जाती और कभी-कभी रेशमी चादर बिछाकर उसी में बैठकर वह चाय पिया करती थी।

वह मृत्यु का अभिनय करने में भी सिद्धहस्त थी। सम्भवत: अभिनय को यथार्थ जैसा बनाने के लिए ही उसने इस शव-पेटी का सान्निध्य लिया हो। ब्रिटिश सम्राट सप्तम एडवर्ड की रानी अलेक्जेण्ड्रा एक बार एक नाटक में सराह द्वारा अभिनीत मरण दृश्य देखकर शंकित हो उठी कि कहीं वह वास्तव में मर तो नहीं गयी। अत: वह भागकर ग्रीन रूम में पहुँची, तब उसकी आशंका निर्मूल हो गयी। उसने सराह को स्नेह से अपने बाहुओं में भर लिया और कहने लगी—"मृत्यु का सजीव अभिनय करने के बाद तुम्हें जीवित देखकर मैं कितनी प्रसन्न हूँ कह नहीं सकती ?"

उसने अभिनय करना ही नहीं जीवन जीना भी सीखा था। समय के मूल्य को वह पहचानती थी। जीवन की एक-एक साँस को उसने भरपूर जिया था। टब में स्नान करते समय भी वह अपने लेखकों, प्रबन्धकों और कलाकारों के साथ आवश्यक बातें कर लिया करती थी। इसके लिए उसे पानी में स्टार्च का चूर्ण मिलाकर अपारदर्शी बना दिया जाता था।

समय का इतना ध्यान रखने के कारण ही तो वह एक अप्रतिम अभिनेत्री ही नहीं सफल मनुष्य भी थी। कितने कुछ कार्य उसे करने पड़ते थे पर क्या मजाल कि कभी चेहरे पर एक शिकन या शरीर में तनिक-सी थकान आ जाय।

१८८० में मैडम सराह बर्नहर्ट ने अपनी एक नाटक कम्पनी बनायी। वह नाटक का चुनाव स्वयं ही करतीं थीं। वह नाटक में साहित्य नहीं नाटकत्व खोज उठी थी। जो नाटक जनता की भावनाओं को नहीं छू सके, उन्हें कोई दिशा न दे सके, चाहे कितना ही नया हो और उच्च साहित्यक स्तर का हो वह उसे नहीं चुनती थी क्योंकि उसकी दृष्टि में 'कला, कला के लिए' सिद्धान्त का कोई महत्त्व नहीं था। वह कला को जन जीवन के लिए मानती थीं। इस कारण जनता स्तर से ऊँचे और नई विधाओं में लिखे गये नाटक उसके विश्वास को नहीं जीत सकते थे। स्पूगो रोमांच, जोलांका यथार्थ और मेटरलिंक का प्रतीक उसे कम ही प्रभावित कर पाता था।

इतना होने पर भी उसके प्रशंसक बड़े-बड़े साहित्यकार थे। विक्टर ह्यूगो के प्रसिद्ध दुखांत नाटक 'हरनानी' में उसने नायिका की भूमिका निभायी थी। ह्यूगो ने इस नाटक को देखा तो वह इसके अभिनय को देख कर इतना प्रभावित हुआ कि आँखों से आँसू बह निकले। इस स्मृति को स्थायी बनाने के लिए उन्होंने हीरे का एक आँसू बनाकर उसे एक सोने की जंजीर में लगवाकर सराह बर्नहर्ट को उपहार में दे दिया।

अनेक साहित्यकार और वैज्ञानिक उसके परम मित्रों में से थे। प्रसिद्ध लेखक अलेक्जेण्डर ड्यूमा, फ्लांबर्ट, प्रख्यात जीवशास्त्री लुई पाश्चर, स्वेज नहर का निर्माता फर्डीलेड डी-लेप्लेस, प्रसिद्ध साहित्यकार आस्कर वाल्ड आदि उसके परम प्रशंसकों में से थे। आस्कर वाइल्ड ने ही उसे 'देवी सराह' के सम्बोधन से विभूषित किया था।

सराह बर्नहर्ट के अभिनय ने योरोप में ही नहीं उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा मिश्र में भी धूम मचायी। इकसठ वर्ष के जीवन में सराह ने सवा सौ से भी अधिक नाटकों में मुख्य भूमिकाएँ अभिनीत कीं। इन नाटकों में कई शेक्सपीयर के नाटक भी थे। उसने अपने नाटकों के प्रदर्शन के लिए योरोप, उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका व आस्ट्रेलिया की यात्राएँ की।

कलानेत्री सराह जिधर निकल जाती थी उधर ही रुपयों की वर्षा होने लग जाती थी। धन, मान और आदर तीनों ही उसे प्राप्त हुए। अपने पास आये हुए अपरिमित धन को उसने उसी उदारता से व्यय भी किया। लोक-सेवी संस्थाओं और जरूरतमन्दों की सहायता के लिए उसका हाथ सदा ही खुला रहा। धन को भी वह अपनी कला-प्रतिमा की तरह ही समाज को मानती थी और उसी के हित में खर्च करती थी। विश्व की अप्रतिम अभिनेत्री होने का उसे कतई गर्व नहीं था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.७६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

वह धन से ही नहीं, हर प्रकार से दूसरों की सहायता करना अपना धर्म मानती थी। जब वह अमेरिका की यात्रा पर जा रही थी, तो उसने जहाज में एक स्त्री को समुद्र में डूबने से बचाया था। यह स्त्री अमेरिका के यशस्वी राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन की विधवा, मेरी टाडलिंकन थी। मेरी को जब पता चला कि सराह एक अभिनेत्री है, तो उसने घृणा से मुँह फेर लिया था क्योंकि लिंकन का हत्यारा जान विल्कीथ बूथ भी एक अभिनेता ही था। मेरी के इस व्यवहार पर सराह बर्नहर्ट दुःखित व क्रोधित नहीं हुई क्योंकि उसने मेरी की जान अपनी आत्म प्रेरणा से बचायी थी न कि उसकी कृतज्ञता पाने के लिए।

सराह को यह देखकर बड़ा दुःख होता था कि मनुष्य धरती का श्रेष्ठ और समर्थ प्राणी होते हुए भी भावनात्मक दृष्टि से उतना उच्च नहीं बनता है, जितना उसे बनना चाहिए। इस कारण उसका झुकाव अन्य प्राणियों की ओर हुआ, जो मनुष्य जितने बुद्धिमान और समर्थ नहीं होते हुए भी मनुष्य की तरह कृत्रिमता का व्यवहार नहीं अपनाते।

अपने इस परिवार में उसने एक शेर, तीन कुत्ते, दो तोते, एक बन्दर, एक अजगर और दो साँपों को भी सम्मिलित कर लिया था। ऊपर ही बताया जा चुका है कि वह एक पहेली थी। उसकी आत्मा पशुओं में भी आत्मा का निवास देखती थी। अतः उन्हें भी अपने साथी बना लेती थी।

सराह बर्नहर्ट मूर्तिकार और चित्रकारक भी थी। आश्चर्य होता है कि वह अपने व्यस्त जीवन में इसके लिए समय कैसे निकाल लेती होगी ? १९१५ में उसके एक पैर में गंग्रीन हो गया। परिणामस्वरूप उसे पाँव कटाना पड़ा। पाँव कटवाने के समय और उसके बाद बिना बैसाखी का सहारा लिये, मुस्कुराते हुए जीकर उसने जिस साहस का परिचय दिया, वह भी उनकी उसी शक्ति का परिचायक था, जो उसके अभिनय का प्राण थी।

तप, त्याग और शौर्य की अधिष्ठात्री— लुई माईकेल

ब्रानकोर्ट (फ्रांस) के एक वकील परिवार में वहीं की एक किसान बाला सेवा-चाकरी कर अपना तथा अपने परिवार का पोषण करती थी। सम्पन्नता और समृद्धि दिशाहीन युवकों के नैतिक और चारित्रिक पतन का ही कारण बनती है। फ्रांस में भी ऐसे युवकों की कमी नहीं थी, जो अपने आस-पास फैले विपुल विलास साधनों में मानव-मूल्यों को गौण और महत्त्वहीन समझने लगते हैं। ऐसे ही वातावरण में पल रहे वकील एटिनी चार्ली डेहमिस के पुत्र लारेण्ट डेलमिस ने दासी कन्या को अपनी मीठी बातों में बहका दिया। विवाह सम्बन्ध, भविष्य का सुख और जिस सम्पन्न परिवार की वह नौकरी कर रही है, उसके स्वामित्व की प्राप्ति का प्रलोभन। लारेण्ट के दिखाये सब्जबागों ने भोली-भाली कृषक कन्या को विमुग्ध कर लिया। लारेन्स ने इस भोलेपन का अनुचित लाभ उठाया और उसके पवित्र शरीर से अपनी वासना पूर्ति कर चलता बना। कुछ दिनों तक यह प्रणय लीला चुपचुप चलती रही। जब उसका परिणाम सामने आया तो लारेण्ट काम का बहाना कर वहाँ से चलता बना। जाते समय उस भोली युवती का सुख स्वप्न भंग करना भी न भूला।

जितने हरित और मधुर सपने उसे नरपशु लारेण्ट ने दिखाये थे, टूटने पर वह युवती जीवन से ही निराश हो गयी। डेहमिस की कोठी पर काम करना छोड़कर अपने घर बैठ गयी। दो-चार दिन बीतते देखकर डेहमिस ने सोचा शायद दासी की तबियत खराब हो गयी होगी परन्तु जब अधिक दिन गुजरे और दासी न आयी तो वस्तुस्थिति क्या है ? जानने के लिए वे उस नौकरानी युवती के घर पहुँचे।

नौकरानी ने वकील साहब के पुत्र की करतूतें और उनका परिणाम किस रूप में सामने आया है रो-रोकर सब कुछ बता दिया। डेहमिस को बड़ी व्यथा हुई। अपने पुत्र के कारण एक अबोध और निर्दोष कन्या का जीवन बर्बाद होने के कारण उन्हें लारेण्ट पर और स्वयं अपने पर भी बड़ा क्रोध आया। प्रणय सम्बन्ध इस सीमा तक बढ़ चुके थे कि विवाहित जीवन के बाद की स्थिति में से गुजरना पड़ रहा था—तो लारेण्ट अपने वायदे से क्यों मुकर गया।

डेहमिस के मन की व्यथा-वेदना ममत्व और वात्सल्य के रूप में बह निकली। उन्होंने जीवन से निराश और अपनी भूल से व्यग्र दासी को ढाढ़स बँधाया। उसे आश्रय देने का आश्वासन देने लगे तो अघोषित पुत्रवधू ने कहा—"मात्र आश्रय देने से ही मुझे जीवन और सम्मान थोड़े ही मिल जायेगा वकील साहब ! वह तो ज्यों का त्यों ही खण्डहर रहेगा। एक खण्डहर को सहारा देकर बनाये रखने में क्या लाभ, उसको तो टूटने देना ही अच्छा है।"

डेहमिस ने पूछा—"आखिर तुम चाहती क्या हो बेटी ? तुम्हारी बात और विगत को मैं अच्छी तरह समझता हूँ। अब भी यदि तुम मेरे घर की बहू बनना ठीक समझो तो मैं उसके लिए भी तैयार हूँ।"

दासी बाला को अपना स्वत्व मिल गया और वह वकील साहब के भवन की स्वामिनी बनकर आयी। इसी विशाल प्रासाद में २६ मई, १८२० को लुई माईकेल ने जन्म लिया। उनकी पुत्री लुई माईकेल का पिता लारेण्ट अभी तक घर नहीं लौटा। उस समय जब लुई १६-१७ वर्ष की किशोरी बन गई। इस अवधि में वह बाहर रंगरेलियाँ मनाता रहा। पिता के पास वह अपनी नई पत्नी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को भी साथ लाया, इतने दीर्घ बिछोह ने डेहमिस के पितृ हृदय से समस्त क्षोभ को धो फेंका था। लारेण्ट की नई पत्नी, लुई माईकेल, लुई की माँ के अतीत की सभी घटनाओं से भली-भाँति परिचित थी। इसलिए वह लुई के मन में हीन ग्रन्थि डालने के लिए कुटिल प्रयास करने लगी। शब्दों के हेर-फेर से बात-बात पर लुई के प्रति उसका यही भाव व्यक्त होता—"तू दासी-पुत्री है। अनैतिक सम्बन्धों से तेरा जन्म हुआ। जारज संतान को अपनी औकात नहीं भूलनी चाहिए।

डेहमिस की मृत्यु के बाद लारेण्ट और उसकी पत्नी ने लुई तथा उसकी माता को कोठी से बाहर निकाल दिया। वे नौकरों के कमरों में आकर रहने लगे। डेहमिस को इस बात की सम्भावना आशंका पहले से ही थी इसलिए उन्होंने पहले ही काफी पैसा इन माँ, बेटी के नाम सुरक्षित रखवा दिया था। अपनी सौतेली माँ और पिता के व्यवहार ने लुई को क्षुब्ध भी किया और रुष्ट भी। सौतेली माँ अपने दुर्व्यवहार से वहाँ भी बाज न आई। लुई की सगी माता तो इसकी अभ्यस्त हो चुकी थी पर किशोर उत्साही स्वाभिमानिनी लुई को यह सब बड़ी मुश्किल से सहन होता। स्थिति जब ज्यादा विकट होने लगी तो लुई को वहाँ से बाहर पढ़ने के लिए भेजा गया।

वे चौमण्ट नामक नगर में रहने और पढ़ने लगीं। शिक्षा समाप्त कर लुई ब्रानकोर्ट के पास ही एक गाँव में अध्यापिका हो गयीं। लुई अब पूर्णतया वयस्क और आस-पास के वातवरण के प्रति सजग दृष्टि सम्पन्न हो चुकी थी। पेरिस में भी अध्यापन कार्य किया। उस समय की सामाजिक परिस्थितियों से लुई के मानस पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। पेरिस में एक ओर तो लखपति करोड़पतियों के आलीशान महल थे, दूसरी ओर गरीब-निर्धन मजदूरों की गन्दी टूटी-फूटी झोंपड़ियाँ। महलों की नींव और निर्माण में इन निर्धनों का ही खून-पसीना बनकर बहा और उस पर मौज उड़ायी, अपने आपको समझदार बुद्धिमान कहने वाले चरित्रहीन अमीरों ने। लुई माईकेल के पिता लारेण्ट भी इन्हीं चरित्रहीन अमीरों में से एक था। अभिजात्य वर्ग प्रधान समाज व्यवस्था ने लुई माईकेल के हृदय में तीव्र विद्रोह उत्पन्न कर दिया और पैदा हुई निर्धनों शोषितों के प्रति करुणा-सहानुभूति। वे इसी मानसिक अन्तर्द्वन्द को लेखनी से अभिव्यक्त कर समाज को चैतन्य बनाने लगीं। अध्यापन काल में ही उन्होंने समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं में लिखना आरम्भ किया।

पेरिस में अध्यापिका का कार्य करते हुए उन्हें जो वेतन मिलता था, वह व्याप्त महँगाई में निर्वाह के लिए अपर्याप्त था। फलस्वरूप उन्हें प्रायवेट ट्यूशनें भी करनी पड़तीं। राजनैतिक विचारधाराओं का अध्ययन, समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र का मन्थन भी जीविकोपार्जन के साथ-साथ चलने लगा।

उन दिनों समाज में एक ऐसा जागरूक वर्ग भी तैयार होता जा रहा था, जो इस अन्यायमूलक और अनीतिप्रधान समाज को बदलने के लिए आतुर था। लुई माइकेल भी इन संगठनों से प्रभावित हुई और उनके कार्यक्रमों में आने-जाने लगी। तब तक मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा का प्रकाश भी फ्रांस में फैलने लगा था। लुई माइकेल को समतावादी समाज संरचना का यह विचार बहुत पसन्द आया और वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति से लोगों को अन्याय-अत्याचार का सामना करते हुए तैयार करने में जुट गयीं।

लुई माइकेल की रचनायें मूलत: समाज के हित और सुधारवादी विचारों से भरी होती थीं। गहन अध्ययन और गम्भीर चिन्तन से नि:सृत ये लेख बड़े प्रभावोत्पादक होते थे। ऐसे साहित्यकारों को जो अनुपयोगी और इनमें विलास शृंगार के भावों को भड़काने वाली कृतियाँ लिख रहे थे—एक तीव्र फटकार होती थी। उन्होंने एक बार लिखा था—प्रत्येक कलाकार का उद्देश्य समाज का उद्धार होना चाहिए। आज की परिस्थितियों में यह और भी आवश्यक है कि कला विचार के धरातल पर समाज को प्रभावित करें। उन्होंने लेखनी से ही नहीं, वाणी से भी क्रान्ति का प्रचार किया। टीस और अन्तर्व्यथा जब व्यक्त होती है तो हजारों लोगों को झकझोर देती है। लुई के लेख और भाषणों को लाखों लोग पढ़ते-सुनते और प्रभाव ग्रहण करते।

इस बढ़ती लोकप्रियता ने फ्रांस के पूँजीपतिगों और शोषकों को चिन्तित कर दिया। किसी न किसी प्रकार लुई माइकेल को समाप्त करना ही चाहिए, अन्यथा वह हमारे स्वार्थों पर तीव्र आघात करेगी। इसलिए उन्होंने एक आदमी को बहकाया और शराब पिलाकर लुई को गोली मारने के लिए तैयार कर लिया। एक मजदूर सभा में जब वे भाषण दे रही थीं तो उस व्यक्ति ने लुई पर गोली दाग दी। गोली कान के पास लगी और वे भयंकर रूप से घायल हो गयीं। उपचार के लिए उन्हें अस्पताल ले जाया गया। जब वे होश में आयीं तो पुलिस उस व्यक्ति को लेकर उनके पास पहुँची, जिसने गोली चलायी थी। लुई ने उसे निर्दोष बताकर छोड़ देने के लिए कहा। वे जानती थीं कि एक मजदूर उनके खिलाफ कभी कुछ नहीं कर सकता। सचमुच वह था भी उकसाया गया।

पुलिस ने तो न्याय और कानून की रक्षा के लिए अपनी कार्यवाई की। ऐसे अवसर पर वे लोग जिन्होंने हत्या करने का प्रयास करने वाले मजदूर की पीठ पर हाथ रखा था पीछे हट गये। अपने बायदे के मुताबिक उन्होंने न तो मजदूर की कोई सहायता की और न उसके परिवार की सहायता की। उस महान विदुषी ने जो कि उसकी पिस्तौल का निशाना बनी थी। मजदूर को सभी प्रकार की कानूनी मदद और उसके परिवार को सान्त्वना-सहायता दी। घाव हालांकि गम्भीर था परन्तु उन्होंने यही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कहा कि मामूली सी खुरसट है। अपराधी को निर्दोष और निर्बलता का रोगी बताकर उसका बचाव किया। इस घटना ने उन्हें बहुत प्रसिद्ध कर दिया।

क्रान्तिकारियों का संगठन बढ़ने और सुदृढ़ होने लगा। आश्वस्त होकर लुई तथा उनके सहयोगियों ने मिलकर एक निश्चित समय पर क्रान्ति की योजना बनाई। अब तक उन लोगों का ध्यान और गतिविधियाँ जन-मानस में क्रान्ति के प्रति आस्थायें उत्पन्न करने में ही लगा था। जब विश्वास हो गया तो १८ मार्च, १८७१ को क्रान्ति का विगुल बज उठा। लुई भी अपने साथियों के साथ थी। इष्ट-अनिष्ट की चिन्ता करती हुई माँ भी अपनी बेटी के पास पहुँच गई। क्रान्ति विफल हुई परन्तु उनका मन विजयी रहा।

पेरिस के जनरल कमाण्डर ने क्रान्तिकारियों को गिरफ्तार करने का हुक्म दिया। फ्रांसीसी सैनिकों ने २५ हजार निरपराध स्त्री-पुरुषों और बच्चों को निर्ममतापूर्वक मार डाला। लुई इन लोगों की रक्षा में प्राणपण से लगी रहीं। जनरल को जब पता चला कि इस क्रान्ति की सूत्रधार एक अधेड़ स्त्री है और उसके साथ स्त्री की माँ भी अपनी बेटी की चिन्ता में घूम रही है। तो उसने माँ-बेटी के परस्पर प्रगाढ़ प्रेम सम्बन्धों का अनुमान लगाया, लुई पर हाथ डालना जान-जोखिम का खेल है इसलिए उसने लुई की माँ को ही पकड़ लिया और धमकी दी कि लुई ने आत्म-समर्पण नहीं किया तो उसकी माँ को गोली मार दी जायेगी।

इस क्षण उन्हें माँ की चिन्ता हुई। अभी तक वे संसार के सर्वोच्च सम्मान की अधिकारिणी स्वयं को नहीं माँ को मानती आ रही थी। क्रान्ति तो विफल हो ही गई है और बचना भी मुश्किल—लगभग असम्भव ही है। इसलिये क्यों न आत्म-समर्पण कर माँ को बचा लिया जाय।

लुई ने आत्म-समर्पण कर दिया। न्यायालय में मुकदमे का नाटक चला तो उन्होंने कहा—''जो कुछ भी हुआ है, उसकी पूरी जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेती हूँ। मुझे मालूम है कि स्वाधीनता और न्याय के लिए लड़ने का परिणाम क्या मिलेगा ? गोली की शक्ल में शीशे का एक टुकड़ा। मैं उस अधिकार को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ। परन्तु याद रखना मुझे मारकर आप लोग इस देश के लाखों लोगों की आवाज नहीं दबा सकेंगे।''

न्यायाधीश लुई की लोकप्रियता से अच्छी तरह परिचित थे, इसलिए उन्होंने सोच-विचार कर उन्हें मृत्यु दण्ड न देते हुए निर्वासन और दीर्घ कैद की सजा दी। उन्हें आठ वर्ष तक न्यूकेला खोनिया में कठोर यातनायें सहनी पड़ीं। इन यन्त्रणाओं ने उन्हें शरीर से क्षीण और अशक्त भले ही बना दिया हो परन्तु उनका मन तो सशक्त और सुदृढ़ बनता गया। यातनाओं को उन्होंने तपरूप में स्वीकार किया। इसी कारावधि में उनकी माता का स्वर्गवास भी हो गया। आठ वर्ष बाद वे जेल से मुक्त हुयीं तो सरकार ने सोचा था कि उनके हृदय में बसने वाली आग ठण्डी हो गई होगी।

परन्तु वे तो कारावास से मुक्त होते ही पुन: क्रान्तिकारी गतिविधियों में भाग लेने लगीं। सरकार, पूँजीपति उनके विरुद्ध फिर षड्यन्त्र रचने लगे। यहाँ तक कि उन्हें पागल सिद्ध करने की कुटिल योजना भी बनाई गई परन्तु लुई अपनी समझदारी और शौर्य के बल पर उन्हें सदैव विफल करती रहीं। मजदूर भी उनसे इतने प्रभावित थे कि उनके विरुद्ध होने वाले हर षड्यन्त्र का पता चलते ही भण्डाफोड़ कर देते। १० जनवरी, १९०५ को पचहत्तर वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हो गया।

रूस की क्रांतिकारी महिला विभूति— शहीद जोया कोस्मोदे

'किसी के सामने घुटने न टेको। कैसी भी असहायावस्था और असमर्थता क्यों न हो, दया की भीख न माँगो। चाहे शत्रु तुम्हें कितना ही शारीरिक कष्ट दे, यन्त्रणा पहुँचाये, तुम्हारी गरदन ही क्यों न उड़ा दे उसके अनुचित और बेढंगे प्रश्नों का उत्तर मत दो। शत्रु के दिल में यह विश्वास दृढ़ कर दो कि कोई भी शक्ति तुम्हें परास्त करने अथवा उसके समक्ष मस्तक झुकाने के लिए बाध्य नहीं कर सकती, ये शब्द हैं रूस की बीसवीं शताब्दी की जननेत्री जोया कोस्मोदे के, जो देश की आजादी की रक्षा के लिए हँसते-हँसते फाँसी के फन्दे पर झूल गयी थी। अद्वितीय बलिदान से भरी इस किशोरी की गौरव-गाथा आज भी स्वतन्त्रता के दीवानों के लिए प्रेरणा का अजस्र स्रोत बनी हुई है।

जोया कोस्मोदे मिन्स्कया का जन्म १२ दिसम्बर, १९२३ ई. में रूस के ताम्बोव प्रान्त के ओसीन्नावी गायी नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता मध्यमवर्गीय कृषक थे। चिर प्रतीक्षा के बाद जब उनके यहाँ शिशु का जन्म हुआ तो वे आनन्द-सागर में निमग्न हो गये।

बालिका जोया नगर के कोलाहल से दूर प्रकृति की गोद में पली थी। उन्मुक्त प्रकृति का सामीप्य उसके जीवन में प्रेरणा स्रोत बनकर फूटा।

मौन तपस्वी से खड़े वृक्ष, सुहासित पुष्प कलिकायें, मृदु स्वर से चह-चहाते पक्षीगण सभी तो उसके शिक्षक थे। वे उसे सेवा, सहिष्णुता, त्याग और बलिदान की शिक्षा देते थे। प्रकृति प्रेमी भावुक बालिका घण्टों बैठी प्रकृति में प्रभु के अनन्त-सौन्दर्य के अपार वैभव को निहारती रहती। उसे जड़-चेतन में सर्वत्र एक ही चेतना दृष्टिगोचर होती, जंगली पशु जोआ के एकान्त के सहचर थे। ज्यों ही घर के कामों से छुट्टी मिलती, बालिका निर्भय होकर गहन जंगलों में घुस जाती। जंगली पशु

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके इतने अधिक परिचित हो गये थे कि उसकी आहट सुनते ही दौड़े चले आते। बिल्ली आती, उसकी गोद में बैठ जाती और नन्हें-नन्हें पशु-पक्षी उसके चारों ओर आत्मीय-परिजनों की भाँति घेरा लगाकर बैठ जाते। पशु-पक्षी मित्रों की भाँति घण्टों उसके समीप बैठे रहते। ठीक है जहाँ आत्मीयता की—एकाकारिता की भावना घनीभूत हो जाती है, वहाँ दिव्य ईश्वरीय शक्तियाँ चमत्कारिक रूप में परिलक्षित होती रही हैं। लघु-चेतना विराट-चेतना में मिलकर ब्रह्मानन्द की अनुभूति करा देती है।

कुछ समय पश्चात् जोया का परिवार मास्को चला आया। बालिका जोया ने अब स्कूल में प्रवेश लिया था। अध्ययन में प्रारम्भ से ही उसकी रुचि थी। वह घण्टों पुस्तकों में डूबी बैठी रहती। परीक्षा में जोया सर्वदा प्रथम आती थी। न केवल अपनी प्रतिभा के कारण अपितु सद्विचारों एवं सद्व्यवहारों के फलस्वरूप वह विद्यालय में लोकप्रिय हो गयी। अध्यापिकायें अन्य बालिकाओं के सम्मुख आदर्श रूप में जोया का उदाहरण प्रस्तुत करती थीं।

'मानव-जीवन का एक-एक क्षण अमूल्य है अतएव इस दुर्लभ जीवन को हमें महान उद्देश्य के लिए नियोजित करना चाहिए' ऐसी शिक्षा बचपन से ही माँ ने जोया को दी थी। जोया की माँ परम विदुषी स्त्री थीं, वे अपनी पुत्री को सर्वदा महान लेखकों की पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती रहती थीं। परिणामतः अल्पायु में ही जोया ने वेलिंस्की, पिस्कारेव, शनीशेविस्की, मोलियर, डिकिन्स, शेक्सपीयर आदि अनेकानेक विश्वप्रसिद्ध लेखकों की रचनाओं का अध्ययन-मनन कर लिया। इन महान लेखकों की कृतियों का सत्यं शिवं सुन्दरम् स्वरूप उसके जीवन में मुखरित हो उठा।

जोया ने सेवा में ही परमेश्वर के रूप को निखारा था। दीन-दुःखियों की सेवा-सहायता में उसे जीवन का सच्चा सुख मिलता था। अपनी समवयस्क निर्धन बालिकाओं को वह अपनी ओर से पुस्तकें आदि देकर उनकी सहायता करती रहती थीं। दलित वर्ग की नारियों को ऊँचा, उठाने में अशिक्षित स्त्री वर्ग को शिक्षित बनाने में, वह विशेष रूप से प्रयत्नशील रहती। जोया जब पन्द्रह वर्ष की थी, तभी से उसने 'सोवियत-युवक-संस्था' में प्रवेश ले लिया तथा समाज-सेवा में वह पूरी तरह से संलग्न हो गई। अध्ययन के पश्चात् जो भी समय बचता, वह घूम-घूमकर समाज की कुरीतियाँ हटाने में सेवा, सहायता, नागरिकता, परोपकारिता, सज्जनता आदि भावनाओं की ओर लोगों को प्रेरित करने में उसका सदुपयोग करती थी।

अचानक एक दिन जोया ने सुना कि उसकी प्यारी मातृभूमि पर जर्मनी ने आक्रमण कर दिया है और सेनाएँ तेजी से आगे बढ़ती आ रही हैं। यह समाचार सुनकर वे हतप्रभ रह गयीं। उसे यह बात बुरी तरह से पीड़ित कर रही थी कि क्यों न उसने सैनिक शिक्षा ग्रहण की जिससे कि वह भी युद्धक्षेत्र में जाकर शत्रुओं के दाँत खट्टे कर सकती। आज प्रथम बार उसके मस्तिष्क में यह विचार आया कि यदि देश की युवतियाँ भी सैनिक शिक्षा प्राप्त किये हुए होतीं तो वे भी मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने भाइयों के कदम से कदम मिलाकर शत्रुओं का संहार करतीं।

जर्मनी की सेना नवीनतम हथियारों से युक्त थी तथा बुरी तरह से रूस पर बमबारी कर रही थी। अनेक स्त्री-पुरुष तथा बच्चे अकाल में ही काल-कवलित हो रहे थे। स्त्रियों का करुण-क्रन्दन जोया के हृदय को छेदे डालता था। अन्ततः अपनी अन्तरात्मा की पुकार पर वह रक्षा कार्यों में सहयोग देने के लिए फायर विग्रेड में सम्मिलित हो गयी। एयर रेड की ड्यूटी पर वह कमर कसकर तैयारी रहती। कर्त्तव्य के प्रति उसकी निष्ठा देखकर सभी अधिकारी उससे प्रसन्न रहते थे।

जर्मन सेना मास्को की ओर तीव्रता से बढ़ती आ रही थी। पहले तो स्मालेन्स्क का पतन हुआ तदुपरान्त कीव का। रूसी लोगों में सर्वत्र चिन्ता की भावना व्याप्त थी। जोया प्रतिदिन घण्टों बैठी समाचार सुनती रहती थी। कभी-कभी तो वह अत्यधिक उत्तेजित हो जाती। उसके दाँत क्रोध से कटकटाने लगते, मुट्ठियाँ भिच जातीं तथा दृढ़-संकल्प के भाव उसके मुख पर उभर आते।

एक दिन जब जोया कोस्मोदे घर आई तो उसका मुख मण्डल प्रसन्नता से दमक रहा था। जब उसने माँ को यह समाचार सुनाया कि वह गुरिल्ला फौज में सम्मिलित हो गई है तो उनकी माता स्तब्ध रह गयी तथा बोली—'तुम अपने सिर इतना बोझ क्यों ले रही हो ? तुम लड़की हो, लड़का नहीं जो युद्ध क्षेत्र में लड़ने जाओगी।'

अपनी वीरमाता के कायरता भरे वचन सुनकर जोया उत्तेजित हो उठी और बोली—माँ लड़की और लड़कों की शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियों में कोई अन्तर नहीं है। दोनों में ही बराबर क्षमतायें हैं। देशरक्षा की पुनीत वेदी पर अपने प्राणों की आहुति देना दोनों का ही कर्त्तव्य है। रक्तरंजित मातृभूमि मुझे पुकार रही है। अब मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं रह सकती। यह कहकर वह अपने कर्त्तव्य पालन के लिए निकल गयी। जब जोया को गुरिल्ला फौज के लीडर के सम्मुख लाया गया तो वह आश्चर्यचकित रह गया। वह यह न सोच पाया कि फूलों जैसी कोमल बाला कैसे शत्रुओं से युद्ध कर सकेगी तथा यातनाओं को सह सकेगी ? उसने जोया से अनेक प्रश्न किये। जोया ने लीडर के इतने प्रश्नों के इतने सन्तोषजनक तथा आत्मबल युक्त उत्तर दिये कि इनका नेता प्रसन्न हो गया। उसनें उसी दिन समझ लिया कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जोया को यदि कठिन, उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य भी सौंपे जायें तो वह साहसी युवती उन्हें निश्चय ही पूरा करेगी।

जर्मन सेना के आतंक और अत्याचार दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे। वह इतनी तीव्र गति से आगे बढ़ रही थी कि मास्को के पतन की आशंका उत्पन्न हो गयी। जर्मन सेना अपने निश्चित व्यूह के अनुसार मास्को के पास एकत्रित होती जा रही थी। उसकी गुप्त योजनाओं का पता लगाने का कार्य जोया कोस्मोदे को सोंपा गया। वह अपने साथ दस सैनिकों को लेकर शत्रु की योजनाओं का पता लगाने के लिए निकल पड़ी।

मार्ग में जोया तथा उसके दल को अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा परन्तु इन बहादुर सैनिकों के हृदय में कार्य के प्रति इतना उत्साह और निष्ठा थी कि उन्हें भूख-प्यास, दैहिक कष्ट जैसी छोटी-छोटी बातें याद ही न रहती थीं। उनके सम्मुख तो एक ही लक्ष्य था, जिसकी पूर्ति के लिए उनकी शारीरिक और मानसिक क्षमताएँ पुंजीभूत हो उठी थीं।

वस्तुत: सफलता के लिए साधनों की नहीं अपितु साहस एवं संलग्नता की आवश्यकता होती है। साहसी, कर्मठ तथा कर्त्तव्यवादी व्यक्ति ही जीवन में विजयश्री का वरण किया करते हैं। जोया तथा उसके वीर साथियों के अदम्य पौरुष भरे, सतत् प्रयास से अतन्त: एक दिन शत्रु की कुटिल योजनाओं का पता लग ही गया।

जोया कोस्मोदे को हेडक्वाटर से नया आदेश मिला—शत्रु शिविर को भस्मसात् करने का। सैकड़ों पहरेदारों की आँखों में धूल झोंककर शत्रु के शिविर तक पहुँचना भी दुष्कर था—उसे नष्ट-भ्रष्ट करने की बात तो दूर रही। परन्तु साहसी जोया ने इस योजना को पूरा करने का संकल्प लिया।

निशा की कालिमा सम्पूर्ण विश्व को ढकती जा रही थी। हाथ को हाथ न सूझता था। सम्पूर्ण जीव-जन्तु मधुर निद्रा में लीन थे। परन्तु जोया की आँखों में नींद न थी। आज वह अपनी योजना को क्रियान्वित करना चाहती थी, अर्द्धरात्रि के समय जोया उठी। उसने रिवाल्वर, पानी की बोतल, अल्पाहार आदि आवश्यक वस्तुएँ एक थैले में रखीं और लड़के का वेश बनाकर वह शत्रु शिविर में जाने को तैयार हो गई। विदा के समय उसके साथियों की आँखें भर आयीं। कौन जाने वे फिर पुन: मिल भी सकेंगे या नहीं। सैनिक तो अपने प्राण हथेली पर रखे घूमते हैं। प्रत्येक मोर्चे से वापिस जीवित लौटना उनके लिए मृत्यु के मुख से लौटना है।

झाड़ियों में घुटनों के बल रेंगती, शत्रु सैनिकों की दृष्टि से स्वयं को बचाती हुई एकाकिनी जोया गन्तव्य की ओर बढ़ी जा रही थी। अन्तत: वह शत्रु-शिविर के समीप पहुँच ही गई। प्रसन्नता से उसके रोम-रोम में नूतन चेतना भर गई। वह मार्ग की समस्त विपत्तियों को विस्मृत कर अपनी योजना को क्रियान्वित करने के लिए आतुर हो उठी। शिविर में न कोई आहट थी, न प्रकाश। न ही कोई पहरेदार दृष्टिपथ में आ रहा था। चतुरता से जोया अन्दर प्रविष्ट हुई। अस्तबल में जाकर अविलम्ब उसने घास पर तेल छिड़ककर माचिस लगा दी। अग्नि के प्रकाश से अस्तबल ज्योतित हो उठा। वायु के तीव्र झोकों ने कुछ ही पलों में अग्नि को भड़का दिया। सारे शिविर में आग लगती जा रही थी। आग की लपटें आकाश को छू रही थीं। संचार व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी। 'शत्रु को पकड़ो' की पुकार उस अरण्य के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गई। तीव्र प्रकाश वाली मशालें लेकर जर्मन-सैनिक चारों ओर शत्रु को खोजने निकल पड़े तथा अन्त में जोया को गिरफ्तार कर ही लिया गया।

बन्दिनी जोया को जर्मन सैनिक एक मकान में ले गए। उसके वस्त्र उतारकर तलाशी लेते समय सैनिकों को पता लगा कि जोया लड़का नहीं अपितु लड़की थी। उसका यह साहस देखकर वे चकित रह गए। जर्मन सैनिकों ने शत्रु के रहस्यों को जोया से उगलवाने का अथक् प्रयास किया परन्तु वे असफल ही रहे। अन्त में जोया को कमाण्डर के पास भेज दिया गया।

जर्मल कमाण्डर अत्यन्त ही नृशंस व्यक्ति था। युद्ध की विभीषिकाओं को देखते-देखते सम्भवत: उसके हृदय की मानवीय भावनाएँ भी मर चुकी थीं। अग्निकाण्ड वाली घटना से इतनी अधिक हानि हुई थी कि वह शत्रु को जीवित चबा जाने को तैयार बैठा था। हथकड़ी-बेड़ियों में बँधी जोया जब उसके सम्मुख आई तो कमाण्डर का खून खौल उठा। कमाण्डर जोया से यह पूछ-पूछकर हार गया कि वह कौन है, कहाँ से आई है, उसे किसने भेजा है, उसके अन्य साथी कहाँ छिपे हैं ? परन्तु जोया ने उत्तर में एक शब्द भी नहीं कहा। वह पाषाण प्रतिमा की भाँति मूक खड़ी रही। कुचले हुए फन वाले सर्प की भाँति क्रुद्ध कमाण्डर ने तड़ाक से एक कोड़ा जोया के कपोल पर मारा। जोरों से रक्त धारा बह निकली और जोया उसमें नहा गई। मैं आपको कुछ भी नहीं बताना चाहती। निर्भीक जोया ने इतना ही कहा और जोर से अपने होठों को भींच लिया। कोड़े लगने की प्रक्रिया पुन: प्रारम्भ हो गई। उसके शरीर पर अनवरत् गति से कोड़े बरस रहे थे। पर वह साहसी बाला न रोई, न चीखी, न चिल्लाई। उसके कपड़े रक्त से तर हो गये, शरीर सूख गया, रक्त की धारा के अनगिनत फुब्बारे उसके शरीर से बह निकले अन्त में वह अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ी।

जोया को जब होश आया तो उसका बुरा हाल था। अंग-प्रत्यंग काँप रहा था, शरीर पूरा सूज रहा था, वस्त्र बीच-बीच में से कटकर शरीर पर चिपक गये थे, दुर्दम्य पीड़ा से उसकी नस-नस फटी जा रही थी। उसे जगा देखकर पुन: जर्मन लेफ्टीनेंट-कर्नल तथा अन्य अफसरों ने भाँति-भाँति के प्रश्न पूछे। जोया को हर प्रकार से बाध्य किया गया किन्तु उसने कोई भी भेद शत्रु को

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न बताया। अब एक ही दण्ड शेष बचा था—वह था मृत्यु दण्ड। पेट्रिट शेवो नामक ग्राम के मध्य में स्थिति वध-स्थल पर जोया को ले जाया गया। वहाँ पहले से ही सहस्रों जर्मन घुड़सवार पहरा लगा रहे थे। नृशंस जर्मन सेना ने आस-पास के गाँवों की रूसी जनता को भी बलात् आमन्त्रित किया था, जिससे कि जोया की दुरावस्था देखकर ऐसा कार्य करने का साहस फिर किसी को न हो सके।

जोया के क्षत-विक्षत शरीर को एक ऊँचे से स्थान पर खड़ा कर दिया गया। फाँसी का फन्दा उसके गले में लटका दिया। किसी भी क्षण वह कसा जा सकता था। मृत्यु पाश कण्ठ में पड़ा देखकर भी जोया तनिक भी विचलित न हुई। जोया का जीवन दीपक बुझने से पूर्व एक बार पूर्ण शक्ति से प्रदीप्त हो उठा। उसके कण्ठ में जाने कहाँ से दैवी शक्ति आ गई और उसका स्वर उस निस्तब्ध वातावरण में गूँज उठा—

''साथियो ! इतने उदास क्यों हो ? साहसी और वीर बनो, संघर्ष करते रहो, जर्मनों को जान से खत्म कर दो; उन्हें जला दो, उन्हें नष्ट कर दो। मैं मरने से नहीं डरती। अपने देश और देशवासियों के लिए प्राण त्याग देना बहादुरी है।''

जल्लाद ने फाँसी का फन्दा उसके गले में कस दिया परन्तु तेजी से उसने फन्दा ढीला किया और चिल्लाई—''विदा साथियो ! लड़ते रहो, कदम पीछे न हटाओ। स्तालिन हमारे साथ है।''

दूसरे ही क्षण बधिक ने फन्दा कस दिया और जोया का निर्जीव शरीर हवा में झूल गया।

५ दिसम्बर, १९४१ को जोया को फाँसी दी गई थी परन्तु उसके भी लगभग तीन सप्ताह बाद तक जोया का शरीर वहीं आँधी, पानी, तूफान और धूप में लटक कर विकृत होता रहा। रूसी जनता को भयभीत करने के लिए जर्मनों ने ऐसा किया था परन्तु उस वीर कन्या का त्याग देखकर रूसियों के हृदय में भय के स्थान पर देश के लिए जोया जैसा बलिदान कर देने की उत्कट लालसा ही जाग्रत हुई।

आज यद्यपि जोया कोस्मोदे मिन्स्क्या का पार्थिव शरीर इस संसार में नहीं है तथापि उसकी अमर-गाथा रूस के बच्चे-बच्चे के मुख पर है। आज भी रूसी पत्र-पत्रिकाओं में जोया के अविस्मरणीय बलिदान पर अनेकानेक लेख, कविता और कहानियाँ प्रकाशित होती रहती हैं। आज भी चित्रकार उसकी तेजोमयी दिव्य आकृति को तूलिका की सीमा में बाँधने का प्रयास करते हैं, मूर्तिकार उसकी सौम्य-प्रतिमा गढ़ने में अपने परिश्रम को सफलीभूत मानते हैं। हॉलीवुड के एक प्रसिद्ध डायरेक्टर ने उसकी जीवन-गाथा देशवासियों के नेत्रों के सम्मुख जीवन्त रूप में प्रस्तुत करने के लिए जोया के ऊपर फिल्म भी बनाई है। विश्व की नारियाँ आज भी जोया कोस्मोदे मिन्स्क्या के अमर कृत्यों से प्रभावित होकर जीवन-संग्राम में हँसते-हँसते मर मिटने की प्रेरणा प्राप्त करती हैं।

पंक में खिला पंकज—

सोफी बारडिना

जारशाही के समय में रूस के फैक्ट्री-मजदूरों की एक बस्ती, उस बस्ती की तंग पिंजड़ेनुमा कोठरियों में सैकड़ों मजदूर परिवार रहते थे। एक परिवार का कोई पुरुष सदस्य अभी लौटा था। आकर उसने अपने तमाम कपड़े उतार फेंके और माथे पर आया पसीना पोंछकर एक ओर बैठ गया।

तभी उस कोठरी में एक और मजदूर ने प्रवेश किया, उसके चेहरे पर क्षणिक खुशी के भाव नाच रहे थे। वह शायद पड़ौस में ही रहता था। उसको खुश देख कर कोठरी में रहने वाले पुरुष ने पूछा—क्या बात है बुबेश्का कोई खुशी की बात है। आज कोई नयी चिड़िया पकड़ी है शायद।

'पकड़ी नहीं हमारे जंगल में आ रही है मित्र—बुवेश्का बोला—'वही अन्ना जिसका जिक्र मैंने तुमसे किया था कि वह फैक्ट्री में मजदूरिन बनकर आयी है और तुम कह रहे थे कि वह ऑफिस में काम करेगी।'

'हाँ-हाँ'—बुवेश्का का मित्र बोला—'वह हमारी ही बस्ती में रहने आयी है। क्या यह सच है कि वह मजदूरिन है। तब तो बड़ा मजा आयेगा दोस्त।'

हाँ, 'अच्छा तो अब तुम जल्दी निबट लेना, हम दोनों यहाँ से साथ ही चलेंगे। उस चिड़िया को अपने फन्दे में फाँसने के लिए।' इतने में ही उस परिवार के कुछ और सदस्य भी आये तथा वह व्यक्ति जिसका नाम बुवेश्का था चला गया। पन्द्रह घण्टे के अनथक श्रम की थकान चिड़िया का नाम सुनते ही न जाने कहाँ चली गयी थी। उन बस्तियों में यह नित्य का क्रम था। कोई नई लड़की देखकर उसे अपनी वासना का शिकार बनाना, शराब पीना, जुआ खेलना, चोरी करना आदि सब बातें इस बस्ती में रहने वालों के लिए तो जैसे रोज का क्रम बन गयी थीं ? जिन कोठरियों में वे लोग रहा करते थे, उनमें सीलन की बड़ी बदबू आया करती थीं। जगह-जगह पर मकड़ियों ने जाले बना रखे थे और दीमकों ने अपने घर, बरसों से उनकी पुताई नहीं हुई थी और न मरम्मत। घर की सफाई के लिए वक्त ही कहाँ मिलता था सुबह उठकर जाने और रात देर तक काम करते थे। खाने-पीने और सोने के लिए नौ घण्टे तो मिलते थे, उन बेचारों को और इतनी देर में वे क्या-क्या करें ?

मनुष्य के चरित्र पर उसके रहन-सहन का बड़ा प्रभाव पड़ता है। सो ऐसी जिन्दगी में मनुष्य पतित हो जाये तो क्या आश्चर्य ? अन्ना को यह सब पता था—फिर भी उसने मजदूरिन के रूप में उन लोगों के बीच अकेले रहना पसन्द किया था। निश्चित समय पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बूवेश्का आया और दोनों मिलकर चल दिये उस कोठरी की ओर, जिसमें कि अन्ना रहने लगी थी। वह चुपचाप अपने काम में लगी हुई कुछ गुनगुना रही थी। जब उसे किसी की उपस्थिति का आभास हुआ, तो बड़े प्यार से पुकारा 'आओ भाई। बैठो'

बड़ा आश्चर्य हुआ दोनों मजदूरों को। इतनी आत्मीयता से कभी कोई नहीं बोला था। यहाँ तक कि पत्नी और माँ भी नहीं। अन्ना की वाणी में उन्हें उस अमृत की मिठास लगी जिसे कहते हैं—प्रेम। भाई का प्यार भरा सम्बोधन पाकर उनके इरादे ढहते से लगे परन्तु वे वहाँ से गये नहीं। प्रेम भरे आकर्षण ने उन्हें वहीं बाँध रखा और अन्ना ने उनसे जो बातें की, उनमें मिला नये जीवन का सन्देश। नये प्रभात की सूचना और उगते नये सूरज का प्रकाश। अन्ना के प्रेम और प्रखर विचारों ने उन्हें यह मनवा दिया कि धरती और देश के वे सच्चे सपूत हैं। जो लोग उन्हें इस दीन-हीन स्थित में रहने के लिए विवश कर रहे हैं, श्रम, पसीना और खून चूँस रहे हैं, उनके विरुद्ध आवाज उठाना हमारा नैतिक कर्त्तव्य है।

सम्पर्क में आये पहले दो व्यक्तियों को जब अन्ना ने प्रभावित होते देखा तो उसे विश्वास हो गया कि जिस उद्देश्य से वह मजदूरों की इस बस्ती में रहने के लिए आयी है—वह अवश्य पूरा होगा। अन्ना और उसके अन्य कई साथियों ने इस प्रकार क्रांति की आवाज किसानों तथा मजदूरों में फैलाने का निश्चय किया था। कई युवक और युवतियाँ डॉक्टर, नर्स, अध्यापक, शिक्षिका बन-बनकर गाँवों में फैल रहे थे। ताकि इस वर्ग के लोगों को जगाया जा सके तथा समतापूर्वक समाज की रचना की जा सके। यह काम आसान नहीं था। जारतन्त्र के पुर्जो से बचकर, यह कार्य तीव्र गति से कर पाना कितना मुश्किल रहा होगा—यह तो उस. समय के कार्यकर्त्ता ही अनुभव कर पाये होंगे। लेकिन अनुमान तो वस्तुस्थिति से परिचित हर कोई विचारशील लगा सकता है। गांवों में मुक्ति का संदेश पहुँचाने की अपेक्षा और भी मुश्किल थी कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों में जाग्रति और चेतना लाना।

उस समय मजदूरों की स्थिति और रहन-सहन का ढंग पूर्वोक्त प्रकार का ही था और ऐसे वातावरण में घुस पाना सचमुच बड़ा दुस्साहस का कार्य था। कोई युवक तो आसानी से मजदूर बनकर फैक्ट्रियों में अपना कार्य सुनियोजित ढंग से करने लगे थे। परन्तु युवतियों को अपने शील की चिन्ता थी। उन दिनों मजदूरों द्वारा बलात्कार की घटनायें भी खूब सुनने में आती थीं। सरकार तथा अधिकारियों के पास इस ओर ध्यान देने तथा बढ़ती जा रही चरित्र हीनता का कारण खोजने का समय ही नहीं था। ऐसे विषाक्त और शील पर आक्रमण के भय भरे वातावरण में भी सोफी अन्ना ने छद्म नाम से प्रवेश करने का साहस किया।

सोफी अन्ना का मूलनाम था—सोफी बारडिना। वह एक पुलिस अधिकारी के परिवार में सन् १८५३ ई. में जन्मी थी। जारशाही के जमाने में रूस का ऐसा कोई भी शासकीय पदाधिकारी न था—जिसे वहाँ की जनता नीची निगाह से न देखती हो। रूस का शासक वर्ग अपने मौज-मस्तियों में व्यस्त और लिप्त था, तो उसके कर्मचारी और अधिकारी भी निरकुंश थे। बाहरी नियन्त्रण समाप्त होते ही सुप्त अन्तश्चेतना के अभाव में व्यक्ति पतन के मार्ग पर लुढ़कता चलता है। चूँकि बारडिना के पिता भी उसी वर्ग के लोगों में से थे इसलिए कैसे आशा की जा सकती थी कि वे भी दूध के धोये रहे होंगे। बारडिना के पिता इलारिन बार्डिन एक अत्याचारी पुलिस अफसर थे। राह चलते लोगों को परेशान करना, निर्धन किसानों, मजदूरों को हण्टरों से मारना—उनके लिए बड़ी साधारण बात थी। यहाँ तक कि जिन स्त्रियों पर उनका मन मचल उठता उसे वे साधिकार अपने मकान पर बुला लेते।

ऐसे पुलिस अधिकारी की पुत्री के रूप में सोफी ने जन्म लिया और प्रकारान्तर से अपने पिता के विरुद्ध ही एक प्रबल मोर्चा तैयार करने का संकल्प लिया। वे अच्छी तरह जानती थीं कि क्रान्ति आयी तो जनता और बदलती हुई परिस्थितियाँ उनके पिता को भी नहीं बख्शेगीं। परन्तु बारडिना के अंतरंग में सबल हो उठे न्याय और औचित्य के पक्ष ने इस अन्धी ममता और परिवार के लिहाज का भी गला घोंटकर रख दिया।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा स्थानीय कन्या पाठशाला में हुई और बाद में उच्च अध्ययन के लिए १८७१ ई. में मास्को आयीं। उन दिनों मास्को साम्यवादी विचारधारा का केन्द्र बना हुआ था। कई जागरूक, चिन्तनशील प्रबुद्ध नेता समता और न्याय के सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे। इन नेताओं ने युवापीढ़ी को ही अपना माध्यम चुना क्योंकि परिवर्तन और क्रान्ति में युवक जितने सक्रिय तथा सहयोगी सिद्ध होते हैं शायद ही दूसरी पीढ़ी हुई हो। महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के छात्र इन विचारों में बड़ी रुचि ले रहे थे। तथा इस प्रकार के परिवर्तन के लिए उत्साह भी दर्शा रहे थे। सोफी मास्को में ही साम्यवाद के प्रथम सम्पर्क में आयी।

बाद में वे और आगे पढ़ने के लिए स्विट्जरलैण्ड गयीं। मास्को के वातावरण में तो कुछ प्रतिबन्ध और घुटन भी थी। इस कारण सोफी तद्विषयक अध्ययम स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं कर सकी। लेकिन ज्यूरिच-स्विटजरलैण्ड में उन्होंने स्वयं को सर्वथा उन्मुक्त और स्वतन्त्र पाया। रूस के और भी अन्य कई युवक-युवतियाँ वहाँ पढ़ते थे। वे लोग भी इस नये प्रकाश से अलोकित हुए थे। प्रगति पथ पर बढ़ रहे संसार और आधुनिक सभ्यता ने सभी को प्रभावित किया। जब वे लोग संसार की वर्तमान स्थिति से अपने देश की तुलना करते तो भले ही एकांत के क्षण हों, उनका चेहरा लज्जा से झुक जाता।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बारडिना तथा उनके कुछ साथियों ने मिलकर तब निश्चय किया कि हम अपने देश को इस दीन-हीन दुर्दशाग्रस्त स्थिति में नहीं रहने देंगे। वरन् देशवासियों में नयी चेतना लाने के लिए हर सम्भव प्रयास करेंगे। शिक्षा प्रचार से लेकर जन जागरण और अपने नागरिक अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने का निश्चय उस संकल्प में सम्मिलित था। एक बारगी तो जूरिच-विश्वविद्यालय के छात्रों का उत्साह इतना बढ़ गया कि वे अपनी पढ़ाई को अधूरी ही छोड़कर तत्काल रूस लौट चले और निर्धारित कार्य में लग गये। भावावेश के उन क्षणों में सोफिया ने समझाया कि इस प्रकार बिना सोचे-समझे कोई भी कदम उठाना अपने पक्ष में हितकर नहीं होगा।

जूरिच विश्वविद्यालय के रूसी छात्रों की इन गति विधियों की सूचना जब रूसी सरकार को मिली तो जून १८७३ मे तुरन्त एक आज्ञापत्र जारी कर छात्रों को वापस अपने देश में बुला लिया। छात्रों की इच्छा तो नहीं थी फिर भी आज्ञापत्र के कारण उन्हें रूस लौट आना पड़ा। सब एक साथ वापस आ गये और सेंट पीट्र्स वर्ग में ठहरे, वहाँ उन्होंने ने तय किया कि किसानों और मजदूरों को अपने अधिकारों के हित में जगाया जाय और क्रान्तिदर्शन का प्रचार किया जाय। स्थान-स्थान पर गुप्त क्रान्तिकारी सभायें करना भी निश्चित हुआ और मुट्ठीभर छात्रों ने पहली बार इस अन्याय तथा शोषण के खिलाफ आवाज उठायी।

गुप्त सभाओं में किये गये निश्चयों के अनुसार क्रान्तिकारी युवक-युवतियाँ गाँवों और खेत कारखानों में फैलने लगे। ऐसे ही निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार बारडिना को उक्त फैक्ट्री में अन्ना के नाम से मजदूरिन बनकर भर्ती होना पड़ा। सोफी ने मजदूरों को आत्मीयता और प्रेम से अपने वशवर्ती कर लिया तथा उनमें क्रान्ति की ज्वाला जलाने लगी। वे मजदूरों के बीच बैठकर साहित्य पढ़ती, कहानियाँ कहती, उन्हें समझाती तथा न्याय के लिए संघर्ष की प्रेरणा देती। मजदूर उनके साथ बड़ा सम्मानपूर्ण व्यवहार करते—उन्हें अपनी बहिन मानते। उनके सद्व्यवहार से मजदूरों के रहन-सहन, चरित्र तथा विचारों में बड़ा उथल-पुथल हुआ।

एक दिन वे मजदूरों में कोई विज्ञप्ति बाँट रही थीं। अपने प्रयासों द्वारा उन्होंने बस्ती में शिक्षा का प्रचार और साक्षरता आन्दोलन भी चलाया था। उस समय जब वे विज्ञप्ति बाँट रही थीं—एक अधिकारी ने देख लिया और वह एक पर्चा उठाकर अपने ऑफिस में ले गया। जब किसी काम से बारडिना ऑफिस में गयी तो वहाँ वह पर्चा रखा हुआ देखा। अब अधिकारियों की निगाह मुझ पर पड़ गयी है इसलिए बच सकना मुश्किल है। यहाँ से भाग चलने में ही भलाई है। यह सोचकर बारडिना ने वह फैक्ट्री छोड़ दी और सेंट पीट्र्स वर्ग आ गयीं। वहाँ क्रान्तिकारियों ने कुछ मकान किराये पर ले रखे थे, जिनमें वे मन्त्रणायें करते तथा आवश्यकता के समय शरण भी लेते थे। बारडिना एक ऐसे ही मकान में आकर ठहर गयी और आन्दोलन में भी भाग लेती रही।

उस मकान में उनकी एक सहयोगी महिला ने प्रलोभन में आकर पुलिस को सूचना दे दी और वे गिरफ्तार कर ली गयीं। जिस समय उनकी गिरफ्तारी हुई वे कुल २३ वर्ष की थीं। वय की दृष्टि से इतनी नयी युवती के लिए न्यायाधिकारियों ने दया का एक नाटक रचा और साइबेरिया में आजन्म निवास का दण्ड दिया। साइबेरिया बहुत कुछ अण्डमान, निकोबार के काला पानी की तरह एकाकी और यातनागृह-सा स्थान था। वहाँ उन्होंने बड़े अत्याचार सहे। शरीर अस्थिपंजर बन गया, सुन्दर सुगठित और पुष्ट देह नर-कंकाल बन गयी । फिर भी वे हिम्मत नहीं हारीं।

इस प्रकार गल-गलकर मरने से तो उन्होंने वहाँ से भाग जाना और क्रान्ति का संगठन करने के लिए आत्माहुति दे देना अच्छा समझा। १८८० में वे साइबेरिया छोड़कर भाग निकलने में सफल हुईं। राह में अनेक कठिनाइयाँ सहकर भी वे कजान पहुँचीं। वहाँ उनके कुछ साथी प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उन्होंने बारडिना को इस दशा में देखा तो पहले तो पहचान ही नहीं सके।

कजान से वे लुकती-छिपती रूस में आयीं और आखिरी साँस तक अपने अभीष्ट कार्य के लिए प्रयत्न करती रहीं। सन् १८८३ में मृत्यु की अतिथि बनीं और रूसी क्रान्तिकारियों ने अपनी बहिन को खो दिया।

सोकी पेरो भस्काया—
जिसने हँसते हुए मृत्यु का वरण किया

कुछ छात्राओं ने अपनी सहेली सोकी के मकान पर जाकर दरवाजा खटखटाया। दरवाजा सोकी के पिता ने खोला। वह इन लड़कियों को निहिलस्ट के नाम से जानता था। बड़ी घृणा थी उसे निहिलस्टों से क्योंकि यही तो थे वे लोग, जो उसके भूतपूर्व मालिकों के खिलाफ षड्यन्त्र रच रहे थे। भले ही अब उस राज परिवार की सेवा में न रहा हो परन्तु जिस घर का नमक खाया था, उसके प्रति वफादारी निभाना तो अपना फर्ज समझता था। बड़े ही रूखे स्वर से उसने आगन्तुक लड़कियों से पूछा क्या बात है ?

साथी से मिलना है, द्वार पर खड़ी चार-पाँच कन्याओं ने कहा।

वह निवृत्त शासकीय अधिकारी के शब्द मुँह में ही रह गये। पीछे से सोकी बोल उठी' आओ प्रिय सहेलियों, और सोकी के पिता को दरवाजा छोड़कर अलग हट जाना पड़ा। उन लड़कियों ने सोकी को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.८४ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

सम्बोधित करते हुए अन्दर प्रवेश किया। आज संध्या अपने दल की बैठक है, कुछ महत्त्वपूर्ण चर्चायें करनी हैं। तुम्हें हम यह सूचना देने आयी थीं।

उनके ये शब्द सोकी के पिता के मस्तिष्क पर हथौड़े बनकर पड़े। उसे लगा जैसे उसका दिमाग ही फट जायेगा। निहलीस्टो की बैठक में क्या महत्त्वपूर्ण चर्चायें होगीं ? इसका उसे एक मोटा अनुमान था। वह भली भाँति जानता था कि ये लोग वर्तमान शासन तंत्र को उलट देना चाहते हैं। उस परिवार को पदच्युत करने की योजनायें बना रहे हैं, जिसकी सेवायें पीढ़ियों से मेरा परिवार करता चला आ रहा है और यह अनुभव होते ही उस योजना में मेरी भी बेटी सक्रिय रूप से भाग ले रही थी, उसकी छाती पर साँप लेट गया। फुक्कार उठा वह खबरदार सोकी। जो आज शाम तुम कहीं गयीं और लड़कियों तुम भी सुन लो कान खोलकर तुम लोगों को भी मेरी बेटी से कोई सम्बन्ध नहीं रखना है। तुम्हें याद होना चाहिए कि मैं सेंट पीटर्स वर्ग का गवर्नर जनरल रह चुका हूँ और उस परिवार की जड़ें खोदने में सहयोग देते हुए अपनी बेटी को कतई देखना पसन्द नहीं करूंगा। कहते-कहते पेरो भस्काया कांप उठा।

पेरो भस्काया परिवार के लोग पूर्व काल से ही सरकार के ऊँचे पदों पर नियुक्ति होते आये थे। उसके किसी पूर्वज ने पीटर दी ग्रेट की एक पुत्री से विवाह किया था। उसी कारण उन्हें यह सम्मान और प्रतिष्ठा मिलती रही थी। सोकी के पितमाह सरकार में शिक्षा विभाग के मंत्री थे और गवर्नर जनरल सम्राट की रक्षा का प्रमुख दायित्व उन्हीं पर था। पीढ़ियों से जिस परिवार की सेवा करते रहे और उसी का कोई सदस्य, उसके विरुद्ध वह यंत्र रचे यह उनका हृदय कभी नहीं सह सकता था। नस-नस में समाये कृतज्ञता के भावों का ही यह प्रभाव कहना चाहिए था अन्यथा बुद्धि तो उसकी भी जाट से घृणा करती होगी।

१८८३ ई. में जार अलैक्जैण्डर द्वितीय पर एक क्रांतिकारी ने गोली चलायी। पुलिस ने लाख हाथ पैर मारे, परन्तु वह पकड़ा न जा सका। जार इससे बड़ा बौखला उठा और उसने अपना गुस्सा उतारा गवर्नर जनरल पर। तुमने सम्राट की रक्षा का सचमुच प्रबन्ध नहीं किया। इसलिये तुम दोषी हो इस काण्ड के और उन्हें बर्खास्त कर दिया गया। सेंट पीटर्स वर्ग छोड़ कर पेरोभस्काया को परिवार सहित अपनी स्टेट में आ जाना पड़ा। बहुत बड़ी जागीर थी उसके पास। उन लोगों को गवर्नर जनरल के पद से बर्खास्त हो जाने के कारण बड़ी तकलीफों का सामना करना पड़ा था। इसलिए पेरोभस्काया के मन में जार के प्रति जहाँ एक ओर बड़ी घृणा थी वहीं दूसरी ओर अगाध झुकाव भी था।

बेचारी आयी हुई लड़कियाँ अपना सा मुँह लेकर लौट गयीं परन्तु सोकी को बड़ा गुस्सा आया अपने पिता पर। आज तो पिताजी ने कमाल सा कर दिया। अभी तक तो वे घर में, भीतर ही कुड़-कुड़ाया करते थे परन्तु इस बार यह क्या कर दिखाया ? जिस दल की बैठक में उसे भाग लेना था वह मिशन तो उनके जीवन का ध्येय बन चुका था। और उसे पूरा करने के लिए सोकी भी खतरा उठाने के लिए तैयार थी। जब उन्होंने देखा कि पिताजी अब हर तहर से मार्ग में रोड़े अटकाने लगे हैं तो सोकी ने निर्णय लिया कि वह यह घर छोड़ देगी। जिस परिवार में रहकर लोक-सेवा का प्रयोजन न बन पड़े, उस परिवार को ही छोड़ देना सोकी ने उपयुक्त समझा।

पिता के अत्याचारों से बचकर अपना कार्य करने के लिए उन्होंने घर छोड़ दिया और चुपचाप क्रान्तिकारियों से जाकर मिल गयी। पेरोभस्काया बड़े नाराज हुए। वे जानते तो थे कि बेटी ने उनसे मुक्ति पाने के लिए ही घर छोड़ा है परन्तु वे सोकी के इरादों को इस प्रकार पूरे होते देखना पसन्द नहीं कर सके। उन्होंने तत्काल पुलिस को सूचना दे दी। इसमें कोई शक नहीं कि सोकी पकड़ी जाती तो कड़ा दण्ड नहीं मिलता। पुत्री ने पेरोभस्काया को बहुत समझाया-बुझाया और रिपोर्ट वापस लेने के लिए तैयार कर लिया।

घर-परिवार के बन्धनों से स्वतन्त्र हो जाने के बाद सोकी बड़े उत्साह के साथ क्रान्तिकारी आन्दोलनों में भाग लेने लगी। इस कारण उन्हें सन् १८७५ ई. में गिरफ्तार कर लिया। परन्तु शासकीय अधिकारियों ने उनके पिता की पूर्व सेवाओं के लिहाज से चेतावनी देकर छोड़ दिया। पिता भले ही सोकी से रूठा हुआ हो परन्तु माता के हृदय में तो उनके प्रति अपार ममता थी। सोकी अपनी माँ से पिता की नजर बचाकर मिलने आ जाया करती थी। बेटी पुलिस की निगाह में आ गयी है, यह पता चला तो माँ को बड़ी चिन्ता हुई। किसी 'प्रकार' बेटी को उस स्थान से निकालकर सुरक्षित जगह पर ले जाने का प्रयास करने लगी।

पेरोभस्काया की पत्नी अपनी बेटी को क्रीमिया ले गयीं। जहाँ उनकी थोड़ी-सी जमींदारी थी और उसकी देखभाल ही करती थी। सोकी अपनी माँ के साथ वहीं रहने लगी। उन्होंने वहाँ शिक्षा प्राप्त करना आरम्भ किया और डॉक्टरी पढ़ने लगी। डॉक्टरी पढ़ने का एक ही उद्देश्य था किसी प्रकार सर्व-साधारण से घनिष्ठ सम्पर्क बनाया जा सके और सेवा तथा आत्मीयता के बल पर उन्हें जागरूक किया जा सके। पढ़ने के साथ-साथ वे डॉक्टरी भी इसी कारण जारी रखती रहीं। नागरिकों में साम्यवादी विचारों का प्रचार करने के अपराध में वे १८७७ ई. में पुन: पकड़ ली गयीं।

थोड़े-बहुत दिन वे कारावास में रहीं और छोड़ दी गयीं। इधर जारशाहों ने क्रान्तिकारियों के प्रति बहुत कड़ा रुख अपनाया। बाद में तो इन प्रचारकों को भी फाँसी की सजा दी जाने लगी थी। किसी तरह अपना कार्य पूरा करने के लिए कृत संकल्प साम्यवादी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कार्यकर्त्ताओं ने एक विध्वंसकारी दल का संगठन किया। सोकी भी उस दल की सदस्य बनी। वहाँ की इस भयावह और कंटकाकीर्ण स्थिति में सोकी हर घड़ी खतरे की संभावना से घिरी रहती। उनके मित्र ने जो उन्हें चाहता था, और उस समय विदेश में रह रहा था सोकी को लिखा कि यहाँ आ जाओ। हम यहाँ सुरक्षित रहेंगे।

सोकी ने तुरन्त उत्तर दिया तुम क्या समझते हो कि जिस प्रश्न पर मैंने अपने पिता और 'परिवार' से भी विद्रोह किया, मात्र तुम्हारे निमंत्रण से उसे अनुत्तरित छोड़ कर आजाऊँगी। विदेश में निष्क्रिय जीवन बिताकर आराम से रहने की अपेक्षा मैं फाँसी के फन्दे पर चढ़ना पसन्द करूँगी यहीं रहते हुए, क्योंकि तब मुझे हार्दिक खुशी होगी कि मैं अपने करोड़ों देशवासियों के लिए मर रही हूँ।

यह बात उनके अन्तःकरण की गहराइयों से निकली थी और इसलिए उनकी आकांक्षा भी पूरी हुई। सन् १८८० में जार की हत्या के अपराध में भाग लेने का अभियोग लगाकर उन्हें गिरफ्तार किया था। कहा जाता है कि सोकी ने विलासी और आतंकवादी जार को मारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही थी। १५ अप्रैल, १८८१ ई. में उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया। फाँसी के फन्दे को चूमकर उन्होंने अपूर्व आत्म-संन्तोष व्यक्त किया था—मुझे इस बात का संतोष है कि मैं आजन्म अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रही। मैं इस फन्दे की शक्तिपूर्वक प्रतीक्षा करती रही हूँ। एक जीवन जो जरूरतमंदों की सेवा के लिए समर्पित था, बलिदान हो गया और बाद में उस जीवन को प्रकाशपुंज की तरह स्मरण किया गया।

क्रान्ति की दीपशिखा—
श्रीमती कोहानी

जापान की जाग्रत महिला श्रीमती मोतीकोहानी वह प्रथम बालिका थी, जिसने प्राथमिक शिक्षा पूरी करके हाईस्कूल में प्रवेश लेने के लिए आवेदन पत्र प्रेषित किया था। हाईस्कूल के अध्यापकगण अकेली लड़की को प्रविष्ट होते देखकर आश्चर्यचकित रह गये थे। मैट्रिक पास करने के बाद वह एक पाठशाला में शिक्षिका बन गई।

शिक्षिका बनने से ही उसे सन्तोष नहीं हो सका। वह अपने देश की नारियों में वह साहस उत्पन्न करना चाहती थी कि वह पुरुषों से अपना हक माँग सकें, समानता का स्थान प्राप्त कर सकें। उसके लिए अध्यापिका बनकर रह जाना पर्याप्त नहीं था। वह ऐसे अवसर की खोज में रहने लगी, जब उसके विचार देश की चोटी के समाचार-पत्रों में प्रकाशित हों तथा कागज के वाहनों पर सवार होकर वह घर-घर जायें—प्रत्येक महिला के अन्तस् में सिकुड़े-सिमटे लजाकर बैठे आत्मविश्वास को जगायें। वह अपने विचारों के माध्यम से पुरुष के हृदय द्वार को खटखटाए तथा उससे पूछे कि अपनी अर्धांगिनी को इस प्रकार पददलित करके उसे कौन-सा सुख मिल रहा है? वह अपने ही पाँवों पर कुल्हाड़ी मारने की यह मूर्खता क्यों कर रहा है?

वह प्रतिदिन अपने स्कूल पढ़ाने के लिये जाती तो एक समाचार पत्र के कार्यालय को देखकर उसकी श्वेत आँखों में आकांक्षाओं के लाल डोरे उभर आते, उनमें भावी जीवन के सुनहरे रेखाचित्र बनने लगते। यह कार्यालय जापान के प्रमुख समाचार पत्र 'होची' का प्रधान कार्यालय था। उसके चलते हुए कदम कुछ क्षणों को वहाँ ठहर जाते। ऐसा लगता अभी भीतर से कोई दौड़कर उसे बुलायेगा तथा उससे इस पत्र की स्तम्भ लेखिका बनने का अनुरोध करेगा।

सचमुच एक दिन वह आमन्त्रण उसे मिला। किन्तु स्तम्भ लेखिका बनने के लिये नहीं, प्रूफ रीडर के लिये। अवसर व्यक्ति के सम्मुख हाथ फैलाए स्वागत करते नहीं वरन् व्यक्ति को सजग रहकर उछलती गेंद की तरह अवसर को लपक लेना होता है। जो गाफिल रहते हैं, वे भाग्य का रोना रोते रहते हैं। किन्तु दोष भाग्य का नहीं उनका अपना होता है। वह गाफिल नहीं थी, उसने आवेदन किया, साक्षात्कार के लिये बुलाया गया, योग्यता को परखा गया वह अन्य प्रतियोगियों को पीछे धकेल कर अपनी योग्यता के बल पर चुन ली गयी।

प्रूफ रीडर बनना मोती की प्रगति का प्रथम सोपान था। अब उसने अपना सुदृढ़ चरण दूसरे सोपान पर रखा। अपनी एक सुन्दर रचना उसने सम्पादक के टेबुल पर रखी। सम्पादक ने पढ़ी तो वह उसकी प्रवाहमय भाषा, सजीव चित्रण तथा मार्मिकता के इस अनूठे संगम को देखकर बहुत प्रभावित हुआ। वह भागता हुआ उसके पास आया और रचना को दिखाते हुए पूछा—यह किसने लिखी ?'

''मैंने''

''यह तो बड़ी सुन्दर है।''

उसी दिन से वह जापान के सर्वश्रेष्ठ पत्र की स्तम्भ लेखिका बना दी गई।

यहीं उसका सम्पर्क एक युवक से हुआ, जो उसी पत्र सम्पादन विभाग से सम्बन्धित था। युवक का नाम था—योशी जाकू। अब तो वह भी सम्पादन विभाग में ही थी। अब वह जापान के सभी वर्गों की महिलाओं से साक्षात्कार करके, उनकी भावनाओं, उनके विचारों को अपने पत्र में प्रकाशित करती थी।

अब तक परम्परा के अनुसार माता-पिता अपनी कन्या के लिए वर का चयन करते थे। मोती ने इस परम्परा को तोड़ते हुए एक दिन योशी जाकू से विवाह कर लिया। इस विवाह का साम्य था। दोनों ही सामाजिक क्रान्ति करना चाहते थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.८६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

एक और एक मिलकर ग्यारह हो जाते हैं किन्तु मोती की और योशीजाकू तो अकेले ही ग्यारह हजार के बराबर थे। दोनों के मिलन ने उस दावानल का सूत्रपात किया, जिसने जापानी नारी को बाँधकर रखने वाले मोटे रस्सों को जलाकर भस्मीभूत कर दिया।

'होची' के सम्पादन विभाग में काम करते हुए वे खुले रूप से अपने विचारों को जनता के सामने नहीं रख सकते थे। उन्हें पत्र की नीति के दायरों में रहकर लिखना पड़ता था। उन दोनों ने स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के लिये अपना प्रथम पत्र निकालने की जोखिम मोल ली तथा ''फुजिन नो टोमो'' (महिला साथी) नामक अखबार निकाला। उनके पास साधन तो सीमित थे किन्तु उनका अपना श्रम, मेधा तथा साहस उस कमी को पूरा कर देता था। स्वयं समाचार बनाते, लेख लिखते, कम्पोज करते, प्रूफ पढ़ते, छापते, ग्राहकों से पत्र व्यवहार करते यहाँ तक कार्यालय में झाड़ू भी वे ही लगाते थे। उनका यह अविराम परिश्रम रंग लाया और एक वर्ष में ही इस पत्र के एक लाख ग्राहक हो गये। समाचार पत्र भी समृद्ध हो गया। उन्होंने अपने सहायक कर्मचारियों की नियुक्तियाँ भी कर लीं।

इस दम्पति के एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई। इन फूल से बच्चों को अपने माता-पिता के गुण पैतृक सम्पदा की तरह मिले थे। स्कूलों में पढ़ने जाते तो वहाँ की बातें घर आकर बताया करते थे। स्कूलों की शिक्षा एक ढर्रे पर चलती थी। बच्चों को केवल पुस्तकीय ज्ञान ही दिया जाता था। उनकी प्रतिभाओं की परख किये बिना ही उन पर कठोर अनुशासन लादा जाता था। मोती के लिये यह सब असहनीय था। वह अपने पति से इस ढर्रे के विपरीत ऐसा स्कूल खोलने के विषय में विचार करने लगी, जिनमें बच्चों का सर्वांगीण विकास करने का प्रबन्ध हो।

उनके इस वार्तालाप को बच्चे सुना करते थे। एक दिन उनकी नन्हीं कीतो (पुत्री) अपने माता-पिता के इस निश्चय की सूचना अपने सहपाठियों तथा अध्यापकों के सामने खुलकर कह आयी ''हम तो लड़कियों के सार्वजनिक हाईस्कूल में प्रवेश नहीं लेंगे। हमारे भाताजी तथा पिताजी हमारे लिये अपना अलग स्कूल खोल रहे हैं। उनमें इन स्कूलों के पढ़ाई की तरह पढ़ाई थोड़े ही होगी। वहाँ बच्चों को रट्टू और दब्बू नहीं बनाया जायेगा।

कीतो की यह घोषणा निरर्थक नहीं गयी। अगले वर्ष ही हानी दम्पति ने टोकियों में अपना स्वतन्त्र विद्यालय खोल दिया। इस विद्यालय के खुलने की सूचना उसका प्रयोजन तथा प्रणाली का विवरण उन्होंने अपने पत्र के माध्यम से जन-जन तक पहुँचा दिया।

प्रथम वर्ष इसमें २६ विद्यार्थियों ने प्रवेश लिया। प्रतिवर्ष यह संख्या बढ़ती ही गयी। इस विद्यालय की पद्धति जापान के प्रचलित स्कूलों से सर्वथा भिन्न थी। बच्चों पर एक-सी पोशाक तथा अनावश्यक अनुशासन का भार नहीं लादा गया। उन्हें साक्षर तथा शिक्षित बनाने के साथ-साथ जीवन जीने की कला तथा मानव जीवन के उद्देश्य की शिक्षा भी दी जाती थी।

इसमें पढ़ने वाली अधिकांश लड़कियाँ ही थीं। ये लड़कियाँ अपने कपड़े धोने, शरीर की स्वच्छता से लेकर घर गृहस्थी की पूर्ण जानकारी प्रयोगात्मक रूप से पाती थीं। गणित तथा हिसाब-किताब का ज्ञान बाजार से खरीददारी करके सिखाया जाता था। व्यावसायिक तथा स्वावलम्बन की शिक्षा भी दी जाती थी। बच्चों में स्वतन्त्र विवेक उत्पन्न करना इस विद्यालय का मुख्य उद्देश्य था।

अध्यापकों का चुनाव श्रीमती हानी ने डिग्रियाँ देख कर नहीं उनकी योग्यता देखकर किया था। प्रत्येक जापानी स्कूल में उस समय के राजा का चित्र लगा रहता था। उसके नीचे राजा के दीर्घायु होने तथा प्रजा को उसका वफादार रहने की सीख लिखी रहती थी। यही स्कूल ऐसा था जिसने यह परम्परा तोड़ी थी।

यहाँ के बालकों ने जो कार्य किये, वे भी चौंका देने वाले हैं। उन्होंने अपना सहकारी उद्योग खोल लिया। उसके लिये उन्होंने टोकियो में सबसे बड़े थियेटर में 'हेमलेट' नामक प्रसिद्ध नाटक का प्रदर्शन करके धन एकत्रित किया।

इस क्रान्तिकारी स्कूल को शिक्षा-बोर्ड ने मान्यता देने से इन्कार कर दिया। छात्रों के अभिभावक घबराये कि उनके बालकों का भविष्य अन्धकारमय हो जाएगा। उन्हें आगे नौकरियाँ नहीं मिल सकेंगी। कुछ ने तो अपने बच्चों को वहाँ भेजना ही बन्द कर दिया। किन्तु उस स्कूल के बच्चों की प्रगति देखते हुए इसके छात्रों की संख्या बढ़ती ही गयी। १९३० में यह संख्या २०० तक पहुँच गयी। १९३५ में इस विद्यालय ने टोकियो में २५ एकड़ खेत अपने विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक कृषि सिखाने के लिये खरीदा। इस विद्यालय में शिक्षा पाने वाले छात्रों को नौकरी की आवश्यकता हीं नहीं रही। उन्होंने पढ़ते हुए ही स्वावलम्बी बनकर अपना सहकारी औद्योगिक संस्थान बना लिया। इतना ही नहीं उन्होंने लोक-शिक्षण का महत्त्वपूर्ण दायित्व भी निभाया। समय-समय पर यह विद्यालय प्रदर्शनियाँ लगाकर जन-शिक्षण करता, जिसके विषय ये होते—अपने घर कैसे बनाओ ? बच्चों को कैसे पालो ? उनसे कैसे व्यवहार करो ? आर्थिक स्थिति कैसे सुधारी जाय ? देश की प्रगति में सहायक कैसे बनें? इत्यादि ।

सन् १९४५ में इस विद्यालय ने १०० एकड़ का अपना नया फार्म खरीदा। इस विद्यालय को अभूतपूर्व सफलता मिली। यह वस्तुतः हानी दम्पत्ति की सफलता है।

शिक्षा-बोर्ड ने इस विद्यालय को मान्यता नहीं दी वरन् उसके अधिकारियों ने श्रीमती हानी को अपने स्कूल के नाम से 'स्वतन्त्रता' शब्द हटाने को विवश किया।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परन्तु उन्होंने मना करते हुए कहा कि इसे हटा देने से तो हमारा उद्देश्य ही समाप्त हो जायेगा। कितनी ही धमकियों के बावजूद भी वे उनके सामने नहीं झुकीं ?

पचहत्तरवर्ष के आतपशीत ने उस ठिगनी-सी महिला के शरीर को तने हुए धनुष-सा झुका दिया है, किन्तु उसका उत्साह, उसका क्रान्तिकारी व्यक्तित्व ज्यों का त्यों उत्तुंग शिखर की-सी दृढ़ता लिए सीना ताने खड़ा है। सत्य तथा लोकहित का पक्ष लेकर आजीवन संघर्ष करना ही उसके जीवन का परित्याग कहा जा सकता है।

इस छोटे से शरीर में क्रान्ति का वह ज्वालामुखी समाया हुआ है, जिसने जापान में नारी-स्वातन्त्र्य तथा शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने का बीड़ा उठाने का साहस किया। उनके जियुगा कुएन (स्वतन्त्रता विद्यालय) को जापान के शिक्षा-बोर्ड ने आज तक मान्यता नहीं दी। वह उनके आगे झुकी नहीं, चट्टान अडिग अचल-सी खड़ी रही। अब वह अपना स्वतन्त्र कालेज व विश्वविद्यालय खोलने जा रही है।

उनके विद्यालय में शिक्षार्थियों को पुस्तकीय-ज्ञान की परिधि में बँधे कूप मंडूक नहीं बनाया जाता वरन् उनमें अपने व्यक्तित्व के विकास की भावी जीवन की समृद्धि तथा सार्थकता की पूरी-पूरी सामर्थ्य विकसित की जाती है। यह जापान में अपने ढंग का अनौखा लोकप्रिय विद्यालय है। रूढ़ियों के मोटे-मोटे रस्सों से जकड़े जापान में यह स्कूल राजनैतिक क्रान्ति से—विप्लव से कम अहमियत नहीं रखता।

कीतो को बचपन से ही व्यक्ति तथा समाज की प्रगति में बाधक रूढ़ियों से टकराने, उन्हें तोड़ने में एक अनोखा आत्म-सुख पाती थीं। यह दैवी प्रेरणा तथा सामर्थ्य उनके अन्तःकरण की आवाज बनकर, उन्हें महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए विवश करती रही थी।

कीतो का जन्म सन् १८९३ में एक साधारण जापानी परिवार में हुआ था। उस समय जापान में महिलाओं की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। उन्हें हर क्षेत्र में पुरुष से नीचा समझा जाता था। उनका बुरी तरह शोषण किया जाता था। नारियों का कार्यक्षेत्र घर की चहार दीवारी में सिमिटकर रह गया था, सामाजिक क्षेत्र तो उनके लिए करीब-करीब अवरुद्ध ही था। अपने गाँव की वह प्रथम महिला थी, जिसने टोकियो देखा था। बचपन में ही रिक्शे पर बैठकर चौदह दिन के लिए टोकियो की यात्रा पर निकली थी।

पचहत्तर वर्ष की आयु मे वह जवान अध्यापकों से दुगुना काम करती थीं। उनके बच्चे भी अब उसी स्कूल में अध्यापक हैं। जापान के महिला समाज के उत्थान के लिए इस प्राणदान महिला ने जो काम किया है वह अनुपम है। हमारे देश में भी नारी-उत्थान के लिए ऐसा ही साहस जुटाने की आवश्यकता है।

घायल सैनिकों के लिये मृत्यु दण्ड पाने वाली—
नर्स कैवेल

महायुद्ध आरम्भ होने के कुछ दिनों बाद ही जर्मनी सेनाओं ने बेल्जियम को जीत लिया। राजधानी ब्रसेल्स की व्यवस्था जर्मन सेनाओं ने अपने हाथों में ले ली। बेल्जियम की राजकुमारी डी. क्रय ने अपने सैनिकों की परिचर्या और घायलों की सुरक्षा-सेवा के लिए महल में ही व्यवस्था कर दी। डर था कि जर्मन सेनायें अँग्रेज और फ्रांसीसियों की सेवा-सुरक्षा के लिए खोले गये इस अस्पताल को उन्माद में आकर नष्ट-भ्रष्ट न कर दे। इसलिए आरम्भ में घायल जर्मनी ही इसमें रखे गये। बाद में दूसरे मित्र राष्ट्रों के घायल सैनिक भी रखे जाने लगे।

घायल सैनिकों को खतरा तो यहाँ भी था। डीक्रय ने इस खतरे से उन्हें बचाने के लिए एक गुप्त योजना बनायी। जिसके अनुसार घायलों को दबे छुपे बेल्जियम की सीमा से बाहर निकाला जाना था। मार्ग यह निश्चित हुआ कि उन्हें पहले हालैण्ड पहुँचाया जाय और बाद में इंग्लैण्ड परन्तु इसके लिए किसी सहयोगी और साहसी व्यक्ति की आवश्यकता हुई, जो यह काम आसानी से पूरा कर सके।

कई लोगों से पूछा गया परन्तु किसी का भी साहस न हुआ क्योंकि थोड़ी-सी भी असावधानी होने पर पकड़े जाने का डर था। जर्मन सेनाओं के हाथ पड़ने के बाद मृत्यु दण्ड तो निश्चित था ही।

यह खबर बेल्जियम में ही काम कर रही इंगलैण्ड की नर्स मिस कैवेल के पास पहुँची। पता चलते ही कि घायल सैनिकों को सुरक्षित स्थान तक पहुँचाने के लिए किसी साहसी व्यक्ति की आवश्यकता है। पकड़े जाने पर परिणाम भी जाहिर ही था फिर भी कैवेल ने निश्चय किया कि चाहे जो हो वह इस कार्य में सहयोग देगी ही। वे राजकुमारी डीक्रय के पास पहुँची और कहा कि वह घायलों को आसानी से बिना किसी प्रकार की असुविधा हुए बेल्जियम के बाहर ले जायगी। राजकुमारी ने सभी सम्भावित विपत्तियों से अवगत करा दिया। कैवेल ने निष्ठा व्यक्त की—'देश के इन वीर सपूतों को बचाने के लिए इस जन्म में तो क्या आगे भी बार-बार जन्म लेकर मुझे मरना पड़े तो मैं पीछे नहीं हटूँगी।''

कैवेल ने दो-दो चार-चार सिपाहियों को अपने अस्पताल में भर्ती करना आरम्भ किया और धीरे-धीरे उन्हें इंग्लैण्ड पहुँचाती रही। यह कम अभी कुछ ही दिनों चला था कि जर्मन अधिकारियों को मिस कैवेल द्वारा अस्पताल में मित्र राष्ट्रों के सिपाहियों को छुपाने और गुप्त रूप से बाहर भेजने की खबर लग गयी। वे अस्पताल की गतिविधियों पर निगाह रखने लगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१.८८ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता : -

उन्हें भी पता चला कि अब यह काम गुप्त नहीं रहा है। सामान्य आदमी तो छुपकर किये जाने वाले कार्य को जाहिर हुआ देखकर ही घबड़ा उठते हैं। परन्तु कैवेल अभूतपूर्व साहसी विचार रखने वाली महिला थी। अब पकड़ा तो जाना ही है, जर्मन सेनाओं के हाथ से बचना मुश्किल ही नहीं असम्भव भी है। इसलिए जितने ज्यादा हो सके, सिपाहियों को बाहर निकाला जा सकें तो अच्छा है। कैवेल अपने लिए और ईश्वर के प्रति ईमानदार थी। उन्होंने कोई अपराध नहीं किया था। निर्दोष होते हुए भी कोई दण्ड सहना पड़े तो उसे दुर्भाग्य नहीं सौभाग्य ही समझना चाहिए क्योंकि मनुष्य कष्ट और अन्यायपूर्ण, अवांछनीय कठिनाइयों तथा परेशानियों में परमात्मा के अधिक निकट आ जाता है।

अन्तत: ५ अगस्त १९१५ को कैवेल तथा उनकी साथी सिस्टर बिलकिंस गिरफ्तार कर ली गयी। कैवेल से पूछा गया कि—'क्या तुम युद्धबन्दियों को भगाने का आरोप स्वीकार करती हो।'

स्वाभिमानपूर्वक कैवेल ने कहा—''घायल और मरणासन्न लोगों की चिकित्सा-परिचर्या के लिए उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचाना आपकी दृष्टि में अपराध है तो मैं इसे स्वीकार करती हूँ।''

आरोप की स्वीकारोक्ति के बाद सिस्टर विलकिन्स से पूछा गया तो उसने सारी जिम्मेदारी अपनी अध्यक्षा कैवेल पर डाल दी और जर्मनियों ने उसे निरपराध जानकर मुक्त कर दिया। साहस और मनोबल के अभाव में विलेकिंस ने अस्वीकार कर दिया और इसे अपनी बुद्धिमत्ता तथा चातुर्य कहने लगी। कैद में उसने मिस कैवेल से कहा—'सिस्टर। यदि आप भी मेरी तरह अस्वीकार कर देतीं तो अच्छा होता।'

'नहीं विलेकिंस—तुम नहीं जानती कि मैं मर जाऊँगी तो इस दुनिया में कोई कमी नहीं आयेगी और जीती भी रहूँगी तो संसार का कुछ बनने वाला नहीं है। फिर भी मानवीय सिद्धान्तों की हत्या का बोझ लेकर मेरी आत्मा को युगों-युगों तक भटकना पड़ता।'

मानवीय आदर्शों के प्रति इतनी निष्ठा रखने वाली मिस कैवेल को उनके ३० अन्य साथियों के साथ गोली मार दी गयी। परन्तु कैवेल मरी नहीं, सदा के लिए अमर हो गयी।

इस अमरता की राह पर कैवेल ने बचपन से ही चरण बढ़ाये थे। उनका जन्म इंग्लैण्ड के एक गरीब धर्मनिष्ठ परिवार में हुआ था। आर्थिक स्थिति अति सामान्य होते हुए भी कैवेल के माता-पिता घर पर आये याचकों तथा सहाय्य दशा के व्यक्तियों को कभी निराश नहीं करते थे। बच्चे तो माँ-बाप की प्रतिकृति होते ही हैं। सेवा और सत्साहस के संस्कार बचपन से ही पड़ने लगे।

अपनी मम्मी और डैडी की देखा-देखी कैवेल भी बाइबल तथा अन्य ईसाई धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन करने लगी। सामान्य जनों की सुख-शान्ति के लिए ईसा का आत्मबलिदान वाला प्रकरण उन्हें विशेष रूप से प्रिय लगता था। वह अकेले में सोचा करती—काश! मुझे भी अपने आदर्श का अनुसरण करने का अवसर मिले।

शिक्षा समाप्त करने के बाद उन्होंने एक सम्पन्न परिवार में गवर्नेस की नौकरी कर ली। बच्चों की आँखों और उनकी आकृतियों में उन्हें ईसा की प्रतिच्छाया दिखाई दी। ऐसे ही सादे, सरल और सौम्य जीवन का उपदेश तो देते थे उनके जीवनादर्श।

सन् १८९५ में उनके पिता अधिक बीमार हो गये। बचने की कोई आशा नहीं दिखाई दी। अन्त समय में मिलने के लिए उन्होंने अपनी बेटी को पुकारा। कैवेल आयी और बड़े भाव भरे हृदय से बोली—'नहीं पिताजी अभी आपको तो काफी समय जीना है।'

हृदय की भावनाओं से निकले उद्‌गार रोगी पर अपेक्षित प्रभाव डालते हैं और उसे जीवन के प्रति आशावान बना देते हैं। आशा और विश्वास की शक्ति तो रुग्ण व्यक्ति को मृत्यु के मुँह में से खींच निकाल लाती है। बेटी के शब्दों ने ऐसा कुछ जादू किया कि पिता अपने जीवन के प्रति विश्वासी बन गये, साथ ही कैवेल की। विश्वास और सेवा की गुणकारी औषधियों ने उनके पिता को कुछ ही समय में निरोग कर दिया।

पिता के ठीक हो जाने के बाद मिस कैवेल को पुन: काम तलाश करने की आवश्यकता अनुभव हुई। रोगी बाप की सेवा-सुश्रूषा ने कैवेल को इस तथ्य से अवगत करा दिया था कि सद्‌व्यवहार और हार्दिकता से आधी बीमारी दूर हो जाती है। अब उन्होंने एक अध्यापिका की अपेक्षा परिचारिका बनना अधिक अच्छा समझा।

जिन्हें सेवा की प्यास लगती है, वे उसे बुझाने के लिए तत्पर होते ही हैं। एडिथ कैवेल अपनी इस प्यास को बुझाने के लिए—'नर्सिंग स्कूल' में भर्ती हो गयी। लगन और निष्ठापूर्वक अध्ययन कर कैबेल कुछ ही समय में अपने कार्य में पूर्ण निष्णात हो गयीं। उनको मेडस्टोन के हॉस्पीटल में भेजा गया। उस नगर में तब टाईफाइड फैला हुआ था। घर-घर जाकर कैवेल ने रोगियों की बड़ी तन्मयता से सेवा-सुश्रूषा की। अन्य सहयोगियों के साथ तत्परतापूर्वक काम करने से इस महामारी पर शीघ्र ही काबू पा लिया गया।

सेवा-साधना के अनुकरणीय प्रयास साधक को अयाचित ही ख्याति और प्रसिद्धि दिलवा देते हैं। सो कैबेल को भी वह मिली। देशभर में उनकी सराहना हुई। ठीक हुए रोगी उन्हें प्राणदायी देवी तथा नागरिक सेवाभावी आदर्श, महिला के रूप में पूजने लगे। उनके विभाग ने भी उन्हें पदोन्नत कर दिया और वे मैट्रन बना दी गयीं।

सन् १९०७ में उन्हें ब्रसेल्स बुलाया गया। दूर होने के कारण वहाँ कोई भी नर्स जाने के लिए तैयार नहीं

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होती थी। वहाँ नर्सों का अभाव था। अस्पताल का प्रख्यात चिकित्सक एण्टोनी-डीवेज एथिड कैवेल से पहले ही परिचित था। डीवेज का विश्वास था कि वे अकेली ही कई नर्सों का काम सँभाल लेंगीं और साथ ही वहीं की निवासी महिलाओं में से ही अनेक कुशल परिचारिकायें तैयार कर लेंगी।

दूर हो या पास सच्चे जनसेवक अपनी आवश्यकता कहाँ अधिक है ? इसी आधार पर कार्य क्षेत्र चुनते हैं। इंग्लैण्ड में तो पर्याप्त नर्सें थीं। यद्यपि ख्याति और सफलता सर्वाधिक कैवेल को ही मिल रही थी। परन्तु उन्हें प्रसिद्ध और सिद्धि का मोह नहीं, सैन्य और आवश्यकता का ध्यान था। इसलिए उन्होंने एण्टोनी डीवेज का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और ब्रूसेल्स आ गयीं। वहाँ आते ही उन्होंने नयी नर्सों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की। इस बात का भी ध्यान रखा कि अस्पताल तथा प्राइवेट घरों में भी नर्सों का उचित सम्मान और समानता का व्यवहार किया जाये।

सेवा की मुँह से सराहना, प्रशंसा करते हुए भी सेवक के प्रति सर्व साधारण कुछ निम्न स्तर का दृष्टिकोण अपनाते हैं। निसन्देह इसका कारण मन में बैठने वाली वह कुत्सित धारणा है, जो सेवित को सेवक के प्रति गिरा हुआ विचार अपनाने के लिए बाध्य करती है। कैवेल ने इस कुत्सित धारणा के सामाजिक निराकरण हेतु प्रशिक्षण शिविर लगाना आरम्भ किये। लोगों को यह समझाया कि सेवा-भावना की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए परिचारिकाओं से समुचित व्यवहार करना चाहिए। उन्हें अपने समान न समझकर दुर्व्यवहार करना किसी भी प्रकार उचित नहीं है।

उनके प्रयासों के फलस्वरूप ही ब्रूसेल्स के नागरिक नर्सों को अपने साथ बिठाकर खाना खाने लगे और बराबरी का दर्जा देना शुरू किया।

परिचर्या जगत् में इतना सराहनीय कार्य करते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए कृत संकल्प कैवेल १२ अगस्त, १९१५ को गोली से उड़ा दी गयी। वह दिन इतिहास के काले पृष्ठों पर ही अंकित हुआ है। जब मनुष्यों द्वारा किसी मनुष्य को मानवीय मूल्यों का निर्वाह करने के लिए मौत के घाट उतारा गया हो।

मरते समय कैवेल ने मुख पर एक अपूर्व शान्ति थी। उन्हें सन्तोष था कि बचपन में वे जो स्वप्न देखा करती थीं। ईसा के समान कष्ट-पीड़ितों के लिए बलिदान हो जाने का—वह पूरा हो गया।

जमीला—जिन्दाबाद

'जमीला जिन्दाबाद'—अलजीरिया का एक राष्ट्रीय नारा है। इस नारे में इतना जादू है कि कान में पड़ते ही अलजीरियावासी नई जिन्दगी के साथ खड़े होकर राष्ट्रीय हितों के लिये जूझ पड़ते हैं। इस नारे ने अलजीरिया के स्वाधीनता-संग्राम में देश-भक्त बलिदानियों की सेनायें खड़ी कर दीं। जो अलजीरियावासी फ्रांस की दासता में अपमानित जीवन बिताते थे और स्वाधीनता का स्वप्न भी न देखते थे, वे इस नारे की प्रेरणा से उठ खड़े हुये और फ्रांसीसी दासता की जड़ें हिला दीं।

जमीला, जिसके नाम पर यह नारा लगाया जाता है न तो कोई देवी है और न दैवी शक्ति। यह हाड़-माँस की बनी मानवी का नाम है, जो कि अपनी देश-भक्ति और बलिदानपूर्ण कार्यों से राष्ट्र की प्रेरणाप्रद देवी बन गई है। मनुष्य का तप, त्याग और बलिदान जो किसी सद्हेतु सत्कर्म के लिये किया गया हो, उसे देवता बना ही देता है।

इस नाम के साथ एक विलक्षणता यह है कि यह संयोगवश एक ही नाम अलजीरिया की तीन देश-भक्त महिलाओं का था, जिन्होंने देश की स्वाधीनता के लिये जीवन भर काम किया और असहनीय यातनायें सहीं। इनके कामों ने अलजीरिया ही नहीं संसार के सारे लोगों का यह भ्रम दूर कर दिया कि नारियाँ घर-गृहस्थी का काम और बच्चे पैदा करने के सिवाय कोई बड़ा साहसपूर्ण काम नहीं कर सकतीं। इन तीन जमीलाओं ने अलजीरिया के नारी समाज में जो जागरण पैदा किया, वह तो किया ही, वहाँ के आलसी, विलासी और दुर्भाग्य को परमात्मा की इच्छा मानकर चलने वाले युवकों में पुरुषार्थ तथा बलिदान की आग लगा दी।

इस जमीला-त्रयी का साहस, कार्य, दृढ़ता और बलिदान देखकर कायर लोगों में भी वीरता की लहर दौड़ गई और वे भी देशहित में आ-आकर मैदान में डटने लगे। आनन्द, विलास, भोग और प्रमाद से ग्रस्त नवयवुकों ने जब इन जमीलाओं के कार्य देखे, भावनायें समझीं और गाथायें सुनीं तो उनकी आँखों पर से मोह का परदा हट गया और उन्होंने जीवन की सार्थकता समझी। निरर्थक विषयों से हट-हट कर सैकड़ों नवयुवक खुशी-खुशी बलिदेवी पर आने और हँसते-हँसते स्वर्ग जाने लगे। जिसका फल यह हुआ कि फ्रांस द्वारा पद-दलित-अलजीरिया स्वाभिमानपूर्वक उठकर खड़ा हो गया। फ्रांस को उसके हितों के साथ समझौता करना पड़ा।

पहली जमीला की गाथा यह है कि जब देश में स्वतन्त्रता-संग्राम छेड़ने के लिये क्रान्तिकारी-दल का संगठन हुआ, तो उसने उसकी सदस्यता के लिये प्रार्थना की। घर वालों ने जो आपत्ति की वह तो की ही, क्रान्तिकारी संगठन ने भी उपहास किया और कहा—"तुम नारी हो। तुम्हारा काम और तुम्हारा क्षेत्र तो घर की चहार दीवारी तक ही सीमित है। शस्त्र-क्रांति में भाग ले सकना तुम्हारे वश की बात नहीं है। घर बैठो और बच्चे पैदा करके उनका पालन करो।"

जमीला को नारीत्व की यह अवमानना देखकर बड़ा खेद हुआ। उसने कहा "नारी सब कुछ कर सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अब चूँकि समाज के पुरुष वर्ग ने उसे घर की चहार दीवारी और बच्चों तक सीमित कर रखा है, इसलिये वह अपनी विशेषताओं को प्रकट नहीं कर पाती। नारी देशहित में कुछ काम कर सकती है या नहीं, यह तो उसे अवसर देकर ही जाना जा सकता है। प्रयोग के लिये मुझे अवसर दीजिये और देखिये कि मैं नारी के प्रति आप लोगों की यह भ्रान्त धारणा दूर कर देती हूँ या नहीं ?'' और वास्तव में उसने अपने इस कथन एवं उत्साह को चरितार्थ कर दिखाया।

जमीला ने क्रान्तिकारी-दल की सदस्या बनकर जिस साहस और शौर्य का परिचय दिया, उसको देखकर लोगों का विश्वास नारी की क्षमताओं के प्रति बढ़ गया। जमीला ने क्रान्तिकारी दल के कार्य एवं संगठन को आगे बढ़ाया और आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाये।

जमीला को गिरफ्तार करने के लिये फ्रांस की पुलिस बहुत समय से सक्रिय थी। जब उसने उसे गिरफ्तार कर लिया तो यही समझा कि मानो उसने पूरे क्रांतिकारी दल को ही पकड़ लिया। दरअसल जमीला अपने साहस, शौर्य तथा विश्वसनीय कार्यों द्वारा दल की प्रधान कार्यकर्ता बन गई थी। दल के सदस्यों की सूची, उनके पते, दल की योजनायें, संगठन, केन्द्र तथा अन्य बहुत-से रहस्य उसके पास थे। पुलिस को विश्वास था कि थोड़ी-सी सख्ती करने पर ही यह दुर्बल नारी सारे रहस्य बतला देगी। किन्तु उसका यह विश्वास मिथ्या सिद्ध हुआ। पुलिस ने उसके रहस्य जानने के लिये साम, दाम, भय, दण्ड, विभेद की सारी नीतियाँ प्रयोग कर डालीं, पर वह अपने मन्तव्य में सफल न हो सकी।

इस असफलता से निराश होकर उसने अत्याचार का मार्ग अपनाया और इतनी भयंकर यातनायें दीं कि जिनको देखकर शैतान का भी सिर लज्जा से नीचा हो जाता। उसको कोड़े मारे गये, अंग-अंग छेद डाला गया, भूखा-प्यासा रखा गया। किन्तु जमीला एक वज्र नारी थी, उसने कोई भी रहस्य पुलिस को नहीं बतलाया निदान यह तय किया गया कि उसे फ्रांस ले जाकर फाँसी दे दी जाय। फ्रांस सरकार का यह निर्णय एक अमानवीय विचार था। इसने न केवल अलजीरिया में ही ज्वाला धधका दी अपितु सारे संसार का जनमत क्षुब्ध कर दिया। फ्रांस पर चारों ओर से धिक्कार आने लगा, जिससे डरकर जमीला की फाँसी की सजा आजन्म कारावास में बदल दी गई।

दूसरी जमीला एक बाइस वर्ष की तरुणा थी। उसका परिवार भी देश-भक्त था। विदेशी सरकार ने उस पर अत्याचार किया। यह तरुणी उसे सहन न कर सकी और जीवन के सारे सुख छोड़कर क्रांति कार्यों में यह कहकर उतर पड़ी, जो सरकार देश-भक्ति को अपराध कहती है, उस सरकार को रहना ही नहीं चाहिये। जब एक जमीला इस प्रकार देश की सेवा में अपना बलिदान दे सकती है, तो मैं क्यों नही ? इस प्रकार दूसरी जमीला ने पहली जमीला का आदर्श सामने रखकर उसके कार्य का आगे बढ़ाया और देश में एक हलचल मचा दी। विदेशी सरकार की पुलिस सक्रिय हो उठी और बड़े भारी संघर्ष के बाद उसे गिरफ्तार कर सकी। फिर वही, रहस्य जानने का क्रम और अत्याचार चल पड़ा। यह जमीला तो उस पहली जमीला से भी कष्ट सहने में आगे निकल गई। इस २० वर्ष की सुकुमार नारी को आतताइयों ने इतनी यंत्रणा दी कि बेचारी का अंग-अंग बेकार हो गया और उसे जो सजा सुनाई गई थी, वह उसने जेल के बजाय अस्पताल में काटी।

तीसरी जमीला की आयु अभी केवल बीस वर्ष की ही थी। जीवन-क्षेत्र में हरियाली अभी आई ही थी, यौवन के स्वप्नों का रंग गहरा हो रहा था। वह देवी देश की स्वाधीनता के लिये क्रांति के भयानक तथा कष्टप्रद पथ पर आ गई। लोगों ने उसे उसके सुन्दर और सुकुमार आयु का वास्ता दिया। किन्तु उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं इस मिट्टी के शरीर को मातृ-भूमि पर बलिदान कर, इसका सबसे सार्थक मूल्य प्राप्त करूँगी।

तीसरी जमीला ने न केवल क्रांतिकारियों में ही भाग लिया बल्कि उसने देश में नारी-जागरण तथा नारी संगठन का कार्यक्रम भी चलाया। इससे अलजीरिया का प्रस्तुत नारी वर्ग जाग-जाग कर स्वाधीनता-संग्राम में आने लगा। फ्रांसीसी सरकार ने इस सबसे छोटी जमीला को सबसे ज्यादा खतरनाक समझा और पकड़कर जनमत के विरुद्ध भी फाँसी दे देने का निश्चय कर लिया। किन्तु वह अपने उद्देश्य में सफल न हो सकी। परम्परा से तीनों जमीलाओं ने देश में इतनी जागृत कर दी थी कि फ्रांस सरकार को अलजीरिया के देश भक्तों से समझौता करने पर विवश होना पड़ा।

इन्हीं तीन नारियों के बलिदान, साहस और प्रयत्नों के मूल्यांकन स्वरूप 'जमीला जिन्दाबाद' अलजीरिया का राष्ट्रीय नारा बन गया।

मानवता एवं राष्ट्र-प्रेमी—

कु. मार्था

युद्ध में मात्र युद्धरत देशों के सैनिक ही नही मारे जाते, अपरिमित धन ही विनाश कार्य में नहीं लगता जिससे कि इस सृष्टि को और भी सुन्दर बनाया जा सकना संभव था, वरन् जन जीवन भी त्रस्त और व्यथित हो उठता है। युद्ध ही इतना भयंकर होता है तो फिर महायुद्ध की तो कल्पना ही सिहरा देने वाली होती है। वस्तुतः यह युद्ध की प्रवृत्ति मनुष्य के जंगलीपन का व्यवहार है। फिर भी मनुष्य इस जंगलीपन से बाज नहीं आता, युद्ध बन्द नहीं हुए हैं। पिछले महायुद्धों की स्मृतियाँ धुँधली नहीं पड़ी हैं और न भावी महायुद्ध की आशंकाएँ ही समाप्त हुई हैं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रथम महायुद्ध के पीछे जर्मनी के राष्ट्र नायक की संकीर्ण विचारधारा और घृणित महत्वाकांक्षाओं का ही हाथ था। उसने सारे संसार को संकट में डाल दिया था। उसके इन घृणित इरादों को धूल में मिलाने में कॉलेज की एक छात्रा ने जो महत्वपूर्ण योगदान दिया वह एक प्रेरक सत्यकथा बनकर रह गया है। यह छात्रा थी बेल्जियम के उजबेक नगरवासिनी कुमारी मार्था। मार्था ने न केवल कैसर के नापाक इरादों से प्रेरित जर्मन सेना के विरुद्ध गुप्तचर का काम करके लन्दन नगर को बचाया, उनकी भयंकर चालों को असफल बनाया वरन् उसके युद्ध के कारण मानवता के शरीर पर लगे घावों की सेवा द्वारा मरहम पट्टी भी की थी।

मार्था ने अभी जीवन के कुल अठारह बसंत देखे थे कि उन्हें भयंकर पतझड़ से सामना करना पड़ा। अभी वह मेडिकल कॉलेज में पढ़ ही रही थी। श्वेत परिधान पहने, गले में स्टेथिस्कोप लटकाये अपने भावी जीवन की उमंगों में भरी वह कॉलेज जाया करती थी। तभी उसके देश पर विनाश के बादल मँड़रा आये। २ अगस्त १९१४ को जर्मन सेनाओं ने उसके देश बेल्जियम पर धावा बोल दिया। बेल्जियम की सेना को पीछे हटना पड़ा, जर्मन सेनाएँ आगे बढ़ती गयीं। अपने देश की रक्षा के लिए मार्था के चारों भाई सेना में भर्ती हो गये।

बेल्जियम के अजेय दुर्ग, लीज और लाजूर भी जर्मन सेना के अधिकार में आ गए। अब तक मार्था का अपना नगर जर्मनों के हाथ में नहीं आया था फिर भी वह भावी के लिए अपने आप को तैयार कर चुकी थी। उसके नगर से युद्ध पीड़ित शरणार्थियों के काफ़िले गुजरते तो उसकी भीतरी करुणा उसे रुला देती।

अब तो अंग्रेज व फ्रांसीसी सेना भी बेल्जियम की सहायता के लिए आ पहुँची थीं। उनके सैनिकों ने उजबेक नगर के सुदृढ़ भवनों में अपनी मोर्चाबन्दी की थी। उन्हीं मकानों में मार्था का एक पैतृक मकान भी था। इतना सब होने पर भी उजबेक को बचाया नहीं जा सका। उस पर जर्मन सेना का अधिकार हो गया। परिवार वालों पर संकट आ उपस्थित हुआ, उन्हें पकड़कर बन्दी बना लिया गया। सभी कैदियों को अज्ञात स्थान पर भेज दिया गया। महिलाओं को मकानों में बकरियो की तरह ठूँस दिया गया। मार्था को इस बन्दीजीवन से मुक्ति मिली नर्स की वृत्ति अपनाकर। मार्था को जर्मन सेनाधिकारियों ने नगर के अस्पताल में नियुक्त कर दिया।

थोड़े ही समय में उसका स्थानान्तर रुला नगर के चिकित्सालय में हो गया। इस युद्धजनक दुरावस्था से उसका हृदय बहुत व्यथित था। युद्ध को रोकना तो उसके हाथ में नहीं था पर वह युद्ध की भयंकरता को अपनी सीमित सामर्थ्य से कुछ कम तो कर ही सकती थी। उसे अपना कर्तव्य दिखाई दिया रोगियों और घायलों की पूरी निष्ठा से सेवा करना। उसने थोड़े ही समय में अपनी कार्य कुशलता, सुन्दर व्यवहार, सेवा आदि से एक ओर जहाँ जर्मन अधिकारियों का विश्वास प्राप्त कर लिया वहीं अपने देशवासियों की सेवा करके अपने कर्तव्य का पालन भी किया। रोगियों में वह लिटिल मदर के नाम से विख्यात हो गयीं।

युद्ध अपनी जगह है तो सेवा अपनी जगह। मानवता और दानवता के इस संघर्ष में मार्था ने मानवता का पक्ष लिया था। वह दिन-रात पीड़ितों-घायलों की सेवा में लगी रहती थी। कौन बेल्जियमवासी है और कौन जर्मन, इस भेद को उन्होंने भुला दिया। वस्तुत: वे सभी मानव थे, जो संकुचित राष्ट्रवाद का शिकार होकर एक-दूसरे के जान के ग्राहक बने हुए थे। घृणा को प्रेम से ही जीता जा सकता है—यह सोचकर उन्होंने जर्मन सैनिकों से घृणा करना छोड़ दिया। उसे घृणा थी जर्मन राष्ट्र नायक के संकुचित राष्ट्रवाद से जिसके कारण जर्मन सेना के भी कितने ही सैनिक मृत्यु के ग्रास हो रहे थे, कितने ही घायल हो रहे थे, कितने ही अपाहिज हो रहे थे ? मानवता की इसी पीड़ा को हरने के लिए वह अहर्निश सेवा में जुटी रहीं।

इन्हीं दिनों उसे अपने सहपाठी का एक गुप्त संदेश मिला। उस संदेश के अनुसार वह निश्चित स्थल पर पहुँची। सहपाठी ने प्रस्ताव रखा कि उसे ब्रिटिश-गुप्तचर विभाग में सम्मिलित होकर अपने देश को जर्मन आक्रमणकारियों से बचाने का उद्योग करना चाहिए। मार्था उससे सहमत हो गई। उसने सोचा कि जर्मन सेनाधिकारियों का उसे जो विश्वास प्राप्त हो चुका है उससे वह निश्चय ही लाभ उठा सकती है। वह ब्रिटिश गुप्तचर विभाग में सम्मिलित हो गईं। दल में उसका अपना नया नाम रखा गया। अन्य आवश्यक जानकारियाँ भी उसे दे दी गयीं।

काम बड़ी जोखिम का था किन्तु वह अपने देश की स्वाधीनता और विश्व शान्ति की सुरक्षा के लिए बड़ी जोखिम उठाने को तैयार थी। एक दिन उसे अपने विभाग की ओर से सूचना मिली कि इस नगर में सशस्त्रों व गोला-बारूद का विशाल भण्डार संचित होता जा रहा है। आवक जारी है। इसका पता लगाना चाहिए ताकि उसे रोकने की कार्यवाही की जा सके।

मार्था ने बड़ी चतुराई से गोला-बारूद की स्पेशल ट्रेन आने का पता घायल सैनिकों को लाने के लिए जा रही एम्बुलेंस के साथ रेलवे स्टेशन जाने पर लगा लिया। इस बात की सूचना उसने गुप्त रूप से अपने दल को दे दी। इस विभाग ने उस स्पेशल ट्रेन को ही उड़ा दिया जो गोला-बारूद लेकर आ रही थी।

मार्था के इस आचरण को क्या विश्वासघात कहा जा सकता है ? नहीं, क्योंकि कभी-कभी सत्य बोलना भी हानिकारक हो सकता है। इसकी अपेक्षा चुप रहना भी श्रेयस्कर हो सकता है। विवेक का प्रयोग मनुष्य को हर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समय करना पड़ता है। यहाँ यदि मार्था यह सोचकर रह जाती है कि उसे जर्मन सैनिकों व सेनाधिकारियों के विश्वास की रक्षा करना चाहिए तो यह अनुचित बात होती।

जहाँ सेवा का प्रश्न था वह बेल्जियमवासियों और जर्मन सैनिकों में कोई भेद नहीं करती थी। पीड़ितों की सेवा करना तो मानव धर्म है पर जो लोग अन्याय और अनीति के पक्ष में हैं, उनके साथ वैसा ही व्यवहार तो नहीं किया जा सकता, जो न्याय और नीति के पक्षधरों के साथ किया जाता है।

एक दिन उसके पास ब्रिटिश-गुप्तचर विभाग से सूचना आयी कि रदाबुक नगर में एक ऐसा गुप्त टेलीफोन केन्द्र है, जहाँ पर उनके दल का कोई भेड़िया सारी खबरें भेज देता है। उस केन्द्र को समाप्त करना है। इस विषय में पता लगाना चाहिए।

रदाबुक उसके नगर से बीस किलोमीटर दूर था। वहाँ जाना बड़े खतरे का काम था। मार्था ने उन खतरों को मोल लेते हुए, अपने प्राणों पर खेलकर इस कार्य को पूरा किया। इसके लिए उसे हजार झूठ बोलने पड़े, कितने ही वेश बदलने पड़े, एक आदमी को बुरी आहत भी करना पड़ा पर उसने अपने इस राष्ट्रहित के कार्य को पूरा कर दिखाया।

यह कार्य पूरा करके जब पुनः अपनी ड्यूटी पर आयी तो उसका हृदय धक्-धक् कर रहा था। यदि इस बात का पता जर्मन सेनाधिकारियों व गुप्तचरों को लग गया तो निश्चित रूप से उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा पर वैसा हुआ नहीं। अपने डेरे पर लौटने पर उसे जो शत्रु संदेश मिला वह यह था कि जर्मन सम्राट ने उसे चिकित्सा क्षेत्र में सर्वोच्च सम्मान 'आयरन क्रास' से सम्मानित किया है। इस सम्मान की प्राप्ति से उसे कोई विशेष प्रसन्नता नहीं हुई। उसने सम्मान की गरज से सेवा नहीं की थी। सेवा का पुरस्कार तो उसे आत्म संतोष के रूप में मिल चुका था। आयरन क्रास उसकी उस मानवीय भावना का यथार्थ पारितोषिक भी नहीं था, जो उससे बिना थके, बिना रुके अठारह-अठारह घण्टे घायलों का उपचार करवाता था, सेवा करवाता था।

मार्था का सबसे बड़ा कार्य लंदन नगर को राख होने से बचाना था। जर्मनी कोई ऐसा आविष्कार कर रहा था, जिससे उसकी विजय हो सकने की संभावनाएँ बलवती हो सकती थीं। इस सम्बन्ध में उसके जासूसों ने प्राणों की परवाह नहीं करके जानकारियाँ जुटाईं। उन्हीं जानकारियों व पूर्व सूचनाओं के आधार पर लन्दन नगर की रक्षा और जर्मनी द्वारा आविष्कृत नये जेप्लिन यानों की सीमा पर ही समाप्ति सम्भव हो सकी थी।

रुला नगर के बाहर स्थित जर्मनी के बारूद-गोदाम को उड़ाने के लिए मार्था ने अपने एक साहसी साथी के साथ नगर की उन भूमिगत गुप्त सुरंगों में, जहाँ साँप-बिच्छू जैसे कई विषैले जन्तुओं ने डेरा जमा रखा था, प्रवेश किया और गोदाम में डायनामाइट रखने का दुःसाहसिक कार्य भी पूरा किया। गोदाम उड़ा दिया गया पर इस बार वह जर्मन गुप्तचरों से बच न सकी। उसकी नाम खुदी हुई घड़ी, जो सुरंग में गिर गयी थी उन्हें मिल गयी। इस छोटे-से सूत्र के सहारे वे उसकी सारी कार्यवाहियों का पता चलाने में सफल हो गये। उसे मृत्यु दण्ड देने का निर्णय दिया गया पर उसकी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए उसे आजन्म कारावास में बदल दिया गया। उसे जेल में डाल दिया गया। प्रथम विश्व युद्ध में जर्मनी की पराजय होने के साथ ही बेल्जियम से उनका आधिपत्य समाप्त हुआ। मार्था को जेल से मुक्ति भी मिली और राष्ट्रीय सम्मान भी मिला। मार्था का यह अनुकरणीय सेवा और साहसपूर्ण कार्य नवयुवकों के लिए प्रेरणा का प्रकाशदीप का कार्य करेगा।

अजेय लाइना—
जिसे कोई हरा न सका

राष्ट्रों का इतिहास बलिदानियों के बलिदान से लिखा जाता है। बलिदान भी अनेक प्रकार के होते हैं। कुछ कार्य करते हुए बलिदान होते है, कुछ रक्षा करते हुए। परन्तु कुछ बलिदान अनोखे होते हैं। वे केवल भावना जगाने के लिए किए जाते हैं। अपने देश में स्वतन्त्रता आन्दोलन में सरदार भगतसिंह का बलिदान भी इसी स्तर का था। सामान्य बुद्धि से ऐसे बलिदानों का मर्म समझ में नहीं आता। किन्तु ऐसा एक-एक बलिदान अन्य अनेक बलिदानों से अधिक मूल्यवान होता है, क्योंकि वह बलिदान एक ओर बलिदानियों को पैदा करता है तो दूसरी ओर सामने वाले का मनोबल झकझोर कर रख देता है। 'अबीसीनिया' की बालिका लाइना का नाम भी ऐसे बलिदानियों में अग्रणी रहेगा।

घटना सन् १९०४ की है। इटली तथा अबीसीनिया के बीच युद्ध चल रहा था। आमने-सामने के युद्धों में कई प्रकार के नियमों तथा युद्ध की पैंतरेबाजी का उपयोग किया जाता था। दो दिन से युद्ध बन्द होने से अबीसीनिया की सेना एक शहर में डेरा डाले थी। तभी सूचना मिली कि इटली की सेना आक्रमण हेतु बढ़ती हुई शहर के निकट आ चुकी है। सेनानायक ने स्थिति परखी तथा मुकाबले की तैयारी का पूरा समय न देखकर, परिस्थितियों के अनुसार सेना सहित सभी नगरवासियों को एक गुप्त स्थान पर छिप जाने का आदेश दिया गया। संकेत होते ही बात की बात में सारा शहर खाली हो गया। सब देखभाल करके अबीसीनिया का सेनानायक भी अपने प्रमुख व्यक्तियों के साथ चलने को उद्यत हुआ। किन्तु उसकी लड़की 'लाइना' एक समस्या बन गयी। वह किसी भी प्रकार नगर छोड़ने को तैयार नहीं थी। उसका कहना था कि अपनी प्यारी मातृभूमि को छोड़कर कायरों की तरह क्यों भागूँ ?

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पिता ने समझाया कि यह कायरता नहीं, सामयिक व्यवस्था है। वैसे तो अबीसीनिया का हर नागरिक एक-एक बूँद रक्त रहते शत्रु से लोहा लेगा। किन्तु लाइना न मानी, बोली—"यदि यही ठीक है तो भी शत्रु को कुछ नमूना तो मिलना ही चाहिए अबीसीनिया की भावना का। वे भी क्या सोचेंगे कि इतने बड़े शहर में कोई भी न मिला ?"

कठोर परीक्षा थी, पुत्री नमूना बनने की जिद पर थी। तेरह वर्ष की बालिका की दानवी प्रकृति के शत्रु के सन्मुख अकेली-असहाय छोड़ी जाने की कल्पना और यदि इसका मन काँप गया तो सबको प्राणों का संकट ? किन्तु पिता को झुकना पड़ा, बालिका की बात न टाली जा सकी। सेनानायक ने पुत्री को आशीर्वाद दिया। कर्तव्य की कठोरता समझाई और हृदय पर पत्थर रखकर विदा हुआ। लाइना रह गयी एकाकी ? नहीं ! उसका मनोबल तथा राष्ट्र-प्रेम उसके साथ था।

इटली की सेना को नगर में सर्वत्र सन्नाटा मिला। उनका सरदार तलाशकर रहा था कि कोई सूत्र यदि मिल जाता तो · · · · · · । तभी लाइना का समाचार मिला। एक लड़की, वह भी मात्र १३ वर्ष की ? सरदार प्रसन्न हो गया—"अब तो सब सूचना मिल जावेगी।" किन्तु उस बेचारे को ज्ञान नहीं था कि बच्ची उसकी सारी शक्ति से अधिक भारी पड़ जावेगी।

नगरवासियों तथा सेना के छिपने के स्थान का पता लाइना से पूछा गया। सरदार ने फुसलाने का प्रयास किया, फिर धमकाया भी। किन्तु स्पष्ट 'नहीं' के अतिरिक्त कुछ न मिला। उसने सोचा छोकरी कुछ जिद्दी है, थोड़ी कड़ाई से काबू में आवेगी। उसने भरपूर सैनिक हाथ का तमाचा जड़ दिया सुकुमार लड़की के मुँह पर। मुँह से खून बह निकला किन्तु लड़की मुस्करा दी। जैसे कह रही हो बस ! इतना ही जोर है हाथों में ? इटली का सरदार उबल पड़ा, बोला—"मूर्ख लड़की मेरे प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर दे अन्यथा परिणाम बुरा होगा।" लड़की ने उसके आतंक से अप्रभावित रहकर ही नहीं, उसे चुनौती भी देते हुए कहा—"सरदार साहब, यहाँ मैं आपके द्वारा सम्मान पाने की आशा से नहीं रुकी हूँ। आपकी बुराई से अपनी निष्ठा तौलना चाहती हूँ, निकलने दीजिए अपनी बुराई।"

कैसा अनोखा दृश्य था ? एक ओर शस्त्र सज्जित सेना साथ लिए खड़ा हुआ दैत्याकार सरदार और दूसरी ओर निहत्थी, अकेली, अबोध बालिका। किन्तु जिन्हें ईश्वरीय विभूतियों का ज्ञान है, वे जानते हैं कि एक श्रेष्ठ विभूति अगणित आसुरी शक्तियों को जीत सकती है। बालिका की चुनौती से सरदार तिलमिला गया और नृशंस क्रूर प्रयोगों तथा निष्ठा का सीधा युद्ध छिड़ गया। बालिका के हाथ-पैर कुचले गए। उसे कमर तक जमीन में गाड़कर कोड़े लगाये गए, पर जैसे लड़की के शरीर में वेदना का भाव ही नहीं था। सरदार की खीझ बढ़ती गयी। राक्षसी हुक्म हुआ—"इसके स्तन काट दो।" निष्ठुर हाथों ने आज्ञा पालन किया। सरदार ने शैतानी आँखों से देखा उसकी ओर जैसे पूछ रहा हो—"अब कैसा लगा, बोल" और लाइना बोली जैसे सरदार के मुँह पर थप्पड़ मारा हो—"धन्यवाद ! किसी कामी पुरुष की वासना पूर्ति के साधन स्वरूप घृणित अंगों से मुक्त दिलाने के लिए।"

सरदार पुनः चोट खा गया। पीड़ा देने के तरीके आगे बढ़े। संगीनें चुभोई जाने लगीं, खाल खींची जाने लगी। बेचारी सुकुमारी लाड़-प्यार में पली बालिका जोर से दाँत से दाँत सटाये पीड़ा सह रही थी। सरदार की आँखें चमकीं, बोला—"अब तो निकालेगी जीभ · · · · · · या नहीं।" उत्तर में बालिका ने जेब से चाकू निकालकर जीभ काटकर उसके सामने फेंक दी। सरदार सहित सारे दर्शक सिपाही सन्न रह गए। अब पूछने का कोई तरीका नहीं था। उन्होंने अपनी करारी हार को जघन्य कृत्यों द्वारा हल्का करना चाहा। लाइना के शरीर को बूटों से रौंद डाला गया।

किन्तु लाइना की भावना वायुमण्डल में मिल गयी और उनके सरों पर भी भूत की तरह छा गयी। इटली के हर सैनिक का मनोबल गिर गया। सारी फौज को एक नादान लड़की ने असमर्थ सिद्ध कर दिया था। इतनी दुर्धर्ष जाति से कैसे पार पाया जावेगा ? अबीसीनिया वासियों ने सुना तो उनके हौसले चौगुने हो गए। लाइना ने जो उदाहरण प्रस्तुत किया था उससे घटकर दिखलाना कोई नहीं चाहता था। लाइना के बलिदान की इससे अधिक और क्या सर्थकता हो सकती थी ? जिस जाति में तथा राष्ट्र में ऐसे बलिदानी हों, वहाँ असाधारण प्रगति संभव हो सकती है।

यूडोसिया—जिसने कर्त्तव्य को प्रेम से बढ़कर माना

दमिश्क के बहुत अमीर घराने की लड़की होने पर भी यूडोसिया का अत्यन्त निर्धन घर के जोनास से प्रेम हो ही गया। उन दोनों का प्रेम दिन-दिन बढ़ता हुआ अटूट चट्टान की तरह दृढ़ हो गया। वे दोनों एक-दूसरे पर जान देने लगे।

जोनास की गरीब माँ जब अपनी हड्डियाँ घिसते-घिसते असार संसार से विदा हो गई, तो उसने दामिश्क की शाहीफौज में नौकरी कर ली और माह मे एक दिन की छुट्टी लेकर यूडोसिया से मिलने आता।

जोनास और यूडोसिया का यह प्रेम व्यापार चल ही रहा था कि ईरान की फौज ने दमिश्क को घेर लिया।

जोनास इसकी सूचना लेकर एक दिन छुट्टी से पहले ही यूडोसिया के पास पहुँचा। यूडोसिया उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

असमय आया देखकर बड़ी चंचल हो गई। जोनास ने यूडोसिया को ईरानी आक्रमण की बात बतलाई और साथ भाग चलने की कहा।

जोनास की बात सुनकर यूडोसिया की आँखें लज्जा से नीची हो गईं। उसने कहा जोनास ! क्या हमारी मोहब्बत का यही मतलब है कि हम लोग चोरों की तरह खानदान को दाग देकर भाग चलें।

जोनास बोला एक आध दिन में ही ईरानी फौज दमिश्क को बरबाद कर देंगी। उसकी तलवार से न कोई कुनवा बचेगा और न खानदान। अगर हम लोग यहाँ से अभी भाग चलें तो दो दिन बाद हमें कोई याद करने वाला ही नहीं रहेगा और हम लोग कहीं दूर अपनी मोहब्बत के दिन काटेंगे।

यूडोसिया ने और भी दुःख भरे स्वर में कहा, जोनास ! तुम मुल्क के सिपाही होकर मुल्क की बरबादी पर वासना का सुख लेना चाहते हो। यह बात तुम्हारे मुँह से अच्छी नहीं लगती। जाओ, मुल्क की शान में अपना फर्ज पूरा करो, यहाँ न सही हम लोग बहिश्त में खुदा के सामने एक-दूसरे को पा लेंगे।

लेकिन जोनास पर इन शब्दों का कोई असर न हुआ। वह बोला मैं चोरी से शाही खेमे से भागकर आया हूँ। मेरा वहाँ जाना खतरे से खाली नहीं है। तुम मेरी बात मानकर मेरे साथ भाग चलो। मैं सिर्फ तुम्हारी खातिर जान को खतरे में डालकर आया हूँ।

यूडोसिया ने कहा—जोनास ! मुझे अपने रूप पर शर्म आती है, जिसने तुम्हें अपने फर्ज से गिरा दिया है। तुम जैसे हो फौज में लौट जाओ। खुदा तुम्हारी मदद करेगा।

जोनास ने बहुत कुछ समझाया लेकिन यूडोसिया भागने को तैयार न हुई। मजबूर होकर जोनास वहाँ से सैनिक शिविर की ओर चिन्तित होकर चल दिया। एक बार अपने कर्त्तव्य से गिर जाने के कारण उसका मस्तिष्क उसकी बुराइयों से खाली न हुआ। वह बराबर सोचता जा रहा था कि अगर मैं चोरी से खेमे जाता देख लिया गया तो तोप से उड़ा दिया जाऊँगा, फिर मैं यूडोसिया से इस जिन्दगी में नहीं मिल सकूँगा।

सहसा उसके दिमाग में एक विचार कौंध गया और जैसे सोते से जाग उठा। उसने मन ही मन कहा कि जब बहुत कुछ लड़ाई करने पर भी दमिश्क ईरानियों से अपनी हिफाजत न कर सकेगा, तो फिर क्यों न ईरानियों से मिलकर खुद जिन्दा रहूँ और इसी जिन्दगी में अपनी प्यारी यूडोसिया को पालूँ ? अगर मैं ईरानियों से मिल जाऊँ तो कत्लेआम से अपनी यूडोसिया और उसके खानदान को भी बचा सकता हूँ और तब वे लोग उसकी शादी मेरे साथ कर देने में कोई एतराज न करेंगे।

अपने प्रेम के पागलपन में जोनास अपने सैनिक शिविर में न जाकर ईरानियों के खेमों की ओर वह चल दिया।

खेमों की सीमा में पहुँचते ही वह प्रहरियों द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। जोनास ने उनसे कहा कि मुझे अपने सरदार के पास ले चलो, मैं उन्हें दमिश्क जीतने के कुछ आसान तरीके बतलाना चाहता हूँ।

प्रहरी उसे सेनापति के सामने ले गये और जोनास का मन्तव्य बतला दिया। सरदार ने उसे बड़े गौर से देखा और मन ही मन कहा यह कोई कौमी गद्दार है। फिर सोचा कि किसी मुल्क को जीतने और हमेशा के लिए बरबाद कर देने में ऐसे ही गद्दारों से काफी मदद मिलती है। अच्छा हुआ जो यह आप चला आया। इसकी मदद से हम बिना अपना नुकसान किये दमिश्क को बड़ी आसानी से अपने कब्जे में कर लेंगे।

सरदार ने जोनास को उसका मन्तव्य प्रकट करने का आदेश दिया। जोनास बोला मुझे दमिश्क के ऐसे छिपे रास्ते मालूम हैं, जिनसे ईरानी फौज राजधानी में घुसकर शहर पर बिना लड़े कब्जा कर सकती है। वह रास्ते मैं खुद चलकर दिखला दूँगा। लेकिन इसके लिये आपको मेरी एक शर्त पूरी करनी होगी। उसने यूडोसिया से प्रेम की बात सरदार को कह सुनाई।

सरदार ने कहा नौजवान अगर तुमने हमको बिना लड़ाई दमिश्क पर कब्जा कर लेने में मदद की तो हम वायदा करते हैं कि यूडोसिया से तुम्हारी शादी जरूर करा देंगे और उसके खानदान को पनाह बख्श देंगे।

दूसरे दिन जोनास की रहनमाई में ईरानी फौज गुप्त मार्गों से दमिश्क में दाखिल हो गई और शहर पर अनायास कब्जा कर लिया। शाही खानदान को गिरफ्तार करके कत्ल कर दिया गया और किले पर ईरानी झण्डा फहरा दिया गया।

पूरे शहर में एक साथ रक्तपात और लूटमार शुरू हो गई। प्रजा में हाहाकार मच गया। कोई देखने, सुनने और बचाने वाला न था। ईरानियों के जुल्म से सारे शहर में हाहाकार मच गया।

यूडोसिया किसी समय की आपत्ति की प्रतीक्षा कर रही थी किन्तु जब उसने देखा कि ईरानी लूटमार करते हुये इधर-उधर से आते-जाते बीच में उसका घर छोड़ देते हैं तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह समझ न सकी कि मेरे आलीशान घर और अमीर खानदान को ईरानी दरिन्दे नजरअन्दाज क्यों कर रहे हैं ? वह समझ रही थी शायद उसके खानदान पर खासतौर पर जुल्म करने के लिये अभी छोड़ा जा रहा है। साथ ही उसे जोनास की याद हो आई न जाने उसका क्या हुआ होगा ? ईरानियों ने उसे कैद करके न जाने क्या गत बनाई होगी ? वह जोनास के विषय में तरह-तरह की कल्पनायें करके रो उठी और परमात्मा से उसकी कुशल मनाने लगी।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तभी ड्योढ़ी से खबर आई कि एक ईरानी सरदार कुछ सिपाहियों के साथ दरवाजे पर खड़ा अन्दर आने और यूडोसिया से मिलने की इजाजत माँग रहा है। यूडोसिया को यह सुनकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि विजयी ईरानी सरदार आने और मिलने की इजाजत माँग रहा है, अजीब बात है। वह माजरा देखने के लिये खुद ड्योढ़ी पर दौड़कर पहुँची।

वहाँ जोनास को खड़े देखकर हर्ष-विभोर होकर उससे लिपट जाने के लिये दौड़ पड़ी। जोनास ने भी बाहें फैला दी। लेकिन पास पहुँचते ही वह एक दम ठिठक गई। उसने देखा जोनास ईरानी लिवास में था।

यूडोसिया को ठिठककर खड़े हो जाते देखकर जोनास ने कहा—"क्यों यूडोसिया रुक क्यों गईं ? आगे बढ़कर मेरी बाहों में आ जाओ।" यूडोसिया कुछ बोल न सकी, विस्मय-विस्फारित नेत्रों से मूर्तिवत् उसे देखती ही रही।

जोनास ने फिर पूछा—"यूडोसिया क्या देख रही हो ?" बड़ी मुश्किल से उसके कण्ठ से आवाज निकली "जोनास तुम ईरानी सिपाही के लिवास में किसलिये ?"

जोनास ने उत्तर दिया यह सब तुम्हें पाने के लिये।

जोनास की बात सुनकर यूडोसिया के चेहरे पर एक घृणा का भाव उभर आया। उसने कहा उफ ! जोनास तुमने मुल्क के साथ गद्दारी की है। खुदा तुमको माफ न करेगा और मुझे भी इस बात की सजा देगा कि मैंने तुम जैसे गद्दार से मुहब्बत की है। इतना कहकर यूडोसिया फफक-फफक कर रोने लगी।

जोनास ने उसे चुपाने का प्रयत्न करते हुये कहा—यूडोसिया मैंने जो कुछ अच्छा-बुरा किया सब तुम्हें पाने और तुम्हारा खानदान बचाने के लिये किया है। अगर मैं ऐसा न करता तो दमिश्क की फौज तो यों भी हार जाती लेकिन मैं न तुम्हारा खानदान बचा पाता और न तुमको पा सकता। मैं तुम्हारे बिना जिन्दा न रह सकता था।

यूडोसिया ने बड़ी घृणा से कहा—एक कुत्ते की जिन्दगी जीकर तुमने क्या बड़ी बात कर ली ? तुम कहते हो कि अगर तुम गद्दारी नहीं करते तो भी दमिश्क की फौज हार जाती, ठीक है तब दमिश्क के बहादुर सिपाही दुश्मनों पर अपना हौंसला निकालकर ही तो काम आते। दुनिया यह तो न कहती कि यूडोसिया को एक ऐसे गद्दार से मोहब्बत थी, जिसने मुल्क को दुश्मन के हवाले करके कौम को गुलाम बना दिया। जहाँ तक मुझे पाने का सवाल है तुम मुझे अब भी नहीं पा सकते। शहर में होते हुये बेगुनाह लोगों को क़त्ल और औरतों की लुटती आबरू के बीच मुझे पाकर तुम्हें क्या खुशी होगी। इतना कहकर यूडोसिया फिर रोने लगी।

जोनास बेताब होकर कहता हुआ बढ़ा ! यूडोसिया मैं तुम्हें दुनिया की हर चीज से ज्यादा प्यार करता हूँ। मैं तुम्हारे बिना जी नहीं सकता।

यूडोसिया दूर हटकर बोली—जानती हूँ मेरी मौहब्बत और खूबसूरती ने तुम्हें इस हद तक गिरा दिया है। इसलिये इस दुनिया में तुम्हें रहने का कोई हक नहीं है।

इतना कहकर यूडोसिया ने एक पैना छुरा कपड़ों से निकालकर उसके सीने में भोंक दिया और तत्क्षण ही उसी छुरे को अपनी छाती में भी भोंक लिया और जमीन पर गिर गई।

सौराष्ट्र की लोकोपकारिणी सन्त महिलायें

भारतवर्ष की आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में पुरुषों के समान स्त्रियों का भी पूर्ण अधिकार माना गया है। वैदिक-काल से ही यहाँ की स्त्रियों के सब प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों और क्रियाकाण्डों में प्रमुख रूप से भाग लेने, शास्त्रों के अध्ययन और मनन में संलग्न रहने, ऊँची से ऊँची साधना और उपासना करने के उदाहरण मिलते हैं। यह सत्य है कि स्त्री का प्रधान कार्य-क्षेत्र गृहस्थी ही मानी गयी है, पर वह भी धर्म-विधान का एक अंग है। गृहस्थ आश्रम के पश्चात् पत्नी भी पति के साथ वानप्रस्थ आश्रम में रहकर ईश्वराराधना करती थी और उसके संन्यासी हो जाने पर वह भी उसी प्रकार का त्यागमय जीवन व्यतीत करती थी। इस प्रकार धार्मिक दृष्टि से इस देश की स्त्रियों का दर्जा कभी हीन अथवा निकृष्ट नहीं समझा गया।

यद्यपि मुसलमानी शासन काल में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत अरक्षित हो जाने से उनकी स्वाधीनता का अनेक अंशों में ह्रास हो गया था और घर के भीतर बन्द रहने के कारण वे सार्वजनिक जीवन से बहुत कुछ पृथक् हो गई थीं, फिर भी प्राचीन परम्परा के प्रभाव से कितनी ही आत्मज्ञानी महिलायें घर और परिवार के संकीर्ण क्षेत्र से आगे बढ़कर लोकोपकार और सेवा के क्षेत्र में भाग लेती रही हैं। यहाँ हम पाठकों को सौराष्ट्र की ऐसी ही कुछ महिला-सन्तों की जीवन गाथा सुनाना चाहते हैं।

(१) सन्त लोयण

सौराष्ट्र के महिला सन्त मण्डल में लोयण सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध है। उनका जन्म चौदहवीं शताब्दी में खंभालिया गाँव के एक पाँचाल (लुहार) के घर में हुआ था। उसके माता-पिता का देहान्त उसकी बाल्यावस्था में ही हो गया, जिससे उसे आरम्भ से ही स्वतन्त्र रहकर जीवन व्यतीत करना पड़ा। वह अत्यन्त रूपवती थी, जिससे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आस-पास के अनेक व्यक्तियों का ध्यान उसकी तरफ आकर्षित होता रहता था, पर उसके स्वच्छ, हार्दिक भाव और निर्भयता के कारण किसी का साहस उससे अनुचित व्यवहार या वार्तालाप करने का नहीं होता था। वैसे वह लाखा नाम के एक अहीर युवक को, जो उसी के समान स्वरूपवान और वीर पुरुष था, हृदय से प्रेम करती थी, पर उन दोनों ने यह निश्चय कर लिया था कि जब तक प्रत्यक्ष रूप से विवाह सम्बन्ध न हो जाय, तब तक शारीरिक सम्बन्ध कदापि नहीं करेंगे।

पर इन दोनों के विवाह में एक बड़ी बाधा जातिवाद की थी। दो भिन्न जातियों के होने के कारण वे अपने घर और गाँव में रहकर ऐसा सम्बन्ध नहीं कर सकते थे। लोयण तो अपने घर में अकेली थी, पर लाखा का परिवार बड़ा था और अपनी जाति में उसका काफी नाम था। यदि वह जाति-प्रथा को तोड़कर इस विवाह को कर लेता तो उसे जातिच्युत होकर रहना पड़ता। इससे बचने का अगर कोई उपाय था, तो यही कि लाखा अपनी जाति के सब व्यक्तियों को दण्ड के रूप में एक बड़ा भोज दे और उनसे इस विवाह की स्वीकृति ले ले। इस कार्य में बहुत अधिक धन व्यय करने की आवश्यकता थी और एक दिन लाखा इसी धन की व्यवस्था करने परदेश को चला गया।

इधर कुछ समय पश्चात् सेलसणी नाम के एक सन्त गाँव में पधारे, जो वेदान्त सिद्धान्त का प्रचार करके हिन्दू-समाज की भेदभाव की भावना को मिटाने का प्रयत्न करते थे। लोयण ने उनके उपदेशों को सुना तो उसके भीतर आत्म-भाव जाग्रत हो गया और वह उनकी शिष्या होकर समाज-सेवा के कार्य में प्रवृत्त हो गयी। वह बड़ा सुन्दर गाती थी और अब भावयुक्त भजन भी बनाने लग गई थी, इसलिए थोड़े ही समय में जनता की आदर और श्रद्धा की पात्र बन गई।

जब लाखा लौटकर आया और उसने विवाह का प्रस्ताव किया तो लोयण ने स्पष्ट कह दिया कि "मैं तुमको प्रेम अवश्य करती हूँ, पर अब मैं भगवत-कार्य को छोड़कर सांसारिक विवाह-बन्धन में नहीं बँध सकती। अगर तुमको आवश्यकता हो तो अपनी जाति की अन्य कन्या से विवाह करलो।" जब बहुत समझाने पर भी लोयण न झुकी तो लाखा बल प्रयोग करने पर उतारू हुआ, पर उसकी आत्म-शक्ति के सम्मुख उसकी वीरता की कुछ न चल सकी।

इस घटना के पश्चात् लाखा को कुष्ठ रोग हो गया और वह संताप के कारण घर के भीतर ही पड़ा रहने लगा। लोयण अब भी उसके पास आकर उसे सान्त्वना देती रहती थी। बारह वर्ष बाद वे ही महात्मा पुनः खम्भालिया पधारे। लोयण ने उनसे लाखा की दुर्दशा की बात कहकर उसका कष्ट मिटाने की प्रार्थना की। सन्त के आदेश से लोयण ने लाखा की देह के स्पर्श किया, जिससे उसका रोग जाता रहा। फिर लोयण और लाखा दोनों आजीवन पीड़ित जनता की सेवा में ही लगे रहे।

(२) रामबाई

रामबाई बांटा बन्दर निवासी माणसुर पटेल की पुत्री थी। उसका घर धन-जन से सम्पन्न था और उसका लालन-पालन सब प्रकार से सुख में हुआ था। पर उसमें किसी प्रकार का अहंकार न था और वह स्वभाव से ही दीन-दुःखियों के प्रति दया का व्यवहार किया करती थी।

संवत् १८६९ में सौराष्ट्र में भयंकर अकाल पड़ा। अनावृष्टि, अतिवृष्टि, पाला, टीड्डी आदि किसी न किसी कारण से फसल खराब होती चली गई। उधर राज्यों की अव्यवस्था के कारण डाकू, लुटेरों का जोर बढ़ गया और हजारों गाँव उजाड़ हो गये। इसके फल से लाखों व्यक्ति भूख और रोग के शिकार होकर काल के गाल में समा गये। इस प्रकार मरने वालों के अनेक छोटे-छोटे बालक अनाथ होकर इधर-उधर मारे-मारे फिरने लगे। जब इस प्रकार के दस-बीस बालकों का समूह किसी गाँव में जा पहुँचता तो वहाँ के निवासी उनको मार-मारकर निकाल देते। लोगों के पास अपने खाने को ही नहीं था, इन अकाल के मारों को खाने के लिए कौन देता ?

जिस दिन रामबाई गौना होकर अपनी ससुराल जाने वाली थी, उस दिन उसके गाँव में अकस्मात् ऐसे ही बालकों का एक झुण्ड आ गया। गाँव के युवक उनको मार-मार कर भगा रहे थे और वे गरीब 'हाय मा, हाय बाप' कहते हुए इधर-उधर दौड़ रहे थे। कई के सिर और हाथ-पैरों से खून भी निकल रहा था। रामबाई ने कुँये पर पानी भरते हुए जो यह दृश्य देखा तो उससे न रहा गया और वह दौड़कर उन अनाथ बालकों तथा मारने वाले युवकों के बीच में खड़ी हो गयी और डाँटकर बोली-"खबरदार, अब जो इन मरे हुओं को मारने के लिए हाथ उठाया। ऐसे बिना माँ-बाप के जीते जागते फूलों को कुचलते हुए तुमको शरम नहीं आती।" इसके पश्चात् वह उन बालकों को लेकर गाँव में गई और अपने पिता-माता तथा ससुराल वालों से, जो उसे लेने आये थे, कहा कि "मुझसे इन अनाथों की दुर्दशा नहीं देखी जाती। इस तरह से सैकड़ों बालक हर रोज मारे-मारे फिर रहे हैं और उनमें से नित्य दस-बीस मर जाते हैं। भगवान की प्रेरणा से मैंने सर्वस्व त्यागकर इन अनाथों के साथ रहकर उनकी रक्षा और सेवा करने का निश्चय कर लिया है। आप मुझे विवाह-बन्धन से मुक्त करके इस पुण्य-कार्य में लगने की आज्ञा दें।" सगे सम्बन्धियों ने उसे रोकने की बहुत चेष्टा की पर वह उसी समय उन सब बालकों को लेकर गाँव से निकल पड़ी। रास्ते में उसको हर जगह ऐसे ही बालक मिलते चले गये और शाम तक उनकी संख्या सौ से ऊपर पहुँच गयी।

रामबाई इन बालकों को लेकर भजन गाती हुई घर-घर उनके लिए भिक्षा माँगने लगी। जब लोगों को उसके त्याग की बात मालूम हुई तो वे मुक्तहस्त होकर सहायता करने लगे। तीन-चार दिन पश्चात् वह बावणिया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बन्दर में पहुँच गई जहाँ कि एक बड़ी मण्डी थी। जब वहाँ के बड़े व्यापारियों को खबर मिली कि एक युवती अहीर कन्या भूखे मरते हुए बच्चों की 'अनाथ-माता' बन गयी है, तो वे उसकी सहायता के लिए ढेरों अन्न, वस्त्र भेजने लगे। कुछ ही समय में रामबाई का अनाथ-आश्रम बनकर तैयार हो गया और उसमें गरीबों के लिए सदाव्रत स्थापित करा दिया गया। रामबाई की कीर्ति सौराष्ट्र से बढ़कर दूर-दूर के स्थानों तक फैल गयी।

एक दिन कोई साधू आश्रम में आकर ठहरा और लोगों के कहने पर भी उसने भोजन नहीं किया। रामबाई ने उससे प्रार्थना की कि महाराज ! यह आश्रम केवल सेवा-भावना से ही स्थापित किया गया है। इसमें मेरा कुछ नहीं है, जो कुछ है वह दीन-दुःखी और सन्त महात्माओं के लिए ही है। इसलिए जो कुछ आप चाहें ले सकते हैं। साधू ने जब अपनी असद् भावना प्रकट की तो रामबाई ने उसे भगवान की लीला समझकर स्वीकार कर लिया। पर जब वह साधू एकान्त में रामबाई के पास पहुँचा तो उसने देखा कि पलंग पर एक सिंहनी बैठी हुई है। वह भय के मारे चिल्लाकर बेसुध हो गया। बाद में रामबाई को माता कहकर और उससे बारम्बार क्षमा माँग कर वह चला गया। इस प्रकार आजन्म दीनों की सेवा करती हुई रामबाई संवत् १९३४ में परलोकगामी हुई। उसका आश्रम अब भी सेवा-कार्य का स्थल बना हुआ है।

(३) तोरल

सौराष्ट्र के लोक गीतों में तोरल-जेसल का बड़ा नाम है। इस तोरल का विवाह सासतिया नामक क्षत्रिय युवक से हुआ था, जिसके पास इसी नगर की एक घोड़ी और एक तलवार थी। ये दोनों पति-पत्नी सच्चे ईश्वरभक्त और परोपकारी थे और पवित्र जीवन व्यतीत करते थे। उस समय कच्छ के अंजार स्थान में जेसल नामक एक क्षत्रिय युवक लूटमार का धंधा करता था। वह बड़ा ही साहसी और वीर था और सब लोग उसके नाम से दहशत खाते रहते थे। जब जेसल ने सासतिया की 'तीन तोरलों' की प्रशंसा सुनी तो वह उनको छीनने के लिये उसके गाँव में आ पहुँचा। सन्ध्या के समय जब घर के सब लोग अन्य साधकों के साथ भगवत् कीर्तन कर रहे थे, जेसल सासतिया की घुड़साल में घुस गया। तोरल घोड़ी उसे देख हिनहिनाने लगी, जिससे वह घास के ढेर के नीचे छिप गया। जब तोरल घोड़ी को देखने वहाँ आई तो उसने घोड़ी को बाँधने के लिए उसी स्थान पर एक कील गाढ़ दी, जहाँ जेसल छुपा हुआ था। संयोग से वह जेसल की हथेली के आरपार हो गयी, पर उसने मुँह से एक आह तक नहीं निकाली। कुछ देर बाद सासतिया भी भीतर गया और उसका पैर जेसल से टकरा गया। तब सब लोगों ने उसे बाहर निकाला। पकड़े जाने पर जेसल तनिक भी नहीं डरा और उसने कहा कि चाहे आज मैं तोरल को ले जाने में सफल न हो सकूँ पर मैं कभी न कभी उसे प्राप्त करके ही रहूँगा।

तोरल बहुत पहले से जेसल के लूटमार और जनता पर उसके आतंक के किस्सों को सुन चुकी थी। आज उसे इस स्थिति में अपने सम्मुख पाकर उसके मन में आया कि यदि किसी प्रकार इसको अनुचित मार्ग से हटाकर सुमार्ग पर लाया जा सके, तो सैकड़ों लोगों के जान-माल की रक्षा हो सकती है और इस प्रदेश की जनता इसके आतंक से छुटकारा पा सकती है। उसने अपनी मनोभावना सासतिया के सामने प्रकट की। वह भी भगवान का पक्का भक्त था। उसने जेसल से कह दिया कि यदि तुम्हारा ऐसा ही अटल निश्चय है, तो तुम खुशी से तीनों 'तोरलों' को ले जा सकते हो।

जब जेसल तोरल, को साथ लेकर अंजार जाने के लिए जहाज में सवार हुआ तो रास्ते में अकस्मात बड़ा तूफान आ गया, जिससे जहाज के डूबने का भय होने लगा। जेसल को तूफान से भयभीत होते देखकर तोरल ने कहा—"तुम तो इतने बड़े वीर हो, न मालूम कितने व्यक्तियों को तुमने लूट-मारकर मौत के घाट उतार दिया है, तो अब मौत को सामने देखकर क्यों डरते हो।" जेसल से कुछ उत्तर देते न बना। तब तोरल ने कहा कि तुम अब भी अपने पापों को स्वीकार करके उनका प्रायश्चित करने का निश्चय करो और भविष्य में किसी भी प्रकार का पाप न करने की प्रतिज्ञा करके भगवान से क्षमा माँगो तो रक्षा हो सकती है। जेसल के सच्चे हृदय से पश्चाताप करने पर तूफान सचमुच शान्त हो गया और जहाज किनारे पर लग गया।

इस घटना के फलस्वरूप जेसल का जीवन ही बदल गया। उसने तलवार फेंक दी, भाले को भूल गया और बन्दूक के दो टुकड़े कर दिये। तोरल के उपदेश से वह माला लेकर हरिनाम लेने लगा और पहले जिस प्रकार उसका समय लोगों को लूटने, मारने और सताने में जाता था, अब वह उसी प्रकार लोगों को सेवा और परोपकार में जीवन व्यतीत करनें लगा। तोरल ने सब प्रकार से परीक्षा लेकर उसके हृदय की सचाई और शुद्धता की जाँच करली और इस बात का विश्वास कर लिया कि अब उसका जीवन सर्वथा बदल गया है। एक आततायी और निर्दय व्यक्ति को परोपकारी सन्त के रूप में बदला हुआ देखकर उसने अपने यहाँ आने को सार्थक समझा। इसके पश्चात् उन दोनों ने संसार के मोह-माया का पूर्णतः त्याग करके अपना समस्त जीवन दीन-दुःखियों की सेवा और परोपकार में ही व्यतीत कर दिया।

अन्याय से लड़ने वाली—
मेरी स्पिरिडो नोवा

सन् १९०५ । रूस के जार का अन्याय अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। पाप का घड़ा लबालब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भर गया था। इस अन्याय के विरुद्ध सर उठाने वाले का सर काट दिया जाता था। विरोध करना फिर भी बन्द नहीं हुआ ।

तम्बोफ सूबे का गवर्नर लुजुनोवस्की इस अत्याचार में सबसे बढ़ा-चढ़ा था। लम्बे-चौड़े कज्जाक सिपाही बिगड़ैल घोड़े की तरह नर पशु बन चुके थे। वे जब चाहे जिसे गोली से उड़ा देते, चौराहे पर नंगा करके कोड़े लगवाते, जिसे चाहते उसे पकड़ लाते। लूट-मार तो इसका सामान्यक्रम हो चुका था, धन तो लूटते सो लूटते पर नारी जाति का सर्वस्व खुलेआम सड़कों पर लूटते थे।

कुछ युवक-युवतियाँ इस अन्याय का प्रतिकार करने के लिए एक गुप्त स्थान पर एकत्रित हुए। उन्होंने तय किंया कि इस दमन का उत्तर देना ही पड़ेगा। इस प्रकार की गई-गुजरी जिन्दगी से तो मृत्यु कई गुनी अच्छी है। इसका प्रतिकार सूबे के गवर्नर लुजुनोवस्की की हस्ती को सदा के लिए मिटा देना तय किया गया।

इस निश्चय को कार्य रूप में परिणित कौन करे? इस पर सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। गवर्नर की हत्या करना तो दूर उसकी ओर देखना भी कठिन था। सेना का इतना पहरा और अंगरक्षकों का जमघट उसके चारों ओर लगा रहता था कि उसे गोली का निशाना बनाना कठिन ही नहीं असम्भव था।

इस असम्भव काम को सम्भव करने के लिए एक २० वर्षीय युवती प्रस्तुत हुई। नाम था मेरी स्पिरिडोनोवा। अपने आपको इस कार्य के लिए प्रस्तुत करने वाली इस युवती को सब देखते ही रह गये।

सेना के जासूस सर्वत्र फैले थे। इसकी खबर गवर्नर तक पहुँच गई । वह और भी सतर्क हो गया। पुलिस सरगर्मी से मेरी की तलाश करने लगी। उसका हुलिया तक पुलिस के रजिस्टर में लिखा चुका था। पर मेरी इनके हाथ आने जैसी होती तो ऐसा कठिन काम अपने ऊपर लेती ही क्यों ? वह वेश बदलने में इतनी चतुर थी कि उसे तो क्या पुलिस उसकी छाया भी न पा सकी।

दुराचार का प्रतिकार करने वाले यदि इस प्रकार का साहस न करें, तो दुराचारी को खुलकर खेलने का अवसर मिलता है। नारी अपनी सेवा, ममता के कारण भले ही अन्याय सह ले पर सीमा हो जाने पर तो वह रणचण्डी, साक्षात् शक्ति बन जाती है।

पग-पग पर पकड़े जाने की आशंका, स्वयं की सामर्थ्य थोड़ी-सी, साधन केवल एक माउजर, प्रतिद्वन्द्वी रूस के एक प्रदेश का गवर्नर। यह बड़ा कड़ा मुकाबला था। एक साधारण युवती इतने बड़े साम्राज्य से टक्कर लेने जा रही थी। प्रतीक्षा करते-करते एक वर्ष हो गया पर वह निराश न हुई। अवसर की तलाश करती रही।

१६ जनवरी, १९०६ के दिन इस प्रतीक्षा का अन्त हुआ। लुजुनोवस्की उस दिन अपने सदल-बल ट्रेन से बोरी सोगिल ब्रूक जा रहा था। उसके साथ सेना की बहुत बड़ी टुकड़ी तथा चार बलिष्ठ अंगरक्षक थे। वह स्वयं भी पूरा दैत्य था।

बोरी सोगिल ब्रूक स्टेशन आते ही कज्जाक सिपाहियों ने लाठियों के प्रहार करके सारा प्लेटफार्म जन-शून्य कर दिया। उसे क्या पता था कि अगले ही कम्पार्टमेंट में मेरी स्पिरिडोनोवा छद्म वेश में अपनी माउजर छिपाए बैठी है। चारों अंगरक्षकों के बीच में गवर्नर ने बड़ी शान से प्लेटफार्म पर कदम रखा। थोड़ा चला ही था कि प्रलय उपस्थित हो गयी। धड़ाम ! धड़ाम! चार गोलियाँ चलीं, पहली गोली लुजुनोवस्की के सीने में लगी, शेरनी लपककर डिब्बे से यह देखने निकली कहीं शिकार बच तो नहीं गया। दैत्य धराशायी हो चुका था। पाँचवीं गोली स्वयं पर चलाने के लिए घोड़े पर हाथ रखा ही था कि कज्जाक सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया। मेरी की माउजर छीन ली और मार-मारकर अधमरा कर दिया।

गवर्नर मर चुका था। मेरी का काम पूरा हो गया। अब इसके शरीर को चाहे कितनी ही यातना दो, उससे क्या अन्तर पड़ने वाला था।

पुलिस ने अत्याचार संहिता के सारे मंत्र उस पर चलाए पर मेरी ने मुँह नहीं खोला। साथियों के नाम नहीं बताए। उसे नग्न करके बूटों से रोंदा गया, पतले कोड़े से मारा गया, गर्म सलाखों से दग्ध किया गया। पर वह दुःख झेलने को तैयार होकर आई थी। उसे खुशी थी कि उसने उन अन्यायों का बदला ले लिया है, जो नारी जाति के प्रति खुले चौराहों पर किया गया है।

चाहे उस देश का जीवन-दर्शन इस विषय पर मौन हो, भले ही मेरी इसे समझ न पाई हो पर उस सत्ता का अनुभव किया था, जो सुख-दुःख, जीवन-मरण जैसे शारीरिक विकारों से परे है। अन्धा चाहे उजली चाँदनी को न देख पाये पर वह जल की लहरों के स्पर्श से उसका अनुभव तो कर सकता है। मेरी स्पिरिडोनोवा उस आत्म तत्व की शक्ति से ही इतना सब सह सकी थी।

तम्बोफ की अदालत में जब उस पर अभियोग चलाया गया तब तक उसका शरीर केवल माँस और तुड़ी-मुड़ी हड्डियों का एक ढाँचा रह गया था। उसे क्षय हो गया था। खाँसते-खाँसते मुँह से खून पड़ने लगता था।

अपने बयान में उसने कहा—"जब अत्याचार यहाँ तक बढ़ गया, कि गरीब किसान पिटते-पिटते पागल होने लगे। शीलवती कन्याएँ आत्म हत्या करने लगीं। मेरे अन्दर से एक आवाज उठी "इसका प्रतिकार होना ही चाहिए।" तो मैंने निश्चय कर लिया कि लुजुनोवस्की अब संसार में रहने का हकदार नहीं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके इन बयानों को सुनकर न्यायकर्त्ता का अन्त:करण भी रो उठा पर वह अपने आप में इतना साहस न जुटा पाया कि जार की इच्छा के विपरीत न्याय देकर अपनी सुख-सुविधा पर लात मारे। समाज में जब तक अन्त:करण की आवाज, आत्मा की पुकार को इस तरह कुचला गया, उसकी अपेक्षा की गई अत्याचार प्रबल हुआ। जब थोड़े-से मनुष्यों ने इस आवाज पर अपने आप को न्यौछावर किया, वहीं अन्याय ने घुटने टेके हैं।

मेरी स्पिरिडोनोवा को फाँसी की सजा सुनाई गयी। बाद में जनता' के आग्रह पर वह आजन्म कैद में परिवर्तित कर दी गयी। मेरी को अपने जीवन में किसी बात का अफसोस रहा तो वह केवल यह कि वह पाँचवी गोली न चला सकी।

इसे साइबेरिया की जेल में भेजा गया, फिर वहाँ से अन्यत्र भेज दिया गया। मेरी इस प्रकार जेल काटने से दु:खी न हुई न घबरायी। जेल में भी वह हँसती रही। भयानक हँसी के इस विस्फोट से जार शासन ध्वस्त होकर ही रहा।

अन्याय के अन्धकार में जब भी जन-मानस दिग्भ्रमित होता है, मेरी का यह साहस एक प्रकाश देता है, जाग्रत आत्माएँ कुछ कर गुजरती हैं।

इलाहाबाद की शहीद अन्तिम सती— श्रीमती अलोपशंकरी

सती प्रथा की भयानक विभीषिका अपनी चरम सीमा पर पहुँची हुई थी। वह कुलीन विधवाओं के लिए अग्निदाह का निश्चित समय था। न जाने कितनी किशोर और तरुण बालिकाओं को विधवा होने पर उनके पति के शव के साथ जीवित चिता पर जलना पड़ रहा था। पति की स्वाभाविक मृत्यु पत्नी की अस्वाभाविक तथा यातनापूर्ण मृत्यु का कारण बनती थी। इस पैशाचिक प्रथा के विधान में गोद भरी माताओं के लिए भी जी सकने का अवसर नहीं था। माता को अपना हँसता-खेलता लाल विवश होकर किसी दूसरे को सौंपकर जिन्दा जल जाना होता था। समझदार बच्चे माँ-माँ चिल्लाते और चुप हो जाने के लिए दंड पाते रहते थे और अबोध शिशु अपने भविष्य और समाज के भीषण अत्याचार से अनिभज्ञ किसी दूसरे की गोद में किलकते और बाजों की आवाजों का शोर सुनकर उछलते रहते थे, जो उनकी निरपराध माता की घोषणा करते थे और जो इसलिए जोर-जोर से बजाये जाते थे कि जिनके भीषण स्वर में उस दग्ध की जाती हुई विधवा का क्रन्दन एवं रुदन की आवाज डूब जाये, किसी के कान में पड़कर हृदय में दैवी भाव, दया का जागरण न करने पावे। उफ ! कितनी भयानक क्रूरता थी, कितना निर्दय अन्याय और कितनी अमानवीय प्रथा थी।

भारत के उसी अन्धकार युग में अलोपशंकरी एक ऐसी सती हुई, जिसके शान्त एवं मर्मान्तक बलिदान ने उस पिशाचिनी प्रथा पर वज्रपात कर दिया। उसके बाद शीघ्र ही वह प्रथा कानून बन्द कर दी गयी और उसके बाद फिर किसी भी निरपराधिनी का हठात् आत्म-दाह नहीं करना पड़ा।

अलोपशंकरी का जन्म इलाहाबाद के एक प्रतिष्ठित वैश्य कुल में हुआ था। अलोपशंकरी दो बहिनें थीं। उसकी बड़ी बहिन उससे दो वर्ष बड़ी थी। उसकी आयु बीस वर्ष की थी। अभी विवाह हुए दो वर्ष भी न हुए थे कि अलोपशंकरी की बहिन विधवा हो गयी । वैधव्य के समय उसके गर्भ था।

अलोपशंकरी की बड़ी बहिन को शीघ्र ही अपने लाल का मुख देखने की साध थी। वह दिन-रात प्रसन्न थी, प्रफुल्ल रहती थी। माता-पिता अपनी बेटी को सौयदा देखकर फूले नहीं समाते थे। पति परिवार तो वधू पर बलिहारी हुआ रहता था। भावी जननी और उसके आस-पास का वातावरण बड़ा ही प्रफुल्ल था। किन्तु उन सभी की वह प्रसन्नता मूर्तिमान न हो पाई और अलोपशंकरी की वह बड़ी बहिन विधवा हो गयी। विधवा होते ही उस प्यारी बहू पर, जिसे देख-देख कर सब सिहाते थे, सभी की निर्मम दृष्टि पड़ने लगी। माता-पिता भी उसे तीखी दृष्टि से देखने लगे, जैसे प्राण का ग्राहक कसाई गाय को देखता है। पति के शव के साथ उस विधवा को भी जलाने की तैयारी होने लगी। धिक्कार है पिशाचिनी प्रथाओं को जो मनुष्य को मनुष्य न रखकर हिंसा-जन्तु के समान बना देती हैं। जिनके प्रभाव में मनुष्यों का विवेक नष्ट हो जाता है और वह उचित-अनुचित का निर्णय नहीं कर पाता। कल तक जो स्वजन-सम्बन्धी उस बिचारी को स्नेह तथा सौहार्द्र की दृष्टि से देखते थे, वे उसे आज मृत्यु की आँख से देखने लगे।

संगम के पास एक बड़ी-सी चिता बनाई गयी, उस पर मृत युवक का शव रख दिया गया था, किन्तु अभी आग नहीं लगाई गयी थी। उसकी विधवा की प्रतीक्षा की जा रही थी, तभी दूर पर स्त्रियों की एक भीड़ गाजे-बाजे के साथ आती दिखलाई दी। उसके बीच में एक २० वर्ष की वधू चली आ रही थी। उसने अपना सम्पूर्ण शृंगार किया हुआ था अच्छे-से अच्छे सुहाग वस्त्र पहन रखे थे। वह काफी सुन्दर और लावण्यमयी थी। उसकी चाल में मस्ती और मुख पर हास था, यही उस मृत की विधवा और अलोपशंकरी की बड़ी बहिन थी, जिसकी प्रतीक्षा की जा रही थी और जो पति के शव के साथ जलने के लिए आ अथवा लाई जा रही थी।

उसकी चाल में मस्ती और मुख पर आह्लाद था। प्रसन्नता के यह चिन्ह वास्तव में स्वाभाविक नहीं थे। ऐसा नहीं था कि वह नवोढ़ा नारी सती होने के गौरव से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उत्फुल्ल मस्ती के साथ मुस्काती चली आ रही हो। वास्तविकता यह थी कि उसे शराब पिलाई गयी थी, उसी के प्रभाव में वह आत्म-विस्मृत-सी उस प्रकार चली आ रही थी। सती होने की बात सुनकर और तैयारी देखकर वह तरुणी डर गई थी और आँसुओं तथा अन्य हाव-भावों से उस अकाल, अकारण तथा यातनापूर्ण मृत्यु से इन्कार प्रकट करने लगी थी। किसी कुलीन घर की बहू-बेटी पति की चिता में जलने से इन्कार करे, यह उस कुल के लिए अप्रतिष्ठा ही नहीं बल्कि कलंक की बात थी। इसलिए उसको उस भय से विरत करने के लिए शराब पिलाकर आत्म-विस्मृता बना दिया गया था। विधवा के साथ उसकी छोटी बहिन अलोपशंकरी भी थी। वह उसे बार-बार सँम्हालती और उस भयानक सती प्रथा की मारी नारी जाति के भाग्य पर अप्रकट आँसू बहाती चली आ रही थी क्योंकि किसी ऐसी विधवा के लिए आँसू गिराना सती प्रथा के विधान में न केवल अशुभ बल्कि अपराध भी माना जाता था। ऐसे अवसर पर तो सबको प्रसन्नता ही व्यक्त करनी होती थी।

वह मदविह्वला चिता पर चढ़ाई गयी और बलिपशु की तरह कसकर बाँध दी गयी। तभी चिता में आग लगा दी गयी और साथ ही घण्टे-घड़ियाल तथा ढोल ताशे बजाये जाने लगे। आग की लपटें बढ़कर उस असहाय के पास पहुँचने लगीं। तत्काल उसका नशा उड़ गया और वह आत्म-रक्षा के लिए छटपटाने और चीत्कार करने लगी। बाजों की आवाज और तेज कर दी गयी। कड़ाई के साथ बँधी होने पर भी विधवा इतनी जोर से छटपटाई कि बन्धनों के साथ चिता के नीचे पानी की एक कछार में गिर पड़ी। गिरते ही उसने शीघ्रता से बहुत-सा पानी पशु के समान मुँह से पी लिया। उसके कुटुम्बी पापिनी-पापिनी कहते हुए तत्काल बाँस-डंडे तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र लेकर उसे मारने तथा जबरदस्ती चिता में डालने के लिए दौड़ पड़े, तभी इलाहाबाद के जिला कलेक्टर ने जो कि उस कुप्रथा का प्रबन्ध करने आया था, सब को रोक दिया और कहा कि अब यह सती नहीं की जा सकती क्योंकि इसने पानी पी लिया है। ऐसा नियम था कि पति के मरने के बाद उसकी विधवा न कुछ खा और न पी सकती थी। यदि वह पानी तक पी लेती तो सती होने के अधिकार से वंचित कर दी जाती थी। सती प्रथा के पुरोहितों के पास इसका कोई उत्तर न था। लोगों को और तो कुछ करते नहीं बना, सब ऐसा कुकन्या को जन्म देने के लिए उसके माता-पिता को धिक्कारने लगे। उस कोलाहल के बीच प्रबन्ध करता हुआ वह अँग्रेज कलेक्टर बराबर यह सोचता रहा कि निश्चय ही यह तेतीस करोड़ जनसंख्या वाली हिन्दू जाति अपनी इस प्रकार की कुप्रथाओं के कारण ही पतन के गर्त में गिरी है। विद्या, बुद्धि तथा बल में बहुत कुछ होने पर भी इसकी गुलामी का कारण इस प्रकार की अविवेकपूर्ण कुप्रथायें तथा कुरीतियाँ ही हैं। खेद है कि यह अपना सुधार नहीं करती और दिन-दिन अधोगति को प्राप्त होती चली जा रही है। एक यही नहीं, अविवेकवती कुप्रथाओं से ग्रस्त किसी भी समाज का पतन अवश्यम्भावी है और जब तक इनका सुधार नहीं किया जाता कोई भी समाज ऊपर नहीं उठने पाता।

चिता जल गयी। अलोपशंकरी की विधवा बहिन ने जब यह देखा कि उसके न जलने से उसके माता-पिता का कुल कलंकित हो गया, तब वह जलाये जाने के लिए बार-बार आग्रह करने लगी। किन्तु कलेक्टर ने एक न मानी और उसे बिना जले ही वापस जाना पड़ा। वह घर तथा समाज से बहिष्कृत कर दी गयी। सरकार की ओर से उसकी पेन्शन बाँध दी गयी और जबलपुर में नर्मदा के किनारे उसके रहने के लिए एक झोंपड़ी बनवा दी गयी। जहाँ उसने अपना समाज बहिष्कृत जीवन बिताया होगा। अलोपशंकरी ने वह सब हृदयदाहक दृश्य देखा और न क्या-क्या सोचती घर वापस चली गयी ? उस दिन से उसका प्रतिष्ठित घराना लाँछित तथा तिरस्कृत जीवन बिताता हुआ निर्जीव के समान रहने लगा।

दैवयोग से, इस घटना के लगभग चार-पाँच महीने बाद अलोपशंकरी का पति परदेश में मर गया। वह भी विधवा हो गयी, उसकी आयु उस समय अठारह वर्ष की होगी। उसकी गोद में एक सुन्दर-सा नवजात शिशु था। उसके माता-पिता यह सोचकर जयादा पछाड़ खाने लगे कि कहीं अलोपशंकरी अपनी बड़ी बहिन का ही अनुकरण न करे। किन्तु उसने गम्भीरतापूर्वक स्वयं सती होने की स्वीकृति दे दी और मन ही मन कुल का कलंक तथा समाज की इस कुप्रथा को अपने दाहक बलिदान द्वारा जला डालने की प्रतिज्ञा कर ली। उसने प्रसन्नता से अपना सब शृँगार किया। सुहाग के कपड़े तथा गहने पहने, माँ बाप तथा भाभियों के साथ हँसती हुई चिता-स्थल पर जा पहुँची। उसने स्वयं चिता सजाई और सबके साथ उस कलेक्टर को विश्वास दिला दिया कि वह अपनी खुशी से सती हो रही है।

अनन्तर, उसने अपने नन्हें बालक को गोद में लेकर प्यार किया, जी भरकर बार-बार चूमा और बाद में बड़ी भाभी की गोद में देकर कहा—जा बेटा अब आज से यही तेरी माता है और भाभी इसे अपने बेटे की तरह ही पालकर किसी प्रकार जिला लेना और बड़े होने पर मेरी कथा सुनाकर कहना बेटा तेरी माँ जलने से पहले कह गई थी कि बड़े होकर समाज की कुप्रथाओं तथा कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष करना और जितना हो सके, अपने समाज का सुधार करते रहना। फिर अलोपशंकरी ने अपने एक-एक गहने उतारकर भाभियों को दे दिये और कहा—यदि मैं कुल का यह कलंक मिटाने और समाज की इस दाहक प्रथा के मिटाने के सच्चे भाव से और सच्चे, मन, वचन कर्म से संकल्पपूर्वक सती होती हूँ और यदि इस समय मेरी आत्मा में माता पार्वती का प्रकाश प्रतिबिम्ब होता हो, तो मेरे यह आभूषण मेरी भाभियों को अखण्ड सौभाग्यवती रखें। भगवान् उन्हें यह दिन न देखने दे।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अलोपशंकरी एक अलौकिक तेज से चिता पर चढ़ गई और आग लगाने के लिए कह दिया। चिता जलना आरम्भ हुई और अलोपशंकरी ने कमलासन से बैठकर प्रार्थना करना प्रारम्भ किया—यदि किसी का सच्चा बलिदान आगे चलकर वाँछित फल लाने वाला होता हो, यदि मन, वचन कर्म से एकनिष्ठ भावपूर्वक यज्ञ में दी हुई आहुति फलवती होती हो—तो मैं अपना यह पवित्र शरीर भगवान् हविवाहन को सहर्ष अर्पित करती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि वे सर्व ग्राहक और सर्वसाक्षी देवता मेरे शरीर के साथ समाज की इस अन्यायपूर्ण दाहक प्रथा को भी भस्म कर दें। मेरा बलिदान भारतीयों में ऐसी प्रेरणा भरे कि वे अपना सुधार करने के लिए अग्रसर हों और सारी कुरीतियों, कुप्रथाओं तथा अविवेकों को निकालकर उन्नति की ओर अभियान करें। आत्मा अमर है, मेरी यात्रा आनन्दमय है। इन अन्तिम शब्दों के साथ ही उस सती का शरीर हाहाकार के स्वर में हँसती हुई लपटों में अन्तर्हित हो गया।

अलोपशंकरी के सती होने से बाद शीघ्र ही राजा राममोहन राय जैसे सुधारकों के चले आ रहे प्रयास सफल हुए। समाज में सती प्रथा के विरुद्ध भयानक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ और यह कुप्रथा सरकारी कानून द्वारा सदा-सर्वदा के लिए बन्द कर दी गयी। लोगों का कहना है कि अलोपशंकरी के बाद इलाहाबाद में फिर किसी विधवा को सती प्रथा के अधीन जलने की आवश्यकता न पड़ी।

डॉ० आनन्दीबाई जोशी

आज महिलाओं का उच्च-शिक्षा प्राप्त करना तथा विदेशों में अध्ययन के लिए जाना कोई बहुत बड़ी बात नहीं मानी जाती। नारी शिक्षा का महत्त्व समाज बहुत अंशों में समझ गया है। भले ही सामान्य सामाजिक जीवन में नारी की शिक्षा में अपेक्षित विकास नहीं होने पाया है, फिर भी शिक्षा प्राप्त करने में समाज अब नारी के मार्ग में रोड़े नहीं अटकाता है। किन्तु आज से १०० वर्ष पूर्व नारी की स्थिति अपेक्षाकृत बड़ी दयनीय थी। किसी कुलीन स्त्री का उच्च-शिक्षा प्राप्त करना तो दूर घर के बाहर पैर रखना भी परम्परा के ठेकेदारों को सहन नहीं था। ऐसी सामाजिक परिस्थितियों में भी श्रीमती आनन्दी बाई जोशी ने अमेरिका से एम० डी० की उपाधि प्राप्त कर, नारी को केवल चौके-चूल्हे तथा प्रजनन की मशीन समझने वालों का मुँह बन्द कर दिया। ''नारी में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की क्षमता नहीं है'' ऐसा कहने वालों को क्रियात्मक उत्तर देकर नारी शिक्षा का भविष्य उज्ज्वल किया।

आनन्दी बाई का जन्म सन् १८६५ में कल्याण (बम्बई) में हुआ था। बचपन से ही उनमें प्रतिभा थी किन्तु तत्कालीन सामाजिक ढर्रे में जहाँ लड़की को गले का पत्थर समझकर किसी प्रकार पीछा छुड़ाने की जल्दी रहती थी, उसकी प्रतिभा तथा उसके सम्वर्धन की ओर किसका ध्यान जाता था ? आनन्दीबाई के प्रति अपने कर्त्तव्यों से उनके अभिभावकों ने सात वर्ष में ही मुक्ति पा ली। जब पढ़ने, हँसने, खेलने, शारीरिक एवं मानसिक विकास का समय आया, तब उसे गृहस्थी के भारी दबाब के नीचे घुटकर रह जाने को विवश किया गया।

किन्तु आनन्दीबाई के पति श्री गोपालराव स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने अपनी पत्नी को उसकी आयु के अनुरूप ही शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया। हमारा समाज तो स्त्री को दबाकर रखने में गौरव अनुभव करता है। १०० वर्ष पूर्व भला स्त्री शिक्षा की सुविधा वह कैसे देता ? अतः श्री गोपालराव ने आनन्दीबाई को एक ईसाई मिशनरी स्कूल में प्रवेश दिला दिया। घर पर भी पढ़ाई के लिए पर्याप्त उत्साह तथा दबाव दिया करते थे। फलतः आनन्दीबाई को अपनी शैक्षणिक योग्यता बढ़ाने का अवसर मिलता गया।

गोपालराव के इस गुण के अतिरिक्त उनमें भारी दोष भी थे। वह भयंकर क्रोधी, कटुभाषी तथा व्यवहार में क्रूर थे। साधारण-सी बात पर उबल पड़ना, कटु शब्दों के तीखे प्रहार से कोमल हृदय को जर्जर कर देना समय-वे-समय निर्दयतापूर्वक मारपीट कर बैठना जैसे उनका स्वभाव था। आनन्दीबाई चुपचाप बिना किसी विरोध और शिकायत के उनके दुर्व्यवहार को सहन करती रहती। कभी भी उसने उसके प्रति असंतोष पैदा नहीं होने दिया। अपने निर्माण की एक आवश्यक प्रक्रिया के रूप में वह उसे सहर्ष स्वीकार करती रही, किन्तु उसके कारण उसका विकास एकांगी हो गया।

आनन्दीबाई की शिक्षा-क्षेत्र की आश्चर्यजनक सफलताओं से प्रभावित उनके पति की इच्छा उसे विदेश भेजकर उच्च शिक्षा प्राप्त कराने की हुई। उसने इसके लिए एक ईसाई मिशनरी से पत्र व्यवहार किया। मिशनरियों द्वारा लोक-सेवा के नाम पर शिक्षा तथा चिकित्सा आदि के लिये सहयोग दिया जाता है। किन्तु भुक्त भोगी जानते हैं कि उनकी मानवता के नाम पर दी जाने वाली सहायता के पीछे ईसाई बनने की शर्त छिपी रहती है। थोड़ा आकर्षण देने के बाद वह व्यक्ति की मजबूरी का लाभ उठाकर अपनी मानसिक भ्रान्ति को संतुलित करने का प्रयास करते हैं। अपने धर्म के प्रति निष्ठावान पति-पत्नी ने इसी शर्त के कारण उनकी सहायता प्राप्त करने से इन्कार कर दिया।

किन्तु संसार में सच्चे लोक-सेवी भी हैं। श्रीमती कारपेण्टर नामक एक अमेरिका महिला ने आनन्दीबाई की प्रतिभा देखी तथा उस स्त्री-रत्न को सहयोग देना अपना कर्त्तव्य माना। उन्हीं की सहायता से आनन्दीबाई अमेरिका गई। वहाँ वह सन् १८८३ से १८८६ तक तीन वर्ष रहीं। इस अवधि में, २१ वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वहाँ एम० डी० की उपाधि प्राप्त कर विरोधियों को चकित तथा प्रशंसकों को हर्षित कर दिया। भारतीय महिला द्वारा विदेश जाकर डाक्टरेट की सम्मानित उपाधि प्राप्त करने की उन दिनों यह प्रथम घटना भी थी।

उक्त ऐतिहासिक सम्मान प्राप्त करके डॉ० आनन्दी बाई जोशी स्वदेश लौट आईं। किन्तु उनकी प्रतिभा का देश को अधिक लाभ न मिल सका, पति के क्रोधी स्वभाव व समाज के व्यंगों के बीच अत्यधिक शारीरिक व मानसिक श्रम के दबाव में उनका स्वास्थ्य पिस गया। ऐसे अविरल अथक श्रम करने वाले को स्नेह व सद्भावशील तथा स्वास्थ्य की देख-रेख रखने वाले सहयोगियों की आवश्यकता होती है। आनन्दीबाई को इसके विपरीत मिला भय एवं आतंक। अत: उनका शरीर अधिक दिनों उनका साथ न दे सका। अद्भुत प्रतिभा, साहस, सहनशीलता तथा परिश्रम की प्रतीक वह महिला श्रेष्ठ, अल्पायु में ही संसार से विदा हो गयी। उसने तो अपने कार्यों तथा उपलब्धियों से स्त्री समाज की प्रगति का मार्ग प्रशस्त कर ही दिया। समाज अपनी दुर्बुद्धि तथा अविवेक के दण्डस्वरूप उसकी प्रतिभाओं एवं योग्यताओं के लाभ से वंचित रह गया यह और बात है। आज भी ऐसे अगणित उदाहरण हैं, जिनमें पारिवारिक संकीर्णता के कारण अनेक प्रतिभावान् नारियों को अपने उत्कर्ष और समाज की महान् सेवा के अवसरों से वंचित रहना पड़ता है। न जाने यह स्थिति इस अभागे देश में कब तक बनी रहेगी।

परिश्रम की प्रतिमा—
श्रीमती राजकुमारी ठौलिया

सम्पन्नता और श्रम सामान्यत: एक-दूसरे के विरोधी हैं, किन्तु जिस भाग्यवान में यह दोनों मिल-जुलकर रहते हैं, उसका जीवन भूमि पर ही स्वर्गीय सुख-शांति प्राप्त कर लेता है। श्रीमती राजकुमारी ठौलिया उन बुद्धिमती महिलाओं में हैं, सम्पन्नता जिनकी विरासत और परिश्रम जिनकी अपनी निधि है।

सम्पन्नता बहुधा लोगों को आलसी, प्रमादी तथा दुर्गुणी बना देती है और शीघ्र ही व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन चौपट करके स्वयं भी चलती बनती है। किन्तु जो मनस्वी व्यक्ति इस तथ्य को समझकर जीवन में परिश्रम और पुरुषार्थ को स्थान दिये रहते हैं, उनको, यह छलना पग-पग पर सहायक बनकर जीवन में एक अप्रतिम शक्ति भर देती है।

'परिश्रम ही जीवन है'—का सिद्धान्त मानने वाली राजकुमारी ठौलिया के सिर पर पति-प्रेम की छाया फैलते और सिमटते कुछ अधिक विलम्ब न लगा। रूढ़िवादी जैन परिवार, सम्मानपूर्ण प्रतिष्ठा, अतुल सम्पत्ति और तरुण विधवा-यह एक ऐसा संयोग था, जिसमें राजकुमारी को कोठी के भीतर पड़े-पड़े आँसुओं की राह अपनी पीड़ा बहाने के अतिरिक्त कोई चारा ही न था। किन्तु श्रीमती ठौलिया उन निर्बल प्राण नारियों में न थी, जो नियति के बार को सहज ही अपने उद्देश्य में सफल होने देती और एक निरुपाया, असहाया, दीना-हीना और मलीना की भाँति उस जीवन को अपूर्णित क्षति की वेदना में व्यर्थ ही जलाकर भस्म कर देती, जिससे मानव कल्याण के अनेक सराहनीय कार्य सम्पादित किये जा सकते हैं।

श्रीमती ठौलिया को पति बिछोह की असहनीय वेदना होना स्वाभाविक ही था किन्तु उन्होंने उस परम पीड़ा को हृदय की अन्तिम तह में सँजोकर रख लिया और निश्चय कर लिया कि वह अपने पीड़ापूर्ण जीवन का उपचार पर पीड़ाहरण के उपकरणों से करने का प्रयत्न करेंगी। जन-सेवा की शीतल धारा में डूबकर अपनी आग को ठण्डा करेगी। कहना न होगा कि जन-सेवा के जिन कार्यों के पीछे कोई पीड़ा, कोई वेदना अथवा कोई हूक रहती है, वे कार्य अपनी एक विशेष ऊष्मा रखते हैं। जिसकी वेदना कर्मठतापूर्ण लगन में बदल जाती है, जो पीड़ा को आँखों की राह न बहाकर भुजाओं के रास्ते उतारता है, उसके दु:ख दूर हो जाते हैं, उसकी निजी पीड़ा निर्वेद के रूप में जन-जन के लिए संवेदना बनकर प्रकट हो उठती है और तब मनुष्य मानवता से देवत्व की ओर अग्रसर हो उठता है।

श्रीमती ठौलिया एक पढ़ी-लिखी महिला हैं । उन्होंने पति वियोग की वेदना को समाज सेवा की गंगा में डुबाने की अनुमति परिवार से माँगी। उनके इस अप्रत्याशित साहस को सुनकर सारा परिवार सन्न रह गया। अनुमति देना तो दूर लगभग विरोध करना ही प्रारम्भ कर दिया। ऐसी स्थिति में श्रीमती ठौलिया ने अपने अनुरोध को हठ में नहीं बदला क्योंकि वे जानती थीं कि प्रस्तुत पारिवारिक विरोध रूढ़ि-जन्य है। इसका कोई स्थायी अस्तित्व नहीं है। फिर भी यदि वह इस समय हठ का सहारा लेती हैं तो यह अमौलिक विरोध स्थायित्व प्राप्त कर लेगा, जिसके उनके प्रतिष्ठित परिवार की शांति में कलह की आग लग जायेगी। बुद्धिमती ठौलिया यह भी जानती थीं कि यदि वे धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करें और धीरे-धीरे अपनी क्षमतायें प्रकट करती हुई समाज सेवा के सम्बन्ध में परिवार का विश्वास प्राप्त कर लें तो विरोध की कठिनाई अवश्य दूर हो जायेगी।

निदान उन्होंने घर पर बैठे-बैठे ही लेखनी के माध्यम से अपना सेवा कार्य प्रारम्भ कर दिया। अपने लेखों, विचारों तथा भावनाओं द्वारा वे अल्पकाल में ही लोकप्रिय होने लगीं और अनेक संस्थाओं के प्रतिष्ठित नर-नारी उनका परामर्श लेने के लिए आने लगे। उनके इस महत्त्व से परिवार की प्रतिष्ठा और बढ़ गई। धीरे-धीरे परिवार के गुरुजनों को कुलवधू की क्षमताओं एवं योग्यताओं में विश्वास होने लगा और उन्हें घर के बाहर कदम रखने का अवसर मिलने लगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रीमती राजकुमारी ठौलिया एक करोड़पति परिवार से सम्बन्धित हैं। रुपये-पैसे, नौकर-चाकर और सुख-सुविधाओं की कोई कमी नहीं। फिर भी उन्होंने घर में रहकर आराम का जीवन बिताना पसन्द न किया। समाज-सेवा की कठोर भूमि पर कार्य करना ही अधिक श्रेयस्कर समझा। वे इस सत्य से अनभिज्ञ न थीं कि आराम से भरा हुआ अकर्मण्य जीवन एक मृत्यु है। वास्तविक जीवन तो उन परिश्रमपूर्ण कार्यों में है, जिसका उद्देश्य जन-समाज की सेवा करना हो।

जन-सेवा के क्षेत्र में उतरने से पहले श्रीमती ठौलिया ने अपने जिस व्यक्तित्व का विकास किया, उसमें आत्म-विश्वास, परिश्रम, प्रयास, धैर्य, उत्साह, साहस को प्रमुख स्थान दिया। नि:सन्देह इन गुणों से रहित जीवन में न तो कोई गति रहती है और न क्षमता। जहाँ कर्म है, वहाँ सफलता-असफलता का परिक्रमण होना असम्भाव्य नहीं है। स्वभावत: वे आती ही हैं। अब जो आशावादी है, नि:स्वार्थ और निर्भय है वे इनके आवागमन से अप्रभावित निरन्तर एक उत्साह से कार्यरत रहता है। इसके विपरीत जो निराशावादी है, स्वार्थी और भय-भीरू है, वह रंच मात्र प्रतिकूलता से ही किंकर्तव्यविमूढ़ होकर मैदान से भाग जाता है और संसार के किसी कोने में पड़ा-पड़ा जीवन के दिन पूरे किया करता है।

श्रीमती ठौलिया ने अपना सेवाकार्य थियोसोफिकल सोसाइटी की सक्रिय सदस्या के रूप में प्रारम्भ किया। यह सोसाइटी कोई नई संस्था नहीं थी। अपने दीर्घ जीवन में इसने अच्छे से अच्छे कार्यकर्त्ता और कर्मठ समाज-सेवी देखे। किन्तु श्रीमती ठौलिया को अपने में पाकर उसने एक नवीनता अनुभव की। नियमपूर्ण आत्म-संयम को दृढ़ कूलों से नियन्त्रित श्रीमती ठौलिया के निर्मल जीवन प्रवाह को देखकर सोसाइटी के सारे नये-पुराने सदस्यों ने सात्विकता की विशेषता को मूर्तमान में देखा और अपने इस विश्वास को पुन: दोहराया कि सात्विक आचार-विचार दैवी जीवन की वे दिशायें हैं, जिनसे निरन्तर सुख-शांति की शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर आती रहती है। जिससे प्रसन्नता प्राप्त कर मनुष्य का तन, मन और आंतरिक उत्साह जन-सेवा के महान कार्यक्रम में संलग्न हो उठता है।

श्रीमती राजकुमारी ठौलिया ने अपने प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व, कार्यकुशलता, सच्ची निष्ठा और संकल्पित समाज-सेवा की भावना से सोसाइटी को एक नवीन चेतना, एक नई गति प्रदान की। उनकी अक्लिान्त परिश्रमशीलता ने थियोसोफिकल सोसाइटी जैसी पुरानी संस्था में एक ताजगी भर दी, जिससे उसके माध्यम से अनेकों का अतुलनीय हित हुआ। यही कारण है कि वे अब तक उक्त सोसाइटी की सम्मान्य सदस्या और उससे सम्बन्धित अनेक ट्रस्टों की पार्षद हैं।

थियोसोफिकल सोसाइटी में आपका कार्य देखकर क्रिश्चियन वीमेन्स क्लब दिल्ली ने न केवल आपको अनेक बार आमन्त्रित किया अपितु मन्त्राणी बनाकर अपने को धन्य माना। अपना भाग्य सराहा। धन्य है उस पुरुषार्थ को, साधुवाद, उस परिश्रम को और श्लाघ्यता है, उस निर्विकार निष्ठा को जो जातिवाद आदि के बन्धनों को विदीर्ण कर अपने उपासकों को किसी भी मानव समाज में एक प्रतिष्ठित पद पर पहुँचाकर अधिकाधिक कीर्तिपूर्ण जन-सेवा के दूरगामी द्वार खोल दिया करते हैं।

पाँच वर्ष तक क्रिश्चियन वीमेन्स क्लब की मंत्राणी रहकर उन्होंने भोगवादी सभ्यता में विश्वास करने वाले स्त्री-समाज में त्याग-भावना की प्रतिष्ठा की और अपने व्यक्तिगत जीवन के उदाहरण से उन पर सादा जीवन और संयमपूर्ण आचार-विचार की छाप छोड़ी। इस प्रकार उन्होंने प्रत्यक्ष रूप में ईसाई स्त्रियों का कल्याण और परोक्ष रूप से भारतीय जीवन दर्शन का सम्मान सम्पादित किया।

अनेक अन्य संस्थाओं द्वारा श्रीमती ठौलिया को अपनाते और उनकी योग्यताओं का लाभ उठाते देखकर जैन-महिला-मण्डल की आँख खुलीं और उसने उन्हें अपनी संस्था की मंत्राणी बना लिया। जैन-महिला-मण्डल में पहुँचकर श्रीमती ठौलिया में कोई जातीय संकीर्णता नहीं आने पाई। समग्र मानव समाज की सेवा का संकल्प लेने वाले स्वभावत: जातिवाद जैसी संकीर्ण परिधि से परे हो जाते हैं।

महिला-मण्डल उज्जैन ने अपनी दशा से श्रीमती ठौलिया का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया और उन्होंने उसे अपनी गहनतम सेवाओं का सच्चा अधिकारी समझा। निदान उन्होंने अपने परिश्रमपूर्ण कार्यों से उसमें प्राण फूँकने प्रारम्भ कर दिये। कर्मठता की कुंजी के समान श्रीमती ठौलिया को पाकर संस्था के सदस्यों में कर्मों के कोष खुलने लगे और देखते ही देखते वह निर्जीव संस्था देश की प्रमुख समाज-सेवी संस्थाओं के आगे जा बैठी। आज इस महिला मंडल के अपने दो भवन और लगभग एक लाख रुपये की अपनी निधि है।

यह श्रीमती राजकुमारी ठौलिया के ही परिश्रम, पुरुषार्थ एवं लगन का फल है कि महिला मंडल उज्जैन के तत्त्वावधान में इस समय छ: शिशुविहार, चार प्रौढ़ कक्षा केन्द्र, दो खिलौने और मोमबत्ती बनाने के उद्योग और तीन कताई, सिलाई और कढ़ाई केन्द्र चल रहे हैं। इसके अतिरिक्त अनेक पुस्तकालय एवं वाचनालयों द्वारा महिलाओं में ज्ञान प्रसार का कार्य हो रहा है।

श्रीमती राजकुमारी ठौलिया के व्यक्तित्व की जहाँ अन्य बहुत सी विशेषताएँ हैं, वहाँ निरहंकारिता एक प्रमुख विशेषता है। करुणा उनका स्वभाव और उदारता उनका संसार बन गया है। वे न केवल संस्थाओं द्वारा ही दीन-दु:खियों की सहायता कराती हैं प्रत्युत् अपने निजी धन से भी उनकी सहायता करती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सेवाधर्म की सिद्ध साधिकाएँ

सेवामूर्ति-माँ कस्तूरबा गाँधी

यह बात सही है कि पति के किसी प्रतिष्ठित पद पर पहुँचने पर उसका आदर पत्नी को स्वभावत: यों ही मिल जाता है और कुछ न होते हुए भी पति की पूजा, प्रतिष्ठा एवं गौरव का उपभोग करती है। किन्तु माता कस्तूरबा के सम्बन्ध में यह बात सब अंशों में लागू नहीं होती। माता कस्तूरबा को राष्ट्र-माता का पद इसलिए नहीं मिल गया कि उनके पति महात्मागाँधी राष्ट्र-पिता के महानपद पर प्रतिष्ठित थे। माता कस्तूरबा ने यह पदवी स्वयं अपने त्याग, ममतामयी सेवा-भावना से प्राप्त की थी।

यों तो सभी नारियों में मातृत्व की भावना रहती है, किन्तु राष्ट्र-माता कस्तूरबा में यह एक विशेष सीमा तक बनी हुई थी। उनका हृदय आकाश की तरह विशाल और गंगा की तरह पवित्र था। वे केवल हृदय से ही माता नहीं थी, बल्कि सम्पूर्ण आकार-प्रकार से एक ममतामयी माता थीं। सम्पूर्ण तन-मन से मातृत्व की यह उपलब्धि माता कस्तूरबा के उस सात्विक जीवन की देन थी, जिसका निर्माण उन्होंने होश सम्हालते ही कर लिया था।

माता कस्तूरबा किसी निर्धन परिवार की पुत्री नहीं थीं। उनका परिवार हर प्रकार से भरा-पूरा था। किन्तु कस्तूरबा ने कभी दिखाऊ तथा आलसी जीवन व्यतीत नहीं किया। वे अधिक से अधिक सरल एवं सादा जीवन पसन्द करती थीं।

माता कस्तूरबा के कुमारी जीवन में कोई ऐसी विशेषता नहीं थी, जिसका कि संस्मरण के रूपों में उल्लेख किया जा सके। यहाँ तक कि शिक्षा क्षेत्र में भी वे कोई लम्बा डग न रख सकी थीं। इसका प्रमुख कारण यह था कि उनका विवाह दस वर्ष की अवस्था में ही हो गया था।

साधारण स्त्रियों की तरह बा ने भी अनेक प्रकार के स्वप्न लेकर दाम्पत्य-जीवन में प्रवेश किया। पति का प्यार, विलासपूर्ण जीवन और अधिकार-पूर्ण गृह-शासन की कामनाएँ बा में भी थीं किन्तु पति के घर पहुँचते ही कुछ समय बाद ही बा को अनुभव हो गया कि उनके पति श्री मोहनदास कर्मचन्द गाँधी कुछ भिन्न प्रकार के व्यक्ति हैं। उनके रंगीन स्वप्नों की पटरी उनके विचारों के साथ न बैठ सकेगी। यह विषम परिस्थिति थी। एक ओर जीवन के रंगीन स्वप्न और दूसरी ओर पति का आदर्श।

माता कस्तूरबा ने इस मानसिक उथल-पुथल को बड़े धैर्यपूर्वक सँभाला, यह एक ऐसी परिस्थिति थी जिसमें यदि प्रत्यक्ष कलह न भी होती, तब भी एक मानसिक वैषम्य तो उत्पन्न हो ही सकता था और जहाँ पति-पत्नी के बीच मानसिक वैषम्य हो, वहाँ सुख-शान्ति की सम्भावना ही कहाँ रह सकती है।

बहुत पढ़ी-लिखी न होने पर भी एक भारतीय-नारी के नाते माता कस्तूरबा संस्कारवश ही इतना समझती थीं कि पत्नी का सबसे प्रथम तथा प्रमुख कर्त्तव्य है, सब प्रकार से पति के अनुकूल रहना। उन्होंने पत्नी जीवन के इस मूलाधार को ही अपने जीवन का ध्येय बना लिया और हर प्रकार से अपने पति महात्मागाँधी से सानुकूलता स्थापित करने का व्रत ले लिया।

यह बात सही है कि संस्कार, स्वभाव तथा इच्छाओं के विरुद्ध किसी व्रत के पालन में कुछ असुविधा अथवा अरुचिता अवश्य होती है किन्तु यही असुविधा सहन करना व्रत पालन का तप है, जिसका पुण्यफल हर प्रकार से मंगलमय ही होता है। जीवन में साग्रह धारण किए हुए संकल्प जब सफलतापूर्वक व्यवहृत हो जाते हैं तो मनुष्य की आत्मा में आनन्द के द्वार खुलने लगते हैं और उसका जीवन हर प्रकार से सफल एवं सार्थक बन जाता है।

विवाह के कुछ समय बाद ही बा को अपनी स्वाभाविक जीवनधारा को पति द्वारा अपनाये गये एक विशेष एवं विलक्षण प्रकार के जीवन ढाँचे में ढालना पड़ा। जब तक महात्मागाँधी घर रहे, तब तक तो वे एक साधारण शिक्षित व्यक्ति की तरह वैभवपूर्ण जीवन चलाते रहे, जिसके अनुसार माता बा भी खूब शान-शौकत से रहती रहीं। किन्तु अफ्रीका-यात्रा के समय से उनका जीवन दिन-दिन बदलता ही चला गया। इसका कारण था त्रस्त मानवता की वह करुण पुकार जो दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गाँधी के हृदय में उतर गयी थी।

दक्षिण-अफ्रीका के भारतीयों के साथ गोरों का अमानवीय व्यवहार देखकर उन्हें जैसे याद आ गया कि वे साधारण सांसारिक जीवन में व्यर्थ उलझे हुए हैं, उन्हें तो त्रस्त-मानवता का उद्धार करने और उसकी सेवा करने के लिए ही भूमि पर भेजा गया है। बस फिर क्या था उन्होंने बैरिस्ट्री का बाना उतारकर रख दिया और एक सन्त-सिपाही का बाना धारण कर लिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पत्नी-धर्म के अनुसार माता कस्तूरबा को भी वैसा ही करना था और उन्होंने किया। महात्मा-गाँधी की भाँति इन्होंने भी भोग-विलास एवं सुख-सुविधाओं की सारी चीजें त्याग दीं। जीवन की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं को काट गिराया। सादे से सादे सीमित वस्त्र और लघु से लघु स्वल्प भोजन उनके जीवन की आवश्यकता रह गयी।

यद्यपि माता कस्तूरबा ऐसा करने के लिए मजबूर नहीं थीं और न पति अथवा परिवार की ओर से उन्हें ऐसा करने का निर्देश था और न कोई ऐसा सामाजिक प्रतिबन्ध था कि जिससे ऐसा किये बिना उन्हें अपवाद अथवा लांछन का लक्ष्य बनना पड़ता। किन्तु उन्होंने यह सारा त्याग अपनी स्वतन्त्र इच्छा से स्वीकार किया। उन्हें पति के साथ हर प्रकार से सानुकूलता स्थापित करने का अपना संकल्प याद था।

अब यदि एक क्षण के लिए बापू और बा के इस समान त्याग की तुलना करके देखा जाय, तो बा का त्याग बापू की अपेक्षा अधिक महान एवं अहैतुक सिद्ध होगा। महात्मागाँधी ने दक्षिण अफ्रीका में मानवता की दुर्दशा देखी और उनकी पुकार सुनी, जिसने उनके हृदय को द्रवीभूत कर दिया। मानवता की पीड़ा से स्वयं पीड़ित होकर उन्होंने एक प्रकार से उसकी प्रतिक्रिया से प्रेरित होकर जीवन की सारी सुख-सुविधाओं का त्याग कर दिया। ऐसा करने में उनकी पीड़ा को सान्त्वना मिली, उनकी आत्मा को शान्ति मिली। वैसा करने में वे अपनी एक प्राकृतिक एवं प्रेरक जिज्ञासा के वशीभूत थे।

दक्षिणी अफ्रीका से लौटने पर तो महात्मा गाँधी का सम्पूर्ण जीवन ही त्याग, कर्त्तव्य तथा सेवा का एक जीता-जागता इतिहास ही बन गया। बापू ने जन-सेवा का जो पथ ग्रहण किया, उसमें काँटे ही काँटे बिछे हुए थे। बा को उस पथ का अनुसरण करने के लिए कोई मजबूरी नहीं थी, फिर भी उन्होंने उसका अनुसरण किया और किसी भी क्षेत्र में महात्मा गाँधी से पीछे नहीं रहीं। बा की इस त्याग तथा तपस्या के पीछे कोई लोकेषणा अथवा पूजा-प्रतिष्ठा की प्यास नहीं थी। उनके सारे त्याग एवं तपस्या के पीछे उनका वही-'पति से अनुकूलता का एक व्रत काम करता था।

बा के सत्याग्रही स्वभाव के विषय में स्वयं बापू ने एक स्थान पर कहा है—'मेरे न चाहने पर भी बा हठपूर्वक अपनी इच्छा से मुझमें समा गयी हैं। मेरा यह आग्रह कभी नहीं रहा कि मेरे अनुरूप ही अपने जीवन को बना लें किन्तु यह सब उन्होंने महज अपनी इच्छा से कर लिया है।'

महात्मा गाँधी उस समय दक्षिण अफ्रीका में थे और वहाँ की अँग्रेजी सरकार द्वारा भारतीयों पर किए जाने वाले अत्याचारों के विरुद्ध जन-जागरण की मुहिम चला रहे थे। इस प्रयास को असफल करने के लिए तरह-तरह के दमनकारक कार्यक्रम अफ्रीका की गोरी सरकार द्वारा किए गये, जिससे भारतीयों का मनोबल टूटे और इन्हीं दमन कार्यों के अंतर्गत एक नियम यह बनाया गया कि भारतीय-पद्धति से किए गये सभी विवाह गैर कानूनी माने जावेंगे। इस कानून के अनुसार वहाँ निवास कर रहीं समस्त भारतीय-पत्नियाँ कानूनी दृष्टि से रखेल श्रेणी में आ जाती थीं। गाँधीजी ने इस कानून को निरस्त करने के लिए सत्याग्रह का विचार किया और यह भी कि सत्याग्रह में स्त्रियाँ ही भाग लें। इस उद्देश्य से स्त्रियों को तैयार करने से पूर्व गाँधी जी ने अपनी ही धर्मपत्नी कस्तूरबा को सर्वप्रथम तैयार करने का निश्चय किया। यह कार्य खतरे से खाली तो नहीं था क्योंकि जेलों का वातावरण दूषित होने के साथ निष्ठावान और परम्परा भक्त हिन्दू स्त्री के लिए अनिर्वाह्य ही था। सम्भव था वहाँ मिलने वाली यातनाओं के कारण स्त्रियाँ अपना मनोबल खो बैठें और आंदोलन असफल हो जाय। खासतौर से कस्तूरबा के लिए तो गाँधीजी के मन में बड़ा डर था कि यदि ऐसा हो गया तो इससे बुरी पराजय क्या होगी। फिर भी यह कदम उठाना तो आवश्यक था ही। अत: उन्होंने कस्तूरबा से इस संबंध में चर्चा चलायी। बल्कि बापू जब अन्य स्त्रियों को सत्याग्रह के लिए तैयार कर रहे थे, तभी कस्तूरबा ने अपनी तैयारी और उत्साह व्यक्त करते हुए पूछा-"आप सबसे जेल जाने के लिए कह रहे हैं पर मुझसे आपने चर्चा तक नहीं की। आखिर मुझमें ऐसी कौन-सी कमी है, जो आप मुझे जेल में रहने लायक नहीं समझते।"

"तुम में कोई कमी तो नहीं है"-गाँधीजी ने उत्तर दिया-"और न ही मैं तुम पर अविश्वास करता हूँ। तुम यदि स्वयं जेल जाओ तो इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या होगी। पर मैं यह पसंद नहीं करता कि तुम मेरी आज्ञा समझकर जेल जाओ।"

"क्यों ? आपकी आज्ञा या मेरी निष्ठा में कोई विसंगति है"-बा ने पूछा।

"विसंगति तो नहीं है पर ऐसे काम अपनी हिम्मत से ही करने चाहिए। तुम मेरी आज्ञा से जेल गयीं और वहाँ के कष्टों से ऊब गयीं, तो मुझे अच्छा कैसे लगेगा और यह कितनी शर्मनाक बात होगी"-गाँधीजी बोले।

"यदि मैं जेल से ऊब जाऊँ और हार मानकर वापस आ जाऊँ, तो आप मुझे अपने पास तक मत आने देना।"-बा ने दृढ़तापूर्वक कहा और बापू ने उन्हें स्वीकृति दे दी। बा ने सत्याग्रह किया और उसकी सजा जो पहले से ही तय थी—कारावास के रूप में मिली और वहाँ की यातनाओं को वह सह न सकीं। तीन महीने की सजा काटकर जब वे वापस लौटीं तो उनका शरीर सूखकर कंकाल मात्र रह गया था पर उनकी आत्म-दीप्ति चमक उठी थी।

इस प्रकार कस्तूरबा ने पहली बार जेल यात्रा की और सार्वजनिक जीवन में भी अपने पति के साथ कदम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिलाया। इससे पूर्व उनका कार्यक्षेत्र प्राय: घर तक ही सीमित था। बा एक साधारण घर की कम पढ़ी-लिखी स्त्री थीं पर उन्होंने जिस उत्साह से अपने पति के साथ सार्वजनिक जीवन में भाग लिया, उनके आदर्शों को अपने आदर्श मानकर आत्मसात् किया और पति से काया-छाया का नाता जोड़ा, वह बापू को राष्ट्रपिता तो उन्हें भी राष्ट्रमाता के गौरव से गौरवान्वित कर गया।

कस्तूरबा का जन्म भी पोरबंदर में हुआ था। वे आयु में गाँधीजी से छह माह बड़ी थीं। उनका परिवार हर दृष्टि से संम्पन्न और संस्कारवान् था और सब प्रकार की सुविधाओं के बावजूद भी उन्हें आलसी नहीं बनने दिया गया। उनके बाल्यकाल की कोई उल्लेखनीय घटना नहीं है, सिवाय इसके कि अल्पायु में ही उनका विवाह हुआ। सगाई तो केवल सात वर्ष की आयु में ही हो गयी थी। हालांकि यह सामाजिक विवेक की दृष्टि से ठीक नहीं था। १८८२ में जब उनका विवाह हुआ तो वे साढ़े तेरह वर्ष की थीं। इस परम्परागत कुरीति के लिए महात्मा गाँधी ने अपनी आत्मकथा में स्वयं लिखा है-''यह लिखते हुए मेरे हृदय में बड़ी व्यथा होती है कि १३ वर्ष की अवस्था में ही मेरा विवाह हो गया। आज जब मैं अपनी आँखों के सामने १२-१३ वर्ष के बच्चों को देखता हूँ, तो मुझे मेरा विवाह स्मरण होने लगता है, अपने पर तरस आने लगता है और उन बच्चों को बधाई देने की इच्छा होती है कि वे मेरी सी हालत से बच गये। इस उम्र में मेरे विवाह के समर्थन में मुझे कोई नैतिक दलील नहीं सूझती।''

कस्तूरबा को सामान्य अक्षर ज्ञान भी नहीं था और जब वे अपने पति के साथ रहने लगीं तो गाँधीजी रात के समय में एकांत में थोड़ा-थोड़ा समय देकर उन्हें अक्षर ज्ञान कराने लगे। कस्तूरबा भी अपने पति की इच्छा और आकांक्षाओं का आदरकर मेहनत के साथ पढ़तीं। फलत: उन्होंने चिट्ठी-पत्री पढ़ने योग्य साक्षरता प्राप्त करली । चूँकि उनका विवाह अल्पवय में ही हुआ था फिर भी दोनों की कुशाग्रता ही कहना चाहिए कि विभिन्न उतार-चढ़ावों के बावजूद भी उनका दांपत्य-जीवन धीरे-धीरे विकसित होने लगा।

कस्तूरबा तो एक सामान्य स्त्री की भाँति ही मधुर दांपत्य के स्वप्न सँजोकर पतिगृह गयी थीं। पर कालांतर में उन्होंने पाया कि उनके पति असामान्य व्यक्ति हैं और उन्हें भी अपने आदर्शों के अनुरूप ढालना चाहते हैं। स्वयं गाँधीजी ने अपने मनोभाव व्यक्त करते हुए लिखा है—''मैं अपनी पत्नी को आदर्श स्त्री बनाना चाहता था। मैं चाहता था कि वह साफ बने, स्वच्छ रहे, जो मैं सीखूँ उसे वह भी सीखने का प्रयत्न करे और हम दोनों एक दूसरे से ओत-प्रोत रहें।''

शीघ्र ही बा ने अपने पति के व्यक्तित्व को परख लिया और तदनुसार स्वयं को ढालना प्रारंभ किया। उन्होंने अपने पति से चाहे जो अपेक्षा की हो और वह पूरी हुई हो अथवा न हुई हो पर यह निष्ठा उनकी रग-रग में समायी हुई थी कि मेरा सर्वप्रथम और सर्वप्रधान धर्म, कर्त्तव्य अपने पति के अनुकूल रहना है। इस निष्ठा के कारण ही उन्होंने पति के अनुकूल बनने के लिए अपने सामान्य स्वप्नों को टूटते हुए धैर्यपूर्वक सहन कर लिया।

बैरिस्टरी पास कर गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका गए। कस्तूरबा भी उनके साथ रहीं। अफ्रीका के पाश्चात्य वातावरण में वैष्णव-धर्म की कठोर परम्पराओं का पालन बड़ी मुश्किल बात थी। वहाँ न तो बा जैसी और कोई हिन्दू धर्मनिष्ठ महिला का सान्निध्य मिल पाना संभव था और न ही खान-पान से लेकर रहन-सहन में भारतीय वैष्णव परम्पराओं के सुविधापूर्वक पालन की परिस्थितियाँ। यह गाँधीजी तथा कस्तूरबा के लिए परीक्षा का भी समय था। वहाँ के मौसम के अनुकूल तो बा किसी प्रकार अपने रहन-सहन में परिवर्तन के लिए राजी हुईं। जैसे वे भारत में नंगे पैर चला करती थीं परन्तु वहाँ के ठंडे व बर्फीले मौसम में अंध परम्परा भक्ति न केवल स्वास्थ्य के लिए हानिकर थी वरन् वहाँ की सभ्यता की दृष्टि से भी उचित नहीं था। अफ्रीका की पाश्चात्य सभ्यता का रंग तो गाँधीजी पर भी नहीं चढ़ पाया पर वे परम्पराओं का केवल परम्परा के लिए ही पालन करना उचित नहीं समझते थे। बा तो शुरू में राजी नहीं हुईं, पर गाँधीजी के समझाने-बुझाने पर उन्होंने ऐसी बातों को मानने में अड़ियलपने से काम नहीं लिया।

भारत से चलते समय गाँधीजी ने अपनी माँ को यह वचन दिया था कि अफ्रीका में वे माँस-मदिरा से दूर रहेंगे। कई बार ऐसे अवसर भी आये जब गाँधीजी को इसके लिए मित्रों ने कहा तो गाँधीजी किनारा काट गये। इस पर उनके मित्र उनसे सैद्धांतिक बहस करते और कहते कि इसमें क्या नुकसान है ? गाँधीजी का उत्तर होता कि नुकसान और फायदे की बात सोचना तो बाद की बात है, अव्वल तो मैं अपनी माँ को दिया वचन तोड़कर विश्वासघाती नहीं बनना चाहता। जब गाँधीजी की निष्ठा इतनी परिपक्व थी तो बा के कहने ही क्या ?

एक बार की बात है। कस्तूरबा को खूनी बवासीर की शिकायत हुई, जिसका इलाज चला। इलाज से कोई फायदा नहीं हुआ तो आपरेशन किया गया। आपरेशन से काफी कमजोरी आ गयी और डाक्टरों ने सलाह दी कि बा को माँस का शोरबा दिया जाना चाहिए। इसके लिए गाँधीजी को निर्देश दिया गया तो गाँधीजी ने अपने विचार से तो मनाही की और निर्णय कस्तूरबा पर छोड़ा। बा से जब इस सम्बन्ध में पूछा गया तो उन्होंने कहा-''मैं माँस का शोरबा किसी भी हालत में नहीं लूँगी। यह देह बार-बार नहीं मिलती और मैं इसे पशु माँस से पोषित कर पाप की भागीदार नहीं बनूँगी, भले ही मुझे मरना पड़े।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार भारतीय मर्यादाओं का निर्वाह करते हुए बा अफ्रीका में रह रहे भारतीय प्रवासियों के न्यायिक अधिकारों हेतु भी लड़ीं और जेल यात्रा भी की, जिसका उल्लेख आरम्भ में किया जा चुका है। श्रमशीलता और सेवा परायणता उनकी प्रमुख विशेषता थी। परिश्रम उनका बाल्यजात स्वभाव था और वे दक्षिण अफ्रीका में गाँधीजी के घर से लेकर फीनिक्स आश्रम तथा भारत में भी अपने इस स्वभाव से रंचमात्र भी विरत न हो पायीं।

भारत लौटने पर गाँधीजी ने जब राजनैतिक-जीवन आरम्भ किया, तो वे बराबर उनके साथ छाया की तरह बनी रहीं। गाँधीजी अपने स्वभाव की त्रुटियों के साथ अपनी पत्नी को भी आदर्श भारतीय-नारी बनाने का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। यहाँ जब साबरमती आश्रम की स्थापना हुई तो अभ्यागतों की भोजन-व्यवस्था से लेकर आश्रम-सम्बन्धी अन्य छोटे-बड़े कार्य भी उन्हें ही सौंपे गये। आश्रम में जब आगंतुकों की संख्या अधिक बढ़ने लगी, तब उन्होंने इसके लिए अन्य कार्यकर्त्ताओं का सहयोग लेना भी आरम्भ किया। पर वे तब भी गाँधीजी के लिए तो स्वयं ही खाना बनाती थीं, अन्य व्यक्तियों से सहयोग लेने के बावजूद भी अतिथियों के लिए भोजन वे स्वयं ही परोसतीं।

स्वतन्त्रता आंदोलन में गाँधीजी ज्यों-ज्यों सक्रिय होते गये, त्यों-त्यों बा भी अपनी क्षमतायें बढ़ाने लगीं। समाचार पत्र भी वे पढ़ने लगीं थीं, गाँधीजी द्वारा संपादित और प्रकाशित 'हरिजन बंधु' अखबार तो वे लगभग पूरा ही पढ़ डालतीं । यद्यपि बचपन में उनको किसी ने पढ़ाया-लिखाया नहीं था फिर भी प्रौढ़ावस्था में उनकी अध्ययन-आकांक्षा प्रबल हो उठी थी और उन्होंने अँग्रेजी के साथ-साथ संस्कृत पढ़ना भी आरम्भ कर दिया था।

पढ़ने के अतिरिक्त उन्होंने गाँधीजी द्वारा जनता को दिये गये कार्यक्रम चलाना और स्वयं भी अपनाना आरम्भ किया। दोपहर के समय वे सूत काता करती थीं और दोपहर बाद आश्रम के अन्य आवश्यक कार्य करती थीं। गाँधीजी ने दरिद्रनारायण की सेवा के लिए औसत स्तर का जीवन जीना आरम्भ किया और तन पर सिर्फ एक ही कपड़ा पहनने लगे। यह तो सर्वविदित है पर शायद बहुत कम लोग जानते हैं कि गाँधीजी के इस व्रत से पहले ही बा ने एक समय भोजन करना छोड़ दिया था।

कस्तूरबा ने केवल आश्रम और परिवार की व्यवस्था पर ही ध्यान नहीं दिया वरन् स्वतंत्रता के लिए चल रहे अहिंसक आंदोलनों में भी सक्रिय रूप से भाग लिया। सन् १९४२ में जब भारत-छोड़ो आंदोलन शुरू हुआ तो वे भी जन सेवा के क्षेत्र में कूद पड़ीं और पुनः जेल गयीं। यों सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश तो वे दक्षिण अफ्रीका में ही कर चुकी थीं पर जेल-यात्रा का यह दूसरा अवसर था। गाँधीजी जैसे-जैसे भारतीय आकाश में छाते गये, कस्तूरबा भी अपनी प्रभा निखारती और बिखेरती रहीं।

२२ फरवरी, १९६४ को महाशक्ति के दिन कस्तूरबा का देहांत हुआ। इस दुःख भरे अवसर पर बापू ने कहा कि मेरा सबसे अभिन्न साथी, कहना चाहिए मेरा शक्ति-स्रोत ही चला गया। वस्तुतः कस्तूरबा ने स्वयं को जिस प्रकार एक आदर्श पत्नी के रूप में प्रस्तुत किया था, वह बहुत तपसाध्य है। उनमें जो परिवर्तन आए उन्हें देखकर गाँधी परिवार के ही एक सदस्य ने, जब रहन-सहन देखा, तो गाँधीजी से कहा—"तुम अपने साथ इस कस्तूरबा बाई को भी क्यों तपा रहे हो।"

"मैंने तो कभी इनसे ऐसा नहीं कहा और न ही रोका"—गाँधीजी ने कहा।

इसे और स्पष्ट करते हुए कस्तूरबा गाँधीजी से ही कह उठती थीं—"जब आपने अपना रास्ता बदल दिया तो मौज-शौक कर मैं क्या करती? आपका मन जानकर मैंने भी अपना रास्ता बदल दिया।"

बा एक साधारण भारतीय नारी थीं। उनमें कोई ऐसी असाधारण विशेषतायें नहीं थीं, जिन्होंने उन्हें राष्ट्र की पूज्य माता की पदवी पर पहुँचा दिया हो। बा ने अपनी त्याग-तपस्या से यह सारे गुण अपने में उत्पन्न किए थे। बापू के अनुरूप अपने को बनाने में बा ने जिन उपायों का सहारा लिया था, उनमें आत्म-त्याग, प्रतिनिष्ठा और निष्काम-सेवा भाव प्रमुख थे। बा ने जिस दिन से सानुकूलता का व्रत लिया, उसी दिन से अपने सम्पूर्ण अस्तित्व एवं व्यक्तित्व को हठपूर्वक बापू में विसर्जित कर दिया, जिससे न तो उनकी कोई अपनी आवश्यकता रह गई और न कामना। फलतः उन्हें कोई भी त्याग करते समय कोई भी विशेष कष्ट न होता था। निष्काम-सेवा कार्यक्रमों से माता कस्तूरबा के हृदय का विकास इस सीमा तक हो गया कि वे जन-जन के लिए माता थीं और जन-जन उनके लिए पुत्र बन गया।

आदर्श समाज-सेविका—
डा० मुथुलक्ष्मी रेड्डी

डा० मुथुलक्ष्मी का जन्म १८८६ में पुडुकोट्टा (मद्रास) में हुआ। ९-१० वर्ष की अवस्था में ही उन्हें दमा हो गया। पर सदा बीमार रहने वाली इस बालिका ने अपने जीवन में वह चमत्कार दिखाये कि लोग देखकर दंग रह गये। उस समय लोग लड़कियों को पढ़ाते नहीं थे और दस वर्ष की अवस्था तक उनका विवाह कर देना अनिवार्य समझते थे। पुडुकोट्टा के दीवान ने लड़कियों के लिए एक प्राथमिक शाला खोली थी पर छात्र-वृत्तियों का प्रलोभन देकर भी बहुत कम लड़कियों को स्कूल आने के लिये वे आकर्षित कर सके थे। मुथुलक्ष्मी परदे वाली गाड़ी में बैठकर स्कूल जाती थी ताकि कोई देख न ले। उस समय अक्षर ताड़ के पत्तों पर लिखाये जाते थे। पिता ने अध्यापक से कहा था कि इसे धोबी और दूध का हिसाब लिखने लायक पढ़ा दो। लड़कियों को अँग्रेजी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बिल्कुल नहीं पढ़ाई जाती थी फिर भी इस बालिका की प्रतिभा देखकर अध्यापक ने उसे 'फर्स्ट स्टैंडर्ड' तक अँग्रेजी पढ़ा दी।

पिता विद्वान थे और महाराजा कालेज के प्रिंसिपल थे। कठोर अनुशासन प्रिय, दृढ़ चरित्र एवं संकल्प के धनी होने के साथ वे उदार एवं स्वतन्त्र विचार भी रखते थे। मुथुलक्ष्मी की प्रतिभा देखकर उन्होंने उसे आगे पढ़ने के लिए प्रोत्साहित ही नहीं, परिश्रम से उसका मार्गदर्शन भी किया। मैट्रिक-परीक्षा तब काफी कठिन होती थी। सौ में से १० छात्र ही उस वर्ष पास हुए और उनमें भी मुथुलक्ष्मी अकेली लड़की थी।

मद्रास की एक पत्रिका में गाउन पहने एक लड़की का फोटो देखकर मुथुलक्ष्मी को कालेज की डिग्री प्राप्त करने की इच्छा हुई। पिता ने स्थानीय कालेज में प्रार्थना-पत्र भेजा, तो लड़की होने के कारण वह अस्वीकृत कर दिया गया। बाद में प्रगतिशील विचारों के पुरस्कर्ता पुडुकोट्टा के महाराज से अपील करने पर कालेज को आदेश मिला कि कालेज में लड़कियों को भी प्रवेश दिया जाय। कालेज में लड़की होने और हर बार सर्वप्रथम आने से वह लड़कों की ईर्ष्या एवं शरारतों की शिकार भी बनी। कालेज आती तो बन्द गाड़ी में और प्रतिदिन रास्ता बदल-बदल कर।

इण्टरमीडिएट के बाद स्वास्थ्य खराब होने के कारण उसे एक वर्ष तक पढ़ाई बन्द रखनी पड़ी। फिर महाराज की ही सिफारिश और आर्थिक सहायता से १९०७ में मुथुलक्ष्मी ने मेडिकल कालेज मद्रास में प्रवेश किया। कालेज में लड़कियों के लिये होस्टल नहीं था और क्रिश्चियन होस्टल में घर वाले रखना नहीं चाहते थे इसलिये किराये का मकान लेकर रहना पड़ा। यहाँ आकर उसका दमा भी फिर बढ़ गया था। रात-रात भर जागती एवं परेशान रहती, पर परीक्षा-परिणाम हमेशा अच्छा निकलता। उस समय तक मेडीकल कालेज के एम०बी० एण्ड सी०एम० डिग्री कोर्स में किसी क्रिश्चियन या एग्लो-इंडियन लड़की ने भी प्रवेश नहीं पाया था, फिर यह तो हिन्दू लड़की थी। सभी जगह चर्चा, कानाफूसी एवं ईर्ष्या का वातावरण था। लेकिन मुथुलक्ष्मी के सामने यह कठिनाई केवल प्रथम वर्ष रही। प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर उसने सबका मुँह बन्दकर दिया। तीसरे, चौथे वर्ष में तो उसने सर्जरी में शत-प्रतिशत अंक प्राप्तकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। एक प्रोफेसर गिफार्ड पहले किसी लड़की को अपनी कक्षा में नहीं बैठने देते थे पर मुथुलक्ष्मी की योग्यता से प्रभावित होकर उन्हें भी अपनी धारणा बदलनी पड़ी। घर में माँ की बीमारी, लोगों की आलोचना, स्वयं को दमे की तकलीफ और अनिद्रा से परेशानी के बावजूद १९१३ में सर्जरी में ऑनर्स के साथ जब वह डाक्टर बनी, तो भारत के सभी प्रमुख समाचार-पत्रों ने उनके चित्र प्रकाशित किये और जगह-जगह से नौकरी के लिये प्रस्ताव उनके पास आने लगे।

सन् १९१३ में डाक्टर होते ही उन्होंने अपनी पसन्द से किंगजार्ज अस्पताल के एक सर्जन डा० टी सुन्दर रेड्डी के साथ विवाह कर लिया। आपने विवाह से पूर्व पति से अपनी महत्त्वाकांक्षाओं में बाधक न होने का वादा करा लिया था, जो पति ने अन्त तक निभाया।

मद्रास में चिकित्सा का अध्ययन करते समय ही उनकी भेंट श्रीमती सरोजिनी नायडू एवं अन्य राष्ट्रीय नेताओं से हो गयी थी और वे उनकी प्रेरणा से सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने लग गयी थीं। बाद में वे महिला-संगठनों की संचालिका बन गईं। १९२५ में भारत-सरकार की छात्रवृत्ति पाकर उन्होंने महिला एवं बाल रोगों के उच्च अध्ययन के लिये पहली विदेश यात्रा की। इसी दौरान जून १९२६ में उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन (पेरिस) में भारतीय महिलाओं की ओर से प्रतिनिधित्व किया। फिर १९२६ में भारत लौटकर विधान सभा की सदस्या बनीं।

डा० रेड्डी के कुछ प्रमुख कार्यों एवं सुधारों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

दक्षिण-भारत के मन्दिरों से 'देवदासी' प्रथा के विरुद्ध उन्होंने प्रबल जनमत निर्माण किया। इसके पश्चात् १९२९ में मद्रास-विधान-सभा में एक बिल पास करवा कर बुराई का उन्मूलन करवाया। मुथुलक्ष्मी रेड्डी का नाम इस बिल के साथ उसी प्रकार लिया जाता है, जिस प्रकार बाल-विवाह-निषेध-बिल के साथ श्री हरविलास शारदा का, यहाँ एक तथ्य उल्लेखनीय है कि शारदा-बिल को केन्द्रीय असेम्बली में लाने से पूर्व ही मद्रास-विधान-सभा में श्रीमती रेड्डी द्वारा इसी आशय का एक बिल प्रस्तुत कर दिया गया था पर जब उन्होंने इसके समर्थन के लिये सदन से अपील की, तो सरकार द्वारा सूचित किया गया कि ऐसा ही एक बिल केन्द्रीय विधान-सभा में विचारार्थ उपस्थित किया गया है, अत: वे उसके परिणाम की प्रतीक्षा करें। फिर १९ अप्रैल, १९२८ को उन्हें हरविलास शारदा का एक पत्र भी प्राप्त हुआ था, जिसमें इस दिशा में पहल करने के लिये बधाई दी गई थी तथा केन्द्र में समर्थन पाने के लिये उनसे उस बिल की एक प्रति भी माँगी गयी थी। श्रीमती रेड्डी के कथनानुसार यदि उस समय उनका बिल पास हो जाता तो लड़कियों की विवाह योग्य आयु कम से कम १६ वर्ष की स्वीकृत होती, जबकि 'शारदा एक्ट' में यह १४ वर्ष की है।

महिलाओं एवं बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य से सम्बन्धित अनेक बुनियादी बिलों का उन्होंने अपने कार्यकाल में प्रस्तुतीकरण किया, तथा उन्हें पास करवाने के लिये अथक् परिश्रम किया। इन बिलों के अन्तर्गत स्कूलों में बच्चों की स्वास्थ्य परीक्षा, बाल-कल्याण केन्द्रों एवं बच्चों के लिये विशेष अस्पतालों की स्थापना, महिला-शिक्षा के लिये स्कूलों-कालेजों की स्थापना,

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निःशुल्क शिक्षा की सिफारिश आदि कई बातों का समावेश था। १९२९ में लन्दन में आयोजित गोलमेज परिषद में भी आप राजकुमारी अमृतकौर और बेगम शरीफहमीदअली के साथ तीसरी महिला-प्रतिनिधि थीं। १९३० के नमक-सत्याग्रह एवं असहयोग आन्दोलन के सिलसिले में गाँधीजी की गिरफ्तारी तथा महिलाओं पर पुलिस अत्याचारों के विरोध में आपने मद्रास विधान-सभा की उपाध्यक्षा पद से त्याग-पत्र दे दिया और स्वतन्त्रता आन्दोलन में सम्मिलित हो गईं। फलस्वरूप उन्हें १ वर्ष का कारावास का दण्ड भी भुगतना पड़ा।

स्वतन्त्रता के पश्चात् १९५४ में दुबारा मद्रास विधान-सभा की सदस्या बनीं तथा मद्रास राज्य समाज-कल्याण बोर्ड की प्रथम चेयरमैन नियुक्त की गयीं। मद्रास कारपोरेशन की भी वे अध्यक्षा रह चुकी थीं।

श्रीमती रेड्डी की इन महान सेवाओं के उपलक्ष्य में भारत-सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया। मद्रास में सार्वजनिक रूप से उनका नागरिक अभिनन्दन तथा विधान-सभा में उनके चित्र के अनावरण का एक शानदार समारोह भी सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर श्रीमती मेरीक्लबवाला जाथन ने कहा था कि "डा० मुथुलक्ष्मी रेड्डी कोमल हृदया ही नहीं, बौद्धिक चेतना से भरपूर और अधिकारों एवं सुधारों के लिये कठोरता एवं दृढ़ता से लड़ने वाली तेजस्वी महिला थीं बढ़ती उम्र ने उनकी चेतना, भावना और दृढ़ता पर कोई प्रभाव नहीं डाला था और वे यथावत् अपनी प्रगतिशील विचारधारा से नई पीढ़ी को अनुप्राणित एवं प्रोत्साहित करती रहीं।"

सिद्धान्त व कर्मनिष्ठा की सजीव प्रतिमा-प्रभावती देवी

सन् १९४२ । आगा खाँ पैलेस की शैया पर माता कस्तूरबा जीर्ण रोग से ग्रस्त हो पड़ी हैं, उपचार चल रहा है किन्तु स्वास्थ्य है कि सुधरने का नाम ही नहीं लेता। उनकी सेवा के लिए आश्रम की प्रमुख कार्यकर्त्रियाँ जिन्हें बा अपनी पुत्रियों की तरह स्नेह करती थीं, उपस्थित रहती थीं। किन्तु बा को अपनी एक मानस-पुत्री की कमी बुरी तरह खल रही थी। यह मानस-पुत्री थी-प्रभावती देवी—विख्यात जननेता जयप्रकाशनारायण की पत्नी। वे उस समय सत्याग्रह-आन्दोलन में सक्रिय नेतृत्व करने के कारण जेल में बन्द थीं।

बा बार-बार उन्हीं के लिए आग्रह कर रही थीं। प्रभावतीजी वर्धा आश्रम में छह-सात वर्ष तक बा व बापू के सानिध्य में रही थीं। उनकी सेवा-परायणता व सिद्धांत निष्ठा से बा पूरी तरह अवगत थीं। प्रभावती जी भी महात्मागाँधी व बा का अपने माता-पिता की तरह आदर साम्मान करती थीं। गान्धीवादी विचारधारा तो उनका प्राण ही थी। बा का यह आग्रह केवल ममता व स्नेह वश ही नहीं था वरन् वे प्रभावतीजी की उन क्षमताओं से परिचित थीं, जिससे कि वे भारतीय-नारी का नेतृत्व कर सकें। यदि वे इस रोग के कारण शरीर मुक्त भी हो जायँ तो अपना दायित्व किसे सौंपा जाय ? इसकी पात्रता उन्हें प्रभावतीजी में ही नजर आ रही थी।

बा की इस इच्छा की पूर्ति के लिए प्रभावती जी को जेल से छोड़कर उनकी सेवा में नियुक्त करने के लिए, जेल अधिकारियों को उसके लिए राजी करना कठिन कार्य था। बड़ी कठिनाइयों व काफी कोशिशों के बाद कहीं उन्हें बा की सेवा करने का अवसर मिल सका। उसके पश्चात बा के देहावसान तक वह उनके साथ रहीं। बा की मृत्यु के बाद शोकार्त बापू के पास भी वे पर्याप्त समय तक रहीं।

बा का अपनी अनेकानेक मानस पुत्रियों में से प्रभावतीजी का चयन सत्य ही अनूठा था। गाँधीवाद के प्रति जो आस्था उनमें थी, वह उन दिनों प्रखर होकर जनता के सामने आयी थी, जब जयप्रकाश काँग्रेस छोड़कर समाजवादी दल के उन्नयन में जमे हुए थे। प्रभावती जी उनकी क्रान्तिकारी-विचारधारा की समर्थक नहीं थी किन्तु पत्नी के नाते उनका दायित्व उन्हें पति से बाँधे हुए था। भिन्न-भिन्न विचारधाराओं को मानते हुए भी इन दोनों के पारिवारिक जीवन की मन्दाकिनी अविरल भाव से, अविकल रूप से बह रही थी। कहीं वैषम्य का किंचित भी आभास नहीं होता था, केवल विचारधाराओं को छोड़कर। गजब की समझ थी दोनों में एक दूसरे के प्रति।

प्रभावतीजी उनके दाहिने हाथ की तरह उनके निजी सचिव का व अर्धांगिनी का दायित्व निबाहते हुए भी अपने गाँधीवाद पर अविचल निष्ठा बनाए हुए थीं। देश के भिन्न-भिन्न भागों में होने वाली सभाओं में जयप्रकाश मंच पर क्रान्तिकारी समाजवादी विचारधारा के पक्ष में अपने ओजस्वी व तर्कपूर्ण वक्तव्य देते थे और मंच के पीछे बैठी हुई प्रभावती जी चुपचाप निश्चिन्त मन से चर्खा चलाती रहती थी। बापू के इस आजादी के महाभारत के सुदर्शनचक्र की गतिशीलता का मन्द-मन्द स्वर जाने कैसे जयप्रकाश के हृदय में पहुँचकर अपनी चमत्कारिता का प्रभाव डालता रहा कि एक दिन वे मार्क्स व लेनिन के समाजवाद को छोड़, स्वयं ही गान्धीवादी बनकर राजनैतिक जीवन से संन्यास ले, भूदान-यज्ञ व सर्वोदय जैसे रचनात्मक अभियान में आ जुटे। निश्चय ही इसका श्रेय किसी को दिया जा सकता है तो प्रभावती जी को ही। विचारों की इस चमत्कारी शक्ति का प्रभाव स्पष्ट करने में प्रभावती जी ने सुदृढ़ माध्यम का कार्य किया।

उनका जन्म सन् १९०६ में बिहार असहयोग आन्दोलन के शीर्षस्थ नेता श्री बृजकिशोर प्रसाद के यहाँ हुआ था। देशप्रेम व जनसेवा के आदर्श उन्हें पैतृक गुण के रूप में ही मिल गये थे। उनका समुचित विकास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.७ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

उन्होंने किया। उनके पिता चम्पारन सत्याग्रह के प्रमुख सैनानी थे। उनकी ज्येष्ठ पुत्री डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के पुत्र को व्याही थी। उन्होंने चौदह वर्ष की आयु में ही अपनी इस पुत्री का विवाह जयप्रकाश जैसे सुयोग्य वर के साथ कर दिया।

अल्पायु में विवाह हो जाने पर भी प्रभावती व जयप्रकाश बौद्धिक रूप से एक दूसरे को समझने तथा पारिवारिक दायित्वों का महत्त्व समझने के लिए सक्षम हो चुके थे। विवाह का अर्थ यह नहीं होता है कि विवाह के पश्चात् पति-पत्नी के व्यक्तित्व का विकास ही रुक जाय। वे विवाह को बन्धन नहीं प्रगति का हेतु ही मानते थे। यह उनके सुयोग्य एवं विवेकशील माता-पिता की देन थी कि वे इस प्रकार का स्वस्थ दृष्टिकोण अपना सके।

विवाह के थोड़े ही वर्षों बाद जयप्रकाश ने विदेश जाकर शिक्षा ग्रहण करने का निश्चय किया। उनके इस निश्चय पर प्रभावती जी के माता-पिता चिन्तित हो उठे। विदेश जाकर लड़के की बुद्धि भ्रमित हो जाय, पाश्चात्य वैभव व भोगवाद से प्रभावित हो वह अपनी पत्नी को ही भूल जाय, तो उनकी पुत्री का क्या होगा ? इस आशंका के कारण वे त्रस्त हो उठे। उन्होंने प्रभावती जी को उनके विदेश जाने के मार्ग में बाधक बनने को कहा किन्तु वे अपने पत्नीत्व के अधिकार का प्रयोग कर उनके विकास में बाधक नहीं बनना चाहती थीं। अत: उन्होंने अपने पति को उच्च-शिक्षा पाने के उद्देश्य से विदेश जाने से रोका नहीं।

वे अमेरिका गये तो प्रभावती जी गाँधीजी व कस्तूरबा के पास वर्धा चली गयीं—देश व समाज का काम करने के लिए। उनके विचार से विवाह के पश्चात् भी सामाजिक कार्य किए जा सकते थे। उन विचारों को मूर्त रूप देने के लिए ही वे वर्धा आयी थीं। वर्धा में उन्होंने गाँधीजी को निकट से देखा, उनके सिद्धान्तों को परखा। जब उनके प्रति हृदय में पूरी आस्था उत्पन्न हो गयी तो उस पथ पर कर्मनिष्ठ की तरह चल पड़ीं।

गाँधीजी उन्हें बेटी की तरह मानते थे। उन्होंने उस महामानव की पुत्री की तरह ही गौरवमय आचरण व कर्तृत्व को निभाया। वे स्वतन्त्रता के पूर्व की महान महिलाओं में रहीं। स्वतन्त्रता के अनन्तर भी वे नारी जागरण व लोक-सेवा के कार्य में निष्काम कर्मयोगिनी की तरह जुटी रहीं। यह विडम्बना ही कहनी चाहिए कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ऐसे लोकसेवियों का मूल्यांकन सही तरह नहीं किया गया। वे राजनीतिज्ञों की तरह आत्म विज्ञापन नहीं करते और हम उनको महत्ता देकर उनके व्यक्तित्व से प्रेरणा ग्रहण नहीं करते।

उन्होंने असहयोग-आन्दोलन में पूरी तरह भाग लिया। बिहार, उत्तर प्रदेश व गुजरात में किये गये असहयोग आन्दोलन के कारण उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। उन्होंने बिहार में महिलाओं को जाग्रत करने के लिए बहुत काम किया।

जितनी वे सिद्धान्तनिष्ठ थीं उतनी ही कर्मनिष्ठ भी थीं। सत्याग्रह के समय महिलाओं का नेतृत्व करना तथा उन्हें घर की चहारदीवारी से लोकलाज के सात-सात पर्दों में से बाहर निकालकर सामाजिक क्षेत्र में लाने के लिए उन्हें दिन-रात एक करना पड़ा। उन जैसी कुछ ही अग्रणी महिलाओं के सुप्रयासों का ही यह शुभ परिणाम था कि इस आजादी के संघर्ष में महिलाओं ने आशा से भी अधिक योगदान दिया। सामान्य महिलाओं की आदर्श प्रभावती जी जैसी कर्मठ महिलाएँ ही रही थीं।

भारत के इतिहास में ऐसे उदाहरण कम ही मिलते हैं कि जहाँ पति-पत्नी दोनों ने देश के लिए अपनी पूरी निष्ठा व सामर्थ्य के साथ शीर्षस्थ रहकर काम किया हो। जयप्रकाश नारायण व प्रभावतीदेवी का यह उदाहरण लगभग अकेला ही होगा। प्रभावती जी सत्याग्रह व असहयोग में अग्रणी रही थीं। उन्हें उनके समय के सभी आन्दोलनकर्त्ता 'दीदी' के सम्मानजनक सम्बोधन से सम्बोधित करते थे।

वे भारतीय-जाग्रत-नारी का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। उनमें नारी सुलभ ममता, दया, सहानुभूति, सेवा आदि गुणों का बाहुल्य था। साथ ही साथ दृढ़ता व संघर्ष का पौरुष भी कूट-कूटकर भरा था। परिवार के दायित्वों का वहन भी वे करती थीं, साथ ही राष्ट्रीय कर्त्तव्य को भी उतना ही महत्त्व देती थीं।

१९४२ की उस घटना का वर्णन न करना उनके जीवन के उन दुर्लभ क्षणों के प्रेरणा-प्रकाश से वंचित करना ही कहा जायेगा। उन दिनों जय प्रकाश राजस्थान के विकट हाड़ोती के पठार की विषम जलवायु वाले कैम्प देवली में बन्दी थे। प्रभावती जी अपने पति के प्रति स्वाभाविकप्रेम व उन्हें स्वस्थ-सानन्द देख लेने की हार्दिक प्रबल आकांक्षाओं को सँजोये उनसे मिलने जा पहुँचीं। जयप्रकाश नारायण का विप्लवी मस्तिष्क वहाँ भी चुप नहीं बैठा था। वे प्रभावती के साथ अपने साथियों के लिए गुप्त योजनाओं के कार्यक्रमों का एक पुलिन्दा जेल अधिकारियों की नजर से चुराकर थमा देने वाले थे। यदि वे सहयोग देतीं तो उनके पति अपनी योजना में सफल भी हो जाते किन्तु प्रभावती जी पक्की गाँधीवादी थीं—साध्य के साथ-साथ साधनों की पवित्रता की पक्षधर, जबकि जयप्रकाश क्रान्तिकारी थे, साधनों के अनौचित्य-औचित्य के झमेले में नहीं पड़ने वाले। उन्होंने खुफिया पुलिस के कर्मचारियों को दूसरे कागजों में उलझाकर कागजों का पुलिन्दा उनकी ओर बढ़ाया पर उन्होंने उसको छुआ ही नहीं। परिणामस्वरूप भण्डाफोड़ हो गया। जयप्रकाश पर और कड़ी निगाह रखी जाने लगी। यह थी उनकी सिद्धान्तनिष्ठा, जो एक दिन उनके पति को भी अपनी राह पर लाने में सफल हुई।

माता कस्तूरबा ने जो दायित्व अपने अन्तिम समय उन्हें सौंपा था, उन्हें अपने अन्तिम क्षणों तक निभाया। वे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वयं एक संस्था तथा शक्ति का अजस्र स्रोत थीं। स्वतन्त्रता के पहले देश को स्वतन्त्र कराने के लिए उन्होंने अपनी सब सुख-सुविधाओं को छोड़ दिया। भौतिक सुख-सुविधाओं व सुख-ऐश्वर्य के पथ को त्यागकर उन्होंने त्याग व तप के कण्टकाकीर्ण पथ का अवलम्बन किया। स्वयं जीवन भर दूसरों के लिए काम करती रहीं—अपने देश के लिए, देशवासियों के लिए। अपने पति के पाँवों की बेड़ी बनने की अपेक्षा उनको आगे ही बढ़ाती रहीं। सिद्धान्तों की भिन्नता को न देखते हुए वे पग-पग पर उन्हें पत्नी, सखा व मित्र की तरह सहयोग देती रहीं, उनका संरक्षण करती रहीं। सर्वोदय व भूदान के कार्यक्रमों में ही उनका स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् का काल व्यतीत हुआ। १५ अप्रैल, १९७३ को उनका देहावसान हो गया। अपने व्यक्तित्व व कर्तृत्व के रूप में वे अमर हो चुकी हैं। वे वर्तमान भारतीय नारी के सम्मुख एक प्रश्न चिन्ह छोड़ गयीं हैं—स्वतन्त्रता पाने के पूर्व भारतीय महिलाएँ शिक्षा व प्रगति में इतनी आगे नहीं थीं किन्तु नारी जागरण व देश सेवा के लिए उनमें से कई व्यक्तित्व उभरकर आगे आये थे, आज की इस जीवनमरण की सी विकृतियों से जूझने के लिए उतने व्यक्तित्व सामने क्यों नहीं आते ?

नारी आदर्शों की पुण्य प्रतिमा—कमला नेहरू

"उसके शरीर में केवल हड्डियाँ रह गयीं थीं और वह अत्यन्त कमजोर हो गयी थी। उसका शरीर छाया मात्र मालूम पड़ता था। वह बहुत कमजोर हालत में रोग से टक्कर ले रही थी और यह ख्याल कि वह मुझे छोड़ जायेगी, मुझे असह्य कष्ट देने लगा। हमारी शादी को इस समय साढ़े अठारह साल हुए थे"—पण्डित नेहरू ने अपनी मनःस्थिति का यह चित्रण मेरी कहानी-आत्म-कथा में उस समय का किया है, जब कमलानेहरू की हालत बिगड़ने लगी थी और नेहरूजी देहरादून जेल से लम्बा कारावास भोगकर लौटे ही थे। उस समय सन् १९३४ में नेहरूजी के लिए यह विचार ही बड़ा कष्टदायी था कि कमला जी उन्हें छोड़कर इस असार संसार से विदा हो जायेंगी। यद्यपि स्वतन्त्रता आन्दोलन में व्यस्त रहने और बार-बार जेल जाते रहने के कारण दोनों को एक साथ समय व्यतीत करने व दाम्पत्य जीवन का आनन्द लेने का अवसर बहुत कम ही मिला था। परन्तु दोनों एक दूसरे के प्रति जिस प्रकार निष्ठावान और समर्पित थे, वह आदर्श दाम्पत्य-जीवन का अनुकरणीय उदाहरण था।

जिस समय नेहरू का विवाह हुआ, उस समय उनकी आयु छब्बीस वर्ष और कमलाजी की आयु सत्रह वर्ष की थी। उम्र की दृष्टि से ही नहीं, बौद्धिक विकास की दृष्टि से भी दोनों में बड़ा अन्तर था। स्वयं नेहरूजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, 'हमारी उम्र में काफी फर्क था और उससे भी अधिक हमारे मानसिक दृष्टि बिन्दु में था। क्योंकि उसकी अपेक्षा मेरी उम्र कहीं ज्यादा थी। मैंने शायद ही कभी महसूस किया हो कि इस सुकुमार और भावुक बाला का मस्तिष्क फूल की तरह विकसित हो रहा है। हमारा दृष्टि पथ जुदा था.... इतने पर भी हमारा प्रेम बढ़ता गया और परस्पर मानसिक भेद भी कम होता गया।'

अन्तिम वाक्य कमलाजी की उस शक्ति और क्षमता का है, जिसके अनुसार उन्होंने अपने आपको ढाला और पं० नेहरू के जीवन-ध्येय में बाधक बनने की अपेक्षा सहायक बनी। सम्भवतः भारतीय नारी की इन्हीं विशेषताओं को कमलाजी के व्यक्तित्व में कूट-कूटकर भरा देखकर जवाहरलाल जी के माता-पिता पं० मोतीलाल नेहरू तथा माता स्वरूपरानी सभी उनसे प्रभावित हुए हों। उनके सौम्य और सुशील व्यक्तित्व ने पण्डितजी को अपनी पुत्र वधू बनाने के लिए बाध्य सा कर दिया था और स्वयं जवाहरलाल जी भी अपनी तुलना में काफी अविकसित और पिछड़ी किन्तु सरल, सौम्य और नमनीय व्यक्तित्व की स्वामिनी कमलाजी को जीवन-संगिनी के रूप में स्वीकार कर सके।

समृद्ध पिता के पुत्र और प्रतिभाशाली छात्र होने के कारण उन्हें विदेशों में पढ़ने और काफी दिनों तक बाहर रहने का अवसर मिला। बचपन में भी वे जिस वातावरण में रहे वहाँ की वेश-भूषा, रहन-सहन, व्यवहार और आचार-विचारों से लेकर शिक्षा-संस्कृति तक में पाश्चात्य मूल्यों को प्रधानता मिली थी। इसका कारण यह था कि पं० मोतीलाल नेहरू न तो पुरातन के प्रति इतने आग्रही थे कि नया जो भी सो सब व्यर्थ और अर्वाचीन के इतने अन्धानुयायी भी नहीं थे कि नैतिकताशील और सदाचार के सर्वकालीन वरणीय आदर्शों को ही भुला बैठे। पिता का यह विशेष गुण जवाहरलालजी में भी था। यही कारण है कि पश्चिम की भोगवादी-संस्कृति में रहते हुए भी उन्होंने वहाँ की अच्छी बातों को ही ग्रहण किया।

जवाहरलाल जी का व्यक्तित्व इतना सुन्दर और चुम्बकीय था कि हर कोई उनकी ओर अनायास ही आकृष्ट होता था। उनके व्यक्तित्व की इसी चुम्बकीय क्षमता से आकर्षित होकर कई विदेशी युवतियों ने उनसे विवाह का प्रस्ताव किया परन्तु उनका विश्वास था कि सफल पत्नी और सफल सहधर्मिणी के रूप में भारतीय नारी ही वरेण्य है। बाह्य दैहिक सौन्दर्य नहीं आत्मिक-गुण सम्पन्न सुन्दरता दाम्पत्य जीवन को सफल बनाती है और जब पिता ने देहली के एक प्रसिद्ध व्यापारी श्री जे० एल० कौल की अपने से कम पढ़ी-लिखी कन्या कमला कौल से विवाह का प्रस्ताव रखा तो जवाहर लाल जी ने देख-परखकर सहज ही सहमति व्यक्त कर दी, जिन गुणों का ध्यान रखते हुए पं० मोतीलाल जी ने कमलाजी को अपनी पुत्र वधू बनाने का निश्चय किया था, उनके सम्बन्ध में कमलाजी ने पं० नेहरू को जीवन भर में कभी निराश नहीं किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.९ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

श्री जवाहरलाल कौल—कमला नेहरू के पिता, अपनी सन्तान को जन्म भर देना ही पर्याप्त नहीं समझते थे वरन् उसे जीवन देने की मान्यता के भी कायल थे। सन् १९०० में जब उनके घर एक कन्या ने जन्म लिया तो उन्होंने निश्चय किया कि कन्या हो या पुत्र, ममता, वात्सल्य और स्नेह की दृष्टि से दोनों ही समान हैं। यह ठीक है कि लड़की होने के नाते बेटी को सीधे कर्मक्षेत्र में उतरने का अवसर कम ही आयेगा परन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं है कि केवल इसी कारण उसे उसके वांछित अधिकारों से वंचित कर दिया जाय।

कमला ज्यों-ज्यों बड़ी होती गयी, श्रीकौल उनके व्यक्तित्व विकास की आवश्यकताओं के प्रति सजग ध्यान देने लगे थे। कौल ने अपनी बेटी के पढ़ने-लिखने का घर पर ही प्रबन्ध किया। एक अध्यापक उन्हें पढ़ाने के लिए नियुक्त किया गया और उनसे ही बड़ी रुचि तथा लगन से पढ़ते हुए कमलाजी योग्य बनती गयीं। सन् १९०७ में उन्हें पढ़ने के लिए अपने एक सम्बन्धी के यहाँ प्रयाग भी भेजा गया और कमलाजी ने वहीं रहकर अँग्रेजी का अच्छा ज्ञान अर्जित किया।

कौल दम्पत्ति ने कमलाजी पर शैक्षणिक विकास की दृष्टि से ही ध्यान नहीं दिया वरन् सद्गुणों, सत्प्रवृत्तियों और सद्विचारों का महत्व समझते हुए उनके विकास हेतु भी सचेष्ट रहे। साथ ही उपयुक्त वय में उन्होंने गृह विज्ञान की भी दीक्षा दी और उनमें भारतीय नारी के व्यक्तित्व की सम्भावनायें भरीं।

जब उनका विवाह हुआ, तब नेहरू जी विदेश में शिक्षा प्राप्त कर लौटे थे। पं० नेहरू के सामने जीवन के दो क्षेत्र खुले थे, पहला तो था योग्यता का उपयोग कर अपने भविष्य को सुखी व समृद्ध बनाना तथा दूसरा यह कि देश के तकाजे को पूरा करना। उस समय के भारत के राजनैतिक वातावरण के संदर्भ में कुछ कहना न होगा। नेहरूजी के सामने एक यह क्षेत्र भी खुला हुआ था कि वे व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं की कामना-आकांक्षा छोड़कर समूचे राष्ट्र की आत्मा को सुनें, नेहरूजी दूसरे क्षेत्र की ही ओर आकृष्ट हुए तथा उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे भारत को स्वतन्त्र कराकर ही चैन की साँस लेंगे।

नेहरूजी ने अपनी पत्नी से अपने जीवन-लक्ष्य के सम्बन्ध में कहा तो उन्होंने अपने संस्कार से प्रेरित होकर कह दिया कि आप जो भी करें, मैं पूरी तरह आपकी अनुगामिनी हूँ। न केवल यही वरन् उन्होंने देश-सेवा के कार्य को अधिक महत्त्व दिया और उनके प्रोत्साहन से बल प्राप्त कर नेहरूजी ने बैरिस्टरी के सुख-सुविधा भरे जीवन का परित्याग कर स्वतन्त्रता-आंदोलन का कंटकाकीर्ण मार्ग अपनाया।

विवाह के लगभग दो वर्ष बाद उन्होंने एक कन्या को जन्म दिया। रूप और गुण दोनों में बेटी अपनी माँ पर गयी थी। इस कन्या का नाम इन्दिरा रखा गया। जिसने इंदिरा गाँधी के रूप में विशाल भारतदेश का नेतृत्व किया। उनके व्यक्तित्व में समाविष्ट विशेषतायें और प्रतिभायें यदि माता-पिता के अप्रतिम व्यक्तित्व से विरासत में प्राप्त हुई कही जाय तो अत्युक्तिपूर्ण न होगा।

अँग्रेज सरकार की उपेक्षावृत्ति से क्षुब्ध और भारत माता की पुकार सुनकर महात्मा गाँधी ने सन् १९२१ में असहयोग-आन्दोलन छेड़ा। इस आन्दोलन का आधार सरकार के साथ सहयोग न कर उन्हें शासन सत्ता छोड़ देने के लिए बाध्य करना था। कई प्रान्तों में जनता ने इस आन्दोलन का आरम्भ किया, किसानों ने सरकार को लगान देना बन्द कर दिया, सरकारी कर्मचारियों ने अपनी नौकरियाँ छोड़कर प्रशासनिक कार्य ठप्प किये, विद्यार्थी स्कूल छोड़ने लगे। इस आन्दोलन के बहुत गम्भीर परिणाम होने थे, असहयोग आन्दोलन ज्यों-ज्यों बढ़ने लगे, त्यों-त्यों सरकार ने नेताओं की धरपकड़ शुरू की और इन्हीं गिरफ्तारियों में नेहरूजी भी जेल गये। यह उनकी प्रथम जेल यात्रा थी।

श्रीमती कमला नेहरू अपने पति की गिरफ्तारी से न तो हताश हुईं और न निराश वरन् जन जागरण के यज्ञ में वे भी अपनी आहुतियाँ देने के लिए उत्साह पूर्वक आगे आयीं। यद्यपि उनका स्वास्थ्य इस काम की अनुमति नहीं देता था, परन्तु वे अपने आत्मबल के सहारे इस रणांगन में उतरीं और लोगों को सरकार के साथ असहयोग करने के लिए गली-गली घूमने लगीं। साथ ही जन-जागरण का एक दूसरा मोर्चा भी उन्होंने इन्हीं दिनों सम्हाला, वह था नशाबंदी का। वे पुरुषों की वेशभूषा पहन कर ताड़ी और शराब की दुकानों पर जातीं तथा वह शराब पी रहे लोगों को शराब से होने वाली हानियाँ समझाकर उसे पीने से रोकती। उनके तेजस्वी व्यक्तित्व के सम्मुख नतमस्तक होकर कई व्यक्तियों ने मद्यपान की दुष्प्रवृत्ति का परित्याग किया और कमलाजी से मार्गदर्शन की अपेक्षा की। कमलाजी ने उन्हें स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेने की सलाह दी।

विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के अन्तर्गत कमलाजी ने अपनी अत्यन्त मूल्यवान साड़ियाँ और विदेश से आयातित सौंदर्य प्रसाधनों को इकट्ठा किया तथा उनमें आग लगा दी। इन्हीं दिनों काँग्रेस-नेतृत्व द्वारा व्यापारियों को विदेशी वस्तुयें बेचने से रोकने के लिए बाध्य किया जाने लगा। नेतागण व्यापारियों को समझाते-बुझाते कई व्यापारियों पर तो समझाने का ही अच्छा असर पड़ता परन्तु जो-जो लोग नहीं मानते, उनके प्रतिष्ठानों पर धरना दिया जाता। अपने शासन की रीढ़ को इस प्रकार टूटता देखकर अँग्रेजी सरकार ने पुनः प्रमुख नेताओं को बन्दी बनाना शुरू किया। मुख्य-मुख्य नेता जेल चले गये तो आन्दोलन ठण्डा होता सा जान पड़ा। परन्तु कमलाजी ने ऐसी नारियाँ तैयार कीं, जो इस आंदोलन को आगे खींच ले गयीं। पुरुष कार्यकर्ता जेल में चले गये तो महिलायें आगे आयीं और उन्होंने आग्रह-अनुरोध से लेकर धरना असहयोग तक का कार्यक्रम चलाया।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं० नेहरूजी को तो प्राय: कारागार में ही रहना पड़ता था। जेल उनका घर जैसा हो गया था परन्तु जब जेल में वे अपनी पत्नी का कर्तृत्व सुनते तो बड़े प्रसन्न होते। स्वतन्त्रता-संग्राम में उत्साहपूर्वक भाग लेते और अपने पति के पद चिन्हों पर चलते हुए हृदय में हर्ष और उल्लास तो फूट उठता परन्तु उन्हें यह बात काँटे की तरह भी चुभती थी कि उनसे पीछे रहने वाले पुरुष और अन्य स्त्री कार्यकर्त्ता तो कई-कई बार जेल की यात्रा कर चुके हैं, लेकिन यह उन्हें सौभाग्य क्यों नहीं मिल रहा है। सम्भवत: इसका कारण यह रहा हो कि अँग्रेज अधिकारी नेहरू परिवार की कुल वधू पर हाथ डालने से घबराते हों। लेकिन कमलाजी की यह आकांक्षा सन् १९३१ के अन्त में पूरी हुई। उनकी बढ़ती जा रही सक्रियता और गतिविधियों पर रोक लगाने के लिए अँग्रेज सरकार ने उस वर्ष दिसम्बर में गिरफ्तार किया।

कमलाजी ने खुशी-खुशी हथकड़ियाँ पहनीं। वहाँ उपस्थित था एक पत्र प्रतिनिधि। पत्र प्रतिनिधि ने कमलाजी से पूछा—पहली बार जेल जाते हुए आप कैसा अनुभव कर ही हैं।

'आज मुझे बहुत ही खुशी है'—कमलाजी ने कहा और इस बात का गर्व भी कि मैं अपने पति के पदचिन्हों पर चल सकी हूँ।'

इस भावना का उद्भव कारण लिखते हुए स्वयं नेहरूजी ने लिखा है। वह अपने को पुरुषों के अत्याचारों से स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करने वाली योद्धा समझती थीं लेकिन उस समय उसमें हिन्दू स्त्रीत्व के संस्कार प्रबल हो उठे थे। सही मायने में कमलाजी ने स्वयं को आदर्श-भारतीय-नारी के रूप में प्रस्तुत किया और उस मार्ग पर चल दिखाया, जिस पर कि उनके पति चल रहे थे।

उनका स्वास्थ्य वैसे ही खराब चलता रहा था। जेल से लौटने के बाद वे और भी बीमार रहने लगीं। रोग जब गम्भीर रूप धारणकर गया था, तो स्वयं ही विश्राम और चिकित्सा के लिए विवश हो गयीं और उन्हें अल्मोड़ा के भुवाली सेनेटोरियम में रखा गया। वहाँ कोई लाभ न हुआ तो स्विट्जरलैण्ड ले जाया गया परन्तु जीवन की ज्योति धुँधलाती ही गयी और २८ फरवरी, १९३६ को जब सारा संसार जागने की तैयारी कर रहा था, श्रीमती कमला नेहरू सदा के लिए सो गयी। नेहरू जी ने उस समय अनुभव किया कि उनकी जीवनशक्ति उनसे विलग हो गयी है। भारतीय-नारी के आदर्शों को आत्मसात कर वे अपने जीवन सखा के लिए शक्ति रूपा ही थीं।

आदर्श बाल-शिक्षिका—आशादेवी

आशादेवी का जन्म सन् १९०२ में एक सम्पन्न एवं उच्च-पदाधिकारी बंगाली परिवार में हुआ था। इनके पिता संस्कृत तथा तत्त्वज्ञान के पंडित थे। वे पं० मदन मोहन मालवीय के काशी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे। अन्त समय तक वे वहीं कार्य करते रहे। आशादेवी उनकी सबसे बड़ी लड़की थी। जब वह पाँच वर्ष की थी तभी से उनके पिता ने उसे अमरकोश और लघुकौमुदी पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया था। शाला में आशादेवी का हमेशा प्रथम नम्बर रहता। मैट्रिक की परीक्षा में भी आशादेवी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुईं और एम० ए० की परीक्षा तक वे प्रथम श्रेणी की अपनी परम्परा को निभाती रहीं। वे जितनी बुद्धिमान थीं उतनी ही भावना प्रधान रहीं। जब वे १२-१३ वर्ष की थीं, तब वे एक बार रोते-रोते घर आईं। पिताजी ने उन्हें गोदी में बिठाकर रोने का कारण पूछा-तब वे बोलीं—'पिताजी, मेरी सहेली का परीक्षा में पहला नम्बर न आकर दूसरा आया।' पिता ने पूछा-'तो फिर पहला नम्बर किसे मिला ?' आशादेवी ने रोते-रोते कहा-'मुझे पिताजी !'

एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर वे कुछ दिनों तक इलाहाबाद के एक कालेज में अध्यापिका रहीं। बाद में बनारस विश्वविद्यालय के महिला विद्यालय की प्राचार्या बनीं। इतने ऊँचे पद पर रहते हुए भी उन्हें अपने कार्य से सन्तोष नहीं था। वे पिताजी से कहा करतीं-''मुझे बड़ी बेचैनी है। कुछ नया काम करने की प्रवृत्ति हो रही है। निर्धारित पुस्तकों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा मुझे पसन्द नहीं है। देश के दारिद्रय और अज्ञान को मिटाने वाली विद्या ही सच्ची विद्या है।''

आशादेवी के पिता का गुरुदेव रविन्द्रनाथ ठाकुर से प्रगाढ़ स्नेह था। उनके साथ वे हमेशा शांति-निकेतन जातीं। इनकी छोटी बहिन प्रीत तो शान्ति-निकेतन के प्रत्येक समारोह में अचूक भाग लेती थीं। गुरुदेव की आशादेवी के परिवार पर बड़ी कृपा दृष्टि थी।

गुरुदेव जब यूरोप-अमरीका के प्रवास पर जाने लगे, तब उन्होंने आशादेवी से पूछा—क्या तुम मेरी अनुपस्थिति में शान्ति निकेतन के शिशु-निवास की व्यवस्था सम्भाल सकोगी ?'' आशादेवी ने तत्काल उत्तर दिया—''बड़ी प्रसन्नता से।'' बस, उन्होंने बनारस हिन्दू-विश्वविद्यालय की भारी वेतन की नौकरी छोड़ दी और शांति-निकेतन में आकर रहने लगीं। यहीं उनका विवाह आर्यनायकम् जी के साथ सम्पन्न हुआ।

बाद में सन् १९३९ में गाँधीजी ने सेवाग्राम में बुनियादी तालीम का प्रयोग शुरू किया और उन्होंने आशादेवी के साथ उनके पति आर्यनायकम् जी को भी इस कार्य हेतु शान्ति-निकेतन से बुलवाया। वे सेवाग्राम में जाकर बालकों में इतनी घुल-मिल गईं कि वे सब बालकों की माँ बन गईं। आशादेवी सब बालकों पर सगे बालक के समान स्नेह करती थीं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् दिल्ली के पास फरीदाबाद में चालीस हजार शरणार्थियों के लिए एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

शिविर खोला गया, जहाँ सहकारी पद्धति से खेती का प्रयोग शुरू हुआ। बाद में वहाँ बालकों की पढ़ाई की विकट समस्या खड़ी हुई। तब पं० नेहरू ने आशादेवी को सेवाग्राम से दिल्ली बुलाया और उन्हें निर्वासित बालकों की शिक्षा का भार सौंपा। वे वहाँ बालकों के साथ-साथ अनाथ विधवाओं की भी भरसक सेवा और सहायता करती रहीं। फरीदाबाद की प्रखर गरमी में कच्चे झोंपड़े में बसे शरणार्थियों के बालकों तथा विधवा बहिनों की सेवा में आशादेवी दिनरात जुटी रहीं। फरीदाबाद में कोई भी कठिन समस्या उपस्थित होने पर सब लोग आशादेवी के पास ही उसका हल खोजने के लिये आते हैं। अपनी अटूट सेवावृत्ति से वे थोड़े ही दिनों में सबकी परम श्रद्धापात्र बन गईं।

धन या सम्मान की जरा भी इच्छा न रखते हुए प्राप्त परिस्थिति में स्वेच्छा से निःस्वार्थ सेवा में रत आशादेवी का जीवन ही यथार्थ जीवन कहलाने योग्य है। वे एक निःस्पृह एवं सच्ची साधिका थीं। एक ही मकान के दो कमरों में दो पूजा गृह थे। एक कमरे में विष्णु भगवान की मूर्ति थी, उसके समक्ष नित्य आशादेवी विष्णु सहस्रनाम का पाठ किया करती थीं। उनका यह नियम था कि वे नित्य उपासना के बाद ही भोजन करती थीं। दूसरे कमरे में ईसामसीह का चित्र विराजमान था, जहाँ रवीन्द्रनाथ टैगोर के व्यक्तिगत सचिव पी० डब्ल्यू० आर्यनायकम् ईसाई धर्मानुसार प्रार्थना किया करते थे।

आप सोचते होंगे यह कोई भिन्न धर्मावलम्बी दो किरायेदार होंगे, जो एक ही मकान में रहते होंगे, पर बात कुछ और ही थी। इन दोनों में पति-पत्नी का सम्बन्ध था। धार्मिक असमानता होने पर भी इस दम्पत्ति का वैवाहिक जीवन बड़े आनन्द से व्यतीत हुआ। इनके जीवन की सफलता का मुख्य रहस्य यह था कि दोनों ही एक दूसरे के प्रति सम्मान व्यक्त करते थे और सुख-दुःख में सहभागी रहते थे। आशादेवी ने विजातीय युवक से विवाह कर यह सिद्ध कर दिया कि सहनशीलता, सहानुभूति और परस्पर स्नेह जैसे गुणों के द्वारा व्यक्ति अपने दाम्पत्य जीवन में सुख-शान्ति की प्राप्ति कर सकता है।

लाहौर के सम्पन्न बंगाली परिवार में जन्म लेने वाली आशादेवी का विद्यार्थी-जीवन इलाहाबाद में ही बीता था। संस्कृत विषय लेकर एम०ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी। उनकी विद्वता की धाक आसपास के क्षेत्रों में फैल चुकी थी। पण्डित मदनमोहन मालवीय ने इसीलिए आशादेवी को हिन्दू-विश्वविद्यालय के महिला महाविद्यालय में प्राचार्य पद पर नियुक्त किया। उनकी अमूल्य सेवाओं से महाविद्यालय प्रगति की ओर बढ़ता गया और उनका यश भी शान्ति-निकेतन तक पहुँच गया। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर को जब उनके अथक् परिश्रम और सेवा-भावना का पता चला तो वह भी चाहने लगे कि शान्ति-निकेतन को उनकी सेवायें प्राप्त हों। रविबाबू के निमन्त्रण पर उन्होंने प्राचार्य पद त्याग दिया और शान्ति निकेतन जा पहुँचीं।

कितने ही वर्षों तक आशादेवी को गाँधीजी के साथ कार्य करने का अवसर मिला। वे गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों में पूर्ण आस्था रखती थीं। सन् १९३६ में गाँधीजी ने मूल उद्योग शिक्षण योजना का सारा कार्य आर्यनायकम दम्पत्ति को सौंप दिया था और उन्होंने बड़े मनोयोग के साथ इसका संचालन भी किया।

सत्याग्रह और असहयोग-आन्दोलन में भाग लेकर जब कार्यकर्त्ता जेलों में ठूँसे जा रहे थे। उस समय आशादेवी किसी से पीछे नहीं रहीं। आगे चलकर जब बिनोबा जी ने अपना भूदान आन्दोलन चलाया तो इन्होंने उसमें भी बड़े परिश्रम के साथ कार्य किया। अलीगढ़ का साम्प्रदायिक दंगा हो अथवा फरीदाबाद में निर्वासितों को बसाने का कार्य वह प्रत्येक स्थान पर निसंकोच तन, मन, धन से अपनी सेवायें देने पहुँच जाती थीं। उनकी सेवाओं का मूल्यांकन कर जब भारत सरकार ने पदम श्री उपाधि देकर उन्हें सम्मानित करना चाहा, तो उन्होंने स्पष्ट कहा-'मानवता की सेवा के बदले मैं किसी प्रकार का पुरस्कार नहीं लेना चाहती। यह तो प्रत्येक मनुष्य का नैतिक कर्त्तव्य होना चाहिए।'

आशादेवी मान-सम्मान से सदैव दूर रहीं। उन्हें संयुक्त-राष्ट्रसंघ की, सामाजिक व आर्थिक विकास समिति का उपाध्यक्ष भी बनाया गया था। देश-विदेश की यात्रा करके उन्होंने गाँधीवादी विचारधारा का प्रचार और प्रसार किया। वह संसार में समानता और परस्पर सौहार्द्रता के लिए आजीवन प्रयास करती रहीं।

आशादेवी का निधन ६७ वर्ष की आयु में हुआ। जीवन के अन्तिम दिनों में भी वह मूक भाव से सेवा में रत रहीं। उनका जीवन एक ऐसी प्रकाश की रेखा के समान है, जो दीर्घकाल तक भारतवासियों को सेवा की राह पर चलने की प्रेरणा देता रहेगा।

नारी जागरण की उन्नायिका— अवन्तिकाबाई गोखले

दक्षिण-अफ्रीका से भारत वापस आकर महात्मागाँधी ने सबसे पहले ''चम्पारन-सत्याग्रह'' का शंखनाद किया था। उस प्रदेश के निवासी मानवीय अधिकारों से वंचित और अत्यन्त दुःख-दारिद्र की दशा में जीवन व्यतीतकर रहे थे। वैसे वहाँ की भूमि उपजाऊ थी और किसान भी परिश्रमी थे, पर गोरे जमींदारों के कारण उनकी हालत एक प्रकार से गुलामों की-सी हो रही थी। ये गोरे 'निलहा-साहब' कहलाते थे, क्योंकि उनका मुख्य धन्धा नील की खेती करके उसका रंग तैयार करना ही था। ये लोग किसानों को विवश करके एक बीघा खेत में से

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीन कट्टा भूमि में किसानों द्वारा अनिवार्य रूप से नील की खेती कराते थे और जो लोग इसमें किसी प्रकार का इन्कार करते, उनको धमकाने तथा गाली-गलौज से लेकर मारपीट तक का दुर्व्यवहार सहन करना पड़ता था।

लखनऊ काँग्रेस (सन् १९१६) में चम्पारन के कुछ किसान प्रतिनिधि के रूप में आये और उन्होंने अपनी दु:ख गाथा काँग्रेस नेताओं को सुनाई। उन लोगों ने उनके साथ सहानुभूति तो प्रकट की, पर गोरों के विरुद्ध कोई कार्यवाही करने का साहस किसी ने न किया। तब गाँधीजी उनकी सहायता के लिए आगे आये और काँग्रेस का अधिवेशन समाप्त होते ही वे उनके साथ चम्पारन जा पहुँचे। वहाँ पर कुछ ही समय बाद राजेन्द्रबाबू और उनके कई वकील साथी सहायतार्थ आ पहुँचे और सबने मिल कर किसानों की शिकायतें लिखने का कार्यारम्भ कर दिया। इन शिकायतों को सुनकर गाँधीजी का ध्यान इस बात पर गया कि किसानों की दुर्दशा का एक बड़ा कारण निलहे गोरों का अन्याय अवश्य है, पर स्वयं किसानों का अज्ञानान्धकार, उनकी हानिकारक रूढ़ियाँ और उनका गलत रहन-सहन भी कम दोषी नहीं है। इसलिए गाँधीजी ने निश्चय किया कि गाँवों में रहकर किसानों को सुधरे हुए और स्वास्थ्य प्रदायक ढंग से रहने की शिक्षा दे सकें, ऐसे कुछ कार्यकर्त्ता वहाँ रखने आवश्यक हैं। इन कार्यकर्त्ताओं में यह विशेषता ढूँढ़ी गई कि बिहार के गाँवों में वहाँ की सब असुविधाओं को सहन करते हुए निवास कर सकें, साथ ही गोरों की धमकियों की परवाह न करके किसानों के सुधार का कार्य करते रह सकें। इसके लिए महात्माजी ने अपने आश्रम के कुछ खास कार्यकर्त्ताओं के अतिरिक्त, जिसे इस कार्य के सबसे अधिक योग्य समझकर बुलाया वह अवन्तिकाबाई गोखले ही थीं।

अवन्तिकाबाई बम्बई की रहने वाली सुशिक्षित और आधुनिक सभ्यता से पर्याप्त परिचित महिला थीं। वह और उसके पति बबनराव काफी समय तक विलायत में रह चुके थे और वहाँ के कई अँग्रेज परिवारों से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। वे बम्बई के एक बढ़िया मकान में रहते थे, जिसमें बिजली और गैस आदि की सब सुविधायें प्राप्त थीं। इधर बिहार के जिन गाँवों में उनको रहना था, उसमें एक अन्धी लालटेन का मिल सकना भी मुश्किल था। फिर भी गाँधीजी का आदेश मिलते ही वे दोनों पति-पत्नी सैकिण्ड क्लास के बजाय थर्ड क्लास में यात्रा करके मोतिहारी पहुँच गये। थर्ड क्लास में यात्रा करने का कारण यह था कि गाँधी जी भी तीसरे दर्जे में ही यात्रा करते और अवन्तिकाबाई यदि सैकिण्ड क्लास में आती तो वे उसे अपने कार्यकर्त्ता के रूप में स्वीकार नहीं करते।

अवन्तिकाबाई का जन्म सन् १८८२ में इन्दौर में हुआ था। उसके पिता विष्णु पंत वहीं पर रेलवे कर्मचारी थे, पर इस महकमे में काम करते हुए भी वे पूरी ईमानदारी का व्यवहार करते थे। वे पुरानी परिपाटी के अनुयायी थे, इसलिए उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह छोटी आयु में ही कर दिया। उधर उसकी ससुराल वाले आधुनिक विचारों के थे और उसमें किसी अनपढ़ लड़की का सम्मान पूर्वक निर्वाह हो सकना कठिन था। इसलिए विवाह होते ही उसकी सास उसे मराठी पढ़ाने लगी और उसने शीघ्र ही काफी प्रगति करली। कुछ साल बाद उसका पति बबनराव इन्जीनियरी की परीक्षा पास करके अधिक अनुभव प्राप्त करने जब इंग्लैण्ड गया, तो जाते समय कह गया कि "अगर मेरे प्रवास-काल में अवन्तिका बाई अँग्रेजी नहीं सीख लेगी, तो मैं विलायत से किसी अँग्रेज लेडी को विवाह करके ले आऊँगा।" इस बात का प्रभाव अवन्तिकाबाई पर ऐसा पड़ा कि उसने दो वर्ष में अँग्रेजी अच्छी तरह सीख ली और उसी में बबनराव को पत्र लिखने लगी।

नर्सिंग की शिक्षा—जब बबनराव सात वर्ष विदेशी शिक्षा प्राप्त करके तथा नौकरी करने भारतवर्ष वापस आये, तो एक दुर्घटना में उनके हाथ की उँगलियाँ मशीन से कट चुकीं थीं। पर बम्बई में भी उन्होंने मशीनों की एक दुकान करली और आराम से रहने लगे। तो भी यह सोचकर कि भविष्य में न जाने क्या हो, उन्होंने अवन्तिकाबाई को नर्स का काम सीख लेने की सलाह दी। अवन्तिकाबाई ने भी उसे उचित समझकर नर्स के कार्य की बहुत अच्छी योग्यता प्राप्त करली। यद्यपि परिवार की आर्थिक परिस्थिति के कारण उसने बीच में एक या दो वर्ष ही इस कार्य को वेतन लेकर किया, पर इसको सीख लेने से उसका सेवा क्षेत्र बहुत विशाल हो गया और अनेक अवसरों पर उसने पीड़ितों की सेवा के लिए इसका बहुत अच्छा उपयोग किया।

जिस समय अवन्तिकाबाई 'नर्सिंग' का कार्य सीख रही थीं, उसी अवसर पर बातचीत चलते हुए किसी डाक्टर ने कहा कि "इस कार्य में योरोपियन महिलायें जितनी कुशल, साहसी और संलग्नता से कार्य करने वाली होती हैं, उतनी हिन्दू स्त्रियाँ हो ही नहीं सकतीं।" अवन्तिकाबाई ने उसी समय उत्तर दिया कि यदि अवसर आया तो मैं सिद्ध कर दूँगी कि इस दृष्टि से भारतीय महिलाएँ किसी प्रकार कम नहीं हैं। संयोग से एक वर्ष बाद ही बम्बई में चेचक की बीमारी बड़े भयंकर रूप में फैली और सैकड़ों मौतें होने लगीं। अस्पताल रोगियों से भर गये। अवन्तिकाबाई उस समय बड़ौदा में अपने पति के साथ दियसलाई के सर्वप्रथम भारतीय कारखाने का संचालन कर रही थीं। उस डाक्टर ने वहीं पर पत्र भेज कर उसे बम्बई आने और चेचक के रोगियों की सेवा करके अपने शब्दों को चरितार्थ करने के लिए सूचित किया। उस समय चेचक ने ऐसा भयंकर रूप धारणकर रखा था कि बड़े-बड़े डाक्टर भी उससे घबड़ाने लगे थे। पर अवन्तिकाबाई ने निर्भयतापूर्वक छह महीने तक रोगियों की ऐसी परिचर्या की, जिससे सैकड़ों व्यक्तियों की प्राण रक्षा हो सकी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.१३ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

पति की सेवा—अवन्तिकाबाई के पति बबनराव बड़े प्रगतिशील विचारों के थे और कुछ न कुछ नया काम करते रहना उनका स्वभाव था। कुछ समय बाद बारूद से उनके दोनों हाथ पुन: बहुत जख्मी हो गये। अवन्तिकाबाई ने स्वयं उनका तात्कालिक उपचार किया और बड़े अस्पताल में ले जाकर अपने सामने आपरेशन कराया। जब वे वापिस घर आये और उसीने बच्चे की तरह उनको अपने हाथ से खाना खिलाया, तो उनको यह ख्याल आया कि अब मैं कितना पराश्रित हो गया। इस पर अवन्तिकाबाई ने कहा कि आपकी सब अँगुलियाँ चली गईं तो मेरी तो दसों अँगुलियाँ मौजूद हैं, मेरे रहते आपको किसी तरह की असुविधा नहीं हो सकती और उसने अपने वचनों को पूरी तरह सत्य सिद्ध कर दिखाया।

हमारे देश के पुराने ख्यालात के लोग प्राय: कहा करते हैं कि अँग्रेजी पढ़कर स्त्रियाँ स्वच्छन्द हो जाती हैं। वे अवन्तिकाबाई की पति सेवा देखकर अपनी भूल मान गये। उसने जीवन के अन्त तक अपने अपाहिज पति की ऐसी सेवा की कि उनको कभी अपनी असमर्थता का ध्यान ही न आया। बीच में जब एक बार उनको आर्थिक कठिनाइयाँ हुईं तो अवन्तिकाबाई ने 'नर्स' की नौकरी करके ३००) मासिक कमाया, जिससे घर का कार्य भली-भाँति चलता रहा।

समाज सेवा का व्रत—सन् १९१३ में इंग्लैण्ड में रहते समय अवन्तिकाबाई ने वहाँ की प्रतिष्ठित घरानों की महिलाओं को समाज सेवा के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य करते देखा था। तभी उसने निश्चय कर लिया था कि वह भी अपना जीवन इसी कार्य में खर्च करेगी। जब वह स्वदेश वापस आई तो 'भारत-सेवक-समिति' के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता श्री देवधर की प्रेरणा से ''सेवा-सदन'' में कार्य करने लगी। इसमें वह स्त्रियों को शिक्षा देने का काम तो करती ही थी, पर उसका मुख्य ध्यान गन्दी बस्तियों में रहने वाले दुर्दशाग्रस्त मजदूरों की तरफ था। वह प्रति सप्ताह लाल बाग की मजदूर बस्ती में जाकर मजदूरों को स्वास्थ्य तरीके से रहने की शिक्षा देती और मजदूर बालकों की अपने हाथ से सफाई करके बतलाती कि उनको किस प्रकार स्वस्थ और नीरोग रखा जा सकता है।

आगे चलकर वह बम्बई कार्पोरेशन की सदस्या चुन ली गई और उसके द्वारा भी उसने मजदूरों और गरीबों के हित के बहुत से काम कराये। सेवा-सदन में अमीर स्त्रियों की प्रधानता देखकर उसने ''हिन्द-महिला-समाज'' की स्थापना की और जीवन के अन्तिम समय (मार्च १९४९) तक उसके द्वारा समाज और देश की तरह-तरह की सेवायें होती रहीं। उन्होंने गरीब और मध्यम श्रेणी की स्त्रियों के लिये अनेक स्कूल और पुस्तकालय खोले और महिलाओं को संगठित करके राष्ट्रीय-संग्राम में महत्त्वपूर्ण सहायता पहुँचाई। यद्यपि उनके पति की असमर्थता देखकर गाँधीजी ने उनको जाने की किसी आन्दोलन में भाग लेने की मनाही कर दी थी, फिर भी जब १९३१ के नमक कानून को तोड़ने के आन्दोलन में सब नेताओं के पकड़ लिये जाने के बाद कार्य के रुकने की सम्भावना जान पड़ी तो अवन्तिकाबाई मैदान में कूद पड़ी। उन्हें छह महीने की सजा दी गई, जिसके परिणामस्वरूप उसे सदा के लिए बम्बई कार्पोरेशन की सदस्यता से हटना पड़ा। पर वह तरह-तरह से अनेक सत्कार्यों में सहयोग देती रही और बहुत अधिक परिश्रम करके ''हिन्दू-महिला-समाज'' की आर्थिक स्थिति भी उसने ऐसी सुदृढ़ बनाई कि वह उसके बाद भी बिना किसी कठिनाई के चलती रह सके। अवन्तिकाबाई आज नहीं है पर ''हिन्दू-महिला-समाज'' अब भी अनेक प्रकार से समाज के दीन-दु:खी वर्ग की विभिन्न सेवाओं में संलग्न है।

त्याग, कर्म व सेवा की त्रिवेणी-मिठु बहिन

महात्मागाँधी मानव-रत्नों के जौहरी थे। उन्होंने जाने कहाँ-कहाँ से और किस-किस घराने से अपने सहयोगी ढूँढ़ निकाले थे। उनका चुनाव गजब का होता था। उनके सहयोगियों के विषय में जानकर बड़ा आश्चर्य होता है कि कैसे वे लोग अपने घर की ऊँची-ऊँची सुख-सुविधाओं को छोड़कर कष्ट-कठिनाइयों भरे कर्म-क्षेत्र में उतर आये और दैहिक सुखोपभोग को आत्म-संतोष के सामने तुच्छ सिद्ध कर गये। मिठु बहिन गाँधीजी की एक ऐसी ही परख को उजागर करती हैं।

बम्बई के धनीमानी पारसी परिवार में जन्मी मिठु बहिन को गाँधीजी ने नारी-जागरण और खादी-प्रचार का काम सौंपा तो उनके सहयोगियों को यह विश्वास ही नहीं था कि वे अपना कायाकल्प करके देश और देशवासियों के लिये अपनी समस्त सुख-सुविधाओं को न्यौछावर करके दिखा देंगी।

मिठु बहिन जिस परिवार में जन्मी थीं, उसमें सुख-सुविधाओं की कोई कमी नहीं थी। दिन में पाँच-छह बार बढ़िया से बढ़िया रेशमी साड़ियाँ बदलने वाली मिठु बहिन के घर में खद्दर का प्रयोग साड़ी के रूप में तो क्या पाँव पोंछने के लिये भी नहीं किया जाता था। कोई पर्व-त्यौहार आता तो बढ़िया शराब की बोतलें खुलती थीं। रविवार के दिन रमणीक स्थलों पर पिकनिक मनाई जाती थी। घर से बाहर निकलते ही कार हाजिर रहती थी, चाहे कुछ कदम ही दूर जाना हो। ऐसे परिवार में जन्मी, ऐसी सुख-सुविधाओं की आदी बनी मिठु बहिन का मोटे सूत की खादी पहनना, शराब बंदी के लिए शराब की दुकानों के बाहर धरना देना, गाँव-गाँव पैदल घूमना, देहात में रहकर गरीबों का सा जीवनयापन करना एक प्रकार से आश्चर्य की ही बात लगती है कि कैसे वे इतना त्याग कर सकीं थीं ? किन्तु यदि थोड़ा गहराई से विचार किया जाय तो इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य को ईश्वर ने जो भावना की संपदा दी है, वह भौतिक सम्पदाओं से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। मिठु बहिन ने जब अपने देश के जन साधारण की दशा देखी और उससे अपनी तुलना की, तो उनका अन्त:करण धिक्कार उठा। उनके करोड़ों देशवासियों को दो जून की रोटी और सिर छिपाने के लिए फूस का छप्पर भी नसीब नहीं होता, तो मैं किस अधिकार से यह सब सुख-सुविधाएँ भोगूँ। अपने अन्त:करण की इस पुकार को सुनकर ही वह इतना त्याग कर सकी।

गाँधीजी ने अफ्रीका से भारत लौटते ही स्वराज्य प्राप्ति के लिये जन-जागरण-कार्य आरम्भ कर दिया था। इस कार्य में उन्होंने पुरुषों को ही नहीं महिलाओं को भी सहयोगी बनाना अनिवार्य समझा। समाज की यह जनसंख्या यदि यों ही निद्रित रही तो फिर जागरण कैसा ? यही सोचकर उन्होंने अपने स्वराज्य आन्दोलन में मातृ-शक्ति की प्रमुख भूमिका निर्धारित की।

इस कार्य के लिये महात्मागाँधी ने राष्ट्रीय-महिला सभा की सन् १९१५ में स्थापना की। इस सभा का कार्य रचनात्मक कार्यक्रमों को संचालित करना था। इसकी अध्यक्ष सरोजनी नायडू और मंत्री मिठु बहिन पेटिट को बनाया।

मिठु बहिन को तिलक फण्ड से कुछ रुपया देकर खादी का प्रचार कार्य आरम्भ करने को कहा गया। लखपति परिवार में जन्मी मिठु बहिन का व्यावहारिक ज्ञान अभी घुटनों के बल ही चल रहा था। इस राशि से चर्खे खरीदे गये, बुनाई के लिये करघे खरीदे गये। मिठु बहिन में भावनायें तो बहुत थीं पर अभी अनुभव में कच्ची ही थी। वे इस कार्य को सफलतापूर्वक सम्पादित नहीं कर सकीं।

चरखे और करघे खराब हो गये। थोड़े दिनों में टूट भी गये और काम बंद हो गया।

अब क्या किया जाय। मिठु बहिन अपनी कुछ सहयोगिनी बहिनों के साथ महात्मा गाँधी के पास पहुँची। उनकी योजना सिनेमा शो करके पैसे एकत्रित करने और उस पैसे से पुन: खादी प्रचार कार्य आरम्भ करने की थी। उनकी यह योजना सुनी तो साधनों की शुचिता पर विश्वास करने वाले गाँधीजी कहने लगे—"मैं समझता था बहिनों के कार्यों में अधिक पवित्रता होती है पर यहाँ तो उल्टी ही बात सामने आयी है। सिनेमा शो करके पैसे जुटाने और संस्था खड़ी करने में मेरा तनिक भी विश्वास नहीं।"

मिठु बहिन की यह पहली असफलता उनकी देश सेवा की प्रबल भावना के लिए एक चुनौती बन गयी। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे नये सिरे से जीवन आरम्भ करेंगी, उसी तरह से जीवन जीऐंगी जैसा सामान्य भारतवासी जीता है।

मिठु बहिन ने पहले अपने से कार्य आरम्भ किया खादी प्रचार का। उन्होंने पहले स्वयं चर्खा कातना सीखा। चाहे कैसा भी मोटा सूत क्यों न हो, अब वे अपने ही हाथ का बुना हुआ कपड़ा पहनेंगी। भला स्वयं चरखा कातना न जानूँ और खादी न पहनूँ, तो मेरा खादी प्रचार क्या सार्थक होगा। यह सोचकर उन्होंने कातना शुरू किया अपने हाथ के मोटे सूत की दो पाट की खादी की साड़ी पहनकर जब वे गाँधीजी के सामने पहुँचीं तो वे हँस पड़े, उन्हें इस रूप में देखकर। गाँधीजी की इस हँसी में मिठु बहिन की विजय हुई थी।

उसके बाद तो मिठु बहिन यह भूल ही गयी कि वे एक सम्पन्न परिवार में पैदा हुई हैं और नाजों में पली हैं। अपने देशवासियों के साथ उन्होंने ऐसी आत्मीयता जोड़ ली कि गाँवों में रहते और गरीब आदिवासियों के साथ काम करते हुए भी उनके मन में किसी प्रकार का अपने उच्च होने का भाव नहीं आता था।

१९१५ की असफलता १९३१ तक सफलता में परिणित की जा चुकी थी। मिठु बहिन ने सूरत जिले के मरोली गाँव में अपना बुनाई स्कूल खोल दिया था। जून १९३१ में गाँधीजी इसका उद्घाटन करने पहुँचे। साथ में सरदार पटेल, खान अब्दुल गफ्फार खाँ और मीरा बहिन भी थीं। बापू जब भवन का शिलान्यास करने लगे तो उन्होंने मिठु बहिन से पूछा—"मुझसे नींव तो डलवा रही हो पर उसका उत्तरदायित्व भी जानती हो ?"

"जानती हूँ बापू, यहाँ गड़ जाऊँगी पर बुनाई स्कूल को असफल नहीं होने दूँगी।" मिठु बहिन ने उस समय महात्मा गाँधी के सामने यह जो प्रतिज्ञा की थी, उसे उन्होंने जीवन भर निभाया। उस समय बापू ने मार्मिक शब्दों में उनकी प्रशंसा की थी—"आज से दस वर्ष पूर्व यहाँ घटित होने वाली बात के सम्बन्ध में कहता तो मैं विश्वास नहीं कर पाता, पर आज मैं मिठु बहिन में जो परिवर्तन देख रहा हूँ, उस पर मुझे गर्व है। आज सर्दी, गर्मी और मूसलाधार वर्षा की चिंता किये बिना यह मोटी खादी पहनकर नंगे पाँव चलती हैं। यह खादी इनके घर में पाँव पौंछने के कपड़े से भी मोटी है। निर्धनों के बच्चे आज इनके परिवार का अंग बन गये हैं, इन्हें ये कातना सिखाती हैं, इनके साथ खेलती हैं। पैसों की कमी पड़ जाने पर परोपकार के लिये ये भीख माँगकर लाने में भी संकोच नहीं करतीं।

मिठु बहिन द्वारा मरोली में स्थापित यह आश्रम आगे चलकर बहुत फला-फूला। मरोली गाँव के लोग इन्हें देवी की तरह मानते थे। उन्हीं ने आठ बीघा जमीन आश्रम के लिये भेंट करके यह आग्रह किया था कि मिठु बहिन कस्तूरबा के साथ यहीं पर रहें। आज मरोली ग्राम के इस आश्रम में लाखों रुपयों की सम्पत्ति है। यहाँ आजादी की लड़ाई के समय से मानसोपचार केन्द्र चलाया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

गया, जहाँ जिन काँग्रेसी कार्यकर्त्ताओं का मस्तिष्क असंतुलित हो जाता था, उन्हें रखा जाता। यहाँ का पारिवारिक वातावरण, चिकित्सा, सेवा-सुश्रुषा आदि के प्रभाव से सत्तर प्रतिशत लोग स्वस्थ होकर घर लौटते थे।

मिठु बहिन स्वराज्य और स्वदेशी आन्दोलनों में गाँधीजी की प्रमुखतम सहायक बन गयी थीं। डाण्डी-कूच में वे उनके साथ रही थीं। उनके साथ सारे देश में घूमी थीं। कस्तूरबा और मिठु बहिन को गाँधीजी ने स्वदेशी वस्तु के प्रचार और नशाबंदी का कार्य करने को दिया। वे महाराष्ट्र के सूरत और नवसारी क्षेत्र की प्रत्येक तहसील में शिविर लगाकर रहीं। इन्होंने अपने साथ कार्य करने के लिये १२०० बहिनों का एक जत्था तैयार किया। इस जत्था से नमक सत्याग्रहियों की सहायता करने में भी काम में लिया गया था। घायलों की चिकित्सा और सेवा का काम इन्हीं ने सम्हाला था।

शराब की दुकानों के सामने धरना देने का कार्य मिठु बहिन और उनकी सहयोगियों ने इस निष्ठा और कौशल से किया कि पानी के भाव शराब बेची जाने पर भी दुकानों पर खरीददार नहीं रहे। गाँधी इर्बिन समझौते के बाद ये शराब बंदी शिविर बंद कर दिये गये पर सूरत जिले के मरोली ग्राम के वासियों ने मिठु बहिन को सदा के लिये अपने ही ग्राम में रहने के लिये विवश कर दिया। इन गरीब और अशिक्षित ग्रामीणों के प्रेम ने मिठु बहिन का हृदय जीत लिया। वे वहीं आश्रम बनाकर ग्राम का विकास और ग्रामीणों की उन्नति करने लगीं।

इस क्षेत्र में उन्हें माईजी के आदरयुक्त सम्बोधन से सम्बोधित किया जाने लगा। इस क्षेत्र को ग्रामोद्योग का केन्द्र बनाकर मिठु बहिन ने वहाँ के लोगों को शराब को दूर करने का एक मार्ग सुझाया। मरोली का आश्रम जहाँ जाति-पाँति का भेद-भाव किये बिना सभी ग्रामवासियों के लिये कताई, बुनाई, सिलाई तथा कृषि कार्यों के प्रशिक्षण की सुविधाएँ जुटाई जाती हैं, भारतीय जनता को आर्थिक आत्मनिर्भरता का मार्गदर्शन व प्रेरणा प्रदान करता है। भारत के हर गाँव को आज मरोली बनाने की आवश्यकता है और आवश्यकता है मिठु बहिन जैसी कर्मनिष्ठ लोकसेवी महिलाओं की, जो व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं का मोह त्यागकर देश और समाज के लिये जीवन अर्पित कर सकें।

मिठु बहिन पेटिट की सेवा भावना को सम्मानित करने की दृष्टि से भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री की मानद उपाधि से सम्मानित किया। वस्तुत: यह उनके तप, त्याग और लोकसेवी जीवन का सम्मान समझा जाना चाहिए। इस सम्मान की चाह से प्रेरित होकर तो उन्होंने यह सब किया नहीं था। उन्हें तो अपनी सेवाओं के बदले जो आत्म-संतोष मिला, वही सबसे बड़ा पुरस्कार व सम्मान था। उनका यह जीवन भारतीय-नारी-समाज की एक अमूल्य धरोहर है।

सेवा की साकार मूर्ति— राजकुमारी अमृत कौर

सन् १९३४ की घटना है। अति वृष्टि के कारण आसाम में बहने वाली नदियाँ अपने पूर्ण यौवन पर आ गयीं। नदी-नालों का यौवन-उन्माद भयावह, विकराल और विनाशकारी होता है। बाढ़ के रूप में विफर पड़ने वाला प्राकृतिक प्रकोप कई गाँवों को बर्बाद कर गया। क्या गरीब और क्या अमीर कोई भी इस प्रकोप से बच नहीं सका। एक संध्यापूर्व विशाल प्रासादों की अट्टालिकायें जहाँ ऐश्वर्य-विलास के ठहाकों से गूँजती रहती थीं, रात भर में उनका नामों निशान मिट गया। हजारों घर बर्बाद हो गये। वे मासूम बच्चे जो अपनी माँ की छाती से चिपटकर हँसते-खेलते, निश्चिंत निर्भय सोये थे, प्रात: जागते ही अपने आपको निराश्रित, भयभीत और अनाथ महसूस करने लगे।

इस घटना के परिणामस्वरूप होना तो यह चाहिये था कि सरकार और जनता अपना दायित्व तथा मानवीय कर्त्तव्य निबाहती। परन्तु सरकार को तो धन बटोरने, जन संपत्ति को लूटने और उसे अपने देश भेजने की व्यवस्था से भी फुरसत कहाँ थी। विदेशी-शासन के विदेशी अधिकारियों को विदेशी जनता की चिन्ता नहीं भी होती। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। परन्तु उसी देश के निवासी अपने भाई, आत्मीय परिवारों को बर्बाद हुआ देखकर भी निरपेक्ष बने रहे। यह बहुत बड़े आश्चर्य की बात है। उस समय बाढ़ पीड़ित लोगों को सहयोग देना तो दूर रहा, जुटाने के लिए भी कोई आगे नहीं आया।

इस स्थिति का पता कपूरथला (लखनऊ) की राजकुमारी अमृतकौर को चला, तो उनका हृदय काँप उठा और वे हृदयहीन देशवासियों को बुरी तरह फटकारने लगीं। इस पर कोई शुभ-परिणाम सामने नहीं आया तो राजकुमारी ने जन भावनाओं को जगाने के लिए आमरण अनशन कर दिया—"जब तक जनता और सरकार मिल कर आसाम के बाढ़ पीड़ितों की पुर्नवास तथा सहायता व्यवस्था नहीं करेंगे, मैं अन्न, जल ग्रहण नहीं करूँगी। मुझे अपनी राजकुमारी मानने वालों और इस रूप में मेरे प्रति श्रद्धा रखने वालों से यह सख्त अनुरोध है कि यदि मैं इस भूख हड़ताल के कारण मर भी जाऊँ, तो मेरे शव को किसी गढ्ढे में फेंक दिया जाये, ताकि कुत्ते और गीध उसे खाकर अपनी क्षुधा तृप्ति कर सकें। मेरी लाश पर कफन डालकर मेरी आत्मा पर बोझ न लादा जाय क्योंकि आसाम की वे जीवित शरीरधारी आत्मायें जब तक नंगी हैं, मृत देह को मूल्यवान वस्त्रों से ढकने पर क्या फायदा ?"

इस अपील और अमृत कौर के तप, कष्ट-सहिष्णुता ने जन भावनाओं को समुचित उभार दिया। आमरण अनशन के लिए बैठते ही राज्य के कोने-कोने से कपड़ों

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के पार्सल, विपुल धनराशि और निर्वाहोपयोगी वस्तुयें एकत्रित होने लगीं। राजकुमारी ने तब तक अनशन नहीं तोड़ा जब तक कि उपयोगी वस्तुयें पर्याप्त मात्रा में जमा न हो गयीं।

एक राज परिवार में जन्म लेने के बावजूद भी निर्धनों, विपत्तिग्रस्तों और दीन-दु:खियों के प्रति हृदय में इतनी सहानुभूति रखने वाली राजकुमारी अमृत कौर प्राचीन भारत की ऋषिका कन्या थीं। आजीवन अविवाहित रहकर उन्होंने देश और समाज के पिछड़े वर्ग तथा उपेक्षित क्षेत्रों में जो महत्त्वपूर्ण सेवा की, वह उनके आदर्श, उदात्त और कुशल चरित्र व्यक्तित्व का ही प्रतीक है। राजकुमारी अमृतकौर का जन्म २ फरवरी, १८८९ ई० को लखनऊ में कपूरथला के राजभवन में हुआ था। वे अपने पिता की एकमात्र संतान थीं इसलिए माता-पिता तथा रिश्ते-नातेदारों का समग्र प्यार उन्हीं को मिला। लाड़-प्यार के साथ लालन-पालन में उनके बौद्धिक और मस्तिष्कीय विकास का भी समुचित ध्यान रखा था। परिणामस्वरूप उनका दिशा नियोजन भी सही रूप में हुआ। भारत में प्रारम्भिक शिक्षा ही हो पायी। शेष अधिकांश शिक्षण इंग्लैण्ड में हुआ।

लंदन और आक्सफोर्ड जैसे तत्कालीन सभ्यता और आधुनिकता के केन्द्र महानगरों में रहते हुए भी वे पश्चिमी आकर्षण से मुक्त रहीं और राजघराने की परम्परागत मर्यादाओं का पालन करती रहीं। इस रूप में उनके स्वाभिमान ने उन्हें पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से बचा लिया। एक आत्म-सम्मानी व्यक्ति कभी किसी का अंधानुकरण करने के लिए तैयार नहीं होगा। पाश्चात्य रंग-ढंग के रास न आने पर राजकुमारी का अधिकांश समय एकाकी ही बीतता।

कारण एक तो उन दिनों वैसे ही कोई अँग्रेज या विदेशी आदमी भारतीय के पास नहीं फटकता था। दूसरे विदेशों में जो भारतीय छात्र-छात्रायें अध्ययन के लिए जाया करते थे, वे भी वहीं की सभ्यता में रच-पच जाते थे। पश्चिमी-समाज के अनुकरणपरक छात्र-छात्राओं की सोसायटियाँ राजकुमारी के पास क्यों आना चाहेगी भला ? जो कुछ भी हो, राजकुमारी भारत से इंग्लैण्ड पहुँचते ही सर्वप्रथम शीरबोर्ने गर्ल्स स्कूल डोरसेंट शायर में भर्ती हुईं। बाद में वे लंदन और आक्सफोर्ड में पढ़ीं।

इंग्लैण्ड में वे पढ़ी भले ही हों परन्तु वे किसी भी डिग्री की परीक्षा में बैठी नहीं। क्योंकि स्वदेश से यहाँ आ जाने पर उन्होंने अपना एक स्वतन्त्र ध्येय बना लिया था। वह था बीसवीं शताब्दी की दुनिया का खुली आँखों से निरीक्षण। उन्होंने देखा कि भारतवासी वर्तमान समय में जिस स्तर का जीवन जी रहे हैं, वह बेहद गया-गुजरा और निकृष्ट प्रकार का है। यह ठीक है कि भारत के पास अमूल्य आध्यात्मिक ज्ञान और सांस्कृतिक सम्पदा है परन्तु उसका उपयोग और लाभ तो कहीं भी होता नहीं दिखाई दे रहा है। प्रत्युत् भारत की जनता को उसके दुरुपयोग से होने वाली हानियाँ ही उठानी पड़ रही हैं।

आधुनिक सभ्यता का खुली आँखों से अध्ययन करने के लिए उन्होंने भ्रमण किया और उन तथ्यों को एकत्रित किया, जो भारत के लिए कल्याणकारी हो सकते थे। इन सब बातों का ज्ञान प्राप्तकर उन्होंने अपनी शिक्षा समाप्त की और भारत लौट आयीं।

भारत लौटने के बाद उनकी मुलाकात गोपालकृष्ण गोखले से हुई। श्री गोखले राजकुमारी अमृत कौर के पिता के अभिन्न मित्र थे। वे प्राय: सरहरनामसिंह के यहाँ आया जाया करते थे। उन दिनों भारत के राजनैतिक पुर्नजागरण का कार्य द्रुतगति से चल रहा था। इसी सिलसिले में गोखले वर्ष में कई बार लखनऊ आते जाते। जब भी वे लखनऊ के दौरे पर आते तो सरहरनाम सिंह-राजकुमारी अमृतकौर के पिता का ही आतिथ्य ग्रहण करते। उस समय राजकुमारी के इंग्लैण्ड से लौटने के बाद वे पहली बार राजभवन में अतिथि बने थे। बिटिया विदेश से शिक्षा प्राप्त कर लौटी है, यह जानकर गोखले ने उनसे मिलने के लिये उत्सुकता व्यक्त की।

भारत, भारतीयता और के कट्टर उपासक गोपालकृष्णगोखले से मिलने जाना है—सर हरनाम सिंह ने अपनी बेटी को बता दिया। परन्तु बेटी तो पहले ही स्वयं को भारतीय होने के कारण गर्वित अनुभव कर रही थीं। स्वदेशी वेशभूषा पहनकर गोखले से मिलने गयीं। इंग्लैण्ड में शिक्षा प्राप्तकर लौटी एक राजपुत्री को वहाँ के संस्कारों और प्रभाव से अस्पर्शित देखकर गोखले राजकुमारी अमृतकौर से बड़े प्रभावित हुए। बात-चीत में उन्होंने स्वदेश निष्ठा और संस्कृति के प्रति गौरव का अनुभव भी किया। उनकी प्रतिभा का परिचय प्राप्तकर गोखले ने देशसेवा के लिए प्रेरणा दी। राजकुमारी ने पूछा—''मैं अपनी स्थिति और क्षमता के अनुरूप देशसेवा करने का विचार तो रखतीं हूँ परन्तु मार्ग नहीं मिलता।''

'आकांक्षा है तो राह भी मिलेगी। बशर्ते कि तुम उसे खोजने का प्रयास करो'—गोखले ने इतना ही कहा और राजकुमारी को जैसे देशसेवा का मन्त्र मिल गया। वे निरन्तर इस बात के लिए प्रयत्नशील रहने लगीं कि किसी प्रकार निर्धन और निम्न स्तर के लोगों की कठिनाइयाँ दूर की जायें। शाही महल में तब पं० मदनमोहन मालवीय और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसी महान् विभूतियाँ भी आया करती थीं। सरहरनामसिंह के इन लोगो से भी अच्छे मैत्री सम्बन्ध थे। राजकुमारी अमृतकौर भी इन दोनों के निकट सम्पर्क में आयीं और उनकी प्रेरणा से खादी पहनने लगीं।

उन्हीं दिनों काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन बम्बई में हो रहा था। बनर्जी ने राजकुमारी को इस अधिवेशन में भाग लेने के लिए कहा। देशसेवियों के संगठन में रहकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.१७ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

वे अपना कार्य भली भाँति कर सकती हैं—यही परामर्श उन्होंने दिया। राजकुमारी अमृतकौर विशुद्ध खादी के वस्त्रों में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के साथ कॉंग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए बम्बई पहुँचीं। यहाँ बनर्जी ने उनका परिचय महात्मागाँधी से कराया। वैभव-विलास भरे जीवन की अभ्यस्त एक राजकुमारी अपनी सुख-सुविधाओं का त्याग कर देशसेवा के लिए निकली है, यह जानकर महात्मागाँधी को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने सार्वजनिक मंच से राजकुमारी अमृतकौर को अपनी बेटी कहकर सम्बोधित किया।

यही नहीं १९३० में उन्होंने अमृता (गाँधीजी राजकुमारी को यही कहकर सम्बोधित करते थे) को सेवा ग्राम में भी रख लिया। सोलह वर्ष तक वे महात्मा गाँधी के साथ रहीं और अपने गुरु के इशारों पर चलती रहीं। सेवाग्राम में रहते हुए राजकुमारी ने स्वयं को त्याग और तप-साधना में तपाकर निखार लिया। वहाँ रहते हुए उन्होंने महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए बहुत प्रयत्न किये। ग्रामीणस्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा से लेकर बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा और विवाह-विग्रह के विरुद्ध भी आन्दोलन चलाया।

भारत की नारी समस्याओं का अध्ययन कर राजकुमारी ने दो पुस्तकें भी लिखीं, जो बहुत प्रसिद्ध हुईं। १९३३ में नारी-सुधारों के लिए अखिल-भारतीय-महिला परिषद की स्थापना हुई, तो वे प्रथम अध्यक्षा चुनी गयीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति और गाँधीजी के स्वराज्य का स्वप्न साकार करने के लिए आवश्यक था कि देश की आधी पंगु पड़ी शक्ति को भी सजग और समर्थ बनाया जाय। महात्मा गाँधी अपने प्रधान कार्यक्रम का सूत्र-संचालन राजकुमारी अमृत कौर के हाथों सौंपकर लगभग निश्चिंत हो गये थे। नारी शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु उनके प्रयासों से अखिल भारतीय महिला-शिक्षा निधि की स्थापना भी हुई।

इन कार्यों के अतिरिक्त राजकुमारी अमृतकौर ने स्वातंत्र्य आन्दोलन में भी भाग लिया। इस कारण उन्हें १९४२ में गिरफ्तार भी होना पड़ा और जेल की यात्रा भी की। इतने व्यस्त कार्यों के अतिरिक्त भी वे गाँधीजी की निजी सचिव भी रहीं। देश-विदेश के लोगों द्वारा भेजे गये पत्र बहुत बड़ी संख्या में महात्मागाँधी के पास आया करते थे। कुछ पत्रों का उत्तर देने के बाद अधिकांश उत्तर राजकुमारी अमृत कौर ही लिखतीं। विभिन्न कार्य-कलाप चलाते हुए गाँधीजी के निजीसचिव का दायित्व सम्हालना बेहद थकाने वाला काम था। राजकुमारी रात देर तक पत्रों का उत्तर देती रहतीं। अधिक समय तक जागरण से उनकी आँखें सूज जातीं और उनसे पानी बहने लगता परन्तु वे उसी उत्साह के साथ अपने काम में लगी रहतीं। यही स्थिति कर्मयोग की उच्च कक्षा है। जब व्यक्ति कार्य और श्रम से थके शरीर में भी स्वस्थ और उत्साही मन रखने लगता है।

१९४७ में देश आजाद हुआ। स्वतन्त्र-भारत की वे प्रथम महिला मंत्री बनीं। स्वास्थ्य-विभाग जैसा बड़ा उत्तरदायित्व उन्हें सौंपा गया। इस पद पर रहते हुए उन्होंने देश की आम जनता के स्वास्थ्य सुधार हेतु अभूतपूर्व लगन और निष्ठा का परिचय दिया। उन्होंने मातृ और शिशु-कल्याण के कार्यक्रम को सर्वोच्च प्राथमिकता दिलायी। निर्धन बच्चों को दूध प्राप्त कराने के लिए उन्होंने निःशुल्क दुग्ध-वितरण की व्यवस्था करायी। यक्ष्मा जैसे भयंकर रोग के इलाज के लिए उन्होंने कल्याण निधि की स्थापना की।

नारी-जागरण के क्षेत्र में उनकी सेवाओं के बाद राष्ट्रीय-स्वास्थ्य-सुधार में उनका योगदान चर्चित और उज्ज्वल कर्तृत्व रहा। १९५१-५२ में वे संचार मंत्री बनीं परन्तु देश की स्वस्थ जन-शक्ति और पुष्ट सबल तरुणाई उनका अभीष्ट बनी ही रही। उनका जीवन बहुत सादा और सरल था। उच्चकुलोत्पन्ना, विदेश शिक्षिता और अनुकरणीय कार्य क्षमता की जीती-जागती प्रतिमा होने के बावजूद भी उनमें अहंकार का लवलेश भी नहीं था।

६ फरवरी, १९६४ को इस महान समाज सेविका का देहान्त हो गया। उनके निधन पर भू० पू० राष्ट्रपति स्व० डॉ० जाकिर हुसैन ने कहा था—"उन्होंने अपना सारा जीवन गरीबों और जरूरतमंदों की सेवा करने में लगा दिया था। वे हमारे लिये तथा हमारे देश की स्त्रियों के लिए एक ऐसा उदाहरण रख गयी हैं जिसे आत्मसात कर हम अपने देश का नव निर्माण कर सकते हैं।"

एक प्रेरणाप्रद व्यक्तित्व—
डॉ० मेरी पूनम लुकोज

२ अगस्त, १९६९ को त्रिवेन्द्रम में स्थानीय एवं बाहर की अनेक महिला संस्थाएँ एक अभिनन्दन-समारोह आयोजन में जुटी थीं। देश-विदेश की प्रमुख नेत्रियों एवं संस्थाओं की ओर से प्राप्त श्रद्धा-सुमन अर्पित करने के पश्चात् केन्द्रीय मंत्री श्रीमतीलक्ष्मीमेनन ने अपने स्वागत भाषण में कहा-'आप एक महिला नहीं, संस्था हैं, एक युग हैं, एक प्रतीक हैं, उस शक्ति की जिससे महिला अपने लिए लड़ी गई लड़ाई को महिला मात्र की लड़ाई मानकर उसके लिए बन्द द्वार को खोलने में सफल होती है।'

यह अभिनन्दन था एक महान महिला डॉ० मेरी पूनमलुकोज का, जिन्होंने उस दिन अपनी आयु के ८० वर्ष पूरे कर ८१ वर्ष में प्रवेश किया था।

बहुत कम लोग जानते हैं कि विदेश में प्रशिक्षित 'भारत की पहली महिला-डाक्टर' जिसने अपनी योग्यता एवं सेवा के बल पर विश्व की पहली महिला सर्जन-जनरल कहलाने का गौरव प्राप्त किया, आज भी हमारे बीच में है और मेडीकल कालिजों से सैकड़ों की

संख्या में प्रतिवर्ष महिला डाक्टरों को निकलते देख अपने स्वप्न की साकारता पर मुग्ध हो रही है।

उन्नीसवीं सदी के प्रथम दशक में जबकि लड़कियों के लिए पर्याप्त स्कूल ही नहीं थे, मेट्रिक पासकर लेना उनके लिए ऊँची शिक्षा मानी जाती थी और बी० ए० पास करने वाली लड़कियों की संख्या अँगुलियों पर गिनी जा सकती थी। मेरीपूनमलुकोज को डाक्टर बनने के लिए क्या-क्या सहना और करना पड़ा होगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। महाराजा कालेज त्रिवेन्द्रम में उन्हें विज्ञान विषय इसलिए नहीं लेने दिया गया कि इसके पूर्व वहाँ किसी लड़की ने विज्ञान की शिक्षा नहीं पाई थी। हारकर उन्हें कला विषय में ही बी०ए० की परीक्षा पास करनी पड़ी और विज्ञान-शिक्षा के लिए उन्हें विदेश जाना पड़ा।

कु० मेरीपूनम के पिता डाक्टर थे और लड़की को भी उसकी इच्छानुसार डाक्टर बनाना चाहते थे। इंग्लैण्ड जाकर डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त करने से पूर्व मेरी पूनम को दोवर्ष तक विज्ञान का अध्ययन करना पड़ा। १९१५ में मेडिकल-कालेज में डिग्री पाने के बाद उन्होंने महिला-चिकित्सा तथा प्रसूति-विज्ञान में विशेषज्ञता प्राप्त की। साथ ही बाल-रोग चिकित्सा में भी एक कोर्स पास कर के इस विषय की भी विशेषज्ञ हो गईं।

प्रथम महायुद्ध का जमाना था। सैनिक अस्पतालों में डाक्टरों की आवश्यकता थी। मेरी पूनम को तुरन्त सैनिक अस्पताल में एक जिम्मेदारी का पद सौंपा गया। उनकी सेवाओं से प्रभावित हो शीघ्र ही उन्हें उससे ऊँचे पद का आमन्त्रण भी मिला पर वे तो स्वदेश की महिलाओं की सेवा करने का व्रत लेकर गई थीं। प्रलोभन को ठुकराकर वे तुरन्त स्वदेश लौट आईं।

१९१६ में विदेश से मेडीकल की डिग्री लेकर लौटने वाली इस प्रथम भारतीय महिला-डाक्टर का त्रावणकोर राज्य में अच्छा स्वागत हुआ। त्रिवेन्द्रम में सौ बिस्तरों वाला महिलाओं एवं बच्चों का नया अस्पताल बनाया गया और मेरी पूनम को उसकी संचालिका नियुक्त किया गया। उस समय के अनुसार यद्यपि अस्पताल बहुत अच्छा बनाया गया था पर मेरी पूनम को अपनी विदेश-शिक्षा के अनुभव पर वह मामूली लगा। अस्पताल में न तो सर्जरी के नये औजार थे, न बिजली के साधन और न प्रशिक्षित नर्सें हीं। आपरेशन थियेटर में रात को लाये जाने वाले इमरजेंसी केसों के लिए केवल मिट्टी के तेल का एक लैम्प टँगा रहता था। साधन मुख्य आवश्यकता से भी बहुत कम था। इससे भी अधिक कठिनाई एक और थी, पूर्व परम्परा के अनुसार अधिकांश प्रसूति-केस दाइयों द्वारा घरों में ही सम्पन्न होते थे और अस्पतालों में केवल बिगड़े हुए मामले ही लाये जाते थे। इसलिए शुरू में १०० बिस्तरों में से मुश्किल से १५ ही एक समय में भर पाते थे। प्रसूत-केसों की संख्या भी वर्ष भर में सौ से अधिक नहीं बढ़ पाती थी और मौत के खतरे के बावजूद गम्भीर आपरेशन के लिये कोई रोगिणी तैयार नहीं होती थी।

घरों में अप्रशिक्षित दाइयों के हाथों अनेक माताओं एवं शिशुओं की मृत्यु देखकर मेरी पूनम सिहर उठीं। बस, उनके जीवन का ध्येय निश्चित हो गया। आगे की कहानी तो उनकी अथक् सार्वजनिक सेवाओं की ही कहानी है।

अस्पताल की चिकित्सा सुविधा का लाभ स्त्रियों को पहुँचाने के लिए उन्हें घर-घर चक्कर लगाकर लोगों को तैयार करना पड़ा। इसके लिए उन्होंने पहला कदम उठाया, शिक्षित पतियों को समझाकर उन्हें अपने पक्ष में करना। यह प्रयोग सफल हुआ। राह खुली और फिर अनेक कदम एक के बाद एक इस राह पर चल पड़े।

दूसरे प्रयोगों में वे दाइयों को अपनी कठिनाइयाँ सुलझाने के लिए अस्पताल में निमन्त्रित करने लगीं। बड़े धैर्य से वे उनकी कठिनाइयाँ सुनतीं और मधुर व्यवहार से उन्हें सुलझातीं। इस प्रकार शीघ्र ही उनकी विश्वासपात्र सहयोगी बनकर उन्होंने धीरे-धीरे उन्हें प्रशिक्षण के लिये भी राजी कर लिया।

अपने तीसरे प्रयत्न में जब उन्होंने प्रशिक्षित नर्सें तैयार करने के लिए ट्रेनिंग कोर्स शुरू किया, तो पहले बैच में उन दाइयों की लड़कियाँ ही भर्ती हुईं। डॉ० पूनम गाँवों के लिए प्रशिक्षित दाइयाँ एवं अस्पतालों के लिए प्रशिक्षित भारतीय नर्सें तैयार करने के लिए द्विवर्षीय विधिवत् प्रशिक्षण पाठ्य-क्रम चलाने वाली प्रथम भारतीय महिला हैं। आज जो नर्सिंग ट्रेनिंग सेंटरों, मातृ एवं बाल कल्याण केन्द्रों का देश में जाल सा बिछा हुआ है, उनसे लाभ उठाने वाली हजारों स्त्रियों के हृदय से फूटा सन्तोष एवं कृतज्ञता का स्वर क्या उन तक न पहुँचता होगा ? निश्चय ही ८१ वर्ष की अवस्था में भी उनके चेहरे पर खिलती हुई मुस्कान इसी का सुखकर परिणाम है।

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ जीतने के बाद तो श्रीमती पूनम लुकोज को सफलता पर सफलता मिलने लगी। दीवान सर सी०पी० रामा स्वामी अय्यर के प्रयत्नों से अस्पताल में आवश्यक साधन भी जुटने लगे। कैरोसिन लैंप का स्थान विभिन्न कोणों से रोशनी फेंकने वाले गैस के लैंप ने लिया। नये औजार मँगवाये गये। स्वयं उनके पति के० लुकोज ने एक साधन-सम्पन्न सैट लेकर वार्ड बनवाकर अस्पताल को दान किया। प्रशिक्षित नर्सें जी लगाकर काम करने लगीं, अस्पताल का नाम फैलने लगा और आने वाले रोगियों की संख्या बेतहाशा बढ़ गई। जहाँ पहले यह संख्या वार्षिक एक सौ थी, वह एक हजार से ऊपर हो गई। आपरेशन के लिए शुरू में कोई रोगिणी तैयार नहीं होती थी। यदि कठिनाई से कोई भी

भर्ती हो भी जाती तो आपरेशन वाले दिन पूर्व ही किसी बहाने वार्ड से निकल भागतीं। धीरे-धीरे उनका यह भय दूर हुआ और कठिन केसों में स्वयं ही आपरेशन कराने की माँग आने लगी। श्रीमती पूनम ने विभिन्न खिलौने एवं तस्वीरों वाली पुस्तकों से सजा-धजा बच्चों का एक स्वतन्त्र कक्ष भी बना दिया। उनके अस्पताल छोड़कर ऊँचे पद पर जाने तक यह अस्पताल, यह बच्चों का वार्ड तथा यह नर्सिंग ट्रेनिंग स्कूल पूरे भारत में ख्याति प्राप्तकर चुका था।

१९२४ में श्रीमती पूनम लुकोज राज्य स्वास्थ्य-विभाग की संचालिका बनादी गईं। फिर १९३८ में जब वे सर्जन बनीं, तो विश्व में इस पद पर पहुँची वे पहली महिला थीं। अपने प्रशासकीय सेवा काल में उन्होंने राज्य के सभी अस्पतालों का निरीक्षण कर उनमें अनेक सुधार किये। उन्होंने ही त्रिवेन्द्रम में 'एक्सरे इन्टीट्यूट' तथा 'रेडियम वार्ड' सबसे पहले स्थापित किये। दक्षिण त्रावणकोर की एक रम्यस्थली में तपेदिक के रोगियों के लिए एक नये अस्पताल की स्थापना का श्रेय भी उन्हें ही प्राप्त है। अपने उदार दृष्टिकोण, मधुर स्वभाव, व्यावहारिकता और अथक् परिश्रम के कारण उनका व्यक्तित्व, लोकप्रियता एवं सफलता का पर्याय बन गया। उनका दाम्पत्य-जीवन भी बहुत सुखद है, अपने कार्य और समाज-सेवा के बीच भी वे घर, पति एवं बच्चों के लिए पर्याप्त समय निकाल लेती हैं।

आधुनिक भारतीय कामकाजी महिलाओं के लिए उनका सन्देश है—प्रारम्भ में साधन कम थे, कठिनाइयाँ अधिक। अब साधन-सुविधाओं का विकास हो गया है, तो कार्य करना अपेक्षाकृत सरल है, किन्तु नई सुविधाओं ने नई समस्याओं और जिम्मेदारियों को भी जन्म दिया है। अत: आधुनिक भारतीय युवतियों को अपने अधिकारों एवं दायित्वों का समन्वय करके ही सफलता का मार्ग तलाश करना चाहिये।

महान प्राकृतिक चिकित्सक—
सौदामिनी बहिन

भाद्र मास, सौदामिनी बहिन ने तीज पूजा के दिन उपवास किया। उपवास के कारण ऐसी गर्मी बढ़ गई कि उन्हें शाम को बुखार आ गया और उस बुखार ने टायफाइड का रूप ले लिया। ऐलोपैथी चिकित्सा कराई गई, बुखार तो उतर गया पर सिर के बाल धीरे-धीरे सब गिर गये। हाथ-पैरों में जलन रहने लगी। स्वास्थ्य दिन प्रति दिन गिरता गया। दो वर्ष बाद फिर बुखार आया ऐलोपैथी चिकित्सा की फिर शरण लेनी पड़ी, जिससे बुखार तो चला गया पर पैरों में इतनी जलन पड़ने लगी कि जमीन पर पैर रखना मुश्किल हो गया।

बीमारी से परेशान होकर अपनी माँ के घर चली गईं, जहाँ परिवार वालों ने पटना ले जाकर अच्छे से अच्छे डाक्टरों का इलाज कराया। शरीर में माँस तो बढ़ रहा था पर उसी हिसाब से कमजोरी भी बढ़ती जा रही थी। सारी त्वचा पर काले-काले धब्बे पड़ गये। चेहरा कुरूप हो गया। घर से बाहर निकलने में भी शरम अनुभव होने लगी। आखिर परेशान होकर सौदामिनी ने निश्चय किया कि वे अब किसी भी प्रकार का इलाज न करायेंगी। दवा खाते-खाते और परहेज करते-करते तंग आ गई थीं।

संयोग की बात उनके घर एक प्राकृतिक चिकित्सक आये। जिन्होंने सौदामिनी की बिगड़ती हुई हालत देखी तो बहुत चिन्ता व्यक्त की, पर वे निराश न हुये उन्होंने एनीमा, मिट्टी की पट्टी तथा सब्जी व फल के रस लेने की सलाह दी। साथ ही प्राकृतिकचिकित्सा की पुस्तकों का एक सेट भी दिया, जिसमें महात्मागाँधी द्वारा लिखित 'आरोग्य की कुंजी' नामक पुस्तक भी थी।

मरता क्या न करता। सौदामिनी जीवन से परेशान आ गई थीं। वे प्राकृतिक-चिकित्सा की ओर आकर्षित हुईं। पर समस्या यह थी कि पुरुष चिकित्सक उनकी चिकित्सा कैसे करें ? अत: उनके पति समर्थीबाबू ने चिकित्सा का सारा जिम्मा स्वयं लिया। फलों का रस, एनीमा, मिट्टी की पट्टी आदि उपचार प्रारम्भ किये गये, जिससे कुछ ही दिनों में लाभ दिखाई देने लगा, अब तो पूरा परिवार ही प्राकृतिक चिकित्सा के साहित्य को पढ़ने लगा।

जीवन की यही ऐसी घटना थी जहाँ से सौदामिनी बहिन के मन में प्राकृतिक चिकित्सा ने गहरी जड़ें जमा लीं। स्वास्थ्य सुधरने पर उन्हीं प्राकृतिक चिकित्सक ने संथाल परगना के जसीडीह ग्राम में होने वाले प्राकृतिक चिकित्सा-शिविर में आने का परामर्श दिया। यह शिविर पूरे एक मास तक चला जहाँ प्राकृतिक-चिकित्सा के प्रति आस्थाओं ने स्थायित्व ग्रहणकर लिया। डाक्टर कृष्णम्राज भी इस शिविर में थे, उन्होंने सौदामिनी को इस क्षेत्र में सेवा करने की प्रेरणा दी। शिविर के बाद उसी ग्राम में एक प्राकृतिक चिकित्सालय चलाने का निश्चय किया गया। सौदामिनी ने आगे बढ़कर उस चिकित्सालय में कार्य करने के लिये अपनी सेवाएँ अर्पित करने का प्रस्ताव रखा।

तीन वर्षों में उस क्षेत्र में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति लोगों में ऐसा विश्वास जाग्रत हुआ कि सैकड़ों की संख्या में असाध्य रोगी वहाँ आने लगे। अब उस चिकित्सालय का विकास भी काफी हो गया था। पति समर्थीबाबू भी अपना कार्य नौकरों पर छोड़कर वहीं आ गये और रोगियों की सेवा करने लगे। बाद को दोनों पति-पत्नी वहाँ से अपने गाँव लौट आये। यहाँ आकर यद्यपि उन्होंने प्राकृतिक-चिकित्सा का कोई केन्द्र तो न खोला पर उनका प्रभाव पूरे गाँव पर इस प्रकार पड़ा कि प्रत्येक परिवार में रोग-निवारण के लिए शहर दौड़ने की

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपेक्षा प्राकृतिक-उपचार करना शुरू कर दिया। उन्होंने पशुओं पर भी प्राकृतिक-चिकित्सा के प्रयोग किये, जिसमें उन्हें सफलता मिली, फिर तो गाँव वाले पशु रोगों में उन्हीं प्रयोगों को अपनाने लगे।

बिहार प्रान्त के देहात की एक बहू की जब कल्पना मस्तिष्क में आती है, तो ऐसा लगता है कि वह लम्बा घूँघट करके हाथों में बड़ी-बड़ी चूड़ियाँ पहनकर घर की चहारदीवारी के भीतर बन्द रहती होंगी। पर सौदामिनी बहिन को आप देखेंगे कि बिना किनारी की सफेद धोती और बिना चूड़ियों के हाथ। एक बार वे रेल-यात्रा कर रही थीं कि किसी वृद्धा ने बड़ी सहानुभूति से पूछा 'क्या भगवान को तुम्हारा भाग्य ही ऐसा लिखने को रह गया था। घर में क्या बाल बच्चे भी हैं।'

'हाँ ! दो लड़के हैं।'

'उनका पालन-पोषण क्या नाना करते हैं ?'

'नहीं ! उनके पिता ही देखभाल करते हैं।'

इतना सुनकर वह वृद्ध महिला दंग रह गई और सोचने लगी कि इस सुहागन ने अपना रूप क्या बना रखा है।'

बिहारप्रांत की परम्परानुसार सौदामिनी की शादी पन्द्रह साल की उम्र में ही हो गई थी। पचास व्यक्तियों का संयुक्त परिवार था, पर सौदामिनी ने अपनी सेवा, सहानुभूति, प्रेम और सौम्य-व्यवहार के कारण सारे परिवार का विश्वास तथा प्रेम प्राप्त कर लिया था। उन्होंने पर्दा-प्रथा की निरर्थकता को घर वालों के सामने रखा तो उन्होंने विवेकशीलता से काम ले उसकी वास्तविकता को समझा। बाद में सेवा-भावना से जब उनका कार्यक्षेत्र घर से बाहर हो गया, तब भी परिवार वालों ने विरोध नहीं किया वरन् सहयोग ही दिया।

अनेक स्त्री-पुरुषों ने प्राकृतिक-चिकित्सा के द्वारा उनसे लाभ उठाया। वे पुरुषों की सेवा तथा उपचार करने में भी किसी प्रकार का संकोच नहीं करती थीं। उनकी सादगी और सेवा-भावना के कारण रोगी भी डाक्टर न मानकर माँ या बहिन के रूप में देखते प्राकृतिक-चिकित्सा के दीर्घकालीन अनुभव के बाद उन्होंने देखा कि यह चिकित्सा रोगी को परावलम्बी बनाती है और बड़े व्यक्तियों तक ही सीमित बनकर रह गई है। अत: उन्होंने इसका प्रचार गाँव-गाँव करने का निश्चय किया। गाँव के कितने रोगियों को स्वावलम्बी बनाकर प्राकृतिक-जीवन जीने में सहायता की।

सौदामिनी बहिन की चिकित्सा से लोगों में यह विश्वास पैदा होने लगा है कि इसके द्वारा कठिन से कठिन रोगों में आराम पहुँचाया जा सकता है, दूसरे निर्धन व्यक्तियों की एकमात्र चिकित्सा 'प्राकृतिक चिकित्सा' ही है। भारत के अधिकतर व्यक्ति निर्धन ही तो हैं फिर क्यों न इसकी शरण लेकर अपने स्वास्थ्य सुधार में पहल करें।

सौदामिनी बहिन ढाईवर्ष बिहार कस्तूरबा ट्रस्ट के प्रतिनिधि के रूप में भी कार्य कर चुकी हैं। पर उनकी रुचि ही प्राकृतिक-चिकित्सा द्वारा जनसेवा की रही, अत: उसी के अनुसार उन्होंने अपने को ढाल लिया और परिवार के उत्तरदायित्वों से पूर्णरूपेण मुक्त होकर पूरी तरह से अपना पूरा समय रोगी और असहाय व्यक्तियों की सेवा में देने का प्रयत्न करती रहीं।

निराश्रिताओं को आश्रय देने वाली निराश्रिता श्रीमती रमाबाई

जीवन का सारा रस सोख लेने वाली गरीबी, हृदय को तोड़ देने वाले सामाजिक अत्याचारों और अस्तित्व मिटा देने वाली आपत्तियों के बीच भी जिन्होंने अपने जीवन को सफलकर दिखाया, उस पंडित रमाबाई का जन्म मैसूर राज्य के पश्चिमी घाट के वन प्रान्त में एक कुटिया में अप्रैल १८५८ को हुआ।

रमाबाई के पिता का नाम अनन्त शास्त्री डोंगरे था। वे एक विद्वान ब्राह्मण थे, साथ ही स्त्री-शिक्षा के हिमायती और सुदामा की तरह गरीब थे।

पंडित अनन्त शास्त्री अपने विचारों का प्रचार अपने ब्राह्मण-समाज में किया करते थे और लोगों को अपनी बहू-बेटियों को पढ़ाने की प्रेरणा देते थे। उनके इस प्रचार से रूढ़िवादी उनके कुटुम्बी उनकी जान को आ गये। विवश होकर अनन्त शास्त्री घर छोड़कर अपनी पत्नी और तीन बच्चों को लेकर मैंगलोर से तीस मील दूर गंगामूल नामक वन में एक कुटिया बनाकर रहने लगे।

अनन्त शास्त्री एक तो यों ही गरीब थे, ऊपर से विद्वानों तथा साधु-सन्तों का आतिथ्य बहुत किया करते थे, जिससे उनकी कमाई और घर की जो थोड़ी-बहुत सम्पत्ति थी, तेजी से स्वाहा होती चली गई और एक दिन ऐसा आया कि अन्न के लाले पड़ने लगे। दान अच्छी बात है, उदारता दैवीगुण है। पर अपनी सामर्थ्य भर अन्यथा अपनी सीमा से आगे निकल जाने पर यह जी का जंजाल बन जाता है। घर आये अतिथि की उतनी ही सेवा करनी चाहिये, जिसका निर्वाह हर समय किया जा सके। परिवार को भूखा रखकर आतिथ्य-पुण्य के स्थान पर पाप सरीखा बन जाता है। हर काम की संसार में एक सीमा है, एक मर्यादा है और उस मर्यादा की रक्षा करना सबसे बड़ी बुद्धिमानी है।

पिता के पास पैसा तो था ही नहीं, जो वे रमाबाई को पाठशाला भेजते। निदान उन्होंने उन्हें घर पर ही संस्कृत एवं मराठी की शिक्षा दी। रमाबाई का मन पढ़ाई में इस कदर लगता था कि उन्हें संस्कृत श्लोकों की पुस्तकें कंठस्थ हो गईं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.२१ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

परिवार की जीविका चलाने के लिए रमाबाई के पिता ने पुराणों की कथा सुनाने का काम अपनाया। इस काम में उन्हें दूर-दूर तक घूमना पड़ता और भूखा-प्यासा रहना पड़ता था। नतीजा यह हुआ कि उनका स्वास्थ्य समाप्त हो गया, जिससे वे शीघ्र ही स्वर्ग सिधार गये। इसी बीच भीषण अकाल के प्रकोप से उनकी माता भी उन्हें छोड़कर चली गईं और रमाबाई अपने दो भाई-बहिनों के साथ पूर्ण रूप से अनाथ हो गईं।

एक तो दुर्भिक्ष का प्रकोप, दूसरे जीविका का कोई साधन नहीं। भूखों मरने की नौबत आ गई। किन्तु बुद्धिमती रमाबाई ने हिम्मत न हारी और जंगल से कन्दमूल तथा फल ला-लाकर अपने भाई-बहिनों के प्राण बचाये।

इस आपत्ति की मारी-सताई हुई रमाबाई एक भिखारिनी के रूप में चार सौ मील की पैदल यात्रा करके कलकत्ता आ गई। अपनी इस आपत्ति का वर्णन करते हुये उन्होंने एक स्थान पर स्वयं कहा है कि—"अन्न तो असम्भव था, फिर भी पेट की ज्वाला वनस्पतियों से बुझा लेती थी किन्तु शीत की समस्या हल न होती थी। आखिर अपने भाई-बहिनों के प्राण बचाने के लिये किसी गड्ढे में बैठकर सूखी रेत, पत्तों और घास-फूस का ओढ़ना बना लेती थी।"

यह थीं आपत्तियाँ, जिनको रमाबाई ने सहन किया और इन्हीं आपत्तियों पर विजय प्राप्तकर समाज की ऐसी सेवा की कि आज उनका नाम इतिहास में अमर है। धैर्य, साहस और सन्तोष रमाबाई के प्रमुख साधन थे और उन्होंने स्वीकार किया है कि इन्हीं गुणों की बदौलत वे आपत्तियों का अथाह सागर पारकर सकी हैं। अपने इस देशाटन में रमाबाई ने हिन्दी, कन्नड़ और बँगला भाषायें और सीख ली थीं, जिन्होंने उन्हें अपनी यात्रा पूरी करने में बहुत सहायता की।

बाल्यकाल में प्राप्त विद्या कलकत्ता आकर उनके बहुत काम आई। बंगाल में उन दिनों विधवाओं की दशा बहुत शोचनीय थी। माँ-बाप, सास-ससुर और देवर आदि के रहते हुए भी वे एक पति के न रहने से सबके लिये भारस्वरूप बन जाती थीं। उनको अभागा समझकर घर-द्वार से निकाल दिया जाता था। पढ़ी-लिखी न होने से या तो भीख माँगती थीं या किसी गलत रास्ते पर पड़ जातीं अथवा विदेशी मिशिनरियों के हाथ लग जाती थीं।

कलकत्ता पहुँचकर रमाबाई अपना दुख तो भूल गईं और इन बेचारी विधवाओं के लिये काम करने लगीं। उन्होंने किसी का सहारा लिये बिना बाल-विवाह और विधवाओं के साथ हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध प्रचार करना शुरू कर दिया। इस समय रमाबाई की आयु केवल बाईस वर्ष की थी। उनके भाषणों में हृदय की पीड़ा, समाज का कल्याण तथा हिन्दू शास्त्रों के प्रमाणों का समावेश रहा करता था। जिसका परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही कलकत्ते में वे लोकप्रिय हो गईं और उनकी बहुत सी मुसीबत जन सहयोग से दूर हो गईं।

अभी उनकी कठिनाइयों में नाम मात्र को ही सुविधा का श्रीगणेश हुआ था कि उनके हृदय पर एक गहरा आघात और लग गया। उनके भाई की मृत्यु हो गई। रमाबाई के लिए यह आघात असह्य था। किन्तु उन्होंने समाज के हर बच्चे के लिए अपनी ममता का विस्तार कर किसी प्रकार अपनी पीड़ा बहला ली और फिर काम में जुट गईं।

रमाबाई संसार में बिल्कुल अकेली रह गई थीं और इधर तरुणाई आ जाने से उनका रंग-रूप भी पूरी तरह से निखर चुका था। अब उन्हें सामाजिक क्षेत्र में निर्भीकता, स्वतन्त्रता तथा निरापद रूप में कार्य करने में बाधा होने लगी थी। उनके सम्पर्क में आने वाले बहुत से लोगों ने उनसे अन्तरंगता प्राप्त करने की कोशिश की। इसलिये उन्होंने इच्छा न होते हुए भी विवाह कर लेना आवश्यक समझा।

किन्तु ठीक से ठौर-ठिकाना तथा जाति-पाँति में विश्वास न होने से ब्राह्मण तो दूर कोई सवर्ण हिन्दू उनसे विवाह करने को तैयार न हुआ। हिन्दू-जाति की इस मूढ़ता पर उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ और अन्त में आत्म-मर्यादा की रक्षा के लिये उन्होंने विपिन बिहारी मेधावी नामक एक वकील से अन्तर्जातीय विवाह कर लिया। विपिन बिहारी जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के एम०ए० और बड़े योग्य वकील थे। उन्होंने रमाबाई को अँग्रेजी की शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी।

किन्तु रमाबाई की विपत्तियों का सिलसिला अभी खत्म न हुआ था। डेढ साल बाद हैजे से उनके पति की भी मृत्यु हो गई और रमाबाई संसार में फिर अकेली रह गईं। एक तो रमाबाई यों ही बेसहारा थीं, दूसरे अन्तर्जातीय विवाह कर लेने पर तो उस समाज ने भी उनकी दशा पर दया नहीं की, जो कुछ समय पहले उनकी विद्वता से प्रभावित होकर उन्हें देवी मानता था।

वैधव्य के साथ रमाबाई के साथ एक दिक्कत और थी। उनकी गोद में एक नन्हीं-सी बच्ची थी। रमाबाई मुसीबतों से जूझती हुई स्वयं तो प्राण देने में कोई संकोच न करतीं किन्तु उस बच्ची को सर्वथा अनाथ न करना चाहती थीं। विवश होकर उन्होंने आश्रय के लिये अपने सम्बन्धियों का द्वार खटखटाया। वहाँ से भी उन्हें दुत्कार के अतिरिक्त और कुछ न मिला। फिर भी साहस की धनी उन्होंने हिम्मत न छोड़ी और पुनः समाज-सेवा के क्षेत्र में उतरने की ठान ली।

उन्होंने रानाडे, केलकर और भंडारकर प्रभृति समाज सुधारक तथा उदार दृष्टिकोण वाले नेताओं से भेंट की और स्त्री-समाज के सुधार तथा उन्नति के लिये काम करने की इच्छा प्रकट की। उक्त नेताओं ने न केवल उनके विचारों का स्वागत ही किया, अपितु प्रोत्साहन के साथ सहायता देने का भी वचन दिया।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सेवा का क्षेत्र और नेताओं का प्रोत्साहन पाकर रमाबाई ने जी खोलकर काम करना शुरू किया और शीघ्र ही ''महिला-समाज'' नामक एक संस्था की स्थापना कर डाली, जिसकी उपयोगिता ने उसकी शाखायें सारे महाराष्ट्र में फैला दीं।

अपने इस कार्य से रमाबाई का प्रभाव इतना बढ़ गया कि उनकी पहुँच सरकार के ऊँचे-ऊँचे अफसरों तक हो गई. जिसके फलस्वरूप सन् १८८२ के अँग्रेजी-शिक्षा आयोग ने उन्हें अपनी राय देने के लिए आमन्त्रित किया। उन्होंने अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाया और भारतीय नारी के लिए शिक्षा की सुविधाओं के लिए जोरदार सिफारिश की। उनकी वह सिफारिश महारानी विक्टोरिया तक पहुँचाई गई, जिनकी प्रसन्नता ने उन्हें इंग्लैण्ड पहुँच कर अँग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर दिया।

इंग्लैण्ड पहुँचकर उन्होंने सेंटमेरीज होम में रहकर अँग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की और चेल्टन्हेम के लेडीज कालिज में दो साल संस्कृत पढ़ाई। तत्पश्चात् अमेरिकन शिक्षा प्रणाली का अध्ययन करने के लिए वे अमेरिका चली गईं, जहाँ उन्होंने किंलरगारटन शिक्षा प्रणाली का प्रशिक्षण लिया और समय निकाल कर 'दी हाई कास्ट हिन्दू वोमन' (सवर्ण हिन्दू नारी) नामक एक पुस्तक भी लिखी। जिसका मुख्य विषय हिन्दू जाति में स्त्रियों पर किये जा रहे अत्याचारों का दिग्दर्शन, आलोचना तथा समीक्षा भी था।

इस पुस्तक का अमेरिकन नारी-समाज पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वहाँ 'रमाबाई एसोसिएशन' नाम की एक संस्था इस मन्तव्य से स्थापित की गई कि भारतीय विधवाओं को अमेरिका से भरसक सहायता: कराई जाये। इस संस्था ने भारत में एक विशाल विधवा-आश्रम खोलने तथा दस साल तक उसे हर प्रकार की मदद देकर चलाने का वचन दिया।

सन् १८८९ में रमाबाई भारत लौटीं और अमेरिका के 'रमाबाई एसोसिऐशन' की ओर से भारत में शारदा-सदन नाम से एक विधवा आश्रम खोला। जिसके उन्होंने चार मुख्य उद्देश्य रखे—(१) विधावाओं को शिक्षित करके समाज की सुसंस्कृत संदस्या बनाना। (२) उन्हें पाश्चात्य रंग-ढंग से बचाना। (३) विधवाओं को ईसाइयों के जाल से बचाना। (४) शारदा-सदन को सही मानों में विधवाओं का सच्चा घर बनाना।

इन चारों उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उन्होंने विधवाओं को अध्यापकी, धाय तथा नरसरी की ट्रेनिंग देनी शुरू की तथा साथ ही शिक्षा का पूरा वातावरण विशुद्ध रूप से भारतीय रखने की व्यवस्था की।

सन् १८९७ में अमेरिका के रमाबाई एसोसिएशन की सहायता के दससाल समाप्त हो गये और उसने मदद देना बन्द कर दी। निदान मदद की अवधि बढ़वाने के लिए रमाबाई पुन: अमेरिका गईं और जब अपने उद्देश्य में सफल होकर लौटीं तो उन्होंने आश्रम का एक और भवन बनवाया, साथ ही 'कृपा-सदन' नाम का एक अन्य आश्रम खोला, जिसमें न केवल विधवाओं बल्कि समाज की पतिताओं को भी आश्रय तथा काम देने की व्यवस्था की गई।

अनन्तर उन्होंने बम्बई के विश्वविद्यालय से बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और उसका उपयोग शारदा सदन के हाईस्कूल की प्रिंसिपल के रूप में किया और गुलवर्ग में एक नया हाईस्कूल खोला।

किन्तु कुछ ही समय बाद उनकी एकमात्र प्राणाधार पुत्री मनोरमा का देहान्त हो गया। जिसका आघात, उसका निरन्तर कार्य एवं आपत्तियों से जर्जर हुआ स्वास्थ्य सँभाल न पाया जिससे वे कुछ समय बीमार रहकर ५ अप्रैल, १९०२ को इस लोक का परित्याग कर गईं।

विवाह के सम्बन्ध में यदि उन्होंने समाज के तिरस्कार को महत्त्व दिया होता और उसका विरोध निषेधात्मक रूप में किया होता तो अपनी हीनताओं की भेंट चढ़कर एक अज्ञात मृत्यु ही मरी होतीं। आज उनको न तो कोई जानता और न उनका नाम लेता।

इसके विपरीत उन्होंने अपने जीवन को एक आदर्श जीवन बनाया, अपने चरित्र की रक्षा की और समय के अनुसार समझ से काम लेकर अपने मानव-जीवन को निर्माण कार्यों में लगाकर उसको सार्थक बना लिया। विपत्तियों से घबराकर अपने को गिरा देने पर भी वे अमर न हो जातीं बल्कि एक कलंकपूर्ण जीवन काटती हुई अंत में किसी ऐसे ही आश्रम, सदन अथवा अनाथालय में जाकर आश्रय लेतीं, जिनकी कि उन्होंने स्वयं स्थापना करके समाज का हित किया, संसार में यश लाभ किया और आत्मा को शान्तकर अमर बन गईं।

जिन भयानक आपत्तियों से घबराकर कोई भी अनाथ लड़की जब अपने भाई-बहिन के साथ भिखारिणी बन सकती थी, उन आपत्तियों को साहस, आत्म-विश्वास, धैर्य तथा सेवा-भाव से विजयकर महामानसी रमाबाई ने हर स्त्री-पुरुष के सम्मुख एक अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया है। नि:सन्देह भारतमाता की लाड़ली रमाबाई वन्दना की पात्र हैं।

आदिवासियों की नेता—
श्रीमती राजमोहिनी देवी

राजमोहिनी देवी का भारत के लोगों को खास परिचय नहीं है। वे सरगुजा आदिवासी क्षेत्र की न केवल नेता हैं बल्कि देवता हैं।

मध्यप्रदेश का सरगुजा जिला आदिवासी जिला है। उस जिले के दुबारी नामक गाँव में साधारण आदिवासी घराने में करीब सन् १९२० में राजमनियाँ का जन्म हुआ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.२३ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

रिवाज के अनुसार राजमनियाँ का बचपन में विवाह हो गया था। सुसराल में छह महीने ही रह पाई होगी कि टाँग में जख्म होने के कारण माँ-बाप के घर आ गई। करीब छह वर्ष उस बीमारी में लग गये, पति ने उसे छोड़ दिया था। स्वस्थ हो जाने के बाद दुबारा विवाह हुआ। यह पति बहुत गरीब और आलसी था। राजमनियाँ ने अपनी मेहनत, मजदूरी से घर की हालत सुधारी, क्योंकि पति के भरोसे घर नहीं चल पाता। राजमनियाँ के सात सन्तान हुईं। इनमें से अब दो लड़के और दो लड़कियाँ हैं।

सन् १९४८ से ५० के बीच वर्षा की कमी के कारण जिले में भारी अकाल पड़ा। वैसे भी यहाँ के बहुत से वनवासियों के जीवन का आधार तो जंगल के कन्द-मूल ही रहते हैं। अकाल के दिनों में तो सारा आधार ही ये कन्द-मूल थे। पर बस्ती के आस-पास के जंगल में यह आधार भी नहीं रहा था। एक दिन राजमनियाँ कन्द-मूल ढूँढ़ते-ढूँढ़ते काफी दूर रजमेलान जंगल में निकल गई। शाम तक कुछ थोड़े से कन्द खोज पाई थी। वहीं एक नाले पर बैठे-बैठे कन्द धोती जा रही थी और रोती जा रही थी कि आज घर जाकर सात बच्चों को क्या खिलाऊँगी ?

ठीक उसी समय उसने देखा कि कोई महात्मा खड़ा है। देखते ही उसकी ओर दौड़ी और पाँव पकड़कर उसे अपना दुख सुनाने लगी। महात्मा धीरज बँधाते हुए बोले—"बेटी ! सरगुजा के लोग पैदा करने वाले भगवान की पूजा नहीं करते। उनके मन में जंगल के जीवों के लिये कोई दया नहीं है। ईश्वर के दिये हुए अनाज को सड़ाते, बिगाड़ते हैं। इसलिए भगवान का उन पर कोप है।" राजमनियाँ ठीक तरह से समझ नहीं पाई। उसके फिर से पूछने पर महात्मा ने समझाया कि लोगों को माँसाहार छोड़ना चाहिए। महुआ और चावल जैसी अच्छी चीजें सड़ाकर शराब बनाते हैं और पीकर बुद्धि भ्रष्ट करते हैं। ये सब छोड़ दें। अपना घर-आँगन साफ-सुथरा रखें। प्रतिदिन स्नान करके भगवान की पूजा करें और बाद में भोजन करें, तो अवश्य ईश्वर की कृपा होगी और संकट दूर होंगे। राजमनियाँ के चित्त में साधु-महात्मा के शब्द घर कर गये। वहाँ की आदिवासी जनता के लिये यह नया सन्देश था। उसने पूछा—"महाराज ! जनता में यह सुधार कैसे होगा ?" उत्तर मिला—"तुम इस काम में लगो।" राजमनियाँ के मन में श्रद्धा के साथा-साथ शंका भी हुई। बोली—"मैं अबला स्त्री यह काम कैसे कर सकती हूँ ?" आदेश मिला—"भगवान का काम तुम्हें ही करना है।" इतना कहकर महात्मा जंगल में चले गये।

राजमनियाँ के लिये यह सब चकाचौंध की-सी घटना हुई। मन में एक अजीब उत्साह और बेचैनी भर आई। घर पहुँचते ही उसने अपने घर के शराब और माँस के मटके बाहर फेंक दिये। घर को लीप-पोतकर स्वच्छ किया। उसके अन्दर विचित्र ज्वाला जल रही थी। रात के समय चुपचाप आँगन में बैठकर आकाश की ओर देखती रही। बस दो दिन तक ऐसा ही चला। पति, घर के लोग, गाँव के लोग उसे पागल समझने लगे। तीसरे दिन वह घर से बाहर निकलकर सामने की चट्टान पर बैठ गई और महात्माजी का उपदेश सुनाने लगी। लोग तो उसे पागल समझते थे, लेकिन साथ-साथ कुछ भाई-बहिनों को बात जँचने लगी। वे अपने घरों से गन्दगी बाहर निकालने लगे। जिनको बात जँची नहीं, ऐसे लोगों ने तथा गाँव के मुखिया ने उसे डाँटा-धमकाया पर राजमनियाँ पर कोई असर नहीं हुआ। वह तो वैसे ही पागल की तरह अपनी बात लोगों को सुनाती रही। दो-चार दिन यों ही गुजरे और अचानक आकाश से बूँदें टपकने लगीं।

यह चमत्कार देख लोग प्रभावित हुए। धीरे-धीरे राजमनियाँ की बातें लोगों को ग्रहण होने लगीं। प्रभाव बढ़ता गया और थोड़े ही दिनों में राजमनियाँ से राजमोहिनी देवी हो गई। आदिवासी जनता, 'राम नाम' को जानती तक नहीं थी, लेकिन राजमोहिनी के मुख से निकला हुआ 'राम नाम' और भजन लोगों को अच्छा लगने लगा। लोग हजारों की संख्या में उसके दर्शन के लिये आने लगे। माँसाहार छोड़ना, शराब छोड़ना, घर-आँगन साफ रखना, प्रतिदिन नहाना, कातना, भगवान की पूजा करके भोजन करना—यह था राजमोहिनी देवी का उपदेश। इन बातों को मानकर इसकी दीक्षा लेना इसको वहाँ 'सुराज' कहते हैं। गाँव के गाँव ऐसे हैं, जहाँ लोगों ने 'सुराज' लिया है।

हर वर्ष रामनवमी, माघ पूर्णिमा और विजयादशमी के दिन वहाँ मेला होता है। लोग हजारों की संख्या में इकट्ठे होते हैं और वहाँ से ये 'सुराज' की दीक्षा लेकर अपने-अपने घर लौट जाते हैं। मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार के सीमावर्ती छह जिलों में इसका प्रचार हुआ है। आदिवासियों को इससे नवजीवन मिल गया है। बहिनों में राजमोहिनी देवी ने एक अद्‌भुत उत्साह उत्पन्न किया है। उनकी पद-यात्रा में और बीच-बीच में होने वाले शिविर-सम्मेलनों में बहिनों की संख्या कभी भी पुरुषों से कम नहीं रहती।

१९५२ में राजमोहिनी देवी ने गृह-त्याग किया, जिस चट्टान पर प्रथम बार बैठी थीं, उसी चट्टान पर अपने लिये कुटिया बनाई। गाँधीजी को न देखा था, न सुना ही था। पढ़ने की तो बात ही कहाँ। लेकिन गाँधी जी के लिये मन में अपार भक्ति थी और इसलिए उनके गुणों का राजमोहिनी देवी में सहज दर्शन होने लगा। निरहंकारिता, सतत-सेवा-परायणता, स्वच्छता-सफाई की उपासना, सादा-संयमी-जीवन, अहिंसा, ईश्वर-निष्ठा आदि गुण उनके जीवन में अवतरित हुए हैं। वे निरक्षर अनपढ़ हैं। उनका शब्द-ज्ञान भी सीमित है परन्तु विचार और भावनाओं में दृढ़ता है। वह एक सफल नेता भी हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जनता की शक्ति का माप उनको अच्छी तरह से है। उसके अनुसार ही वे अपना अगला कदम उठाती हैं।

गाँधीजी का नाम स्वराज्य-आन्दोलन के समय भी आदिवासी जनता तक नहीं पहुँचा था। राजमोहिनी देवी के आन्दोलन को 'सुराज' नाम मिला। गाँधी टोपियाँ लोगों ने पहिनीं। घर की कती, गाँव में बुनी मोटी खादी वदन पर आई। सन् १९५७ में बाबा राघवदास सरगुजा में पदयात्रा करते हुए पहुँचे थे। उन्होंने देखा-सफेद मोटी खादी के कपड़े पहिने आई बहिनों के झुण्ड के झुण्ड राजमोहिनी देवी के पीछे चल रहे हैं।

राजमोहिनी देवी गाँधीजी को पिता मानती हैं। बाबा राघवदास जी के साथ काम करने में उन्होंने धन्यता मानी। भोला-भाला चेहरा, रूखे-सूखे बाल, हाथों में चाँदी के कंगन, बदन पर मोटी खादी की धोती, काला साँवला रंग। दर्शन से पता भी नहीं चलता कि यह कोई असामान्य महिला है, पर वह तो आज आदिवासियों के लिये देवी ही नहीं देवता भी बनी हुई है।

श्रीमती रमाबाई रानाडे

सामाजिक परम्पराओं की विकृति से कभी-कभी बड़े-बड़े विचारशील प्रभावित होते देखे गये हैं। स्वनाम धन्य न्यायपाल श्री महागोविन्द रानाडे भी एक ऐसी ही विकृति की लपेट में आ गये। उनका विवेक प्रतिरोध करता रहा पर अपनी ३२ वर्ष की आयु में वे एक ११ वर्षीय कन्या का गठबन्धन अपने साथ होने से न रोक सके। अपनी मानसिक अस्थिरता के बीच पारिवारिक दबाव तथा सामाजिक परिस्थितियों के चक्कर में उन्होंने श्रीमती रमाबाई से विवाह कर लिया।

श्रीमती रमाबाई का जन्म एक जागीरदार परिवार में हुआ था। उस समय ऐसी विचित्र सामाजिक परम्परायें थीं कि उनके पालन करने वालों की बुद्धि व विवेक पर अब तरस आता है। सम्पन्न परिवार की स्त्री की स्थिति भयंकर अपराधी जैसी थी। जितना भयंकर अपराधी होता है, उतने ही कड़े बन्धनों में रखा जाता है। इसी प्रकार उन दिनों जितने सम्पन्न घर की महिला हो उसे उतने ही कड़े पर्दे में रहना पड़ता था। इसी प्रकार की सामाजिक भ्रान्तियों के कारण रमाबाई भी समर्थ घर की कन्या होते हुए भी पढ़ने-लिखने से वञ्चित ही रही थीं।

न्यायमूर्ति रानाडे ने अपनी पत्नी के भविष्य का विचार किया तथा उसके लिये विवेकपूर्ण और साहसिक योजना बनाई। उन्होंने उसे अपनी योग्यता बढ़ाने के लिये प्रोत्साहन तथा सहयोग देना प्रारम्भ किया। रमाबाई भी मेधावी, लगनशील तथा साहसी महिला थीं। उन्होंने पति द्वारा प्रदत्त सुविधा तथा सहयोग का भरपूर लाभ उठाना प्रारम्भ कर दिया।

उस समय ऐसा करना आसान न था। पग-पग पर समाज का विरोध सहन करना पड़ता था। स्वयं रानाडे तो स्त्री-शिक्षा के समर्थक थे, किन्तु उन्हीं के घर में इसका प्रबल विरोध था। किन्तु इस विषय में न श्रीरानाडे विचलित हुए और न रमाबाई प्रभावित हुई। घर में परिवार वाले कोसते, व्यंग्य करते, तरह-तरह के प्रतिरोध खड़े करते थे। बाहर समाज के कथित अग्रणी निन्दा करते, अफवाहें उड़ाते तथा मनोबल गिराने का प्रयास करते, किन्तु संकल्प के धनी जब अपनी राह पर बढ़ते हैं तो बाह्य प्रतिरोध नदी के प्रवाह के बीच आने वाले मिट्टी के ढेलों की तरह गलते चले जाते हैं। अपने प्रति की सहानुभूति तथा उत्साहवर्धन से हर क्षण नई स्फूर्ति का अनुभव करते हुए रमाबाई अपने अभियान में अविरल प्रगति करती गईं।

सही दिशा में सफलता मिलने पर अन्तःकरण की शक्ति विकसित होती है, मनोबल बढ़ता है। रमाबाई ने शिक्षा के क्षेत्र में सफलता पाई तो उनका तथा श्रीरानाडे का उत्साह और बढ़ा। टीका-टिप्पणी करने वाले चौंक पड़े। जब रमाबाई ने पढ़ाई के साथ-साथ सामाजिक कार्यों में भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। समाज की प्रचलित मान्यताओं के यह विरुद्ध था। स्त्री को देहली की सीमा पार न करने देकर समाज के आधे अंग को लकवा जैसी निष्क्रिय स्थिति में डाले रहने की वृत्ति लोगों में गहराई तक बैठी थी। किन्तु रमाबाई का साहस था कि वह उनकी आलोचनाओं पर ध्यान दिये बिना अपने कार्य में निरन्तर कुशलता प्राप्त करती जा रही थीं और एक दिन २१ वर्ष की आयु में ही उन्होंने एक विशाल सार्वजनिक सभा में अपने धाराप्रवाह एवं ओजपूर्ण भाषण से श्रोताओं को चकित तथा मुग्धकर दिया। उन दिनों पूना में किसी महिला द्वारा सार्वजनिक सभा में भाषण दिये जाने का यह पहला अवसर था।

विरोधियों की सक्रियता बढ़ी—किन्तु रमाबाई की प्रगति किसी के रोके न रुकी। स्त्री को पैर की जूती-घर की नौकरानी समझने वाले हतप्रभ हो गये और रमाबाई ने स्त्री समस्याओं के समाधान हेतु रचनात्मक कार्यों का संचालन करना प्रारम्भ कर दिया। उनने विधवा, अनाथ महिलाओं के शिक्षण का कार्य प्रारम्भ कर दिया। इसकी प्रेरणा उन्हें बम्बई की एक पारसी महिला कार्यकर्त्री से मिली। बम्बई में श्रीमती मलवारी नामक एक विदुषी ने 'सेवा सदन' के नाम से स्त्री-शिक्षा के लिए एक संस्था चालू की थी। उसी के अनुरूप एक केन्द्र रमाबाई ने भी पूना में खोल दिया।

इस प्रकार के कार्यों को प्रारम्भ करते समय सामान्य लोगों के सामने अनेक शंकायें-संकल्प आकर खड़े हो जाते हैं तथा कार्य की प्रगति रुक जाती है। किन्तु रमाबाई के साहस ने उस भ्रान्ति को पास न फटकने दिया। उनके कार्य प्रारम्भ किया तो अनेक दिशाओं से सहयोग बरस पड़ा। उस समय के श्रेष्ठ विद्वान तथा लब्ध प्रतिष्ठित नेता श्री डॉ० भण्डारकर ने उन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथा सक्रिय सहयोग दिया। उनकी प्रेरणा से संस्था के सहयोगियों को विपुल उत्साह तथा सहयोग मिला। संस्था में महिलाओं को साधारण अक्षर-ज्ञान से लेकर विभिन्न शिल्पों तक का प्रशिक्षण भी दिया जाने लगा। इससे उनमें ज्ञान एवं कर्त्तव्य भावना के विकास के साथ ही स्वावलम्बन तथा आर्थिक सुदृढ़ता की क्षमता का भी विकास हो सके। रमाबाई की श्रम सिंचित यह संस्था आज भी चल रही है। महाराष्ट्र के अनेक नगरों तथा कस्बों में उसकी शाखायें नारी-उत्थान के पुण्य कार्य में योगदान दे रही हैं।

रमाबाई अपने कर्त्तव्य में पति के निर्देश तथा प्रोत्साहन के अनुरूप ही निरन्तर रत रहीं, किन्तु समाज की कुरीति का दण्ड उन्हें भुगतना ही पड़ा। न्यायमूर्ति रानाडे की आयु उनसे बहुत अधिक थी। जब वह २९ वर्ष की हुईं तभी श्री रानाडे ने जीवन से अवकाश प्राप्त कर लिया, यह भारतीय-नारी के लिये भयंकर आघात था। कुछ समय के लिए तो रमाबाई उस असाधारण चोट से लड़खड़ा गईं। उनका नारी हृदय रो पड़ा....। किन्तु उन्होंने शीघ्र ही अपने आप को सँभाल लिया। उनके अन्दर की विदुषी समाज-सेविका जाग पड़ी। उसने कहा—"पति प्रेम क्या शारीरिक सम्बन्धों तक ही सीमित है । उनकी शिक्षाओं तथा आशीर्वादों की छाया तो अभी भी तेरे ऊपर है। उनके इच्छानुकूल जीवनयापन में ही उनकी वास्तविक सेवा तथा प्रेम छिपा है।" फिर नये उत्साह से रमाबाई उतर पड़ी सामाजिक क्षेत्र में। जिस घटना को अपने अज्ञान के कारण सामान्य महिला दुर्भाग्य कहकर सारा जीवन रोते-रोते दीन-हीन स्थिति में बिता देती, उसे रमाबाई ने अपनी बुद्धिमानी से नारी जाति के लिये लाभकारी बना दिया। अब तो उनके सामने नारी उत्थान तथा लोक सेवा के अतिरिक्त कोई कार्य ही मानो नहीं था। वे पति की अच्छी पेन्शन का थोड़ा-सा ही अंश अपने निर्वाह के लिये खर्च करती थीं। शेष सारा धन नारी उत्थान तथा समाज कल्याण के पुण्य कार्यों में लगा देती थीं। अपने तथा न्यायमूर्ति रानाडे के नाम को उज्ज्वल करते हुए उन्होंने अपना शेष जीवन इसी प्रकार आदर्श रूप में बिताया। उनकी जीवन पद्धति दीर्घकाल तक नारी समाज को प्रेरणा तथा प्रकाश प्रदान करती रहेगी।

समाज सेवा की आदर्श प्रतीक— श्रीमती माईहर्षे

अपने जीवन में प्राप्त विभिन्न कठिनाइयों तथा समाज-सेवा के कटु अनुभवों से माईहर्षे ने ऐसा लाभ उठाया कि धीरे-धीरे उनसे व्यावहारिक शिक्षा लेती हुई समाज सेवा के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये आगे बढ़ती चली गईं। प्रारम्भ से मानवता की सेवा करने की उनमें उत्कृष्ट आकांक्षा थी।

इनका जन्म सन् १८८९ में पूना जिले के तले गाँव ढमढेरे में एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। उस समय छोटी आयु में ही बालक-बालिकाओं के विवाह हो जाते थे। ८-९ वर्ष की आयु में ही इनका विवाह भी हो गया। विवाह के कुछ दिनों बाद पूना में भयंकर प्लेग का प्रकोप हुआ, जिसमें माईहर्षे के पति का देहावसान हो गया। उस युग की ओर जब हमारी दृष्टि जाती है, तो पता चलता है कि बाल-विधवाओं को अपना जीवन व्यतीत करना कितना कठिन था। पर जो व्यक्ति पुरानी रूढ़ियों को ध्यान में न रखते हुए आगे बढ़ने का प्रयास करता है, सफलता उसे ही प्राप्त होती है।

इनके भाई डॉ० बखले जी ने हर्षे को अध्ययन के लिये विद्यालय में भर्ती करा दिया। पर उस समय स्त्री शिक्षा का सर्वत्र विरोध किया जाता था, उस पर भी कोई बाल विधवा भर्ती होकर पढ़ाई करे, यह तो समाज का कोई व्यक्ति सहन न कर सकता था। कई लोगों ने बखले जी के पास आकर उनसे अपनी बहन की पढ़ाई बन्द करने के लिए कहा, किसी ने पूजा-पाठ की ओर ध्यान लगाकर वैधव्य को घर की चाहरदीवारी में शान्ति से व्यतीत करने की सलाह दी। किसी ने उनके इस कार्य की कटु आलोचना की।

चाहिए तो यह था कि उनके परिचित व्यक्ति डाक्टर साहब को ऐसे सुझाव देते कि उनकी बहन वैधव्य के दुःख को भूल जाती और विद्यालय-प्रवेश के कार्य की सराहना की जाती। कहते—'चलो अच्छा है, स्कूल में पढ़ने जायेगी तो अपने दुःख को भूली रहेगी, पढ़ाई की ओर मन लगा रहने से मानसिक उलझनों से छुटकारा मिलता रहेगा। फिर पढ़ाई समाप्त करके दूसरों पर आश्रित नहीं रहना पड़ेगा।' पर समाज के लोग ऐसे कार्यों की प्रशंसा कब करते हैं ? उन्हें तो विरोधी परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में ही आनन्द आता है।

स्कूली-शिक्षण समाप्तकर वह अपने भाई के साथ सिन्ध चली गईं। डाक्टर साहब अपने एक सुपुत्र को अध्ययन के लिये विदेश भेजने वाले थे, उन्होंने सोचा यदि अपनी बहन को भी साथ भेज दिया जाय तो वह भी उच्च शिक्षा ग्रहण कर सकेगी। दोनों को भेजने की सारी व्यवस्था हो गई। पर उसी समय छोटे भाई के अधिक बीमार होने की सूचना उन्हें मिली। हर्षे के सम्मुख अब दो बातें थी, एक तो वह विदेश जाकर उच्च-शिक्षा ग्रहण करे अथवा अस्वस्थ भाई के पास जाकर उसकी सेवा करे। इस अर्न्तद्वन्द्व में उन्होंने यही निश्चय किया कि विदेश जाकर वैयक्तिक उन्नति करने की अपेक्षा परिवार में रहकर सेवा करना ही अधिक उत्तम है। अतः विदेश जाने के विचार को तिलांजलि देकर वह सिन्ध से पुनः पूना वापिस आ गईं।

सेवा-सदन में, समाज हित में कार्य करने वाली श्रीमती रमाबाई रानाडे और श्रीमती काशीताई कानिटकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदि महिलाओं से आपकी भेंट हुई तो इनमें समाज-सेवा की भावना का जो अंकुर पहले से विद्यमान था, वह अब और विकसित होने लगा। पूरे परिवार के उत्तरदायित्वों का कुशलता से निर्वाह करते हुए यवतमाल में प्रधान अध्यापिका का पद स्वीकार कर लिया। सन् १९२२ में अमरावती के शासकीय कन्या विद्यालय में छात्रावास के व्यवस्थापिका पद पर कार्य करने लगीं। सचमुच छात्रावास की प्रत्येक छात्रा आपको अपनी माई ही मानती थी। मातृवत् स्नेह की अजस्र धार से छात्रायें बड़ी प्रसन्न रहती थीं। आपके कुशल मार्गदर्शन में छात्राओं को सर्वतोमुखी विकास करने का अवसर मिला।

सन् १९४३ में सेवा-निवृत्ति के बाद समाज-सेवा का कार्य और विस्तृत हो गया। बालक-बालिकाओं के बीच रहकर उनकी प्रवृत्तियों का अच्छा अध्ययन कर लिया था। स्वयं वैधव्य का जीवन व्यतीत करने के कारण उनके हृदय में अनाथ स्त्री और बच्चों के लिये एक पीड़ा थी। अत: अपने घर पर ही एक बालक-मन्दिर की स्थापनाकर नये ढंग से अपने कार्य का शुभारम्भ किया। समाज के लोगों को तो प्रारम्भ किये गये हर अच्छे कार्य में स्वार्थ की गन्ध का अनुभव होता है और दूसरों की आलोचना करना तथा बढ़ते हुए व्यक्ति को हतोत्साहित करना उनके लिए आसान कार्य बन गये हैं। बल्कि-मन्दिर के प्रारम्भ के समय भी लोगों ने ऐसा ही किया, पर हर्षे की लगन और परिश्रम के सम्मुख उनकी एक न चली।

घर-घर जाकर अपने उद्देश्य को समझाया तथा बालकों को अपने साथ पढ़ाई हेतु भेजने के लिये इन्होंने राजीकर लिया। फिर क्या था ? शीघ्र ही बच्चों की संख्या बढ़ने लगी और जब अपने घर का स्थान छोटा पड़ने लगा तो खापर्डे बगीचे में स्वतन्त्ररूप से एक बालक मन्दिर आरम्भ कर दिया।

माईहर्षे के विशालहृदय में जनकल्याण की अनेक योजनायें छिपी पड़ी थीं, जो अवसर आते ही साकार होने लगीं। खापर्डे बगीचा अमरावती में 'बाल-शिक्षण-मण्डल' नाम की संस्था १९४७ से ही कार्यरत है। जिसके अन्तर्गत ५ बालक मन्दिर, २ वाचनालय, १ सिलाई केन्द्र तथा १ गृह विज्ञानशास्त्र वर्ग संचालित हैं। ये संस्थायें स्त्रियों और बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिये प्रयत्नशील हैं।

हर्षे का समाज-सेवा का क्षेत्र दिन प्रतिदिन बढ़ता गया है। प्रारम्भ में भाई के दर्द को अपना दर्द समझकर विदेश न जाने वाली महिला को आज समाज के प्रत्येक प्राणी का दु:ख-दर्द अपना दु:ख-दर्द अनुभव हो रहा है। समाज-सेवा के विकसित होते वट वृक्ष की शीतल छाया में कितने ही अपंग, असहाय, अनाथ स्त्रियों और बालक-बालिकाओं को स्नेह और ममता का सम्बल मिला है, जिससे आशा और विश्वास के सहारे उनके जीवन की दिशा ही बदल गई।

समाज-सेवा के क्षेत्र में कार्य करते समय 'अहम्' को तो इन्होंने पास ही नहीं आने दिया। प्रारम्भ से ही इनकी धारणा रही है कि मैं तो अपने कर्त्तव्य का पालन कर रही हूँ और निरपेक्षभाव से लगे रहने वाले व्यक्तियों में 'स्व' की भावना पास नहीं आने पाती।

दूसरों की सेवा करने में जिन्होंने अपने सुख-दु:ख की भी चिन्ता नहीं की है, उन लोगों की उज्ज्वल परम्परा में श्रीमतीमाईहर्षे का नाम भी बड़े गर्व से लिया जाता है। सच्ची आत्मीयता व लगन से समाज सेवा के कार्य में रत रहने का उदाहरण सभी के लिये अनुकरणीय है।

भिखारिन छोगरिया बाई का दान

अच्छी योजना, अच्छा कार्य करने का विचार साधारण व्यक्ति के मन में भी आ जाये, तो उससे महत्त्वपूर्ण काम हो जाता है, जिससे लोगों को लाभ भी होता है और समाज की भलाई के लिये सहयोग की प्रेरणा जाग्रत होती है। इस दृष्टि से नेक कार्य के लिये कोई भी छोटा नहीं। जिसके पास जितनी शक्ति, क्षमता, योग्यता है, वह उतने का ही लाभ अपने समीपवर्ती वातावरण, पड़ौस, गाँव और समाज को देने लगे तो अनेक रुके हुए आवश्यक कार्य तुरन्त सम्पन्नकर लिए जा सकते हैं।

गाँव सिवनी जिला बिलासपुर की बात है। वहाँ विद्यालय के लिए कोई भवन नहीं था। टूटा-सा छप्पर पड़ा था, उसी में विद्यार्थी बैठकर पढ़ा करते थे किन्तु धूप-धक्कड़ और बरसात में बालकों को तंग होना पड़ता था। स्थान की समुचित व्यवस्था न होने के कारण बहुत से योग्य बालक पढ़ने भी न भेजे जाते थे। इस बात को गाँव के सभी लोग जानते, देखते और सुनते थे किन्तु किसी व्यक्ति ने इतना भी नहीं सोचा कि परस्पर सहयोग, श्रमदान या चन्दा लगाकर कम से कम विद्यालय भवन की व्यवस्था तो ठीक कर ली जाये। जहाँ समर्थ व्यक्ति होते हुए भी विचारों का अभाव होता है, अच्छे कार्य वहाँ इसी तरह रुके पड़े रहते हैं।

इसी गाँव में एक भिखारिन भी रहती है। उसका नाम है छोगरिया बाई। भीख माँगकर बेचारी अपना गुजर करती है। माँगे हुए पैसों में से उपयोग से अतिरिक्त पैसे बचाकर रखती रही थी। इस तरह उसने तीन हजार रुपये एकत्रित करके रखे थे।

उसने विचार किया मैं अकेली हूँ। एक पेट की समस्या गाँव वाले हल कर देते हैं। मरने के बाद न जाने कैसे अच्छे, बुरे आदमी के हाथ यह पैसे लगें। उनका दुरुपयोग हो सदुपयोग-कुछ पता नहीं। इसलिए इनको अपने आगे ही किसी नेक कार्य में क्यों न लगा दिया जाये?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.२७ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

सबसे बड़ी आवश्यकता उसके लिए गाँव के विद्यालय भवन की पूर्ति दिखाई दी। छोगरिया बाई के मन में संकल्प उठा—"यदि यह रुपये मैं स्कूल की इमारत के लिये दे दूँ, तो बच्चों की एक बड़ी जरूरत पूरी हो जाये। बच्चे पढ़ेंगे, तो उससे गाँव की उन्नति का द्वार खुलेगा और मुझे उसका पुण्य मिलेगा।" इससे अतिरिक्त उस बेचारी बुढ़िया को और कोई भौतिक स्वार्थ हो क्या सकता था ?

अच्छे काम में अगुआ की आवश्यकता होती है। एक बार कोई काम चल पड़े तो दूसरे लोग भी अपना कर्त्तव्य अनुभर करते हैं और बड़प्पन पाने के लिए या तो उसी में सहयोग देते हैं या वैसा कोई और अच्छा काम करने की सोचते हैं। ऐसी प्रेरणायें-प्रतिस्पर्धायें समाज की सुव्यवस्था और विकास में बड़ी आवश्यक हैं। प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक उत्थान के मूल बिन्दुओं को खोजना और उन्हें पूरा करना अपना कर्त्तव्य मानना चाहिए, इसमें छोटे-बड़े का सवाल ही नहीं पैदा होता।

भिखारिन छोगरिया बाई ने अपनी सारी जमा पूँजी यदि तीन हजार रुपये विद्यालय-भवन के लिए दान कर दी, तो उससे और लोगों का भी उत्साह जगा। यदि निष्काम भाव से भिखारिन दान देकर लोगों को बता सकती थी कि गाँव के लिए विद्यालय कितना आवश्यक है, तो जिनको अपने बच्चे पढ़ाने थे, वे भला इस उपयोगिता को कैसे अस्वीकार करते ? अनेक लोग सहयोग के लिये तैयार हो गये। दस हजार रुपये लगे पर विद्यालय भवन की एक तीव्र आवश्यकता की पूर्ति हो गई।

भिखारिन की तरह कोई भी सामान्य व्यक्ति अल्प सहयोग से बड़े कार्य, बड़ी आवश्यकतायें अवश्य पूर्ण कर सकता है पर वैसी भावनाओं और विचारधाराओं का होना आवश्यक है।

श्रम की सार्थकता—भाव संवेदना से जुड़ने में

एक गाँव में झोपड़ी के सामने भीड़ लगी हुई थी। स्त्री-पुरुष सभी के चेहरे पर संवेदना के भाव थे। ऐसा लगता था जैसे कुछ अघटित घट गया है। सभी के मनों को व्यथित करने का कारण था गाँव की एक नवयुवती बधू का विधवा हो जाना। जटिल सामाजिक परम्पराएँ, ऐसे में युवती महिला का बेसहारा हो जाना। सभी सान्त्वना दे रहे थे। कोई दूसरा विवाह करने की सलाह देता, कोई दयार्द्र हो कुछ आर्थिक सहायता देने का आश्वासन देता।

इन सभी की अन्तहीन बातों को काटते हुए बीच में महिला का दृढ़ स्वर उभरा—"आपकी सद्भावनाओं की मैं आभारी हूँ किन्तु मुझे बेसहारा समझने की भूल न करें।" लोगों ने समझा शायद इसका दूर-दराज का कोई रिश्तेदार हो। सोच उभरा ही था कि कुछ रुककर उसने अपनी बात पूरी की—"अभी मेरे दो भाई हैं; जिनके सहारे मैं आसानी से जीवनयापन कर सकती हूँ।" पास खड़े जनसमुदाय को अपने चिन्तन की प्रामाणिकता नजर आने लगी।

एक साथ कई प्रश्न बरस पड़े, कौन हैं ? कहाँ हैं ?

युवती ने अपने दोनों हाथ ऊँचे किये—"यही हैं वे।" आश्चर्यचकित हो घेरे खड़े जन देख रहे थे कि उसके कण्ठ से स्वर फूटा, दायाँ हाथ है श्रम जो मेरे पास है। बायाँ हाथ-सहयोग के लिए आपके सामने फैला है। क्या सहयोग चाहिए ? उपस्थित जनों में जिज्ञासा उभरी। युवती का जवाब था—श्रम के नियोजन में सहायता। बात आगे बढ़ाते हुए उसने कहा—आप लोग मुझे अनाज दे दिया करें, मैं उसे पीस दिया करूँगी। इस श्रम के बदले दो चार पैसे दे दिया करें।

सभी को उसकी यह बात औचित्यपूर्ण लगी। श्रमशील ग्रामवासी श्रम की महत्ता से अपरिचित न थे। मन और शरीर एकधारा में लगन से युक्त हो चल पड़े तो जीवनयापन की बात क्या, कुछ अधिक भी किया जा सकता है। मन में बिखराव हो, ऊँट-पटाँग सोचने, दिवा स्वप्न देखने, शेखचिल्ली जैसी कल्पनाएँ करने की आदत हो। शरीर निकम्मा, आलसी, अकर्मण्य पड़ा रहता हो। शरीर और मन दोनों में आपसी तालमेल न बने तो साधन-सुविधाओं के रहते हुए भी व्यक्ति को कठिनाइयाँ ही सदा घेरे रहती हैं।

पर उसके साथ ऐसी कोई उलझन न थी। साधारण खाना-मोटा पहनना जिसकी जीवन नीति हो। उसे स्वाभाविक स्वल्प आवश्यकताओं को पूरा करने में क्या परेशानी ? लोग अनाज दे जाते। उसे दिन भर पीसती। पिसाई में कोई आटा देता, कोई पैसे। घर के बाहर पड़ी जमीन पर शाक-भाजी बो लेती। खाने के लिए आटा मिल ही जाता, शाक-वाटिका उसे सब्जी जुटा देती। साधारण मोटे कपड़े थोड़े दामों में मिल जाते। शेष पैसों को एक मिट्टी के घड़े में डाल देती।

अनवरत श्रम का सिलसिला चल निकला। यह जीवनक्रम जीवनयापन पद्धति नहीं बल्कि उपासना प्रणाली में रूपान्तरित होता चला गया। मुख में नाम, हाथ में काम और चित्त में राम। इन तीनों की एकरूपता साधने लगी। प्रातःकाल भजन गाते हुए अनाज पीसने के साथ मन यह सोचकर भावविभोर होता रहता कि पता नहीं कि कितनों के उदर में आसीन भगवान वैश्वानर की ज्वाला इस पिसे अन्न से शान्त होगी। सब का प्रसाद मुझे मिलेगा।

चिन्तन सँवर जाए तो चरित्र एवं व्यवहार अपने आप सुधर जाता है। सँवरे चिन्तन के कारण उसका चरित्र

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-वासनाओं की कीचड़ से नितान्त अछूता रहा। मृदुवाणी सहयोग-सहकार भरे व्यवहार के कारण कभी सपने में भी किसी से लड़ाई-झगड़े की नौबत नहीं आई। वह सभी लोगों का सम्मान भाजन बनी। समय-समय पर गाँव वाले अपने अनेकानेक कामों के बारे में सलाह लेते रहते । उसकी सलाह को प्रामाणिक माना जाता था।

भजन गाते हुए उसका चक्की पीसना देखकर, साखी गुनगुनाते हुए कपड़ा बुनते, कबीर दास, राम धुन का गान करते जूता गाँठते रैदास, विट्ठल के भाव में विव्हल हो कपड़ा सीते नामदेव की याद आ जाती। ध्यान भी आवश्यक है, पर उत्पादक श्रम के साथ ध्यान, यही आदि से संतों की नीति रही है। अन्यथा ध्यान-भजन के नाम पर आलस्य पल्ले पड़ता और अकर्मण्यता हाथ लगती है। गीता में इसी कारण भगवान सूर्य को श्रेष्ठ भक्त, भक्तों का आचार्य और नारायण श्रेष्ठ माना है। इस मान्यता का एक ही राज है, उनकी अनवरत कर्मनिष्ठा। सम्पूर्ण-संसार को बिना किसी भेद-भाव के प्रकाश, ऊष्मा, ऊर्जा दान करने की अनौखी वृत्ति। उसने भी संतों से उत्पादक श्रमयुक्त भजन की नीति सीखी थी। चित्त निर्मल होता गया, भक्ति बढ़ती गई। भक्ति का एक ही स्वरूप है—अपनी इच्छाओं-आकांक्षाओं को आराध्य के साथ घुला-मिला लेना और आराध्य का साक्षात् जाग्रत स्वरूप है—समष्टि। वह बचे हुए धन को इस समष्टि के लिए सार्वजनिक हित में अर्पित करने के लिए सोचा करती। सर्वहित को ध्यान में रखकर, बचाकर रखा गया धन भी कई घड़े हो गया था। वह स्वयं वृद्धता की देहली में प्रवेश कर चुकी थी।

उसका निर्मल मन रह-रहकर यही सोचता कि इस धन का उत्तमोत्तम-उपयोग किस तरह हो। चिन्तन चल ही रहा था कि एक दिन रास्ता चलते मुखिया की चौपाल से आती आवाज कान में पड़ी। ये लोग गाँव के पानी के संकट की चर्चा कर रहे थे। हल किस तरह निकले, कुछ सूझ नहीं रहा था। कारण पक्का कुआँ बनाने के लिए धन जो चाहिए। श्रम करने के लिए तो लोग तैयार थे पर रुपया फेंट से निकालने की हिम्मत किसी में नहीं थी। उसने रुककर बात सुनी और पास आयी। बोली- ''भाइयो ! श्रम आपका धन मेरा। सार्वजनिक हित में एकत्रित धन खर्च हो जाए तो मुझे भी शान्ति मिले।'' ''पर दीदी फिर आप...।'' वाक्य को बीच में काटकर कहा—फिर मैं आपकी तरह अपने श्रम और आपके सहयोग से पहले की तरह जीवनयापन करती रहूँगी।

मुहूर्त शोधा गया, जगह चुनी गई। भूमि-पूजन हुआ। मथुरा से दिल्ली राजमार्ग पर कुआँ बनाना निश्चित हुआ था ताकि ग्रामवासियों के अतिरिक्त राहगीर भी तृषा शान्त कर सकें। गाँव के सारे लोग इकट्ठे थे- आज फिर सर्वमेध की परम्परा दुहराई जा रही थी। वही सर्वमेध-यज्ञ जो भारत-भूमि में राजा से रंक तक सभी करते आए हैं। विश्वामित्र को विश्व हित में, हरिश्चन्द्र का सर्व-अर्पण, रघुवंश जिनके नाम से ख्याति प्राप्त हुआ उन महाराज रघु का जन कल्याण को सब कुछ देकर मिट्टी के बर्तनों में खाना, महाभारत काल का वह वृद्ध ब्राह्मण जिसने सपरिवार स्वयं भूखे रहकर सारा सत्तू क्षुधातुर अतिथियों को खिला दिया। रह-रहकर ये सभी दृश्य पुराणों की कथा को देव मन्दिर में सुनने वाले ग्राम-वासियों की आँखों के सामने तैर रहे थे। यही तो दुहराया जाना था। चक्की पीसने वाली वृद्धा चिर संचित धन अर्पण कर रही थी। सारे घड़े आ गये। जिसे देखकर सभी की आँखों में आँसू छलछला आए थे।

सभी का श्रम एकजुट हुआ । खारे पानी के इलाके में मीठा पानी का कूआँ बना। नाम रखा गया-पिसनहारी का कुआँ। सर्वमेध-यज्ञ की गौरवमयी परम्परा का सार्थक स्मारक। ताकि लोग उसे भूलें नहीं। बाद में श्रद्धालु लोगों ने बगीचा लगाया, धर्मशाला बनायी। पंक्ति में प्रथम आने का जो साहस कर सका वही धन्य है। बाद में उसके अनुकरणीय मार्ग का अनेक अनुकरण करते और कृतकृत्य होते हैं।

सर्वमेध की परम्परा को अभी समाप्त नहीं करना है। इन दिनों जबकि मनुष्य जाति का भाग्य नये कागज पर, नयी स्याही से, नये सिरे से लिखा जा रहा है, इस गौरवमयी परम्परा की उपादेयता आवश्यकता और अधिक कई गुनी हो जाती है। ऐसे असाधारण समय में अपनी भूमिका का चयन करने का ठीक यही अवसर है।

मणिबेन-मानव का सच्चा आभूषण सादगी

सादगी का परिपालन यह बताता है कि इस व्यक्ति की वृत्तियाँ लक्ष्य में केन्द्रित हो गई हैं। जिस व्यक्ति में जितनी अधिक सादगी होगी, वह उतना ही अधिक जीवन-लक्ष्य की ओर अभिमुख होगा। ''साध्य को तिरस्कृत कर साधनों के लोभ और मोह में जकड़ा हुआ- दूसरों के लिए कुछ कर सके यह नितान्त असम्भव है। ऐसे लोग पहले अपनी साँकलें तोड़ें, फिर आगे की सोचें।'' ये उद्‌गार उस कर्मठ साधिका के हैं, जिन्होंने समूचा जीवन इसी मंत्र की साधना में बिताया।

यह और कोई नहीं लौह पुरुष के नाम से पहचाने जाने वाले सरदार पटेल की पुत्री मणि बहिन थीं। जिनके बारे में पटेल साहब कहा करते थे—कि ''यदि मणि न होती तो मैं न जाने कब का मर गया होता।''

एक बार मणिबेन अपने पिता को कुछ दवाई पिला रही थीं-कि वरिष्ठ काँग्रेसी महावीरत्यागी अपने कुछ साथियों के साथ कमरे में दाखिल हुए। बात-चीत के दौरान देखा कि उनकी धोती में जगह-जगह पैबन्द लगे हैं। त्यागीजी ने यह देखकर कहा-मणिबेन, तुम तो अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

को बहुत बड़ा आदमी मानती हो। तुम एक ऐसे बाप की बेटी हो, जिसने साल भर में इतना बड़ा चक्रवर्ती राज्य स्थापित किया है, जितना बड़ा न अकबर का और न अशोक का। ऐसे बड़े सरदार की बेटी होकर तुम्हें इस तरह के दसियों पैबन्दों से गुँथी धोती पहनने में शर्म नही आती ?

मणि ने कहा-''शर्म आए उनको जो झूठ बोलते, बेईमानी करते और शेखी बघारते हैं। हमको क्यों शर्म आए।'' त्यागीजी ने पुनः कहा- यदि इसी शहर में निकल जाओ तो लोग तुम्हारे हाथ में दो पैसे यह कहकर रख देंगे कि भिखारिन जा रही है। यह बात सुनकर सरदार साहब भी खूब हँसे ''यह तो बहुत अच्छा होगा. यह मेरी दवाइयों के लिए पैसे इकट्ठे कर लाएगी।

वहीं डॉ० सुशीला नायर भी थीं-उन्होंने बात को काटते हुए कहा-त्यागीजी, किससे बात कर रहे हैं ? मणि बहिन दिन भर सरदार साहब की बड़ी सेवा करती हैं, फिर डायरी लिखती हैं और फिर नियम से चरखा कातती हैं। जो सूत बनता है, उसी से सरदार के धोती-कुर्ते बनते हैं। आपकी तरह पटेल साहब का कपड़ा खद्दर भण्डार से थोड़े ही आता है। जब सरदार साहब के धोती-कुर्ते फट जाते हैं, तब उन्हीं को काटकर मणिबेन अपने लिए धोती-ब्लाउज बनाती हैं।

उपस्थित लोग अवाक् हो सारी बातें सुन रहे थे। समाप्ति पर सभी के मुख से एक साथ निकला-ओह ! कितनी पवित्र आत्मा हैं मणिबेन। तब तक सरदार बोल उठे—''अरे भाई ! गरीब आदमी की लड़की है, अच्छे कपड़े कहाँ से लाये ? उसका बाप कोई कमाता थोड़े ही है।'' उन्होंने अपने चश्मे का केस दिखाया, जो लगभग बीस वर्ष पुराना था। इसी तरह तीसियों बरस पुरानी घड़ी और एक कमानी का चश्मा देखा, जिसके दूसरी ओर धागा बँधा था।

स्वतन्त्र-भारत के पहले गृहमंत्री और उपप्रधानमंत्री के परिवार की यह स्थिति देखकर सभी लोग हतप्रभ रह गये।

मणिबेन ने बात आगे बढ़ाते हुए कहा-''शोभा की परिभाषा बदलनी होगी, इसके सार को पहचानना होगा। आदिकाल से इस देश ने त्याग को सर्वोत्तम शोभनीय माना है। आपके अनुसार देखा जाय- तो बापू, महात्मा बुद्ध, स्वामी विवेकानन्द, लंगोटीधारी दयानन्द, नंगे फिरने वाले तैलंग स्वामी नितान्त अशोभनीय और असभ्य थे।''

''क्या यह सच है? यदि नहीं तो जान लीजिए व्यक्ति की शोभा आन्तरिक गुणों को उभारने, उनके द्वारा व्यवहार को निखारने, सभी में परमात्मा को देखने और उसकी सेवा में जुट पड़ने में है। साधनों को बटोरने में लगा हुआ मनुष्य कभी शोभनीय नहीं हो सकता। उसे स्वर्णालंकारों के भार से दबा हुआ देखकर भी पाखण्डी, लालची ही कहा जायगा।''

''नैतिक दृष्टि से स्वस्थ जीवन जी सकें-इसके लिए जरूरत है सच्चाई को पहचानने और अंगीकार करने की, जो केवल सादगी रूपी परहेज से ही सम्भव है।'' मणिबेन का यह कथन सुन सभी स्तब्ध रह गये और नत मस्तक हो एक-एक करके चलते बने।

तुलसीबाई—
सेवा ही जिनका जीवन व्रत है

किसी भवन में सैकड़ों बत्तियाँ जलती हैं-भवन जगमगा उठता है। देखने वाले प्रशंसा करते हुए निकल जाते हैं किन्तु वह प्रकाश केवल क्षणिक चकाचौंध ही उत्पन्न करता है-मस्तिष्क के एक भाग को ही प्रभावित कर पाता है।

इसके विपरीत किसी मन्दिर में जलता हुआ एक पूजा दीप-यद्यपि सीमित प्रकाश वाला ही होता है, परन्तु उसके क्षीण आलोक में पहुँचकर—मनुष्य अपने इष्ट का दर्शन करता है-अपनी भावनाओं डूब जाता है-वह प्रकाश उसकी समस्त श्रद्धा एवं विश्वास को उद्वेलित कर देता है। न जाने कितने निराश एवं हताश व्यक्तियों को आशामयी प्रेरणा देकर जीवन के प्रति आस्था उत्पन्न करने की क्षमता रखता है।

ऐसा ही एक छोटा सा दीपक है—श्रीमती तुलसीबाई का जीवन। ये बीकानेर से अठारह मील दूर कोड़मसेर में रहती हैं। आयु ६५ वर्ष है। गत २० वर्षों से ये अपनी विलक्षण ईश्वर पूजा में रत हैं।

तुलसीबाई के जीवन पर कई वर्ष पूर्व युवावस्था में ही वैधव्य की काली छाया पड़ गई थी। पति के पश्चात् पुत्र का सम्बल था- किन्तु दुर्भाग्य के लम्बे हाथों ने उसे भी छीन लिया। निराश तथा उदास तुलसीबाई ने फिर भी डूबते को तिनके का सहारा पकड़ा और अपने अन्धे देवर को पाला-पोषा। उसी पर अपनी समस्त आशाएँ केन्द्रित करदीं। लेकिन हरि इच्छा कुछ और ही थी। काल की गति, वह भी चल बसा और तुलसीबाई का प्रारब्ध-उसे निराश्रित, निःसम्बल बनाकर ही माना।

अब उन्होंने सोच लिया कि किसी एक को अपना मानकर चलने में दुःख ही दुःख मिलता है। अतः क्यों न मैं अखिल विश्व के पुत्रों को ही अपना पुत्र मान लूँ ? और उन्होंने जन-जन की सेवा का व्रत अपनाकर जीवन में असीम शान्ति एवं अखण्ड तृप्ति का स्रोत खोज लिया।

राजस्थान में सभी जानते हैं, जल का अभाव रहता है। मनुष्य तथा पशु-पक्षी भी-कभी-कभी जल के अभाव में प्राण तक त्याग देते हैं। कहते हैं-प्यासे को पानी पिला देने से बढ़कर कोई पुण्य नहीं। फिर जहाँ पानी का ऐसा अकाल हो, वहाँ यदि पानी की उपलब्धि करादी जाय तो तृप्त होने वाले हजारों व्यक्तियों की आंतरिक दुआ-बिन माँगें ही प्राप्त होती रहती हैं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुलसीबाई एक धर्मशाला में स्थित तालाब को वर्षा के जल से भर लेती हैं। तालाब की स्वच्छता तथा सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध है। वहीं उन्होंने अपनी प्याऊ लगा रखी है। जो भी राहगीर उधर से निकलते हैं-वे यहाँ मीठा तथा शीतल जल प्राप्त करते हैं।

किन्तु वर्षा सदा ही नहीं होती, अभाव की उस अवस्था में भी तुलसीबाई की प्याऊ कभी बन्द नहीं होती। उन्हें अड़तालीस रुपये पैंशन के मिलते हैं। उसी में वे अपनी गुजर-वसर करती हैं। अकेली जान, एक समय बना लिया दो समय खा लिया। फिर भी तो युग की महँगाई तो आसमान को छू रही है। मुश्किल से ही किसी प्रकार जीविका चल पाती है।

किन्तु जब वर्षा नहीं होती तो कुओं से पानी खिंचवाकर अपना काम चालू रखना होता है। पर उसके लिये मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है और मजदूर कहीं भी बिना पैसे के मिलते नहीं।

तब ? तब तुलसीबाई अपनी इसी सीमित आय में से रुपये बचाती हैं। उसके लिए उन्हें अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को भी कम करना पड़ता है किन्तु वे जानती हैं कि लोक-मंगल सबसे बढ़कर है—परमार्थ सर्वोपरि है-सेवा ही ईश्वर की सच्ची पूजा तथा उपासना है।

सो वे इसी अड़तालीस रुपये पैंशन में से उस समय पानी की व्यवस्था करती हैं, जब वर्षा के अभाव में जल का भी अभाव हो जाता है। उनका जीवन व्रत अब यही बन गया है-कि उनके द्वार से कोई प्यासा न लौटने पाये।

उन्हें वृद्धावस्था से सम्बन्धित कई रोग हैं। उनकी तकलीफ कभी-कभी बढ़ जाती है किन्तु नित्य ही भगवान को स्नान-भोग तथा शयन कराने वाले पुजारी को भाँति... लोगों ने नियत समय पर सदा तुलसीबाई को अपने स्थान पर-पाने कर्त्तव्य में रत ही पाया है। अपनी इस कर्त्तव्य अपने पूजा में उनका तन तथा धन ही नहीं-मन भी पूरी तरह ही समाहित हो गया है।

सम्पूर्ण लगन तथा तत्परता के साथ इतने परिश्रम पूर्वक वे पानी की व्यवस्था करती हैं-तब यदि कोई उच्छृंखल बच्चे पानी का दुरुपयोग करते हैं-फैलाते हैं- तो उन्हें डाँटना भी पड़ता है। सहज ममतामय झिड़की के साथ वे उन्हें मना करती हैं और कभी-कभी जो बहुत ही नटखट-शैतानों से पाला पड़ जाता है-तो उसकी भी दवा है उनके पास। वह है पाँच फीट लम्बा उनका डण्डा। उसका दिखाना ही पर्याप्त होता है-कि बन्दर सेना भाग जाती है।

सभी उनके अपने हैं। दुःख-दर्द में कई व्यक्ति उनके पास सेवा-सहायता को एकत्रित हो जाते हैं। यों उनका एक पौत्र भी है, जो जोधपुर में राजकीय सेवा में है। किन्तु उन्होंने तो अपने स्नेह को, अपनी भावनाओं को विस्तृत कर दिया है।

वे महीने में एक बार बीकानेर जाकर अपनी आवश्यकता का सामान आदि ले आती हैं। कभी किसी आते-जाते के हाथ भी ये कार्य हो जाता है। कोडमेसर एक तीर्थ स्थान भी है। कई यात्री आते-जाते रहते हैं। यों पानी पीकर सभी जाते हैं। पर जो तनिक बैठता है और तुलसीबाई से उनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में चर्चा करता है-वही आश्चर्य से अभिभूत हो उठता है। दुखों की गठरी का बोझ छाती पर रखे हुए, अभावों तथा परेशानियों को गले से लगाते हुए-यह वृद्धा मानवी है या देवी-जो सारा दिन अनजाने लोगों को प्राण बाँटती रहती है।

तुलसीबाई की न कोई आकांक्षा है- न कोई लालसा अपने इस जीवनक्रम से वे बहुत ही सन्तुष्ट तथा सुखी हैं। कई व्यक्तियों ने कई बार उनकी सहायता करने की इच्छा भी प्रकट की। किन्तु जिसकी आत्मा में दूसरों की ही सेवा तथा सहायता करने का भाव भरा पड़ा हो-उसे कैसे यह स्वीकार हो सकता है ? हमारे प्रतिनिधि ने जब उनसे उनकी कोई इच्छा जाननी चाही तो उन्होंने सहज भाव से कहा—"बस ऐसे ही लोगों की सेवा करते-करते इस जीवन का अन्त हो जाय, मेरी यही इच्छा है।" शास्त्रकार ने शायद ऐसे ही व्यक्तियों के मन के भाव इन शब्दों में व्यक्त किये हैं। "उसी का जीवन सफल माना जाता है, जो परोपकार में प्रवृत्त रहता है।"

परम परिश्रमी—श्रीमती तारा चेरियन

"क्या गृह-कार्य और समाज-सेवा के कार्य एक साथ किये जा सकते हैं ?" इसी प्रकार क्या एक ही नारी, पारिवारिक क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र में स्निग्ध समन्वय स्थापित कर सकती है ? यह प्रश्न तारा चेरियन से उनकी एक परिचिता ने किये।

"आसानी से किए जा सकते हैं। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। यदि ऐसा सम्भव न होता तो कैसे तो मैं करती और कैसे अन्य नारियों ने किए और कैसे आज भी अनेक कर रही हैं।" यह उत्तर था श्रीमती तारा चेरियन का- जो इस समय मद्रास महानगर पालिका की अध्यक्षा हैं।

अपने पारिवारिक तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में सफल कार्यविधियों का रहस्य बतलाते हुए वे जब-तब कहा करती हैं—"मनुष्य की कार्यक्षमता का कोई परिमाण नहीं। यदि मनुष्य में अपना आत्म-विश्वास है, वह आलसी, प्रमादी अथवा दीर्घ-सूत्री नहीं है, श्रमशील और संतुलित मनःस्थिति वाला है, तो कितना भी काम उस पर क्यों न आ जाए, वह प्रसन्नतापूर्वक कर सकता है। इसके विपरीत जो आलसी है, निरुत्साही और अस्त-व्यस्त मनोवृत्ति वाला है, वह एक घंटे का काम भी एक दिन में नहीं कर सकता। मैं जिस समय जो काम हाथ में लेती हूँ, उसे जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य मानकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

करती हूँ और एक छोटे से छोटे काम को भी अपने पूरे तन-मन से निवृत्त-चित्त होकर करती हूँ। काम करने की मेरी एक क्रमिक योजना है, जिसके अनुसार एक समय में एक कार्य ही करती हूँ और जब तक एक काम पूरा नहीं कर लेती, तब तक किसी दूसरे कार्य की ओर ध्यान नहीं बटने देती। घर के कार्यों में सार्वजनिक और सार्वजनिक कार्यों में घर के कार्य भूल जाती हूँ।''

निःसन्देह तारा चेरियन का जीवनचक्र ठीक-ठीक संतुलित गति से कर्म क्षेत्र में घूमता है। इसी तन-मन और मस्तिष्क की संतुलित अवस्था में उन्हें घर से लेकर बाहर तक सफलताओं की मालाओं से सुसज्जित कर दिया। पाँच बच्चों की माँ और इक्यावन वर्ष की आयु होने तक वे परिवार से लेकर सार्वजनिक क्षेत्रों तक एक उत्साह और एक निष्ठा से कार्य करती आ रही हैं। न तो उनके किसी कार्य में निरुत्साह दिखाई देता है और न शैथिल्य।

मद्रास निवासिनी श्रीमती तारा चेरियन 'वीमेन्स क्रिश्चियन कालिज की स्नातिका थीं। अपने शिक्षा काल में श्रीमती तारा चेरियन केवल किताबी कीड़ा ही नहीं बनी रहीं। वे कालिज के विविध कार्यक्रमों से लेकर खेल कूद-तक में भाग लेती थीं। उनका सदैव से यह विश्वास रहा है कि जो अपने जीवन में कोई विशेष उन्नति करना चाहता है, अपने व्यक्तित्व को ठीक-ठीक विकसित करना चाहता है, तो उसे उपलब्ध कार्य-क्रमों में पूरे मन से भाग लेना चाहिए। निःसंकोच और निर्मुक्त भावना से सबसे मिलना और विचार-विनिमय करना चाहिए। उसे चाहिए कि वह जी भर निश्छल बालकों की तरह हँसे-खेले और मनोरंजन करे। ऐसा करने से मनुष्य के मन में एक अहेतुक प्रसन्नता का निवास हो जाता है, जिससे उसके स्वास्थ्य पर बड़ा ही उत्तम प्रभाव पड़ता है। व्यक्तित्व में एक चमक और प्रतिभा में प्रौढ़ता आती है। बिना हास-उल्लास और मनोरंजन के मनुष्य में एक उदासी, एक मलीनता और एक निर्जीवता घरकर बैठती है, जिससे वह जीवन के किसी क्षेत्र में सफलता नहीं पा पाता।

अपने इसी विश्वास के आधार पर वे अपने कालिज की मूर्धन्य कार्यकर्त्री रहीं और अनेक बार मद्रास विश्वविद्यालय के सीनेट की सदस्या चुनी गईं। अपनी कुशाग्रता, तत्परता और निःसंकोचता से वे अपने कालिज की गौरव बनी रहीं। कालिज की प्रत्येक प्रतियोगिता में भाग लेना, प्रत्येक कार्यक्रम में सम्मिलित होना उन्होंने अपना एक नैतिक कर्त्तव्य बना लिया था। अनेक बार प्रतियोगिताओं में असफल होने पर जब कोई उनसे पूछता क्यों तारा, अब आगे की प्रतियोगिता के लिए क्या इरादा है ? तो उनका केवल एक ही उत्तर रहता था कि प्रतियोगिता की हार-जीत से प्रभावित होने वाले निर्बल-हृदय व्यक्ति होते हैं। मैं तो प्रत्येक प्रतियोगता में बुद्धि-विकास के दृष्टिकोण से भाग लेती हूँ, किसी पुरस्कार के लोभ से नहीं।

अपने विद्यार्थी जीवन-काल के सदुपयोग का लाभ उठाकर श्रीमती तारा चेरियन ने गार्हस्थ्य-जीवन में प्रवेश किया और वे तात्कालिक मद्रास के गवर्नर की पत्नी बनीं। राजनीतिक क्षेत्र के एक महिम पदाधिकारी की पत्नी का उत्तरदायित्व और तदानुकूल एक बड़े घर की व्यवस्था तथा प्रबन्ध कोई हँसी-खेल न था। किन्तु श्रीमती तारा की सुविकसित मनोभूमि पर उसका कोई भार न पड़ा और उन्होंने सामान्य रूप से वह महत् उत्तरदायित्व सँभाल लिया। हाँ यदि श्रीमती चेरियन ने अपने कौमार्य काल में अपना मनोविकास न किया होता, तब तो यह उत्तरदायित्व उनको एक चिन्ता का विषय बन जाता, जिसको वहन करने में वे शीघ्र ही दबकर जर्जर हो जातीं।

अपने विद्यार्थी-काल में सार्वजनिक जीवन के जिस आनन्दमय सौन्दर्य का दर्शन उन्होंने किया था, वह अपने पारिवारिक जीवन में न भूल सकीं। उसकी आत्मा निरन्तर जन-सेवा के कार्य करने के लिये सदैव लालायित रहती। वे अपनी योग्यताओं और क्षमताओं को सार्वजनिक कार्यों में उपयोग करना चाहती थीं। उनको अपनी इच्छा के लिये कोई प्रतिबन्ध अथवा बाधा तो थी नहीं। तब भी अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व को तिलांजलि देकर उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र में उतरना उचित नहीं समझा।

कुछ समय बाद जब बच्चे कुछ सयाने हो गये, तब उन्होंने सार्वजनिक कार्यों में अभिरुचि लेना प्रारम्भ किया। सबसे पहले अपनी विद्या, बुद्धि एवं अनुभव के विकास के लिये उन्होंने विदेश यात्रा की। जिसमें वे ब्रिटेन, बर्लिन और सान्फ्रांसिस्को में विशेष रूप से घूमीं। अपनी विदेश-यात्रा के समय उन्होंने मनोरंजक स्थानों की अपेक्षा जनसेवी संस्थाओं को अधिक महत्व दिया। मनोरंजक कार्यक्रमों में भाग लेने के बजाय उन्होंने समाज-सेवा के स्थलों और कार्य-विधियों का गम्भीरता के साथ अध्ययन किया। जिसका लाभ उन्होंने अपनी समाज-सेवाओं में उठाया।

विदेशों से वापिस आने पर उनकी योग्यता का लाभ उठाने के लिए अनेक संस्थाओं ने उन्हें अपने में सम्मिलित करने के लिए आमन्त्रित किया। श्रीमती तारा चेरियन ने पहले 'ऐग्मोर' स्थित महिलाओं और बच्चों के अस्पताल के सलाहकार मण्डल की अध्यक्षा के रूप में पदार्पण किया। अपनी कार्यकुशलता से श्रीमती चेरियन ने संस्था में चार-चाँद लगा दिये। उनका कार्यक्रम अध्यक्ष के कार्यालय तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि वे अस्पताल में प्रत्येक स्त्री-बच्चे के पास स्वयं जातीं, उनका दुःख-सुख पूछतीं और यथासम्भव दूर करने का प्रयत्न करतीं। उन्होंने अस्पताल की कमियों को दूर किया और अपने उदाहरण से कार्यकर्त्ताओं तथा कर्मचारियों में सच्ची सेवा-भावना का जागरण किया। श्रीमती चेरियन की सहानुभूतिपूर्ण सेवा भावना का ही यह परिणाम है कि वे उक्त अस्पताल के सलाहकार-मण्डल की बीस वर्ष तक अध्यक्षा रहीं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रीमती तारा चेरियन के सेवा कार्यों से प्रभावित होकर नगर की हर संस्था ने किसी न किसी रूप में उन्हें अपने में पाकर अहोभाग्य माना। इस समय वे नगर की किसी संस्था की अध्यक्षा हैं, तो किसी की मन्त्राणी ! निरन्तर सेवा कार्यों में निरत रहने से श्रीमती तारा चेरियन इतनी लोक-प्रिय हो गईं कि अभी हाल के चुनाव में मद्रास की जनता ने उन्हें नगर-महापालिका का अध्यक्ष मनोनीत किया।

अध्यक्ष पद का कार्य-भार सँभालते समय श्रीमती चेरियन ने जो कहा, वह वास्तव में किसी भी समाज-सेवी संस्था अथवा व्यक्ति के लिये अनुकरणीय है। उन्होंने कहा—मद्रास की स्नेही जनता ने जो गम्भीर उत्तरदायित्व मुझे सौंपा है, वह कोई साधारण कार्य नहीं है। यों तो यदि साधारण दृष्टि से देखा जाय तो महा-नगरपालिका का अध्यक्ष-पद एक अभिमाननीय नागरिक सम्मान है और यदि अनुत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से इस पद का सुख लिया जाये तो यह फूलों की सेज जैसा सुखद लग सकता है। किन्तु यह सम्मान, यह गौरव मुझ जैसे उत्तरदायी बुद्धि वाले व्यक्ति के लिये किसी काँटों की सेज से कम नहीं है। नगर के जन-जन के स्वास्थ्य-सुविधा की चिन्ता, बच्चों की शिक्षा, जनता के कष्ट निवारण की व्यवस्था की जिम्मेदारी कोई सुखदायक प्रसंग नहीं है। अच्छा होता, यदि मुझे इस पद पर न चुना जाता, किन्तु जब जनता ने मुझे इस उत्तरदायित्व योग्य समझा है, तो मैं सच्चे तन-मन से इसका निर्वाह करने में कोई कमी न रहने दूँगी।

महा-नगरपालिका का अध्यक्ष पद सँभालने के दिन से ही श्रीमती तारा चेरियन ने अपने नगर-कल्याण के सेवा-कार्यों में स्वयं को डुबा दिया। वे जब-तब नगर का दौरा करतीं, गन्दी और गरीब बस्तियों को देखतीं, उनके सुधार की व्यवस्था करतीं और असहायों को सहानुभूति के साथ सहायता प्रदान करतीं। विकलांगों की सहायता उनके कोर्यक्रम का विशेष अंग है। जो निरुपाय, असहाय, पराश्रित हैं, ऐसे अपंगों की सेवा मानवता की सबसे महान सेवा है। यह एक समाज-सुधार कार्य होने के साथ धार्मिक पुण्य भी है।

जो विकलांग अनुपयोगी होकर समाज पर एक भार बने रहते हैं, वे जब सहायता, सहानुभूति पाकर उपयोगी बन जाते हैं, तब समाज को उससे अधिक लाभ पहुँचाते हैं, जितना कि एक शुभांग व्यक्ति पहुँचा सकता है। विकलांगों की इन्द्रियाँ स्वभावत: संयमित एवं वृत्तियाँ एकाग्र होती हैं। वे जिस काम को अपनाते हैं, उसमें शीघ्र ही दक्षता प्राप्त कर लेते हैं और एक अनुकरणीय तल्लीनता से कार्य करते हैं। साथ ही जो व्यक्ति उनके साथ सहानुभूति दिखलाता है, उनकी सेवा और सहायता करता है, वह भी स्वभावत: संयमित वृत्तियों वाला बन जाता है। उनको देखकर जो करुणा उत्पन्न होती है, उससे आत्मा परिष्कृत एवं परिमार्जित होती है। मनुष्य उनकी असहायता की तुलना में अपने पूर्णांग देखकर परम पिता परमात्मा के प्रति कृतज्ञ होता है, जिससे उसमें श्रद्धा तथा भक्ति का उद्रेक होता है। इसके अतिरिक्त विकलांगों की निश्छल आत्मा से निकला हुआ आशीर्वाद सामाज-सेवियों के हित में एक आध्यात्मिक कल्याण का सम्पादन किया करता है।

श्रीमती तारा चेरियन विकलांग-सेवा के इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं थीं। उन्होंने उनके लिये अनेक आश्रमों एवं कार्य-शालाओं की स्थापना का प्रयास किया, उनकी आर्थिक तथा शारीरिक सहायता की व्यवस्था की।

एक सुसंस्कृत, संभ्रान्त एवं सभ्य समाज की रचना के दृष्टिकोण से उन्होंने स्कूली बच्चों की ओर समुचित ध्यान दिया, उनकी शिक्षा पद्धति में सरलता एवं सानुकूलता का समावेश कराया। उनके स्वास्थ्य के लिये दोपहर में पोषक तत्त्वों से पूर्ण स्वल्पाहार की व्यवस्था कराई, जिसके फलस्वरूप बच्चों के स्वास्थ्य में ध्यानाकर्षक सुधार हुआ। स्वास्थ्य में सुधार होने से बच्चों में पढ़ने की रुचि बढ़ने लगी, जिसको देखकर प्राय: सभी नागरिक अपने बच्चों को पाठशाला भेजने के लिये समुत्सुक होने लगे।

महानगरपालिका की अध्यक्ष होने के साथ-साथ श्रीमती तारा चेरियन-महिला-कल्याण-विभाग, बाल-मन्दिर, स्कूल ऑफ सोशल-वर्कस एण्ड द गिल्ड ऑफ सर्विस, भारतीय समाज-सेवा संगठन, अखिल-भारतीय-महिला खाद्यान्न-परिषद, क्षेत्रीय पर्यटन सलाहकार समिति तथा जीवन-बीमा निगम की सलाहकार परिषद की अभिभाविका एवं कार्यकर्त्री भी रही हैं।

इन सारी संस्थाओं का कार्य वे आत्म-विश्वास, परिश्रम, कार्य-निष्ठा और सत्य-सेवा-भाव के बल पर सुचारु रूप से करती रही हैं।

बाल शिक्षण को समर्पित—
श्रीमती ताराबाई मोडक

दादर (बम्बई) के कालकी नर्सिंगहोम के लोह पर्यंक पर पड़ी वृद्धा रोगिणी का युवा मन कोसबाण में चल रहे बाल-शिक्षण व शिक्षक-प्रशिक्षण के नूतन कार्यक्रमों को लेकर हुलस रहा था। रोग व जरा से जीर्ण काया भले ही चिकित्सालय में पड़ी हो, परन्तु संकल्पों और उमंगों से भरा मन तो विचरणकर रहा था। कब वह ठीक हो और कब वह कोसवाण में प्रेस खोले ताकि उस क्षेत्र के आदिवासी बच्चों को पढ़ने के लिए उपयोगी पुस्तकें मिल सकें तथा कई लोगों को रोजगार मिल सके।

अपना सम्पूर्ण जीवनबाल शिक्षा के अधुनातन प्रयोग करने और उन्हें जनसामान्य को सुलभ करने के लिए समर्पितकर देने बाली महान कर्मयोगिणी इसी प्रकार सोच सकती थी और सोच रही थी। किन्तु सृष्टि का अपना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.३३ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

एक नियम है, व्यवस्था है कि वह हर जीर्ण-शीर्ण को नूतन कलेवर प्रदान कर उसे नूतन, भौतिक, सामर्थ प्रदान करती है, सो इस कैंसर पीड़ित रोगिणी की यह कामना पूरी नहीं हो सकी। ३१ अगस्त सन् १९ ७३-गणेश चतुर्थी के पुण्य पर्व पर ८१ वर्ष की आयु में इसी नर्सिंग होम में उनका देहावसान हो गया। कैसा संयोग था, विद्या के देवता गणेश की जयंती पर ही उसका कार्य करने वाली साधिका का देहावसान।

यह साधिका थी ताराबाई मोडक, जिन्होंने स्वतन्त्र-भारत की नूतन पीढ़ी का निर्माण करने के लिए ऐसा पथ प्रदर्शन किया, जिस पर चलकर उनके सहयोगी-अनुयायी आज लाखों आदिवासी बालक-बालिकाओं के जीवन में ज्ञान का, विद्या का प्रकाश फैला रहे हैं। उनके द्वारा संस्थापित, संचालित और निर्देशित शताधिक बाल-शिक्षण संस्थाएँ गुजरात व महाराष्ट्र में उनके स्मारक बनकर कई सेवाभावियों को उनके पद चिन्हों पर चला रही हैं।

१९४७ में जब उन्होंने महात्मागाँधी के सामने अपनी शिक्षा योजना रखी थी, तो वे योजना के आदर्श को देखकर तो अत्यधिक प्रभावित हुए थे पर वह जन-सामान्य के लिए व्यवहार्य हो सकेगी, इसमें उन्हें शंका ही थी। वे पूछ बैठे थे—''ताराबेन, इस शिक्षा के लिए जो महँगे साधन चाहिए, उन्हें किसान लोग जुटा पाऐंगे ?'' तब ताराबाई ने कहा था—''बापू आप इसकी चिंता न करें कि ये साधन कहाँ से आयेंगे। आस-पास मिलने वाली वस्तुओं से ही मैं गाँव के लोगों से ही-अपने शिक्षकों के मार्गदर्शन से ये साधन तैयार कर पाऊँगी।'' उनके ये आत्मविश्वास भरे वचन सुनकर गाँधीजी को विश्वास हो आया था कि उनका यह कर्म सफल होकर रहेगा।

ताराबाई मोडक के जीवन की जो उपलब्धि है, वह महाराष्ट्र व गुजरात के आदिवासियों व कृषकों के बालकों के शिक्षण तक ही नहीं उससे भी कुछ अधिक महत्त्व रखती है। बालकों के समग्र विकास के लिए उन्होंने जिस ढंग से शिक्षण दिया, वह सम्पूर्ण भारत के लिये आदर्श है। आज जो शिक्षण स्कूलों और अँग्रेजी ढंग पर चलने वाले मिशनरी कान्वेंटों या कालेजों के खेमों में बँटी हुई है। यह शिक्षा समाज में भी वर्ग-वैषम्य उपजाती है। गरीब और मध्यम वर्ग के अभिभावक अपने बच्चों को दूसरी प्रकार के विद्यालयों में पढ़ा नहीं सकते और उच्च और सम्पन्न वर्ग के लोग अपने बच्चों को पहली प्रकार के विद्यालयों में पढ़ाना अपनी हेठी मानते हैं। उनके बच्चे तन से भले ही भारतीय हों मन, मस्तिष्क पर शिक्षा के जो संस्कार ग्रहण करते हैं, वे कदापि भारतीय नहीं होते। इन दोनों से पृथक् ताराबाई की अपनी बाल शिक्षण योजना अपने ढंग की अनूठी और उपयोगिता युक्त है।

देश और समाज के लिये कोई महिला कितना कुछ कर सकती है, यह उनके कर्ममय जीवन में स्पष्ट देखा जा सकता है। उच्च पद पर रहकर सुविधायुक्त सम्पन्न जीवनयापन करने के स्थान पर त्याग, सेवा और कर्म का पथ अनुसरण करना उन्हें उच्च मानवीय महिमामय पद पर प्रतिष्ठत करता है। इसका बहुत कुछ श्रेय उनके पारिवारिक वातावरण को भी है।

१९ अप्रैल, १८९२ को जन्मी ताराबाई के पिता श्रीकेलकर पश्चिमी-भारत के धर्मसुधार आन्दोलन—प्रार्थना समाज के निष्ठावान कार्यकर्त्ता थे। पिता के सुधारवादी दृष्टिकोण और समाजोन्मुख जीवन से उन्हें बहुत कुछ सीखने को मिला। व्यक्ति अकेला नहीं, समाज के साथ ही आगे बढ़ सकता है। उसे आगे बढ़ना है तो वह अपने साथ समाज को भी आगे बढ़ाये, उसे सुधारे। यह बात उन्हें अपने पिता के जीवन व्यापार में देखने को मिली।

श्री केलकर ने अपनी दोनों पुत्रियों-ताराबाई व इन्दिराबाई को स्नातिका बनाया। यह उस समय, जबकि लोग लड़कियों को पढ़ाना व्यर्थ मानते थे, छोटी बात नहीं थी। यदि उनके पिता भी उन्हीं प्रचलित मूढ़ मान्यताओं में उलझे रहे होते, तो भारत को ताराबाई जैसी समाज सेविका कहाँ से मिली होती ? बचपन से ही उन्हें यह शिक्षा मिलती रही थी कि सांसारिक सुखों की अपेक्षा सेवा का सुख कई गुना आनन्ददायक और शाश्वत होता है।

शिक्षा पूरी करने पर उनका विवाह हो गया। किन्तु उनके पति विवाह के दो वर्ष बाद ही एक कला उन्हें देकर सदा के लिए चल बसे। भरी जवानी में विधवा हो जाने का यह क्रूर आघात उन्हें अपने आपसे तो विरक्त बना गया पर अपने जीवन से नहीं। उन्हें सुरदुर्लभ मानुष जन्म मिला है तो निश्चय ही उसके पीछे ईश्वर का कोई न कोई प्रयोजन रहा है ! यह सोचकर वे उसके सदुपयोग करने पर विचार कर ही रही थीं कि १९२० में उन्हें वार्टन फीमेल ट्रेनिंग कालेज राजकोट की प्रथम भारतीय प्रिंसिपल बनने का आमन्त्रण आ पहुँचा। इस सम्मानित पद पर नियुक्त होकर वे राजकोट पहुँचीं किन्तु जीवन की सार्थकता का खोजी उनका मन न तो इस पद से मोहा जा सका, न अच्छा-खासा वेतन ही उन्हें लुभा सका। वे तो ऐसा पथ खोज रही थीं जिस पर चलकर वे स्वयं भी धन्य होतीं और उन्हें उपजाने वाली धरा भी।

उनके मन में जब सेवा और परमार्थ समन्वित जीवन का सार्थकत्व खोजने की प्रक्रिया चल रही, तभी उन्हें गिजुभाई वधेका द्वारा भावनगर में चलाये जा रहे बाल-शिक्षा सम्बन्धी कार्यों को देखने का अवसर मिला। उनके इस कार्य को देखकर उन्हें लगा कि जिस सेवा पथ की उन्हें खोज थी, वह उन्हें मिल गया है और उन्होंने आजीवन बाल-शिक्षा के लिए कार्य करने का संकल्प ले लिया, कालेज का प्रिंसिपल पद छोड़ दिया और निर्वाह भर की आवस्ती पर गिजुभाई की सहकारिणी बनकर उनके साथ काम करने लगीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गिजुभाई और ताराबाई ने मिलकर १९२३ से १९३१ तक बाल शिक्षा के अनेक विषयक प्रयोग करके एक शिक्षाक्रम बनाया, उपकरण तैयार किये और ८० और २५ पुस्तकों की प्रथक्-प्रथक् बाल-साहित्य मालाएँ निकालीं। उनके अधीन प्रशिक्षण पाये हुए शिक्षकों ने गुजरात व सौराष्ट्र में कई बाल-मन्दिर खोले।

गिजुभाई व ताराबहिन द्वारा अनेक प्रयोगोंपरान्त निर्धारित बाल-शिक्षा का यह क्रम पूर्व प्रचलित शिक्षण से कई दृष्टियों से भिन्न व अधिक उपयोगी था। बच्चों को मात्र अनुशासन में रखकर रटंत कराने के स्थान पर खेल-खेल में मनोरंजक ढंग से अच्छा ज्ञान तथा तदनंतर ऐसी पुस्तकों द्वारा शिक्षण करने की योजना जो बालकों को रुचिकर लगे, बड़ी उपयोगी थी। इसमें बच्चों के सर्वांगीण विकास की सम्भावनाएँ प्रचलित शिक्षाक्रम की अपेक्षा अधिक थीं। इसके प्रचलन के लिये १९२६ में, नूतन बाल शिक्षण संघ' नामक संस्था की स्थापना हुई। ताराबाई पच्चीस वर्ष तक इसकी मंत्री रहीं। संघ के चार ध्येय—(१) बाल शिक्षा का प्रचार, (२) संघ से सम्बन्धित बाल मन्दिरों का निरीक्षण व समुचित मार्गदर्शन, (३) शिक्षण-पत्रिका के माध्यम से व शिक्षकों व बालकों के लिए उपयुक्त साहित्य का सृजन करना तथा अभिभावकों को मार्गदर्शन देना, (४) स्वयं मंदिर खोलकर ग्रामीण जनता को उनकी उपयोगिता समझाना, विगत ४७ वर्षों से चल रहे हैं। इनसे बाल शिक्षण में क्रान्ति, महत्त्वपूर्ण सुधार हुए हैं।

सामाजिक कार्य होने के कारण जिस प्रकार गिजु भाई को ताराबाई तथा अन्य सहयोगी मिले, उसी प्रकार गिजुभाई के दिवंगत हो जाने पर ताराबाई को सहयोगियों की कमी नहीं रही। उन्होंने इस लघु रूप में आरम्भ हुए कार्य को राष्ट्र स्तर पर व्यापकता प्रदान की। उसी का परिणाम है कि आज गाँव-गाँव में बाल मन्दिर, शिशु-मन्दिर दिखाई पड़ते हैं।

संघ की पत्रिका हिन्दी, गुजराती तथा मराठी तीनों भाषाओं में निकलती है, ताराबाई ने आजीवन इन तीनों का सम्पादन किया। वे नूतन बाल-शिक्षण संघ की प्राण थीं। संघ की गुजरात, महाराष्ट्र तथा मध्य-प्रदेश में कई शाखाएँ हैं। वे वर्ष में एक बार प्रत्येक शाखा में अवश्य जाती थीं। सभी शाखाओं में पारस्परिक सम्पर्क बढ़े, इसके लिए कार्यकर्त्ताओं को वे नियमित रूप से केन्द्र में भेजा करती थीं।

संघ केवल एक व्यक्ति के सहारे नहीं चलता रहे—यह एक व्यक्ति का अपना काम न रहे वरन् सब उसे अपना काम समझें—दायित्व और श्रेय में हर कार्यकर्त्ता को साझेदारी मिले, यह सोचकर वे केन्द्र का कार्य करते हुए भी स्वयं एक शाखा की संचालिका बनकर बम्बई आ गयीं। यह उनकी निरभिमानिता व व्यवहार कौशल का अनूठा उदाहरण है।

१९३६ में उन्होंने शिशु-विहार नामक एक बाल मन्दिर खोला। इसको अपने पाँवों पर खड़ा कर देने पर उसका दायित्व अपने सहयोगियों पर छोड़कर वे बोर्डी और कोसबाण जैसे गाँवों में जो कि आदिवासियों व निर्धन कृषकों के गाँव थे, में बाल शिक्षा का प्रसार करने के लिये चल पड़ीं। यहाँ उन्हें फिर प्रयोगों का सहारा लेना पड़ा क्योंकि इस क्षेत्र के आदिवासी किसान अपनी दयनीय आर्थिक दशा के कारण अपने बच्चों को स्कूल भेजने की बात सोच भी नहीं सकते थे। वे तो उन्हें छोटी उम्र में ही किसी के गाय, बैल, बकरी आदि पशु चराने रख दिया करते थे, जिससे कि उन्हें थोड़ी आर्थिक सहायता मिल सके।

यहाँ आकर उन्होंने—आदिवासी कृषकों की घोर निर्धनता और तज्जनित विषम जीवन को देखा तो उनका करुणापूर्ति हृदय द्रवित हुए बिना न रह सका। मेरे देश के इन देशवासियों की संतानों को शिक्षा कैसे दी जाय ? यह प्रश्न उनके लिये एक चुनौती बन गया। उन्होंने पहले तो इस क्षेत्र के निवासियों की आर्थिक व सामाजिक दशा का अध्ययन किया। अध्यनोपरान्त उन्होंने बोर्डी में कुरणशालाओं (गोचर स्कूल) की स्थापना की। इनमें बच्चों को सीधे तौर पर शिक्षा नहीं दी जाती थी वरन् उन्हें प्रकृति के आँगन में खेलते-कूदते जीवनोपयोगी जानकारियाँ देते हुए उनकी पढ़ाई की ओर रुचि जाग्रत की जाती थी।

जो बच्चे अपने छोटे-भाई-बहिनों की देखभाल में लगे रहने के कारण शिक्षा लाभ से वंचित रह जाते थे उनके लिये आँगनबाड़ी वाड़ा व विकासबाड़ी जैसे कार्यक्रम चलाये गये। यहाँ के पालनाघरों में बच्चे अपने छोटे भाई-बहिनों को अपने साथ लाकर रख सकते थे।

श्रीमती ताराबाई मोडक की इस क्षेत्र के बाल-शिक्षण के लिये तैयार की गयी विकासबाड़ी योजना इतनी ठोस और व्यवहार्य थी कि भारत सरकार ने इसे द्वितीय पंचवर्षीय योजना में स्थान देकर बड़े पैमाने पर उस क्षेत्र में लागू करने के लिए प्रयास किया। इस बढ़ते कार्य को देखते हुए वे बोर्डी से कोसबाण चली गईं। १९७२ में उनकी नयी योजना का उद्घाटन भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने किया था।

आरम्भ में ताराबाई का कार्य पूर्व प्राथमिक कक्षाओं तक ही सीमित रहा था पर आगे चलकर यह पालनाघर और प्राथमिक शालाओं से भी जुड़ गयी। गोचरशाला, उद्योग कक्ष, रात्रिशाला आदि की प्रवृत्तियाँ भी उनके साथ जोड़ी गयीं, तो उनका कार्य बाल शिक्षण से भी आगे बढ़कर लोक शिक्षण का हो गया।

छोटे रूप में आरम्भ किया गया यह कार्य निरन्तर बढ़ता हुआ शिक्षा के क्षेत्र में एक मील का पत्थर बन गया है। यहाँ विकासबाड़ी के साथ आदिवासी क्षेत्र में चलायी जाने वाली शैक्षणिक योजनाओं के लिए कार्यकर्त्ता तैयार करने के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रशिक्षण केन्द्र भी खोले गये। यहाँ सरकारी प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों को प्रशिक्षण देने के लिये 'ओरियेन्टेशन ट्रेनिंग प्रोग्राम' भी आयोजित किये गये।

आज वही कोसबाण शिक्षण, प्रशिक्षण का केन्द्र बन चुका है, जो कभी शिक्षा के मामले में कोरा था। यहाँ के प्रशिक्षण केन्द्र से अब तक ५०० कार्यकर्त्ता प्रशिक्षित किये जा चुके हैं। यहाँ से ८८ ग्रामसेवक तथा ३५० बाल सेविकाएँ ट्रेनिंग लेकर देश के विभिन्न भागों में काम कर रही हैं।

यह सब ताराबाई मोडक की सेवा-साधना का परिणाम है। उनके द्वारा निस्वार्थ भाव से की गई यह समाज सेवा उनके लिए आत्मतुष्टि का कारण ही नहीं वरन् उन्हें जो सम्मान मिला, वह उस स्थिति में कभी सम्भव नहीं था कि वे उच्च पद व अच्छे वेतन के लोभ में किसी कॉलेज की प्रिंसिपल या उससे भी उच्च पद पर रहतीं। २६ जनवरी, १९७२ को भारत सरकार ने बाल शिक्षा के क्षेत्र में की गई सेवाओं को दृष्टिगत रखकर उन्हें 'पद्मभूषण' अलंकरण से अलंकृत किया।

ताराबाई मोडक ने बाल-शिक्षा सम्बन्धी कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनमें से दो अँग्रेजी पुस्तकों—'बालबाड़ी इन रूरल एरियाज' तथा 'द मेडो स्कूल' का प्रकाशन भारत सरकार ने किया है। अभिभावकों के लिये उन्होंने चार उपयोगी पुस्तकें लिखने के अतिरिक्त बच्चों के लिये बाल साहित्य भी कम नहीं रचा है। 'कुरणशाला', 'विकासाच्या मार्गावार', 'बीस वर्ष चीवाट शाल', 'लाकड़ दण्ड्या', 'नदी वी गोष्ठ' और 'आजीबाई ची गोष्ठी' आदि कथा पुस्तकें लिखकर उन्होंने बाल साहित्य के भण्डार को भरा है। शिक्षण-पत्रिका के सम्पादन के साथ-साथ अन्य पत्र-पत्रिकाओं के लिए भी स्फुट निबन्धादि रचनाओं का सृजन किया।

अपनी लेखन-प्रतिभा का उपयोग भी उन्होंने अपने जीवन की तरह समाज के लाभार्थ ही किया। लेखन केवल नाम के लिये या धन के लिये नहीं वरन् लोकमंगल के लिये ही किया और व्यस्त कार्यों में से समय निकाल कर किया गया।

उनकी यह समाज सेवा भुलाई नहीं जा सकती। वे अपने पीछे अपने कितने ही मानस पुत्र छोड़ गयी हैं। स्वतन्त्र-भारत की नूतन पीढ़ी के लिये उपयुक्त शिक्षा पद्धति खोजने और उसे प्रचारित करने के लिये उन जैसे कितने ही आत्मदानियों की आवश्यकता है। उनके इस अधूरे कार्य को पूरा करने का दायित्व हमारे कन्धों पर है।

समाज सेवा में अग्रणी
श्रीमती यशोधरा दासप्पा

सन् १९६२ की घटना है। तीसरे आम चुनाव की तैयारियाँ होने लगीं। सत्तारूढ़ पार्टी का टिकिट पाने के लिए उम्मीदवार दौड़-धूप करने लगे थे। जिस टिकिट के लिए लोग जमीन-आसमान एक कर रहे थे। उसी टिकिट को मैसूर प्रदेश की काँग्रेस पार्टी ने एक महिला को अपनी ओर से दूसरी बार प्रेषित किया और चुनाव लड़ने का आग्रह किया। सन् १९५७ में वह इसे एक बार अस्वीकार कर चुकी थीं। अब की बार वह अस्वीकार न कर सकीं।

जो रचनात्मक कार्य करते हैं तथा सेवा को ही अपना धर्म समझते हैं, उनके लिए प्रचार में पानी की तरह पैसा बहाए बिना भी जीतना असम्भव नहीं होता। यह सोचकर उक्त महिला ने अपनी ओर से कोई प्रचार नहीं किया। पार्टी की तरफ से प्रचार अवश्य किया गया। वह अपने व्यक्तित्व के बल पर जीती।

विजयोपरान्त मैसूर विधानसभा का मन्त्री पद दिया गया। मन्त्री पद पर रहकर उन्होंने अनुभव किया कि अभी जनसाधारण में काम करने की आवश्यकता है। समाज सेवियों को अपना पूरा समय उसी में लगाना चाहिए। यहाँ आकर तो मान-सम्मान और राजनैतिक दाव-पेंच में उलझकर जिन आदर्शों के बलबूते पर विजय पाई थी। उनकी रक्षा भी नहीं की जा सकती थी। भविष्य में इस पचड़े से अपने को सर्वथा मुक्त रखने का निर्णय उसने लिया ही था कि उसके अन्तःकरण की आवाज ने उसे त्याग-पत्र देने पर विवश कर दिया था।

सरकार नशाबन्दी कानून बनाने में हिचकिचा रही थी। जबकि नशाबन्दी के कारण जनता को जो हानि हो रही थी, वह सरकारी लाभ से कई गुनी थी। सरकार की इस ढिलाई का विरोध उन्होंने मन्त्री पद से त्याग-पत्र देकर किया। यह महिला थी श्रीमती यशोधरा दासप्पा। जिन्होंने जनवरी १९६६ में राज्य के मन्त्री-पद से इस्तीफा देकर सरकार को यह सोचने पर बाध्य किया कि सरकार जनता का हित देखे, अपना लाभ नहीं। वे मन्त्रियों के लिए भी एक आदर्श प्रस्तुत कर गईं कि आदर्शों के आगे मन्त्री पद का कोई मूल्य नहीं। उसे सहज छोड़ा जा सकता है।

श्रीमती दासप्पा ने अपनी युवावस्था में ही अनुभव कर लिया था कि समय की पुकार को अनसुनी करना किसी भी जाग्रत आत्मा के लिए सम्भव नहीं है। आज अपनी सम्पूर्ण-शक्ति समाज के उत्थान तथा स्वतन्त्रता संग्राम में लगा देनी चाहिए।

इनके पति श्री एच. सी. दासप्पा गाँधीजी के अनुयायियों में थे। इन्होंने भी इस आन्दोलन में भाग लेने की इच्छा प्रकट की थी। श्रीदासप्पा ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

अब तो इनके लिए सेवा करने का एक विशाल कार्यक्षेत्र खुल गया था। अपने क्षेत्र में रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत करने में यह दम्पत्ति कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करने लगे। जनता को साक्षर तथा आत्म-निर्भर बनाने में और सामाजिक कुरीतियों के निवारण में इन्होंने भरसक प्रयास किए।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारत उस काल में पराधीन था। यह काल एक प्रकार से संक्रान्ति काल था। एक ओर तो अँग्रेजी दासता से मुक्त होने के लिए सत्याग्रह करना तथा साथ ही साथ समाज में फैली सामाजिक कुरीतियों, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, अज्ञानांधकार को मिटाना था। दोनों आन्दोलन एक-दूसरे के पूरक थे। स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद योग्य नागरिकों का निर्माण भी कम महत्त्वपूर्ण न था।

जीवन को सांसारिक उत्तरदायित्वों में ही गँवाकर उसका अधिकांश भाग समाज सेवा के क्षेत्र में लगाने का संकल्प इस दम्पत्ति ने किया और आजीवन इसकी पूर्ति में जुटे रहे।

महिलाओं में जाग्रति लाने के लिए श्रीमती दासप्पा ने भरसक प्रयास किए। वे नारी को पुरुष के समान ही समाज का आधा अंग मानती थीं। इस निष्क्रिय अंग को सजीव करना वे आवश्यक मानती थीं। महिलाओं की जिम्मेदारी वे पुरुषों से कम नहीं मानतीं।

गाँधीजी के निकट सम्पर्क में रहकर उन्होंने स्वतन्त्रता, समाज-सुधार और स्वावलम्बन दोनों की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने यह समझ लिया था कि स्वतन्त्रता पाने के बाद भी समाज-सुधार तथा स्वावलम्बी बनने का क्रम चलता ही रहना चाहिए। गाँधीजी को सभी पक्षों से उन्होंने समझा था। स्वराज्य और रामराज्य के दो अनिवार्य लक्ष्यों को पाना गाँधीजी का लक्ष्य था।

स्वराज्य मिल जाने के बाद भी शेष काम को पूरा करने में ये जुटी रहीं। जन-जाग्रति की दिशा में इन्होंने इतना काम किया कि वे इतनी लोकप्रिय हो गईं, जिसके कारण दूसरे आम चुनाव में उन्हें खड़े होने का आग्रह किया गया। उन्होंने अपने काम को देखते हुए इसे अस्वीकार कर दिया।

पति की मृत्यु के पश्चात् तो इन्होंने सारे देश को ही अपना परिवार मानकर शेष जीवन उसी की सेवा में अर्पित कर दिया। गाँवों के देश-भारत की प्रगति का शुभारम्भ गाँवों से ही हो सकता है। इन्होंने कई ग्रामीण कन्या विद्यालय आरम्भ किए, महिला ग्रामसेवक प्रशिक्षण केन्द्र खुलवाये, महिला संस्थाएँ खुलवायीं। इनकी निरन्तर प्रगति की देख-रेख करना इनके जीवन का एक अंग हो गया।

कस्तूरबा-राष्ट्रीय-स्मारक निधि की मैसूर शाखा की संचालिका के रूप में इन्होंने पर्याप्त कार्य किया तथा अखिल-भारतीय-नशाबन्दी परिषद की स्थापना इनके प्रयासों का ही परिणाम है।

६५ वर्ष की आयु में भी ये महिला कल्याण तथा बाल-कल्याण की दिशा में रात-दिन कार्य करती रहीं। मन्त्री पद छोड़ने के उपरान्त इन्होंने अपने इन रचनात्मक कार्यों को पुनः हाथ में लिया तो उन्हें लगा कि वे वापस अपनी सृजन की दुनिया में आ गई हैं।

नशाबन्दी के क्षेत्र में महिलाओं द्वारा पिकेटिंग का कार्य महात्मा गाँधी ने भी स्वीकार किया था। श्रीमती दासप्पा ने उन दिनों नशाबन्दी आन्दोलन में पूरी तरह भाग लिया। वे इसे आवश्यक मानती थीं तथा महिलाओं को इस दिशा में रचनात्मक कार्य करने की प्रेरणा देती थीं। उनका कथन है कि देश की सबसे बड़ी नैतिक शक्ति नारी है। परिवार में नारी का दायित्व पुरुष से कम नहीं अधिक ही है। नशेबाजी का हानिकारक प्रभाव उस पर भी कम नहीं पड़ता।

उन्होंने इसे कार्यरूप में परिणत भी किया और महिलाओं ने नशाबन्दी के लिए काम करने की ठान ली। आज नहीं तो कल सरकार को विवश होकर नशाबन्दी करनी ही पड़ेगी। यह उनकी मान्यता थी तथा वह कहती थीं कि नशाबन्दी हो जाती तो विषैली शराब से इतनी मौतें नहीं होतीं।

श्रीमती दासप्पा की नारी-चेतना पाश्चात्य का अनुकरण नहीं, वे नारी की सादगी तथा सौम्यता को ही उसका भूषण मानती थीं। फैशनपरस्ती को मानसिक दासता मानती थीं।

इनके कार्यों को दृष्टिगत रखते हुए भारत सरकार ने इन्हें 'पद्मभूषण' की सम्मानित उपाधि से अलंकृत किया। श्रीमती दासप्पा जैसी महिलायें ही राष्ट्र की प्रगति का आधार बन सकती हैं। इसलिए आज भारत की प्रत्येक महिला के उठ खड़े होने की वेला है।

समाज-सुधार और जन-सेवा में संलग्न— जानकी मैया

अब से लगभग अठारह वर्ष पूर्व संत विनोबा बिहार प्रान्त का दौरा कर रहे थे। उनके साथ 'जानकी मैया' (श्रीमती जानकी देवी बजाज) भी प्रतिदिन गाँवों का निरीक्षण करती चल रही थीं। उनको यह देखकर बड़ा कष्ट हुआ कि उनके गाँवों में मनुष्य और पशु पानी की कमी से बड़ा कष्ट पा रहे हैं।

मनुष्य तो आवश्यकता होने पर एक-दो मील से पानी लाकर भी अपनी प्यास बुझा सकता है। पर पशुओं को ऐसी स्थिति में जल कहाँ से प्राप्त हो सकता है ? अनेक स्थानों पर प्यासे और पानी की कमी से सूखे हुए गाय और बैलों के समूहो को निराशा की नजर से अपनी ओर ताकते हुए देखकर उनको बड़ा आन्तरिक कष्ट हुआ। उन्होंने इसका जिक्र विनोबाजी से किया तो वे भी बड़े दुःखी हुए और उन्होंने 'भूदान' की तरह 'कूपदान' का आंदोलन चलाने की उनको सलाह दी। यह कार्य किस प्रकार आरम्भ किया गया, इसका वर्णन करते हुए उन्होंने बतलाया है—

"उस समय मैं गया में थी, जहाँ मेरी कोई विशेष जान-पहचान न थी। फिर भी जेठ-वैशाख की दोपहरी में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बहनों के पास जाकर इसकी चर्चा करती और अपनी बात समझाती। आजकल माँगने वालों से कोई खुश नहीं रहता, पर मुझे तो एक 'धुन' लग गई थी। मेरे मन में एक विचार आया कि १०८ कुयें बनवाये जायें। सूत की एक 'लटी' में तारों की इतनी ही संख्या होती है। पहले महीने में कोई सिलसिला नहीं जमा। निराशा-सी होने लगी। मन डगमगाने लगा कि १०८ की जगह ८ भी हो जायें तो बड़ी बात है। जब मैं कहती कि गायों को पीने के लिए पानी नहीं मिलता, तो बड़े घरों की स्त्रियाँ कहतीं कि पानी तो बहुत है। मैंने कहा कि आप एक दिन देहात में चलकर देखो। गया के श्रीभूप राजा बड़े भावनाशील जमींदार हैं। वह गाँधीजी और विनोबाजी के भी बड़े भक्त हैं। पर उनको और उनके घर वालों को यह कल्पना नहीं थी कि दरअसल कुओं के बिना गाँवों में मनुष्यों तथा पशुओं को कितना कष्ट है। इसलिए हमने एक दिन देहात जाकर सब स्थिति देखने का कार्यक्रम बनाया। सब जगह सूखा ही सूखा था, पशुओं की हड्डियाँ दिखाई दे रही थीं और बिना पानी और चारे के वे बेहाल हो रहे थे।

गाँव वालों से बातें कीं तो मालूम हुआ कि पचास घरों के बीच केवल एक कच्चा कुआँ है, वह भी बरसात में भर जाता है। उन्हें हर साल फिर से खोदना पड़ता है। चूना, ईंट, सीमेंट से पक्का बनाने की सामर्थ्य उनकी नहीं थी। यह सब देखकर बहिनों का हृदय पसीज गया। वे बोलीं—"हम सौ तोले की जगह पचास तोले सोने के आभूषण ही पहन लेंगी पर कुआँ अवश्य बनवायेंगी।" गाँव वालों ने कहा—"हम कुआँ खोद लेंगे, ईंटें भी बना लेंगे, हमें चूना और सीमेंट आदि ही चाहिए।" हिसाब लगाने से पहले मालूम हुआ कि यदि गाँव वाले श्रमदान से कुआँ बना लें, तो सामग्री में पाँच सौ रुपया से काम चल जायेगा। १०८ कुओं के लिए कम से कम ५० हजार रुपया चाहिए। गया में दो सज्जनों से दस-दस तोला सोना मिला। धीरे-धीरे वहाँ ३९ कुएँ खुद गये। इस कार्य में सहयोग देने के लिए ट्रक वाले भी बिना किराया लिए सीमेंट पहुँचाने लगे, केवल ईंधन के लिए खर्च लेते थे।

इस प्रकार प्यासे प्राणियों की व्यथा को अपनी अंतरात्मा में अनुभव करने वाली जानकी देवी का जन्म सन् १८९३ में जावरा में हुआ था। उनका विवाह नौ वर्ष की अल्पायु में ही वर्धा के प्रसिद्ध देशभक्त सेठ जमना लालजी बजाज के साथ हुआ था, जिनकी आयु उस समय १३ वर्ष की थी। उनका रंग जन्म से ही साँवला था और बचपन में भयंकर रूप से चेचक निकलने के कारण और भी काला हो गया था और चेहरे पर गहरे दाग पड़ गये थे। उधर जमनालालजी काफी सुंदर और खूब गोरे थे। इसलिए जमनालालजी की माँ ने कहा—"हमारा लड़का तो गोरा और सुन्दर है, उसकी बहू भी सुन्दर लानी चाहिए।" पर उसकी सास सद्दी बाई ने समझाया—"बेटी, हम दोनों सुन्दर तो हैं, पर संतान के लिए तो तरसती ही रह गईं (जमनालालजी अन्यत्र से गोद लाए गये थे)। तेरी भाभी को देख कि है तो कुरूप-काली पर उसने सात रत्न (संतानें) दिये हैं। हमको तो ऐसी लड़की चाहिए, जिससे वंश की वृद्धि हो। रूप में क्या रखा है ?

आजकल की ही हालत देख सद्दीबाई का कथन याद आता है। इस समय तो रूप और उसके साथ नये-नये फैशनों की ही पूछ है। लड़के चाहे स्वयं काले या कुरूप हों पर पत्नी सिनेमा की अभिनेत्रियों के समान सुन्दर ही ढूँढते हैं। इस मनोवृत्ति के कारण साँवले रंग की और सुन्दरतारहित लड़कियों के अभिभावकों को उनके विवाह के लिए कितना चिंतित रहना पड़ता है, इसे भुक्तभोगी ही जानते हैं। पर भाग्य से जानकी देवी को ऐसी सास मिल गई जो कालेपन की ही कदर करने वाली थी और इससे उसका आरम्भिक जीवन सुख-शान्ति से व्यतीत होने लगा।

जिस समय जानकीदेवी का विवाह हुआ, उस समय जमनालालजी पुराने ढंग के मारवाड़ी सेठों का सा जीवन ही व्यतीत कर रहे थे। बाद में उनको रायबहादुर का खिताब भी मिला और आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाये गये। पर उनका वैभव-विलासितापूर्ण यह जीवन बहुत थोड़े दिन ही चल सका। १९१८ में ही वे गाँधीजी के संपर्क में आये और १९१९ में नागपुर कॉंग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर उन्होंने रायबहादुरी और आनरेरी मजिस्ट्रेटी दोनों को त्याग दिया। उसके बाद तो उनका जीवन दिन पर दिन एक देशसेवक के अनुरूप त्यागमय होता गया। जानकी देवी यद्यपि मारवाड़ी समाज की भावनाओं के अनुसार धन, आभूषण, लेन-देन आदि की परंपराओं में ही पली थीं, पर जब उनके पति ने एक देशसेवक का परमार्थमय जीवन अपनाया तो उन्होंने भी वस्त्र-आभूषणों का मोह त्याग दिया। मुसलमानी रियासत जावरा की रहने वाली होने के कारण पहले वे पर्दा भी बहुत जबर्दस्त करती थीं। पर बाद में जमनालालजी की प्रेरणा से मुँह खोले बड़ी-बड़ी सभाओं में भाषण करने लगीं। इस प्रकार उनका जीवन भी कुछ समय में सार्वजनिक बन गया। वे गाँधीजी के आंदोलन में जेल भी गईं और फिर गाँधीजी के कार्यक्रम का महिलाओं में प्रचार करने के लिए व्याख्यानदात्री भी बन गईं। जब वे सन् १९३३ में कलकत्ता में होने वाले महिला-सम्मेलन की अध्यक्षता करने को गईं तो गाँधीजी ने उनको एक पत्र भेजा, जिसमें कहा गया था—

"आप बहिनों का पर्दा तुड़वाने कलकत्ता जा रही हैं, इसके लिए धन्यवाद। पर्दा किससे रखें ? क्या पुरुष-मात्र विषयासक्त होते हैं? क्या स्त्री अपनी पवित्रता बिना पर्दे के नहीं रख सकती ? पवित्रता एक मानसिक बात है, जो सभी स्त्री, पुरुषों में स्वभावतः रहनी चाहिए।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि इस बुद्धि प्रधान युग में स्त्री धर्म की रक्षा करना चाहती है, तो उसे दरिद्रनारायण की सेवा करनी होगी, शिक्षण लेना होगा। दरिद्र नारायण की सेवा का अर्थ है—खादी का प्रचार, कातना आदि। हरिजन सेवा का अर्थ है—अस्पृश्यतारूपी कलंक का धोना। ये भगवान के दो बड़े कार्य हैं और विद्या पाने का तीसरा कार्य भी पर्दा रखने से कभी नहीं चल सकता। क्या पर्दा रखकर सीता रामजी के साथ जंगलों में भटकी थीं। सीता से बड़ी पवित्र स्त्री जगत में कभी हुई है? बहिनों से कहो-पर्दा तोड़ो और धर्म को रखो। इसके बाद जानकी देवी ने समय-समय पर अनेक बहिनों के घूँघट खुलवाये। आज जो मारवाड़ी समाज में पर्दा बहुत घट गया है, उसका श्रेय जानकी देवी जैसी प्रचारिकाओं को ही है, जिन्होंने आज से चालीस वर्ष पहले समाज तथा परिवार वालों के विरोध तथा लोगों की बुरी लगने वाली टीका-टिप्पणी को सहन करके इस कार्य को आरम्भ किया था।

पर्दे से भी कठिन कार्य था जेवरों का त्यागना, मारवाड़ी स्त्रियाँ इनकी कितनी प्रेमी होती हैं यह सब कोई जानते हैं। कितनी ही स्त्रियों के बदन पर पहने हुए गहनों की तोल ५ सेर तक हो जाती थी, इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं। पर जब गाँधीजी ने घोषित किया कि ''सोना कलि रूप है। आभूषणों का शौक दूसरों में ईर्ष्या पैदा करता है, खो जाने और चोरी का डर रहता है, शरीर पर मैल जम जाता है, नाक, कान से दुर्गंध आने लगती है, देश के मूलधन में भी कमी पड़ती है'' तो जमनालालजी, जो उनके अनन्य अनुयायी थे, इसे कैसे अमान्य कर सकते थे। वे उस समय कहीं बाहर थे। वहीं से उन्होंने जानकी देवी को लिखा—''बापू का आदेश है कि गहने त्याग दो।'' इस आदेश का पालन उन्होंने किस प्रकार किया इसका वर्णन करते हुए उन्होंने कहा—

''जमनालालजी की चिट्ठी मेरे लिए वेद-वाक्य के समान थी। अगर वह यह बात मेरे सामने कहते तो मैं शायद बहस भी करने लगती। पर जब उन्होंने बापूजी का 'आदेश' लिखकर भेज दिया तो मैं क्या करती? चिट्ठी मेरे सामने रखी थी और मैं एक-एक गहना उतारती जाती थी। मारवाड़ी स्त्रियों में पैर के कड़े कभी नहीं खोले जाते। पर मुझे जब कोई गहना पहनना ही नहीं तो इस झूठे मोह को भी त्याग दिया। कड़ा निकाल देने पर सबको आश्चर्य हुआ और कई स्त्रियाँ मुझे बिना कड़ों के देखने भी आईं।

वास्तव में गहने और पर्दा भारतीय स्त्रियों की प्रगति में बहुत बड़ी बाधास्वरूप हैं। इनके कारण वे कहीं स्वतंत्रतापूर्वक आना-जाना भी नहीं कर सकतीं। हमेशा चोरी हो जाने, मार्ग में खो जाने का भय बना रहता है। सार्वजनिक कार्यों में तो गहनों से लदी और घूँघट से मुँह ढकी स्त्री की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इस प्रकार इन दो कुप्रथाओं के कारण हमारे देश की करोड़ों स्त्रियाँ राष्ट्रोत्थान संबंधी किसी सेवा से वंचित रहकर भार स्वरूप बनी हुई हैं और इसके परिणामस्वरूप लोगों की निगाह में उनका महत्त्व भी उतना ही कम रहता है। जानकी देवी ने स्वयं ही बड़े साहस और संघर्ष के साथ इनको ही न छोड़ा वरन् अपने समाज की और भी सैकड़ों महिलाओं को प्रेरणा देकर, आग्रह करके इस मार्ग पर चलाया। वैसे भी उनके त्याग को देखकर दूसरों पर उनका प्रभाव स्वयं पड़ता था। एक बार वे कांग्रेस की किसी सभा में देवली (राजस्थान) गईं और भाषण देते हुए कहा कि तम्बाकू, बीड़ी पीना अच्छा नहीं है। उस सभा में संयोग से इनके श्वसुर (जमनालालजी के जन्म पिता) भी बैठे थे। जब उन्होंने इस बात को सुना तो कहने लगे कि ''बहू तो लोगों को तम्बाकू पीने से रोकती है, तब मैं उसे कैसे पीऊँ।'' बस उसी दिन से उन्होंने हुक्का आदि छोड़ दिया।

पर संसार में मूढ़ और दुराग्रही लोगों की भी कमी नहीं होती। जब जमनालालजी के पुरोहित और उनके मंदिर के पुजारी 'जोशीजी' ने सुना कि सेठानी (जानकी देवी) ने पर्दा छोड़ दिया है और कांग्रेस के प्रचार कार्य में चारों तरफ घूमकर व्याख्यान देने लगी हैं, तो उनको बड़ा बुरा लगा और उन्होंने प्रतिज्ञाकर ली—''सेठानी जी न तो मेरे सामने आवें, न मुझसे बातें करें, अन्यथा मैं कुएँ में गिरकर जान दे दूँगा या वर्धा छोड़कर चला जाऊँगा।''. जानकी देवी कभी उनके समीप होकर भी नहीं निकलीं, यद्यपि उनके भरण-पोषण का व्यय देती रहीं।

राष्ट्रीय-कार्य और समाज सेवा की शिक्षा लेने के लिए जानकी देवी काफी समय तक साबरमती आश्रम में भी रही थीं और वहाँ के नियमानुसार सब काम अपने हाथ से करती थीं। घर पर अधिकांश कार्य नौकरों द्वारा ही किए जाते थे, इसलिए आरम्भ में उन्हें बड़ी अड़चन जान पड़ी, पर वे गाँधीजी को इष्टदेव समझकर दृढ़तापूर्वक कार्यों में संलग्न रहीं। जब उन्होंने देखा कि आश्रम में कोई मेहतर नहीं है और विनोबा और मगनलाल गाँधी जैसे महापुरुष टट्टी की बाल्टी उठाकर ले जाते हैं, तो उन्होंने भी उस काम को स्वेच्छा से दो-चार बार किया। एक बार आश्रम में जब पंजाब की प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्त्री सरला देवी चौधरानी बीमार पड़ीं तो एक स्वयंसेविका की तरह उन्होंने उनकी सेवा का भार अपने ऊपर लिया और उनकी टट्टी, पेशाब तक को स्वयं बाहर ले जाकर साफ किया। यह वे ही जानकी देवी थीं, जो अपने पिता के घर केवल कुएँ के पानी का ही प्रयोग करती थीं और मंदिर जाते समय नल के पानी का एक छींटा भी पड़ जाय तो वापस लौटकर स्नान करती थीं। संगत और वातावरण के प्रभाव से मनुष्य कहाँ तक बदल सकता है, इसका यह बहुत बड़ा उदाहरण है।

एक अनपढ़ और रूढ़िग्रस्त मारवाड़ी महिला होते हुए भी जानकी देवी अपने पति के आदर्शों का पालन करती हुई एक सच्ची समाज सेविका बन गईं। यही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सच्चा पतिव्रत धर्म है। महिलाओं को राष्ट्रीय-आंदोलन में सम्मिलित कराने में वह गाँधीजी की बड़ी सहायिका थीं। वह स्वयं भी जेल गईं और वहाँ स्वेच्छा से 'ए' क्लास के बजाय 'सी' क्लास लेकर बहुत अधिक कष्ट सहन किये। जमनालालजी तथा गाँधीजी के स्वर्गवास के पश्चात् वह विनोबाजी की अनुगामिनी बनी रहीं और देश के विभिन्न स्थानों में हजारों कुएँ बनवाकर ग्रामीण जनता की इतनी बड़ी सेवा की, जिसे लोग बहुत वर्षों तक याद करते रहेंगे।

श्रीमती चंद्रावती राठौर

सामान्य गृहिणी से समाज-सेविका

आज किसी सामान्य खाते-पीते घर की महिला से इतनी ही आशा की जा सकती है कि वह घर का संतुलन बनाये रखकर सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करे। किन्तु श्रीमती चंद्रावती राठौर ने अपने जीवन में यह सत्य चरितार्थ कर दिखाया कि अंत:प्रेरणा समस्त साधन-सुविधाओं से ऊपर है। अपनी सामान्य परिस्थितियों तथा सीमित ज्ञान के ठीक उपयोग द्वारा सामान्य पुरुष ही नहीं महिलायें भी लोकहित के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं।

श्रीमती राठौर हरदोई के एक मध्यमवर्गीय परिवार की महिला थीं। लगन व परिश्रम के साथ गृह-व्यवस्था करने से घर में उनका पर्याप्त सम्मान था। किन्तु उनका अंत:करण अपने कार्यक्षेत्र के विस्तार के लिए अकुलाया करता था। उनके मन में विशेष रूप से बालिकाओं को शिक्षित बनाने के प्रति समाज की उदासीनता अखरा करती थी। नारी-शिक्षा की उपेक्षा का कठोर दंड भुगतते हुए भी समाज उसके प्रति जागरूक क्यों नहीं होता? यह प्रश्न उनके हृदय में चुभा करता था। मन तरंगें लिया करता था कि यदि हमारे पास अमुक प्रतिभा होती तो इस दिशा में कुछ प्रयास करना संभव होता।

मन में जब उमंग उठती है तो विभिन्न पक्षों से बुद्धि उस विषय में सोचा करती है। श्रीमती राठौर की बुद्धि भी इस दिशा में सक्रिय थी। उस सक्रियता से यह सूझ उत्पन्न हुई कि अधिक साधन नहीं हैं तो क्या, थोड़े में से थोड़ा लाभ तो लिया ही जा सकता है। यह विचार उत्साह पैदा करने वाला था। इस उत्साह ने मन ही मन अपने छोटे साधनों से चलते हुए एक बालिका विद्यालय की कल्पना की। किन्तु कल्पना को साकार रूप देना आसान नहीं था। कहाँ से, किस प्रकार प्रारंभ किया जावे? इस प्रकार संकल्प-विकल्प उनके मन में उठा करते थे। वह किसी सुयोग की प्रतीक्षा में थी कि अचानक एक घटना उन्हें सामाजिक क्षेत्र में ले आने के लिए माध्यम बन गई। झिझक छोड़कर जैसे ही उन्होंने कार्यारंभ किया, उनके परिवार ने भी उन्हें बढ़ावा दिया। उनके पति तथा देवर सामाजिक अभिरुचि के व्यक्ति थे। ज्येष्ठ श्री अयोध्यासिंह राठौर तो अपने समय के प्रतिष्ठित लोक सेवी थे। श्रीमती चंद्रावती ने अपने आपको किसी से पीछे न रहने दिया। सन् १९३६ में एक अध्यापिका उनसे मिली। उसे किसी सामान्य दोष पर पाठशाला से निकाल दिया गया था। अध्यापिका की आजीविका का प्रश्न तो था ही किन्तु उसमें शिक्षा प्रसार के प्रति उत्साह भी था। श्रीमती राठौर ने उसे परखा तथा हरदोई से २ मील दूर 'पुखरी' नामक गाँव में कन्या पाठशाला खोलकर उसे उसमें लगा दिया। शहरों में घुटकर रह जाने वाली योग्यता तथा साधनों का उपयोग उन्होंने ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा प्रसार हेतु लगाना उचित समझा। यह वास्तव में एक व्यावहारिक हल है। समाज में एक ओर आवश्यकतायें भी पूरी नहीं होने पाती हैं और दूसरी ओर लोग होड़ तथा पक्षपात में अपनी शक्तियों का अपव्यय किया करते हैं।

श्रीमती चंद्रावती में तो स्वयं लगन थी ही, परिवार ने भी उनका उत्साह बढ़ाया। घर वालों ने पारिवारिक जिम्मेदारियों से धीरे-धीरे मुक्त होने में उनका सहयोग किया। उन्होंने अपना अधिक से अधिक समय लोक सेवा, विद्यादान हेतु लगाना प्रारम्भ कर दिया। छोटे से लेकर बड़े कार्य तक सब वह समय-समय पर करती थीं। सामान्य चपरासी से मैनेजर तक के कार्य करने की क्षमता तथा भावनात्मक योग्यता उनमें थी। अपनी सामर्थ्यानुसार धन लगाना तथा प्रयासपूर्वक चंदा एकत्र करना भी उन्हीं का कार्य था। यही नहीं घर-घर प्रेरणा देकर लड़कियों को पाठशाला में प्रवेश दिलाना तथा उनके लिए संतोषजनक व्यवस्था बनाने में भी वे निपुण थीं। व्याहारिक चिन्तन, विवेकपूर्ण निर्णय तथा उत्साहपूर्ण कार्यों के प्रभाव से पाठशाला का शीघ्र ही भली प्रकार जम जाना स्वाभाविक ही था।

जहाँ लगन से जनहितकारी कार्य किए जाते हैं, वहाँ जन-सहयोग भी स्वयं मिलने लगता है। जैसी-जैसी आवश्यकता पड़ती गई, सहयोग द्वारा उनकी पूर्ति भी होती गई। बाबू मोहनलाल जी वकील ने पाठशाला के लिए पर्याप्त जमीन दी। महिलाओं में बाबू मन्नीलाल वकील की पत्नी तथा बाई (डॉ० पूर्णदेव की माँ) ने उन्हें अपना सहयोग दिया। रेलवे गंज के डॉ० विश्वम्भरनाथ एवं शुगर मिल के शास्त्रीजी ने उन्हें भरपूर सहयोग दिया। इन्हीं महानुभावों ने आगे चलकर उनके बाद स्कूल का सारा कार्यभार सँभालकर उनके प्रयास को स्थिर तथा सार्थक बना दिया।

श्रीमती चंद्रावती यह भी मानती थीं कि स्वस्थ, धार्मिक-भावना मनुष्य को प्रगति पथ पर बढ़ाती है। अस्तु, उन्होंने स्कूल के परिसर में ही एक शिवालय भी बनवाया था। बालिकाओं को संस्कारवान बनाने के लिए वह विशेष बल दिया करती थीं। यही नहीं वह शिक्षा केन्द्र के साथ अन्य लोकोपयोगी प्रवृत्तियाँ भी बढ़ाना चाहती थीं। निकट

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही एक औषधालय तथा धर्मशाला बनवाने का भी उनका विचार था। किन्तु उपयुक्त सहयोगियों के न मिल पाने से वह उन्हें मूर्तिमान न कर सकीं। अंतिम समय तक उन्हें स्कूल के विकास तथा अगले कार्यों की पूर्ति की लगन लगी रही। जो कार्य वह स्वयं न कर सकीं, उनके लिए अपने सहयोगियों से वे अपील कर गई थीं।

देश की समस्यायें बड़ी हैं। उन्हें देशव्यापी बड़े कार्यक्रमों द्वारा हल करने की बात लोग सोचते हैं। उस स्तर के साधन सदैव उपलब्ध हों, यह आवश्यक नहीं। किन्तु छोटी-छोटी इकाइयों में उनका हल निकाला जा सकता है। यह व्यावहारिक समाधान श्रीमती चंद्रावती ने चरितार्थ कर दिखाया। सतत कार्यरत रहकर सन् १९६७ में फाल्गुन मास की अमावस्या को वह स्वर्ग सिधार गईं। वृद्धावस्था में भी अंत तक वह लगी ही रहीं। अति श्रम से बीमार हो जाने पर ही उनका शारीरिक कार्य रुका। ऐसे आदर्श समाज में स्थान-स्थान पर उपस्थित हो सकें तो समाज की सोई चेतना जाग पड़े और प्रगति के अनेक मार्ग खुल जावें।

श्रीमती नेमावती की सराहनीय समाज-सेवा

राजस्थान की श्रीमती नेमावती ने लोगों की इस भ्रांत धारणा का अपने सेवा कार्यों द्वारा मूलोच्छेदन कर दिया कि महिलायें समाज-सेवा के कार्यों के लिए सक्षम नहीं होतीं और न वे उसमें सफल ही हो सकती हैं।

श्रीमती नेमावती की स्कूली शिक्षा तो केवल छठी कक्षा तक ही हो पाई। उनके पिता की आर्थिक स्थिति कमजोर थी, इसलिए वे उनको अधिक शिक्षा नहीं दिला पाये और उन्हें जीवन भर इस बात का दुःख रहा कि बी०ए० पास करने की बेटी की इच्छा को वे पूरी न कर सके। विवाह के उपरांत भी श्रीमती नेमकुमारी की शिक्षा संबंधी इच्छा मरी नहीं थी। उन्होंने पढ़ने का प्रस्ताव अपने पति से भी किया किन्तु वह स्वयं भी ज्यादा पढ़ा-लिखा न था, साथ ही उसके रूढ़ संस्कार नारी शिक्षा के विरोधी भी थे। अस्तु, उसने पत्नी को पढ़ाने से मनाकर दिया।

फिर भी श्रीमती नेमकुमारी ने जी लगाकर सिलाई का काम सीखा और कुछ ही समय में बहुत से कपड़े सीने लगीं। तब तो पति के साथ घर के अन्य सदस्यों की भी दिलचस्पी और बढ़ गई और श्रीमती नेमकुमारी को शिल्पशाला में जाकर सिलाई का कोर्स पूरा करने की आज्ञा मिल गई। उन्होंने परिश्रमपूर्वक तीन वर्ष में सिलाई का कोर्स पूरा कर लिया और एक कुशल कारीगर बन गईं।

अनन्तर उन्होंने अपने शिल्प का लाभ उठाया और कपड़े सींकर पति के आर्थिक बोझ में हाथ बँटाने लग गईं। उनके इस कार्य से घर में उनका प्रभाव बहुत बढ़ गया और उन्हें विश्वास के साथ काफी स्वतन्त्रता तथा सुविधा भी मिल गई।

अपनी इस सफलता से श्रीमती नेमकुमारी का न केवल उत्साह ही बढ़ा बल्कि उनके मस्तिष्क में एक विचार आया। वह यह कि यदि महिलायें मेरी तरह ही कोई शिल्प सीख लें, तो वे जीवन में काफी हद तक स्वावलंबिनी बन सकती हैं और तब उन पर यदि कोई निराश्रय की स्थिति आ पड़े, तो वे अपने पैरों आप खड़ी हो सकती हैं। इस सद्विचार ने उनके मन में समाज-सेवा की भावना प्रबुद्ध कर दी और वे उसे सक्रिय रूप देने के लिए छटपटा उठीं।

अब तक उन्हें पति का काफी विश्वास प्राप्त हो चुका था। उन्होंने साहसपूर्वक पति से यह प्रस्ताव किया कि समाज में बेचारी स्त्रियों की दशा बहुत खराब है। खासतौर से विधवाओं की दशा तो बहुत ही दयनीय है। क्यों न कुछ ऐसा कार्यक्रम चलाया जाये, जिससे उन्हें और कुछ न सही सिलाई का ही काम सिखाया जा सके, जिससे वे दो रोटी कमाने लायक हो सकें। श्रीमती नेमकुमारी ने यह प्रस्ताव कुछ ऐसे मार्मिक ढंग से रखा कि उनके पति तत्काल सहमत हो गये। कार्य प्रारंभ हो गया।

सबसे पहले उन्होने अपने घर पर ही अपनी मशीन की सहायता से एक सिलाई कक्षा लगानी प्रारंभ कर दी और अनेक विधवाओं तथा कन्याओं को सिलाई का काम सिखाया। धीरे-धीरे जब महिला प्रशिक्षार्थियों की संख्या पचास के लगभग हो गई, तब उन्होंने ग्राम-पंचायतों का ध्यान इस ओर आकर्षित कराया।

किसी सत्कार्य को बढ़ते देर नहीं लगती। उन्होंने आगे प्रयत्न किया और विकास-खंडों के अधिकारियों तक पहुँचकर उक्त सिलाई-केन्द्र को सहायता दिलवाई। श्रीमती नेमकुमारी की इस सफलता से उनका न केवल उत्साह तथा साहस ही बढ़ा, बल्कि उन्होंने बड़े-बड़े अधिकारियों का भी ध्यान इस ओर आकर्षित किया। जिसका फल यह हुआ कि लगभग दस हजार रुपये की लागत से स्थापित वह सिलाई केन्द्र इस समय एक शिल्प-संस्था बन गया है, जिसमें लगभग पचास महिलाएँ, जिनमें विधवायें अधिक हैं, सिलाई, कढ़ाई, बुनाई सीखकर अपने पैरों आप खड़े होने योग्य बन रही हैं।

भारत के लिए सर्वस्व अर्पण करने वाली—बहिन निवेदिता

सच्चे ज्ञान के पिपासुओं और मानवसेवियों के लिए न कोई देश है न विदेश। उनकी ज्ञान-पिपासा की तृप्ति जिन धार्मिक सिद्धान्तों से होती है, वही उनका धर्म और जहाँ उनकी सेवाओं की आवश्यकता होती है, वही उनका देश होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.४१ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

जिस प्रकार अनेक सन्त-महापुरुषों ने एक देश में जन्म लेकर दूसरे देश को अपनी सेवायें समर्पित कीं, उसी प्रकार मिस मागरिट एलजावेथ नोबुल ने आयरलैंड में जन्म लेकर भारत की सेवा की।

भगिनी निवेदिता का बचपन का नाम मागरिट नोबुल था। उनका जन्म २८ अक्टूबर, १८६७ को एक आयरिश परिवार में हुआ था। पिता का नाम सैम्मुअल रिचमंड तथा माता का नाम मेरी इजावेल हैमिल्टन था। नोबुल को जन्म से ही धार्मिक वातावरण मिला था। उसके पिता एक ईसाई धर्म प्रचारक थे। इसी संदर्भ में घर पर अनेक पादरियों का आना जाना लगा रहता था। भारत में धर्म प्रचार हेतु भेजे गये एक पादरी ने नोबुल के सिर पर बड़े स्नेह से हाथ रखते हुए कहा था—'भारत को किसी दिन इस बालिका की आवश्यकता पड़ेगी। और उस पादरी की भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। रिचमंड की मृत्यु भी ३४ वर्ष की अल्प आयु में हो गई थी पर उनके द्वारा कहे गये अंतिम शब्द नोबुल के लिए बड़े महत्त्व के थे। उन्होंने कहा था—'नोबुल के जीवन में एक पुकार आयेगी। जब भगवान की ओर से उसके लिए निमंत्रण आये तो उसे रोकना मत। उसके द्वारा मानवता की सेवा के लिए महान कार्य संपन्न होंगे।'

सन् १८८६ में उन्होंने ऐजाम नामक स्थान पर १९ वर्ष की आयु में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने १८९२ में 'रस्किन स्कूल' की स्थापना करके बच्चों को नैतिकता की ओर ले जाने के लिए भरसक प्रयत्न किया। १८ वर्ष की आयु भावी जीवन के स्वर्णिम स्वप्न देखने की होती है, उस समय नोबुल का मन अशांत रहने लगा था। वह कभी गिरजाघर में तो, कभी एकांत स्थान पर चिन्तन-मनन में खोई हुई मिलती थीं। १८ वर्ष की इस अल्प-आयु में ही ईसाई धर्म के प्रति उनके मन में अनेक शंकाएँ उठने लगीं. और उन्होंने ईसाई धर्म को तर्क की कसौटी पर कसना और विवेक की आँख से देखना शुरू कर दिया। तर्क की कसौटी पर ईसाई धर्म के सिद्धान्त उन्होंने बड़े ही कमजोर और संदिग्ध पाये, जिसके लिए उन्होंने एक स्थान पर स्वयं कहा है—

"अट्ठारह वर्ष की आयु के पश्चात् ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के प्रति मेरे मन में तरह-तरह की शंकायें उठने लगीं। उनमें से बहुत से सिद्धान्त तो मुझे सर्वथा असत्य और निःसार विदित हुए, मैंने बहुत कुछ चाहा किन्तु अन्धविश्वास के बल पर ईसाई धर्म के प्रति अपनी आस्था को मैं डगमगाने से बचा न सकी। सात वर्षों के द्वन्द्वात्मक संघर्ष के बाद आखिर मेरे अन्तःकरण ने ईसाई धर्म को बिल्कुल अस्वीकार कर दिया और मैंने चर्च जाना छोड़ दिया।"

इस प्रकार ईसाई धर्म छोड़ देने मात्र से तो ज्ञानालोक की प्राप्ति सम्भव न थी। उसके लिए तो एक ऐसे धर्माकाश की आवश्यकता थी, जिसके सत्य एवं शाश्वत सिद्धान्त सूर्य के समान ही भासमान हों। निदान उसकी खोज में वे विभिन्न धर्मों की सिद्धान्त वीथियों में भटकती फिरीं। किन्तु उनको वह उज्ज्वल प्रकाश नहीं मिल सका, जो उनके विवेक को संतुष्ट करके अन्तःकरण को प्रसन्न कर सकता। दिन-दिन उनकी ज्ञान पिपासा बलवती और अशान्ति बढ़ती गई, किन्तु वे ज्ञान की खोज में निराश होकर उदासीन न हुईं, उन्हें विश्वास था कि जिस वस्तु की प्राप्ति के लिए मेरे मन में एक सच्ची लगन बनी हुई है, उसके न मिलने का कोई कारण नहीं है।

शिकागो के धर्म-सम्मेलन को हुए भी अभी अधिक समय नहीं हुआ था। स्वामी विवेकानन्द सितंबर १८९५ में इंग्लैण्ड पधारे थे। दो माह बाद ईसाबेल मारजेसन के वेस्ट एंड स्थित भवन पर स्वामीजी की गोष्ठी का आयोजन किया गया। नोबुल भी इस कार्यक्रम में उपस्थित थीं। वे स्वामीजी के प्रथम दर्शन से अत्यधिक प्रभावित थीं। उन्हें ऐसे चिंतनशील व्यक्ति से मिलने का इससे पूर्व कभी अवसर न मिला था। जहाँ-जहाँ स्वामी के कार्यक्रम हुए नोबुल समय निकालकर हर जगह जातीं और अमनी शंकाओं का समाधान करती थीं। अध्यात्म की इन चर्चाओं से अज्ञान का अंधकार छँटने लगा और ज्ञान की उज्ज्वल किरणें हृदय तथा मस्तिष्क को स्पर्श करने लगीं। बाद में तो वह अनुभव करने लगीं कि यदि कहीं स्वामीजी लंदन न पधारे होते, तो मेरा यह मानव जीवन निरर्थक ही चला जाता। उन्होंने सोचने और कर्मक्षेत्र में कुछ करने की दिशा प्रदान की। दो माह बाद स्वामीजी अमेरिका चले गये, पर नोबुल के मन में अध्यात्म विषयक एक सुदृढ़ पृष्ठभूमि का निर्माण हो चुका था।

१५ अप्रैल, १८९६ को जब स्वामी विवेकानन्द पुनः इंग्लैण्ड पधारे और रस्किन स्कूल गये तो वहाँ के बच्चों को देखकर उन्हें भारतीय निर्धन और अशिक्षित परिवारों के बच्चों की याद आई और उनके नेत्रों से आँसू झर पड़े। स्वामीजी का दुःख नोबुल से न छिप सका। उन्होंने भारत के दीन-दुखियों की सेवा कार्यों में तन-मन-धन से पूरा-पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया। स्वामीजी उनकी भारत यात्रा को हमेशा टालते रहे। वह नहीं चाहते थे कि भावुकता में उठाया गया कोई कदम हास्यास्पद बने। वे चाहते थे कि विचारों में परिपक्वता आये, अंतरंग में दुःखी मानवता के लिए कसक पैदा हो।

वे १६ सितंबर, १८९६ को भारत लौट आये पर उन्होंने नोबुल को भारत आने की तभी स्वीकृति दी जब उनके दृष्टिकोण में उचित परिवर्तन हुआ। स्वामीजी ने पत्र में लिखा—'भारत में कार्य की दृष्टि से तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है। यहाँ मनुष्य की नहीं, वरन् महिला की आवश्यकता है जो सिंहिनी की तरह, यहाँ व्याप्त दासता, निर्धनता और अंधविश्वास जैसी कठिनाइयों को दूर कर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सके। यहाँ तुम्हें ऐसे अर्द्धनग्न स्त्री-पुरुषों के बीच रहना होगा। जिनकी जातिवाद के संबंध में विचित्र धारणायें हैं। यहाँ की जलवायु भयानक रूप से गर्म है। इन परिस्थितियों के बाद भी यदि तुममें कार्य करने का साहस है तो तुम्हारा स्वागत है।'

नोबुल इसी क्षण की तो प्रतीक्षा कर रही थी, उन्होंने अपनी माँ, भाई, बहिन, मित्र तथा परिचितों से कारुणिक वातावरण में विदा ली। वह मोंबासा जहाज पर सवार हो भारत आयीं। २८ जनवरी, १८९८ का वह पावन दिन नोबुल के जीवन में कितना महत्त्वपूर्ण होगा, जब स्वामी विवेकानन्द ने पुष्पहारों से उनका स्वागत किया। भारत में उनका स्वागत करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने उनकी निष्ठा की परीक्षा लेते हुए कहा—'मिस नोबुल मैं भारतीय भूमि पर तुम्हारा स्वागत करता हूँ और जानता हूँ कि भारत को आज ऐसी नारियों की आवश्यकता है। किन्तु फिर भी मैं तुम से स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि तुम एक योरोपीयन महिला हो, भारतीय जलवायु तुम्हारे अनुकूल हुआ न हुआ तो ? सम्भव है धर्म के कठोर नियम-संयमों का पालन तुम्हारी प्रकृति के विपरीत पड़े। वेदान्त की असिधारा पर तुम्हारी अनभ्यस्त बुद्धि चल सकी या न चल सकी? सम्भव है तुम्हारे मौलिक संस्कार अनागत संस्कारों का विरोध करें। इसलिए तुम अभी खूब अच्छी प्रकार सोच लो, विचार कर लो क्योंकि एक बार इस मार्ग पर चल पड़ने के बाद फिर छोड़कर भागना हमारे और तुम्हारे दोनों के लिए लज्जा का विषय होगा। क्योंकि मनुष्य का संकल्प एक होता है, बार-बार बदलता नहीं। जिस प्रकार हाथी के दाँत बाहर निकल आने पर फिर दुबारा अन्दर नहीं होते, उसी प्रकार मनुष्य का ध्येय पथ पर बढ़ा हुआ चरण पीछे नहीं हटता।''

कुमारी नोबुल ने इसका केवल एक छोटा-सा उत्तर दिया—''भगवन ! मैं भारतीय हूँ, आप केवल जन्म के कारण मुझे योरोपियन न समझिये। मेरा बाह्य आकार प्रकार अवश्य योरोपियन है किन्तु मेरी आत्मा विशुद्ध भारतीय है, मुझे निराश न करिए। अपनी शरण देकर मेरी अपनी आत्मभूमि को सेवा करने का अवसर दीजिए।''

स्वामी विवेकानन्दजी उनकी इस महान निष्ठा से बहुत प्रसन्न हुए और दीक्षित कर अपनी शिष्या बना लिया। दीक्षित हो जाने के बाद उन्होंने पाश्चात्य जीवन प्रणाली को त्यागकर भारतीय जीवन प्रणाली अपनाई।

स्थित हो जाने के बाद उन्होंने अपने गुरु से अपने कार्यक्रम का रूप-रेखा का निर्देश माँगा। स्वामीजी ने उन्हें बड़े सरल शब्दों में बताया कि मानव का सबसे महान कार्य है, अज्ञानान्धकार में भूले-भटके मनुष्यों को प्रकाश देना और दीन-दुखियों की सेवा करना। जाओ भारत की सेवा करो।

अपने गुरु से निर्देश पाकर मिस नोबुल तत्काल काम में जुट गईं। उन्होंने नगर के विभिन्न भागों में घूम-घूमकर दु:खी जनों की सेवा करना प्रारम्भ कर दी और साथ ही बँगला तथा संस्कृत का अध्ययन भी।

वे उन्हें रहन-सहन का तरीका बतातीं और स्वच्छता का सक्रिय उपदेश करतीं। बच्चों को प्यार करतीं और रोगियों की सुश्रूषा। यद्यपि भाषा की कठिनाई से उन्हें समझाने और समझने में असुविधा होती थी तथापि वे किसी प्रकार अपना काम चलाती रहीं। उन्होंने भाषा का बहाना लेकर उसके अध्ययन तक बैठे रहने की नहीं सोची, अपितु जो कुछ जितना और जिस तरह हो जनसेवा ही करना ठीक समझा।

अपने महान अध्यवसाय से उन्होंने कुछ समय में ही बँगला और संस्कृत का ज्ञान प्राप्तकर लिया। वे अब उत्साह से सेवा कार्यों में जुट गईं। अब वे सेवा-सुश्रूषा भी करतीं और उन्हें और उनके बच्चों को पढ़ातीं भी।

इस प्रकार मिस नोबुल दिन-दिन सर्व साधारण में लोकप्रिय होती गईं और इधर संभ्रान्त परिवारों में उनकी आलोचना प्रारम्भ हो गई। किन्तु उनके काम में इससे कोई शिथिलता न आई और उन्होंने आलोचना का उत्तर व्यर्थ वादविवाद से न देकर और अधिक उत्साहपूर्ण सक्रियता से दिया।

१७ मार्च, १८९८ को वह माँ शारदा से मिलीं तो उन्होंने अपनी भुजाओं में समेटकर कहा-'बेटी, तुम्हें पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।' एक सप्ताह बाद नीलांबर मुखर्जी की बाटिका में स्वामी विवेकानन्द ने नोबुल को ब्रह्मचारिणी व्रत की दीक्षा दी और नाम रखा 'निवेदिता'।

कलकत्ता में प्लेग का प्रकोप हुआ तो लोग अपनी जान बचा-बचाकर शहर छोड़कर भाग रहे थे। मेहतर न मिलते थे। उस समय की विकट परिस्थितियों में अपने प्राणों का मोह छोड़कर उन्होंने अपने हाथ में फावड़ा ले लिया और बाग-बाजार की गंदी नालियों की सफाई करने लगीं। इनके इस कार्य से कितने ही युवक लज्जित हुए और राहत कार्य में अपनी सेवायें देने लगे।

भगिनी निवेदिता ने स्वामी विवेकानन्द के साथ अल्मोड़ा, कश्मीर, अमरनाथ, कलकत्ता, बड़ौदा और मद्रास क्षेत्रों का भ्रमण भी किया। यहाँ की स्थिति को देखकर उनके मन में यह दृढ़ मान्यता बन गयी कि यदि किसी देश का कल्याण करना है, तो महिलाओं और जन मानस की जाग्रति की ओर पहले पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए। जहाँ की मातृ शक्ति अपमानित होती रहती हो उस देश के उत्थान की कोई आशा नहीं की जा सकती।

इस उद्देश्य से स्वामीजी के परामर्श पर निवेदिता ने १३ नवंबर, १८९८ को कलकत्ता में एक 'महिला विद्यालय' की स्थापना की। पर विदेशी महिला के संपर्क में कोई अपनी लड़कियों को देने को तैयार न था। हर शुभ कार्य का प्रथम चरण उपहास और विरोध से ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रारम्भ होता है। यहाँ भी यही स्थिति रही पर निवेदिता के सरल स्वभाव, सेवा-भावना तथा स्नेहमय व्यवहार से प्रभावित होकर कतिपय जगदीशचंद्रबसु, रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा केशवचन्द्रसेन जैसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने अपनी कन्याओं को भेजना शुरू किया।

प्रमुख संस्थाओं के निमंत्रण पर तथा धनराशि एकत्रित करने के उद्देश्य से वे तीन वर्ष के लिए लंदन, शिकागो, न्यूयार्क तथा पेरिस की यात्रा पर गयीं। जनवरी १९०२ में जब वे भारत आयीं तो महिला शिक्षण के अधूरे कार्य में पुन: जी जान से जुट गयीं। सन् १९०२ में लार्ड कर्जन द्वारा गठित विश्वविद्यालय आयोग की उन्होंने कटु आलोचना की।

वे युवापीढ़ी को त्याग, बलिदान और सेवा का पाठ पढ़ाना चाहती थीं, इसके लिए उन्होंने विवेकानन्द समिति, क्रांतिकारी-समिति, अनुशीलन-समिति तथा डान समिति का आश्रय लिया। स्वामी विवेकानन्द के इस संसार से विदा होने के बाद वे घूम-घूमकर भारतीय अध्यात्म का संदेश जन-जन तक पहुँचाने लगीं। उन्होंने 'युगांतर' तथा 'बन्देमातरम' की लोकप्रियता बढ़ाने में पूरा-पूरा सहयोग दिया।

यद्यपि १३ मार्च, १९०५ से उनका स्वास्थ्य खराब रहने लगा था पर इसकी तनिक भी चिंता उन्हें न थी। बंग भंग के विरोध में जब प्रथम सभा का आयोजन हुआ तो भगिनी निवेदिता ने सिंहिनी की तरह गर्जना की। किसानों और मजदूरों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए उन्होंने कई सहकारी समितियों की स्थापना की। वे चाहती थीं कि देश के सभी गर्म व नर्म दल के नेता एकजुट होकर मातृभूमि के बंधनों को काटने का प्रयास करें। आपस में फूट का लाभ अँग्रेजों को न मिले, इसलिए उन्होंने कॉग्रेस के वाराणसी अधिवेशन में इस खाई को पाटने की भी पूरी-पूरी कोशिश की।

भगिनी का शरीर क्षमताओं से अधिक कार्य करने के कारण दुर्बल होता जा रहा था। पीलिया ने उन्हें और कमजोर बना दिया फिर भी रोग शैय्या पर लेटे उन्होंने 'दिमास्टर, ऐज आई सी हिम' तथा 'क्रेडल टेल्स आफ हिंदूइज्म' ग्रंथों की रचना की। इसके अतिरिक्त 'फुट फाल्स आफ इंडियन हिस्ट्री', 'स्टडीज फ्राम एन डीस्ट्रन हाउस' तथा 'रामकृष्ण वचनामृत' भी इनकी प्रमुख रचनायें हैं।

भगिनी निवेदिता भारत की स्वतंत्रता के लिए जन-जागरण के साथ अस्त्र-शस्त्रों की शक्ति को भी आवश्यक मानती थीं। उन्होंने विभिन्न महापुरुषों के संपर्क में आकर अपने ज्ञान की परिधि को काफी विस्तीर्ण कर लिया था। प्रफुल्लचन्द्रराय की प्रयोगशाला में उल्हास दत्त को उन्होंने ही बम बनाना सिखाया था। हेमचंद्र को फ्रांस और इटली भेजने के पीछे भी यही उद्देश्य छिपा था।

उनमें अद्भुत शक्ति थी। वह भारत में रहकर यहाँ की उन्नति हेतु अपना सर्वस्व न्यौछावर करना चाहती थीं। उनका जन्म भले ही विदेश में हुआ हो, पर भारत के कण-कण से उन्हें अनुपम प्यार था। वह किसी के कष्ट को देखकर बेचैन हो जाती थीं और किसी भी तरह उसे दूर करने का प्रयत्न करती थीं। स्वामी सदानंद को अस्वस्थ देखा तो वे हिमालय की ओर लेकर चल पड़ीं। अब स्वयं का शरीर भी साथ नहीं दे रहा था। हड्डी-हड्डी रह गयी थीं। परिश्रम की कोई सीमा न थी। वे जलवायु परिवर्तन के लिए दार्जिलिंग गयीं। उनकी हालत रास्ते में बिगड़ गयी। खून के दस्त होने लगे। डॉ० नीलरत्न सरकार तथा विपिनबिहारी सरकार ने उनकी चिकित्सा में कोई कमी न रखी फिर भी उन्हें बचाया न जा सका। अंतिम क्षण उनकी उँगलियाँ रुद्राक्ष की माला पर थीं।

भगिनी निवेदिता भगवत प्राप्ति की प्यास में ही जीवन की पूर्ण सार्थकता मानती थीं। वे आजीवन संसार को सियाराममय मानकर पूजा-अर्चना करती रहीं।

दिव्य मानव की स्रष्टा—
मीरा रिचार्ड

पेरिस (फ्रांस) का एक समृद्धतम परिवार और उसमें जन्मी-पली एक बालिका। चारों ओर फैले हुए ऐश्वर्य में स्वाभाविक तो यह था कि वह खूब ठाठ-बाट से रहे परन्तु वह सब लोगों से अलग एकाकी अपने संबंध में न जाने क्या-क्या कल्पनायें किया करती और सपने देखा करती थी। एकांत की बोझिलता अनुभव न हो इसलिए उक्त किशोरी ने जिसका नाम था मीरा, उसने चित्रकला का अभ्यास भी आरम्भ कर दिया था और एक बार उन्होंने एक ऐसा कल्पना चित्र बनाया, जिसकी आकृति उन्हें भी लुभा गयी। उन दिनों जब मीरा कैशोर्य और यौवन की वय:संधि पर थीं, तब प्राय: सोचा करती थीं कि ईश्वर है और उसकी महान सत्ता के कारण ही सारे जगत की व्यवस्था और प्रक्रिया सुचारु रूप से चल रही है। इस विचार के साथ ही यह संकल्प भी उठे कि उस दिव्य सत्ता से साक्षात्कार किया जाना चाहिए, उसका सान्निध्य प्राप्त करना और उसे प्रसन्न करना चाहिए। इसी संकल्प के साथ वे आत्म-निर्दिष्ट पद्धति से ध्यान-उपासना करने लगीं। लक्ष्य केवल एक था-ईश्वर की उपलब्धि और सत्य का साक्षात्कार।

जिस वय में युवक-युवतियाँ रंगीन सपने देखते हों, उस वय में एक समृद्ध परिवार की बेटी आत्मा-परमात्मा की बातें सोचे, तो इसे पूर्व जन्म के संस्कार ही कहना चाहिए। २१ फरवरी, १८८८ ई० को जन्मी मीरा ऐसे ही संस्कारों से पोषित थी, जो गीता के उन वचनों की सत्यता को प्रमाणित करती है-

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि स:।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।।

—गीता (६/४४)

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

—अपने पूर्व जन्म के अभ्यास से विवश होकर ऐसा व्यक्ति पुनः दूसरे जन्म में ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर आरूढ़ हो जाता है तथा शब्द ब्रह्म का अतिक्रमण कर परब्रह्म को प्राप्त होता है।

इस जीवनवृत्त की चरित्र नायिका मीरा के संदर्भ में ऐसी बहुत सी घटनाओं का उल्लेख आता है, जो यह सिद्ध करती हैं कि उनमें आध्यात्मिक चेतना और आत्मिक जिज्ञासा का उदय बाल्यावस्था से ही होने लगा था।

यौवन की देहरी पार करने के बाद उनका विवाह फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक पॉल रिचार्ड से हुआ। विवाहित जीवन को उन्होंने अपने साधना-पथ में किसी भी प्रकार बाधक नहीं माना। पॉल रिचार्ड स्वयं एक दार्शनिक थे और सूक्ष्म तत्त्वों के प्रति जिज्ञासा-संपन्न भी। आध्यात्मिकता में उनकी भी बड़ी गहरी रुचि थी और तृष्णा भी । अपनी इस तृष्णा को बुझाने के लिए वे यथासाध्य प्रयत्न करते रहते। उन्होंने सुन रखा था कि आत्मविद्या और सूक्ष्म तत्त्वों के संबंध में भारत एक संपन्न देश है। वहाँ अब भी ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने अध्यात्म की उच्च कक्षाओं को पार कर लिया है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति का इस जगत में बने रहना या न रहना कोई व्यक्तिगत प्रयोजन पूरा नहीं करता, फिर भी वे जगत के प्रति अपनी करुणा के वशीभूत होकर इस संसार में बने रहते हैं।

करुणा के वश होकर जगत में बने रहने की बात तो विस्मयकारक थी क्योंकि उनकी समझ में ईश्वर का साक्षात्कार नितांत व्यक्तिगत मंजिल थी और जीवन का अंतिम ध्येय। उसे प्राप्त करने के बाद व्यक्ति का इस जगत से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। फिर भी ऐसे व्यक्ति हैं, जो अन्य की पीड़ा और व्यथाओं को समझकर उन्हें दूर करने के लिए ही इस दुनिया में रहते हैं। एकबारगी तो उन्हें विचित्र लगा परंतु थोड़ी देर के बाद वे भारतीय ऋषि-जीवन की इस महान विशेषता के प्रति श्रद्धाभिभूत हो उठे और रिचार्ड दंपत्ति ने भारत आकर ऐसी महान विभूतियों के दर्शन करने का निश्चय कर लिया।

१९१४ में मीरा रिचार्ड और पॉल रिचार्ड ने भारत भूमि पर पदार्पण किया। उस समय पांडिचेरी में महर्षि अरविंद राजनीतिक जीवन से संन्यास लेकर आध्यात्मिक साधनाओं में रत थे। इससे पूर्व अरविन्द स्वाधीनता-संग्राम में अद्वितीय क्रांतिकारी की भूमिका निबाह चुके थे। विप्लवी कार्यक्रमों की अपेक्षा उनका विश्वास आध्यात्मिक शक्तियों में ही अधिक बढ़ने लगा था और वे मानने लगे थे कि भारत की आत्मा को जगाकर ही स्वाधीनता का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। आत्म-साक्षात्कार और सूक्ष्म जगत में अनुकूल तरंगें उत्पन्न करने के लिए वे बंगाल छोड़कर पांडिचेरी में आकर रहने लगे थे। उनके इस एकांतवास की जानकारी कुछेक लोगों को ही थी। इसका कारण यह था कि क्रांतिकारी आंदोलन में उनके उग्र स्वरूप को देखकर सरकार दहल उठी थी और उनका स्वतंत्र रहना वह कदापि सहन नहीं कर सकती थी।

उस समय वे पांडिचेरी के दक्षिण भाग में स्थित शंकर चेट्टी के मकान में रह रहे थे। उनके साथ तीन और साथी थे। जिस मकान में वे ठहरे, उसमें कभी स्वामी विवेकानंद भी ठहर चुके थे। वे चारों अपना काम अपने हाथों से ही करते और फर्श पर सोते थे। तपस्वियों की सी उनकी जीवनचर्या चलती। इन्हीं दिनों पॉल रिचार्ड की मुलाकात अरविंद से हुई। कुछ ही समय के सान्निध्य ने रिचार्ड को प्रभावित कर लिया और उन्हीं के माध्यम से पॉलरिचार्ड की धर्मपत्नी मीरा रिचार्ड २९ मार्च, १९१४ को महर्षि अरविंद से मिलीं। महर्षि के दर्शनकर ही उन्हें चित्रकारिता के समय का चित्र याद आ गया, जिसे देखकर वे काफी समय तक अभिभूत हो उठी थीं। उस चित्र का साम्य महर्षि की आकृति से बहुत कुछ बैठता था। प्रथम दर्शन में ही मीरा रिचार्ड ने यह अनुभव कर लिया कि योग साधना के मार्ग पर उन्हें एक ऐसा मार्गदर्शन मिल गया है, जिसकी उन्हें वर्षों से तलाश थी।

उस दिन मीरा रिचार्ड ने अरविंद से थोड़ी ही देर तक बातचीत की। थोड़ी देर के ही सान्निध्य ने मीरा को असाधारण रूप से अभिभूत कर दिया। भारतीय योगियों के संबंध में पूर्व स्थापित मान्यताओं तथा महर्षि अरविंद के दर्शनों से उनमें जो स्फुरणायें उठीं, उन्हें अपनी डायरी में अंकित करते हुए मीरा रिचार्ड ने लिखा—''हमने जिस विभूति के कल दर्शन किये, वह धरातल पर विराजमान है और उसकी उपस्थिति इस बात को सिद्ध करती है कि एक दिन अवश्य आयेगा जब अन्धकार प्रकाश के रूप में बदल जायेगा और धरती पर सचमुच भगवान का राज्य स्थापित हो जायेगा।''

पॉलरिचार्ड ने तथा मीरा ने भी अरविंद को यह परामर्श दिया कि वे अपने विचारों तथा आध्यात्मिक अनुभूतियों से सामान्य जनों को अवगत कराने के लिए कोई पत्र निकालें। अरविंद भी लंबे समय से ऐसे किसी मासिकपत्र की आवश्यकता अनुभव करते थे। लेकिन अर्थाभाव की समस्या इस आवश्यकता को पूरा होने में बाधक बन रही थी। पॉल ने यह समस्या हल कर दी और पत्र के स्वावलंबी होने तक उसके खर्च का निर्वाह स्वयं की ओर से करने का प्रबंध किया। आरम्भ में केवल दो सौ ग्राहक बने और दो सौ ही प्रतियाँ छपीं। इस पत्र का नामकरण हुआ 'आर्य'। यह नाम वस्तुतः किसी जाति, नस्ल या वंश के अर्थों में प्रयुक्त नहीं हुआ था, वरन् अरविंद इसका प्रयोग एक उत्कृष्ट, आदर्शवादी और दिव्यजीवन के लिए उत्सुक तेजस्वी व्यक्तित्व के लिए किया करते थे। पत्र के नाम से ही पत्र का उद्देश्य व्यक्त होता था। कुछ समय तक तो पॉल ने इस पत्र का खर्च वहन किया परंतु बाद में यह आत्मनिर्भर बन गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.४५ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

मीरा रिचार्ड अरविंद से इतनी प्रभावित थीं कि प्राय: वे प्रतिदिन उनके पास आया करतीं। दोपहर बाद तो वे लगभग साथ ही रहतीं। अरविंद की दैनंदिन आवश्यकताओं के लिए वे अपने साथ नारियल तथा अन्य खाद्य वस्तुयें लाती थीं। पॉल रिचार्ड का भारत आगमन तो कुछ अन्य प्रयोजनों से भी हुआ था। वे उन कार्यों की पूर्ति में व्यस्त रहते। फिर भी सप्ताह में एक बार वे अवश्य अरविंद के पास आते और उनके साथ भोजन करते थे। मीरा रिचार्ड अरविंद के सहवास में अध्यात्म के अनेक विषयों पर चर्चा करतीं।

उस समय अरविंद अध्यात्म-साधना के ऐसे आयामों पर पहुँच चुके थे, जहाँ साधक का अपने बाह्य जीवन पर कम ही ध्यान रह पाता है। प्राय: वह अपनी बाह्य स्थिति को भूल ही जाता है। ऐसी दशा में उनकी आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखने का दायित्व मीरा रिचार्ड ने अपने ऊपर ले लिया था।

परन्तु वे एक वर्ष से भी कम समय तक पांडिचेरी आश्रम रह सकी थीं। उन दिनों विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ और फ्रांस सरकार ने पॉल रिचार्ड को फौजी सेवा के लिए स्वदेश वापस बुलाया। मीरा रिचार्ड ने २१ फरवरी, १९१५ को अपना जन्म दिन आश्रम में मनाया और अगले दिन दोनों पति पत्नी फ्रांस रवाना हो गये। यद्यपि मीरा रिचार्ड अनिच्छापूर्वक गयीं, फिर भी वे अपनी आत्मा को जैसे अरविंद के पास ही छोड़ गयीं।

मीरा रिचार्ड अधिक समय तक अपने मन को फ्रांस में बाँधे न रह सकीं। पॉल भी उनकी मन:स्थिति को भली-भाँति समझते थे और उन्होंने स्वेच्छा से यह अनुमति दे दी कि वे पांडिचेरी जाकर अरविंद के पास रहें। यह प्रस्ताव आते ही मीरा रिचार्ड को जैसे विश्व की समस्त संपदायें मिल गयीं और वे पांडिचेरी आ गयीं। उनका यह आगमन पाँच वर्ष के लंबे अंतराल के बाद हुआ था। २२ अप्रैल, १९२० को उन्होंने स्वयं को अरविंदाश्रम के लिए समर्पित कर दिया और उसी समय से वहाँ रह रहे सभी साधकों ने उन्हें माताजी कहकर पुकारना आरम्भ कर दिया।

वे संबोधन से ही नहीं व्यक्तित्व से भी माताजी बन गयी थीं। आश्रम की सारी आंतरिक व्यवस्थायें उन्होंने अपने हाथ में ले ली थीं। यों तो उस समय आश्रम का विधिवत् निर्माण हुआ नहीं था तथा अरविंद और साधकगण एक स्थान पर ही रहते थे। लेकिन अरविंद से मुलाकात करने और मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए आने वाले आगन्तुक व अन्य कार्यों ने उनकी व्यस्तता को बढ़ा दिया था। कई साधक उनके निवासस्थान के आस-पास मकान किराये पर लेकर रहने लगे थे। ऐसी स्थिति में माताजी पर अरविंद की देखभाल का दायित्व तो था ही साधकों का ध्यान रखना भी उन्हीं के सुपुर्द था।

अरविंद के पास आने वाले साधकों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती गयी। उनके खाने-पीने का प्रबंध भी माताजी के हाथ में था। अरविंद के पास आर्थिक साधनों का अभाव था। अत: जैसा समय पर मिल जाता, वैसी व्यवस्था कर ली जाती। स्वादिष्ट व्यंजनों के अभ्यस्त कुछ साधकों को इससे दिक्कत होने लगी। इस पर अरविंद ने साधना का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र साधकों को समझाया—"हम लोगों को किसी भी तरह के खास और विशेष स्वाद के लिए आग्रह नहीं करना चाहिए। शरीर को अच्छी हालत में रखने के लिए किसी भी तरह का पोषण आवश्यक है। घटिया खाना शरीर को खराब कर देता है, इसलिए अच्छा खाना तो खाना चाहिए। परंतु अच्छे खाने का अर्थ यह है कि उससे शरीर का पोषण हो जाय न कि वह स्वादिष्ट हो।"

इस प्रकार अरविंदाश्रम की व्यवस्था संबंधी सभी गतिविधियाँ माताजी के हाथ में आ गईं। २४ नवंबर, १९२६ से अरविंद नितांत एकांत में रहने लगे। प्रत्यक्षत: उनने बाहरी संपर्क भी तोड़ लिया। साधकों को मार्गदर्शन और मुलाकातियों को परामर्श देने का पूरा कार्य माताजी के माध्यम से ही वे करने लगे। माताजी अरविंद की देखभाल करतीं और उन्हें जब जिस चीज की जरूरत पड़ती, उसकी पूर्ति भी करतीं। आश्रम का सारा प्रबंध भी वे ही चलातीं। इस प्रकार उनकी व्यस्तता दिनों-दिन बढ़ती गयी और जिम्मेदारियों के बावजूद भी माताजी योग साधना में अच्छी प्रगति करने लगीं।

अरविंद ने जिस योग पद्धति का विकास किया उसका नाम है—पूर्ण योग। संक्षेप में इस साधना का अर्थ है समर्पण के माध्यम से परमात्मा की प्राप्ति। समर्पण के बाद व्यक्ति का अपना कुछ नहीं रह जाता, न आकांक्षायें और न लालसायें। इसके साथ यह भी उल्लेखनीय है कि पूर्ण योग न तो पलायनवादी है और न निष्क्रियतावादी। उसमें साधक जीवन की सघनता में जीता है और ऐसी स्थिति में साधक का जब अपना कुछ भी नहीं रह जाता, तो उसकी सारी क्रियायें विश्वमाता की अर्चन बन जाती हैं। स्वयं अरविंद और माताजी भी जीवन भर आत्मोत्थान के साथ-साथ विश्वमाता की अर्चना में लीन रहे। अरविंद ने कई अवसरों पर एकात्म-विश्व की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है। उनके इस स्वप्न को साकार करने का संकल्प भी माताजी ने लिया और ओरोविल नामक एक अपूर्व नगर के निर्माण की योजना बनायी। इस नगर में संसार भर के लोगों को निवास की सुविधा रहेगी-ऐसे लोगों के लिए जो विश्व-बंधुत्व और विश्वराष्ट्र के आदर्श में विश्वास करते हैं। ओरोविल की आधारशिला माताजी ने अपने हाथों से रखी है।

इस निर्माण के अतिरिक्त आश्रम-जीवन का आदर्श भी अनूठा है। वहाँ के जीवन में आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ आश्रम का बाह्य संगठन और व्यवस्था भी अति

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्तम है। वहाँ की व्यवस्थायें इस प्रकार की प्रयत्नपूर्वक बनाई गई हैं कि आश्रम में प्रवेश करते ही साधक दिव्य जीवन की ओर आकृष्ट होने लगता है।

इसके अतिरिक्त आश्रम का एक और महत्वपूर्ण भाग है-अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र। वहाँ पूर्व और पश्चिम का अनुपम संगम हुआ है। श्री अरविंद ने चालीसवर्ष तक अपनी अखंड एकांत साधना के बाद जो कुछ उपलब्ध किया, उसी को साकार रूप देने के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं। आश्रम में पुरुष हैं, स्त्रियाँ हैं, युवक हैं, युवतियाँ हैं, बच्चे हैं-सब कुछ परिवार जैसा है परंतु लगता है जैसे अध्यात्म के आह्लाद सागर की तरंगें वहाँ नित्य उठती हों। सब उन्मुक्त पक्षी की तरह चहकते हैं, सारा जीवन ही योग है। आरविंद का सूत्र वाक्य यहाँ चरितार्थ होता है।

इन सब व्यवस्थाओं के बावजूद श्री माताजी अपने शेष जीवन में साधकों का पथ प्रदर्शन करती रहीं। श्री अरविंद के देहावसान के बाद तो यह जिम्मेदारी और भी गंभीरता से बढ़ गयी। उन्होंने अपनी शक्ति द्वारा आश्रमवासी तथा दूरवर्ती साधकों को साधना के पथ पर अग्रसर किया। अपने संपूर्ण श्रम, ज्ञान, शक्ति एवं चेतना के साथ प्रत्येक सोये हुए साधक को सहारा दिया।

अरविंद के देहावसान के बाद २२ वर्षों तक उन्होंने अपने पथ-प्रदर्शन द्वारा सौंपे गये दायित्वों को सफलतापूर्वक निबाहा और १७ नवंबर, १९७४ को महाप्रयाण कर दिया। वे नहीं हैं परंतु उनकी प्रेरणायें लाखों साधकों का पथ-प्रदर्शन करती रहेंगी। उनका यह कथन कि—''मानसिक एवं सांसारिक वस्तुओं की उपेक्षा अज्ञान और जड़ता का लक्षण है। यदि हम भौतिक वस्तुओं का सही-सही उपयोग न कर सकें, तो उन्हें रखने का हमें कोई अधिकार नहीं है। भौतिक वस्तुओं की देखभाल आसक्तिवश नहीं वरन् इसलिए करनी चाहिए कि वे भागवत चेतना और उसकी उपयुक्तता को व्यक्त करती हैं''—हजारों साधकों को निरन्तर प्रेरणायें देता रहेगा।

विश्व बंधुत्व की साकार प्रतिमा— मैडम ब्लावट्स्की

उन्नीसवीं शताब्दी में रूस में भी स्त्रियों की वही स्थिति थी, जो आज भारत में है। छोटी उम्र में ही विवाह, घर में ही बंद मूक प्राणी की तरह जीवन, परावलंबन, स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था का अभाव जैसी परिस्थितियों से जकड़ी नारी कुंठित रहकर किसी तरह अपनी जीवन-लीला पूरी करती थी। पुरुषों के लिए आयु का कोई बंधन नहीं था। वे एक पत्नी के रहते दूसरी से विवाह कर लेते थे। सोलह वर्ष की आयु की नवयौवना अपने से तिगुनी आयु के प्रौढ़ों से ब्याह दी जाती थीं और वे अपनी माँ की आयु वाली पत्नीयों की सौत बनकर नये घर में जाती थीं। इसी विडंबना भरी परिस्थिति में हेलेना पेक्रेवना का विवाह अड़तालीस वर्षीय दमे के मरीज निकोलाई ब्लावट्स्की से तय हुआ।

इस नारी का भावी जीवनक्रम बताने से पूर्व इसका परिचय देना जरूरी है। उसका जन्म रूस के एक छोटे से कस्बे में सन् १८३१ ई० में हुआ। माता-पिता तो बचपन में छोड़कर चले गये। चाचा-चाची तो उसे बेमोल की दासी समझते थे। वहाँ से वह अल्पायु में हीं छोटी बहन के साथ अपने दादा के घर चली गयी। हेलेना उस समय मात्र ग्यारह वर्ष की थी, पर संवेदनशील इतनी कि अपने समाज में स्त्रियों की दुर्दशा देखकर उसे रुलाई आ जाती। कई बार अपना आक्रोश वह इतने तीखे शब्दों में व्यक्त कर देती थी कि सब दंग रह जाते। सोचते, यह लड़की आगे चलकर क्या करेगी? उन्हीं दिनों उसने कहा—''मैं किसी को भी किसी की दासता सहने की पक्षधर नहीं हूँ और मनुष्य को हर तरह के बंधनों से मुक्त देखना चाहती हूँ।''

विडंबना यह कि उसका स्वयं का विवाह ही परिस्थितियों के दुर्देव ने एक प्रौढ़ से रच दिया। वह विद्रोह कर उठी और विवाह होते ही पति के घर जाने की अपेक्षा अज्ञात यात्रा पर निकल पड़ी। नारी को भोग्या समझे जाने वाले उस वातावरण में अकेले रहकर कष्ट सहते हुए उसने किस प्रकार प्रतिकूलताओं से लोहा लिया व नारी स्वातंत्र्य की सशक्त परिस्थिति विनिर्मित की, यह सब वस्तुत: सच्चे आत्मिक पुरुषार्थ की एक गौरव गाथा है।

स्वतंत्र रहते हुए वे शिक्षार्जन करती रहीं और अपनी आध्यात्मिक पिपासा को शांत करने के लिए मनीषियों के द्वारा रचित पुस्तकों का स्वाध्याय भी जारी रखा। अपना नाम उन्होंने मैडम ब्लावट्स्की ही रखा। उनके लिए सुरक्षा के आश्वासन से मूल्यवान था—आत्मा का उन्मुक्त विकास। इस आस्था की अभिव्यक्ति उस समय हुई, जब वे सन् १८७३ में अमेरिका पहुँचीं। वहाँ एक पत्रकार ने उनके विवाह-संबंधों के बारे में खोजबीनपरक प्रश्न किये तो वे बोल उठीं-''नहीं ! मैं विधवा हूँ। ईश्वर की कृपा से विधवा। इसके लिए मैं परमपिता की आभारी हूँ। नारी स्वातंत्र्य की आवाज उठाने व नर-नारी का नहीं, आत्मा के विकास का मार्ग ढूँढ़ने के लिए सृष्टा ने मुझे हर प्रकार के बंधनों से मुक्त कर दिया है।''

इससे पूर्व मैडम ब्लावट्स्की कई देशों की यात्रा कर चुकी थीं- आध्यात्मिक यात्रा। घर छोड़ने के बाद वे जैसे-जैसे आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत करने लगीं, वैसे-वैसे उनका प्रतिभाशाली मन मनुष्य की आत्मिक सत्ता की अनुभूतियाँ करने लगा। वे अनुभव करतीं—'मनुष्य के बाह्य दृश्य स्वरूप के अतिरिक्त उसकी एक आंतरिक सत्ता भी है, जो वृक्ष में जड़ की तरह उसकी नियति को निर्धारित करती है। जड़ें जितनी ही गहरी और सशक्त होंगी, वृक्ष भी उतना ही ऊँचा और विशाल होगा। प्रत्येक वृक्ष की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अपनी जड़ें-प्रत्येक व्यक्ति की अपनी आत्मिक सत्ता। प्रत्येक बीज में एक वृक्ष की संभावना तो प्रत्येक मनुष्य में क्षुद्र से महान होने की सामर्थ्य।'

सामान्य घटनाओं को सूक्ष्म दृष्टि से देखने के भाव ने उनके जीवन की दिशा ही मोड़ दी। घटनायें तो सभी के जीवन में घटती हैं—ऐसी-ऐसी घटनायें जिन्हें महत्त्व दृष्टि से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता परंतु कितने व्यक्ति हैं, जो उन्हें गंभीरता से लेते हैं-शायद बहुत कम। और जो वस्तुत: उन्हें दृष्टि में लेते हैं, उनमें कोई भी ऐसा नहीं होगा जिसे एक सुनिश्चित और महान दिशा नहीं मिली हो। मैडम ब्लावट्स्की के साथ भी यही हुआ और उन्होंने अज्ञात के आयाम खोजने, मनुष्य की जड़ों को किस प्रकार गहराई तक पहुँचाया जा सकता है-यह अनुसंधान करना ही अपना जीवन लक्ष्य बना लिया। इस खोज के लिए उन्होंने मिस्र, भारत और अफ्रीका के कई देशों की यात्रा की। मिस्र के पिरामिडों को देखकर उन्होंने ऐसे सत्य की झाँकी प्राप्त की, जो मनुष्य के साथ अनादिकाल से जुड़ा हुआ है और वह सत्य है-मनुष्य मरण-धर्मा होते हुए भी अमृतत्व की प्राप्ति के लिए कितना आतुर-व्याकुल हो रहा है। भारत में आकर उन्होंने योगियों और सिद्ध-सन्तों से आध्यात्मिक सत्यों की दीक्षा प्राप्त की। कई मन्दिरों और संतों के दर्शन कर उन्होंने आध्यात्मिक रहस्यों का अनुशीलन किया। अफ्रीका के सयानों, तांत्रिक और काला जादू जानने वाले शैतान के उपासकों से भी वे मिलीं तथा उनके साथ रहकर उन्होंने अज्ञात को पहचानने के लिए उन्हीं की दृष्टि सीखी। बाद में उन्हीं सूत्रों को 'सीक्रेट डॉक्ट्रीन' के रूप में पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया।

वे इस निष्कर्ष पर पहुँचीं कि इस लोक से परे भी कुछ पारलौकिक शक्तियाँ हैं। दिखाई देने वाली दुनिया में भी एक और दुनिया है, जो इससे भी बड़ी है और यहाँ की शक्तियों से भी अधिक शक्तिशाली है। अपने शोध से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर उन्होंने कहा-'मनुष्य की आत्मा में अनंत, अजेय और अदम्य शक्ति-सामर्थ्य भरी पड़ी है। शुद्धता, शुचिता, सत्य और आस्था के द्वारा उस शक्ति को जगाया जा सकता है तथा वह शक्ति जब पवित्र उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त की जाती है, तो दैवी चमत्कार बन जाती हैं।

मैडम ब्लावट्स्की स्वयं भी पवित्र और निश्चल हृदय थीं तथा उनके मन में करुणा और संवेदना की अजस्र धारा निरंतर बहती रहती थी। १८७३ में जब वे स्थायी रूप से अमेरिका आ गयीं तो वहीं की नागरिक बन गईं। उन्होंने अपने रहने के लिए न्यूयार्क में ऐसा स्थान चुना जहाँ अधिकांशत: गरीब और निम्न वर्ग के व्यक्ति रहा करते थे। उनके पास जो कुछ भी होता वे अपने इन पिछड़े साथियों के लिए खर्च कर डालतीं। अपनी चिंता तो उन्हें जरा भी नहीं रहती। उनके पास जेब में कभी कोई रकम नहीं रहती और हो भी तो किसी जरूरतमंद की सहायता-सुश्रूषा में तुरंत खर्चकर डालतीं। इस गरीबी का उन्होंने स्वेच्छया वरण किया था—इसलिए इसका कभी मलाल भी नहीं रहा।

समूचे विश्व का आध्यात्मिक पुनरुत्थान करने के उद्देश्य से मैडम ब्लावट्स्की ने सन् १८७५ में थियोसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना की। इसकी स्थापना से पूर्व स्थान-स्थान पर उन्होंने कितने ही आध्यात्मिक कार्यक्रम आयोजित किये। इन कार्यक्रमों में उस समय के कई गण्यमान्य प्रतिष्ठित व्यक्ति भी सम्मिलित होते तथा मैडम के उद्देश्यों से प्रभावित होकर उसकी पूर्ति के लिए स्वयं का योगदान भी प्रस्तुत करते। कर्नल आल्काट, काँग्रेस के जन्मदाता सर ह्यूम उनसे प्रभावित होने वाले व्यक्तियों मे मुख्य थे। उन्होंने थियोसाफिकल सोसाइटी की स्थापना में भी पर्याप्त योगदान दिया। सोसाइटी का मूल उद्देश्य विश्व बंधुत्व और सर्वधर्म समभाव बनाया गया।

बाद में मैडम अपने साथियों के साथ भारत आ गयीं। यहाँ उन्होंने मद्रास के समीप अड्यार नदी के किनारे पूर्वी समुद्र तट पर अंतर्राष्ट्रीय थियोसॉफीकल सोसाइटी का मुख्य कार्यालय बनाया। कर्नल आल्काट, श्रीमती एनी बिसेंट, सी० डब्ल्यू लेडबीटर जैसे मनीषियों ने उनके कार्य को यहाँ आगे बढ़ाया पर वे अधिक दिन यहाँ न रह सकी। वे लंदन चली गयीं जहाँ १८९१ में उनका देहांत हुआ।

'मौन की वाणी' 'गोपनीय सिद्धांत' 'पराजागतिक रहस्यों का अध्ययन' जैसी उनकी लिखी पुस्तकें सारे थियोसॉफी आंदोलन को दिशा देने वाली मानी जाती हैं। इसमें उन्होंने बताया है कि आध्यात्मिक नियमों का पालन सुख-शांतियुक्त जीवन जीने के लिए जरूरी है। जीवन भर वे मानव मात्र की स्वतंत्रता तथा मुक्ति के लिए प्रयास करती रहीं। उनके देहावसान पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा गया कि—"वे सच्चे अर्थों में विश्व नागरिक थीं। देश, जाति, लिंग, संप्रदायों के बंधनों से मुक्त।"

भारत-भक्त विदेशी महिला—
एनी बिसेंट

"सत्य के अनुसंधान में चाहे मेरे समस्त लौकिक बंधन छूट जायें, मित्रता और सामाजिक सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो जायें, चाहे मैं प्रेम से वंचित ही हो जाऊँ, चाहे उसके लिए मुझे निर्जन पथों में क्यों न भटकना पड़े और फिर सत्य प्रकट होकर चाहे मुझे ही क्यों न मिटा डाले, मैं उसका अनुसरण करने से पीछे नहीं हटूँगी। मृत्यु के पश्चात् भी मैं अपनी समाधि पर यही वाक्य चाहूँगी—'वह जिसने सत्य के अन्वेषण में प्राणों की बाजी लगा दी।'

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस शब्दावली का जीवन में कई बार प्रयोग करने वाली डाक्टर एनी बिसेंट का समस्त जीवन गाँधीजी की भाँति सत्य की प्रयोगशाला और सेवा की कुटिया कहा जा सकता है। १८९३ में उनका भारत आगमन 'सत्य की खोज' और बाद का जीवन 'सेवा के प्रति समर्पण' है। विश्व में बहुत कम महिलाएँ ऐसी मिलेंगी, जो अपने जीवन काल में ही इतनी ऊँचाई पर पहुँची हों, जिनका नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं राजनीतिक स्तर समान ऊँचाई पर हो तथा जिन्होंने मानवता की विविध रूपों में इतनी महान सेवा की हो। स्वयं गाँधीजी ने उनके विषय में कहा था—

''श्रीमती बिसेंट ने भारत की जो गरिमापूर्ण सेवाएँ की हैं, उनकी स्मृति तब तक सजीव रहेगी, जब तक स्वयं भारत-राष्ट्र के शरीर में प्राणों का स्पंदन रहेगा।''

डाक्टर एनी बिसेंट भारत के राष्ट्रीय जागरण आंदोलन एवं स्वतन्त्रता संग्राम की नेत्री थीं। इस नाते भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के अध्यक्ष पद पर आसीन होने वाली प्रथम महिला का सौभाग्य उन्हें ही प्राप्त हुआ था, यह १९१५ की बात है। इसी से प्रोत्साहन पाकर सन् १९१७ में भारतीय महिलाओं का अखिल भारतीय संगठन और महिला मताधिकार का आन्दोलन सामने आया।

एनी बिसेंट ने अन्य कई क्षेत्रों में भी काम किया है। १९०७ में भारतीय राष्ट्रीय महासभा सूरत में दो दलों में विभक्त हो गई थी। एक के नेता थे—लो० बाल गंगाधर तिलक और दूसरे के श्री गोपाल कृष्ण गोखले। एनी बिसेंट ने दोनों दलों में समझौता करवाकर 'इण्डियन होम रूल लीग' की स्थापना की। १९१३ में उन्होंने 'कामन वील' साप्ताहिक पत्र निकाला। इसके बाद प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'मद्रास स्टैंडर्ड' खरीद कर उसका नाम 'न्यू इण्डिया' रख दिया। कई वर्ष वे उसका सफल सम्पादन करती रहीं। १९२१ में विश्व के प्रधान स्काउट लार्ड पावेल 'आल इण्डिया बाय स्काउट ऐसोसिएशन' की प्रथम महिला आनरेरी कमिश्नर नियुक्त की गयीं। १९२१ में ही उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता के लिए 'नेशनल कन्वेन्शन' नामक एक दूसरा आन्दोलन चलाया। इसके परिणामस्वरूप १९२५ में 'कामनवेल्थ आफ इण्डिया' बिल ब्रिटिश पार्लामेंट में रखा गया था। बनारस में 'सेण्ट्रल हिन्दू कालेज' की स्थापना उन्होंने ही की थी। बाद में पंडित मदनमोहन मालवीय ने इसी कालेज को 'हिन्दू-विश्व-विद्यालय' का ऐतिहासिक स्वरूप प्रदान किया।

भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू धर्म में अगाध श्रद्धा रखने वाले तथा भारतीयों को अपनी महान सांस्कृतिक विरासत का निरन्तर भान कराने वाली शायद वे पहली विदेशी महिला थीं, जो भारत में पदार्पण के साथ ही भारतवासियों के लिए विदेशी नहीं, अपनी हो गई थीं। उन्होंने एक महिला प्रिंटिग प्रेस भी चलाया तथा 'डेली हेराल्ड' जैसे प्रतिभाशाली पत्र को निकालने का श्रेय भी प्राप्त किया। भारत में 'स्काउट' तथा 'गर्ल्स गाइड' आंदोलन चलाने में भी उनका प्रमुख हाथ रहा। १९३२ से इसकी विश्व-संस्था की ओर से उन्हें सर्वाधिक सम्मानित उपाधि 'बुल्फ' प्रदान की गई थी।

एनी बिसेंट का जन्म १ अक्टूबर, १८४७ को लन्दन में हुआ था। एक आयरिश परिवार से सम्बन्धित कुमारी एनी बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा की धनी थी। इस बालिका की अद्भुत चिंतन-शक्ति और ईश्वर-भक्ति देखकर लोग चकित हो जाते थे। इस दैवी प्रेरणा को आगे जाकर राह मिली, उनके ही जीवन की एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना से। उनका विवाहित जीवन बहुत कष्टप्रद था। एक बार पति के दुर्व्यवहार से अत्यधिक खिन्न होकर वे विष पीने के लिए तैयार हो गयी थीं कि तभी उन्हें अपनी आत्मा का स्वर सुनाई दिया—'कायर ! कष्टों से डरकर अपनी हत्या करने पर तुली है। समर्पण का पाठ सीख और सत्य का अन्वेषण कर। क्या तू सत्य की खोज के लिए अपनी तुच्छ वासनाओं का दमन न कर सकेगी ?' और श्रीमती एनी बिसेंट ने विष की शीशी तुरन्त खिड़की के बाहर फेंक दी। फिर एक दिन चुपचाप अपने पति एवं दो सुकुमार बच्चों को छोड़कर वे सत्य की खोज में घर से निकल पड़ीं। शिकायत पति से थी, बच्चों से नहीं। माँ का हृदय एक बार उमड़ा, पर फिर इस तपस्विनी ने उसे सम्भाल लिया।

और अपने हृदय में माँ की कोमल, ममता छिपाये-समेटे एनी बिसेंट लाखों-करोड़ों की माँ बन गयीं। विश्व को अपना देश एवं परोपकार को अपना धर्म मान श्रीमती एनी बिसेंट ने पहले समस्त यूरोप का भ्रमण किया। वे अमरीका, न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया गयीं। फिर थियोसोफिकल सोसायटी से खिंचकर ४६ वर्ष की अवस्था में भारत आ गयीं। भारत से अधिक उपयुक्त कर्मक्षेत्र उन्हें दूसरा कौन-सा मिलता ? यहाँ उनकी सत्य एवं ज्ञान की पिपासा भी शान्त हो सकती थी, सेवा के लिए भी एक विशाल क्षेत्र खुला पड़ा था। बस, वे यहीं बस गयीं। भारत की राष्ट्रीयता ग्रहणकर उन्होंने जीवन का शेष दो तिहाई भाग भारत की सेवा में ही खपा दिया।

१८९३ का पराधीन भारत ! लोग आश्चर्यचकित थे कि एक अँग्रेज महिला भी अपने देशवासियों के दुर्व्यवहार के खिलाफ भारतीय जनता की ओर से बड़ी बहादुरी के साथ अपनी आवाज बुलन्द कर रही है। उसकी नजरों में गोरे-काले, धनी-निर्धन, अपने-पराये का कोई भेद-भाव न था। वह केवल भारतीयों को स्वतन्त्रता दिलाने में विश्वास नहीं रखती थीं, बल्कि उनके हृदय में अपने राष्ट्र, संस्कृति, धर्म एवं साहित्य की महानता का मन्त्र फूँककर उन्हें जाग्रत भी करना चाहती थीं। वह लोगों को बताती थीं कि ब्रिटिश शासन ने इस देश का शोषणकर इसे खोखला बना दिया है और इस बात पर दुःख प्रकट करती थीं कि पाश्चात्य जीवन और विचार-प्रणाली को अन्धाधुन्ध अपनाकर भारतीय अपने गौरव को विस्मृत करते जा रहे हैं। वह भारत के प्राचीन साहित्य और संस्कृति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का कितना ध्यान रखती हैं, अपने भाषणों में संस्कृति श्लोकों का कैसे धाराप्रवाह पाठ करती हैं—ये सब देखकर लोग मन्त्र-मुग्ध से रह जाते थे।

श्रीमती बिसेंट भारतगरिमा को पुनर्जीवित करने के लिए पूरी शक्ति से जुट जाती थीं। बनारस में हिन्दू कालेज की स्थापना के पीछे उनका यही उद्देश्य था। इस महाविद्यालय के छात्र आधुनिक विज्ञान व पाश्चात्य साहित्य के साथ-ही-साथ धर्म, नीति-शास्त्र एवं भारतीय भाषाओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करते थे। मालवीय जी को हिन्दू-विश्वविद्यालय के निर्माण में प्रोत्साहित करने में एनी बिसेंट का ही सर्वाधिक योग था।

भारतीयों में राष्ट्रीयता का मन्त्र फूँकने के अतिरिक्त उन्हें जात-पाँत के बन्धनों एवं अन्ध-विश्वासों से ऊपर उठाने के लिए उन्होंने आजीवन प्रयत्न किया। उनके महाविद्यालय के छात्रावास में सभी जाति के छात्र एक साथ बैठकर भोजन करते थे। बाल-विवाह का विरोध करने के लिए छात्रों को प्रवेश देने से इन्कार कर दिया था। कॉलेज के संचालन के लिए उन्होंने ब्रिटेन और अमरीका से डाक्टर ए० रिचर्डसन और डॉ० जी० एस० अरुण्डेल जैसे भारतीय-दर्शन के विद्वानों को आमन्त्रित किया था। श्री अरुण्डेल के साथ प्रख्यात भारतीय शास्त्रीय नृत्य विशारदा श्रीमती रुक्मिणी अरुण्डेल के साथ विवाह सम्बन्ध जोड़ने की दिशा में एक क्रान्तिकारी कदम कहकर एनी बिसेंट ने उसका प्रबल समर्थन किया था, छूआ-छूत और ऊँच-नीच का भेद-भाव मिटाने के प्रयत्नों में उन्हें कड़े विरोध का सामना करना पड़ा पर वे न तो थकीं और न हारीं।

१९१४ में उन्होंने सक्रिय राजनीति में प्रवेश किया। प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ होते ही 'न्यू इण्डिया' एवं 'कामनवेल्थ' पत्रों के माध्यम से उन्होंने कहना शुरू किया कि इंग्लैण्ड संकटग्रस्त है तो भारत को इस अवसर का लाभ उठाकर अपनी माँगें सामने रखनी चाहिए। 'होमरूल लीग' भी इस आन्दोलन के लिए खड़ी की गई थी। श्री मुहम्मदअली जिन्ना, लोकमान्य तिलक एवं सर सी०पी० रामस्वामी अय्यर जैसे नेता इस आन्दोलन के प्रबल समर्थकों में से थे। १९१५ में भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में वे उसकी अध्यक्ष चुन ली गयीं। इस पद पर आसीन प्रथम महिला के रूप में उन्होंने कॉंग्रेस की गतिविधियों को तो नया मोड़ दिया ही, भारतीय महिलाओं के राजनीतिक जागरण का भी पथ प्रशस्त किया। भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन में वे जेल भी गयीं। उनके साहस का परिचय इससे अधिक क्या मिलेगा कि इंग्लैण्ड जाकर भी उन्होंने भारतीयों के पक्ष में अनेक मार्मिक भाषण दिये और वहाँ कई संगठन स्थापित किये। श्रीमती सरोजनी नायडू के साथ उन्होंने भारत में महिला मताधिकार आंदोलन में भी भाग लिया और महिला शिक्षा के लिए तो निरन्तर कार्यरत रहीं।

श्रीमती बिसेंट एक अच्छी वक्ता, योग्य नेत्री, कुशल संचालिका, विनम्र लोक-सेविका, अग्रणी सम्पादिका, सुधारक, राजनीतिज्ञ, लेखिका, अन्तर्राष्ट्रीय विषयों की सन्त महिला सब कुछ थीं। उनका जीवन सरल तथा आध्यात्मिक था। मनुष्य, पशु,पक्षी, कीड़े, पौधे सभी में एक विराट का दर्शन कर वे उनसे तादात्म्य स्थापित कर लेती थीं। वे पूर्णत: शाकाहारी थीं। किसी भी तरह की निर्दयता उन्हें असह्य थी। इसलिए पशु-संरक्षण के लिए भी आंदोलन चलाये। ज्यों-ज्यों वे वृद्ध होती गयीं, उनका साध्वी रूप प्रभावशाली बनता गया। आध्यात्मिक शक्तियों से दीप्त उनका मुख-मंडल न जाने कितनों की प्रेरणा बन गया था।

डाक्टर एनी बिसेंट ने करीब ३०० पुस्तकें, बहुत सी टिप्पणियाँ और लेख लिखे। अनेक दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्रों का सम्पादन किया। कट्टर स्वतन्त्रतावादी एवं सुधारक होने से विचार स्वतन्त्रता और मुद्रण-स्वतन्त्रता के लिए भी उन्होंने डटकर संघर्ष किया था। भारतीय कॉंग्रेस के इतिहास पर लिखा गया उनका तथ्यपूर्ण ग्रन्थ विशेष रूप से पठनीय है। २० नवम्बर, १९३३ को मद्रास में ८६ वर्ष की आयु में यह कर्मठ महिला इस संसार से विदा हो गयीं। पर वे अपनी महान सेवा से भारत की आत्मा के अणु-अणु में सदैव के लिए अपना स्थान सुरक्षित कर गयी हैं।

महात्मा गाँधी की मानस पुत्री— मीरा बहन

२०वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध भारत के इतिहास में गाँधीयुग के नाम से जाना जाता है। इस शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में महात्मा गाँधी की ख्याति देश और सागर की गहराइयों को लाँघती हुई देशान्तरों तक भी फैल गयी। लोग आश्चर्यचकित रह जाते थे। यह जान कर एक निहत्था और अकिञ्चन पुरुष, उस जाति का सिर दर्द बना हुआ है, जिसके राज्य में कभी सूर्य अस्त ही नहीं होता है। वह महामानव उस समय और अब भी शासक जाति के कई लोगों के दिल और दिमाग पर छाया हुआ है।

इंग्लैण्ड की राजधानी लन्दन में सन् १९२०-२१ की बात है कि एक सैनिक परिवार में महात्मा गाँधी की चर्चा चल रही थी। उनके सत्याग्रह और अहिंसात्मक आन्दोलन के बारे में सुनकर सभी आश्चर्य चकित रह जाते थे। गाँधीजी के विषय में सर्वाधिक ध्यान से सुन रही थी जल सेना के सेनापति और ईस्ट इण्डिया स्क्वार्ड्न के भूतपूर्व प्रधान सेनापति एडमिरल सर एडमण्ड स्लेड की पुत्री कुमारी मेडिलेन स्लेड। गाँधीजी के निशस्त्र युद्ध में प्रयुक्त नैतिक बल की सफलता से कुमारी स्लेड भावविभोर होकर प्रफुल्लित हो उठती। इसे स्लेड मेडिलेन के अन्तरंग में जमे हुए उच्च मानवीय संस्कारों का

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिणाम ही कहा जा सकता है। क्योंकि जहाँ एक ओर वह प्रसन्न हो रही थी, दूसरी ओर महात्मा गाँधी की राजनीति की सफलता से अँग्रेजी शासक बौखला उठे थे।

इसी बीच जिन दिनों प्रथम विश्वयुद्ध चल रहा था, इंग्लैण्ड की इस महिला मेडलीन स्लेड ने फ्रैंच लेखक रोमारोलां का उपन्यास 'जीन क्रिस्टोफर' पढ़ा। इस उपन्यास के नायक जीन क्रिस्टोफर जैसी बेचैनी वह अपने अन्तर अनुभव में करने लगीं। फिर इसी लेखक की दूसरी पुस्तक बीथोवन का जीवन चरित्र पढ़ने को मिली। इन दोनों पुस्तकों के अध्ययन से स्लेड लेखक के विचारों से बड़ी प्रभावित हुईं। उन्होंने रोमारोलां को एक पत्र लिखा। पर उस समय कठिनाई यह थी कि स्लेड फ्रैंच भाषा नहीं जानती थी और रोमारोलां अँग्रेजी नहीं जानते थे। फिर भी प्रथम पत्र पढ़कर रोमारोलां ने उन्हें स्विटजरलैंड आने के लिए निमन्त्रण दे दिया। रोमारोलां उस समय स्विटजरलैंड के बिलेन्यूक नगर में रहते थे। स्लेड ने सोचा कि रोमारोलां से मिलते समय एक दुभाषिये की आवश्यकता होगी, अत: क्यों न जाने से पूर्व फ्रैंच भाषा का इतना अभ्यास कर लिया जाय कि रोमारोलां से बात करने में कठिनाई न हो और स्लेड ने अपनी यात्रा तब तक स्थगित रखी, जब तक फ्रैंच-भाषा में विचार-विनिमय योग्य न हो गई।

बात-चीत के बीच रोमारोलां ने गाँधीजी से सम्बन्धित अपनी नवीन कृति के सम्बन्ध में बताया और महात्मा गाँधी के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए दूसरा ईसा कहा। स्लेड ने पेरिस लौटकर सबसे पहला काम यह किया कि प्रकाशक से उस पुस्तक की एक प्रति खरीदकर पूरी पढ़ ली। पिछले वर्षों से स्लेड जिस वस्तु की तलाशकर रही थी, वह उस पुस्तक में पढ़ने को मिल गई। अब उनकी आन्तरिक खोज को एक दिशा मिल गई थी। उन्हें ऐसा लगा जैसे आश्रम-जीवन उन्हें आमन्त्रित कर रहा है। जिस लक्ष्य के निर्धारण हेतु वह वर्षों से भटक रही थी वह बिना किसी तर्क-वितर्क के निश्चय हो गया। घर लौटकर उन्होंने आश्रम जीवन की तैयारी भी कर दी। धीरे-धीरे माँसाहार छोड़ दिया। राम के प्रति आस्था बढ़ने लगी, भूमि पर सोना शुरू किया। उन्होंने किसी से सुन रखा था कि भारत की मातृ-भाषा उर्दू है अत: उर्दू पढ़ना शुरू किया। बाद में हिन्दी सीखकर गीता और वेदों का अध्ययन भी शुरू कर दिया।

मेडिलेन को लगा जीवन में जिस आदर्श की उसे मन ही मन तलाश थी वह मिल चुका है। अब उसे व्यर्थ ही भटकना नहीं पड़ेगा। महात्मा गाँधी को उसने अपना आराध्य स्वीकार किया और साबरमती आश्रम, अहमदाबाद के पते पर गाँधीजी को एक पत्र लिखा। ''मैं आपके बारे में सुनकर आपसे बहुत प्रभावित हुई हूँ। मानवता को देवत्व का ही दूसरा नाम कहने वाले तो बहुत हैं परन्तु उसका प्रायोगिक और व्यावहारिक मार्गदर्शन करने की क्षमता आप में ही दिख पड़ी है। मैं आपके सानिध्य में रहकर कुछ सीखना चाहती हूँ। कृपया मुझे अपनी विनम्र सेविका और अनुचरी के रूप में स्वीकार करें।''

पत्र पढ़कर गाँधीजी बड़े प्रभावित हुए। यों उनके पास विदेशों से सैकड़ों पत्र आते रहते थे, जो उनसे प्रभावित हुए लोग उनका सान्निध्य-संपर्क प्राप्त करने की इच्छा से लिखते थे। उन्होंने मेडिलेन की मानवीय जीवन मूल्यों के प्रति निष्ठा को परखने के लिए आश्रम जीवन का अभ्यास करने की सलाह दी।

लन्दन में ही मेडिलेन स्लेड बताये तरीके से आश्रम जीवन का अभ्यास करने लगीं। सामिष भोजन का त्यागकर वे शुद्ध शाकाहारी बन गईं, मेज-कुर्सियों पर बैठने की अपेक्षा जमीन पर बैठने लगीं, पर्यटन और आमोद-प्रमोद के स्थान पर चर्खा कातना रुचिकर लगने लगा। उपन्यास और कहानियों में बर्बाद होने बाला समय बचाकर वेद, उपनिषद और गीता का अध्ययन करने लगीं। यह क्रम लगभग एक वर्ष तक चला और गाँधीजी ने उन्हें अपने पास बुला लिया।

कुमारी मेडिलेन स्लेड २५ अक्टूबर, १९२५ को लन्दन से रवाना हुईं। करीब डेढ़ माह की यात्राकर वे सीधी अपने अराध्य के आदर्श के पास साबरमती आश्रम पहुँचीं। महात्मा गाँधी को देखा तो अब तक का रुका हुआ श्रद्धा और भावनाओं का प्रचण्ड प्रवाह फूट पड़ा। मेडिलेन उनके चरणों में गिर पड़ी और उन्होंने बड़े स्नेह से उठाकर कहा-'तुम मेरी बेटी हो गयी हो।' कुछ ही दिनों बाद गाँधीजी ने मेडिलेन स्लेड को मीरा बहन का नाम दे दिया।

गाँधीजी से प्रभावित होने वाले विदेशी लोगों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। एक तो वे जो निश्चित अवधि के लिए उनके पास आते और फिर वापस लौट जाते थे। दूसरे वे जिन्होंने भारत को ही अपना देश मानकर स्थाई रूप से यहीं रहना स्वीकार कर लिया। मीरा बहन दूसरी प्रकार के लोगों में से थी। ब्रिटेन में २२ नवम्बर, १८९२ को एक उच्च सेनाधिकारी के घर जन्मी और पली-पोसी होने के बाद भी उनकी आत्मा भारतीय संस्कृति में पूरी तरह रंगी हुई थी। यहाँ आने से पूर्व उन्हें एक ऐसी बेचैनी होती थी कि सब कुछ परिचित सा लगता हुआ भी कोई अभाव है। भारत में आकर उन्हें लगा कि इस अभाव की पूर्ति हो गयी है। ब्रिटेन के समृद्ध और संपन्न परिवार में सब प्रकार की सुख-सुविधायें थीं। किसी चीज की कोई कमी नहीं थी। उस शान-शौकत को ठुकराकर मीरा बहन आत्मिक शान्ति की खोज में भारत आयीं और यहीं की बनकर रह गयीं।

गाँधीजी ने उन्हें आश्रमवासी के रूप में स्वीकार कर लिया। पहले से ही अभ्यास होने के कारण वहाँ पर उन्हें कोई असुविधा अनुभव नहीं हुई। वे दिन-रात बापू की सेवा-सुश्रूषा में लगी रहतीं। अवकाश के समय प्रकृति की गोदी में जा बैठतीं, आश्रम के पशु-पक्षियों की देखभाल करतीं। गाँधीजी ने भी उन्हें समाज सेवा की दृष्टि से इतना योग्य बना दिया कि वे उनके बाद भी उनका प्रतिनिधित्व करती रही हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.५१ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

सन् १९३१ में गाँधीजी जब गोलमेज परिषद में भाग लेने के लिए लन्दन गये तो मीरा बहन को भी अपने साथ ले गये। भारत आने के बाद वे पहली बार अपनी जन्म-भूमि पर आई थीं। भारत में वे भी स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने लगी थीं। अनाचारी अपना जातीय बन्धु हो या कितना ही आत्मीय, उसका विरोध तो किया ही जाना चाहिए । अनीति का प्रतिकार करने के लिए हर समय तैयार खड़े वीर ही मानवता को सुशोभित करते हैं। देश, जाति, समाज और परिवार के रिश्तों की दुहाई देकर अनीति का विरोध न करना प्रत्यक्ष मानवता की हत्या करना है और कोई भी सम्बन्ध या रिश्ता मानवीय कर्त्तव्यों से ऊपर नहीं है। स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेने की प्रेरणा देकर महात्मा गाँधी ने मीरा बहन को पहला पाठ यही पढ़ाया। निष्ठावान शिष्य की भाँति उन्होंने अपने प्रेरणा आदर्श की इस आज्ञा को स्वीकार किया। ब्रिटेन के नागरिक वहाँ की सरकार के विरोध में वहाँ की ही एक बेटी और वह भी एक उच्च पदस्थ सैनिक अधिकारी की पुत्री को खड़ा हुआ देख दाँतों तले अँगुली दबा गये।

गाँधीजी के साथ ही वे भी भारत वापस लौट आयीं और यहाँ की राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने लगीं। यहाँ की सरकार ने उन्हें तीन बार गिरफ्तार किया और वे तीनों बार जेल गयीं। १९३४ में यह उपयुक्त समझा गया कि भारतीय जनता पर किये जा रहे अत्याचारों की विश्व को जानकारी दी जाये। इसके लिए मीरा बहन को इंग्लैण्ड और अमेरिका भेजा गया। उन्होंने देश की वास्तविक स्थिति से लोगों को परिचय कराया और यहाँ का संदेश सुनाया। उनकी ओजस्वी वाणी से ब्रिटिश सरकार द्वारा किये जा रहे अत्याचार और शोषण की कहानी सुनकर विदेशी नागरिक बड़े प्रभावित हुए। दोनों देशों की यात्राकर वे वापिस भारत लौट आयीं।

सन् १९३९ में विश्वयुद्ध के बादल मड़राने लगे। भारत का जनजीवन भी उससे अप्रभावित न रहा। पूर्वी समुद्री तट पर जापानी हमले की सम्भावना व्यक्त की गयी। वहाँ के लोग घबड़ाये तो मीरा बहन तुरन्त उड़ीसा गयी और नागरिकों को धैर्य बँधाया। उनके मनोबल को सुदृढ़ करते हुए युद्ध का सामना करने के लिए तैयार किया। जनता पर उनके व्यक्तित्व का अपेक्षित प्रभाव पड़ता था। वे जो कहतीं लोग उसे ध्यानपूर्वक हृदय से सुनते थे। यही कारण था कि जब भी जहाँ कहीं स्थिति का संतुलन बस के बाहर बिगड़ता दिखाई देता, उन्हें ही भेजा जाता था। अपने आदर्शों के प्रति निष्ठावान रहकर उनका प्रतिपादन करने या प्रेरणा देने वाले ही अभीष्ट परिणाम प्राप्त करते हैं।

८ अगस्त, १९४२ को बम्बई में काँग्रेस महा समिति के ''भारत छोड़ो'' अधिवेशन में 'करो या मरो' का आह्वान किया गया। सरकार को इसका पता चला तो दमन चक्र चलाया गया। कई नेता सुबह होते ही गिरफ्तार कर लिये गये। इसी सिलसिले में मीराबहन भी गिरफ्तार हुई। राजद्रोह के अपराध में उन पर मुकद्दमा चलाया गया और २१ मास तक जेल में रहीं।

जब वे जेल से छूटीं तो यह निश्चित लगने लगा था कि भारत अब और अधिक दिनों तक गुलाम नहीं रह सकेगा। यहाँ की जनता शीघ्र ही गुलामी का जूआ उतार फेंकेगी। गाँधीजी ने मीराबहन को रचनात्मक कार्यों में लगा दिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश के हर वर्ग का हर व्यक्ति ही नहीं, पशु-पक्षी भी अपना जीवन सुरक्षित समझे-यह था उनकी कल्पना का स्वतन्त्र भारत और इसका माध्यम था, जन-जन के मन में सेवा-भाव का विकास। गाँधीजी ने इसीलिये अपने आश्रम में पशुपालन से लेकर कुष्ठ रोगियों की सेवा-परिचर्या तक की व्यवस्था कर रखी थी। मीरा बहन ने गाँधीजी की सलाह से उत्तरप्रदेश सरकार की स्वीकृति लेकर हरिद्वार और रुड़की के बीच मूलदासपुर गाँव में एक किसान आश्रम की स्थापना की। ऋषिकेश के पास घने जंगलों में पशु विभाग की योजनायें बनाने के लिए सर्वे पर भी जाया करती थीं। लोगों को डर रहता कि कहीं जंगली जानवर न मार डालें। इस समय यह इलाका था भी खतरों से भरा हुआ। १०-१५ फुट ऊँची घास और उसमें हाथी, शेर, जैसे जंगली जानवर विचरण करते रहते।

उस समय वहाँ का वातावरण और जलवायु भी प्रतिकूल था। मीराबहन ने प्रतिकूल जलवायु में भी पशु सुधार की योजनायें प्रारम्भ कीं। बाद में उन्हें मलेरिया हो जाने के कारण वहाँ से हटना पड़ा। आज भी वह स्थान पशुलोक के नाम से जाना जाता है, उनकी वह कुटिया जिसमें रहकर उन्होंने पशु विकास योजनाओं का सूत्रपात किया था, आज भी सुरक्षित है। स्वास्थ्य सुधर जाने के बाद मीराबहन ने टिहरी, गढ़वाल और काश्मीर में दलित वर्ग को ऊँचा उठाने के लिए अपने ढंग से कार्य किया। उनके आश्रम में सभी लोगों से एक समान व्यवहार किया जाता। ऊँच-नीच और छोटे-बड़े का भेद-भाव बिल्कुल खत्म कर दिया गया। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद और पण्डित जवाहरलालनेहरू ने भी मीराबहन के आश्रम के गाँव के हरिजनों के साथ मिट्टी के प्यालों में चाय पी थी।

भारत आजाद हुआ और गाँधीजी की हत्या कर दी गयी। मीरा बहन को हर्ष भी हुआ और कुछ समय बाद महात्मा गाँधीजी की हत्या से बहुत बड़ा आघात भी पहुँचा। परन्तु उन्हें गाँधीजी द्वारा सौंपे गये काम पूरे करने के लिए अब और अधिक निष्ठा के साथ लगना था। गाँधीजी अपने जीवन-काल में अक्सर कहा करते थे-'जो तालीम और अनुभव मैंने तुम्हें दिये हैं, वे मेरे मरने के बाद अमूल्य साबित होंगे।' मीरा-बहन गाँधीजी द्वारा समय-समय पर कही हुई ऐसी बातें यादकर अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व को समझती रहीं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन् १९५१ में वे इंग्लैण्ड गयीं और वहाँ कुछ ही महीने रहीं। अब वे अपना सबसे अधिक उपयुक्त कार्यक्षेत्र चुनने में लग गयी थीं। गाँधीजी द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलते हुए मानव मात्र की सेवा और निम्न वर्ग को ऊँचा उठाना ही उनका कार्य था। घूमते-घूमते वे आस्ट्रिया पहुँचीं। वहाँ की स्थिति देखकर आस्ट्रिया उन्हें अपना उपयुक्त कार्य क्षेत्र लगा और वे तुरंत अपने अभीष्ट कार्य में जुट गयीं। एक बार किसी भारतीय ने उनसे पूछा कि-भारत के बजाय उन्होंने आस्ट्रिया को अपना कार्य क्षेत्र क्यों चुना है?

उन्होंने उत्तर दिया-मैं जिस आह्वान पर भारत से यहाँ आयी हूँ, मेरा विश्वास है कि अगर आज गाँधीजी जीवित होते तो वे यही कहते कि अब मेरी जगह यूरोप में ही है। मुझे पूर्व और पश्चिम का ज्ञान इसीलिए दिया गया है। इस दृष्टि से मेरी उपयोगिता यहीं अधिक है।

कुछ भी हो भारतीय जनता उनसे उपकृत है। अब किसी देश विशेष को अपना कार्यक्षेत्र न मानकर समूचे विश्व को अपना देश समझना और विश्वमानव की सेवा में स्वयं को समर्पित करना उनके व्यक्तित्व की अमूल्य उपलब्धि है।

उनके जीवन इतिहास पर एक दृष्टि डाली जाय तो वे गाँधीजी की मानसपुत्री सिद्ध होंगी। व्यक्तिगत आवश्यकताओं से लेकर समाज-सेवा के क्षेत्र में उनके व्यवहृत आदर्श गाँधीजी का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।

वाली अम्मा—जिनका बलिदान सफल हुआ

दक्षिण अफ्रीका के एक न्यायालय ने किसी मामले पर निर्णय दिया कि केवल ईसाई धर्म के अनुसार किये गये विवाह ही वैध हैं। अर्थात् रजिस्टर में अधिकारी द्वारा जिन पति-पत्नियों का नाम दर्ज किया गया है, वे ही कानून की दृष्टि से दम्पत्ति है। शेष सब दम्पत्ति गैर कानूनी हैं। इस फैसले के अनुसार वहाँ के निवासियों में जो भी हिन्दू, मुस्लिम या पारसी धर्म के अनुयायी लोग थे, उनके विवाह रद्दकर दिये गये। इन लोगों में सबसे अधिक भारतीय ही थे। वहाँ निवास कर रही भारतीय स्त्रियों को क्षण भर में धर्म पत्नी के गौरवशाली पद से च्युतकर दिया गया। कानून की निगाह में वे सब रखैल बन गयीं।

सतीत्व और पतिव्रत धर्म के क्षेत्र में संसार भर के लिए आदर्श भारतीय स्त्रियों को अपने धर्म पर यह आघात बिल्कुल सहन नहीं हुआ। उस समय महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका में ही थे। वहाँ निवासकर रहे भारतीयों को न्यायिक अधिकार दिलवाने के लिए उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन चला रखा था। जब तक इस आन्दोलन में महिलाओं को भाग नहीं लेने दिया गया था। कारण कि जेल के कष्ट और असुविधापूर्ण जीवन सह सकने में उन्हें थोड़ी आशंका थी।

गाँधीजी नहीं चाहते थे कि महिलायें किसी के कहने से प्रेरित होकर आन्दोलन में भाग लें। टॉल्सटॉय आश्रम की एक निवासी भारतीय युवती वाली अम्मा ने उनके सामने महिलाओं की यह बात रखी और निवेदन किया कि आश्रम की सभी बहिनें सत्याग्रह में भाग लेने के लिए व्यग्र हैं।

हर प्रकार से ठोक बजाकर उन्हें दृढ़ पाया तो सत्याग्रह आन्दोलन शुरू हुआ। वाली अम्मा जैसी दुर्बल और अल्पवय की महिला ने भी इस आन्दोलन में बड़े उत्साह के साथ भाग लिया और सत्याग्रहियों की अग्र पंक्ति में रही। अनौचित्य का विरोध, प्रतिवाद करने के लिए शक्तिशाली और प्रौढ़ शरीर नहीं सशक्त मन और उत्साह चाहिए। इतिहास इस बात का उदाहरण है कि संसार में नीति और अनीति के संघर्ष के अवसर पर शक्ति और सामर्थ्यवान अनैतिकता को भी साधनविहीन नैतिक पक्ष के सामने घुटने टेकने पड़े हैं।

वाली अम्मा ने वातावरण को तैयार करने में यथा शक्ति योगदान दिया। संग्राम का अन्त शीघ्र ही या देर से, जाने वाले भले चंगे रहें या बीमार हो लौटें फिनिक्स आश्रम बना रहे या मिट जाय, मैं पीछे नहीं हटूँगी न किसी को हटने दूँगी—इस निश्चय के साथ वाली अम्मा टॉगवाल के पहले जत्थे से गिरफ्तार हो गयीं।

अन्य गिरफ्तार स्त्रियों के साथ वाली अम्मा को भी नेटाल की राजधानी मेरित्सवर्ग में रखा गया। वहाँ उन्हें खूब कष्ट दिये गये, सख्त मेहनत करवायी गयी, अधिकारियों से अपमानित होना पड़ा। खाने-पीने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया। महिलाओं ने कहा कि—'न हो तो हमें अपने पैसों से भोजन का प्रबन्ध करने दिया जाय।'

जिस पर अधिकारियों ने कहा—''यह होटल नहीं है। जो मिलेगा वही खाना होगा।''

तमाम परेशानियों और दिक्कतों के कारण जेल से लौटने पर कई स्त्रियाँ बीमार हो गयीं। उनमें गम्भीर रूप से बीमार थी—वाली अम्मा आर० मुदालियर।

गाँधीजी ने पूछा-'वाली अम्मा जेल जाने पर अफसोस तो नहीं है।'

'अफसोस क्यों हो ? अगर मुझे फिर भी गिरफ्तार होना पड़े तो मैं अभी तैयार हूँ।'

''परन्तु इसमें तो मौत आ सकती है।''

''भले ही आये न। धर्म के लिए मरने से अच्छी बात और क्या हो सकती है।''

और सचमुच ही कुछ दिनों बाद वाली अम्मा को मृत्यु ने अपना ग्रास बना लिया। कर्त्तव्य रक्षा के लिए मृत्यु का वरण करने वाली वाली अम्मा तो नहीं रही परन्तु उसका गौरव सदा के लिए अमर बन गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिमालय की महान सेविका—कैथरीन हैलियन

२ दिसम्बर। गाँधी जन्म शताब्दी के अवसर पर कोटद्वार में महिलाओं के लिए शिविर का आयोजन। एकत्रित महिलाओं को एक ६८ वर्षीय वृद्धा ने भाषण देना शुरू किया-जिसका सारांश था—

"साधारण श्रेणी के व्यक्तियों को महापुरुषों की पंक्तियों में बिठाने का श्रेय उनकी माताओं को ही है। अभिनव समाज की रचना में माताओं के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। पारिवारिक वातावरण में प्रेम, सेवा और त्याग का समावेश होना चाहिए।"

'यह कार्य पुरुषों की अपेक्षा महिलायें अधिक अच्छी तरह कर सकती हैं और उन्हें करना भी चाहिए। इस अनुरोध का महिलाओं पर भारी प्रभाव पड़ा और उनमें से कितनी ही मे परिवार निर्माण एवं समाज निर्माण के लिए क्रमबद्ध काम करना आरम्भ कर दिया।"

यह वृद्ध महिला और कोई नहीं वरन् हिमालय की महान सेविका कैथरीन हेलियन हैं। कैथरीन का जन्म ५ अप्रैल, १९०० को इंग्लैण्ड में हुआ था। यह वह देवी हैं जिनका शरीर भले ही विदेशी रहा हो, पर आत्मा भारतीय थी। तरुणावस्था में ही युद्ध की विनाशकारी प्रवृत्तियों को देखकर शान्ति के लिए कार्य करने की इच्छा बलवती हुई। भारतीय विद्यार्थियों के सम्पर्क में आकर उन्हें इस देश की संस्कृति व सभ्यता की विस्तृत जानकारी हुई। जब गाँधीजी के अहिंसात्मक कार्यों के सम्बन्ध में उन्हें पता चला तो वे इंग्लैण्ड छोड़कर भारत आने के लिए तैयार हो गईं।

जब हृदय में दूसरों की सेवा करने की भावना जाग्रत हो जाती है, उस समय व्यक्ति अपने परिवार की चिंता न कर सारी सुख-सुविधाओं को तिलांजलि देकर केवल दुखी व्यक्तियों के लिए सहानुभूति का मरहम लेकर चल देता है। कैथरीन शिक्षिका के पद पर पहले से कार्य कर रही थीं। भारत आते ही वे उदयपुर के विद्या-भवन में शिक्षिका बन गईं। बच्चों के साथ हिल-मिल कर उन्हें ज्ञानार्जन करने में मदद देना कैथरिन के स्वभाव में था, इसलिए वे कुछ ही दिनों में एक लोकप्रिय शिक्षिका बन गईं, जो बच्चों के साथ हँसती-खेलती और स्काउटिंग की टोलियों के साथ यात्रा में जातीं।

सन् १९३७ में राष्ट्रपिता गाँधीजी ने राष्ट्र के सामने बुनियादी शिक्षा की कल्पना रखी। कैथरीन उदयपुर को छोड़कर इस नये प्रयोग की सफलता के लिए बापू के चरणों में पहुँच गयीं। उनके सरल स्वभाव के अनुरूप ही बापू ने उनका नया नामकरण 'सरला बहिन' किया। वे आर्यनायकम् दंपत्ति के साथ बुनियादी शिक्षा की योजना को कार्यान्वित करने में जुट गईं और सन १९४१ तक सेवा ग्राम में ही रहीं।

सेवा-ग्राम की गर्मी सरला बहिन के स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं थी, फिर भी नये प्रयोग के उत्साह के सामने उन्हें अपने स्वास्थ्य की चिंता नहीं थी। पर बापू यह कब देख सकते थे ? उन्होंने कैथरीन को उत्तरप्रदेश के अल्मोड़ा जिले में भेज दिया, वहाँ पर वे श्री गाँधी आश्रम के चुनौदा गाँव में स्थित खादी-उत्पादन केन्द्र में काम करने लगीं। इन्हीं दिनों सन् १९४२ का देशव्यापी आंदोलन आरम्भ हुआ। राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं की धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ होने लगीं। इस आग के बीच में पीड़ित परिवारों को सहायता पहुँचाने और उससे भी अधिक उनका साहस बढ़ाने के लिए सरला बहिन मैदान में कूद पड़ीं। जिस गाँव में वे पहुँच जातीं, वहीं आत्मविश्वास की एक नई लहर उमड़ जाती। ब्रिटिश नौकरशाही को सरला बहिन का काम प्रत्यक्ष आंदोलन से भी अधिक भयंकर लगा। वे एक बार नहीं दो बार गिरफ्तार करके जेल में बंद कर दी गईं।

कुमाऊँ के पहाड़ी गाँवों में घूमते हुए सरला बहिन ने देखा कि वहाँ की देहाती जनता बहुत पिछड़ी हुई है। हिमालय की अँधेरी से भी अँधेरी कंदराओं में रहने वाली माताओं का कष्टमय जीवन उन्होंने देखा। वे दिन भर अपने कृषि व पशुपालन के काम में खेत व जंगलों में रहती हैं। ऐसी स्थिति में नये युग का संदेश उन तक कैसे पहुँचाया जाये ? जेल से छूटने के बाद यह प्रश्न सरला बहिन के सामने घूमने लगा। इसका समाधान उन्होंने अपने में पाया कि इस क्षेत्र में नारी जागरण के लिए कोई ठोस कार्य करना चाहिए। वह महात्मा गाँधी के पास एक आश्रम खोलने का प्रस्ताव लेकर गईं। गाँधीजी बड़े प्रसन्न हुए पर उन्होंने कैथरीन के धैर्य की परीक्षा लेते हुए यह कहा कि बिना किसी परिणाम की इच्छा किये बीस वर्ष तक इस कार्य को एकाग्र होकर करना पड़ेगा। ५ दिसम्बर, १९४६ का वह पुनीत दिवस आया जब कौसानी में 'कस्तूरबा महिला उत्थान मण्डल' के द्वारा श्री लक्ष्मी आश्रम की स्थापना हुई। राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं की पुत्रियों को लेकर आश्रम का कार्य प्रारम्भ किया गया। दूर-दूर से आकर रहने वाली इन कन्याओं को एक साथ माता का प्रेम, अध्यापिका का मार्गदर्शन और सेविका की सेवाएँ उपलब्ध हुईं। कन्यायें थोड़े ही दिनों में इतनी हिलमिल गईं कि वह कैथरीन को ही अपनी माँ समझने लगीं। कैथरीन केवल आश्रम में पढ़ाने वाली अध्यापिका ही न थीं वरन् स्नान कराने, भोजन बनाने और जंगल से लकड़ी लाने तक का कार्य स्वयं करतीं थीं। इन सेवाओं के बदले रूढ़िवादी समाज ने उन्हें पागल समझा और पुरस्कार में गालियाँ दीं। महापुरुषों के सेवा कार्यों के बदले सदैव से विरोध ही तो मिलता आया है, उन्हें जो सम्मान दिया भी गया है, वह उनकी मृत्यु के बाद।

कुछ ही वर्षों में पहाड़ी क्षेत्रों में जाग्रति की लहर दौड़ गई। दूर-दूर के जिलों से कन्याएँ आने लगीं और वह आश्रम बदले में सार्वजनिक जीवन में दृढ़ता से कार्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने वाली समाज-सेविकाएँ प्रदान करने लगा। शराब की दुकानों पर धरना देने के लिए महिलाओं के झुण्ड दिखाई देने लगे। घर-घर में कैथरीन का नाम लिया जाने लगा। अब तो दूर-दूर से प्रेरणा लेने के लिए उन्हें आमन्त्रित किया जाने लगा क्योंकि दिन-प्रतिदिन कार्य का क्षेत्र बढ़ता जा रहा था। इस समय कानून के कारण ऐसी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गईं कि कोई व्यक्ति बिना आज्ञा के सीमान्त जिलों में प्रवेश नहीं कर सकता था। पर कैथरीन का उद्देश्य तो केवल जन-जन की सेवा करना था। उनकी भावना में स्वार्थ की कहीं गन्ध तक न थी। अत: उन पर किसी प्रकार का कोई वैधानिक प्रतिबन्ध न रखा गया।

कई वर्षों तक कैथरीन मैदानी क्षेत्रों की तरह पहाड़ी क्षेत्रों को विकसित करने के लिए विचार करती रहीं अंतत: यहाँ की परिस्थितियों का गहन अध्ययन कर वे इस परिणाम पर पहुँची कि पहाड़ी क्षेत्रों को कभी भी कृषि की दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं बनाया जा सकता और न इस प्रकार की गल्ती करनी ही चाहिए। वन सम्पदा की दृष्टि से यह क्षेत्र धनी है। अत: वनोपज पर आधारित कुटीर उद्योगों का विकास करके मैदानी क्षेत्र का पूरक बनाना चाहिए। जब से सड़कों का निर्माण हो गया है, तब से पहाड़ी ग्रामों का शोषण बढ़ गया है। आवश्यकता इस बात की है कि मैदानों से अनाज पहाड़ी क्षेत्रों में भेजा जाय और वहाँ से वन उपज द्वारा निर्मित पक्का माल मैदानों को भेजा जाय, तभी देश के गाँव स्वावलम्बी बन सकेंगे।

पहाड़ों पर रहने वाले व्यक्तियों के कठोर जीवन, सरल स्वभाव और आध्यात्मिक भावना से वह अत्यधिक प्रभावित थी। उत्तर प्रदेश में भूदान आन्दोलन के अन्तर्गत सबसे पहला जिला-दान उत्तर काशी का हुआ था। गाँधी शताब्दी मनाने की सार्थकता के सम्बन्ध में उनका यह विचार था कि पत्थरों के स्मारक बनाने से हमारा उद्देश्य पूरा नहीं होता। यदि हम गाँधीजी की बात नहीं सुनते हैं तो हो सकता है कि इन स्मारकों के नीचे उनके सपने दब जायें। गाँधीजी के सिद्धान्तों का अधिक से अधिक पालन करना और दूसरों को इसके लिए प्रेरित करना ही स्मारक बनाना है।

दो वर्ष तक सन्त बिनोवा की प्रेरणा से कैथरीन बिहार, मध्य-प्रदेश, उत्तर प्रदेश और कर्नाटक में सर्वोदय की विचारधारा का प्रचार करती रहीं, इसके बाद उन्होंने एक माह का समय उत्तर-प्रदेश के सात पर्वतीय जिलों को दिया। जहाँ सर्वोदय सेवकों के अनेक केन्द्र चल रहे हैं। कैथरीन एक सैनिक की भाँति अपनी पीठ पर आवश्यकतानुसार बहुत थोड़ा सामान लादकर चलती थीं। वह गाँधीजी के एकादश व्रतों के आधार पर अपने जीवन को चलाती रहीं। मित्रों या शुभचिन्तकों द्वारा दी हुई खाने-पीने की चीजें भी वह साथ लेकर नहीं चलती थीं वरन् वहीं बाँट देती थीं। बिनोवाजी के कहने पर एक बार वे महिला लोक-यात्रा में शामिल होने हरियाणा गई थीं और बाद में कर्नाटक की यात्रा की।

परम पावनी गंगा केवल उत्तर को ही सींचती है पर कैथरीन द्वारा प्रवाहित मानव सेवा की अजस्र धारा सभी दिशाओं में प्यासे मानवों की प्यास को बुझाती रहेगी। जिन विदेशी महिलाओं ने अपनी मातृ-भूमि के ही समान भारत भूमि से प्यार किया है और यहाँ पर पीड़ित मानवता के अश्रु बिन्दुओं को पोंछकर अपनी सुख सुविधाओं की चिन्ता न करते हुए सर्वस्व न्यौछावर कर दिया, उनमें कैथरीन हैलियन का नाम स्मरणीय है।

हिमालय में सर्वत्र उनकी मूक सेवाओं की प्रसादी बिखरी हुई है। उत्तर-प्रदेश के चारों पहाड़ी जिलों-टिहरी, गढ़वाल, अल्मोड़ा और नैनीताल में उनकी शिष्याएँ आज भी अहिंसक क्रांति के कार्य में जुटी हुई हैं।

बापू के विचारों को इंग्लैण्ड में फैलाने वाली म्यूरियल लीस्टर

२ अक्टूबर, १९२५ को साबरमती आश्रम में गाँधीजी का जन्म दिन मनाया जा रहा था। गाँधीजी अन्य कार्यकर्त्ताओं के साथ जमीन पर बैठे सूत कात रहे थे कि आश्रम में एक अँग्रेज महिला ने प्रवेश किया। उसने गाँधी जी से मिलने की इच्छा व्यक्त की, आश्रमवासियों ने उसे गाँधीजी के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया।

जन्म-दिन के समारोह तो उस महिला ने अनेक देखे थे, पर गाँधीजी जैसे महापुरुष के जन्म समारोह का अनोखा रूप देखकर वह चकित रह गईं। गाँधीजी ने उनसे बैठने का अनुरोध किया तो वह आदत न होने के कारण जमीन पर बैठने में कठिनाई अनुभव करने लगीं। बापू ने तुरन्त भाँप लिया, वह उठे और तुरन्त एक स्टूल लाकर उनके लिए डाल दिया। पर वह स्टूल के पास खड़ी तो रहीं किन्तु बैठने का साहस न कर सकीं और करतीं भी कैसे ? वे अँग्रेज-महिला तो इतनी दूर से दीक्षा लेने आई थीं फिर गुरु जमीन पर बैठें और शिष्या स्टूल पर, यह कैसे हो सकता था। अत: गाँधी जी मुस्कराते हुए फिर उठे और पास से ही एक बेंच खींचकर उस पर वह बैठ गये।

अब प्रश्नों का दौर चला और एक के बाद दूसरी शंकाएँ उभरकर सामने आने लगीं तथा गाँधीजी उनका समाधान करने लगे। जिस गन्दी बस्ती में आज का सभ्य समझा जाने वाला व्यक्ति नाक-भौं सिकोड़कर खड़ा होगा; वहाँ घुसकर शौचालयों की सफाई, दरिद्रों और रोगियों की सेवा, सत्य, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह की व्याख्या, स्वराज्य का सत्याग्रह और खादी से सम्बन्ध, बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के इतने बड़े साम्राज्य से टक्कर लेने की शक्ति जैसे अनेक प्रश्न पर प्रश्न होते गये और गाँधीजी उनके मन की गुत्थियों को सुलझाते चले गये और अन्त में वह गाँधीजी की शिष्या बन गईं।

यह अँग्रेज महिला कोई और नहीं वरन् सबकी चिरपरिचित म्यूरियल लीस्टर थीं। इन्होंने भारत में रहकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नहीं वरन् इंग्लैण्ड में ही गाँधीजी की विचारधारा को साकार रूप दिया। वे भारत कितनी ही बार आईं पर गाँधीजी के कार्यों में हाथ बँटाकर और उनसे प्रेरणा लेकर अपने देश वापस लौट गईं।

भारत से बाहर गाँधीजी के विचारों को फैलाना आसान कार्य न था, फिर ऐसे समय और ऐसे देश में जिससे स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी जा रही थी। उन्होंने सहयोगी के रूप में स्वराज्य कार्य में अपने देश से पूरी सहायता दिलाने की कोशिश की। वे गाँधीजी से प्रेरणा लेकर जब स्वदेश लौटीं तो सर्वप्रथम उन्होंने सहयोगी के रूप में अपनी बहन को साथ लेकर लन्दन की गन्दी बस्ती 'ईस्ट एण्ड' में किंग्सले कम्युनिटी हाल' की स्थापना की और इसके माध्यम से उन्होंने गाँधीजी के उद्देश्यों को लेकर वर्ग तथा जाति के भेदभाव को दूर करने का कार्य अपने हाथ में ले लिया।

उसके बाद नशाबन्दी के प्रचार हेतु लीस्टर ने दौरे करना शुरू किया। कितनी ही बार 'भारत में नशाबन्दी' के प्रस्ताव को उन्होंने इंग्लैण्ड की सार्वजनिक सभाओं में रखकर तत्कालीन अँग्रेजी सरकार पर अप्रत्यक्ष रूप से दबाव डालने का भी प्रयत्न किया। जब गाँधीजी के लिए पत्र लिखती थीं तो उसमें नशाबन्दी के प्रचार कार्य का पूरा विवरण देती थीं।

१९६८ में कुमारी म्यूरियल लीस्टर का लन्दन में देहान्त हो गया। वैसे उन्होंने ८४ वर्ष की दीर्घ आयु पाई थी, लेकिन सोचा यह जाता था कि वे सौ वर्ष से पहले नहीं जायेंगी। उन्होंने ऐसेक्स के अपने निवास स्थान पर २४ सितम्बर, १९५७ को एक सामूहिक भोज के समय एक वक्तव्य में कहा था-''गाँधीजी ने कहा था कि मैं सौ साल जीना चाहता हूँ और यही आशा मैं अपने मित्रों तथा संगी-साथियों से रखता हूँ। वे जरूर सौ वर्ष तक जी सकते थे। सौ ही क्यों उससे भी ज्यादा जी सकते थे, लेकिन ईश्वर को तो कुछ और ही मंजूर था। उन्होंने हम लोगों से दो उम्मीद रखी थीं, उसे मैं पूरी करना चाहती हूँ। अभी उनका बहुत-सा काम करने को पड़ा है।''

म्यूरियल सचमुच जीने के लिए बड़ी उत्सुक थीं इसलिए नहीं कि उन्हें जीने से किसी प्रकार का मोह था। बल्कि इसलिए कि उनके सामने एक महान ध्येय था। वे मानती थीं कि महात्मा गाँधी भारत में ही नहीं सारे संसार में प्रेम और शांति स्थापित करना चाहते थे। उनके इस उद्देश्य की पूर्ति अभी होना शेष थी। म्यूरियल की सारी प्रवृत्तियों के मूल में गाँधीजी और उनकी विचारधारा की प्रेरणा थी।

म्यूरियल का जीवन प्रारम्भ से ही वैभव से विमुख रहा था। उनके पिता जहाज बनाने की एक कम्पनी में काम करते थे और अत्यन्त परिश्रमशील थे। उनके पास पैसे की कमी न थी। वे लोग लन्दन से दूर ऐसेक्स नामक बस्ती के एक साफ-सुथरे मुहल्ले में रहते थे, लेकिन शहर आते-जाते उन्हें उस पूर्वी बस्ती से गुजरना पड़ता था। जहाँ गरीब लोग रहते थे और गंदगी की जिंदगी बसर करते थे। म्यूरियल जब आठ वर्ष की थी तो एक दिन किसी पार्टी से अपनी नर्स के साथ लौट रही थी। अचानक उनकी निगाह पूर्वी लन्दन के मकानों पर गई, जो बड़े गन्दे थे। जिनसे बदबू आ रही थी जिनके इर्द-गिर्द बाग-बगीचों का नाम-निशान तक न था। म्युरियल के लिए ऐसे मकान अकल्पनीय थे। उन्होंने बाल-सुलभ विस्मय से अपनी नर्स से पूछा-''क्या इन मकानों में आदमी रहते हैं ?'' नर्स ने उत्तर दिया-''क्यों नहीं, इसमें बहुत से आदमी रहते हैं।''

सम्भवत: नर्स को सूचना थी कि वह बच्चों को ऐसी किसी बात की जानकारी न होने दे, जिससे उन्हें बुरा लगे या दु:ख पहुँचे। अत: नर्स ने कहा-''पर तुम इसकी चिंता न करो। इन मकानों में रहने वाले लोगों को जरा भी हैरानी नहीं होती। वे खुश रहते हैं।''

कुछ समय बाद फिर म्यूरियल का ध्यान उस ओर गया और उन्होंने अपने प्रश्न को दुहराया। इस बार उत्तर मिला-''ये लोग बड़े मस्त हैं। यहाँ की गंदगी इन्हें बिल्कुल नहीं अखरती। अखरे भी तो क्यों, आखिर ये ही लोग तो इसके लिए जिम्मेदार हैं। ये शराब में अपना सब पैसा फूँक देते हैं। इसी से गरीब हैं।''

म्यूरियल ज्यों-ज्यों बड़ी होती गईं, उनके मन में यह विचार घर करता गया कि गरीब लोगों के रहन-सहन को कैसे ऊपर उठाया जाय और उनके जीवन में कैसे सुधार किया जाय। यही विचार धीरे-धीरे पल्लवित होता गया और आगे चलकर उसने उनकी जिंदगी को एक नई दिशा में मोड़ दिया। अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद म्यूरियल को सेवा की धुन सवार हुई। वह अवसर मिलते ही पूर्वी लंदन की गन्दी बस्ती में पहुँच जातीं और वहाँ के लोगों की जो कुछ सेवा कर सकतीं करतीं। उनका और उनकी छोटी बहिन डारिस की अब प्राय: पूर्वी लन्दन की 'बो' नामक बस्ती ही प्रमुख कार्यक्षेत्र बन गई। इसी बीच उनके भाई किंग्सले का मन अपने व्यवसाय से उचटा और वह भी सन् १९१२ में अपनी बहनों के साथ सेवा कार्य में जुट गया। तीनों ने मिलकर 'बो' बस्ती में एक मकान किराये पर ले लिया। लेकिन उन्होंने कुछ ही दिन काम किया कि किंग्सले को उदर ग्रन्थि की शिकायत हो गई, जो उसके लिए प्राणघातक सिद्ध हुई। छब्बीस वर्ष की उम्र में उस इकलौते भाई का देहान्त हो गया।

म्यूरियल को इससे बड़ी पीड़ा हुई पर उन्होंने उस दु:ख में से शक्ति प्राप्त की। उन्होंने किंग्सले के कार्य को आगे बढ़ाने का प्रण किया वे और डारिस पूरी लगन के साथ समाज के उस पिछड़े वर्ग को समुन्नत करने में लग गईं। एक दिन म्यूरियल के पिता ने कहा—''सेवा के लिए किसी सार्वजनिक स्थान का निर्माण करने से बढ़कर किंग्सले का कोई स्मारक नहीं हो सकता। अगर कोई मौके की अच्छी जगह हो तो मुझे बताओ। मैं उसे तुम दोनों बहिनों के लिए खरीद दूँगा।''

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इधर-उधर ढूँढ़ने के पश्चात् उन्हें एक हाल मिला। जो खाली पड़ा था। उसी को खरीद लिया गया और इस प्रकार १९१५ में 'किंग्सले हाल' की स्थापना हुई। आरम्भ में इस संस्था की मुख्य प्रवृत्ति थी संध्या को लोगों का वहाँ एकत्र हो जाना और स्वस्थ मनोरंजन में कुछ समय व्यतीत करना। लेकिन इतने भर से म्यूरियल को कहाँ सन्तोष होने वाला था। वे तो उसे एक ऐसी संस्था का रूप देना चाहती थीं, जहाँ सामान्य स्थिति के लोग बिना वर्ण, वर्ग तथा विश्वास-भेद के मिलकर रहें और सच्चाई की जिन्दगी बितावें।

कुछ दिनों बाद किंग्सले हाल' प्रवृत्तियों के लिए छोटा पड़ने लगा तो उन्होंने पाविस रोड पर एक बड़ी जगह ली। म्यूरियल तथा कुछ अन्य लोग सफाई से लेकर खाना पकाने तक का सारा काम खुद करते। वे लोग सारा काम स्वेच्छा से करते थे। इस प्रकार की निष्ठा बिना प्रार्थना के कैसे सुलभ हो सकती थी। सुबह-शाम की मौन प्रार्थना उनकी दैनिकचर्या का अनिवार्य अंग था। यही वह संस्था थी, जिसके आतिथ्य को गाँधीजी ने द्वितीय गोलमेज परिषद के अवसर पर स्वीकार किया था। सन् १९३१ में वे लगातार तीन महीने तक इसी 'किंग्सले हाल' में ठहरे थे।

इस संस्था के द्वारा म्यूरियल ने सामान्य लोगों की जो सेवा की, वह अद्भुत थी। अपनी निःस्वार्थ सेवा, सादगी तथा सच्चाई से इस संस्था ने बहुत से सम्मानित व्यक्तियों को आकर्षित किया। वहाँ के नर्सरी स्कूल में पढ़े बहुत से बच्चे कालान्तर में ऊँचे ओहदों पर पहुँचे। सबसे बड़ी सेवा उसने यह की कि हीन दृष्टि से देखे जाने वाले उस इलाके के स्त्री-पुरुषों के हृदय में आत्मीयता, साहस और करुणा की भावना पैदा हुई। जो लोग भयंकर से भयंकर बुराई करने के लिए आमादा रहते थे, उनके जीवन को इस असामान्य महिला ने एकदम बदल दिया। उन्होंने दुनिया को दिखा दिया कि प्यार के आगे पत्थर भी मोम हो जाता है।

सन् १९२६ के आरम्भ में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जामाता प्रो० गांगुली किंग्सले हाल में भाषण देने आये। तब उन्होंने म्यूरियल से कहा—"मेरी इच्छा है कि आप भारत आयें और हमारे यहाँ की सब चीजों को भी एक बार अपनी आँखों से देखें। यदि आपके पास समय हो तो एक माह कवीन्द्र रवीन्द्र के 'शांति-निकेतन' में ठहरें, एक महीना गाँधीजी के पास और एक माह इधर-उधर भारत भ्रमण में लगायें। मैं आपके लिए सारी व्यवस्था कर दूँगा।"

म्यूरियल को भला और क्या चाहिए था। वह १९२६ के अक्टूबर में ही गाँधीजी के साबरमती आश्रम में पहुँचीं और एक महीना उनके साथ रहीं। गाँधीजी के व्यक्तित्व उनके प्रेम तथा उनके आदर्शों ने उनको इतना प्रभावित किया कि वह सदा के लिए उन्हीं की ही रहीं।

सन् १९३४ में म्यूरियल दुबारा भारत आईं। गाँधी जी उन्हें अपने साथ बिहार ले गये। बाद में उन्होंने हरिजनों के लिए देश भर में दौरा किया तो म्यूरियल उनके साथ रहीं। उन्होंने गाँधीजी को अनेक रूपों में देखा और हर पहलू में उन्होंने उनको खरा पाया।

म्यूरियल बड़ी कला प्रेमी थीं। उनके मकान में जो भी थोड़ी सी चीजें थीं, उनसे उनकी उत्कृष्ट रुचि का पता चलता था। म्यूरियल ने सवेरे जागने के लिए बड़ी अनौखी अलार्म घड़ी लगा रखी थी और वह थी खिड़की के सहारे टीन की एक नली। वह इस नली में चिड़ियों को चुगने के लिए दाना डाल देतीं। चिड़िया सबेरा होते ही जब वहाँ आकर चहचहाते हुए दाना चुगती थीं और फिर खिड़की के शीशे से चोंच खटखटाती थीं, तो म्यूरियल जग जाती थीं।

म्यूरियल आत्मा की शक्ति में अचल विश्वास रखती थीं। 'किंग्सले हाल' का यह अभिलेख—"ईश्वर ने हम सबको जन्म दिया है कि हम सारे प्राणियों के साथ भाईचारा स्थापित करें।" मानवता के प्रति उनके तादात्म्य की ओर संकेत करता है। जब और जहाँ से भी, मानव की आर्त पुकार उनके कानों में पड़ी, वे मदद के लिए दौड़ी गईं। सन् १९१९ में वे महिलाओं का जुलूस लेकर हाउस आफ कामन्स गई थीं। उनकी माँग थी कि भूखे जर्मन परिवारों को भोजन भेजा जाय। द्वितीय महायुद्ध का विरोध करने के फलस्वरूप उन्हें ट्रिनीडाड में नजरबन्द रखा गया, एक रात उन्हें ग्लासगो की पुलिस की हिरासत में बितानी पड़ी और दो दिन होलोवे की जेल में। वे 'पापुलर ब्यूरो' की सदस्य रहीं और शस्त्रास्त्रों के व्यापार के विरुद्ध उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आन्दोलन किया। मानव समाज के कल्याण के लिए और भी न जाने क्या-क्या काम उन्होंने किये।

वे उच्च कोटि की लेखिका थीं। उनकी आत्म-कथा जो बड़ी प्रांजल भाषा में लिखी गई है, अत्यन्त प्रेरणादायक है। उनकी दूसरी पुस्तक 'एण्टरट्रेनिंग गाँधी' उपन्यास जैसी रोचक है और गाँधीजी तथा उनकी प्रवृत्तियों के प्रति लेखिका की अनन्य श्रद्धा को व्यक्त करती है। लेखनी की भाँति म्यूरियल वाणी की भी धनी थीं। वे नपी-तुली शब्दावली में बोलती थीं और अपनी बात बड़े प्रभावशाली ढंग से कहती थीं।

वस्तुतः उनकी शक्ति का स्रोत था—प्रेम से छलछलाता उनका हृदय, दीन-दुखियों की निस्वार्थ सेवा-भावना और सर्व हितकारी दृष्टि। एक बार उन्हें जब सन् १९३४ के बिहार भूकम्प की विनाशकारी स्थिति की जानकारी मिली तो वह अपने को रोक न सकीं और दौड़ी-दौड़ी गाँधीजी का हाथ बँटाने भारत आईं। यहाँ उन्होंने एक अन्य अँग्रेज महिला अगाया हैरिसन के साथ घूम-घूमकर जो सेवा कार्य किया, उसे भुलाया नहीं जा सकता। द्वितीय महायुद्ध के समय वह दक्षिण अफ्रीका भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

गईं और वहाँ गाँधीजी के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करना प्रारम्भ किया। ब्रिटिशशासन भला यह कार्य क्यों पसन्द करता अत: चार माह के लिए उन्हें ट्रिनिडाड में नजरबन्द कर लिया गया और बाद में ब्रिटिश जेल में भेज दिया गया।

सन् १९४८ में गाँधीजी की हत्या का दुखद समाचार सुनकर वे बेचैन हो गईं, उन्हें ऐसा लगा मानो उनका सर्वस्व ही लुट गया है। कितने ही दिनों तक ये कोई कार्य न कर सकीं और दु:ख के सागर में ही डूबी रहीं। पर शीघ्र ही उन्होंने अपने को सँभाल लिया और गाँधीजी के हस्ताक्षर नामक पुस्तक के प्रकाशन में जुट गईं। उसमें गाँधीजी द्वारा लीस्टर को लिखे गये पत्रों का संग्रह है, जिसमें गाँधीजी के अन्तर की गहराइयों का पता चलता है। लीस्टर तो इस पुस्तक को एक आत्मा से दूसरी आत्मा की बात-चीत मानती थीं। क्योंकि उन पत्रों ने इन्हें सदैव ही प्रेरणा दी थी।

गाँधीजी से पार्थिव सम्पर्क टूट जाने के बाद भी उनकी आस्था वैसी ही बनी रही और गाँधीजी के सिद्धान्तों के लिए बराबर जी-जान से जुटी रहीं। ११ फरवरी सन् १९६८ को म्यूरियल लीस्टर भी इस संसार से विदा हो गईं पर संकट की घड़ियों में जबकि गाँधी जी के कितने ही अनुयायी उनके बताये मार्ग पर चलने में हिचकिचाते रहे, तब लीस्टर पूर्ण आस्था के साथ गाँधीजी द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर अन्त तक चलती रहीं तथा अन्य लोगों को भी प्रकाश की उस राह पर चलने की प्रेरणा देती रहीं।

दुनिया की नारी, जिसकी आभारी— मार्गरेट कजिन्स

एक सार्वजनिक चौराहे-जहाँ पर हमेशा कोई न कोई राजनीतिक दल, आम सभायें आयोजित करता रहता था, उसके निकट बने मकान से एक बारह-तेरह वर्षीया किशोरी निकलती और उन सभाओं में आदि से अन्त तक बैठी रहती। राजनेताओं का भाषण सुनने में उसे बड़ा मजा आता था। यदा-कदा मन में यह भी इच्छा उठती कि काश वह भी हजारों की भीड़ में इसी प्रकार बोल सकती।

होते-होते यह इच्छा स्वप्न बन गयी। किशोरी वाला मार्गरेट ने अपना लक्ष्य बना लिया कि वह राजनीति के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनायेगी, वह दृढ़ निश्चय के साथ इस क्षेत्र में काम करने का अभ्यास करने लगी। शीशे के सामने खड़े होकर बोलने और भाषण देने की एकान्त साधना में उसका मन लगने लगा। वस्तुत: आकांक्षा कोई भी बुरी नहीं है—यदि उसे पूरी करने के लिए सही दिशा मे चला जाये। राजनीति में अपना स्थान बनाने की इच्छा ने ही मार्गरेट कजिन्स को दुनिया के सामने एक महान महिला के रूप में खड़ाकर दिया क्योंकि उसने पदलोलुपता, ख्याति और धन के प्रलोभन से बचकर राजनीति में विशुद्ध सेवा मार्ग का अवलम्बन लिया था। जो लोग इस क्षेत्र को अपनी स्वार्थ सिद्धि का सुगम मार्ग मानते हैं—वे इतिहास के सागर में उसी प्रकार खो जाते हैं जैसे कोई कंकड़-पत्थर। उनके प्रयासों की कभी भी चर्चा भी चलती है, लोग उन्हें याद भी करते हैं तो ऐसे शब्दों से जो निस्संदेह किसी नरकीटकों के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।

इसके विपरीत जो राजनीति में लोकसेवा को आधार बनाकर चलते हैं, वे शताब्दियों तक महापुरुषों के रूप में बंदनीय बन जाते हैं। मार्गरेट कजिन्स को ऐसे ही लोगों की पंक्ति में बिठाया जा सकता है। उन्होंने राजनीति का आधार लोकहित ही चुना। वे मानती थीं कि जनता का कुछ हित साधनकर ही इस आकाश में चमका जा सकता है।

लोकहित साधना की प्रेरणा ने ही मार्गरेट को सही मार्गदर्शन दिया और उनके मन में समाज की स्थिति का अध्ययन करने, अपना कार्य क्षेत्र चुनने के लिए प्रोत्साहित किया। सोलह-सत्रह वर्ष की वय में मार्गरेट साइकिल पर सवार होकर संगीत स्कूल में पढ़ने जाया करती थी। इंग्लैण्ड में उस समय साइकिल चलाने और संगीत शिक्षा लेने वाली लड़कियों को अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता था।

ऐसी लड़कियों को आवारा या बदमाश ही समझा जाता। मार्गरेट जब स्कूल जाने के लिए घर से निकलती तो मुहल्ले से बाहर निकलते ही मनचले युवक तथा बूढ़े आवाजें कसने लगते। इन बातों ने मार्गरेट को यह सोचने के लिए विवश कर दिया कि लोग स्त्रियों के प्रति कितनी कुत्सित धारणायें रखते हैं। एक बार उन्होंने अपनी शिक्षिका से इस सम्बन्ध में कुछ कहा तो उत्तर मिला—'मार्गरेट तुम साइकिल पर चढ़कर स्कूल मत आया करो। लोगों की दृष्टि में यह शरीफ लोगों का काम नहीं है।'

मार्गरेट ने कहा—'क्या आपकी दृष्टि में भी यह ठीक नहीं है।' 'हाँ'—अध्यापिका ने उत्तर दिया-'लोकमत का आदर करते हुए मुझे भी इस विचार को मान्यता देनी ही पड़ती है।'

मार्गरेट उत्तेजित हो गयी-मुझे शर्म आती है टीचर, कि आप जैसी बुद्धिजीवी महिला भी उन अंधी परम्पराओं को मान्यता देती हैं, जिनका कोई लाभ नहीं वरन् कुछ है तो हानि ही है। मैं या अन्य कोई दूसरी लड़की अथवा स्त्री भी साइकिल की सवारी करने से समय की बचत कर ले तो इसमें बुरा क्या है। आप जैसे पढ़े-लिखे लोग ही विवेक का सहारा नहीं लेंगे तो ये अन्ध परम्परायें एक दिन समाज को खा जायेंगी।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षिका हक्का-बक्की रह गयी और उसे मार्गरिट के विचार को मानने के लिए विवश होना पड़ा। दूसरी ओर इस वार्तालाप ने मार्गरिट को एक नया अनुभव दिया। उन्हें अच्छी तरह समझ में आ गया कि नारी समानता के नारे लगाने वाली अँग्रेज जनता वस्तुत: क्या है। उनकी दृष्टि में महिलायें अभी भी दूसरे दर्जे का प्राणी हैं, भले ही वे नारियों के लिए कितने ही भाषण क्यों न देते हों और मार्गरिट ने संकल्प लिया-मैं नारी को दूसरे दर्जे का जीवन जीने के लिए विवश करने वाली समाज व्यवस्था को तोड़कर रहूँगी।

१९०२ में मार्गरिट ने रॉयल यूनिवर्सिटी से संगीत की उपाधि लेकर शिक्षिका का कार्य शुरू कर दिया और इसके एक वर्ष बाद ही जेम्स कजिन्स के साथ उनका विवाह हो गया। नारियों का उनका अधिकार दिलवाने के लिए मार्गरिट स्वयं को अन्दर ही अन्दर से तैयार कर रही थीं। अब यह तैयारी पूरी हुई तो उन्होंने अपने आन्दोलन का प्रथम कार्यक्रम बनाया-महिलाओं को मताधिकार मिले और इस का सूत्रपात भी कर दिया। १९०६ में उन्होंने आयरलैण्ड की तमाम बुद्धिजीवी महिलाओं से संपर्क साधा और उन्हें इस अभियान में सहयोग देने के लिए प्रेरित किया। सरकार ने उन्हें अराजकता फैलाने के अभियोग में कारावास दिया। परन्तु उन्होंने जो चिन्गारी छोड़ी थी, वह अब भड़ककर आग का रूप धारणकर चुकी थी। इसलिए महिला मताधिकार आन्दोलन का दमन नहीं किया जा सका।

जेल की अवधि पूरी होते ही उन्होंने अपना कार्य क्षेत्र बढ़ा लिया और अब नारी जागरण के लिए इंग्लैण्ड भर का दौरा किया। वहाँ की महिलाओं को भी आन्दोलन में भाग लेने का परामर्श दिया, फलस्वरूप वहाँ भी जाग्रति आयी। मार्गरिट कजिन्स ने जिस आन्दोलन का सूत्रपात किया था। वह तो अभी तक चल रहा है परन्तु मताधिकार की माँग लेकर जो संघर्ष छिड़ा था, उसमें विजय न्याय और औचित्य की ही हुई। मार्गरिट को इंग्लैण्ड में जेल की यातनायें भोगनी पड़ीं।

सन् १९१५ में मार्गरिट के पति जेम्स कजिन्स का स्थानान्तर भारत हो गया। उन्होंने अपनी पत्नी से इस विषय में विचार-विमर्श किया तो मार्गरिट खुशी से नाच उठी। वहाँ की महिलायें तो और भी बुरी दशा में जी रही हैं। भारत जाकर मुझे और सेवा करने का मौका मिलेगा।

जहाज से उतरते ही मार्गरिट ने अपना जीवन नारियों के लिए समर्पितकर दिया। मद्रास में स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए उन्होंने भारतीय-महिला-समिति की स्थापना कर ली। दिसम्बर १९१७ की बात है। जेम्स कजिन्स अखबार पढ़ रहे थे। उसमें एक सूचना समाचार के रूप में छपी थी कि स्टेट के सेक्रेट्री एडविन पी० मौटेग्यू इंग्लैण्ड से भारत आ रहे हैं और यहाँ के वायसराय चेम्सफोर्ड से भेंट करेंगे। उनकी यात्रा का उद्देश्य था, भारतीय नागरिकों के राजनैतिक अधिकार बढ़ाने के लिए यहाँ की स्थिति का अध्ययन।

पास में ही मार्गरिट भी बैठी थीं। जेम्स ने मजाक में कहा—अगर चाहो तो तुम यहाँ भी मताधिकार आन्दोलन चला सकती हो। अपनी माँग रखने के लिए बड़ा ही उपयुक्त अवसर आ रहा है।

सारी बात जानकर मार्गरिट ने सचमुच ही निश्चय कर लिया और यहाँ भी महिला मताधिकार के लिए प्रयत्न करने की योजना भी बना डाली। वे भारत कोकिला सरोजिनी नायडू से मिलीं और उनके सामने अपना विचार रखा, सरोजिनी नायडू को इस प्रस्ताव से बड़ी खुशी हुई। उन्होंने कुछ और महिला नेत्रियों को बुलाकर एक शिष्ट मण्डल गठित किया।

१८ दिसम्बर, १९१७ को यह शिष्टमण्डल एडविन मौटेग्यू तथा वायसराय चेम्सफोर्ड से मिला। उन्हें ८०० महिलाओं के हस्ताक्षरों का एक ज्ञापन दिया गया, जिसमें मताधिकार और शैक्षणिक सुविधायें देने की माँग की। मौटेग्यू तथा चेम्सफोर्ड ने इस माँग पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने का आश्वासन दिया और वस्तुस्थिति का अध्ययन करने के लिए साउथ बने की अध्यक्षता में एक जाँच आयोग ने यह रिपोर्ट दी कि भारत में स्त्रियों की ओर से कभी इस प्रकार की कोई माँग नहीं उठायी गयी है।

मार्गरिट को जब इस रिपोर्ट का पता चला तो उन्होंने महिलाओं को आन्दोलन छेड़ने के लिए तैयार किया। स्थान-स्थान पर सभायें आयोजित की और प्रदर्शन, जूलुस निकाले गये। भारतीय-महिला-समिति, महिला स्नातक-संघ, भारत-स्त्री-मण्डल, होमरूल लीग आदि कई संस्थाएँ संगठित होकर साउथबने जाँच आयोग के प्रति प्रतिवेदना का कड़ा विरोध किया और प्रस्ताव पास कर लन्दन की संयुक्त चयन समिति के पास भेजा।

इन सबका परिणाम यह हुआ कि मौटेग्यू-चैम्सफोर्ड सुधारों में महिला मताधिकार को प्रान्तीय सरकारों का विषय बना दिया गया। १९२१ में मद्रास सरकार पर दबाव डालकर महिला मताधिकार का कानून पास करवा दिया गया। मार्गरिट कजिंस की भारत में यह पहली विजय थी। फिर तो भारत के सभी प्रान्तों में इस प्रकार का कानून बनाने के लिए आन्दोलन चला, जो अन्त में सफल हुआ।

फरवरी १९२३ में श्रीमती मार्गरिट की बढ़ती हुई ख्याति और नारी-उत्थान की नेत्री होने के कारण मद्रास के चिंगल पेट जिले के कलेक्टर श्री गैलेट्टी ने उन्हें आनरेरी मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त किया। इस दिशा में महिलाओं के लिए मार्ग खुल सके, इसलिए उन्होंने यह पद स्वीकार कर लिया। सन् १९२६ में मद्रास सरकार ने गवर्नर को महिला-प्रतिनिधि मनोनीत करने तथा स्त्रियों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चुनाव लड़ने का अधिकार दे दिया। अब तो महिलाओं को वोट देने का ही नहीं लेने का भी अधिकार मिल गया। गवर्नर ने प्रथम महिला प्रतिनिधि के रूप में मागरिट को मनोनीत करने का निश्चय किया परन्तु उन्होंने श्रीमती मुथुलक्ष्मी रेड्डी का नाम प्रस्तावित किया। श्रीमती रेड्डी ही भारत की पहली महिला विधायक के रूप में नामजद की गयीं।

महिलाओं को मत देने तथा चुनाव लड़ने का ही अधिकार दिलाकर इनके कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती थी। मागरिट का लक्ष्य तो था स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान समाज व्यवस्था में समानरूप से मिलें। लिंग के आधार पर उनसे किसी प्रकार का भेद-भाव न बरता जाय। इसलिए उनकी सारी गतिविधियाँ नारी-उत्कर्ष को केन्द्र बनाकर संचालित होती थीं। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे भारतीय महिलाओं से निरन्तर सम्पर्क करती रहीं। आन्दोलन के समर्थन में विश्व जनमत तैयार करने के लिए उन्होंने कई बार विदेशों की यात्रा की।

अपनी विचारधारा का प्रचार करने के लिए उन्होंने 'स्त्रीधर्म' नामक मासिक पत्र भी निकाला और कई वर्षों तक इसका सम्पादन किया। पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले लेखों को पढ़कर कई शिक्षित महिलायें नारी-जागरण के क्षेत्र में उतर पड़ीं। महिलाओं को शैक्षणिक सुविधायें दिलवाने के लिये भी उन्होंने काफी प्रयास किया। दिल्ली के लेडी इरविन होम साइन्सकॉलेज की स्थापना करवाने में उनका प्रमुख हाथ था।

संसार भर की शिक्षित और जागरूक महिलाओं को संगठित करने के लिए श्रीमती मागरिट ने सन् १९३१ में लाहौर में पहली बार एशियनबुमनकांफ्रेस बुलायी। जिसकी अध्यक्षता श्रीमती सरोजिनी नायडू ने की थी।

सन् १९४३ तक उन्होंने देश के कोने-कोने में घूमकर नारीजागरण का प्रयत्न किया। परन्तु तभी अचानक पक्षाघात हो जाने से वे असमर्थ हो गयीं। लकवे के रोगी अपनी ही चिन्ता में निमग्न रहते हैं। उन्हें अपने सिवा किसी और का ध्यान ही नहीं रहता परन्तु मागरिट ने अपने रुग्ण शरीर की आवश्यकता से अधिक चिन्ता कभी नहीं की। वे सक्रिय रूप से नारी-उत्कर्ष कार्यक्रमों में भले ही भाग न ले पायी हों परन्तु बिस्तर पर पड़े-पड़े ही उन्होंने महिला-उत्थान को जो बल और गति दी वह सामान्य, स्वस्थ और पुष्ट शरीर व्यक्ति भी नहीं दे सकता।

डाक्टरों ने मागरिट को विश्राम करने का परामर्श दिया था। उनकी सेविकाओं और परिचित सुहृदों ने सब प्रकार की चिन्ता छोड़कर आराम करने के लिए कहा तो मागरिट ने उत्तर दिया—इस अस्थि-चर्म के पुतले को सामान्य सी बीमारी होने के कारण तुम इतने चिन्तित हो। मुझे बड़ा दुःख होता है कि अपना मनोयोग और सब तुम लोग उस समाज के लिए क्यों नहीं लगाते, जिसका आधा शरीर पक्षाघात का शिकार है। शरीर से भले ही मैं कुछ न कर सकूँ, परन्तु मन और मस्तिष्क मुझे सदैव इस बात के लिए प्रेरित करते रहते हैं कि मैं अपनी बहिनों के लिए काम आऊँ।

१५ अगस्त, १९४७ को देश आजाद हुआ तो इस अँग्रेज महिला का चेहरा खुशी से लाल हो गया था, राजनीतिक स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद यहाँ की स्त्रियों की स्थिति में और अधिक सुधार होगा—इस आशा से। इसके ढाई वर्ष बाद ही सन् १९५० में तो वे चल बसीं, परन्तु उन्होंने जीते जी अपना स्वप्न सत्य में परिणत होते हुए देख लिया था। उनके मरने से पूर्व ही भारत के संविधान में महिलाओं को पूर्ण समानाधिकार दे दिया गया था। सन् १९१५ में वे थियोसोफिकल सोसायटी के कार्य में सहयोग देने भारत आयी थीं और जब तक जीवित रहीं—एक-एक क्षण का उपयोग महिला उत्थान के कार्यों में करती रहीं।

निस्सन्देह मागरिट कजिन्स ने बड़े सन्तोष के साथ मृत्यु का वरण किया होगा क्योंकि उनका विश्वास था कि इस देश के नागरिक जो ९० वर्षों तक स्वशासन के लिए निरन्तर लड़ते रहे हैं, स्वयं के आदर्शों और सिद्धान्तों का ईमानदारी से अनुसरण करेंगे। परन्तु हम—भारतीय जनता, अपने संविधान में लिये गये संकल्प का कितनी निष्ठा के साथ पालन कर सके हैं, यह किसी से छुपा नहीं है। जिस भारतीय जनता के प्रति विश्वास कर मागरिट अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में भी मुस्करा उठी थी, उसी मागरिट की आत्मा बेशक खून के आँसू रोती होगी, जब हमारी स्वयं की की हुई प्रतिज्ञाओं को हम स्वयं के ही हाथों टूटती देखती होगी।

निःस्वार्थ एवं कर्मठ सेविका—
इजाबेला थोर्बन

विदेशों में जन्म लेकर भारत की तन, मन, धन से सेवा करने वाली महिलाओं में इजाबेला थोर्बन का प्रमुख स्थान है। यद्यपि इनका शरीर अमेरिका का था पर आत्मा भारतीय थी। प्रारम्भिक जीवन से ही थोर्बन ने भारत को ही अपना घर समझा था। ईश्वर को सबका पिता, सारे संसार को उसका घर मान लेने से भेदभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी कारण से उन्हें मानवमात्र की सेवा में परिवार की सेवा का आनन्द अनुभव होता था। भारत को अपना घर तथा भारतीयों को अपने परिवार का सदस्य मानने वाली थोर्बन आज नहीं है। परन्तु लखनऊ, कानपुर और नैनीताल की अनेक शिक्षण संस्थाएँ उनकी स्मृति दिला रही हैं।

इजाबेला थोर्बन का जन्म अमेरिका में आकर बसे एक आयरिश परिवार में २९ मार्च, १८४० को ओहियो में हुआ। बचपन से ही प्रकृति के सान्निध्य में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। बचपन से ही यह भावुक तथा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कल्पना लोक में विचरण करने वाली बालिका थी। अपने दस भाई-बहिनों के बीच इनका तीसरा स्थान था। किशोरावस्था में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण यह और अधिक भावुक तथा अस्थिर हो गईं। माता समझदार थीं। अतः प्रेम के साथ-साथ सन्तुलित विकास की ओर ध्यान देते हुये उच्च आदर्शों की शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। माता अपनी पुत्री को समझाकर यही कहती 'झूठे आरोप कभी भी दूसरे पर न लगाने चाहिये और न स्वयं पर लगाकर अपराधी वृत्ति को प्रश्रय देना चाहिये। कभी ग्रह भी हो सकता है कि इच्छानुसार परिणाम न निकले, फिर भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक बात का निर्णय लेने से पूर्व अच्छी प्रकार सोचना और समझना चाहिये। बिना तर्क की कसौटी पर कसे जल्दबाजी में किये गये कार्यों से कोई लाभ नहीं होता। लालच और दबाव से कभी न झुको।''

भावुक, कल्पनालोक में विचरण करने वाली तथा खामोश बालिक पर माँ की शिक्षाओं का ऐसा प्रभाव पड़ा कि यथार्थ और आदर्श पर सेतु निर्माण कर शिक्षा-शास्त्री के रूप में समाज के सम्मुख सेवा करने आईं। इनकी शिक्षा विद्यालय और पुस्तकों से सम्बन्ध रखने वाली कम, पर जीवन से सम्बद्ध अधिक थी। कॉलेज की शिक्षा के साथ माँ की शिक्षा को ग्रहण कर थोर्बन ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया। २० वर्ष की आयु में कॉलेज की शिक्षा समाप्त कर अध्यापन, लेखन, समाज-सेवा और चित्रकारी की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया। उस समय थोर्बन का बड़ा भाई भारत में रहकर मिशन-सेवा कर रहा था। भाई-बहिन के बीच पत्रों का आदान-प्रदान होता रहता था। भाई अपने पत्रों में कभी भारत के रसीले और मीठे आमों का वर्णन करता, कभी विभिन्न ऐतिहासिक तथा रमणीक स्थलों की प्रशंसा करता, एक बार तो भारतीय दरिद्रता का चित्रण करते हुए अपनी बहिन के मन में दरिद्र नारायण की सेवा करने की ललक पैदा कर दी थी। बहिन ने पत्रों के माध्यम से ही काफी जानकारी प्राप्त कर ली थी। ज्यों-ज्यों भारत के प्रति उसका आकर्षण बढ़ता गया, उसके अन्दर बैठी समाज-सेविका का ध्यान भारत की ओर खिंचने लगा। वह ऐसे समय की प्रतीक्षा करने लगी, जब उसे भारत जाने का सुअवसर मिले और वहाँ पर दीन-हीन व्यक्तियों की सेवा में लगकर अपने को धन्य मान सके।

सन् १८६६ में थोर्बन के भाई ने भारत में ही एक कन्या विद्यालय स्थापित करने की योजना बनाई, तो उसने अपनी बहिन को पत्र द्वारा यह सूचना दी कि यदि वह विद्यालय का कार्यभार ग्रहण कर सके तो अच्छा है। अगले पत्र में और अधिक स्थिति स्पष्ट करते हुये लिखा—''अभी सोचने के लिये पर्याप्त समय है। यह ध्यान रहे कि देश त्यागना पड़ेगा। परिवार के प्रेम से वंचित होना पड़ेगा। जीवन की सुख-सुविधायें जो आज तुम्हें प्राप्त हैं, यहाँ आकर शायद न मिल सकें। यहाँ तो अशिक्षित और निर्धन परिवारों से ही अपना सम्बन्ध जोड़कर आत्मीयता का परिचय देना होगा। क्या तुम यहाँ की परिस्थितियों को जानते हुए आने की स्थिति में हो ? मेरा अनुमान है कि तुममें यह बीज तो विद्यमान है पर क्या उसे अंकुरित तथा पल्लवित करने की क्षमता रखती हो ?'' और पत्र पाते ही थोर्बन ने उत्तर भी लिख दिया—''भैया ! मुझे दुःख है कि आप अभी तक अपनी बहिन को नहीं समझ पाये हैं। मेरी जीवन की सुख-सुविधाओं के प्रति तनिक भी आसक्ति नहीं है। मैं अपना मन कभी का भारत को समर्पित कर चुकी हूँ और अब बाह्य समर्पण तो एकमात्र दिखावा होगा। जाने कब से भारत आकर सेवा करने का भाव अपने मन में सँजोये बैठी थी। आपका निमन्त्रण ईश्वरीय प्रेरणा है, भला इसकी अवहेलना कैसे कर सकती हूँ। मैं आ रही हूँ, प्रतीक्षा करना।'' और थोर्बन, एक महिला चिकित्सक तथा अन्य छह लड़कियों को लेकर मैथोडिस्ट चर्च में विशेष प्रशिक्षण प्राप्तकर भारत की ओर चल दीं।

१८ अप्रैल, १८७० को लखनऊ के लालबाग में बाजार के बीच एक कमरा लेकर स्कूल की स्थापना की गई। बड़ी कठिनाई से छह बालिकाओं ने प्रवेश लिया। थोर्बन का विश्वास था कि निःशुल्क शिक्षा का महत्त्व शायद लोग न समझें। अतः कुछ फीस अवश्य रखनी चाहिये। अतः निवास तथा वस्त्रों की स्वच्छता आदि के लिये उन्होंने ५ रुपये प्रतिमाह शुल्क निर्धारित कर दिया। प्रातः उठकर घण्टी बजाने से लेकर, विभिन्न विषय पढ़ाने तथा सफाई आदि का सारा कार्य थोर्बन को ही करना पड़ता था, पर वह अधिक परिश्रम तथा कठिनाई से तनिक भी विचलित न हुईं। स्वयं कठोर परिश्रम करती थीं और छात्राओं को भी उसी के अनुरूप ढालने का प्रयत्न कर रही थीं। उन्हें अपने प्रयत्न में बराबर सफलता मिलती गई। चन्दे से इतना धन एकत्रित कर लिया कि एक पुराना मकान खरीद लिया। यही स्कूल बढ़ते-बढ़ते १६ वर्ष में कॉलेज के रूप में ख्याति प्राप्त कर गया।

छात्राओं की संख्या बढ़ने पर १५० रुपये मासिक पर एक अन्य सहायक अध्यापिक की नियुक्ति कर दी गई। धीरे-धीरे सहयोग से ब्लैकबोर्ड, सन्दर्भ पुस्तकें और वैज्ञानिक उपकरण सभी जुट गये। इन्हीं दिनों थोर्बन का स्वास्थ्य खराब हो गया और उन्हें अमेरिका जाना पड़ा। अमेरिका जाकर भी उस विद्यालय की प्रगति के सम्बन्ध में उनके प्रयत्न कम न हुए, बीमारी की स्थिति में भी वहाँ 'लखनऊ-कॉलेज-सोसाइटी' की स्थापना की और विभिन्न कॉलेजों से सम्पर्क स्थापित कर सहायता के रूप में तीस हजार पाउण्ड एकत्रित कर लिये। फिर क्या था—लखनऊ का कॉलेज प्रगति की ओर अग्रसर होने लगा।

नैनीताल के वैसले स्कूल की स्थापना थोर्बन ने ही की थी। कानपुर में भी कन्याओं के लिये एक स्कूल की दो छात्राओं ने प्रथम बार में ही इण्ट्रेन्स की परीक्षा में कलकत्ता विश्वविद्यालय से विशेष स्थान प्राप्त किया था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उनमें एक लीलावतीसिंह भी थीं, जो आज लीलावती मुन्शी के रूप में जानी जाती हैं। अपनी अस्वस्थता की चिन्ता न करते हुए अमेरिका में जब थोर्बन धन एकत्रित करने में लगी थीं, उस समय लीलावती सिंह को भी अमेरिका बुला लिया ताकि कार्य और तीव्र गति से हो सके। लीलावती सिंह को 'लखनऊ कॉलेज' के लिए कितनी ही बार सभाओं में भाषण देने पड़े। एक बार तो अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति हैरिसन भी उस सभा में उपस्थित थे। उन्होंने जब लीलावती के धाराप्रवाह भाषण को सुना, तो यही कहना पड़ा 'थोर्बन भारत में शिक्षा के प्रसार के लिये जो कार्य कर रही हैं, उसका अनुमान इस अकेली महिला वक्ता से आँका जा सकता है।' सन् १८७५ में लखनऊ में हैजा फैल गया। वह चर्च की ओर से आयोजित नर्सिंग सेवा में लग गईं। कोई भी व्यक्ति किसी भी समय द्वार पर आता, उसकी सहायता के लिये तैयार रहतीं। जब कोई छूत की बीमारी का डर दिखाता तो वह मुस्कराकर यही कह देतीं, 'यदि सेवा करते प्राण भी छूट जायें तो इससे बढ़कर और आत्म-सन्तोष क्या हो सकता है ?'

हैजे के प्रकोप के समय रोगियों की सेवा करते रहने पर भी उन्हें कुछ न हुआ। पर जब १९०० में अमेरिका से भारत लौटीं तो एक वर्ष बाद हैजे की शिकार हो परलोक सिधार गईं। मृत्यु से कुछ दिनों पूर्व उन्होंने अन्तरात्मा की पुकार सुनकर अपने एक मित्र से कहा था—''शायद भारत में अब मेरा कार्य समाप्त हो रहा है'' और संसार से विदा होने के बाद सम्पत्ति के नाम पर कुछ पुस्तकें और तीन-चार यूनीफार्म थे। ईश्वर के आदेश से मानव सेवा करने वाली थोर्बन उपहार के रूप में जो अनेक विद्यालय छोड़ गई हैं, वे आज भी उनका यश बढ़ा रहे हैं। भारत इजाबेला थोर्बन की सेवाओं को कभी न भूल सकेगा।

ममता और करुणा की मूर्ति— कुमारी डायन बालेमी

यश और अपयश, विचार एवं भावनाओं को किसी वाहन की आवश्यकता नहीं पड़ती। इनके अपने स्वयं के पंख होते हैं, जिनके सहारे वे वायु में तैरते हुए वन, समुद्र एवं मरुस्थलों को पार करते हुये देश-देशान्तर में भ्रमण किया करते हैं और अपने अनुरूप हृदयों में उतरकर अपना नीड़ बना लेते हैं।

किसी एक देश के निवासी दूसरे देश की दशा एवं परिस्थिति का समाचार पाकर अपनी वृत्तियों के अनुरूप अर्थपूर्ण योजनाएँ बनाते और कल्पना किया करते हैं। आसुरी प्रवृत्ति के प्राणी किसी दूसरे विपन्न अथवा सम्पन्न मानवों से अपना स्वार्थ सिद्ध करने के विविध ढंग निकाल लेते हैं। विपन्नों के विषय में वे समझते हैं कि गरीब तथा परेशान व्यक्ति का मानसिक सन्तुलन ठीक नहीं होता, उनकी बुद्धि भ्रमित एवं आत्मा कमजोर होती है। उनको हर प्रकार से डराकर, धमकाकर अथवा धोखा देकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया जा सकता है, उनका शोषण किया जा सकता है और इस प्रकार विपन्नता के अभिशाप से अकुशल एवं अचुतर प्राणियों को आसुरी प्रवृत्ति के भोगवादी व्यक्ति ठग-ठगकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया करते हैं, उनकी मजबूरी का बेजा फायदा उठाते हैं।

दैवी प्रवृत्तियों से अलंकृत प्राणियों के सोचने का ढंग दूसरा ही होता है। उनकी कल्पना का देवरथ करुणा, ममता, सहानुभूति, सेवा और सौहार्द्र की सम्पत्ति लिये हुये उधर ही जाता है, जहाँ से विपन्न मानवता के कराहने की आवाज आती होती है। दैवी सम्पदा के सरदारों के हाथ में मक्कारी, ठगी, वंचकता तथा अत्याचारिता के शस्त्र नहीं होते। वे तो मनुष्यता के स्वरों में आलाप करते हुये प्रेम की बाँसुरी लिये हुये ही तन, मन, धन से पीड़ित मनुष्यों की सेवा का अवसर खोजा करते हैं। शोषण की घात नहीं लगाते।

इस लम्बे-चौड़े संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक आसुरी तथा दैवी प्रवृत्तियों का प्रसार फैला हुआ है। क्या देश, क्या विदेश और क्या उपनिवेश ? कोई भी इन प्रतिद्वन्द्वी प्रवृत्तियों का ठेकेदार नहीं है। सबमें समान रूप से उभयवृत्तियाँ काम कर रही हैं। अपनी रचना इस सृष्टि में विधाता ने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार किसी विभाजन प्राचीर का निर्माण नहीं किया है। सभी देशों में आसुरी और सभी देशों में दैवी प्रवृत्ति के प्राणी जन्म लेते और अपने कर्मों द्वारा अपना स्वरूप प्रकट करते हुए सुख-दुःख भोगा करते हैं। महानता एवं मानवता का गुण न तो किसी के लिये सुरक्षित है और न किसी के लिये प्रतिबन्धित है। जो चाहे अपने शुभेच्छाओं से उन्हें प्राप्त कर सकता है। हजारों योजनों दूर समुद्रों के पार कहाँ न्यूजीलैण्ड और कहाँ भारत ? किन्तु यहाँ के विपन्नतापूर्ण समाचारों ने हजारों कॉफी हाउसों में से किसी एक में बैठी हुई कुमारी डायना बालेमी को प्रभावित कर दिया। विदेशों में लाखों-करोड़ों लोग नित्य ही समाचार-पत्रों में भारत की गरीबी तथा विपन्नता के समाचार पढ़ते रहते हैं किन्तु सभी तटस्थ तथा उदासीन ही रहते हैं। न कोई प्रभावित होता है और न ध्यान देता है। किसी को किसी की दीनता, दरिद्रता अथवा दयनीयता से क्या मतलब ? मानवता के इन त्रासों से सम्बन्ध होता है उन मानवीय देवताओं को, जिनकी मनोभूमि दया-दाक्षिण्य के सुमनों से सुशोभित एव सुगन्धित रहती है।

दैवीवृत्तियों के व्यक्ति के कान में संसार के किसी कोने की भी पुकार गूँजते ही उनका हृदय द्रवित हो उठता है और वे देश-विदेश की विभाजन रेखा को पार करके किसी दैवी प्रेरणा से परिचालित, उसी ओर सेवा एवं सौहार्द्र का सम्बल लेकर चल पड़ते हैं। उन्हें न

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनका देश रोक पाता है और न स्वार्थ। देव एवं असुरमानवों की केवल यही एक पहचान है कि मानवता की चीत्कार सुनकर कौन बैठा रहता है और कौन उठ खड़ा होता है।

देवीडायनाबालेमी अपने अवकाश के दिनों में योरोप भ्रमण पर जाया करती थीं। उन्हें सैर-सपाटे में बड़ी रुचि थी। अपने धन का बहुत बड़ा भाग वे इसी पर्यटन मनोरंजन पर खर्च किया करती थीं। एक बार इसी तारतम्य में उन्हें भारत में फैली हुई घोर दरिद्रता की गाथा समाचार-पत्रों में पढ़ने के लिये मिली। भारत की विपन्नता का चित्र उनके हृदय में उतर गया। उस भारत का चित्र जो संसार की मानवीय सभ्यता, संस्कृति का आदि-स्रोत रहा है। जिसके ऋषियों, मुनियों और महा-मनीषियों ने जीवन की स्वाभाविक सुख-सुविधाओं को मानवता के कल्याण के लिये तिलांजलि देकर अरण्यालय में रहकर घोर तपश्चर्या की और **''सर्वे भवन्तु सुखिनाः सर्वे सन्तु निरामयाः''** के आशीर्वादों के साथ **''वसुधैव कुटुम्बकम्''** का संदेश संसार को दिया। उस भारत का चित्र जिसमें कभी दूध, दही और मक्खन के सरोवर रहते थे। जिसके खेतों में अन्न ऐसे उपजता था जैसे ऊपर से बरसा हो। उस भारत का चित्र जिसमें द्वार पर आये अतिथि देवता के चरण रजत-झारी से धुलाये जाते थे और जिसको स्वर्णपात्रों में पय-पूर्ण भोजन कराया जाता था। क्रूरकाल के इसी पटपरिवर्तन को देखने और संसार के प्रति भारत की भव्य भावनाओं से साभार कुमारी डायना ने भारत आकर उसकी सेवा का विचार बनाया।

सेवा की भावना आते ही उनके हृदय में विशालता का समावेश हो गया, जिससे उन्हें पर्यटन का अपना मनोरंजन बड़ा ही तुच्छ दीखने लगा। उन्होंने स्वयं ही कहा है कि भारत की गरीबी की गाथा पढ़कर उनका मन सैर-सपाटे से स्वयं हट गया और उन्हें ऐसा लगा मानो जिसे डायना की सेवाओं एवं धन की आवश्यकता दुःखी मानवता को थी, उसने परिभ्रमण में उसे व्यय करके भारी भूल की है।

निदान वे न्यूजीलैण्ड से चलकर बम्बई पहुँचीं और वहाँ की चकाचौंध के बीच भी उन्होंने दुःख-दारिद्र्य एवं दयनीयता से बिलखी हुई मनुष्यता को पहचान लिया। यद्यपि बम्बई में कम आकर्षण न था और वह अपने परिसीमित विभव-विभ्रम में दारिद्रता के वास्तविक रूप को छिपाने का प्रयत्न कर रही थी तथापि कुमारी डायना ने सहानुभूति तथा संवेदना से प्राप्त दिव्य-दृष्टि से उन स्थलों को देख ही लिया, जहाँ उनकी सेवाओं की आवश्यकता तथा सार्थकता थी। विराट् भारत की उस वर्तमान दुरावस्था को देखकर उनके हृदय पर एक गहरा आघात लगा।

कुमारी डायना बम्बई में ही रुक गईं और वहीं एक विज्ञापन ऐजेन्सी की प्रतिनिधि बन गईं। वे अपने अतिरिक्त एवं अवकाश के समय में अनाथालयों में जातीं और तन, मन, धन से अनाथ बच्चों की सेवा करतीं। सेवा-साधना की अतिरेकता से उनके कुमार हृदय में मातृ-ममता का ऐसा स्रोत फूटा कि उन्होंने एक-एक करके ग्यारह बच्चों को गोद ले लिया। अब वे ग्यारह बच्चों की मानस माता थीं। अपनी इन अंगीकृत सन्तानों के पालन-पोषण के लिये उन्हें पर्याप्त समय एवं स्थान की आवश्यकता थी। निदान उन्होंने नौकरी छोड़ दी और अनाथालय के नाम से एक घर बसाने का विचार बनाया।

बम्बई जैसे विशाल एवं संकुलित नगर में मकान कहाँ ? किन्तु देवी डायना की प्रबल इच्छाशक्ति, सद्भावना एवं सदाशयता ने सहायता की और उन्हें पाँच कमरों का एक सुन्दर-सा मकान मिल गया। शीघ्र ही कु. डायना की सुशीलता की सुगन्ध चारों ओर फैलने लगी, जिसके प्रभाव से परमार्थ प्रेमी भ्रमर और मानवता से युक्त हृदयों में प्रसुप्त सद्भावना के पक्षी जाग उठे। एक के हृदय के मर्मान्तिक हुये विचार अन्य मन के सजातीय विचारों को बुला-बुलाकर मूल केन्द्र-बिन्दु के चारों ओर एकत्र कर देते हैं। कुमारी डायना को सहायता एवं सहयोग की कमी न रही।

कुमारी डायना के ग्यारह मनोनीत बच्चों के लिये विभिन्न संस्थाओं से अन्न, धन, दूध, घृत तथा तेल आदि अनेक वस्तुएँ आने लगीं और अनेक डाक्टरों द्वारा स्वास्थ्य सम्बन्धी परामर्श तथा निःशुल्क दवायें मिलने लगीं। इसके अतिरिक्त वे अपनी उस परिवार रूपी संस्था का बहुत-सा खर्च अपने कॉफी हाउस से पूरा करती थीं। उनका यथार्थ सेवा कार्य सुचारू रूप से चलने लगा। अपनी सफलता से प्रोत्साहित होकर कुमारी डायना ने अपने इस सेवा कार्य को स्थायी एवं विकसित रूप देने के लिये ''डोर ऑफ होप सोसाइटी'' नामक एक ट्रस्ट की स्थापना की है, जिसका प्रबन्ध व्यवस्था छह भारतीयों एवं एक अन्य पक्ष बन्धु के हाथ में है।

कुमारी डायना बालेमी जैसी आध्यात्मिक आत्माओं का अपना कोई देश, धर्म व जाति, वर्ण नहीं होता। सारा संसार उनका घर, मानवता, उनकी जाति और सेवा, उनका धर्म होता है, जिसके पुण्य-प्रताप से एक साधारण व्यक्तित्व भी असाधारण बनकर विश्व की महान विभूतियों में अपना स्थान निर्धारित कर लेता है।

कुष्ठ रोगियों की महान सेविका— मेरीरीड

पीड़ित मानवता की सेवा करने वाली महिलाओं में मेरीरीड का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है, उनके द्वारा जो मानव समाज की सेवाएँ हुई हैं। वे स्मरणीय हैं। मेरीरीड ने सन् १८५५ में ओहियों में जन्म लेकर लगभग ५० वर्षों तक भारत में कुष्ठ रोगियों की सेवा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की है। घृणित कहा जाने वाला कार्य उन पर लादा नहीं गया था। वरन् अपनी इच्छा से उसे पसन्द करके पूरा जीवन ही उस ओर लगा दिया।

मेरीरीड की जीवन-वृत्त हमें प्रेरणा देता है कि मनुष्य के जीवन की सार्थकता गिरे हुए व्यक्तियों को उठाने, टूटे हुए दिलों पर सहानुभूति का मरहम लगाने तथा निराश व्यक्तियों में आशा की ज्योति जगाने में है। अन्धकारपूर्ण मार्ग पर भटकते हुए को लक्ष्य की ओर चलने की प्रेरणा देने का कार्य प्रायः समाज सेवक किया करते हैं। उन्हें ऐसे कार्यों में ही आनन्द आता है। बिना यश प्राप्ति की कामना के आजीवन सेवा कार्य करने वाली मेरीरीड का सम्पूर्ण जीवन एक खुली पुस्तक के समान है।

मेरीरीड का जन्म भरे-पूरे परिवार में हुआ था। इनके सात भाई-बहिन थे। प्रारम्भ में लगभग दस वर्ष अध्यापन कार्य किया, फिर सेवा करने की इच्छा हुई तो मिशन के कार्यों से सम्बद्ध हो गईं। १८८४ में मैथाडिस्ट मिशन की ओर से भारत आईं और कानपुर में महिला मिशन के तत्त्वावधान में कार्य करने लगीं। जलवायु परिवर्तन के कारण यहाँ उनका स्वास्थ्य खराब हो गया। अतः चिकित्सा हेतु पिथौरागढ़ नामक स्थान पर जाना पड़ा। यहीं से वे कुष्ठाश्रम देखने गईं। कुष्ठ रोगियों को देखकर उनका हृदय द्रवित हो गया। इन्हें क्या मालूम था कि भविष्य में जीवन के शेष दिन इसी आश्रम में रोगियों की सेवा करने में व्यतीत करने पड़ेंगे। अस्वस्थता के इन महीनों में भी उन्होंने अपना समय बेकार न जाने दिया, वरन् हिन्दी लिखने-पढ़ने का अच्छा अभ्यास कर लिया।

स्वास्थ्य ठीक हो जाने पर मेरीरीड कानपुर लौट आईं, चार वर्ष तक वहीं कार्य करने के बाद कन्या-छात्रावास की व्यवस्थापिका बनकर गोंडा चली गईं। वहाँ पुनः स्वास्थ्य खराब हो गया। अब दीर्घकालीन अवकाश लेकर स्वास्थ्य लाभ हेतु अपने घर अमरीका जाना ही ठीक समझा। पर अभी तक वे अपने जीवन की दिशा निर्धारित नहीं कर पाई थीं। वहाँ कितनों ने उनका निरीक्षण किया पर रोग किसी की समझ में न आ रहा था। एक दिन अचानक ही उनके सीधे हाथ की अँगुली में खुजली शुरू हुई और गाल के ऊपर भी कुछ जगह लाल हो गई। चिकित्सकों ने आपरेशन कर उस लाल चमड़ी को निकाल दिया। पर मेरीरीड को पूर्ण सन्तोष न हुआ। अतः उन्होंने पास के पुस्ताकालय से चिकित्सा विज्ञान की पुस्तकें मँगाकर अध्ययन करना शुरू कर दिया। सिनसिनाटी नामक स्थान के चिकित्सकों ने जब उस रोग की परख न कर पाई तो उन्होंने न्यूयार्क जाकर विशेषज्ञों से परामर्श किया तथा अपने मन की शंका व्यक्त कर दी और उनकी शंका सत्य ही सिद्ध हुई। वहाँ विशेषज्ञों ने एक स्वर में कुष्ठ रोग की घोषणा की।

कुष्ठ रोग की बात सुनते ही मेरीरीड गम्भीर हो गईं। चन्दग आश्रम के कुष्ठ रोगी उनके मस्तिष्क में घूमने लगे। उनकी पीड़ा का स्मरण आते ही उनका दिल बैठने लगा, पर दूसरे ही क्षण उन्होंने अपने को सँम्हाला और चिकित्सक से कहा—'सचमुच यह रोग मेरे लिये वरदान बनकर ही आया है, सम्भवतः इसके पीछे कोई भलाई छिपी हुई है, अब मैं भारत जाकर कुछ रोगियों की सेवा करूँगी।'' युवती की ऐसी बातें सुनकर चिकित्सक दंग रह गये। कुष्ठ जैसे घृणित रोग के प्रकोप होने पर भी उनके मन में जब भय की छाया तक न दिखाई दी, तो उन्होंने भी इस अद्भुत युवती की मन ही मन सराहना की।

आज मेरीरीड ने अपने जीवन के ध्येय को निश्चित कर लिया था। पर इस संकल्प को परिवार के सब सदस्यों को बताना भी उचित न समझा। माँ और भाई-बहिन तो यह आशा लगाये थे कि मेरीरीड भारत ६ वर्ष रह आई है, अब अस्वस्थता की स्थिति में यहीं हम लोगों के पास रहेगी। पर एक दिन अपनी बहिन को मन का भाव बताते हुए उसने कह ही दिया बहिन ! अब मैं पुनः भारत जा रही हूँ, बात यह है कि मुझे कोढ़ हो गया है! अतः वहीं जाकर कुष्ठ रोगियों की सेवा में अपने जीवन को लगा दूँगी। तुम माँ या किसी भाई-बहिन से न कहना अन्यथा उन्हें बहुत दुःख होगा।'' और मेरीरीड ने अपनी माँ को भी बिना कुछ बताये भारत के लिये प्रस्थान कर दिया।

भारत आकर चन्दग कुष्ठ आश्रम में पहुँचीं। यह आश्रम अल्मोड़ा से ५० मील दूर है। आश्रम में पहुँचकर रीड ने समस्त रोगियों को बुलवाया और बड़े ही नम्र शब्दों में निवेदन किया 'भाइयो और बहिनो ! आप जिस रोग से पीड़ित हैं, ईश्वर ने वही रोग मुझे भी देकर आपकी सेवा करने भेजा है। अब मैं आपके ही बीच आप सबकी तरह ही रहूँगी। आप मुझे अपने से ऊँचा, भूलकर भी न समझें।' रीड के इन शब्दों से अनेक रोगी रो पड़े। पर रीड इस आश्रम में दूसरों की सहानुभूति लेने नहीं आई थीं। सेवा करना ही उनका ध्येय था। इस ध्येय की प्राप्ति में उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया।

आश्रम से लगा हुआ ही तो रीड का अपना बँगला था पर उस बँगले में रहने की उन्हें कहाँ फुरसत मिलती थी ? वे तो दिन-रात निरपेक्ष भाव से रोगियों की सेवा में लगी रहती थीं। अब रोगियों से उनका अपनत्व का सम्बन्ध हो गया था। अशिक्षित रोगियों को पढ़ाना-लिखाना, उन्हें धर्म की शिक्षा देना, घावों को धोना, उन पर मरहम लगाकर पट्टी बाँधना, उनके दैनिक कार्यों में सम्मिलित थे। उन्होंने आश्रम का सारा कार्य अब स्वयं सम्भाल लिया था। शनैः-शनैः उसका विस्तार होने लगा, उसमें स्त्री, पुरुष तथा बच्चों के अलग-अलग विभाग स्थापित कर दिये गये। लगभग ७० कुष्ठ रोगी वहाँ रहने लगे। इस रोग के सम्बन्ध में उन्होंने अनुसन्धान कार्य भी शुरू कर दिया। उनकी ही चिकित्सा द्वारा कई रोगियों का रोग बढ़ना बन्द हो गया। कई भारतीय जड़ी-बूटियों का उपयोग भी इस अनुसन्धान कार्य में किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनेक रोगों की भयंकरता को देखकर निराश हो गये थे, उनमें आशा का संचार कर वर्तमान जीवन में ही सन्तुष्ट तथा आनन्दित रहने की प्रेरणा दी। मेरीरीड का रोग भी आगे नहीं बढ़ा, साधारण व्यक्ति जिन रोगियों को देखकर घृणा करते हैं, रीड को उनकी सेवा करने में आनन्द आता था। वे अपने भाग्य की बार-बार सराहना करतीं कि मेरी सेवाओं को यह रोगी स्वीकार कर रहे हैं। सन् १९०६ में इन्हें अपने घर लौटने का अवसर भी मिला, पर जाने से इन्कार कर दिया। सन् १९२० में मेरीरीड को भारत में सेवा कार्य करते ३६ वर्ष हो गये थे। भाई-बहिनों की इच्छा रीड से मिलने की थी। उनको एक बहिन ने पत्र में लिखा भी था 'बहिन ! अब वृद्धावस्था में तो अमरीका आकर हम लोगों के साथ रह लो। भारत में ३६ वर्ष रहकर भी क्या तुम्हारा संकल्प पूरा नहीं हुआ ?''

'बहिन ! क्या अच्छा हो कि अब तुम मुझे भूल जाओ। मैंने संकल्प तो पूरे जीवन के लिये किया था। अभी मेरा कार्य समाप्त भी कहाँ हुआ है ? इस जीवन में तो नहीं पर मृत्यु के बाद परलोक में मिलने की अवश्य कोशिश करूँगी। शायद तुम्हारी इच्छा वहीं पूर्ण हो। अब मैं लौट न सकूँगी, मुझे क्षमा करना''। यह उत्तर था रीड का।

मेरीरीड भारत का सेवा कार्य छोड़कर वापस अमरीका नहीं गईं। कुष्ठ रोगियों की सेवा के लिये उन्होंने अपना परिवार तथा मातृ-भूमि छोड़ दी थी। परिवार के प्रियजनों का प्रेम इस कार्य में बाधक न बने। अतः उन्हें भुला दिया था और उनको भी भूल जाने की सलाह दी थी। अब तो कुष्ठ आश्रम के रोगी ही उनके आत्मीय थे। वृद्ध महिलाओं में माँ तथा अपनी आयु के बराबर वाले स्त्री-पुरुषों में उन्हें भाई-बहिन के दर्शन होते थे। वास्तव में यही उनका परिवार था, जिसकी प्रगति के बारे में वे दिन-रात सोचा करती थीं।

अमरीका में जन्म लेने वाली मेरीरीड में भारत की आत्मा थी। इस मूक सेविका ने लगभग ५० वर्ष कुष्ठ रोगियों की सेवा में लगाये और अन्तिम क्षण तक उनका ध्यान रखा। यद्यपि वे आज हमारे बीच नहीं हैं, परन्तु पर-पीड़ित मानवता के प्रति उनकी जो सेवा भावना थी, वह संसार के समाज-सेवकों तक को प्रेरणा देती रहेगी। अपना जीवन होमने वाली देवियाँ युग-युग तक स्मरण की जाती हैं।

सेवा की प्रतिमूर्ति— मदर टेरेसा

''मिशनरीज ऑफ चैरिटी'' (दया-धर्म प्रचारक) नामक संस्था की संस्थापिका को लोग मदरटेरेसा कहकर पुकारते हैं। माता टेरिसा वास्तव में माता रूप ही हैं। माता का अर्थ किसी सन्तान को पैदा करना नहीं है, मातृत्व का यथार्थ अर्थ है, असहाय एवं असमर्थों की सेवा करना। दुःखी का दुःख दूर करना, अनाथों को शरण देना। मातृत्व का तात्पर्य है, जीवों को दया, सहानुभूति और आश्वासन प्रदान करना। मातृत्व का लक्षण है प्रेम, करुणा और पर-दुःख कातरता। जिसमें यह गुण हैं, वह निश्चय ही माता है। फिर उसने चाहे कोई प्रजनन किया हो या न किया हो। माता टेरिसा में मातृत्व-परक ये सारे गुण अपनी चरमावस्था में विद्यमान थे। इसीलिए यदि लोग उन्हें माता पद से सम्बोधित करते हैं, तो ठीक ही करते हैं। इसमें कोई अन्यथा बात नहीं है।

मदरटेरेसा एक यूगोस्लाव महिला हैं और उनका पहला नाम 'जोगज्हा बोजाग्जहा' था। टेरेसा उनका वह नाम है, जो उन्हें कलकत्ता के लोरन्तो मठ में संन्यास लेने के बाद प्रदान किया गया था। अब से लगभग ३९-४० वर्ष पूर्व वे कलकत्ता आई थीं और सेन्टमेरी हाईस्कूल में अध्यापिका के पद पर नियुक्त की गई थीं।

मदरटेरेसा के हृदय में जन-सेवा की भावनायें हिलोर लेती रहती थीं। अध्यापन के बाद उनके पास जो भी समय बचता था, उसमें वे नगर के विभिन्न भागों में निकल जाती थीं और जन-सेवा द्वारा अपनी आत्मा का अनुरंजन करती थीं। अपने इसी क्रम में उन्होंने देखा कि कलकत्ता के विभिन्न विभागों में ऐसे गन्दे और पिछड़े लोग रहते हैं, जिन्हें मनुष्यता पर यदि कलंक कह दिया जाय तो भी असंगत न होगा। ऊपर से नीचे और बाहर से भीतर तक गन्दगी से लदे होने के साथ-साथ उनमें अपराध, दुर्व्यसन, नशों और अन्ध-विश्वासों की मात्रा भी कम न थी। अशिक्षा, अज्ञान और असभ्यता में क्या स्त्री और क्या पुरुष, क्या बालक और क्या वृद्ध सभी बुरी तरह डूबे हुए थे। माता टेरेसा ने अनुभव किया कि केवल शेष समय में इनकी सेवा करके न तो इन्हें ऊपर उठाया जा सकता है और न इनका जीवन बदला जा सकता है। इनके सुधार और सेवा में सारा जीवन दे देने पर ही कुछ काम हो सकता है।

दुःखी-दरिद्रों की आवश्यकता और उनकी परिपूर्ण सेवा-भावना ने उन्हें आत्म-जीवन में उदासीन बना दिया और मदर टेरेसा ने भरी जवानी में ही आजीवन कौमार्य का व्रत लेकर संन्यास ले लिया। अपने कार्यों, भावों तथा आचरण द्वारा उन्होंने अपने इस अध्यात्मिक संस्कार को चरितार्थ करके दिखला दिया। यद्यपि मठ के नियमानुसार युवती संन्यासियों को रात में देर तक बाहर रहने की अनुमति नहीं थी, किन्तु मदर टेरेसा को इस प्रतिबन्ध से मुक्तकर दिया गया था। लोगों को उन पर और उन्हें लोगों पर विश्वास था।

मदरटेरेसा अपनी सेवा-साधना से जिस उच्च एवं पुनीत मानसिक स्तर पर पहुँच गई थीं, वहाँ से संसार के सारे मनुष्य उन्हें पुत्र रूप में ही दिखलाई देते थे और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अपनी इस धाय, परिचारिका तथा पोषक को सभी लोग माता रूप में देखते थे। इतना ही नहीं यदि यह कहा जाय कि अपनी आत्मिक उन्नति के कारण मदर टेरेसा लिंग भेद तक भूलकर स्त्री-पुरुष दोनों के साथ मिलकर अभेद रूप हो गई थीं तो भी गलत न होगा। इसी विश्वस्त आचरण और उदात्त चरित्र के कारण उन्हें देर तक ही नहीं पूरी रात तक बाहर सेवा कार्यों में रहने की स्वतन्त्रता थी।

तन, मन, आत्मा से उज्ज्वल मदरटेरेसा भारतीय ढंग की एक उज्ज्वल धोती पहने नित्य निकल जातीं और नगर के उन भागों में अपना सेवा कार्य-क्रम चलातीं, जहाँ गरीबी और गंदगी का राज्य होता। अपनी उज्ज्वल वेश-भूषा और उज्ज्वल मूर्ति में उन अन्धेरी बस्तियों में दया का प्रकाश करने वाली देवी-सी लगती थीं। लोग उन्हें देखते ही श्रद्धा से नत-मस्तक और आनन्द में विभोर हो उठते थे। झुण्ड के झुण्ड गरीब और पतित लोग उन्हें घेर लेते थे और अपनी पीड़ा सुनाने लगते थे। मदर टेरेसा सब की सुनती और यथासाध्य सहायता करती थीं।

वे रोगों से कराहते लोगों की सेवा करतीं, उन्हें दवा देतीं और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से दुःख दूर करतीं। वे देखतीं कि बच्चे गन्दे, भूखे और अस्त-व्यस्त दशा में हैं। वे उन्हें पुचकारतीं, प्यार करतीं और अपने साथ लाई चीजें खाने को देतीं। गन्दे वस्त्र उतारकर वे धुले वस्त्र पहना देतीं। जो धोकर अपने साथ लाई होतीं। वे थोड़ी देर बच्चों के साथ खेलतीं-हँसतीं और इस प्रकार उन्हें हँसाकर माता-पिता को यह ज्ञान देकर चली जातीं कि बच्चों को कैसे रखना चाहिए और उनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए ? मदरटेरेसा वहाँ जातीं, जहाँ व्याधिग्रस्त बूढ़े खाँसते हुए राम-राम रट रहे होते। वे गरुतापूर्ण सम्बोधन से उन्हें बुलातीं, हाल पूछतीं और दवा देतीं। वृद्धजन उन्हें केवल माता कहकर बुलाते ही नहीं अपितु ऐसा अनुभव करते जैसे उनकी दिवंगत माता ही उनके रूप में आ गई हो।

वे पतित और अपावन नारियों के बीच जातीं और उन्हें अपनी पवित्रता से प्रभावित करतीं। जीवन के महत्त्व और उसके सदुपयोग की शिक्षा देतीं। उन्हें आजीविका का मार्ग बतलातीं और व्यवस्थित गृहस्थी बसाकर रहने का सुख और सौन्दर्य दर्शातीं। वे लड़ाका, कलहनी और गाली बकने वाली स्त्रियों को स्त्रियोचित शील, संकोच और शालीनता की प्रेरणा देतीं। उनका परस्पर मेल करातीं और लड़ाई, झगड़े से होने वाली हानियों का रूप दिखलातीं। वे अपराधी, दुर्व्यसनी और दुष्टता-ग्रस्त आदमियों से अपना सुधार करने की प्रार्थना करतीं और शराब, चण्डू अथवा चरस आदि नशों का त्याग करने के लिए आत्मीयतापूर्ण आग्रह करतीं।

उनके कामों को देखकर और भी अन्य बहुत से स्त्री-पुरुष उनके साथी और सहयोगी हो गये। यह संख्या धीरे-धीरे दो-सौ के लगभग पहुँच गई। अब तो मदर टेरेसा का कार्यक्रम बड़ी-बड़ी योजनाओं के रूप में विकसित हो चला और वे शीघ्र ही इस योग्य हो गईं कि 'मिशिनरीज ऑफ चेरिटी' नामक संस्था की स्थापना कर सकें। संस्था स्थापित हो गई और निर्देश तथा योजना ले-लेकर सेवक, स्वयंसेवक और धर्म सैनिक दूर-दूर तक फैलकर परमार्थ कार्य करने लगे। मदर टेरेसा के पुण्य और यश की सीमाएँ विस्तृत हो गईं। उनका स्तर सार्वदेशिक हो गया।

उनका सेवा-कार्य बंगाल के कलकत्ता और आसनसोल आदि स्थानों से बढ़कर दिल्ली, आगरा, राँची, झाँसी, अम्बाला, अमरावती और बम्बई आदि महानगरों तक जा पहुँचा, जहाँ उन्होंने पचास-साठ सेवा केन्द्रों की स्थापना की, जिनके अन्तर्गत सैकड़ों बालक-बालिका पाठशालायें, बीसियों अस्पताल और चिकित्सालय, दसियों आश्रम तथा शिशु-विकास केन्द्र खुले और चल पड़े। इनमें सात-आठ तो ऐसे साधन सम्पन्न कुष्ठ चिकित्सालय हैं, जिनमें लगभग दो ढाई हजार रोगियों की सेवा-सुश्रूषा होती है। उनके चलाये अस्पतालों में प्रतिवर्ष हजारों रोगियों को चंगा किया जाता है। आश्रम एवं सहायतागृहों में हजारों बालक-बालिका न केवल आश्रय ही पाते हैं, बल्कि उच्च से उच्चतर शिक्षा भी पा रहे हैं।

मदरटेरेसा के इन महान सेवा कार्यों के लिए मनीला की ''रैमोन मैग्सासे पुरस्कार समिति'' ने उन्हें अठारह हजार डालर का विश्व बन्धुत्व पुरस्कार प्रदान कर उन्हें सम्मानित किया। अभी हाल ही में उन्हें नोबुल पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। मदरटेरेसा ने केवल उस पुरस्कार के ही बल्कि संसार के किसी भी महान से महान पुरस्कार के सर्वथा योग्य ही मानी जायेगी। इसके अतिरिक्त आत्म-शांति, आत्म विकास और परमात्ममिलन जैसा अक्षय परमार्थजन्य पुरस्कार तो उनके लिए सुरक्षित ही है। वह उन्हें मिलना ही है, मिलेगा भी, सभी परमार्थ परम सेवा-भावियों को मिलता है। किन्तु शायद इस पुरस्कार को भी वे जन-सेवा में उसी प्रकार लगा देंगी, जिस प्रकार उन्होंने अठारह हजार डालर का मनीला का रैमोन मैग्सा से पुरस्कार एवं नोबेल पुरस्कार लगा दिया।

समाजसेवी पाश्चात्य नारी रत्न

सेवाधर्म की सच्ची उपासिका

फ्लोरेन्स नाइटिंगेल

क्रीमिया (टर्की) में अँग्रेज और रूसी सेनाओं का युद्ध चल रहा था। प्रतिदिन सैकड़ों सिपाही मरते और घायल होते थे। पर अस्पताली व्यवस्था ठीक न होने के कारण घायलों की चिकित्सा और देखरेख में बहुत-सी त्रुटियाँ रह जाती थीं। इसमें अनेक ऐसे व्यक्ति भी मर जाते थे, जिनकी यदि ठीक व्यवस्था हो पाती तो रक्षा हो सकनी सम्भव थी। जब यह समाचार इंग्लैण्ड के अखबारों में प्रकाशित हुआ तो जनता में असन्तोष की एक लहर फैल गई और सरकार से जवाब-तलब किया जाने लगा कि सिपाहियों की रक्षा के सम्बन्ध में ऐसी उपेक्षा का व्यवहार क्यों किया जा रहा है ? इस पर अधिकारियों की आँखें खुलीं और ४० नर्सों का एक दल युद्ध क्षेत्र में भेजा गया, जिससे वह घायलों की देखरेख में आवश्यक सहयोग दे सके।

. इस नर्स-मण्डली की संयोजिका फ्लोरेंस नाइटिंगेल (सन् १८२०-१९१०) थी, जिसने अपना जीवन स्वेच्छा से इसी कार्य के लिए अर्पण कर रखा था। उसने कार्यक्षेत्र में पहुँचकर देखा कि वहाँ मकान और सामग्री का तो अभाव है, पर घायलों की संख्या बराबर बढ़ती जा रही है। ऐसी दशा में घायलों को तकलीफ होना स्वाभाविक ही था।

जो स्थान फौजी अस्पताल के लिये दिया गया था, वह तुर्क सिपाहियों की रहने की एक पुरानी बैरिक थी। इसमें स्थान तो बहुत था, पर वह सब गन्दी और टूटी-फूटी हालत में पड़ा था। कितनी ही कोठरियाँ ऐसे ढंग से बनी थीं कि उनमें घायल लोगों को लाने-ले जाने में बड़ी असुविधा होती थी। यदि इन सबकी मरम्मत करादी जाती तो उसमें दो सौ नये रोगियों को रखने की व्यवस्था हो सकती थी।

पर इस कार्य के लिए एक बड़ी रकम की आवश्यकता थी, जिसकी मंजूरी उच्चपदस्थ अधिकारियों से लेने में काफी देर लगती। इसलिये नाइटिंगेल ने लेडी स्टेटफोर्ड नामक धनी महिला को लिखा कि वे इस कार्य में सहायता करें। उन्होंने कार्य की महत्ता को देखते हुये इतनी रकम दे दी; जिससे १२५ मजदूर रखकर काम कराया जा सकता था।

पर जब कार्यारम्भ हुआ तो नाइटिंगेल ने अनुभव किया कि इतने मजदूरों से भी कार्य समय पर पूरा नहीं हो सकेगा और शीघ्र ही आने वाले नये घायलों को कष्ट सहन करना पड़ेगा। इसलिए उसने अपनी जिम्मेदारी पर २०० मजदूर और बढ़ा दिए और कार्य को शीघ्र ही पूरा कराके अनेक घायलों की व्यवस्था कर दी। पर जब खर्च का हिसाब हुआ तो लेडी स्टेटफोर्ड ने १२५ मजदूरों से अधिक की मजदूरी देने से इन्कार किया और स्थानीय सैनिक अधिकारी भी इसको देने के लिए तैयार न हुए। इसलिये अन्त में नाइटिंगेल को वह रुपया अपने पास से देना पड़ा। कुछ समय पश्चात् यह भेद इंग्लैण्ड स्थित सेना-मन्त्रालय के अधिकारियों को मालूम हुआ तो उन्होंने उस रुपये की स्वीकृति देकर नाइटिंगेल को वापस किया।

घायल सिपाहियों के लिये इतनी चिन्ता करने वाली नाइटिंगेल इंग्लैण्ड के एक उच्च घराने की पुत्री थी। उसके माता-पिता उसका विवाह किसी बड़े आदमी से करना चाहते थे, जिससे वह आजीवन शान और सुख के साथ रह सके। पर नाइटिंगेल की इस तरफ रुचि नहीं होती थी और वह सदा असहाय-रोगियों की सहायता करने के प्रयत्न में ही लगी रहती थी, इसके लिये युवावस्था से ही उसने इस बात की चेष्टा की, वह 'नर्स का काम सीखकर किसी अस्पताल में यह कार्य करने लगे, पर एक तो उसके माँ-बाप इस कार्य को अपनी सामाजिक स्थिति की अपेक्षा बहुत नीचा मानते थे और दूसरे उस समय तक यह पेशा ऐसी गिरी-पड़ी दशा में था कि इसमें केवल नीची श्रेणी की थोड़ी-सी स्त्रियाँ ही आती थीं। नाइटिंगेल की इच्छा थी कि वह इस पेशे में प्रवेश करके ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करे, जिससे इसे सम्माननीय समझा जाने लगे और उच्च श्रेणी की महिलायें भी उसमें भाग लेने में संकोच न करें। पर उस समय तक इंग्लैण्ड में ऐसी कोई व्यवस्था न थी कि 'नर्स' के काम की अच्छी ट्रेनिंग लेकर उसके सुधार की चेष्टा की जा सके। इसलिए नाइटिंगेल बड़ी कठिनाई से अपने घर वालों की अनुमति लेकर विदेश गई और जर्मनी तथा फ्रांस की प्रसिद्ध संस्थाओं में रहकर इस कार्य की शिक्षा प्राप्त की। वहाँ से लौटकर उसने एक बड़े स्त्री अस्पताल का भार अपने ऊपर लिया और अन्य महिलाओं को इस कार्य के लिए प्रशिक्षित करने लगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.२ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

नाइटिंगेल इस कार्य को न तो वेतन के लालच से करती थी और न उसे सम्मान की अभिलाषा थी। इसके बजाय वह अपने हृदय में एक दैवी प्रेरणा अनुभव किया करती थी कि अगर उसने मानव-जन्म पाकर कोई परोपकार और सेवा कार्य नहीं किया, तो उसका जीवन व्यर्थ ही समझना चाहिये। उसकी इस मनोभावना का परिचय उस पत्र से मिलता है, जो उन्हीं दिनों उसने अपनी एक सहेली को लिखा था—

"इस वर्ष भी कुछ काम न हो सका और न मुझे विश्वास है कि आगे चलकर हो सकेगा। मुझे अपने युवावस्था के जीवन से इसके अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं जान पड़ता कि मेरी आयु का एक-एक वर्ष निष्फल होकर न्यून होता जाता है। मैं कभी किसी कार्य के योग्य न हो पाऊँगी। मेरा जीवन धूल और राख से भी गया-बीता हो रहा है। हे ईश्वर ! मेरा क्या होगा ? इन सब बातों से मेरा निस्तार कैसे होगा ? मुझे कुछ करने का अवसर दीजिये।"

इन वाक्यों से पता लग सकता है कि सेवा और परोपकार की भावना नाइटिंगेल के हृदय को कितना अधिक प्रेरित कर रही थी। उसे न खाने-पीने की कमी थी और न मित्रों तथा मनोरंजन की। वरन् उसके माता-पिता ने उसकी वैराग्य और सेवा-भावना को नापसन्द करके उसे कुछ मित्रों के साथ इटली का भ्रमण करने को भेजा था, जिससे वहाँ के सौन्दर्य-मण्डित दृश्यों और कला आदि को देखकर वह 'उच्चकोटि' के सामाजिक कार्यों में रुचि लेने लगे। पर उसकी परोपकार भावना ऐसी प्रबल थी कि इटली में भी वह सुन्दर दृश्यों का आनन्द उठाने के बजाय वहाँ के सेवाश्रमों का ही निरीक्षण विशेष रूप से करती थी।

यही कारण था कि जब नाइटिंगेल को क्रीमिया के रणक्षेत्र में घायल सिपाहियों की व्यवस्था का भार सौंपा गया, तो वह बड़ी प्रसन्न हुई और इस कार्य को इस प्रकार तन, मन, धन लगाकर करने लगी कि देखने वालों को आश्चर्य होता था। यद्यपि घायल सिपाहियों की समस्या को ठीक तरह सुलझाने के उद्देश्य से उसे इंग्लैण्ड के परोपकारी सज्जनों ने आग्रह के साथ भेजा था, पर रणक्षेत्र में सेना विभाग के अधिकारी अपनी पुरानी आदतों के अनुसार फौजी कामों में किसी स्त्री का दखल देना या उसे अधिक महत्त्व दिया जाना नापसन्द करते थे। इसलिये आरम्भ में ही उसके साथ सहयोग न करने की नीति का अवलम्बन किया। इससे नाइटिंगेल को अपने कार्य की व्यवस्था करने में बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। एक लेखक के कथनानुसार "फौजी अस्पताल में आरम्भ में उसे इतना परिश्रम करना पड़ा, जिसकी एक सम्पन्न घराने की सुकुमार महिला से आशा नहीं की जा सकती। स्थानीय अधिकारियों के असहयोग के भाव को समझकर इस 'वीरांगना' ने प्रतिदिन बीस घण्टे तक काम किया, जिसमें उसे रसोइया, गृह प्रबन्धक, मेहतर, धोबी, गोदाम-रक्षक और सामान ढोने वाला आदि के कर्त्तव्य स्वयं ही पूरे करने पड़े। उन्होंने अपना यह नियम बना लिया था कि चाहे रात को कितनी ही देर क्यों न हो गई हो या सुबह अँधेरा ही क्यों न हो, तो भी अपना दफ्तर का काम समाप्त करके विश्राम करने से पूर्व वह अस्पताल का अन्तिम दौरा करने आती थी। लम्बी, दुबली, पतली आकृति, काला ऊनी वस्त्र पहिने, भूरे बालों पर सफेद टोपी लगाये, हाथ में लालटेन लिये वह रोगियों के बिस्तरों की कतारों के बीच में होकर निकलती थी, तो वे उसे एक स्वर्गीय देवी ही समझते थे। इसलिए सिपाहियों में उसका नाम 'लैम्प वाली लेडी' पड़ गया था और इसी नाम से वह अमर हो गई।"

जैसा सभी सरकारी विभागों की हालत प्रायः देखने में आती है, फौजी अस्पतालों के बड़े अफसर सब सामग्री के होने पर भी उसको व्यवहार में लाने की मंजूरी देने में प्रायः देर लगा देते थे, जिससे रोगियों को बड़ी असुविधा होती थी। ऐसे अवसरों पर नाइटिंगेल अपनी जिम्मेदारी पर उस सामग्री का वितरण कराके रोगियों की सहायता करती थी। जब वह देखती कि किसी छोटी चीज के लिए सेना के रसद विभाग वाले बहुत देर लगा देंगे, तो वह उसे अपने पास रखे 'सार्वजनिक फण्ड' से अथवा अपने वेतन में से मँगवा देती थी, पर घायल लोगों को किसी प्रकार का कष्ट न हो इसका पूरा ध्यान रखती थी।

क्रीमिया के रणक्षेत्र में तरह-तरह की असुविधाओं को सहन करके भी और एक बार स्वयं भयंकर बीमार हो जाने पर भी, नाइटिंगेल ने 'नर्स-विभाग' की एक उत्तम व्यवस्था की कि उसके फलस्वरूप मरने वाले घायलों की संख्या बहुत घट गई। इस सफलता के कारण नाइटिंगेल का नाम इंग्लैण्ड ही नहीं योरोप के अन्य देशों में भी फैल गया और वहाँ के सेना विभाग वाले अस्पतालों की व्यवस्था के सम्बन्ध में उसकी सम्मति माँगने लगे। इंग्लैण्ड में तो उसके वापस लौटने पर स्वयं महारानी विक्टोरिया ने उसका स्वागत किया और जनता ने उसकी सेवाओं के उपलक्ष में ५० हजार पौण्ड की रकम इकट्ठी करके भेंट की। पर नाइटिंगेल ने इसे अपने लिये स्वीकार न करके, उसके द्वारा 'नर्स' के कार्य की शिक्षा देने वाली एक उत्तम शिक्षा-संस्था स्थापित करा दी, जिससे आगे चलकर देश का बड़ा उपकार हुआ।

हमारे देश की स्त्रियों का जीवन सार्वजनिक सेवा कार्यों की दृष्टि से जैसा निरुपयोगी हो रहा है, उसे देखते हुए नाइटिंगेल के जीवन से बहुत कुछ प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं। यह कहा जाता है कि हमारे देश की प्रथा-परम्पराओं के कारण यहाँ की स्त्रियाँ सार्वजनिक सेवा के कार्यों में भाग ले ही नहीं सकतीं। यदि वे ऐसा करें तो उनकी निन्दा होने लगेगी। पर नाइटिंगेल के जमाने में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इंग्लैण्ड की सामाजिक स्थिति भी ऐसी ही संकीर्णतापूर्ण थी। तो भी उसने साहसपूर्वक आगे बढ़कर कार्यारम्भ किया और अपने उदाहरण से सब तरह के भ्रमों का निराकरण करके एक परोपकारमय कार्य को प्रशस्त कर दिया। क्या हमारी महिलायें अपनी एक विदेशी बहिन के उदाहरण से लाभ उठायेंगी ?

जिसने जेलखानों की काया-पलट कर दी— एलिजाबेथ फ्राई

वर्तमान समय में विचारों की व्यक्तिगत स्वाधीनता इतनी बढ़ गई है कि हम लोग इस बात का अनुमान सहज में नहीं लगा सकते कि अब से सौ-सवा-सौ साल से पहले अधिकांश लोगों को किस प्रकार परम्पराओं का ही पालन करना पड़ता था और जो कोई उस लकीर से थोड़ा-सा ही हटता था उसे विरोध, उपहास और बहिष्कार तक सहन करना पड़ता था। आज भी प्रचलित सामाजिक प्रथाओं से विपरीत चलने वालों को अनेक कठिनाइयों और बाधाओं का सामना करना पड़ता है, पर उस समय तो ऐसे व्यक्ति के लिये जीवन-निर्वाह तक करना लगभग असम्भव हो जाता था। फिर भी सिद्धान्त और आदर्श के पक्के व्यक्ति उस समय भी समाज-सुधार के कार्यों के लिये प्राणों की बाजी लगा देते थे और सब तरह के कष्टों तथा हानियों को अंगीकार करके अपने पवित्र संकल्प को पूर्ण कर दिखाते थे। सच पूछा जाय तो आज जिस स्वाधीनता और नागरिक अधिकारों का उपयोग लोग कर रहे हैं, वह ऐसे ही आत्मत्यागी वीरों और वीरांगनाओं के त्याग और तपस्या का परिणाम है।

एलिजाबेथ फ्राई की गणना ऐसी ही महान आत्माओं में की जाती है। अपनी परोपकारी प्रकृति तथा परसेवा की रुचि के फलस्वरूप उसने पतित और पीड़ित एक बड़े मानव-समुदाय के लिये ऐसे सुधार करा दिये, जिनका सुफल आज भी करोड़ों व्यक्ति प्राप्त कर रहे हैं। यद्यपि वह चाहती तो अन्य धनवान लोगों की तरह सुखमय जीवन व्यतीत कर सकती थी और उसके सगे-सम्बन्धी चाहते भी यही थे और उसे दबाते भी थे, पर उसे जन्म से ही ऐसी प्रवृत्ति प्राप्त हुई थी कि बाह्य भोग-विलास, आमोद-प्रमोद, मनोरंजन आदि की तरफ उसका झुकाव नहीं होता था और दीन-दुःखियों की सहायता करने में ही उसे सार जान पड़ता था।

एलिजाबेथ एक धनवान साहूकार की सन्तान थी। उसके लिए साज-सज्जा, शृंगार, नाच-गाने आदि के सब साधन मौजूद थे, पर १७ वर्ष की किशोरावस्था में ही उस पर 'क्वेकर सम्प्रदाय' का प्रभाव पड़ने लग गया, जिनका उद्देश्य बिल्कुल सादा, कठोर जीवन व्यतीत करना और अपने साधनों को सेवा-कार्यों में लगाना होता था। यद्यपि एलिजाबेथ के पिता भी क्वेकर सम्प्रदाय में शामिल थे, पर वे उन 'संसारी' आदमियों में थे, जो सामान्य दान-धर्म करके अपने को 'मुक्त' समझ लेते हैं और साथ ही धन कमाने तथा सुखपूर्वक उसका उपभोग करने में भी अन्तर नहीं पड़ने देते। एक एलिजाबेथ इतनी 'चतुर' और समन्वय करने में कुशल नहीं थी, इसलिए उसने बहुत थोड़े दिनों तक शृंगार तथा नाच-गान का अनुभव करके यह निश्चय कर लिया कि यह मार्ग पाप की वृद्धि करने वाला ही है। मानव-जीवन तभी सार्थक हो सकता है, जब मनुष्य इन प्रलोभनों की तरफ से मन को हटाकर अपने दुर्भाग्ययुक्त भाइयों की दशा सुधारने के लिये अधिक से अधिक प्रयत्न करे।

सबसे पहले उसने गरीब लड़कों को शिक्षा देने के लिये एक छोटा-सा स्कूल खोला, जिसमें सप्ताह में दो बार ७०-८० लड़के आकर पढ़ना-लिखना सीखते थे। कई दरिद्र लोगों के मुहल्लों में जाकर उनकी देखभाल भी करने लगी और खासकर रोगियों को अपनी सेवा का मुख्य विषय बना लिया।

अपने इस सेवा-कार्य में किसी प्रकार की बाधा न पड़े, इसके लिए एलिजाबेथ ने विवाह करने से भी इन्कार कर दिया, पर जब माता-पिता तथा बहिन-भाइयों की तरफ से विशेष दबाव पड़ने लगा, तो उसने जोजेफ फ्राई नामक एक ऐसे युवक से विवाह किया, जिसके विचार उससे मिलते हुए थे और जिससे विवाह से पूर्व यह प्रतिज्ञा करा ली कि वह कभी उसके मानव-सेवा कार्यों में बांधा नहीं डालेगा। यह विवाह सन् १८०० में सम्पन्न हुआ, जब एलिजाबेथ की आयु ठीक बीस वर्ष की थी।

विवाह के पश्चात् भी उसने अपना रहन-सहन बहुत सादा रखा और वह लन्दन में दरिद्र लोगों के मुहल्ले में यह देखने के लिये जाने लगी कि वह किस प्रकार अपने सेवा-व्रत को कार्यरूप में परिणित कर सकती है। इस प्रकार अनुसन्धान और व्यावहारिक कार्य करते हुए शीघ्र ही उसकी दृष्टि जेलखानों में बन्द अभागे प्राणियों की ओर चली गई। उस समय जेलखानों की दशा का वर्णन करते हुए एक तत्कालीन लेखक ने लिखा है—

"कैदियों के साथ उस समय ऐसा व्यवहार किया जाता था, जैसा कि आजकल पशुओं के साथ भी करना बुरा समझा जाता है। उनमें से सैकड़ों भूख से व्याकुल होकर मर जाते थे, छोटे-से स्थान में बहुत से लोग बन्द कर देने से गन्दी हवा से होने वाले रोगों से कुछ का अन्त हो जाता था। एक बार एक जेलखाने में आग लग गई, तो ५४ कैदी उसी में जल मरने के लिये भीतर ही छोड़ दिये गये। स्त्री, पुरुष, हत्यारे, पागल, ऋणी, गिरहकट और बच्चे सब एक साथ भूमि में नीचे बनी हुई सड़ाद से भरी कोठरियों में ठूँस दिये जाते थे, जहाँ न प्रकाश पहुँचता और न कोई बिछाने की वस्तु थी। जो दाम दे सकते थे, उनके हाथ शराब बेची जाती और पीने की मात्रा सीमित नहीं थी।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.४ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

सन् १८१३ में जब एलिजाबेथ 'न्यू गेट जेल' देखने गई तो उसने देखा कि तीन सौ स्त्रियाँ अपने अनेक बालकों सहित फर्श पर अत्यन्त गन्दी अवस्था में पड़ी हुई थीं। न तो उनका कोई श्रेणी-विभाजन था, न उन्हें किसी काम में लगाया गया था। उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक गाली-गलौज करने, लड़ने-झगड़ने और उच्छृङ्खलता से रहने के लिए छोड़ दिया गया था। एलिजाबेथ का हृदय बच्चों की दुर्दशा देखकर विशेष रूप से दया से भर गया। उसने बाइबिल से 'अंगूर के बाग' वाली कहानी पढ़कर सुनाई और प्रार्थना की कि बच्चों को शिक्षित करने की योजना में वे उसके साथ सहयोग करें।

कुछ समय तक पारिवारिक विपत्तियों के कारण इस कार्य को प्रारम्भ करने में असमर्थ रही। पर इससे उसका मन अशान्त रहता था। अन्त में वह घर की व्यवस्था में अपनी बहिन से सहायता लेकर कैदियों के सेवाकार्य में संलग्न हो ही गई। वह पहली बार जब कैदियों में पतित और भयंकर स्त्रियों के पास गई, तब उसके जीवन के लिये खतरा पैदा हो गया। उस समय का वर्णन करते हुए उसने लिखा है—

एक क्षण के लिये स्त्रियाँ आश्चर्य में आकर गुमशुम हो गईं और पीछे हट गईं। वे मुँह फाड़कर मेरी ओर देखने लगीं क्योंकि मैं इतना साहस करके अन्दर घुस आई। इसके बाद वे एक झोंके से मेरी ओर इस प्रकार बढ़ीं जैसे एक शिकार की ओर उत्सुकतापूर्ण जंगली पशु बढ़ते हैं। मैं थोड़ी ही देर में उस घनी भीड़ में इस प्रकार घिर गई कि जेल का सिपाही भी मेरी नजर से ओझल हो गया। वह यह भी न देख सका कि वे स्त्रियाँ मेरे साथ कैसा व्यवहार कर रही हैं ?

पर एलिजाबेथ ने बिना तनिक भी विलम्ब किये एक छोटे बच्चे को जो बुरी हालत में पास ही पड़ा था, बड़े प्रेम से गोदी में उठा लिया और कहने लगी—"बहिनो ! तुममें से बहुत-सी मातायें हैं, मैं भी एक माँ हूँ। मुझे इन बच्चों पर तरस आता है। क्या हम इन छोटे बच्चों की भलाई का कोई काम कर सकते हैं ? क्या तुम्हारी इच्छा है कि ये भी बड़े होकर सचमुच अपराधी बन जायें।"

उसके इस कथन से उन स्त्रियों की ममता को जाग्रत किया और वे अपनी दुष्टता को भूलकर उसके सामने घुटनों के बल बैठ गयीं और सिसक्कर रोने लगीं। एलिजाबेथ का अनुशासन स्वीकार कर १२ कैदी स्त्रियों ने कमेटी बना ली और वहाँ बच्चों की शिक्षा, अपराधियों का श्रेणी-विभाजन, जेलों का निरीक्षण, धार्मिक व उपयोगी काम-काज की भी व्यवस्था की गई। इन सब कार्यों से लोकमत उसके पक्ष में हो गया और शासकों ने एलिजाबेथ के प्रस्तावानुसार इतना सुधार किया कि वहाँ आमूल परिवर्तन हो गये।

इन सुधारों से प्रभावित होकर अन्य योरोपीय देशों ने भी एलिजाबेथ की सलाह से जेलों में सुधार किये। अन्तिम दिनों तक वह निकृष्ट अवस्था में पड़े कैदियों के उद्धार का प्रयत्न करती रही और समाज-सेवा का एक नवीन आदर्श स्थापित कर गयी।

आदर्श गृहिणी और सुन्दर समाज-सेविका—

श्रीमती मेरी जेन वौमन

श्रीमती मेरी जेन वौमन पिट्सवर्ग (पैन्सिलवेनियाँ की बाह्य बस्ती माउण्टलेवनान, में रहती है। इस समय उनकी आयु लगभग चालीस वर्ष की है। उनके तीन लड़कियाँ हैं।

श्रीमती वौमन अमेरिका की कोई विशेष अथवा असाधारण महिला नहीं हैं, किन्तु वे अपने क्षेत्र में बहुत ही लोकप्रिय हैं। उनकी लोकप्रियता का कारण कोई विशेष प्रतिभा, समाज सेवा, दानशीलता अथवा विद्या-बुद्धि नहीं है। उनकी लोकप्रियता का कारण उनकी व उनके घर की वह सुख-शान्ति है, जिसको उन्होंने एक व्यवस्थित एवं सुचारू जीवन-क्रम में ढालकर स्वयं स्थापित किया है। उनका सुखी, शान्त और सन्तुष्ट परिवार देखकर न जाने कितने परिवारों ने अपने परिवार एवं दाम्पत्य-जीवन की खोई हुई सुख-शान्ति फिर पा ली है। अपने गुणों के कारण श्रीमतीवौमन क्षेत्र की महिलाओं के लिये प्रेरक पथ-प्रदर्शिका बनी हुई हैं। यही उनकी विशेषता और यही उनकी महानता है।

अपनी शिक्षा के विषय में श्रीमतीवौमन ने अपनी अनेक परिचिताओं को बतलाया कि उन्हें पढ़ने की बड़ी लालसा थी। अपने माता-पिता के सहारे कुछ शिक्षा पाई भी किन्तु कतिपय पारिवारिक परिस्थितियों तथा विवाह हो जाने से नई गृहस्थी की जिम्मेदारी आजाने के कारण स्कूल छोड़ देना पड़ा। किन्तु कालिज की पढ़ाई पूरी करने की उनकी उत्सुकता ज्यों की त्यों बनी रही, जिसकी तैयारी में वे घर के कामों से निवृत्त होकर निरन्तर अध्ययन करती रहीं। उनके पति ने उनकी इस अध्ययनशीलता को देखकर कालिज प्रवेश का प्रस्ताव किया, किन्तु उन्होंने उस समय वह प्रस्ताव दो कारणों से स्थगित कर दिया। एक तो यह कि उनको मातृत्व प्राप्त होने वाला था, दूसरे वे अपनी रुचि पूरी करने के लिए पति पर व्यय नहीं बढ़ाना चाहती थीं। घर का बजट वे स्वयं बनाती थीं, इसलिए उन्हें पता था कि उनकी पढ़ाई के खर्चे के लिये उस समय पति की कमाई में गुंजाइश नहीं थी।

जब उनकी पहली बच्ची कुछ बड़ी हो गई, तब उन्होंने पढ़ाई का फिर विचार बनाया। पति ने सहर्ष अनुमति दे दी। किन्तु उन्होंने अपने पति से भी आगे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पढ़ने का अनुरोध किया। उनके पति पीटरवौमन ने जिस समय वकालत के प्रथम वर्ष में प्रवेश किया था, उसी समय द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया था, जिससे कि वे देश सेवा के लिए फौज में चले गये और इस प्रकार वे वकालत की पढ़ाई पूरी नहीं कर पाये थे। अब जबकि लड़ाई समाप्त हो गई और पतिदेव घर वापिस आ गये, तो श्रीमती वौमन की हार्दिक इच्छा हुई कि जिस प्रकार मैं अपनी कालिज की शिक्षा पूरी करने के लिये कृतसंकल्प हूँ, उसी प्रकार मेरे पति भी वकालत की शिक्षा पूरी करलें। निदान उन्होंने बार-बार प्रेरणा देकर पति को भी वकालत पढ़ लेने पर राजी कर लिया। पति द्वारा घर के खर्च की व्यवस्था बिगड़ जाने की शंका प्रस्तुत करने पर उन्होंने पढ़ने के साथ-साथ कुछ काम कर लेने की योजना देकर समाधान कर दिया।

निदान श्रीमतीवौमन ने शिक्षा आदि का खर्च चलाने के लिए मैसैटो केमिकल कम्पनी में सेक्रेटरी का काम कर लिया और उनके पति ने विश्वविद्यालय में ही ला-क्लर्क का काम करना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार दो साल तक परिश्रम करके सेंटलुई (मिसूरी) के वाशिंगटन विश्वविद्यालय से अध्यापन प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम पूरा कर लिया और उनके पति ने कठिन परिश्रम से तीन साल के बजाय वकालत की डिग्री दोवर्ष में ही पूरी करली।

शिक्षा पूरी कर लेने के बाद श्रीमती वौमन के पति अनेक कारोबारी संस्थाओं के वकील बन गये। किन्तु उन्होंने पत्नी को नौकरी करने से रोककर परामर्श दिया कि वह अपनी योग्यता का उपयोग समाज-सेवा के कार्यों तथा घर को एक आदर्श घर बनाने में करें। श्रीमती वौमन को अपने पति की इस उदारता से न केवल प्रसन्नता ही हुई, बल्कि प्रोत्साहन भी मिला। उनके पति का यह परामर्श बहुत ही उचित था क्योंकि इस समय तक उनके दो पुत्रियाँ और हो चुकी थीं। उन्होंने सोचा कि वे अपनी तीनों बेटियों को सुयोग्य, सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत नागरिक बना सकीं, तो यह काम भी उनकी एक बड़ी कमाई ही होगी।

श्रीमतीवौमन ने अपने सारे अनावश्यक खर्चे कम कर दिये और इस प्रकार व्यक्तिगत संयम एवं मितव्ययिता के साथ पति की कमाई में बचत की वृद्धि जोड़कर अपने घरवार का निर्माण करने में लग गईं। उनके इस निर्माण में केवल व्यक्तिगत परिवार की सुख-शान्ति का दृष्टिकोण नहीं था बल्कि उन्होंने अपने परिवार को एक ऐसा परिवार बनाने का लक्ष्य बनाया, जो दूसरों के लिये अनुकरणीय हो और इस प्रकार सुन्दर परिवारों द्वारा देश में सुन्दर समाज की परम्परा आगे बढ़े। घर की सफाई से लेकर बच्चों की पढ़ाई तक का सारा काम वे इस प्रकार करने लगीं मानो उन पर कोई बहुत बड़ा राष्ट्रीय दायित्व डाला गया है, जिसे ठीक से न निभाना देशद्रोह होगा।

श्रीमतीवौमन अपनी लड़कियों को स्वयं पढ़ातीं और उन्हें सामाजिक शिक्षा देती हैं। बच्चियों में परिश्रमशीलता लाने के लिए वे घर के सारे कामों में उनको भी शामिल कर लिया करती हैं। वे लड़कियों को स्कूल पैदल ही भेजती हैं किन्तु संगीत, तैराकी, खेलकूद व सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग दिलाने के लिये मोटर में स्वयं अपने साथ ले जाती हैं। वे रात्रि के समय घर में दो घण्टे नियमित रूप से बच्चों की पाठशाला लगाया करती हैं, जिसमें वे उन्हें स्कूल का काम पूरा करने तथा आगे का पाठ तैयार करने में मदद देती हैं। उनकी इस रुचि तथा परिश्रमशीलता के फलस्वरूप उनका घर उस क्षेत्र में एक आदर्श परिवार बना हुआ है, जहाँ अनेक लड़कियाँ तथा गृहिणियाँ गृह-शिक्षा लेने आया करती हैं। श्रीमती वौमन का परिवार एक प्रकार से दूसरों के लिये परिवार प्रशिक्षण की संस्था बन गया है।

बच्चों से पूरी तरह काम लेने के कारण का स्पष्टीकरण करते हुए श्रीमती वौमन नवागंतुकों को बताया करती हैं कि उनका विश्वास है कि बच्चों को जिम्मेदारी सँम्हाला सिखाने के लिए उनसे काम लेना बहुत जरूरी है और इसी तरह वे आगे चलकर न केवल व्यक्तिगत जीवन में सुखी रहेंगे बल्कि समाज की उन्नति में योग देने लायक अच्छे नागरिक भी बन सकेंगे।

घर-गृहस्थी के कामों को नियमित रूप से तत्परतापूर्वक पूरा करने के बाद बचे हुए समय में वे सामाजिक सेवा के कार्य भी करती हैं। वे माउण्टलेवनान में 'न्यू कमर्स क्लब' नामक महिला संस्था की अध्यक्ष हैं, जो बस्ती में बसने के लिए आने वाले नये व्यक्तियों को बस्ती के सामाजिक जीवन का अंग बनने में मदद देती है। वे और उनकी संस्था की सदस्यायें नये परिवारों का बस्ती के परिवारों से परिचय कराती हैं और उनका बेगानापन दूर करने के लिये आगन्तुकों के घर जाकर उनकी आवश्यकतायें पूछती और असुविधायें दूर करती हैं।

रविवार के दिन लगने वाले धार्मिक स्कूलों में पढ़ाने के लिये वे एकत्र होने वाले किशोरों की शिक्षा में पादरी की सहायता किया करती हैं और आवश्यकता पड़ने पर गर्ल्स स्काउटों में मदद के लिये भी जाती हैं। सर्दियों के दिनों में पिट्सवर्ग सेम्फनी आर्केस्ट्रा की ओर से जो सप्ताह का बाल-संगीत प्रशिक्षण चला करता है, उसमें उन्होंने बच्चों को अपनी-अपनी जगह ठीक से बिठाने का सेवाकार्य अपने ऊपर ले रखा है।

बस्ती में बच्चों की एक छोटी-सी पाठशाला और सायंकाल उनके मनोरंजन का कार्यक्रम चलाना उनकी अपनी एक विशेष रुचि है। बच्चों की अपनी पाठशाला में वे पाठ्यक्रम की शिक्षा न देकर सामाजिक, नैतिक तथा नागरिक शिक्षा दिया करती हैं। इस प्रकार घरवार से लेकर छोटे-मोटे अनेक सामाजिक सेवा कार्य करती हुई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रीमतीवौमन अपने पति और बच्चों के साथ बहुत सुखी हैं। अमेरिका को अपनी ऐसी गृहणियों पर बड़ा गर्व है, उसका विश्वास है वे देश की उन्नति में बहुत योग दे रही हैं।

सेवा की प्रतिमा—जेनेबीव

फ्रांस की तरुणी नर्स जेनेबीव के पिता एक फौजी आदमी थे। वे द्वितीय महायुद्ध के अवसर पर मोर्चे पर लड़ चुके थे। उन्होंने अपनी बेटी को युद्ध के अनुभव और वहाँ पर घायल सैनिकों के दुःख-दर्द की कहानियाँ सुनाई थीं।

युद्ध की कथायें और सैनिकों की तकलीफें सुनकर जेनेबीव का हृदय करुणा से भर उठा और उसने नर्स बनकर सैनिकों की सेवा करने का संकल्प कर लिया। पिता के कथनों से उसके हृदय पर उन घायल और बेहोश सैनिकों के चित्र आप से आप बन गये थे, जो अपने दर्द से कराहते हुए माता-पिता और भाई-बहिनों को याद करते हुए तड़पते, चिकित्सा अथवा सहारे के बिना मर जाते हैं। यह अनुमान भी उसके सहज भावुक हृदय में प्रतिबिम्बित होने लगा था।

उसने एक जगह अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा है कि जब मेरे मस्तिष्क में यह विचार आया कि अपने परिवार तथा प्रियजनों से अलग होकर जो सैनिक मातृभूमि तथा मानवता की रक्षा में, रणक्षेत्र में जाकर मौत से जूझते हैं, वे वास्तव में देवता-तुल्य ही होते हैं। उनकी सेवा तथा सहायता करना प्रत्येक देशभक्त का पुनीत कर्त्तव्य है। जो किसी-न-किसी रूप में उनकी कुछ न कुछ सेवा नहीं करता, वह वास्तव में कृतघ्न है और मनुष्य कहलाने योग्य नहीं है। तब मैं अपने को रोक नहीं पाई और नर्स की ट्रैनिंग पूरी करली। उन दिनों इन्डोचीन का युद्ध चल रहा था और मेरी बड़ी प्रबल इच्छा थी कि मैं वहाँ जाकर घायल सैनिकों की सेवा-सुश्रूषा करूँ।

जेनेबीव ने अपनी यह सद्इच्छा अपने माता-पिता पर प्रकट की किन्तु उन्होंने अपनी प्यारी पुत्री को इन्डोचीन जाने की अनुमति नहीं दी। बेचारी जेनेबीव अपना मन-मसोसकर रह गई। उसने घर बैठे-बैठे ही सैनिकों की सेवा करने का मार्ग निकाल लिया। वह उनके लिये मोजे, स्वेटर बुनकर भेजती। उनको अच्छे पत्र लिखती और अपनी सहेलियों से लिखाती। शहर-कस्बे में जाकर सैनिकों के लिये चन्दा इकट्ठा कर लाती और उनकी आवश्यकता की चीजें खरीदकर भेजती। यह सब कुछ करने पर भी उसको सन्तोष न होता। उसकी आत्मा युद्ध के मोर्चे पर जाकर घायलों की सेवा करने के लिये तड़पती रहती। उसने नगर के अस्पताल में नौकरी की तलाश की, जिसमें घायल सैनिकों की सेवा का अवसर मिल सके किन्तु यह संयोग भी उसे प्राप्त न हो सका।

मनुष्य की सच्ची लगन अवश्य पूरी होती है—इस नैसर्गिक नियम के अनुसार जेनेबीव को सैनिकों की सेवा-सुश्रूषा का अवसर संयोगवश एक दिन मिल ही गया। एक बार वह एक ऐसे वायुयान से यात्रा कर रही थी, जो दीनबीन से घायल सैनिकों को निकाल-निकालकर सुरक्षित स्थानों पर पहुँचा रहा था। उस आपातकालीन समय में केवल नागरिक सेवा के विमान मिलना असम्भव था: नागरिक यात्री भी ऐसे ही विमानों में अवसर पा जाते थे, जो किसी-न-किसी रूप में सैनिक-सेवा में लगे हुए थे। इसी विवशता से जेनेबीव को घायलों को ले जाने वाले वायुयान से यात्रा करनी पड़ी थी।

जेनेबीव का वायुयान जिस समय घायल सैनिकों को लेकर उड़ने को तैयार हुआ, तभी उसमें कुछ ऐसी खराबी हो गई कि मरम्मत के लिए उसे खाली कराया गया। घायलों को फिर भूमिगत अस्पताल-शिविरों में भेज दिया गया। जेनेबीव को कोई दूसरा यान उपलब्ध न हो सका और वह एकाकी और असहाय अवस्था में बुरी तरह से घबरा उठी।

किन्तु तुरन्त ही उसने अपने आपको सँभाला और ईश्वर को धन्यवाद दिया कि उसने वायुयान की खराबी के बहाने उसे सैनिकों की सेवा का अवसर देकर इच्छा पूरी कर दी। इस संयोग से जेनेबीव भी माता-पिता की अनुमति के विरुद्ध मोर्चे पर जाने के दोष से बच गई।

वहाँ पर जेनेबीव अठारह हजार सैनिकों के बीच एकमात्र महिला थी। पहले तो वह कुछ डरी और उतने बड़े उद्धत पुरुष-समूह के बीच काम करने में झिझकी किन्तु फिर अपने सच्चे सेवा-भाव एवं कर्त्तव्य से प्रेरित होकर साहस किया, आत्म-विश्वास जगाया और जान हथेली पर रखकर सैनिकों की सेवा में जुट गई। उसने अपने नारी-सुलभ शृंगार को तिलांजलि दे दी और लम्बे बाल कटाकर छोटे करा दिये। इस प्रकार पुरुषों जैसी वेष-भूषा में एक तरुण सैनिक की तरह सैनिकों के बीच घायलों की सेवा करने लगी।

उस समय दीनबीन फ्रांसीसियों का प्रमुख केन्द्र था और दुश्मन की फौजें उसकी ओर तेजी से बढ़ रही थीं। नीचे जमीन में अस्पताल था और ऊपर दिन-रात हवाई हमले हो रहे थे और निरन्तर गोले बरस रहे थे। एक ओर दुश्मन का हमला और दूसरी ओर फ्रांसीसी तोपें, एक भूकम्प का वातावरण बनाये हुये थीं। हजारों सैनिक घायल हो-होकर अस्पताल में आ रहे थे। मोर्चे का बड़ा भयानक तथा वीभत्स दृश्य था। उस हाहाकारपूर्ण स्थल पर अच्छे-अच्छों की हिम्मत टूट जाती थी। किन्तु जेनेबीव एक क्षण के लिये भी न तो भयभीत हुई और न उसने खतरा अनुभव किया। वह जान हथेली पर रखकर केवल अपने सेवा-कार्य में हृदय की इस गहराई के साथ डूबी रहती थी कि उसे उस समस्त रक्त-रंजित हाहाकार का भान ही न हो पाता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके कानों में घायल सैनिकों की कराह गूँजती रहती, आँखों में उनके विकलांग शरीर भरे रहते, हृदय में देशभक्तिपूर्ण विह्वल करुणा तरङ्गित रहती और हाथ किसी-न-किसी सैनिक के घाव धोने, दवा लगाने, पट्टी बाँधने अथवा सिर दबाने में लगे रहते और वाणी अपने देशवासियों को धैर्य बँधाने, उनका हाल पूछने में व्यस्त रहती। उसे इसके सिवाय और कुछ देखने-सुनने की फुरसत ही न थी।

दीनबीनफू में जिस स्थान पर सैनिकों का अस्पताल बना हुआ था, वहाँ सब ओर दलदल ही दलदल था। उस स्थान पर पीने योग्य पानी नहीं मिलता था। पानी के लिये न जाने कितने खतरे पार करके बहुत दूर जाना पड़ता था। बताया जाता है कि जेनेबीव के पहुँचने से पूर्व न जाने कितने घायल सैनिक पानी के अभाव में प्यासे तड़प-तड़पकर मर गये थे।

किन्तु जेनेबीव ने अपनी सेवा के समय किसी सैनिक को पानी के अभाव में मरने नहीं दिया। वह अवकाश पाते ही दिन में अनेक बार दलदल पार करके बहुत दूर से मीठा और अच्छा पानी लाया करती थी। उसने अपने एक माह के सेवाकाल में कभी भी पानी की कमी नहीं होने दी।

पानी लाने के लिये रास्ता सुरक्षित नहीं था, उस पर हर समय शत्रुओं का भय रहता था किन्तु जेनेबीव ने अपने प्राणों की परवाह न करके पानी लाने के अपने कार्यक्रम को कभी बन्द नहीं किया।

उस घमासान के बीच एक अकेली नर्स जेनेबीव ने ऐसी लगन और तत्परता से घायलों की सेवा की कि कहा जाता है कि उसकी देख-रेख में शायद ही सैकड़ों में से एक आध सैनिक मरा हो। अपनी इस सेवा-सुश्रूषा के कारण जेनेबीव 'जीवन की देवी' के नाम से पुकारी जाने लगी।

जेनेबीव जिस यात्रा पर चली थी, वह ज्यादा बड़ी नहीं थी। इसलिये घर से कुछ कपड़े आदि लेकर नहीं चली थी। उसके पास एक जोड़ी कपड़े थे, जिससे उसने अपनी वापिसी से पूर्व इकतालीस दिन काटे थे और इतने दिनों में उसने क्या खाया और क्या पिया, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उस थोड़े से समय में ही उसका बजन अठारह से बीस पौण्ड तक घट गया था। उसने घायलों की सेवा में न केवल खाना-पीना ही भुला दिया वरन् नींद को भी तिलांजलि दी थी और यदि कभी वह परिश्रम से चूर होकर रात में लेटती भी थी तो घायलों के पास ही। न जाने किस समय उसका कोई भाई नींद से चौंककर अथवा पीड़ा से विह्वल होकर बीव बहिन अथवा 'जीवन की देवी' कहकर पुकार दे।

जेनेबीव ने न केवल घायल सैनिकों की सेवा का सुख ही पाया बल्कि शत्रुओं का अत्याचार भी सहन किया। जिस समय दीनबीनफू पर दुश्मनों ने अन्तिम हमला किया, उस समय जेनेबीव भी बहुत सारे सैनिकों के साथ गिरफ्तार हो गई थी और अठारह दिन तक उसे शत्रुओं के शिविर में बन्दिनी होकर रहना पड़ा। उस समय शत्रुओं ने उसे विविध त्रास देकर सैनिक रहस्यों का पता लगाने का प्रयत्न किया किन्तु वे उसकी देशभक्ति एवं आत्मनिष्ठा पूर्ण साहस पर विजय न पा सके। उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं एक नर्स भर हूँ, जो केवल घायलों की सेवा ही किया करती हूँ। यही उसका जीवन-ध्येय है। इसके अतिरिक्त वह कुछ नहीं जानती और यदि कुछ जानती भी होती तो भी न बताती, इसके लिये मेरे प्राण ही क्यों न चले जाते। घायल सैनिकों की कराह सुनकर द्रवित हो उठने वाली कोमल हृदया जेनेबीव शत्रुओं के सामने इतनी दृढ़ हो गई कि वे उसकी निष्ठा से पराभूत हो उठे और उसे मुक्त करने को तैयार हो गये। किन्तु देशभक्त जेनेबीव ने अपने बन्दी भाइयों को छोड़कर जाना स्वीकार न किया और सुना जाता है कि बाद में दुश्मन ने जेनेबीव के सेवा-कार्यों की प्रशंसा सुनकर पुरस्कारस्वरूप उसे और उसके कहने पर सभी बन्दी सैनिकों को छोड़ दिया था।

इस प्रकार कई मास तक कष्ट उठाकर और अपना कर्त्तव्य पूराकर लड़ाई बन्द होने पर जब जेनेबीव पेरिस वापिस आई तो उसका अभूतपूर्व अभिनन्दन हुआ। अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति आइजन होवर ने जेनेवा सम्मेलन के अवसर पर बोलते हुए उसके सम्मान में कहा—"जेनेबीव को वर्ष की सर्वश्रेष्ठ महिला के रूप में सम्मिलित किया जायेगा।" वियतमिन्ह कम्यूनिस्टों ने उसकी चर्चा करते हुये कहा—"जेनेबीव घायल सैनिकों के लिये जीवनदात्री सिद्ध हुई है।" पेरिस में उसकी माता ने अपनी बेटी पर बलिहार जाते हुए बताया कि "मेरी बेटी के पास पहनने के कपड़े भी नहीं थे, उसके पास केवल वही एक जोड़ी कपड़े थे, जो वह पहनकर गई थी। मेरी प्यारी बेटी वास्तव में एक सच्ची सैनिक है।"

अमेरिकी काँग्रेस ने जेनेबीव को एक राज्य-आतिथि के रूप में आमन्त्रित किया और एक विदेशीस्त्री के रूप में अपने इतिहास में उसे प्रथम बार ही सम्मान दिया था। लगभग ढाई लाख अमेरिकनों ने उसको सार्वजनिक सम्मान दिया और जुलूस निकाला। बताया जाता है कि पिछले बहुत सालों से अमेरिका में ऐसा सौहार्द्रयपूर्ण स्वागत किसी राजनैतिक नेता का भी नहीं हुआ था। वह तीन सप्ताह अमेरिका में रोकी गई और जब वाशिंगटन तथा न्यूयार्क में उसका जुलूस निकाला गया, तब सड़कों पर इतनी भीड़ हुई कि तिल रखने को जगह न थी। न्यूयार्क के स्वागत-समारोह में जेनेबीव की प्रशंसा करते हुये इस बात पर बधाई दी कि उसने अपनी सेवा से अमेरिकन नागरिकों तथा सैनिकों के हृदय में एक आदरपूर्ण स्थान बना लिया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.८ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

राष्ट्रपति आइजन होवर वियतनाम-युद्ध में घायल तथा बीमार सैनिकों की सेवा करने के उपलक्ष में जेनेबीव को 'दीनबीन फू की देवी' सम्बोधित करते हुये उसे 'स्वर्णपदक' से सम्मानित किया, जो कि अभूतपूर्व सेवा के बदले शायद ही किसी को दिया जाता है। वियतनामी सेनापति ने उसे विक्टोरिया क्रॉस देकर अपनी भावना व्यक्त की। इस प्रकार अपनी सेवा-भावना के बल पर एक साधारण लड़की जेनेबीव संसार की महान महिलाओं की पंक्ति में जा बैठी।

कुछ समय बाद जेनेबीव ने दीनबीनफू के अपने अनुभव एवं संस्मरण लिखकर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराये, जिससे उसे प्रचुर धन-राशि प्राप्त हुई किन्तु उसने वह सब धन-राशि पेरिस में सैनिकों की सहायता के लिये स्थापित एक संस्था को दान कर दी।

कहना न होगा कि जिस देश में जेनेबीव जैसी सेवा एवं देश-परायण नारियाँ होंगी, वह भला क्यों न संसार में सिर ऊँचा करके सदा-सदा के लिये स्वतन्त्र जीवन-यापन करेगा।

इजराइल की कर्णधार—
श्रीमती गोल्डामेयर

इजराइल विश्व का सबसे अधिक लड़ाकू देश माना जाता है। ऐसे देश में दो विजेता सेनापतियों की उपेक्षा करके जब किसी महिला को प्रधानमन्त्री चुना जाता है, तो निश्चय ही वह ऐसा नाम होना चाहिए, जिसकी महानता को चुनौती नहीं दी जा सकती। संसार की तीसरी महिला प्रधानमन्त्री गोल्डामेयर एक ऐसा ही नाम है, जिसे ७१ वर्ष की आयु में भी इजराइल जैसे संकट से घिरे राष्ट्र की बागडोर सँम्हालने के लिए सर्वथा उपयुक्त समझा गया।

एकदम सादा वेष-भूषा, सीधा-सादा रहन-सहन और सौम्य मुख-मुद्रा पर चेहरा विवेकमय तेज से चमकता हुआ। वृद्धावस्था में भी सशक्त, सुगठित और प्रभावशाली व्यक्तित्व, आत्म-विश्वास और आत्म-गौरव से मंडित गोल्डा अपने देश की एक विश्वसनीय कर्णधार थीं क्योंकि स्वतन्त्र इजराइल की स्थापना में भी उनका बहुत बड़ा हाथ है।

गोल्डामेयर एक स्वयं निर्मित व्यक्तित्व थीं। एक गरीब बढ़ई की बेटी से जीवन आरम्भ कर देश के लिए संघर्ष करते-करते वह प्रधानमन्त्री के पद तक पहुँचीं। पसीने से लथपथ कारीगर पिता मारबोविच को कभी सपने में भी ख्याल न आया होगा कि उसकी बेटी आगे चलकर संसार के एकमात्र यहूदी-राज्य की स्थापना में योग देगी और उसकी प्रधानमन्त्री भी बनेगी। गोल्डामेयर की कहानी अद्भुत साहस, निरंतर कार्यशीलता, संघर्ष और गहरी लगनशीलता की एक कहानी है और इसलिए बिना किसी भेदभाव के संसार भर की युवतियों के लिए एक प्रेरणा भी।

गोल्डामेयर का जन्म रूस के कीब नगर में ३ मई, १८९८ को हुआ। बढ़ई पिता की आमदनी बहुत मामूली थी। गरीबी से तंग आकर कुछ अधिक कमाई की आशा से १९०३ में वे पिस्कनगर में आ बसे थे। जारशाही के उस जमाने में रूस में यहूदियों की दशा बड़ी शोचनीय थी। उन्हें कोई नागरिक अधिकार प्राप्त न था। तरह-तरह के कानून उनके खिलाफ बनाए जाते, उन पर अत्याचार किए जाते, उनसे घृणा की जाती और खुलेआम उनकी बेइज्जती भी की जाती। शहरों में उनके निवास के लिए कुछ अलग गंदी बस्तियाँ नियत थीं। इनसे बाहर रहने की उन्हें इजाजत न थी। इस पर भी गुंडों के आक्रमण उन बस्तियों पर होते रहते थे। हत्या, लूट और बलात्कार के इस खुले माहौल में पुलिस कोई बाधा नहीं डालती थी। गोल्डामेयर अपने बचपन की स्थितियों को याद करके बताती हैं कि उनके पिता घर का दरवाजा बन्द करके उसके पीछे मोटा तख्ता जड़कर रखते थे ताकि गुंडों के आक्रमण से बचा जा सके। इन स्थितियों का प्रभाव उनके बालपन पर बहुत गहरा पड़ा। गोल्डा अपने माता-पिता की आठ संतानों में से तीसरी जीवित संतान थी। यहूदियों की उस समय की दयनीय दशा का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है।

गोल्डा जब आठ वर्ष की हुई तो अच्छे भविष्य की आशा से उनके पिता अमरीका के मिल्बूकी नगर में जा बसे। पिता वहाँ बढ़ईगीरी करते थे और माँ परचून की छोटी-सी दुकान चलाती थी। फिर भी गुजर मुश्किल से ही हो पाती थी। पर अमरीका में बिताए ग्यारहवर्ष गोल्डा के लिए उपयोगी सिद्ध हुए। दसवर्ष की गोल्डा ने अमरीकी किशोरी भगिनी-समाज का संगठन किया। काफी चंदा इकट्ठा करके वह गरीब लड़कियों में पाठ्य-पुस्तकें बाँटती थीं और फिलस्तीन में आकर बसे यहूदियों को धन भेजती थीं। पर अपनी पढ़ाई के लिए फिर भी वह व्यवस्था न कर पाई। १४ वर्ष की आयु में माता-पिता ने गरीबी के कारण पढ़ाई बन्द कर दी तो गोल्डा भागकर डेनवर में अपनी बड़ी बहिन शानता के घर चली गई ताकि अपनी शिक्षा जारी रख सके। वहाँ उसकी भेंट मारिस मायरसन से हुई, जो एक रूसी यहूदी था और उसी की तरह जारशाही के अत्याचारों से पीड़ित हो अमरीका में जा बसा था। किशोरी गोल्डा पढ़-लिखकर शिक्षिका बनना चाहती थी, पर फिलस्तीन को स्वतन्त्र यहूदी राष्ट्र बनाने के स्वप्न ने उसके कार्यक्षेत्र की दिशा बदल दी। वह समाजवाद की व्याख्याएँ करती, छोटी-छोटी सभाओं में भाषण देती और यहूदी संगठनों में सक्रिय भाग लेती। थोड़े ही समय में वह अँग्रेजी तथा यहूदी दोनों भाषाओं में अच्छे भाषण देने लगी थी। ऐसे समय मारिस मायरसन जैसे सामाजिक क्रान्तिकारी का साथ उसे भा गया और उन्नीस वर्षीय गोल्डा ने उससे विवाह कर अपने जीवन का ध्येय निश्चित कर लिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

१९१७ में जब गोल्डा ने यहूदी पायनियर (मुखिया) बनकर फिलस्तीन जाने का निश्चय किया, तो मारिस मायरसन उसके इस निश्चय से सहमत हो गया। दोनों फिलस्तीन जाकर अपने देश के नव-निर्माण में हिस्सा लेंगे, इसी शर्त पर वे विवाह-बंधन में बँधे थे। आखिर १९२१ में गोल्डा अपने पति और अन्य बीस यहूदी युवक-युवतियों के दल के साथ अपने गंतव्य की ओर चल पड़ीं। कठिनाइयों से भरा सफर झेलकर जब वे लोग फिलस्तीन पहुँचे तो वहाँ का जीवन भी बड़ा कष्टकर था। कहीं ऊसर-बीहड़ रेगिस्तानी इलाका, कहीं मक्खी-मच्छर से भरा दल-दल और बेहद गर्मी। अभाव, गरीबी और कठोर श्रम के बीच सामूहिक जीवन की जिम्मेदारी निभाने के लिए गोल्डा मुर्गीपालन का काम करने लगीं। उसे बीहड़ इलाके को हरा-भरा बनाना था और यहूदी राज्य की स्थापना के स्वप्न को साकार करना था, तो फिर कठिनाइयों से क्या डरना ? अपनी योग्यता, लगन और कर्मठता से गोल्डा मे शीघ्र ही सबका ध्यान अपनी और आकर्षित कर लिया। एक वर्ष बाद ही वह यहूदी मजदूर संघ के लिए प्रतिनिधि चुन ली गईं।

राजनीति में गोल्डा का यह पहला कदम था। इसके बाद तो कदम बढ़ते ही गए। अपने परिवार और पति के विरोध के बावजूद गोल्डामेयर पार्टी के काम में डूबती गईं। 'महिला मजदूर कौन्सिल' की मन्त्री के नाते अन्तर्राष्ट्रीय-सम्मेलनों में भाग लेने से तो उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी। 'किवल' के कठोर जीवन को सहन न कर सकने पर उनके पति बीमार हो गए थे, तो वे पति को लेकर तेलअबीव और फिर वहाँ से येरूशलम चली आई थीं, पर एक मजदूर नेता के रूप में उनका व्यक्तित्व निरन्तर उभरता चला गया था। कठिन से कठिन क़ाम करने और हर जोखिम उठाने के लिए वे सदा तैयारी रहतीं। सैद्धान्तिक प्रश्नों पर उन्हें झुकाना आसान न था। महात्मा गाँधी के सत्याग्रह सिद्धान्त पर उनकी श्रद्धा थी। १९४६ में यहूदी शरणार्थियों से लदा जहाज जब इटली के एक बंदरगाह पर बन्दी बना लिया गया तो गोल्डामेयर ने इसके विरोध में अनशन कर दिया। फिलस्तीन के अनेक यहूदी इस उपवास में उनके साथ सम्मिलित हुए थे।

फिलस्तीन पर उस समय संयुक्त राष्ट्रसंघ की ओर से ब्रिटेन शासन कर रहा था। यहूदियों की समस्त माँगें इस सरकार के सामने गोल्डा ही रखती थीं। देश के लिए हर खतरा उठाने की उनकी एक मिसाल है। १९४९ के अरब-इजराइली युद्ध के दौरान गोल्डा ने अरब औरत का भेष बनाया, बुरका पहना और जोर्डन पहुँच गईं। यात्रा पूरी तरह संकटों से घिरी थी। एक जगह उनका नौजवान ड्राइवर भी कार छोड़कर जान बचाकर भाग खड़ा हुआ, तो गोल्डा ने अकेले ही आधी रात के समय वह सुनसान पहाड़ी रास्ता तय किया और पहरेदारों को चकमा दे सीमा पारकर गईं। उद्देश्य था, जार्डन के शाह अबुदुल्ला से बात करके उन्हें युद्ध में भाग लेने से रोकना। पर शाह ने अपने पूर्व वचन की रक्षा करने से इन्कार कर दिया और गोल्डा को किसी तरह जान बचाकर वापस इजराइल लौटना पड़ा। यह वचन गोल्डा ने १९४७ में उनसे लिया था। इजराइल की स्थापना १९४८ में हुई थी। इसके शीघ्र बाद ही इस युद्ध में आत्म-रक्षा के लिए यहूदियों को शस्त्रास्त्रों की आवश्यकता हुई, सो वह इसके लिए चन्दा इकट्ठा करने अमरीका पहुँचीं और वहाँ से पाँच करोड़ डालर के अस्त्र-शस्त्र लेकर इजराइल लौटीं।

इस तरह के साहस भरे अद्भुत कार्यों से गोल्डा ने सब देशवासियों का मन जीत लिया था। देश के महान नेताओं में उनकी गणना होती थी। राष्ट्र के संविधान पर हस्ताक्षर करने वालों में एक नाम उनका भी था। फिर उन्हें इजराइली राजदूत बनाकर रूस भेज दिया गया। चालीस वर्ष पूर्व जारशाही के अत्याचारों से बचने के लिए जिसने निर्धन लड़की के रूप में वहाँ से प्रस्थान किया था, वही अब स्वतन्त्र यहूदी-राज्य की राजदूत की हैसियत से वहाँ पहुँचीं। कुछ कट्टरपंथी यहूदियों ने नारी के नाते इस पद पर उनकी नियुक्ति का विरोध किया। पर देश का जाग्रत युवावर्ग गोल्डामेयर की क्षमता पर पूरा विश्वास करता था, इसलिए उनके साथ था। दो वर्ष बाद रूस से लौटने पर गोल्डामेयर को इजराइल की प्रथम सरकार में श्रममन्त्री का पद सौंपा गया। श्रमिक नेता पर अब देश की श्रमनीति के संचालन का भार भी आ पड़ा था।

सारी दुनिया से प्रतिदिन हजारों यहूदी इजराइल में बसने के लिए आ रहे थे। गोल्डामेयर पर काम का पहाड़ आ पड़ा। यहूदी शरणार्थियों के पुनर्वास और रोजगार की समस्या हल करने के लिए उन्होंने बहुत बड़े पैमाने पर गृह-निर्माण की और जन-कल्याण की योजनाएँ बनाईं। दल-दल और ऊबड़-खाबड़ जगहों में सड़कें बनाने के लिए हजारों-लाखों श्रमिक काम में जुट गए। देश का निर्माण हुआ और शरणार्थियों को काम और पुनर्वास मिला।

१९५६ में गोल्डामेयर को विदेश मन्त्री का पद सौंपा गया। नए घरों, सड़कों, उद्योग-धंधों के निर्माण में रुचि लेने वाली गोल्डा को अनिच्छा से श्रममन्त्री का पद छोड़कर विदेश मन्त्री का दायित्व सँभालना पड़ा। क्योंकि प्रधानमन्त्री बेन गुरियन और विदेश मंत्री मोशे शारेन में मतभेद हो जाने के कारण शारेन को त्यागपत्र देना पड़ा था। पर नया क्षेत्र होने पर भी विदेश मंत्रालय और राष्ट्रसंघ में गोल्डा ने जिस कुशलता का परिचय दिया, वह उनकी अध्ययनशीलता, श्रमनिष्ठा और लगन का प्रमाण है। ७ मार्च, १९६८ से इस वीर-धीर महिला ने चारों ओर से शत्रुओं से घिरे इजराइल की बागडोर जिस मजबूती के साथ थाम ली थी, जो उनकी वृद्धावस्था को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

देखते हुए यह एक आश्चर्यजनक घटना है। एक सैनिक नारी वृद्ध होकर भी सैनिक ही रहेगी, देश-रक्षा के लिए चाहे जान ही क्यों न जोखिम में डालनी पड़े। इस बागडोर को थामते उसके हाथ काँपेंगे नहीं। पर यह सैनिक नारी एक शांतिप्रिय नारी थी। यह बहुत कम लोग जानते हैं कि अपने युद्धग्रस्त देश में वे शान्ति चाहती थीं, लेकिन वह शान्ति गौरवपूर्ण हो। वे चाहती थीं कि अरब यहूदियों से घृणा करना छोड़ दे। जब तक मानव-मानव के बीच घृणा के बीज अंकुरित होते रहेंगे, संसार में शान्ति असम्भव है, इस तथ्य को वे बड़े दुःखों के साथ महसूस करती रहीं।

ऊँचे से ऊँचे पद पर पहुँचकर भी गोल्डामेयर को अभिमान कहीं छू तक नहीं पाया। वे एक सच्ची मानव थीं, स्वयं को मानव-परिवार का सदस्य समझती रहीं और मानवीय आदर्शों की स्थापना के लिए बेचैन रहीं। रूसी दूतावास में रहते समय छोटे-बड़े सभी कर्मचारी उनके साथ एक जगह बैठकर खाना खाते थे। जिन बीस तरुण-तरुणियों के दल के साथ उन्होंने इजराइल भूमि में प्रवेश किया था, उनसे तथा उनके वंशजों से उनके पारिवारिक स्नेह-सम्बन्ध रहे हैं। इस विशाल परिवार को वे स्वाधीन देश का निर्माता मान उसका आदर करतीं और उनके दुःख-सुख में निरंतर हाथ बँटाती थीं। इसी तरह जब भी, जहाँ भी उन्होंने काम किया, उस दफ्तर के सारे कर्मचारी उनके लिए परिवार के सदस्यों की तरह रहे। गोल्डामेयर के पति का देहान्त १९५१ में हो गया था। यद्यपि वे एक बेटे और एक बेटी की माँ थीं, पर उनका परिवार यही नहीं था। वे पूरे देश की माँ थीं। लोग उन्हें प्रधानमन्त्री गोल्डा नहीं, 'हमारी गोल्डा' कहकर सम्बोधित करते हैं। यही लोकप्रियता उनकी योग्यता को बल देकर सफलता के मार्ग पर दिन-प्रतिदिन अग्रसर होती रही।

मानव-जाति की महान सेविका— क्लेरा बर्टन

मानव-समाज की महान सेविका क्लेरा बर्टन एक अमेरिकन महिला थीं। उनका जन्म पच्चीस दिसम्बर अठारह सौ इक्कीस में न्यू इंग्लैण्ड के एक फार्म पर हुआ था। उनके पिता अपने युवाकाल में एक सैनिक थे।

पिता की बड़ी इच्छा थी कि उनकी बेटी क्लेरा बर्टन एक बुद्धिमती और प्रतिभाशालिनी समाजसेविका बनकर ख्याति प्राप्त करे। किन्तु उन्हें अपनी यह इच्छा सफल होते नहीं दीखती थी। कारण यह था कि क्लेरा अपने बचपन में बड़ी ही शर्मीली, दब्बू और संकोचशील लड़की थी। वह न तो किसी के पास बैठती थी और न बात करती थी। वह बहुधा दिन भर मौन रहकर एकान्तवासिनी बनी रहती थी।

क्लेरा बर्टन जब तक छोटी रहीं तब तक तो उसके पिता उसका बाल सुलभ स्वभाव समझकर कुछ चिन्तित न हुये। किन्तु बहुत कुछ सयानी हो जाने पर भी क्लेरा बर्टन के स्वभाव में सामाजिकता न आई और वह उसी प्रकार मूक बनी रही, तब वे चिन्तित हुए बिना न रह सके। उन्हें विश्वास हो गया कि हो न हो, उनकी बेटी की मानसिक बनावट में कोई कमी है, जिससे उसका मनोविकास रुक गया है। यदि इसका उपाय अथवा उपचार न कराया गया, तो उनकी बेटी एकान्तवासिनी होकर अपनी जिन्दगी बर्बाद कर लेगी।

क्लेरा बर्टन के पिता ने अपने अनेक हितचिन्तक मित्रों से इसकी चर्चा की और सभी ने उसे किसी मानसिक चिकित्सक को दिखाने की राय दी। निदान क्लेरा को एक मानस-विज्ञानवेत्ता चिकित्सक को दिखाया गया।

चिकित्सक ने क्लेरा बर्टन को बतलाया कि उसमें किसी प्रकार की मानसिक कमी नहीं है। कमी केवल यह है कि वह जरूरत से ज्यादा मौन रहती है और एकान्त में रहना पसन्द करती है, जिससे उसकी वांछित मुखरता एवं चपलता कुण्ठित हो गई है।

इसका उपचार बतलाते हुए चिकित्सक ने आगे बतलाया कि वह सामाजिक बने और अपने कार्य का क्षेत्र घर से निकलकर बाहर चुने। ऐसा करने से उसकी संकोचवृत्ति स्वतः दूर हो जायेगी और उसके मन की क्रियायें मुखर हो उठेंगी और एक बात तो हमेशा याद रखे कि जब कभी पर-सेवा अथवा परोपकार का कोई अवसर उसके सामने आवे तो अपने कर्त्तव्य से कभी विमुख न हो। परसेवा और परोपकार कार्यों में उनकी ऐसी विशेषता होती है कि वे मनुष्य की आत्मा में आत्मविश्वास का आलोक भर देते हैं। आज जो उसमें आत्मविश्वास एवं सामाजिकता के साहस की कमी है, वह केवल उसके निरन्तर अन्तर्मुखी होने के कारण पैदा हो गई है, जो कि समाज सेवा एवं परोपकार के छोटे-मोटे कार्यों से दूर हो जायेगी।

क्लेरा बर्टन ने मनोचिकित्सक की शिक्षा गाँठ-बाँध ली और उसके अनुसार ही अपना जीवन संचालित करने का निश्चय कर लिया। उसने सोच लिया कि अब घर से बाहर निकलकर समाज में घुलकर मिलेगी। समाज में उपहास अथवा अपमान की आशंका निराधार है, यह उसकी मानसिक कमजोरी है, कमी है जिसको वह अधिकाधिक समाज में सेवा के भाव से घुसकर दूर करेगी।

क्लेरा बर्टन का परिवार एक सैनिक परिवार था। उसके पिता ने युद्ध सम्बन्धी बहुत-सी कहानियाँ उसे सुनाई थीं। जिसमें से उसे नर्सों की सेवा की कथायें बहुत पसन्द आती थीं। उसका विश्वास बन गया था कि एक नर्स न केवल रोगी तथा घायल सैनिकों की सेवा करके राष्ट्रसेवा ही करती है अपितु इस माध्यम से ईश्वर की

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सेवा भी करती है। साथ ही पीड़ितों तथा दुःखियों की सेवा करते-करते उसकी आत्मा में दया, करुणा, संवेदना, सहानुभूति तथा मातृत्वभाव का स्फुरण हो जाता है, जिससे उसके जीवन में एक स्थायी शान्ति निवास करने लगती है।

अपने इसी विश्वास से प्रेरित होकर क्लेरा बर्टन ने सबसे पहले उपचर्या का प्रशिक्षण लेना प्रारम्भ किया। पहले-पहले जब वह घर से निकलकर समाज में आई तो उसकी संकोचशीलता अनेक दिनों तक उस पर आक्रमण करती रही, किन्तु उसकी इस कल्पना ने उसके पैर नहीं जमने दिये कि वह एक अच्छी उपचारिका बनकर जिस समय अपनी सेवा से रोगियों तथा घायल सैनिकों की पीड़ा कम करेगी तो उसे कितना सन्तोष, कितनी शान्ति और कितना सुख मिलेगा। अपने परिवार, अपनी माँ-बहनों से राष्ट्रसेवा के लिये दूर अस्पताल में पड़े सैनिक उसे बहिन के रूप में पाकर कितने प्रसन्न होंगे, कितना स्नेह और श्रद्धा करेंगे। वह उनकी पीड़ा हटायेगी और उनसे युद्ध के संस्मरण सुन-सुनकर अपना ज्ञान-वर्धन करेगी और आगे चलकर युद्ध की विभीषिकाओं से सचेत करते हुए मनुष्य जाति को युद्ध में विरत करने के लिए यथासाध्य प्रयत्न करेगी।

उसने उपयोगी विचारों को नीचे से ऊपर पहुँचाया, जिससे नर्सिंग प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को तो विकसित एवं विस्तृत कर दिया गया बल्कि वह डाक्टरों की सहायिका एवं परामर्शदात्री बन गई। अपने विचारों की मान्यता तथा समादर से क्लेरा बर्टन को इस क्षेत्र में अधिकाधिक विकास के उपाय सोचने में रुचि बढ़ गई, जिससे उसने डाक्टरों को ऐसी दवा बनाने की आवश्यकता बतलाई, जो घायलों के जख्मों को बिगाड़ देने वाले कीड़ों का विनाश कर सके। चिकित्सकों ने इस आवश्यकता का समर्थन किया और वैज्ञानिकों ने उस दवा की खोज कर डाली, जिससे संसार के लाखों-करोड़ों रोगी घावों में कृमि उत्पाद से बचकर शीघ्र ही चंगे होने लगे। क्लेरा बर्टन की यह एक बहुत बड़ी मानव-सेवा थी, जिसके लिए आज तक उसका नाम चिकित्साशास्त्र के विकास में योगदान करने वालों के इतिहास में लिखा जाता है। सद्भावना एवं व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर दिये गये छोटे-छोटे उपयोगी परामर्श एवं सुझाव भी बड़े-बड़े काम सम्पादित कर देने में सफल हो जाते हैं।

क्लेरा बर्टन के समय में घावों की दुर्गन्ध एवं वीभत्सता के कारण उनको धोने के डर से बहुत कम नारियाँ नर्स बना करती थीं। क्लेरा बर्टन ने अपने प्रयत्नों से केवल सुधार ही नहीं कराया बल्कि घायलों के जख्म धोने तथा उनकी मरहम-पट्टी करने के लिये उपचारिकाओं के संगठन बनाये। उसने हजारों सैनिकों के घाव स्वयं धोये और अपनी प्रेरणा से अन्य स्वयंसेविका नर्सों के हृदय से जुगुप्सा का भाव दूर किया, जिससे देश को आसानी से नर्सें मिलने लगीं और घायलों की परिचर्या सुचारू रूप से होने लगी।

इन सब सेवाओं के अतिरिक्त क्लेरा बर्टन ने जो सबसे महत्त्वपूर्ण मानवसेवा का कार्य किया, वह यह कि उन्होंने एक ऐसा ब्यौस-ब्यूरो स्थापित किया, जिसमें युद्ध के समय खो जाने वाले सैनिकों का लेखा-जोखा रखा जाता था। इसके पहले ऐसी कोई व्यवस्था न थी, जहाँ से मरे अथवा खोये सैनिकों की सूचना पाई जा सकती हो।

क्लेरा बर्टन ने अस्पतालों में एक ऐसा कार्यालय स्थापित कराया, जिसमें अस्पताल के रोगियों का रिकार्ड रखा जाता था, जिसके आधार पर उनके स्वास्थ्य तथा सुरक्षा के बावत सूचित किया जा सकता था।

क्लेरा बर्टन ने अपने खोज ब्यूरो की सेवा से न जाने कितने खोये हुए सैनिकों के ठिकाने उनके सम्बन्धियों को बतलाये और इस प्रकार हजारों बिछुड़े हुओं को मिलाने का श्रेय प्राप्त किया।

इस प्रकार एक लम्बे समय तक सेवा करने के बाद क्लेरा बर्टन विश्राम के लिए योरोप गईं। वहाँ उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास संस्था से सम्पर्क स्थापित किया। ऐसा करने से उन्हें यह पता चला कि संसार के लगभग सभी राष्ट्र इस संस्था द्वारा मानवता की सेवा कर रहे हैं किन्तु उनका अपना देश संयुक्त-राज्य-अमेरिका ही उसका सदस्य नहीं है। उन्हें इस बात पर बड़ा खेद हुआ। उन्होंने अपने प्रयत्नों तथा प्रेरणाओं से अमेरिका को उसका सदस्य बनवाया, जिसके उपलक्ष में अमेरिका ने उसे अपनी रेडक्रास संस्था का प्रथम अध्यक्ष बनाया। अनेक वर्षों तक उस पद से मानवता की सेवा करने के बाद क्लेरा बर्टन सन् १९१२ में स्वर्ग सिधार गईं।

पिता के सिद्धान्तों के प्रति समर्पित— कुमारी अन्ना फ्रायड

मनोविज्ञान के क्षेत्र में सिगमंड फ्रायड की उपलब्धियाँ बहुत महत्त्वपूर्ण रही हैं। उन्होंने अपने चिन्तन के आधार पर पिछले सत्तर वर्षों में जो विचार मनोविज्ञान जगत को प्रदान किये हैं, उनसे देश-विदेश के अधिकतर विचारक प्रभावित हैं। बाल-यौनेच्छा, स्वप्न-विज्ञान तथा अचेतन मन के ऐसे अनेक सिद्धान्त हैं, जो पिछले वर्षों से चर्चा के विषय बने हुये हैं। मनोविश्लेषण की प्रक्रिया और उसके सिद्धान्त के तो फ्रायड जनक ही माने जाते हैं। पर आज के बलदते युग में उनके सिद्धान्तों को अप्रासंगिक माना जाने लगा है। यह विचार किसी मनोवैज्ञानिक अथवा सामान्य व्यक्ति के नहीं हैं वरन् पिछले दिनों न्यूयार्क में मनोविश्लेषण संस्थान के अन्तर्गत फ्रायड भाषण माला का आयोजन किया गया था, जिसमें विचार व्यक्त करते हुए उनकी प्रिय बेटी कुमारी अन्ना फ्रायड ने ही इस तथ्य को स्वीकार किया था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.१२ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

कुमारी अन्ना फ्रायड की आयु आज इकहत्तर वर्ष है। उनके पिता को यह विश्वास प्रारम्भ से ही था कि उनकी बेटी अन्ना अवश्य इनके छोड़े हुए कार्य को आगे बढ़ायेगी। बचे हुए समय में फ्रायड अन्ना को मनोविज्ञान की अनेक आवश्यक जानकारियाँ दिया करते थे। मानसिक रोगियों से चर्चा के समय अन्ना पास बैठकर सूक्ष्म दृष्टि से उनका अध्ययन किया करती थीं। फ्रायड ने अपने पुत्र अर्नेस्ट को इस कार्य के अयोग्य ही समझा था।

फ्रायड उन दिनों आस्ट्रिया के वियना नगर में रहते थे। ८० वर्ष की आयु हो जाने पर फ्रायड जब रोगियों का मनोविश्लेषण करते थे, तो उनके उपचार के सम्बन्ध में अन्ना के सुझावों को वे सर्वथा मान्यता देते। जिस समय हिटलर के नाजीदस्तों ने अपना आतंक फैलाया तो फ्रायड को सपरिवार इंग्लैण्ड जाना पड़ा। वहाँ लन्दन की एक बाहरी बस्ती हैम्पस्टेंड में बस गये। यहीं पर सेवा कार्य करते हुए १९४० में फ्रायड की मृत्यु हो गई।

इस समय अन्ना की आयु ४३ वर्ष की थी। अपना पूरा जीवन उन्होंने पिताजी की सेवा में लगाया था। अब उन्होंने सोचा कि विवाह करके भौतिक सुख-सुविधाओं में फँसने की अपेक्षा यदि शेष जीवन को भी अपने पिता के कार्य को आगे बढ़ाने में लगा दिया जाये तो अधिक अच्छा रहेगा।

उन्हें अपने इस सत्संकल्प में पूर्ण सफलता मिली। पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने अपना सारा समय बालकों और किशोरों के भावनात्मक विकास के अध्ययन में लगा दिया। आज वे इस विषय की विशेषज्ञा हैं। सन् १९५१ में उन्होंने हावर्ड तथा रेडक्लिफ कॉलेजों में 'मातृत्व' की भूमिका' पर ११ भाषण दिये, जिनका प्रमुख ध्येय माता-पिता को इस विषय से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त कराना था ताकि बच्चों के विकास में माता-पिता सही रूप में सहयोगी सिद्ध हो सकें। भाषण के मध्य जिस बात पर उन्होंने श्रोताओं का ध्यान आकर्षित किया, वह थी अपरिपक्व स्थिति में बच्चों और किशोरों का मन किस प्रकार कार्य करता है।

पिछले वर्षों से वे इस बात की खोज कर रही थीं कि युद्ध के समय बच्चे जब माता या पिता से बिछुड़ जाते हैं तो उनकी क्या स्थिति होती है ? सन् १९५२ में अन्ना ने लन्दन के बाल-अध्ययन संघ के तत्त्वावधान में कार्य करते हुए इस विषय पर एक अध्ययनपूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। सन् १९६२ में अमेरिका लौटकर कान्नेक्टीकट राज्य के न्यू हेवेन नामक नगर में येलला स्कूल में एक वर्ष तक परिवार सम्बन्धी कानूनों का अध्ययन तथा अध्यापन कार्य सम्पन्न किया।

अन्ना की यह धारणा है कि आज के तरुण अपनी शक्तियों और समस्याओं पर विचार करके अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिये बिल्कुल प्रयत्न नहीं करते। उनमें निराशा की भावना बढ़ती जा रही है। वे अपनी दुर्बलताओं को छिपाने की कोशिश करते हैं। समाज से समझौता करने के लिए भी किसी प्रकार से तैयार नहीं। अन्ना का यह विश्वास है कि आज के तरुण, आत्म-विश्लेषण तथा आत्म-निरीक्षण द्वारा ही अपनी समस्याओं को सुलझा सकते हैं। यदि उन्होंने ऐसा न किया तो समाज के महत्त्वपूर्ण आधार नष्ट हो जायेंगे।

माँ और बच्चे के मध्य संघर्ष की शुरूआत बचपन से ही हो जाती है। उस समय भोजन और माँ एक वस्तु होते हैं। भूखा होने पर भी जब बच्चा दूध नहीं पीता तो यह उसका प्रारम्भिक संघर्ष ही है। इस स्थिति में माँ के आत्मसम्मान को भी ठेस लगती है क्योंकि उसका बच्चा उसके व्यक्तित्व को स्वीकार नहीं कर रहा है। ऐसी स्थिति में अन्ना का सुझाव है कि इस बात का पता लगाना चाहिये कि माँ से क्या नाराजी है ? बच्चे के साथ कठोर व्यवहार करना अथवा औषधियों का सहारा लेने से माँ और अपने बच्चे के मध्य स्थायी कटुता उत्पन्न हो जाती है।

कभी-कभी माता-पिता की आज्ञा का पालन बच्चों के द्वारा नहीं होता, उस स्थिति में दुःख होना भी स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में अन्ना का कहना है कि बच्चे के संघर्ष में उलझने से समस्या का हल नहीं निकलता, क्योंकि विजय बच्चे की होती है और उसकी दृष्टि में माता-पिता का सम्मान कम हो जाता है।

अन्ना को तरुण माताओं से बड़ी सहानुभूति है, क्योंकि वे बच्चों की समस्याओं को अनुभव के अभाव की वजह से समझ नहीं पातीं और उनके पारिवारिक सदस्य बच्चों के बिगड़ने के लिये माताओं को ही उत्तरदायी मानते हैं। फिर बच्चों के मामलों में किसी निश्चित सिद्धान्त का अनुसरण भी तो नहीं किया जा सकता, क्योंकि बालकों के आचरण में भिन्नता होती है, अतः उनके साथ भिन्न प्रकार के व्यवहार की ही आवश्यकता पड़ती है।

जिन बच्चों का लालन-पालन अपनी माँ की सुखमयी गोद में ही होता रहता है। वे संकट की स्थिति में भी अपने को सुरक्षित समझते हैं और बम वर्षा जैसी घटना की ओर भी ध्यान नहीं देते। पर जो बालक माँ से अलग हो जाते हैं, उनके भीतर एक प्रकार की शारीरिक संवेदनशीलता उत्पन्न हो जाती है और अनेक शारीरिक या मानसिक रोगों के शिकार हो जाते हैं। उनका आत्म-विश्वास समाप्त हो जाता है, शारीरिक विकास में बाधा पहुँचती है और अनेक बच्चे तो बोलना तथा चलना तक बन्द कर देते हैं। अन्ना ने यह भी अनुभव किया कि माता-पिता से बिछुड़े बालकों में समान आयु के बाल-साथियों के प्रति ममत्व और स्नेह बढ़ जाता है।

व्यक्ति की ही तरह छोटे-छोटे बच्चे अपने व्यक्तित्व का सम्मान चाहते हैं। उन्हें छोटा-या मूर्ख

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझना उनकी प्रगति में बाधा पहुँचाना है। बालक के व्यक्तित्व का जब सही रूप से सम्मान होता रहता है, उसका विकास भी स्वाभाविक रूप से होता है। इसीलिए तो अन्ना फ्रायड ने कहा है कि बालक का मन अपने व्यक्तित्व की चेतना से रिक्त नहीं होता, भले ही उसकी अभिव्यक्ति न कर सके। सचमुच अन्ना ने अपने पिता के विचारों को आगे बढ़ाने में जीवन के मूल्यवान वर्ष, जिनमें वे आराम की जिन्दगी भी व्यतीत कर सकती थीं, लगा दिये। इसीलिये मनोविश्लेषण की दिशा में वे बहुत बड़ा कार्य कर सकी हैं। उन्होंने आज के तरुणों को आत्म-निरीक्षण व आत्म-विश्लेषण की ही सलाह दी है ताकि मानसिक स्थिति का सही बोध करके जीवन संघर्ष में सफलता की इच्छा से आगे बढ़ सकें।

ममत्व की मूर्ति—मारिया मान्तेस्सरी

रोम के एक कुलीन परिवार में सन् १८७६ में जन्मी एक नन्हीं-सी बालिका जब छह वर्ष की थी, तब प्रारम्भिक कक्षा की वार्षिक परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सकी। उसे अपने पाठ याद ही नहीं होते थे। उसके माता-पिता और शिक्षक उसकी ओर से बहुत निराश होते जा रहे थे। परन्तु कौन जानता था कि उसके जीवन में एक बहुत बड़ा मोड़ आएगा और उसे अपने जीवन के ध्येय की प्रतीति छुटपन में ही हो जायेगी।

वह नन्हीं-सी बालिका थी—मारिया मांतेस्सरी, एक ऐसा नाम जिसे संसार का हर पढ़ा-लिखा व्यक्ति जानता है, एक ऐसा व्यक्तित्व जिसका स्मरण करते ही ममत्व जाग उठता है और जिसके प्रति संसार के प्रत्येक बालक का मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है।

एक दिन मारिया को ज्वर हो गया। ज्वर बढ़ता गया और उसने एन्फ्लुएन्जा का भीषण रूप ले लिया। डाक्टर बुलाया गया और जब मारिया की माँ ने डाक्टर से अपनी बच्ची का हाल पूछा, तो डाक्टर ने सिर हिलाकर कहा—"बुरी से बुरी परिस्थिति के लिये तैयार हो जाओ।" माँ की आँखें सजल हो गईं, बेटी ने यह देख लिया और बात को तोड़कर बोली—"माँ, तुम बिल्कुल चिन्ता मत करो। मैं मरूँगी नहीं। मुझे तो संसार में बहुत-सा काम करना है।" और सचमुच दृढ़ इच्छाशक्ति के बल से मारिया का ज्वर टूट गया। वे स्वस्थ हो गईं। इतना ही नहीं, उनकी बुद्धि के कपाट भी खुल गये और इस बार मारिया ने अपनी कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। माता-पिता ने सुझाया कि वह अध्यापिका बने। १८वीं सदी का वह जमाना इससे अधिक कुछ कल्पना ही नहीं कर सकता था कि स्त्रियाँ पढ़-लिखकर अध्यापिकायें बन जायें परन्तु मारिया के मन में कुछ और था। उन्होंने निश्चय किया कि वे इन्जीनियर बनेंगी और १४ वर्ष की अवस्था में वे लड़कों के तकनीकी स्कूल में भर्ती हो गईं। परन्तु अकेली मारिया ही तो अपने भविष्य का निर्णय नहीं कर सकती थीं। नियति उनके मार्ग में आकर खड़ी हो गई और अगले वर्ष उन्होंने गणित छोड़कर जीव-विज्ञान का अध्ययन आरम्भ कर दिया।

मारिया रोम विश्वविद्यालय के मेडीकल कालेज में भर्ती होने के लिए गईं। स्कूल के डीन प्रोफेसर गाइडो बेसिली उन्हें देखकर केवल इतना ही बोले—'असम्भव'। किन्तु मारिया अपनी हठ पर अड़ी रहीं और अन्ततः उन्हें स्कूल में प्रवेश मिल गया। बात का अन्त यहीं नहीं हुआ, उन्होंने योग्यता के आधार पर छात्र-वृत्ति प्राप्त की और अपनी शिक्षा का भार स्वयं उठाया। लड़कों के स्कूल में अकेली लड़की हमेशा अपने सहपाठियों के व्यङ्गों का शिकार रहती थी। पर अन्ततः जीत मारिया की हुई, वे इटली की प्रथम महिला डाक्टर बनीं और उन्हें रोम विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक उपचार-गृह में प्राध्यापिका पद प्रदान किया गया। अब इस प्रसंग में उनका सम्पर्क पागलखानों के साथ हुआ। वहाँ उन्होंने देखा कि कुछ अविकसित और ऊधमी बच्चे भी पागलखाने में रखे जाते हैं। उन्होंने प्रयत्न करके डा. बेसिली को इस बात के लिए राजी कर लिया कि उन्हें अविकसित बच्चों के सुधार के लिये एक प्रायोगिक विद्यालय चलाने की अनुमति दी जाय। उनके प्रयास से ये बच्चे बहुत शीघ्र सुधर गये और उनमें से अनेक सामान्य बालक की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान और परिश्रमी सिद्ध हुये।

उन्होंने देखा कि इटली के स्कूलों में सबसे अधिक बल इस बात पर दिया जाता है कि बच्चे अधिक से अधिक शान्त बैठे रहें और अपने शिक्षकों का उपदेश सुनते रहें। उन्होंने खुलेआम इस विचार की आलोचना करनी आरम्भ कर दी। उन्होंने कहा कि "बालकों में स्वाभाविक प्रतिभा एवं शक्ति होती है, उन्हें सक्रिय जीवन व्यतीत करने की अनुमति दी जानी चाहिये। चुपचाप बैठे रहने से उनका विकास नहीं हो सकता। शिक्षकों को चाहिये कि वे बालकों के प्रत्येक कार्य का बारीकी से अध्ययन और बालकों को समझाने का प्रयत्न करें। वे यह देखें कि बालक का विकास किस रीति से हो रहा है और बालक की भीतरी शक्ति का प्रवाह किस ओर है।"

अविकसित बालकों पर सफल प्रयोग करने के पश्चात् मारिया मान्तेस्सरी रोम विश्वविद्यालय में नृतत्व-शास्त्र की प्राध्यापिका बनीं और सात वर्ष तक उन्होंने इसी पद पर काम किया। अब वह समय आ पहुँचा, जब नियति द्वारा निर्धारित कार्य करने का उन्हें सुअवसर प्राप्त हुआ।

रोम की लारेंजो नामक कुख्यात गंदी बस्ती ने उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इस गन्दी बस्ती का हाल ही में पुनरुद्धार हुआ था। कच्चे झोंपड़े गिराकर पक्के मकान बना दिये गये थे, पर दिन में माँ-बाप काम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर चले जाते और बड़े बच्चे स्कूलों में पढ़ने के लिये पीछे रह जाते। नन्हें-मुन्ने दिन भर इधर-उधर धूल में खेलते और गन्दी गालियाँ सीखते। मारिया ने जब यह देखा तो उनमें एक नई चेतना जाग उठी। मारिया ने लारेंजो में अपना बाल-मन्दिर आरम्भ कर दिया और साठ शर्मीले, गन्दे और कमजोर बच्चों के सहारे उन्होंने उस प्रसिद्ध मान्तेस्सरी शिक्षा प्रणाली का आविष्कार किया, जिसकी आज संसार में सर्वत्र प्रशंसा की जाती है।

मारिया मान्तेस्सरी लिखाई-पढ़ाई को प्रारम्भिक शिक्षा का उतना महत्त्वपूर्ण अंग नहीं मानती थीं, जितना कि संसार को। वे सदा यही कहा करतीं कि जब बच्चे छोटे हों, तब उन्हें सुसंस्कृत बनाया जाये और फिर उन्हें यह स्वतन्त्रता दी जाये कि वे अपनी इच्छा के अनुसार प्रवृत्ति का चुनाव करें। उनकी मान्यता थी कि बच्चे की सबसे बड़ी आवश्यकता सुसंस्कार अर्थात् सभ्यता है। हमें उसको सभ्य बनाना चाहिये, उसके भीतर आत्म-निर्भरता और अनुशासन की भावना उत्पन्न करनी चाहिये। वे इस बात पर इतना बल देती थीं कि प्रसिद्ध मानस-चिकित्साशास्त्री सिगमंड फ्रायड ने एक बार उनकी प्रशंसा करते हुये, यहाँ तक कह डाला था कि यदि संसार के सभी बच्चे मान्तेस्सरी प्रणाली में दीक्षित किये जायें, तो मनोविश्लेषण विद्या की आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी।

वे धैर्य को शिक्षक की कसौटी मानती थीं। उनका विचार था कि बच्चे को सिखाने से पहले शिक्षक को स्वयं यह सीखना चाहिये कि बच्चे सीखना क्या चाहते हैं ? और उन्हें कैसे सिखाया जा सकता है ? उनके विचार से शिक्षकों का काम केवल यह है कि बच्चों की ग्रहण-शक्ति को मुक्त कर दें, उसे उत्तेजित कर दें और बाद में उसे अनुकूल समुचित दिशा प्रदान करें।

मारिया ने लिखा कि 'उन्हें सबसे अधिक प्रसन्नता यह जानकर हुई कि बच्चे दण्ड के भय अथवा पुरस्कार के लोभ से प्रेरित नहीं होते। वे केवल उस आत्म-संतोष से संचालित होते हैं, जो उन्हें कार्य के फलस्वरूप मिलता है। जिस घड़ी वे जान पाते हैं कि उन्होंने कोई अच्छा या उपयोगी काम किया है, उसी घड़ी उनकी कार्य शक्ति के अवरुद्ध द्वार खुल जाते हैं।'

१९१२ में मारिया की पहली पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका नाम था—'मान्तेस्सरी शिक्षा-पद्धति'। पुस्तक प्रकाशित होते ही संसार के प्रायः सभी देशों ने उनकी शिक्षा पद्धति अपना ली। परन्तु दुर्भाग्य ऐसा कि उनके अपने ही देश इटली का तानाशाह मुसोलिनी उनके विरुद्ध हो गया और मारिया को इटली छोड़कर मार्सीलोना जाना पड़ा। मार्सीलोना जाते समय मारिया की आयु ६४ वर्ष की थी। दुर्भाग्य से वहाँ भी स्पेन का गृह-युद्ध छिड़ जाने के कारण अशान्ति फैल गई तथा कुछ ही दिनों बाद विद्रोही सैनिक थोलिक सम्प्रदाय के ईसाइयों और इतालवियों को सताने लगे। एक दिन सैनिक दस्ता मारिया के द्वार पर आकर खड़ा हो गया। मारिया ने जब यह देखा तो उन्होंने घर के सब बच्चों को इकट्ठा किया और उनसे कहा कि "हम सबको एक दिन मर जाना है। किसी को आगे, किसी को पीछे। आओ, हम सब प्रार्थना करें कि हम जहाँ जायें, ईश्वर हमारा मार्गदर्शन करे।" उन्होंने बच्चों में आत्मविश्वास भर दिया। सिखाने की यह अनुपम रीति थी। द्वार पर सैनिक दस्ते का कमाण्डर यह सब सुन रहा था। उसने दरवाजे पर लाल रंग से लिखा—"इस मकान का सम्मान करो। यह बच्चों की एक महान माता का पवित्र मकान है।" और वह वहाँ से चला गया।

अपने अन्तिम दिनों में उनके मन में अफ्रीका के बच्चों की चिन्ता उमड़ आई थी। परन्तु वे अपनी इस इच्छा की पूर्ति नहीं कर सकीं और ८७ वर्ष की आयु में इस संसार में अपना नाम अमर कर विदा हो गईं।

लगन और निष्ठा की मूर्तिमती प्रतिमा—श्रीमती हैरी क्लोवर

'माँ यह किसकी मूर्ति है ?' बालिका ने एक खिलौने को दिखाकर पूछा।

'यह भगवान बुद्ध हैं, जिन्होंने संसार को नया रास्ता दिखाया। प्राणियों का दुःख देखकर इनका हृदय रो उठा था। इन्होंने अपने राज्य और सुख का परित्याग कर दिया और ज्ञान प्राप्ति के लिए स्थान-स्थान पर भटकते रहे और वह मार्ग पा ही लिया, जिस पर चलकर मनुष्य का कल्याण हो सकता है। इनका चलाया धर्म है—बौद्ध धर्म, जो उस समय संसार के कोने-कोने में फैल गया था। आज भी अनेक देशों में यह धर्म प्रचलित है।'

बालिका माता की बातों को अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुन रही थी। माँ ने बच्ची को प्यार करते कहा—'मेरी हैरी भी तो महान बनेगी न ! भगवान बुद्ध की अनुगामिनी .....।'

यों हैरी के माता-पिता क्रिश्चियन थे परन्तु उनकी माँ की पूर्वी दर्शन—विशेष रूप से बौद्ध दर्शन में गहरी रुचि थी। वे कहा करती थीं कि दुःखत्रय से प्रपीड़ित संसार को बुद्ध ने जो मार्ग दिखाया है, उस पर चलना आज भी मानव मात्र के लिए अत्यन्त श्रेयस्कर है।

माता-पिता की रुचि-रुझान का, गुण-कर्म और स्वभाव का प्रभाव बालक पर अवश्यम्भावी रूप से पड़ता है। हैरी पर भी माता की इस मनोवृत्ति का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ा। माँ से खिलौने के रूप में पायी हुई बुद्ध की प्रतिमा से वह प्रभावित हुई और जैसे-जैसे बड़ी होती गयी—बौद्ध धर्म, दर्शन और कला में उसकी रुचि विकसित होती गयी। वस्तुतः खिलौने के माध्यम से सहज में ही बालक को बड़ी से बड़ी शिक्षा दी जा सकती है, उसकी रुचियों को किसी भी ओर मोड़ा जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही कारण है कि चतुर माता-पिता बच्चे के लिए खिलौनों का चयन अत्यन्त सावधानी से करते हैं। वे उनमें व्यय किये हुए धन को अपव्यय न समझकर बालक के व्यक्तित्व निर्माण में सहायक समझते हैं।

बुद्ध के आदर्शों से प्रभावित होकर हैरी क्लोवर ने उच्च शिक्षा में पूर्वी दर्शन को ही अपना मुख्य विषय बनाया। साथियों ने तथा संकीर्ण मनोवृत्ति के अन्य लोगों ने समझाया—क्या पागलपन तुम पर सवार हुआ है। पढ़ना ही है तो अपना दर्शन पढ़ो। सुकरात, अरस्तू, प्लेटो, पार्मेनाइडिसो डेकार्टे—कैसे-कैसे महान दार्शनिक हमारे यहाँ हुए हैं।'' हैरी क्लोवर मुस्करा उठतीं और कहतीं—'अपने यहाँ के' दर्शन में मेरी श्रद्धा है परन्तु पूर्वी दर्शन मेरे जीवन का प्रकाश-स्तम्भ बन चुका है। मेरा यह पूरा विश्वास है कि भविष्य में एशिया ही संसार का नेतृत्व करेगा। हमारे पास सुख-साधनों की भरमार है, लेकिन पूरब के पास जीवन जीने की कला है।'

जब भी अवसर मिलता—वे अपने साथियों को बुद्ध के उपदेश हृदयङ्गम करातीं—'मन ही सारी प्रवृत्तियों का अगुआ है। प्रवृत्तियों का आरम्भ मन से ही होता है। वे मनोमय हैं। जब कोई आदमी दूषित मन से बोलता है या वैसा ही काम करता है, तो दुःख उसका पीछा उसी तरह करता है, जिस तरह बैलगाड़ी के पहिए बैल के पैरों का पीछा करते हैं। यदि मनुष्य शुद्ध मन से बोलता है या कोई काम करता है, तो सुख उसी तरह पीछा करता है, जिस तरह मनुष्य के पीछे उसकी छाया।' वे प्रायः कहा करती थीं कि हमें काम, क्रोध, लोभ, मोहादि मनोविकारों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए तथा प्रत्येक मनुष्य के साथ—चाहे वह किसी भी देश या जाति का हो—स्नेह और ममत्व भरा व्यवहार करना चाहिए। तभी मानव जीवन की सार्थकता है। हैरी की सारभरी बातों को सुन-सुनकर उनके साथी मजाक में प्रायः उन्हें 'बुद्ध का नूतन अवतार' कहा करते थे।

शिक्षा समाप्ति के पश्चात् हैरी क्लोवर ने अपना जीवन अमेरिका में बौद्ध-दर्शन के प्रचार तथा प्रसार में लगाने का व्रत किया। उनके हृदय में एक स्वप्न पनपने लगा और वह था—एक बौद्ध संग्रहालय तथा पुस्तकालय की स्थापना का। वस्तुतः संग्रहालय और पुस्तकालय दोनों ही लोकरुचि को किसी भी ओर मोड़ने के अत्यन्त सशक्त साधन हैं।

इस कार्य के लिए विशाल धनराशि की आवश्यकता थी। अदम्य साहस, श्रम और लगनशीलता की आवश्यकता थी। परन्तु हैरी ने हिम्मत न हारी। लोगों का विरोध और कटाक्ष सहकर भी वे मूक यति की भाँति निरन्तर अपने कार्य में लगी रहीं। घूम-घूमकर उन्होंने चन्दा एकत्रित किया। स्वयं भी कठोर परिश्रम करके धन कमाया। अपनी पैतृक-सम्पत्ति भी उन्होंने बेच डाली। वर्षों के कठोर श्रम के बाद एक दिन हैरी का स्वप्न पूरा हुआ। उन्होंने इस कार्य के लिए अन्ततः न्यूयार्क बन्दरगाह के सामने स्टेटेन द्वीप में एक भूखण्ड खरीद लिया। सत्य ही है, अपने लक्ष्य के प्रति पूरी तरह से समर्पित मनस्वी लोग दृढ़ संकल्प के बल पर बड़े से बड़े कार्य भी पूरा कर दिखाते हैं।

अपनी देख-रेख में हैरी ने बौद्ध शैली का भवन निर्मित कराया। द्वीप के आस-पास की पहाड़ियों से पत्थर एकत्रित करने और ढोने में उन्होंने निरन्तर बारह-बारह घण्टे तक श्रम किया। अपने मनोबल से लोगों की यह धारणा निर्मूल सिद्ध कर दी थी कि नारियाँ कोमलांगी होती हैं, वे कठोर शारीरिक श्रम नहीं कर सकतीं। जो व्यक्ति यह सोचा करते थे—'अकेली स्त्री क्या भाड़ झोंकेगी' उनकी मान्यता को भी हैरी ने गलत सिद्ध कर दिखाया।

इस कार्य के मध्य हैरी का परिचय पूर्वी दर्शन के प्रति श्रद्धालु, अत्यन्त मेधावी और लगनशील युवक से हुआ। दोनों एक-दूसरे की विचारधारा तथा व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हुए। जाने कब यह सामान्य परिचय मैत्री में और मैत्री प्रगाढ़ आत्मीयता में परिणत हो गयी। महान लक्ष्य की पूर्ति के लिए दोनों ने विवाह कर लिया। गंगा और यमुना जहाँ मिलती हैं, संगम की अनुपम दृश्यावलि उपस्थित हो जाती है, बिजली के दो तार मिलकर असाधारण कार्य कर दिखाते हैं, दो महान शक्तियाँ जहाँ भी मिलती हैं, चमत्कार ही उत्पन्न करती हैं।

अन्ततोगत्वा, १९४५ में इस पुस्तकालय का उद्घाटन हुआ। क्लोवर दम्पत्ति के अथक् परिश्रम से इसमें बौद्ध धर्म के १,५०० ग्रन्थों का संग्रह उस समय तक हुआ। इन ग्रन्थों के संकलन हेतु पति-पत्नी दोनों को देश-देशान्तरों में घूमना पड़ा। अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इनके प्रयासों का ही परिणाम है कि आज इसमें भारत, तिब्बत, नेपाल, श्रीलंका, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, वियतनाम, चीन और जापान से लाये गये सैकड़ों बौद्ध ग्रन्थ भरे पड़े हैं।

वातावरण को पूरी तरह से धार्मिक तथा सांस्कृतिक बनाने के लिए पुस्तकालय के साथ मन्दिर की भी स्थापना हुई। यह मन्दिर आज एक विशाल संग्रहालय बन चुका है और बौद्ध-तिब्बती कला तथा बौद्ध काल के सर्वश्रेष्ठ संग्रहों में से एक है।

किसी भी अच्छे कार्य का प्रारम्भ में तो लोग विरोध करते हैं परन्तु जब उसकी महत्ता और उपयोगिता उनकी समझ में आती है, तो वे भी अनुकरण करने लगते हैं, अनेक त्यागशील व्यक्ति उस महान कार्य के लिए अपना जीवन समर्पित कर देते हैं। प्रारम्भ में जो हैरी का विरोध करते थे, वही उसके अनुगामी बन गये। उनके प्रयासों से अनेकानेक लोग बौद्ध दर्शन की ओर आकर्षित हुए और हैरी के पुनीत कर्म में सहयोग देने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए आगे आये। इन्हीं सहायकों में से कुमारी वाटकिन्स तथा वेकर दम्पत्ति जैसे कर्मठ तथा जनसेवी सहृद भी हैरी क्लोवर को प्राप्त हुए। इन लोगों के सत्प्रयासों के परिणामस्वरूप यह केन्द्र पुस्तकालय और संग्रहालय मात्र ही न रह गया अपितु बौद्ध-इतिहास और दर्शन की कक्षाओं के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया। अनेक अमरीकियों की बौद्ध दर्शन में रुचि उत्पन्न हो गयी और वे नियमित रूप से कक्षाओं में आने लगे।

दैवयोग से १९४८ में श्रीमती हैरी क्लोवर का देहावसान हो गया। असमय ही जीवन साथी के इस प्रकार छिन जाने से उनके पति को मर्मान्तक पीड़ा हुई। अन्ततः उन्होंने सोचा कि पत्नी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही है कि उसके कार्य को आगे बढ़ाया जाये। पत्नी के वियोग से दुःखी शाहजहाँ ने उसकी स्मृति में संसार का एक आश्चर्य—ताजमहल बनवाया था। हैरी के पति ने भी पत्नी की स्मृति को साकार बनाये रखने के लिए केन्द्र को स्मारक का अत्यन्त भव्य रूप प्रदान किया। सत्य है, सच्चे प्रेम की भावना ही ऐसी है, जहाँ भी वेग से उमड़ती है—एक नूतन आश्चर्य की सृष्टि कर देती है।

श्रीमती क्लोवर के निधन के पश्चात् एक सेवाभावी नारी—कुमारी हेलेन एंग्लेड वाटकिन्स केन्द्र की संरक्षिका तथा प्रशासिका नियुक्त की गयीं। इन्होंने अपने वैयक्तिक सुख-सुविधाओं को छोड़कर अपना सम्पूर्ण जीवन ही केन्द्र की उन्नति के लिए लगा दिया। 'कार्य में कोई व्यवधान न हो—इसलिए उन्होंने विवाह भी नहीं किया। कुमारी वाटकिन्स ने इसे बच्चे की तरह पाला-पोसा और उन्नति के उच्चतम शिखर तक पहुँचाया।

केन्द्र की उन्नति में वेकर दम्पत्ति का योगदान भी किसी प्रकार नहीं भुलाया जा सकता। इन दोनों ने अपना सम्पूर्ण जीवन इसके लिए लगा दिया। श्री फ्रेंक ई. वेकर का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान यह भी है कि उन्होंने बौद्ध धर्म की एक बहुमुखी भाषा विकसित की। श्री वेकर का कथन है—'इस बहुमुखी भाषा के शब्दकोष में संस्कृत, पाली, हिन्दी, चीनी, जापानी और तिब्बती भाषाओं के ५०० से अधिक शब्द हैं। यदि आप इस भाषा को सीख लें, तो आप किसी भी बौद्ध से बातचीत कर सकते हैं, चाहे भले ही आपको उसकी मातृभाषा न आती हो।' आज के युग में—जबकि लोग भाषा के आधार पर भेदभाव करते हैं और लड़ते-झगड़ते हैं—श्री वेकर का यह प्रयास अत्यन्त सराहनीय कहा जायेगा।

आज यह संस्था बौद्ध-धर्म के प्रसार का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थल बनी हुई है। यदि यह कहा जाये कि 'पूरब और पश्चिम के अन्तर को कम करने में यह सुन्दर सहयोग दे रही है' तो तनिक भी अत्युक्ति न होगी। विदेशी और विशेष रूप से बौद्ध धर्मानुयायी जब यहाँ आते हैं तो चकित होते हैं कि अमेरिका में इस प्रकार की संस्था का प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ। जब उन्हें विदित होता है कि यह एक विदुषी महिला की लगन और निष्ठा का जीवन्त रूप है, तो उनका मस्तक उस कर्मठ नारी के प्रति श्रद्धावनत् हो जाता है।

प्रकृति की गोद में बसी, प्राचीन आश्रमों की स्मृति को साकार बनाने वाली यह पवित्र स्थली आज भी अपनी संस्थापिका श्रीमती हैरी क्लोवर की यश-गाथा को प्रसारित कर रही है। वस्तुतः किसी महान कार्य की पूर्ति के लिए आत्म-विश्वास, संकल्प, दृढ़ता, साहस और लगन की आवश्यकता होती है। 'यह स्त्री है। अतएव कार्य नहीं कर सकेगी' यह मान्यता अत्यन्त भ्रममूलक है। नर तथा नारी दोनों को ही ईश्वर ने समान योग्यताएँ, क्षमताएँ तथा प्रतिभाएँ दी हैं। जो भी इनका समुचित उपयोग करेगा, वह सफलता के स्वर्णिम शिखर पर पहुँच ही जायेगा।

शब्द ब्रह्म की साधिका—
महीलिया

उसके गीतों को सुनकर लोग कहा करते थे—इस लड़की की आवाज उसे दूसरी बेसी स्मिथ बना सकती है। "बेसी स्मिथ उस समय की विश्वविख्यात गायिका थी, जिसके शृंगार गीतों ने अमेरिका में धूम मचा रखी थी।"

इस सोलह वर्षीय हब्सी किशोरी के लिये दूसरी बेसी स्मिथ, बन जाना कम छोटा प्रलोभन नहीं था। किन्तु वह इस प्रलोभन में नहीं फँसी। उसने संगीत कला को लोगों की पाशविक वृत्तियों को उभारने का साधन नहीं बनने दिया। यह किशोरी थी—महीलिया जेक्सन, जिसने अपने जीवन में संगीत की गौरव-गरिमा को पददलित होने से बचाने का अथक् प्रयास किया।

महीलिया के पिता १९१५ में न्यूआर्लियस आकर बस गये थे। वर्ण से हब्सी होने के कारण उन्हें न्यूआर्लियस नगर के बाहरी क्षेत्र की हब्शी बस्ती में रहना पड़ा, जो नदी के किनारे श्वेत बस्ती से मील भर दूर थी।

उसके पिता जब न्यू आर्लियस आये तब वह चार वर्ष की थी। वह अपने पिता के साथ चर्च जाया करती थी। उसके पिता यहाँ दिन के समय तो चर्च के पादरी का कार्य करते थे तथा रात्रि को नाई का काम करके अपनी आजीविका चलाते थे।

व्यक्ति धन-सम्मान से नहीं, उसके अपने आदर्शों से बनता है। इस सत्य के समर्थक होने के व्राते जेक्सन परिवार गरीबी का जीवन जीता हुआ भी आत्म-संतोष तथा आत्मविश्वास की ईश्वरीय सम्पदाओं से परिपूर्ण था।

उसके पिता ही उसके प्रथम गुरु थे। पिता की आदर्शवादिता का पूरा-पूरा प्रभाव उस पर पड़ा था। ईश्वर की दी हुई विभूति का उसने अपने नाम तथा लोभ के लिये प्रयोग नहीं किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बचपन में उस लोगों के घरों में फर्श साफ करने का काम करके अपने परिवार का खर्च चलाने में सहयोग देना पड़ा था। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके उसे घोविन का काम करना पड़ा था। फिर भी उसने अपने पिता के उस धर्मसम्मत निर्देश को ठुकराया नहीं। वह केवल धार्मिक गीत गाती थी।

रिश्तेदार तथा पड़ौसी उसे कहते थे—"पगली अपने पिता की बातों में आकर कष्टों और अभावों का जीवन जी रही है, देख तेरे सौभाग्य का सूर्य उदय होने वाला है, तू इन धार्मिक गीतों के अतिरिक्त अन्य शृंगारिक तथा होटलों, क्लबों के अनुरूप गीत गा। चर्च की चहारदीवारी में अपने आपको बाँधकर मत रख।"

महीलिया भी सब ओर से यही बातें सुन-सुनकर कभी-कभी विचलित होने लग जाती थी। प्रशंसा अच्छे-अच्छे ज्ञानियों को डगमगा देती है, फिर वह तो अभी कच्ची उम्र की युवती थी। एक ओर कष्टों का जीवन था। न खाने को पूरी रोटी थी, न पहनने को वस्त्र, दूसरी ओर धन था, सम्मान था, ऐश्वर्य का जीवन था। वह दोनों में से किसे चुने।

कितने परिश्रम तथा लगन से उसने अपनी आवाज को, अपने सुरों को, अपने राग को साधा था। घण्टों उसने एकान्त में संगीत की साधना की थी। कैसे-कैसे उसने अपनी आवाज में प्राण भरे थे। झील में तैरती, नावों पर गीत गाते व मछुओं के गीतों से, तालाब में कपड़े धोते धोबियों के लय-ताल की गुनगुनाहट में से उसने क्या-क्या सीखा था। क्या वह सब केवल धार्मिक गीतोंकारों ही सहती रहेगी।

महीलिया जब इस प्रकार कमजोर पड़ने लगी, तो उसके भीतर से कोई कहता था। "बस धैर्य खो बैठी" संघर्ष के बिना सफलता नहीं मिलती। केवल तेरे कण्ठ में, तेरी वाणी में ही प्रकृति ने यह आकर्षण, मधुरता तथा सौन्दर्य क्यों दिया है ? इस पर तेरा ही अधिकार है क्या ? प्रकृति ने नारी को सौन्दर्य और सुकुमारता इसलिए नहीं दी कि वह वेश्या बन जाय। क्या तेरा इस प्रकार धन और प्रसिद्धि के लोभ में पड़कर संगीत को अपनी गरिमा से गिरा देना, वैसा ही पाप नहीं होगा और महीलिया अपने निश्चय पर दृढ़ हो जाती—उसके बहकते कदम रुक जाते।

वह केवल गिरजाघरों में ही गाती थी। क्लबों के प्रबन्धक, होटलों के प्रतिनिधि उसके पास अपने अनुबन्ध करने के प्रस्ताव लेकर आते, वह उन्हें विनम्रता से ठुकरा देती कहती—"मेरे गीत केवल ईश्वरीय वाणी को ही ध्वनित कर सकते हैं।"

कभी-कभी वह अपने पड़ौसियों के ग्रामोफोनों पर बेसी स्मिथ के शृंगारिक तथा कोलाहलपूर्ण गीतों का अभ्यास करने लग जाती उस दिन वह एक अव्यक्त पीड़ा से भर उठती थी।

अन्तःकरण इसे स्वीकार नहीं करता था कि वह जनरुचि का ध्यान रखकर उसकी तरफ मुड़ जाय। सच्चे साधक वे होते हैं जो जनरुचि को अपने आदर्शों के अनुरूप मोड़ने का प्रयास करते हैं। जब भी वह इसके विपरीत आचरण करने लगती है वह तुरन्त उसे टोकता था।

सत्रह वर्ष की आयु में उसकी एक चाची ने उसे शिकागो आने का निमन्त्रण भेजा। वह शिकागो गयी। शिकागो जाकर वह पुनः न्यू आर्लियस नहीं लौटी। वहाँ वे धोविन का काम करते हुए जनरुचि को अपने संगीत की ओर मोड़ने का प्रयास करने लगी।

आरम्भ में उसे छोटे-छोटे चर्चों में गाने का काम मिला। इसी दौरान उसे अपनी आवाज का पारखी मिल गया। हीरे का मूल्य जौहरी जानता है। वैसे ही उस जौहरी ने महीलिया का रूप हीरे को पाकर उसे खराद पर चढ़ाया।

यह व्यक्ति एक संगीत अकादमी का चालक था। उसने महीलिया के गीतों के कार्यक्रम बड़े-बड़े चर्चों में रखवाये।

संगीत में वह शक्ति होती है कि श्रोता अपनी सुध-बुध खोकर उसके प्रवाह में खो जाते हैं तथा उसके भावों को आत्मसात कर लेते हैं। महीलिया की आवाज का जादू सिर चढ़कर बोला। उसके श्रोताओं की संख्या तेजी से बढ़ने लगी। जो व्यक्ति भक्ति, संगीत सुनना पसन्द नहीं करते थे, वे अब उसकी आवाज से खिंचे हुए चर्च आने लगे।

उसकी आवाज भारी तथा गूँजती हुई थी। उसमें सातों सुरों का संगम था। सतरंगी इन्द्रधनुष की तरह वह सबकी प्रिय हो चली थी।

सफलता जब उसके चरण चूमने लगी, तब महीलिया ने समझ लिया कि उसके अन्तःकरण की आवाज झूठी नहीं थी। यदि वह उस समय डगमगा जाती तो वह भी उसी गर्त में जा गिरती। अब उसने आदर्श और सिद्धान्तों की महत्ता समझ ली थी। जमाने की हवा में बहने वाले तो हजारों मिल जाते हैं किन्तु उस हवा का रुख मोड़ने वाले कम ही मिलते हैं। किसी संगीतज्ञ ने ठीक ही कहा है—"यों तो हजारों गायिकाएँ उत्पन्न हुई हैं किन्तु संगीत के क्षेत्र में महीलिया जेक्सन पहली बार ही पैदा हुई हैं।"

चर्च में संगीत के कार्यक्रम देते समय ही उसकी भेंट ऐसे व्यक्ति से हुई, जो बाद में उसका पति बना। यह व्यक्ति था अलवर्ट हाकशेल।

अलवर्ट तथा संगीत अकादमी के संचालक ने महीलिया को होटलों में गीत गाने की राय ही नहीं दी, उसे खूब समझाया किन्तु महीलिया उस मिट्टी की बनी हुई नहीं थी। उसने हजारों डालर प्रति सप्ताह के अनुबन्ध को ठुकरा दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.१८ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

महीलिया अपने आदर्शों को त्यागे बिना भी प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँची। उसके गीतों के रिकार्ड बने, उनका घर-घर प्रचलन हुआ। इस प्रकार उसने धर्म के गीतों को—मनुष्य के देवता बनने की प्रेरणा को जन-जन तक पहुँचाया।

आर्थिक कष्ट भी इसकी प्रसिद्धि के साथ-साथ दूर हो चुके थे। चर्च से उसे इतना धन तो मिल ही जाता था, जिससे परिवार का खर्च ठीक तरह चल सके। रिकार्ड बनने पर तो उसकी आय काफी बढ़ गयी।

उसने दो धार्मिक फिल्मों में भी गीत गाये। रेडियो तथा टेलीविजन पर उसके गीतों की धूम मची। जिसके परिणामस्वरूप प्रेरणाप्रद तथा आदर्शवादी गीतों की ओर जनता की रुचि बढ़ी।

महीलिया ने इस तथ्य को बाद में जाना कि लोग अपने स्वार्थ-साधन के लिए जनरुचि का धार्मिक तथा प्रेरक गीतों के प्रतिकूल होने का जो बहाना बनाते हैं, वह सही नहीं है। इसमें दोष जनता का नहीं उन लोगों का है, जो घटिया स्तर के गीत सुनने पर बाध्य करते हैं तथा उनकी रुचि को विकृत करते हैं।

संगीत का प्राण मनुष्य को उसमें तन्मय कर देने की शक्ति है, वह तभी तक गीतों में रहती है, जब वह पावन, स्पृहणीय तथा अनुकरण करने योग्य भावों की अभिव्यंजना करे। हल्के बाजारू तथा काम वासनाओं को जगाने वाले शृंगारिक गीतों में वह प्राण शेष नहीं रहता। वह तो संगीत की अर्थीभर होते हैं। महीलिया का संगीत प्रथम कोटि का था।

उसके एक-एक गीत जो लोगों ने आठ-आठ, दस-दस बार सुने थे, वह उसकी लोकप्रियता तथा जन अभिरुचि का परिचायक थे।

वह कहती थी। मेरे गीत उस परमपिता परमात्मा की अनुकम्पा मात्र हैं। यही कारण है कि—"मैं जब भी उसके सामने वंदना करने को झुकती हूँ, वह मेरी झोली में अपनी कृपा के कण डाल देता है, वही मैं सबको वितरित कर देती हूँ।" इसलिए वह अपना गीत आरम्भ करने के पहले बाइबिल का पाठ कर लिया करती थी।

महीलिया ने लोगों में भव्य-भावों का सृजन करने के उद्देश्य से स्थान-स्थान पर भ्रमणकर अपने गीतों के माध्यम से ईश्वरीय ज्ञान को जन-जन तक पहुँचाया।

एक बार वह अपनी इस यात्रा के दौरान काफी बीमार हो गयी। एक दिन तो उसमें बाइबिल का पाठ करने की शक्ति भी नहीं थी, फिर भी उसने निश्चित कार्यक्रम प्रस्तुत किया तथा पूरे बीस गीत गाये। उनमें से कई-कई तो श्रोताओं के आग्रह पर उसे बार-बार दोहराने पड़े। यह एक ईश्वरीय चमत्कार ही था कि ऐसी दशा में भी वह अपना कार्यक्रम पूरा कर सकी, किसी को यह अनुभव नहीं हुआ कि वह अस्वस्थ है।

महीलिया जेक्सन के पिता ने आज के विकृत संगीत के लिये कहा था—"वह दानव मेरे घर में कदापि नहीं आ सकता।" उनकी वाणी सत्य सिद्ध हुई, अश्लीलता का दानव उसकी पुत्री के स्वर्गीय-संगीत से परास्त हो चुका था।

ईश्वर करे ऐसी महीलिया जेक्शन हजारों की संख्या में उत्पन्न हों, जो अश्लीलता के दानव का विनाश करके रख दें।

ब्रिटेन की पहली महिला मंत्री—बारबरा केसल

ब्रिटेन जैसे परम्परावादी देश में, राजनीति के क्षेत्र में पुरुषों के समकक्ष स्त्रियों की योग्यता और क्षमताओं का लोहा मनवाने का श्रेय किसी साहसी व बुद्धिमती नारी को जाता है, तो वे हैं-श्रीमती बारबरा केसल—ब्रिटिश राजनीति की प्रथम महिला, जिन्होंने महत्त्वपूर्ण मंत्री पदों को बड़ी कुशलता से निभाते हुये ब्रिटेनवासियों के परम्परा भक्त मानस को परिवर्तित करके रख दिया है।

बारबरा केसल का जन्म ६ अक्टूबर, १९११ में चेस्टर फील्ड के एक सामान्य परिवार में हुआ था। इनकी राजनैतिक सफलता के पीछे कोई पैतृक कारण रहा हो सो बात नहीं है। उनके पिता कोई बड़े राजनीतिज्ञ नहीं थे कि उनके साथ रहकर उन्होंने कोई अनुभव प्राप्त कर लिया हो या उनके नाम पर उन्हें समर्थन मिल गया हो। वे जो कुछ बनी हैं, वे अपने व्यक्तित्व और चरित्र की विशेषताओं के कारण बनी हैं।

उनके पिता फ्रेक बेट्स टेक्स इन्सपेक्टर तथा अंशकालिक पत्रकार थे। बारबरा का बचपन आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए उत्तरी ब्रिटेन विशेषकर ब्रेडफोर्ड नगर में बीता। राजनीति में उनकी रुचि बचपन से ही पैदा हो गयी थी। सोलह वर्ष की आयु में ही उन्होंने स्थानीय समाजवादी प्रत्याशी के पक्ष में प्रचार किया।

राजनीति का क्षेत्र बारबरा ने इस कारण चुना कि अब तक ब्रिटेन की राजनीति में पुरुषों का ही आधिपत्य रहा था। महिलायें आयी भी थीं तो मात्र हाउस ऑफ कामन्स की सदस्या के रूप में ही। वे उससे आगे नहीं बढ़ सकी थीं। बड़े-बड़े विभाग तो सब पुरुषों के ही हाथ में रहे थे।

बारबरा केसल की यह कामना थी कि वह भी पुरुषों की तरह देश की राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करे तथा उन्हीं की तरह मन्त्री पद सम्हालने का दुर्वह दायित्व पूरा करते हुए राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं का वर्चस्व स्थापित करे। उसकी यह कामना एक दिन में पूरी होने वाली नहीं थी। इसके लिये वर्षों की साधना की आवश्यकता थी। इस बात को बारबरा भी जानती थीं। अतः उनकी यह कामना मात्र शेखचिल्ली का स्वप्न बनकर नहीं रह गयी, पूरी हुई।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ग्रेज्युएशन करने के बाद उन्होंने एक डिपार्टमेंटल स्टोर में सेल्स डिमोन्स्ट्रेटर का काम किया, उसके बाद वे फ्रीलांस पत्रकार बनीं। पच्चीस वर्ष की आयु में वह सेंट पैकरा क्षेत्र से हाउस ऑफ कामन्स के लिये सदस्या चुनी गयीं।

बारबरा केसल की प्रगति की गति कछुए की चाल से चली थी। वे प्रगति की दिशा में एक-एक सुदृढ़ कदम आगे बढ़ाती रहीं। जल्दबाजी को उनके यहाँ कोई स्थान नहीं था। कई व्यक्ति जोश-जोश में लक्ष्य तो बहुत ऊँचा निर्धारित कर लेते हैं पर वे सफलता भी शीघ्र चाहते हैं, तो थोड़े से समय में ही उन्हें अपना लक्ष्य ऐसा कठिन लगने लगता है कि वे प्रयास करना ही छोड़ देते हैं। ऐसे जल्दबाज और अधीर व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में सफलता नहीं पा सकते। बारबरा इस प्रकार की महिला नहीं थीं।

बारबरा को उपयुक्त अवसर की तलाश थी कि जब वह अपनी योग्यता व प्रतिभा का सिक्का ब्रिटेनवासियों व संसद-सदस्यों पर जमा सके। १९४३ में वह अवसर भी आ उपस्थित हुआ। ब्रिटेन के सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन लाने वाली बेब्रोज रिपोर्ट के सुझावों को लागू करने के लिए लन्दन की लेबर पार्टी कान्फ्रेन्स में उन्होंने जो तथ्यपूर्ण भाषण दिया, वह दूसरे ही दिन ब्रिटेन के मुख्य पत्र 'डेली मिरर' के प्रथम पृष्ठ पर छपा। उनके पति टेडकेसल इस पत्र के सम्पादकीय विभाग में थे। इससे यह कार्य आसानी से हो गया। पार्टी के सदस्यों का ध्यान उनकी योग्यता की ओर गया।

१९५० में क्लीमेंट एटली की सरकार के समय उन्हें दल का राष्ट्रीय-प्रतिनिधि बनाया गया। १९५९-६० में वे पार्टी की अध्यक्षा बनीं। इस प्रकार उनको महत्त्व मिलता गया। जो पद उन्हें मिला उसे उन्होंने बड़ी योग्यता और कुशलता से निभाया। फलस्वरूप १९६४ में उन्हें वैदिशिक प्रगति विभाग का मुख्यत्व सौंपा गया। ब्रिटेन के इस मन्त्रिमण्डल की सदस्या बनने का उनका स्वप्न साकार हुआ।

मन्त्री पद पा लेने के बाद उनका मुख्य कार्य आरम्भ हुआ, उसका दायित्वपूर्ण ढंग से निर्वाह। ब्रिटेन की स्थिति हमारे देश जैसी नहीं है। हमारे यहाँ तो कैसा भी आदमी, किसी भी प्रकार एक बार कुर्सी पर पहुँच गया तो वह उसी से चिपका रहना चाहता है और उसी की सुरक्षा के लिए जोड़-तोड़ मिलाता रहता है। जनता के अशिक्षित और सुप्त होने के कारण वे इसमें सफल भी हो जाते हैं पर ब्रिटेन जैसे देश में जनता का हृदय काम करके ही जीता जा सकता है।

वैदेशिक प्रगति विभाग को सम्हालते हुए उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि अब तक विकासशील देशों को ब्रिटेन जो आर्थिक सहायता देता था, उस पर ब्याज भी लिया जाता था। बारबरा केसल में, नारी होने के नाते, ममता आदि के गुण अधिक ही थे। नारी के नेतृत्व में इन सबका लाभ राष्ट्र को ही नहीं, विश्व को भी मिलना स्वाभाविक था। उन्होंने यह ब्याज बन्द कर दिया।

१९६५ में बारबरा केसल को यातायात मन्त्री बनाया गया। इस पद पर रहते हुए उन्होंने जिस योग्यता का परिचय दिया, उसने उन्हें देश की राजनीति में शीर्षस्थ स्थान दिला दिया। १९६८ में उन्हें नया-नया स्थापित हुआ नियोजन व उत्पादन विभाग सौंपा गया। इस पद का भी उन्होंने उसी प्रकार अपनी पूरी निष्ठा, लगन व योग्यता से निभाया और यह सिद्ध कर दिया कि महिलायें ब्रिटेन जैसे देश की राजनीति में भी अपना स्थान बना सकती हैं और महत्त्वपूर्ण से महत्त्वपूर्ण पदों को सम्हाल सकती हैं।

लिबरल पार्टी के नेता जर्मी थोर्प का कहना था, "वे कार्य सक्षम हैं, उनके पास अच्छा और साफ दिमाग है और इन सबसे ऊपर वे साहसी हैं। यद्यपि उन्होंने अपने नारी सुलभ गुणों में से एक का भी परित्याग नहीं किया है फिर भी वे राजनीति में सफल रही हैं, जिसमें पुरुषों का आधिक्य रहा है।"

जर्मी थोर्प के इन शब्दों में निस्सन्देह उनकी प्रशंसा है पर वे इस प्रशंसा के पात्रत्व तक पहुँचने के लिये कितना श्रम, कितना मनोयोग व कितना साहस नियोजित करती रहीं, यह मूल वस्तु है, जो उनके इस प्रखर व्यक्तित्व से हर कोई प्राप्त कर सकता है।

उन्होंने जिस कार्य को हाथ में लिया, उसे पूरी जिम्मेदारी के साथ किया। हमारे देश की राजनीति में भी एक ऐसे ही व्यक्ति हो गये हैं, जिन्हें जो भी विभाग मिला उसे उन्होंने पूरी जिम्मेदारी से निभाया। जिसे नहीं जानते थे तो श्रमपूर्वक उसे जाना। स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री ऐसे ही राजनेता थे। बारबरा केसल की पद्धति भी वही थी, जो शास्त्रीजी की थी। वे निजी सचिवों पर निर्भर रहने वाली मन्त्री नहीं। वे अपने काम को अपने श्रम से पूरा करती हैं। प्रत्येक फाइल जो उनके सामने आती है, उसे वे पढ़ती हैं। अपने लाल बालपेन से स्थान-स्थान पर हाशिये में रिमार्क लगाती थीं, "क्यों ?", "किसलिये ?", "क्या यही एक तरीका है ?" आदि रिमार्क।

राजनीति उनके लिये व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति मात्र नहीं थी वरन् इसे वे बहुत बड़ी समाज-सेवा मानतीं और उसी भावना के साथ उसमें काम भी करती थीं। इसके लिये उन्हें अतिरिक्त समय भी देना पड़ता था तो खुशी-खुशी देती थीं। नित्य बारह घण्टे काम करना तो उनके लिये सामान्य बात थी, छत्तीस-छत्तीस घण्टे बिना सोये काम करना भी उनके लिये असम्भव नहीं था। उनका कहना था, "मैं सारी रात काम कर सकती हूँ, बस सवेरे दस मिनट के लिये कुर्सी पर बैठी-बैठी ही झपकी ले लेती हूँ तो पुनः तरोताजा हो जाती हूँ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उनके द्वारा यातायात व नियोजन और उत्पादन जैसे विभागों को सँभाल पाना इसी न थकने वाली शक्ति के कारण ही सम्भव हो सका है। आश्चर्य तो इस बात का है कि इतना अधिक काम करने के बाद भी उनका शरीर जीवन के उत्तरार्ध में भी उतना ही स्वस्थ व स्फूर्त है जितना किसी युवती का हो सकता है। उनका यह उदाहरण प्रकृति के इस नियम की पुष्टि करता है, जिसके अनुसार दीर्घायु का अर्थ होता है, जी-तोड़ काम करना।

उनकी लोकप्रियता का बहुत बड़ा कारण रहा है, उनकी व्यवहार कुशलता व मिलनसारिता। यों वे मन्त्री थीं, परन्तु जनता और अपने बीच उन्होंने कोई पर्दा नहीं रखा। वे जहाँ भी जातीं, बिना किसी खास अमले के। यह नहीं कि जहाँ मन्त्रीजी का दौरा हो तो वहाँ आठ दिन पहले ही राज्यभर की पुलिस उनकी रक्षा, व्यवस्था के लिय आ जुटे। जनता के प्रतिनिधि को जनता में जाते समय अपने साथ पुलिस की लम्बी कतारों की क्या आवश्यकता ? यह तो राष्ट्र-सेवा न होकर व्यक्ति सेवा हो गयी। फिर राजे-महाराजों और जनता के चुने हुए मन्त्रियों में अन्तर ही क्या रहा ? बारबरा केसल इन सब में विश्वास नहीं करती थीं। मन्त्री पद पर रहते हुए भी वे वैसी ही कार से सचिवालय जातीं, जो देश के सामान्य व्यक्ति को उपलब्ध थी। वे अधिकृत रोल्स रॉयस गाड़ी का प्रयोग ही करती थीं। उनका यह आचरण हमारे राजनेता व जनता दोनों के लिये उपयोगी है, एक को पात्रत्व सिद्ध करने के लिये तथा दूसरे को कसौटी के लिये।

यातायात तथा नियोजन एवं उत्पादन जैसे महत्त्वपूर्ण मंत्री पदों पर रहते हुए उन्हें हड़ताल, बन्द, प्रदर्शन आदि कितनी ही समस्याओं का सामना करना पड़ा। इन सबका हल उन्होंने मेल-जोल से ही निकाला।

यातायात-मन्त्री बनते ही उन्होंने दारू पीकर मोटर चलाने वालों पर तगड़े जुर्माने की सजा का नियम लागू कर दिया। उनके इस नियम के कारण उन्हें आरम्भ में कई धमकियों का सामना भी करना पड़ा, पर वे अविचलित रहीं। इसका शुभ परिणाम पहले ही वर्ष दुर्घटनाओं में १५ प्रतिशत की कमी के रूप में सामने आया। इसके बाद उनकी सूझबूझ व धैर्य का लोहा सभी मान गये।

राजनीति में वर्षों तक भाग लेती रहने वाली श्रीमती बारबरा केसल देश के साथ-साथ परिवार का दायित्व भी सम्हालती रहीं। अपने पति की सेवा में वे उतना ही आनन्द अनुभव करती रहीं, जितना सार्वजनिक सभा में भाषण करने में। राजनीति उनके नारीत्व में लेशमात्र भी कमी न ला सकी। समानता के क्षेत्र में उनका यह व्यक्तित्व एक मील का पत्थर माना जाएगा।

सतत सेवा में निरत—मीरा बेनिट

उसने दर्द से छटपटाती उस निर्धन स्त्री को अपने पलंग पर लेटने को कहा। वह सकुचाने लगी तो उसने आत्मीयतापूर्वक उसे अपने पलंग पर सुला दिया। स्वयं आरामकुर्सी पर ऊँघते हुए रात्रि व्यतीत कर देने तथा अपनी एकमात्र शैय्या रोगी के लिये रिक्त कर देने में उसे बड़ा आत्मसन्तोष मिलता था।

रोगिणी के साथ उसके दो बच्चे भी थे, जिनका पिता मछली पकड़ने गया था। वह कब लौटेगा ? यह निश्चित नहीं था। बहुत सम्भव था, समुद्री तूफान की भेंट चढ़ गया हो। बच्चे भूखे थे। ममतामयी नर्स ने उन्हें अपना खाना दिया। बच्चों से निपटकर वह उनकी माँ की प्रारम्भिक चिकित्सा में जुट पड़ी। रोगिणी तन से ही नहीं मन से भी चिन्तित थी। आज की परिचर्या की फीस तथा कल सौ किलोमीटर दूर स्थित डॉक्टर तक पहुँचने के खर्च की चिन्ता उसे खाये जा रही थी।

शरणदात्री नर्स ने उसे डाँटते हुए कहा—''व्यर्थ की चिन्ताएँ न पालो। मेरी परिचर्या की फीस क्या होगी ? डॉक्टर के पास पहुँचने का खर्च कहाँ से जुटेगा ? यह तुम्हारे सोचने का विषय नहीं, मेरे सोचने की बात है। उसकी व्यवस्था मैं करूँगी।''

दूसरे दिन उसने वह व्यवस्था भी की, यद्यपि वह जानती थी कि इस तूफान, कोहरे तथा बर्फ से भरे न्यू फाउण्डलैण्ड में सौ किलोमीटर की यात्रा व्यय उसके मासिक वेतन से भी अधिक होगा। किन्तु जब सेवा का मार्ग ही अपनाया तो फिर धन का मोह क्या ?

यह किसी काल्पनिक उपन्यास या चलचित्र का अंश नहीं वरन् उस करुणामयी नारी के जीवन की एक सत्य घटना है, जिसने अपना सारा जीवन पीड़ितों तथा दुःखियों की सेवा के लिये समर्पित कर दिया था। यह महिला हैं, इंग्लैण्ड के समीपस्थ द्वीप की प्रथम नर्स श्रीमती मीरा बेनिट।

अस्सी वर्ष की आयु में भी उनका चेहरा सलौना, आवाज मधुर तथा मुस्कान में यौवन का सा उत्साह झलकता था। इस आयु में भी वे अपने उस सेवा धर्म को उसी उत्साह तथा कर्मठतापूर्वक निभा रही थीं। जिसे उन्होंने अपने जीवन के उषाकाल में ही अपना लिया था।

१८९० में इंग्लैण्ड के एक मध्यम वर्गीय परिवार में जन्मी मीरा ने बचपन में कुछ और ही स्वप्न देखे थे। अच्छा घर, सुन्दर-सा पति, फूलों से हँसते-मुस्कराते बच्चे तथा ऐश्वर्यसम्पन्न जीवन के सभी सुख पाने की उसकी कामना थी। किन्तु एक दिन की घटना ने उसके विचारों की दिशा ही बदलकर रख दी।

उसकी आँखों के सामने उसकी माँ ने लम्बी बीमारी भोगी तथा एक दिन वह इस संसार से चल बसी। पिता अपनी सीमित आय से उसकी समुचित

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिकित्सा भी न करवा सके। उसे ज्ञात हुआ कि इस संसार में कितने ही प्राणी यों ही बिना परिचर्या और चिकित्सा के दर्द भोग-भोगकर काल के ग्रास बन जाते हैं। ऐसे लोगों की सेवा में जो सुख मिल सकता है, वह ऐश्वर्यसम्पन्न जीवनयापन में कहाँ मिलेगा। निदान वह नर्स बनकर पीड़ितों की सेवा करने के सेवा-पथ की पथिक बन गई। यह उसका धर्म बन गया।

महानगर लन्दन के सम्पन्न नागरिकों के लिये तो सभी प्रकार की चिकित्सा तथा प्रसूति की सुविधाएँ प्राप्त थीं। अभिजात्य तथा सम्पन्न वर्ग के आवास स्थल साफ-सुथरे तथा भव्य होते थे। इनमें रहने वाले ऐश्वर्य एवं विलास का जीवन बिता रहे थे। किन्तु समूचा महानगर सम्पन्न नहीं था। गन्दी नारकीय बस्तियाँ भी रिसते व्रण की तरह इसके शरीर से चिपटी थीं। इनके निवासी नरक के कीड़ों की तरह इनमें कुलबुलाते थे। करुणा विगलित मीरा ने इन्हीं की सेवा से अपना जीवन आरम्भ किया।

गन्दी बस्तियों में उसने धात्रि का काम आरम्भ किया। उन्होंने खिड़कियों पर पेशबन्द लटकाकर लोगों की नजर बचाकर अनेकों स्त्रियों को प्रसव पीड़ा से मुक्ति दिलाई। परिवार वालों के विरोध करने पर भी उन्होंने अपना यह कार्य बन्द नहीं किया। इनकी सेवा से कई स्त्रियाँ मृत्यु के मुख में जाती हुई बचीं।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय जब इंग्लैण्ड के अधिकांश डॉक्टर फ्रांस तथा अन्य देशों में सेवारत थे। उस समय वहाँ पर धात्रियों तथा नर्सों को ही चिकित्सा सम्बन्धी अधिकांश सेवाएँ निभानी पड़ी थीं। इस समय मीरा ने दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा। जहाँ भी, जब भी उनकी पुकार होती वे वहाँ जाने को तत्पर रहती थीं। अस्पताल तथा अस्पताल से बाहर की आकस्मिक चिकित्सा सेवाओं से उन्हें एक क्षण को फुर्सत नहीं मिलती थी।

इस आपत्कालीन स्थिति ने उन्हें बहुत कुछ सिखाया। चिकित्सा सम्बन्धी नये-नये अनुभव उन्हें हुए। अन्य नर्सें जहाँ ज्ञान और अनुभव के अभाव में किसी गम्भीर स्थिति में घबरा उठती थीं, वहाँ मीरा शान्त तथा आश्वस्त रहती थीं। उनके व्यवहार तथा आशावादी दृष्टिकोण से मरीज की दशा में शीघ्र सुधार होने लगता था।

युद्ध समाप्त होने पर सब यथावत् चलने लगा। मीरा ने गन्दी बस्तियों में रहने वाली महिलाओं को प्रसव पीड़ा से मुक्ति दिलाने का पहले वाला काम अपना लिया।

कनाडा में इन्हीं दिनों नर्सों की बहुत कमी थी। मीरा कनाडा जाने की सोच ही रही थी कि जहाँ उसकी सेवाओं की अधिकतम आवश्यकता हो, वहीं उसे जाना चाहिये। कनाडा जाने का अर्थ था अपना देश छोड़ना, किन्तु वह सेवा के लिये कहीं भी जा सकती थी।

न्यू फाउण्डलैण्ड के गवर्नर चार्ल्स अलेक्जेण्डर हेरिस को अपने द्वीप में सेवाएँ करने के लिए नर्सों की आवश्यकता थी। मिसेज हेरिस ने उनसे पूछा—"क्या वह उस नर्स से मिलना पसन्द करेंगे, जो कनाडा जाने को तत्पर है ? उन्होंने मीरा को भेंट के लिये आमन्त्रित किया तथा उन्हें न्यू फाउण्डलैण्ड में नर्सिंग का काम करने का प्रस्ताव रखते हुए कहा—"हमें वहाँ के लिए नर्सों की बड़ी आवश्यकता है किन्तु कोई वहाँ रहने को तैयार नहीं होती। इस धुन्ध, कुहरे और तूफानों के द्वीप के निर्धन मछुओं के भाग्य पर किसी को भी तरस नहीं आता।" कुमारी मीरा ने उन्हें आश्वस्त करते हुए दृढ़ शब्दों में अपना संकल्प दोहराया—"मैं आजीवन उन लोगों की सेवा का व्रत लेती हूँ श्रीमान् !" मिस्टर हेरिस उनका यह उत्तर सुनकर प्रसन्नता से झूम उठे।

कुमारी बेनिट ने अपनी तीस वर्ष की आयु में जो व्रत लिया था, उसे जीवनपर्यन्त निभाती रहीं। ५०-६० वर्षों में उन्होंने न्यू फाउण्डलैण्डवासियों की जो सेवा की उसका मूल्य नहीं आँका जा सकता। आरम्भ में वे उस ३२० किलोमीटर लम्बे तूफान भरे सागर तट की अकेली नर्स थीं, निकटतम डॉक्टर सौ किलोमीटर दूर था।

न्यू फाउण्डलैण्ड में कई अच्छे सुविधासम्पन्न चिकित्सालय तथा योग्य चिकित्सक हैं, फिर भी द्वीप वासी बूढ़ा हार्डी कहता है—"जब तक नर्स बेनिट के मुँह से यह न सुन लूँ कि तुम्हें कुछ होने वाला नहीं है, मुझे सन्तोष नहीं हो सकता।" चिकित्सालय होंगे, दवाएँ भी होंगी और डॉक्टर भी होंगे, पर पीड़ितों के दर्द को अपना दर्द समझने वाली बेनिट न्यू फाउण्डलैण्डवासियों के लिये एक स्थायी स्मृति बन जायेगी, यह किसे पता था। वस्तुतः मानव जीवन की इससे बड़ी सार्थकता क्या हो सकती है ?

मीरा बेनिट ने तीन हजार से भी अधिक बालकों की धात्री होने का गौरव पाया था। भारतवर्ष में धात्रि को भी माँ कहा जाता है। इस प्रकार वे तीन हजार बालकों की माँ होने का सौभाग्य पा सकीं। यह कार्य उन्होंने बिना किसी प्राप्ति के लोभ से किया। यह उनका व्यवसाय नहीं जीवन का रस था। उनकी अधिकांश आय भी रोगियों की सेवा में भेंट हो जाती थी। शरीर चलता रहे, इतना ही भोजन, शरीर ढँका रहे इतने ही वस्त्र तथा सिर छिपाने को साधारण मकान, यही उनकी भौतिक आवश्यकता रही। वह भी यदा-कदा दूसरों को समर्पित कर देनी पड़ती थी।

जिस प्रकार उन्होंने नर्स का जीवन अपनाने का निर्णय तुरन्त लिया था, वैसा ही तुरन्त निर्णय उन्होंने अपने विवाह के सम्बन्ध में भी लिया। एग्नस बेनिट से उन्होंने १९२२ में विवाह किया। एग्नस उन्हीं की तरह सहृदय तथा सेवाभावी प्रकृति के पुरुष थे। उनका वैवाहिक जीवन मधुर तथा उत्कृष्ट रहा। जब भी मीरा को किसी सहायक की आवश्यकता पड़ी, एग्नस ने उसका दाहिना हाथ बनकर काम किया। वृद्धावस्था में भी इनका दाम्पत्य प्रेम राई-रत्ती कम नहीं हुआ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.२२ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता : -

बेनेट दम्पति का घर अपने आप में एक अस्पताल बनकर रह गया था। उनके रसोईघर को कब-कब आपरेशन थियेटर अथवा प्रसूति गृह बनाना पड़ा था, इसका लेखा-जोखा कर पाना कठिन है। प्रति तीसरे-चौथे दिन उन्हें अपने शयन कक्ष तथा पलंगों को रोगियों के लिये खाली करके अपने छोटे से रसोईघर की शरण लेनी पड़ती थी।

जिन रोगियों की दशा अत्यधिक चिन्ताजनक होती थी, उनको डॉक्टर तक पहुँचाने में भी बेनिट दम्पत्ति को पूरा सहयोग देना पड़ता था। न्यू फाउण्डलैण्ड के निकट गल्फ स्ट्रीम (गर्म) तथा लेब्रेडोर (ठण्डी) धाराएँ मिलती हैं। इन दोनों के मिलने से यहाँ के तटों पर घना कोहरा, तूफान तथा तूफानों का साम्राज्य छाया रहता है। यह प्राकृतिक स्थिति वरदान तथा अभिशाप दोनों हैं। यह जलवायु मछलियों की वृद्धि के लिये वरदान है तथा न्यू फाउण्डलैण्डवासी मछुआरों के लिये अभिशाप भी। इन्हीं अभिशप्त मानवों की सेवा में मीरा बेनेट ने अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया। डॉक्टर तक गम्भीर रोगियों को पहुँचाने की अनेकानेक साहसिक यात्राएँ भी इन्हें करनी पड़ीं। कभी-कभी तो इन दुस्साहसिक यात्राओं में इन्हें दो-दो सप्ताह तक लग जाते थे।

मछुओं के प्राण समुद्र की दया पर निर्भर रहते हैं। न्यू फाउण्डलैण्ड का सागर इन निरीह मछुओं के प्राणों से खेलता ही रहता है। कब किसे एक दिन दो दिन ही नहीं सप्ताहों तक भीषण तूफान से संघर्ष करना पड़े या प्राण गँवाना पड़े, यह निश्चित नहीं रहता। ऐसे प्रदेश में बेनिट दम्पति देवदूत की तरह यहाँ के निवासियों की सेवा में निरत रहे। जब भी कोई घायल अथवा रुग्ण व्यक्ति श्रीमती बेनिट की शरण में आया, वह अपने सब काम छोड़कर उसकी परिचर्या में लग गयी तथा आवश्यकता पड़ने पर तो अपने पति एग्नस को भी अपनी दुकान से बुलवा लेती थी।

अपने लम्बे जीवन में सुख-सुविधा के नाम पर मीरा बेनिट को केवल सेवा का सुख मिला। तितिक्षा की अग्नि में तप-तपकर उनकी आत्मा कुन्दन बन चुकी थी। स्नेह की सरिता उनके हृदय में सदा बहती रहती थी। किसी रोगी के कष्टमुक्त होने पर उसके चेहरे पर जो मुस्कान उभरती थी, यही उनकी आत्मा का भोजन होता था। उसी का छककर उपभोग करने के कारण वे अस्सी वर्ष की आयु में भी स्वस्थ थीं, उनके चेहरे पर वही मुस्कान थिरकती थी, जो यौवन में उगा करती थी।

डेनियल्स हार्बर से आठ किलोमीटर दूर स्थित उनका मकान ३८० किलोमीटर के तूफानी तट के निवासियों की सुख की आशा का केन्द्र-बिन्दु है। समुद्री तूफान का मारा कोई नाविक हो, रोग से जर्जर कोई व्यक्ति हो, या प्रसव पीड़ा से कराहती महिला हो उन्हें मीरा बेनिट के पास पहुँचाया जाता था।

मीरा बेनिट ने स्त्री जाति को अन्य सेवाएँ भी कम नहीं कीं। वे जहाँ भी रहीं, स्त्रियों को अपने तथा अपने परिवार के स्वास्थ्य की रक्षा, बालकों के लालन-पालन के गुरु बताये हैं।

इस सेवा-ममता की मूर्तिमती नारी को इसी जीवन में असंख्य की श्रद्धा का उपहार मिला है। मानव इतिहास के पृष्ठों पर अंकित इनका जीवन आने वाली पीढ़ियों को उनकी तरह निष्काम-सेवा के पथ पर चलने को झकझोरता रहेगा।

विकलांगों के लिये वरदान— मेरी स्कॉट

गिरि सम्राट हिमालय के कंचनजंघा शिखर की मनोहारी छवि देखकर वह स्काटिश धर्मप्रचारिका अभिभूत हो उठी। दिवाकर की स्वर्ण रश्मियों के प्रकाश में स्वर्ण की जंघा-सा द्युतिमान होने वाले इस शिखर की इस मनोरम झाँकी को देखकर ही किसी कवि हृदय ने इसे 'कंचनजंघा' नाम दिया था, जो अब 'कंचनजंगा' कहलाता है। कितनी सुन्दर है यह सृष्टि ? और कितना महान है, इसका रचयिता—परमपिता परमेश्वर। प्रकृति के इस सुन्दर स्वरूप को वह मुग्ध सी निहारती रही। उसका छाया चित्र मेरी स्कॉट नामक इस महिला के मानस पटल पर चिरस्थायी बन गया।

किन्तु इस धरा पर सर्वत्र सुन्दरम् का ही तो साम्राज्य नहीं था। इसी सुन्दर शिखर की पृष्ठभूमि में बसे कलिम्पोग गाँव में आते ही उसकी सुन्दरम् में रमी चेतना को एक ठोकर लगी। उसने एक अन्धे शिशु को देखा जो ईश्वर की इस सुन्दर सृष्टि को देखने, समझने, जानने में असमर्थ था। मेरी उसे देखकर उदास हो गयी। उसे ज्ञात हुआ कि यह सृष्टि सुन्दर है, किन्तु उसे और भी सुन्दर बनाने की आवश्यकता है, पीड़ितों, दीन-दुःखियों की सेवा करके।

सेवा का व्रत तो उसने लिया ही था। धर्म प्रचार के लिये वह अपनी मातृ-भूमि छोड़कर यहाँ आयी थी। अब उसे लगा कि वह जो धर्म प्रचार अब तक करती आ रही थी, वह अधूरा था। सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है और उसने अपना सेवा धर्म चुन भी लिया। उसने निश्चय किया कि वह यहीं एक अन्ध विद्यालय खोलेगी।

मेरी स्कॉट के इसी निश्चय की परिणति हुई अगले ही वर्ष। उसने कलिम्पोंग में एक छोटा-सा अन्ध विद्यालय खोला। जिसमें केवल छह बच्चे थे। विद्यालय में पढ़ने वाले बच्चों के आवास, भोजन, वस्त्र, शिक्षा आदि का सब व्यय विद्यालय की ओर से होता था। इसके लिये उन्होंने अपनी पैतृक सम्पदा का प्रयोग किया। उनके मित्रों-परिचितों ने जब उन्हें अपना जीवन और अपनी सारी सम्पदा, परोपकार के कार्य में लगाते देखा तो उन्होंने भी उनके अन्ध निकेतन को भरपूर आर्थिक सहायता प्रदान

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की। सहायता मिलती क्यों नहीं ? जिस संस्था का आरम्भ ही सर्वस्व दान से हुआ हो, उसकी सफलता के लिये—समृद्धि के लिये भला दूसरे क्यों न सहायता देते।

पूरे चौदहवर्ष तक उन्होंने अपने अथक् परिश्रम द्वारा इस संस्थान को विकसित किया। वे स्वयं इसका संचालन करतीं, बच्चों को पढ़ातीं, उन्हें दस्तकारी, संगीत व ब्रेल लिपि सिखातीं। जब वे वृद्ध हो गयीं तो सन् १९५४ में उन्होंने इस संस्थान का दायित्व जान विलियम बूथ द्वारा संचालित 'मुक्ति सेना' नामक मानवसेवा के लिये संगठित संगठन को सौंप दिया। आज भी यह संस्थान भली प्रकार चल रहा है। इसे स्थापित करके मेरी स्कॉट ने अपने नाम को अमरत्व प्रदान कर दिया। कोई भी लोकसेवी संस्थान संस्थापक के नहीं रहने पर भी समृद्ध और विकसित होता रहता है। मेरी स्कॉट अन्ध निकेतन इसी बात का परिचायक है।

अब यहाँ आठवीं तक ब्रेल लिपि में पढ़ाई होती है। बेंत का कार्य, बुनाई तथा अन्य हस्तलिपि भी सिखाये जाते हैं। यहाँ से अब तक १८६ नेत्रहीन प्रशिक्षण समाप्त करके अपनी अँधेरी दुनिया में उजाला करके चले जा चुके हैं। इस समय यहाँ पर ६० छात्र हैं, जिनमें ४६ बालक तथा १४ बालिकाएँ हैं। जिनमें बाल और किशोर आयु के अन्धे छात्र भी हैं।

प्रायः आठवीं कक्षा उत्तीर्ण करने पर सामान्य बुद्धि के छात्र बुनाई या बेंत कार्य आदि हस्तशिल्प का सीखा हुआ कार्य धन्धे के रूप में आरम्भ कर देते हैं। जो छात्र प्रतिभावान होते हैं, उनका अगला शिक्षाक्रम अन्य अन्ध संस्थाओं से चलता है। इस संस्थान से निकले हुए कई छात्रों ने स्नातक की उपाधियाँ भी प्राप्त की हैं। इसी विद्यालय से निकले तीन छात्र स्नातक परीक्षा पास करने के बाद यहीं शिक्षक का कार्य करते हैं।

निकेतन के नेत्रहीन शिक्षक जान डिक खवास मैसाचुसेट्स, (अमेरिका) के पर्किंस अन्ध विद्यालय से शिक्षण प्राप्त किये हुए हैं। वे पहले इसी विद्यालय में पढ़ते थे। उन्होंने इस संस्थान में छात्रों पर कई मनोवैज्ञानिक प्रयोग किये हैं, जिनमें छात्रों में वैसी अनुभूतियाँ जगायी जा सकती हैं कि वे देख पाने की स्थिति में मिलने वाली जानकारी को भी पकड़ सकते हैं। ऐसे ही एक शिक्षक डैनियल ज्ञानेन्द्र कुमार रांगोग हैं, जो पर्किंस अन्ध विद्यालय में शिक्षा ग्रहण कर चुके हैं। उन्होंने संस्थान में वस्तुपरक विधि का प्रारम्भ किया है।

इस अन्ध-निकेतन की अधीक्षक ब्रिगेडियर डोरोथी पेज कहना है कि भारतवर्ष में नेत्रहीनों को रोजगार देने में लोग हिचकिचाते हैं, जबकि अन्य देशों में ऐसा नहीं होता। यह हमारी मानवीय-संवेदना के अभाव का ही परिचायक है। संस्थान में इस सम्बन्ध में शोध कार्य भी चलते हैं, जिससे कि विकलांगों को रोजगार के अधिक अवसर दिये जा सकें और वे आत्म निर्भर बन सकें।

यहाँ आकर अन्धे बालकों में एक नया आत्म-विश्वास जागता है। वे अन्धे होते हुए भी नितान्त असमर्थ नहीं हैं कि उन्हें दूसरों के सहारे ही रहना पड़े। छात्रों को यहाँ के लिहाज से नहीं बुद्धि की कुशाग्रता के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। यहाँ आ जाने के पश्चात् बच्चों को भोजन, निवास व शिक्षा की सुविधा ही उपलब्ध नहीं होती वरन् उनका भविष्य भी प्रशस्त होता है।

हमारे देश में लगभग पचास लाख नेत्रहीन हैं। इनके लिए अभी जो संस्थान व प्रशिक्षण केन्द्र चलाये जा रहे हैं, वे अपर्याप्त हैं। अभी तो ऐसे सैकड़ों अन्धे निकेतनों के खोलने की आवश्यकता है। इन पचास लाख में से केवल छः हजार लोगों को ही शिक्षण, प्रशिक्षण की सुविधाएँ दी जा सकी हैं, जबकि कोई ६०,००० लोग पढ़ने-लिखने के लिए उत्सुक हैं। इन्हें वह सुविधा जुटाना सरकार व समाज दोनों का दायित्व है।

इस निकेतन का सारा खर्चा भी अमेरिका की दो संस्थाएँ—'वर्ल्ड विजन' और 'मिशन फॉर चिल्ड्रन' करती हैं। जब कोई अन्धा शिशु इस संस्थान में लाया जाता है, तो उसकी सूचना इन संस्थानों को भेजी जाती है। वे संस्थाएँ उससे बालक के लिए कोई अमेरिकी धर्म-पिता ढूँढ़ देती हैं, जो उस बालक का पूरा व्यय-वहन करता है। निस्संतान दम्पत्ति ऐसे बालकों के धर्म-पिता सहज ही बन जाते हैं। इस आधार पर संस्थान का कार्य चलता है। यह सहायता सहज परोपकार के ध्येय से दी जाती है। फिर भी यह हम भारतवासियों के लिये लज्जाजनक ही है कि हम अपने सामाजिक कार्यों के लिये दूसरों का मुँह देखते हैं। एक ओर हमारे यहाँ सन्तानहीन दम्पति बच्चे के लिये सयाने, ओझा से लेकर डाक्टरों तक अपनी दौड़ दौड़ाते हैं। इसके बाद भी बच्चा नहीं पा सकते तो वात्सल्य की उस पूँजी को बिना खर्चे ही कृपण धन की तरह मर जाते हैं। उस वात्सल्य को यदि इन अन्धे बालकों पर उड़ेलें, उन्हें आर्थिक सहायता देकर समर्थ बनाएँ तो उससे भी कई गना तुष्टि उन्हें मिले जो अपने पुत्र पर यह सब निछावर करने पर होती है। क्यों न अपनी इस भूख को उस परमार्थ दिशा में मोड़ा जाय।

दान-पुण्य की जो पुनीत परम्परा यहाँ चली आ रही है, वह रूढ़ि बन जाने से समाज का अहित ही कर रही है। दान-दक्षिणा यदि ऐसे संस्थानों के लिये दी जाय तो उसमें निहित महत्त उद्देश्य की भी पूर्ति हो सके।

सैकड़ों रोगियों की सेवा करने वाली विकलांग—डा. मेरी बर्गीस

एक विकलांग महिला से किसी पत्रकार ने प्रश्न किया—"आपको आस्ट्रेलिया और अमरीका में जाकर चिकित्सा कराने से कितना लाभ मिला ? क्या आप पहले की तरह रोगियों की सेवा कर सकेंगी ?"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.२४ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

महिला ने शान्त संयत शब्दों में उत्तर दिया—''मुझे विदेशों में चिकित्सा के अनेक प्रयोग देखने के अवसर मिले, कह नहीं सकती कितनी ठीक हुई हूँ, पर यह निश्चित है अब अपने मरीजों की बेहतर देखभाल कर सकूँगी।''

स्वयं कष्ट पीड़ित और विकलांग होते हुए भी जिसे अपनी चिकित्सा का उतना ध्यान नहीं रहा, जितना उन कुष्ट रोगियों की सेवा का ध्यान जिन्हें इस देश में शारीरिक कष्ट ही नहीं मिलता मानसिक कष्ट उससे अधिक मिलता है। क्योंकि यहाँ एक अन्धविश्वास जोड़ दिया गया है—कुष्ट उन्हें होता है, जिन्हें इस जन्म अथवा पूर्व जन्मों से भयंकर पाप किए होते हैं। इस मान्यता के कारण उनका स्पर्श और मेल-मिलाप से लगभग निर्वासित जनों की सेवा में अपना तन-मन लगाने वाली यह महिला मेरी बर्गीस के नाम से भारत ही नहीं विदेशों में भी पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुकी है।

कुष्ठ के इलाज में डा. मेरी बर्गीस ने ऐसे आश्चर्यजनक प्रयोग किए हैं, जिनकी चर्चा सारे चिकित्सा जगत में होती है। दिल्ली के क्रिश्चियन मेडीकल कॉलेज में, जहाँ मेरी बर्गीस काम करती हैं, आज भी विदेशों से सैकड़ों डाक्टर उनकी चिकित्सा पद्धति और कुष्ट रोग के आपरेशन में विशेषज्ञता प्राप्त करने की दृष्टि से आते हैं।

इन सफलताओं तक पहुँचने में बर्गीस को श्रम नहीं इतने कठोर संघर्ष करने पड़े हैं कि सामान्य मनोबल और भावना का व्यक्ति सेवा की बात तो सैकड़ों कोस दूर जीवित रहना भी पसन्द न करता किन्तु मनस्विनी मेरी बर्गीस प्रारब्ध के कठिन पत्थरों से भी टकराती हुई आगे बढ़ती रहीं। गौरव इस बात का है कि स्वयं कष्टपीड़ित और विकलांग होते हुए भी उन्होंने कोढ़ी जैसे रोगियों को जीवन दान दिया है और इस परमार्थ में उन्होंने अपने कष्ट-पीड़ित शरीर की भी चिन्ता नहीं की है।

डा. पाल ब्रैंड के निर्देशन में जब वह मेडिकल कॉलेज की पढ़ाई कर रही थीं, तब लोग भविष्यवाणी किया करते थे, मेरी एक दिन बहुत बड़ी डाक्टर बनेगी। यश, सम्मान के साथ विपुल सुख और ऐश्वर्य की स्वामिनी बनेगी।

सुखद कल्पनायें संसार में सभी करते हैं। प्रयत्न भी किए जाते हैं और सफलताएँ भी मिलती हैं, पर जहाँ मनुष्य का भाग्य है, काली छाया की तरह वहीं विधान और परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव भी निश्चित हैं। मेरी बर्गीस ने यश और सम्मान तो पाया, जिस सुख और ऐश्वर्य की लोगों ने कल्पना की वह धूल में मिल गई।

एक दिन वह मोटर में कहीं जा रही थीं कि दुर्घटना हो गई। गम्भीर अवस्था में उन्हें अस्पताल पहुँचाया गया। साँस तो चल निकली, किन्तु जब चेतना लौटी तो उन्होंने देखा उनका आधा शरीर पक्षाघात से बेकार हो चुका है। गहरे जख्मों से चेहरा भद्दा ही नहीं भयानक हो चुका है। आँखों के आगे अन्धेरा झुक गया। कुटिल काल के आघातों से घबराए हुए व्यक्ति की जो स्थिति हो सकती है, ठीक वैसी ही स्थिति मेरी बर्गीस की भी हुई।

डा. पाल के बाद उसे ही वह महत्त्वपूर्ण पद सम्हालना था, इसलिए उनका अपनी शिष्या पर विशेष स्नेह था। वह जब मेरी को देखने गये तो उसे अश्रुपूरित पाया। समझ नहीं सके उसे किस तरह प्रबोध दें। इतना ही कह सके—मेरी ! निराश मत होना। बाधाएँ आती हैं मनुष्यों के सामने, कठिनाइयाँ आती हैं मनुष्यों के सामने। कष्ट भी मनुष्यों की ही सौगात है तो फिर उनसे घबड़ाया क्यों जाय ? क्यों न परमात्मा के विधान को मानकर संतोष रखा जाये।

मेरी सन्तुष्ट भावना से मुस्कराई, जैसे उसने पहले ही वैसी अलौकिक शान्ति पा ली हो जिसका पाल ब्रैंड उपदेश कर रहे थे। अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा—'डाक्टर ! अभी मेरी उँगलियाँ सलामत हैं। आँखें भी बच गई हैं। सर्जरी के लिए यही दो चीजें बहुत हैं। थोड़ा सहारा मिल गया तो मैं अपने रोगियों की देखभाल कर लूँगी।'

ब्रैंड की आँखें भर आईं। सेवा परायणता का वह अलौकिक दृश्य किसे न पिघला देता। मानवता की सेवा की अजीब लगन थी उसके हृदय में, जिसे चोट खाकर भी अपनी चिन्ता नहीं थी। तब भी उसके हृदय में एक ही भावना घर कर रही थी—मैं पीड़ितों की सेवा में किस तरह उपयोगी सिद्ध हो सकती हूँ ?

डाक्टरों का अनुमान था कि यदि रीढ़ की हड्डी का आपरेशन किया जाये तो सम्भवतः मेरी कुछ काम करने योग्य हो जाय, पर यह आपरेशन जिसे लेमीनेन्टमी कहा जाता है, खतरे से खाली न था। मेरी इस आशा से कि वह कार्य करने योग्य हो सकेगी, उस संकट में भी कूद पड़ी। १५ दिन सफलता की अवधि थी, पर जब वह दिन बीत गये और वह खड़ी होने योग्य न हो सकी तो उसे कितनी निराशा होनी चाहिए, इसका अनुमान कोई भुक्तभोगी ही कर सकता है।

मेरी ने तब भी हिम्मत न हारी। उठ सकने में समर्थ न हो पाने पर भी जैसे ही उसका घाव भरा, पहिएदार कुर्सी में बैठकर उसने कुष्ट रोगियों की जाँच, इलाज और आपरेशन करना शुरू कर दिया। ऐसा करते-करते मेरी को चक्कर आ जाते, पर भावना ही तो थी कि उसे तब भी अपने कष्ट का ध्यान नहीं होता, यही लालसा लगी रहती कि कितने मरीजों को देखकर उनकी चिकित्सा की।

''थोड़ी-सी आशा है सो उसके लिए प्रयत्न से क्यों विमुख होऊँ।'' यह आशा रखे मेरी जब हॉस्पिटल से निवास स्थान लौटती, तो वहाँ भी घण्टों मालिश और व्यायाम करती, यह काम बड़ा सख्त था, इसमें पीड़ा भी होती थी, पर ''दूसरों के लिए इस शरीर की सुरक्षा'' के पुनीत उद्देश्य में वे तब भी लगनपूर्वक जुटी रहीं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मेरी की दैवी-परीक्षाओं का अभी अन्त न हुआ। पहियों वाली कुर्सी में लगातार बैठे रहने के कारण रीढ़ में असहनीय दर्द होने लगा। कभी-कभी पीड़ा इतनी बढ़ती कि बेहोशी आ जाती। १९५५ में दुबारा पहले से भी खतरनाक आपरेशन हुआ। कूल्हे की हड्डी काटकर रीढ़ से जोड़ी गई। इस बार भी दर्द तो पूरी तरह न गया पर उन्हें काफी राहत मिली, जैसे ही थोड़ा आराम मिला कि वह फिर अपनी सेवा में जुट गई। धुन ही तो थी, ऐसी लगन से ही मनुष्य मनुष्यपन से उठकर देवत्व पाते हैं।

मेरी चाहती थी किसी तरह वह पैरों के बल खड़ी हो सके, तो थोड़ा अधिक काम करने का अवसर मिले। "जहाँ चाह है वहाँ राह है।" जहाँ प्रयत्न है, पुरुषार्थ है, सफलता भी वहीं है। इन कहावतों के अनुसार मेरी ने एक बार पश्चिमी देशों की यात्रा की और अपने डाक्टरी तथा अनुभव के आधार पर अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में दुबारा इलाज कराया।

उससे पूरा आराम तो नहीं मिला पर मेरी को जिस सेवा की चाह थी, उसका सब बल मिल गया। अब वह इस योग्य हो गई है कि चल-फिरकर अपने रोगियों की देखभाल कर सकती। पीड़ित अवस्था में भी उन्होंने आराम की बात तो कभी सोची ही नहीं। विकलांग हैं तो भी उनकी कार्यक्षमता और परिश्रम को देखकर कोई इस बात का अनुमान नहीं कर सकता।

बाल पक्षाघात पीड़ितों की अग्रजा— सिस्टर केनी

बचपन और किशोरावस्था में व्यक्ति देता कम है और लेता अधिक है। अपने माता-पिता, कुटुम्बीजनों, गुरुजनों, शिक्षकों और समाज के अन्यान्य व्यक्तियों से स्नेह, सेवा, सहयोग और मार्गदर्शन लेता ही रहता है। यौवनकाल में वह देने की ओर उन्मुख होता है। अपने पास जो कुछ है वह किसी दूसरे को दे डालना चाहता है, इस देने में वह अपने जीवन की सार्थकता समझता है। सामान्यतः उसका यह देना थोड़े-से व्यक्तियों के लिए सीमित रहता है—प्रायः एक के लिये। अपने प्रेम को वह एक संकीर्ण दायरे में बाँध देता है। इसे ही सामान्यतः प्रेम कहा जाता है, जो वस्तुतः प्रेम जैसे महान तत्त्व का अवमूल्यन ही कहा जा सकता है।

न्यूसाउथवेल्स, आस्ट्रेलिया के वेरीयालदा नगर में जन्मी एलिजाबेथ केनी को अपने प्रेम का यह अवमूल्यन मानवोचित नहीं लगा। हाँ वह राबर्ट से प्रेम करती थी। उसे अपना जीवन साथी बनाना चाहती थी पर वह इस मूल्य पर नहीं कि वह अपने सेवा और सार्वजनिक प्रेम के आदर्श को त्याग दे। वह रॉबर्ट को प्रेम करने के साथ ही उन दीन-दुःखियों और दुर्बलों की सेवा करना भी चाहती थी, जिनको कोई सहायता नहीं देता था। जिनकी कोई सेवा नहीं करता था।

अपनी प्रेयसी की इस सेवा परायणता और उदारता को रॉबर्ट उचित नहीं समझता था। वह तो चाहता था कि लिजा केवल पत्नी की ही भूमिका निभाये। केवल उसकी प्रेमिका की, पत्नी की और एक बार वह पूछ ही बैठा—"बोलो लिजा विवाह और आदर्श दोनों में से तुम किसे चुनती हो।" विवाह के लिये आतुर रॉबर्ट ने उससे पूछा।

"दोनों को।"

"यह नहीं हो सकता, तुम्हें एक पथ को चुनना होगा।"

'राबी ! क्या तुम्हें प्रेम की एक ही मंजिल नजर आती है—विवाह ? यदि तुम अपने प्रेम को इतना व्यापक नहीं बना सकते कि उसमें परमार्थ और सेवा के लिये भी कोई स्थान हो, तो बेहतर यही होगा कि तुम किसी अन्य लड़की से विवाह करके इस इतनी बड़ी दुनिया में अपनी एक छोटी-सी अलग दुनिया बसा लो। मुझसे तो यह हो नहीं सकेगा। मेरी अंतरात्मा कभी यह स्वीकार नहीं करेगी कि मैं स्वार्थी बनकर अपना एक अलग ही परिवार बसाऊँ, बच्चे-बच्ची पैदा करूँ और केवल उन्हीं में उलझ जाऊँ, यह जानते हुए भी कि इस दुनिया में ऐसे कितने ही अपाहिज बच्चे हैं, जिन्हें मेरी सेवा, मेरी ममता, मेरा स्नेह-संरक्षण की आवश्यकता है। मैं ऐसी निष्ठुर और संकीर्ण कैसे बन सकती हूँ ? विश्व उपवन के अनेकानेक पुष्प-पदार्थों को सींचने की अपेक्षा मैं अपनी गुलाब की क्यारी में ही उलझी रहूँ। यह मुझसे नहीं होगा।"

इस प्रकार अपने प्रेमी के विवाह प्रस्ताव को अस्वीकार करके एलिजाबेथ केनी ने जीवन का एक उच्च उद्देश्य चुना। यही युवती आगे चलकर सेवा, ममता की प्रतिमूर्ति सिस्टर केनी के नाम से विश्वविख्यात हुई। इन्होंने बाल पक्षाघात से पीड़ित बालकों के उपचारार्थ एक प्रभावी चिकित्सा पद्धति खोजी। उन्होंने अपना सारा जीवन ऐसे विकलांग बालकों की सेवा में नियोजित करके दुनिया के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया है कि प्रेम और ममता लुटाने के लिये सारी दुनिया पड़ी है, वहाँ अपने और पराये का भेद भुला दिया जाय।

एलिजाबेथ केनी की ममता थी कि हम जीवन में यदि कोई उच्च लक्ष्य न रखें और बेगार की तरह जीवन टालते रहें, संकीर्ण स्वार्थों में ही उलझे रहें तो यह मूर्खता ही होगी। हम मनुष्य जीवन का कुछ भी लाभ नहीं उठा सकेंगे। जीवन में रस का संचार धन, मान, यश, ऐश्वर्य पुनः पति परिवार, स्वजन आदि नहीं व्यक्ति का अपना जीवन ध्येय करता है। यह जितना उच्च होगा, व्यक्ति उतना ही आनन्द पा सकेगा।

एलिजाबेथ केनी अपने नौ भाई-बहिनों में सबसे अधिक हँसमुख और परिश्रमी थी। उनका छोटा भाई विलियम जिसे सब प्रेम से विली कहा करते थे, बहुत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दुर्बल था। आये दिन उसे रोग घेरे रहते थे। उसके हाथ-पाँव सूखी लकड़ी की तरह बेडोल और कमजोर थे। उसे स्कूल ले जाने व लाने का काम लिजा (एलिजाबेथ के घर का नाम) ने अपने ऊपर ले रखा था।

वह अपने भाई के स्वास्थ्य के लिये बहुत चिन्तित रहती थी। उसे स्वस्थ और प्रसन्न देखने की प्रबल कामना से उन्होंने शरीर विज्ञान तथा व्यायाम सम्बन्धी अनेकानेक पुस्तकों का अध्ययन किया। पत्र-पत्रिकायें पढ़ीं और फिर अपने भाई के लिये आहार और व्यायाम की एक उपचार प्रक्रिया निर्धारित की और पूरे मन से उसे स्वस्थ-समर्थ बनाने में जुट पड़ी।

उनका यह परिश्रम असफल नहीं गया। विली के शरीर व स्वास्थ्य में धीरे-धीरे वृद्धि होने लगी, अपने प्रयासों की सफलता देखकर उनका मन मयूर नाच उठा। असम्भव को सम्भव होते देखकर उनके आत्मविश्वास में वृद्धि हुई। वही दुबला-पतला मरियल-सा विली अपने विद्यालय का शीर्षस्थ खिलाड़ी बन गया। द्वितीय विश्वयुद्ध में वह आस्ट्रेलिया सेना का सबसे मजबूत सैनिक माना गया। इसका श्रेय उसकी बड़ी बहिन लिजा को ही था। उनके मन में विली के इस काया-कल्प ने यह बात जमाकर बिठा दी कि परिश्रम, नियमितता व अभ्यास ही सफलता की कुंजियाँ हैं। उनका यह अनुभव आगे बहुत काम आया। भाई के प्रेम से प्रेरित उनकी यह सेवा आगे चलकर मानवता के आधार पर विकसित हुई।

एलिजाबेथ ने निश्चित कर लिया कि वह नर्स बनकर जीवन भर रोगियों की सेवा करके उस आत्म-सुख को भोगेगी, जो सिर्फ सेवा द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। बड़ी मुश्किल से उसने अपने माता-पिता को इसके लिये तैयार किया कि वे उसे नर्सिंग स्कूल में पढ़ने की स्वीकृति दे दें। नर्सिंग का प्रशिक्षण पाते समय भी वह एक डॉक्टर जितनी योग्यता प्राप्त कर लेने के लिये प्रयत्नशील रहती थीं। चिकित्साशास्त्र व शरीरविज्ञान की जो भी पुस्तक उनकी पहुँच में होती, उसे वे पढ़े बिना न छोड़तीं। परिचित डॉक्टरों को भी वह अपने प्रश्नों द्वारा सदा तंग किये रहती थीं। अध्ययन, चिन्तन और प्रश्नोत्तर के माध्यम से उन्होंने चिकित्सा-विज्ञान की समुचित जानकारी प्राप्त कर ली। नर्सिंग स्कूल का अनुभव तो था ही।

नर्सिंग का प्रशिक्षण पूरा करने के बाद उन्होंने ऐसे लोगों की चिकित्सा करने का स्वैच्छिक सेवाकार्य अपना लिया, जिनकी डॉक्टरों तक पहुँच नहीं थी। आस्ट्रेलिया के उन गरीब लोगों की सेवा को उन्होंने अपना काम मानकर किया। उन्होंने नर्सिंग का प्रशिक्षण कोई नौकरी करने के लिये नहीं, मानवता की सेवा की दृष्टि से ही प्राप्त किया था।

यौवन के पदार्पण के साथ ही सेवा के प्रति उनका यह समर्पण भाव देखकर लोग चकित थे! सामान्य व्यक्ति तो इस आयु को खाने-खेलने की—चार दिन की जवानी रंगीनियाँ भोग लेने की आयु मानते हैं। किन्तु उनकी मान्यता कुछ दूसरी ही थी, वह जवानी ही क्या जो सिर्फ चार दिन की हो। यौवन आयु का नहीं उस उमंग का नाम है, जो असम्भव को सम्भव बनाने के लिए सपने देखा करती है। एलिजाबेथ ने अपनी मान्यता के अनुरूप ही क्रिया-कलाप अपनाये थे।

"बेटी पहले अपना जीवन जी—उसका आनन्द उठा फिर सेवा की बात करना।" उसके पिता कहते।

"पिताजी शुभ काम जितने शीघ्र करलें उतना ही ठीक है, पता नहीं फिर समय मिले या न मिले और जहाँ जीवन का आनन्द पाने की बात है, मुझे इस सेवा में जो आनन्द मिलता है वह अन्यत्र नहीं।" एलिजाबेथ का यह उत्तर कितना तथ्यपूर्ण है।

१९१० की बात है, सिस्टर केनी जब एक छोटे से गाँव में रोगियों को देखने गयीं, तो वहाँ उन्होंने वे छः बालक देखे जिन्हें तीव्र ज्वर के साथ ही पाँव का पक्षाघात हो गया था। अब उनके पाँव सर्वथा बेकार हो गये थे। वह था उनका इस भयंकर रोग से प्रथम परिचय था। इस प्रथम परिचय में ही वे इन बालकों के भावी जीवन की मर्मांतक व्यथा की कल्पना से सिहर उठीं। इन पुष्पों को देखकर वे रो पड़ीं जो खिलने के पहले ही मुर्झा गये थे। दिल दहला देने वाले इस रोग के उपचार के सम्बन्ध में उन्होंने अपने एक मित्र डा. अनीस मेकडोनाल को तार किया। तार का जो उत्तर मिला वह बड़ा निराशाजनक था ....."इस रोग की कोई कारगर चिकित्सा नहीं हो सकती। रोगियों को अपने हाल पर छोड़ दो।"

डॉक्टर मेकडोनाल की यह सम्मति उनके लिए एक चुनौती लेकर आयी थी। वे न तो अपने हृदय को पाषाण बना सकती थीं—न उन्हें यह स्वीकार था कि इन विकसते पुष्प-पादपों को पक्षाघात के तुषार से असमय ही सूख जाने दें। उनका आत्मविश्वास इतना अशक्त नहीं था कि इसे भाग्य की विडम्बना मानकर चुप्पी साध ली जाय। पराजय स्वीकार कर ली जाय। अध्यवसाय और संकल्पों के सहारे इसे विजय में बदलने का उन्होंने निश्चय कर लिया।

निर्णय ले चुकने के बाद क्षणभर की भी देर किये बिना वे अपने काम में जुट पड़ीं। फिर वही क्रम चल पड़ा जो विली के साथ चला था। चिकित्साशास्त्र व शरीरशास्त्र का अध्ययन करके उन्होंने माँस-पेशियों को सक्रिय बनाने वाली व्यायाम पद्धति का निर्धारण किया। इन छह पक्षाघात पीड़ित बालकों पर उन्होंने अपना प्रारम्भिक प्रयोग आरम्भ किया। वर्षों की साधना, सेवा, श्रम, धैर्य तथा आत्मविश्वास के फलस्वरूप उनका यह प्रयोग सफल हुआ। अपनी उपचार पद्धति से वे इन बालकों को स्वस्थ-समर्थ बनाने में सफल हुईं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कम्बलों के टुकड़ों को गर्म पानी में भिगोकर रुग्ण अंग पर मालिश करना, नियमित व्यायाम कराना, सिस्टर केनी को मधुर ममत्व भरा साहचर्य पाना तथा उनकी चमत्कार भरी उँगलियों से मालिश करवाना, इन सबने मिलकर बालकों को नव जीवन दे दिया।

सिस्टर केनी ने डॉ. मेकडोनाल को आमन्त्रित करके जब उन्हें अपने प्रयोग की सफलता से अवगत कराया तो आश्चर्य से उनकी आँखें फैल गयीं। वे उनकी पीठ थपथपाते हुए बोले—''तुमने मानवता को बहुत बड़ी देन दी है। तुम्हारी इस सफलता पर चिकित्सा क्षेत्र में जमे दिग्गज तुम्हें श्रेय भले ही न दें पर देखना एक दिन दुनिया तुम्हारे आगे श्रद्धानत होगी।''

अपनी प्रशंसा सुनकर वे लजा गयीं। वे प्रशंसा की भूखी नहीं थीं, न श्रेय सम्मान की ही। वे बोलीं—''मुझे श्रेय नहीं चाहिए। जो चाहिए वह तो मुझे मिला हुआ है, उसे कोई छीन नहीं सकता। मेरा अधिकार तो वही है—सेवा का अधिकार।

सिस्टर केनी एक सामान्य नर्स थी दुनिया की नजरों में। उनके पास बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ नहीं थीं। अतः एक अण्डर ग्रेज्युएट नर्स द्वारा अन्वेषित यह चिकित्सा पद्धति बड़े-बड़े चिकित्साशास्त्रियों द्वारा अमान्य रही। ''केनी थेरेपी'' वर्षों तक चिकित्सकों के लिये विवादास्पद बनी रही किन्तु सिस्टर केनी को उनसे कुछ लेना-देना नहीं था। वे अपनी चिकित्सा-पद्धति के अनुसार उपचार करती रहीं। व्यक्ति का काम सबसे बड़ा विज्ञापन, सबसे बड़ी मान्यता होता है। पक्षाघात पीड़ित उनके पास आते और लम्बे उपचार के बाद स्वस्थ होकर लौटते। इनमें अधिकांश के पास उनकी फीस चुकाने के लिये भी पैसे नहीं होते थे, पर फीस की उन्होंने कोई चिन्ता की भी नहीं थी। कोई भी रोगी जब स्वस्थ होकर उन्हें हजारवर्ष जीने की दुआएँ देता हुआ अपने घर लौटता, तो उन्हें अपने श्रम व चिकित्सा की फीस मिल जाती आत्मसंतोष के रूप में।

सिस्टरकेनी ने पोलियो चिकित्सा को विशुद्ध सेवा की तरह अपनाया था। दिन-रात सेवा व उपचाररत रहने के बाद भी वे महीनों बाद स्वस्थ होकर विदा होते रोगी से वे एक पैसा भी नहीं स्वीकारती थीं। अपनी जीवन निर्वाह की साधारणतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उन्होंने एक सार्वजनिक चिकित्सालय में नौकरी करली थी। उससे जो वेतन मिलता था, उसका आधा ही उनके अपने लिये पर्याप्त था। शेष का उपयोग भी वह निर्धन रोगियों के लिए करती थीं। कितना तप-त्याग भरा जीवन था उनका। कहना न होगा कि उन्होंने अपना सारा जीवन ईश्वर भक्ति में व्यतीत किया था। सच्ची ईश्वर-भक्ति राम का नाम जपना नहीं राम का काम करना है। जो लोग केवल हरि स्मरण को ही भक्ति मानते हैं—वे भूल करते हैं। सच्चा हरि स्मरण सीखने के लिये सिस्टर केनी के इस जीवन को गुरु बनाया जा सकता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय उन्होंने जो स्मरणीय सेवाएँ कीं, वह नर्सिंग के इतिहास में अपने ढंग का एक ही उदाहरण है। आस्ट्रेलिया के चिकित्सा पाते ही पर सेवारत रहते हुए उन्होंने योरोप व आस्ट्रेलिया के बीच सोलह ट्रिप किये थे।

उन्होंने अपना सर्व स्वबाल् पक्षाघात चिकित्सा के लिये समर्पित कर दिया। उन्होंने ऐसे-ऐसे रोगियों को ठीक कर दिया था, जिनके अच्छे होने की कोई सम्भावना ही नहीं थी। उनकी इस सफलता का समाचार ज्यों-ज्यों फैला त्यों-त्यों उनके पास रोगियों की भीड़ जुटने लगी। चिकित्सा जगत में इस बात का तहलका मच गया कि कैसे एक सामान्य नर्स एक असाधारण रोग से लड़ रही है। अमेरिका सरकार ने उन्हें अपने यहाँ आमन्त्रित किया। मिनिसोटा विश्वविद्यालय के अन्तर्गत 'केनी चिकित्सा संस्थान' नामक एक पृथक् विभाग खोला गया। उन्हें इसकी अध्यक्षा नियुक्त किया गया।

इन सबके होने पर भी उनकी सादगी और सेवा परायणता में कोई कमी नहीं आयी। पोलियो चिकित्सा के लिये उन्होंने विश्व के कई देशों में भ्रमण किया। कई देशों की सरकार ने उन्हें मानद उपाधियों से सम्मानित किया। १९५० में संयुक्त-राष्ट्र-संघ ने भी उन्हें सम्मानित किया। पर सबसे पड़ा सम्मान तो उन्होंने उसी को समझा जो उनकी आत्मा को तृप्त करता था।

१९५१ में जब उनका देहावसान हुआ तो व्यक्तिगत सम्पदा के नाम पर उनके पास कुछ भी नहीं था। सारा संसार ही उनका परिवार था और वही थी उनकी सम्पदा। वे खाली हाथ नहीं गयीं, अपने साथ कितनी ही सूक्ष्म सम्पदाएँ ले गयीं और विश्व को एक आदर्श दे गयीं।

ब्रिटेन की प्रथम महिला डॉक्टर—एलिजाबेथ गेरेट

१८५० का एक दिन। ब्रिटेन के एक सम्पन्न परिवार में आज एकाएक तूफान उठ खड़ा हुआ। इस तूफान उठने का कारण था, परिवार की एक युवती का परम्परा के सर्वथा विपरीत निर्णय लेना। २४ वर्षीया ठिगनी-सी शालीन तथा सुरुचि सम्पन्न यह युवती थी—एलिजाबेथ गेरेट, जो इंग्लैण्ड ही नहीं विश्व की महिलाओं के लिए प्रगति का एक नवीन द्वार खोलना चाहती थी। इंग्लैण्ड के चिकित्सा-जगत में पुरुषों का जो एकाधिकार था, उसे तोड़ने, स्वयं डॉक्टर बनने का निश्चय कर चुकी थी।

मम्मी ने उसका यह निश्चय सुना तो वह भविष्य में होने वाली लोक निन्दा के भय से काँप उठी। उसकी आँखों से आँसू बह निकले। वह अपनी प्रिय पुत्री से इतना ही कह सकी—''लिज्जी, यह अपमान मुझे मार डालेगा।'' पापा की गुस्से से भरी हुई आवाज से घर का वातावरण भर उठा। इन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सब प्रतिक्रियाओं के बावजूद भी एलिजाबेथ का निश्चय अटल था। उसने दृढ़ किन्तु विनम्र शब्दों में अपने पिता से अपनी बात पुनः कही—"पापा ! मैं डॉक्टर बनना चाहती हूँ।"

एलिजाबेथ के पिता, न्यूसन गेरेट ब्रिटेन के सम्पन्न एवं कुलीन नागरिक थे। उनकी सम्पदा का प्रबन्ध वे स्वयं भी बड़ी कठिनाई से कर पाते थे। उन्हें पुत्री का यह निश्चय बड़ा ही आश्चर्यजनक लगा। उनके विचार में मनुष्य प्रत्येक कार्य केवल अर्थ प्राप्ति से प्रेरित होकर करता है। एलिजाबेथ को कौन-सा अभाव है ? यह उनकी समझ में नहीं आया। उन्होंने कहा—"औरतें डॉक्टरी करें। यह तो नर्सिंग से भी अधिक परेशानी का काम है।"

"इसमें परेशानी की क्या बात है ? महिलाओं ने नर्सिंग का काम करके मानवता की कितनी सेवा की है, यह क्रीमिया में फ्लोरेंस नाइटिंगेल के कार्य-कलापों से आप जान ही चुके हैं और फिर ईश्वर द्वारा रचे गये मनुष्य शरीर और उसकी क्रिया-पद्धति के अध्ययन में अपमान की क्या बात है, यह मेरी समझ में नहीं आता।"

मि. गेरेट पुत्री की इस तर्कसंगत बात से सहमत हुए बिना न रह सके। उन्होंने एक और महत्वपूर्ण सत्य को जाना कि मनुष्य केवल धन के इर्द-गिर्द ही नहीं घूमता वरन् लोकसेवा भी उसका अभीष्ट होता है।

एलिजाबेथ के मन में डाक्टर बनने की चाह बचपन से ही थी। सम्पन्न परिवार की कन्या होते हुए भी वह गरीब महिलाओं और बच्चों की दुर्दशा से अपरिचित न थी। डाक्टरों तक उनकी पहुँच नहीं थी क्योंकि उनके पास फीस के पैसे नहीं थे। किसी प्रकार फीस जुटा भी लेते, तो भी उन डाक्टरों से उन्हें उपचार कम उपेक्षा ही अधिक मिलती थी। तभी से उसके मन में डाक्टर बनने की कामना उत्पन्न हुई। किन्तु उसे समाज में कहीं महिला डाक्टर के दर्शन नहीं हुए।

विश्व की एकमात्र रजिस्टर्ड महिला डाक्टर एलिजाबेथ बेकवेल जो कि अमेरिका में थी । एक बार लन्दन भ्रमण के लिए आयी। सौभाग्य से वह उसके विद्यालय में भी आयी। उन्होंने वहाँ प्रवचन भी दिया। इस प्रवचन में छात्राओं से चिकित्सा के क्षेत्र में आने का आह्वान था। एलिजाबेथ गेरेट को इस प्रवचन से बड़ा बल मिला। उसने डा. बेकवेल से परिचय भी प्राप्त किया और अपने मन की बात भी बतायी। एलिजाबेथ बेकवेल जब महिला होते हुए डाक्टर बन सकती है तो वह क्यों नहीं। उसी दिन उसने अपना निश्चय माता-पिता को बता दिया। पहले तो काफी बावेला मचा पर बाद में उसके पिता उससे सहमत हो गये तथा उन्होंने उसे भरपूर सहयोग देने का भी वचन दिया।

उन्होंने लन्दन के प्रसिद्ध डाक्टर से इस सम्बन्ध में परामर्श किया। उसने एलिजाबेथ के विचार को सर्वथा असाध्य बताया। उसका कथन था कि कोमल हृदया होने के कारण महिलाएँ आपरेशन थियेटर के भय और रक्त रंजित क्रिया-कलापों को करने में सर्वथा अनुपयुक्त होती हैं। कोई चिकित्सा संस्थान उसे पढ़ने के लिए प्रवेश नहीं देगा, न मेडीकल बोर्ड उसे परीक्षा में बैठने की स्वीकृति ही देगा। इस प्रकार आशाओं के अंकुरित होते ही उन पर तुषारपात हो गया। किन्तु कुछ अंकुर ऐसे-ऐसे भी होते हैं, जो तुषारों की परवाह नहीं करते हुए पुनः फूट पड़ते हैं। एलिजाबेथ की आशा के अंकुर भी ऐसे ही दृढ़ थे।

सभी मेडीकल संस्थानों पर पुरुषों का आधिपत्य था स्त्रियों के शिक्षण संस्थान होने का तो प्रश्न ही नहीं था। पुरुषों के मेडीकल संस्थानों के द्वार बन्द देख, उसने उभयलिंगी मेडीकल संस्थान का द्वार खटखटाया। उभयलिंगी अस्पताल के गवर्नर विलियम हास ने पहले उसे छह महीने तक नर्सिंग ट्रेनिंग करने की स्वीकृति प्रदान की। इन छह महीनों में उसको सफलता मिलने पर उसे डाक्टरी पढ़ने की स्वीकृति मिल सकती थी।

उन दिनों आपरेशन थियेटर का वातावरण बड़ा ही भयोत्पादक था। शल्य चिकित्सक बिना बेहोशी की दवा सुँघाए आपरेशन करते थे। उनके कोट पुराने आपरेशन के समय लगे रक्त के छीटों से भरे होते थे। अस्पताल के वातावरण में मरीजों की कै की दुर्गन्ध तैरती रहती थी। पहले-पहल तो उसे लगा कि वह सचमुच असफल हो जायेगी किन्तु जब वह यह स्मरण करती कि वह डाक्टर बनकर मानवता की कितनी सेवा कर सकेगी, तो उसका साहस लौट आता था। कुछ समय बाद वह इस वातावरण की अभ्यस्त हो गयी।

धीरे-धीरे उसने अस्पताल में अपना स्थान बना लिया। चिकित्सक उसके साहस व लगन से अत्यधिक प्रभावित हुए। वरिष्ठ चिकित्सक डा. विलीज उसे फिजियालोजी व एनाटोमी के पाठ पढ़ाने लगे थे। किन्तु मुसीबत का यहीं अन्त नहीं हो गया। एक दिन चिकित्सक ने एक प्रश्न पूछा उसका उत्तर ४१ छात्रों में से एलिजाबेथ के अतिरिक्त और कोई न दे सका। चालीस छात्र टापते रह गये और एक महिला ने बाजी मार ली। वे लोग ईर्ष्या से जल उठे। उन्होंने इसे मानापमान का प्रश्न बना लिया तथा हास्पीटल के प्रबन्धकों को विवश किया। "या तो यह लड़की ही पढ़ेगी या हम।" प्रबन्धक इतनी बड़ी जोखिम नहीं उठा सकते थे। अतः अगले वर्ष से इस अस्पताल में भी महिला छात्रों को प्रवेश मिलना बन्द हो गया।

उसने इस दूसरी ठोकर को भी पी लिया। उसने हिम्मत नहीं हारी। उसने ऑक्सफोर्ड, केम्ब्रिज, ग्लासगो, एडिनबर्ग तथा रॉयल कॉलेज ऑफ सर्जन के परीक्षा विभाग से पत्र व्यवहार करके परीक्षा में बैठने की राह खोजना चाहा किन्तु कहीं से भी उसे आशाजनक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्त में उसे एक राह मिली, वह राह थी रॉयल चार्टर के अनुसार सोसायटी ऑफ पोथेकेरीज को यह अधिकार था कि वह पाँच वर्ष की काम सीखे हुए तथा छह महीने तक सार्वजनिक चिकित्सालय का वार्ड अनुभव प्राप्त व्यक्ति को परीक्षा लेकर एम. डी. की डिग्री दे सकती थी। किन्तु इन शर्तों को भी वह पूरा नहीं कर सकती थी। फिर भी उसने उक्त सोसायटी से पत्र व्यवहार किया। उसे प्राइवेट परीक्षा देने की स्वीकृति मिल गयी।

समस्या के एक अंश का समाधान हुआ, अब प्रश्न तैयारी का था। वह डा. डे. के पास अध्ययन करने लगी। एलेक्जेण्डर क्लीनर, एल. एस. लिटल जैसे विवेकशील पुरुष डाक्टरों ने उसे सहयोग दिया। वार्ड अनुभव के लिए इंग्लैण्ड का कोई अस्पताल उसे मेडीकल स्टूडेण्ट मानने को तैयार नहीं था। इसलिए उसे पुनः छह महीने तक नर्सिंग का काम करना पड़ा।

यह सब करने के बाद भी सोसायटी ऑफ अपोथेकेरीज न्यायालय ने उसकी परीक्षा लेने से इन्कार कर दिया। यह वचन भंग उसके पिता को बहुत बुरा लगा। उन्होंने सोसायटी पर दावा दायर कर दिया। अन्त में उन्हें परीक्षा लेने को तैयार होना पड़ा। वह परीक्षा में बैठी और सफल हुई। उसे एम. डी. की डिग्री तो नहीं मिली पर उसे प्रेक्टिस करने का लाइसेन्स मिल गया।

एम. डी. की डिग्री के अभाव में वह किसी सार्वजनिक चिकित्सालय में नियुक्ति नहीं पा सकती थी। अतः उसने अपने पिता की आर्थिक सहायता पर बर्कले स्ट्रीट में अपना निजी चिकित्सालय खोला। इंग्लैण्ड में पहली बार एक नाम पट्ट लगा, जिस पर अंकित था—'डा. एलिजाबेथ गेरेट, एल. एस. ए.' जिसके लिए उसे बहुत बड़ी लड़ाई लड़नी पड़ी थी। उसकी चिर संचित अभिलाषा पूर्ण हुई थी।

उसकी एक बार विजय हुई तो फिर तो विजय के झण्डे फहराते ही चले गये। सरकार को भी उसे डाक्टर मानकर महिलाओं व बच्चों के लिए नयी-नयी ६९ सीमोर प्लेस स्थित सेन्ट मेरी डिस्पेन्सरी की चिकित्सिक बनानी पड़ी।

प्रति सप्ताह सैकड़ों गरीब बच्चे तथा महिलाएँ इस डिस्पेंसरी में नाना विधि रोग से त्रस्त-ग्रस्त हो आते थे तथा रोग से—मुक्ति पाते थे। इसी दिन के लिए वह वर्षों से तरस रही थी। एलिजाबेथ तथा उसकी तीन शिष्याएँ इन लोगों के उपचार में दिन-रात जुटी रहती थीं। लोग महिलाओं की इस सेवा-साधना से बहुत प्रभावित हुए तथा चिकित्सा क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश एक आम बात मानी जाने लगी।

एलिजाबेथ की ख्याति सारे ब्रिटेन में फैल चुकी थी। चार वर्ष के बाद ही पूर्वी लन्दन के शिशु चिकित्सालय की चिकित्साधारी नियुक्त की गई। यहीं उसका परिचय जेम्स स्केल्टन एण्डरसन नामक डाक्टर से हुआ। वे एक-दूसरे से अत्यधिक प्रभावित हुए। कुछ ही वर्षों में वह एलिजाबेथ गेरेट एण्डरसन बन चुकी थी।

इस अस्पताल में उसे एक बार फिर संघर्ष करना पड़ा। अब की बार यह संघर्ष उसके अपने अस्तित्व के लिए नहीं वरन् मरीजों के लिए था। यह चिकित्सालय टेम्स नदी के तट पर था। यह किसी पुराने जहाजी का गोदाम था। इस कारण उसमें सीलन भरी रहती थी। फर्श ऊबड़-खाबड़ तथा छतें नीची थीं। हवा, धूप का प्रवेश ठीक प्रकार नहीं हो पाता था। उसने स्थान परिवर्तन के लिये प्रबन्धकों से संघर्ष किया व सफल हुई।

इन्हीं दिनों पेरिस के एक मेडीकल कालेज में महिलाओं को एम. डी. करने की सुविधाएँ मान्य थी। एलिजाबेथ ने उसमें आवेदन-पत्र भरा तथा उसे यह लाभ उठाने की स्वीकृति मिल गयी। वह पेरिस गयी तथा सफलता प्राप्त की। इस प्रकार वह विश्व की पहली महिला एम. डी. का गौरव पाने में सफल हुई।

वहाँ से इंग्लैण्ड लौटकर उसने अपना स्वयं का अस्पताल खोला, जो आज 'एलिजाबेथ गेरेट एण्डरसन हास्पिटल के नाम से विश्व विख्यात है। यह लन्दन का पहला अस्पताल था, जहाँ महिलाओं को डाक्टरी पढ़ने की सुविधा थी। धीरे-धीरे प्रत्येक चिकित्सालय के द्वार महिलाओं के लिए खुलते गये।

यह अस्पताल आरम्भ में निजी था तथा छोटे आकार में था। धीरे-धीरे यह विकसित होता गया तथा एक सार्वजनिक अस्पताल में परिवर्तित हो गया।

बीस वर्ष तक, जब तक वे जीवित रहीं इस चिकित्सालय की मुख्य चिकित्सक रहीं। अपने परिवार के दायित्वों को पूरी तरह निभाते हुए भी इस निरन्तर प्रगति करते संस्थान को पूरी तत्परता से सम्हालती रही। इस क्रान्तिकारी व संघर्षशील महिला का जीवन व्रत महिला समाज के लिए प्रकाशदीप बनकर जलता रहेगा और कितनों का पथ आलोकित करता रहेगा।

ममता की मूर्तिमती सत्ता— मिस एटीली

पन्द्रहवर्ष के शराबी पिता के पुत्र लारी को पुलिस, न्यायाधीश तथा धर्मोपदेशक सभी मनोरोगी मानकर उसका जेल में रहना ठीक मानते थे। वही जब कुमारी एटीली के पास भेजा गया तो उसके हवाई जहाज से उतरते ही उसने लारी को अपने पुत्र की तरह स्नेह से अपने अंग में भरकर वह दुलार दिया कि वह उनका वशवर्ती हो गया और अपने आपको उनका लायक बेटा सिद्ध करने में जुट गया, छह वर्ष में ही विश्व विद्यालय से बी. ए. ऑनर्स करके अच्छी सर्विस में लग गया।

डेव नाम का एक लड़का जो चाकू-छुरी से ही बात करता था और जो चोरी करते हुए पकड़ा भी गया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

था, उसे भी उन्होंने अपने ममत्व के पारस का स्पर्श कराके कुन्दन बना दिया। अब वह एक डेयरी फार्म का मैनेजर है। उसने बचपन में की हुई चोरियों का धन ब्याज सहित चुकाकर अपने पापों का प्रायश्चित भी कर लिया है।

चुक नामक लड़के को 'यौन मनोरोग' था। वह किसी भी स्त्री को देखकर उससे लिपटना चाहता था। क्योंकि उसकी माँ ने उसे बचपन में स्नेह नहीं दिया था। 'हैप्पी होम' में जब उसे माँ का प्यार मिला, तो वह सामान्य हो गया। वह उसकी कुचेष्टा नहीं वरन् अवचेतन में छिपी स्नेह की भूख थी, जो उनके 'हैप्पी होम' में तृप्त हुई। ऐसे हजारों किशोरों ने उनके 'हैप्पी होम' में आकर नया जीवन पाया।

'स्नेह व दुलार में वह शक्ति है जो जंगली जानवर को भी वश में कर लेती है।' कुमारी एटीली इसका जीता-जागता उदाहरण है। उन्होंने ऐसे-ऐसे किशोरों को सही मार्ग पर ला दिया, जिनके लिये सभी ने एकमत से यह स्वीकार कर लिया था कि उनके लिये जेल की सींखचे ही उपयुक्त हैं।

अमेरिका के सामान्य नौकरी-पेशा परिवार में अपने ग्यारह अन्य भाई-बहिनों के परिवार में उत्पन्न हुई और पालित-पोषित होकर बड़ी हुई कुमारी एटीली जब सत्रह वर्ष की थी, तब उनका एक सहपाठी पारिवारिक स्नेह के अभाव में अपराधवृत्ति अपना बैठा था। टिम नाम के इस सहपाठी के साथ उनकी पूरी सहानुभूति थी। उस समय भी वे इस निष्कर्ष पर पहुँच चुकी थीं कि उसे अनुशासन के साथ-साथ प्रेम भी मिलना आवश्यक है।

१९१७ में जब उन्होंने एम. ए. कर लिया तो लॉस एंजिल्स सेकण्डरी स्कूल में उन्हें अध्यापन का कार्य मिल गया। उन्हें स्कूल की संचालक कमेटी ने शिक्षिकाओं का सुपरवाइजर बनाना चाहा पर उन्होंने १२ से १४ वर्ष के बालकों को पढ़ाने में ही अपनी रुचि दिखाई। यहीं अध्यापन करते हुए उन्हें समाज में कई टिम जैसे अभागे किशोर दिखाई पड़े, जो कैशौर्य के नाजुक दौर में गलत राह पर चलने को विवश हो गये थे। उन्हें राह दिखाने के लिए उन्होंने अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया।

उन्हें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि उसके कई होनहार और मेधावी विद्यार्थी लोहे की सींखचों में बन्द पड़े हैं। ये विद्यार्थी वे किशोर थे जो कि असामान्य अथवा टूटे हुए परिवारों के सदस्य थे।

पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति की यह भयंकर विडम्बना रही है कि वहाँ पति-पत्नी के सम्बन्धों को जन्म-जन्मान्तर तक का बन्धन न मानकर कुछ ही काल का समझौता भर माना जाता है। जब तक पति-पत्नी में अच्छा मेल रहता है, तब तक उनका साथ निभता है और तनिक-सा मतभेद होते ही वे तलाक की राह अपना लेते हैं। ऐसी स्थिति में पति-पत्नी तो उनके झगड़ों से मुक्ति पा जाते हैं, किन्तु बच्चों का भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। स्नेह तथा अनुशासन के अभाव में वे पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं। ऐसे ही किशोरों, विश्व के भावी नागरिकों के प्रति चिन्तित हो उठने वाली यह सामान्य सी स्कूल अध्यापिक ही थी कुमारी एटीली।

यह बात लगभग सन् १९४२ के आस-पास की है। जीवन के आरम्भ में ही इन कोमल हृदय किशोरों को कुकर्मों में निरत देखकर उनका दुःखित हो उठना स्वाभाविक ही था। मानवीय सहज संवेदना के क्षेत्र में नारी पुरुष से सदैव अग्रगण्य रही है। उन्होंने उन किशोरों के दर्द को अपने हृदय में अनुभव किया तथा वे उन्हें इस प्रकार के कुकर्मों से विरत करने के उपाय सम्बन्धी चिन्तन करने लगीं।

समस्याओं पर गहन विचारकर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचीं कि यदि उन किशोरों को सुखी पारिवारिक जीवन मिलने लगे तो उनका ध्यान कभी कुकर्मों की ओर जायेगा ही नहीं। वे अपने जीवन को सँवारने की ओर ध्यान में लग जायँ। जब उन्हें स्नेह, दुलार मिलेगा तो वे स्वयंमेव ही अनुशासित रहने लग जायेंगे। किन्तु समस्या यहीं हल नहीं हो गयी क्योंकि उन दिनों ऐसे कोई पुनर्निवेश गृह सुखी पारिवारिक जीवन उपलब्ध करने वाले संस्थान नहीं थे।

कुमारी एटीली ने ऐसे पुनर्निवेश गृहों की अत्यधिक आवश्यकता अनुभव की। सब ओर नजर दौड़ाने पर भी उन्हें ऐसी व्यवस्था कहीं नजर नहीं आयी, तो उन्होंने स्वयं ही अपनी सीमित सामर्थ्य से ऐसे पुनर्निवेश गृह स्थापित करने की ठान ली, जिन्हें उन्होंने 'हैप्पी होम' की संज्ञा दी।

इन सबके लिये लिए काफी धन की आवश्यकता थी और धन का उनके पास लगभग अभाव ही था। वे दान माँगकर 'हैप्पी होम' की स्थापना करने में भी विश्वास नहीं करती थी। ऐसे समय उनके अन्तःकरण में अनूठा आत्मविश्वास जाग उठा और वे ईश्वर का नाम लेकर धन कमाने में जुट पड़ीं। उन्होंने बैंक में जमा अपनी सारी पूँजी जो ४७५ रुपये थी, निकलवा ली, जिसे उन्होंने अपने ९५० रुपये प्रतिमाह के वेतन में से बचायी थी। इसी मूल पूँजी को उन्होंने व्यापार में लगाया जो बढ़ते-बढ़ते एक करोड़ चालीस लाख रुपये तक पहुँच गयी। इस पूँजी से प्रतिवर्ष छह लाख रुपये का ब्याज मिलता है और इसी ब्याज की राशि से उनके चौदह 'हैप्पी होम्स' चलते हैं।

उनका यह स्वप्न जिसको साकार कर दिखाया, लोगों की निगाह में पूर्णतः असम्भव ही था। उसे उन्होंने अपनी सूझ-बूझ, दूरदर्शिता, प्रबल पुरुषार्थ, दृढ़ इच्छाशक्ति तथा अटूट आत्मविश्वास के साथ साकार करके दिखा दिया। जिससे हजारों किशोरों का जीवन उपवन महक उठा। वे जेल व अपराध के मार्ग से हटकर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने जीवन को सुन्दर बनाने में जुट गये तथा उसमें सफल भी हुए। कुमारी एटीली की इस सफलता ने दूसरे लोगों के लिये भी ऐसी किशोरोपयोगी कल्याण गृह खोलने की राह खोल दी तथा उनकी सफलता से प्रेरित हो ऐसा एक अभियान ही योरोपीय देशों में चल पड़ा।

उन्होंने 'हैप्पी होम' की संरचना एक बड़े परिवार के ढंग से ही की, अनाथालय तथा सरकारी सुधारगृहों की पद्धति पर नहीं। उनको वे निरर्थक मानती थीं। किशोरों को पेटभर भोजन तथा पर्याप्त अनुशासन के साथ-साथ स्नेह-दुलार भी चाहिये था, जो इन संस्थानों में नहीं मिल पाता था। उन्होंने ऐसा सुगम रास्ता खोजा, जिससे कम लागत में ही उनकी योजना सफल हो सके। अपने स्वयं के परिवार का अनुभव यहाँ उनके बड़ा काम आया। उन्हें पता था कि उनके पिता ने अपने बारह बच्चों को किस प्रकार से अपनी सीमित आय तथा अपर्याप्त साधनों में भी योग्य नागरिक बनाया था, अपना स्नेह-दुलार, संरक्षण, पोषण व अनुशासन देकर।

उन्होंने ऐसे दम्पत्तियों को खोजा जो अपने थोड़े से बच्चों के साथ दस-बारह दूसरे बच्चों का भी पालन-पोषण कर सके। इस पालन-पोषण के लिये उन्हें खर्च मिल जाता था। इसमें उन्हें काफी लाभ होता था, क्योंकि घर उनका अपना होता था। रसोई एक ही चूल्हे पर बनती थी। इसमें कुमारी एटीली को भी पृथक् संस्थान खोलने की अपेक्षा आधा ही खर्च देना पड़ता था। लोगों का इसमें लाभ था। 'हैप्पी होम्स' में रहने वाले बच्चों के अपने संरक्षक 'मैनेजर' या 'सुपरिन्टेन्डेन्ट' नहीं उनके 'मम्मी', 'पापा' कहलाते थे। यह सब कुछ पारिवारिक स्तर पर चलता था।

दान लेकर समाज-सेवा करने में विश्वास नहीं रखने वाली कुमारी एटीली ने कुछ सौ रुपये तो अपने बैंक के बचत खाते से पाये, कुछ अपनी जीवन-बीमा पालिसी पर ऋण लिया और कुछ रुपये अपने घर के अनावश्यक सामान को बेचकर जमा किये, कुछ अपने वेतन पर अग्रिम लेकर उन्होंने भूमि खरीद-विक्रय का पार्ट टाइम व्यवसाय आरम्भ कर दिया। उसके लिये अनुभव की कमी थी तो तत्सम्बन्धी पुस्तकों का स्वाध्याय करके उन्होंने अनुभव प्राप्त कर लिया। उन्होंने सर्वप्रथम लॉस एंजिल्स में एक भू-भाग ४७५० रुपये में खरीदा और २३७५० रुपये में बेच दिया। उसके लाभांश से उन्होंने अपने इस व्यवसाय को और बढ़ाया। इस प्रकार उनका धन बढ़ता ही गया।

उन्होंने अपने मूल धन से मिलने वाले लाभांश से १९५० में पहला 'हैप्पी होम' केलिफोर्निया में खोला। अब तक ऐसे चौदह 'हैप्पी होम' वे खोल चुकी हैं। अपने ढंग से उन्होंने ठुकराये हुए असामान्य तथा विघटित परिवारों के किशोरों को आह्लादपूर्ण पारिवारिक जीवन देकर उनकी कुम्हलाती हुई जीवन वल्लरी को हरा-भरा कर दिया है।

उनका कहना है कि माँगे हुए धन से सद्कार्य करना मुझे नहीं भाता। मुझे अपने ईश्वर पर विश्वास है। जो हमारे मन्दिर में बैठा हुआ हमें अपने आदेश देता रहता है, मार्गदर्शन देता रहता है। उसके आदेशों को निष्काम भाव से पालते जायँ, उसकी आवाज को सुनते जायँ तो उसके कामों के लिये धन जुटाना सहज हो जाता है। अब करोड़ों की स्वामिनी होते हुए भी वे सीधी-सादी स्कूल टीचर जैसी ही रहती हैं। लॉस एंजिल्स के एक साधारण से मकान में वह रहती हैं। उनके मातहत अब ब्यालीस व्यक्ति कार्य करते हैं। फिर भी वे अपनी डाक ८० वर्ष की वृद्धावस्था में भी स्वयं ही लिखती हैं, अपने सभी काम वे अपने हाथों से ही करती हैं।

वे आजीवन अविवाहित रहीं। उन्होंने अपने हाथ में जो महत्त्वपूर्ण काम ले लिया था, उसे पूरा करने के प्रयासों में उन्हें विवाह के विषय में सोचने की फुर्सत भी नहीं मिली। फिर भी वे अपने नारीत्व को, मातृत्व को सफल कर चुकी हैं। उनके हजारों धर्म पुत्र उन्हें श्रद्धा के साथ पूजते हैं। उन्होंने नारी की ममता व दूरदर्शिता का नूतन इतिहास रचकर अमरत्व पा लिया है।

एक आदर्श परिचारिका—सुगाको

१९४५ में युद्धोत्तरकालीन जापान सरकार ने जिन सेवाभावी स्त्रियों को राजकीय सम्मान दिया, उनमें सुकागो कुमासे का नाम प्रमुख है। युद्ध के समय उनकी आयु मात्र पन्द्रह वर्ष की थी। परन्तु अपनी माँ के साथ बन्दूक के धमाकों और बम के विस्फोटों से भी बिना डरे, घबराये सुगाको ने हजारों लोगों को नवजीवन दिया।

सुगाको एक सहृदय जापानी महिला की पुत्री हैं। उनकी माँ का स्वभाव दयार्द्र और सहानुभूति से परिपूरित है। युद्ध के समय सुगाको की माँ ने शत्रु-मित्र की परख किये बिना ही शरणापन्न को अपने घर में स्थान दिया, भोजन करवाया और स्वयं जमीन पर सोकर भी आगत को उपलब्ध बिस्तर पर सुलाया। उस समय सुगाको के परिवार में कोई भी पुरुष सदस्य नहीं था। पिता का देहान्त कई महीनों पूर्व हो चुका था, उनकी बहिन अपने पति के साथ रहती थी जो एक ऑफिस में क्लर्क था।

नितान्त एकाकी और असुरक्षित जीवन, फिर भी सुगाको सदैव अपनी माँ के चेहरे पर मुस्कान देखती। भय और खतरे की सम्भावनायें होते हुए भी सुगाको की माता निश्चिन्त भाव से सेवा करतीं। इस मार्ग पर निर्भय और निश्चिन्त रहकर ही चला जा सकता है। मन में आशंकायें और भय रखकर न तो कोई इस मार्ग पर आगे बढ़ा है और न बढ़ सकता है।

सुगाको भी अपनी माँ की यथासाध्य मदद करती रहती और धीरे-धीरे इस मार्ग पर अपनी माँ से भी आगे निकल गयी। उन्होंने तुरन्त ही टोकियो के एक नर्सिंग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्कूल में अपना नाम लिखवा लिया। परिचारिका के योग्य निर्धारित कक्षा तक पढ़ी-लिखी न होने के बावजूद भी उन्हें तात्कालिक आवश्यकता के लिए स्कूल में प्रवेश मिल गया।

जापान उस समय नारी-शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ा हुआ था। स्कूलों में छह वर्ष तक आयु के बालक-बालिकाओं के लिए शिक्षा अनिवार्य तो थी परन्तु इसके बाद लड़कों और लड़कियों को अलग शालाओं में भर्ती होना पड़ता था।

लड़कियों के स्कूल बहुत कम थे। आगे पढ़ाई के लिए शहर जाना पड़ता था। पितृहीन सुगाको का परिवार इसकी व्यवस्था नहीं कर सका और उनकी शिक्षा को दीर्घ विरामचिह्न लग गया। जापान में तब शिक्षा की आवश्यकता यहीं तक मानी जाती थी कि लड़की खाना बनाना, कपड़े धोना और घर सम्हालना सीख ले। इसलिए सामान्य लड़कियों की एक नाममात्र की शिक्षक उनकी माँ ही होती थी।

नर्सिंग स्कूल में प्रवेश देते समय शाला के अधिकारियों ने समझा था कि ये सब परिचारिकायें युद्ध समाप्त होने के बाद सेवा निवृत्त हो जायेंगी। इसी दृष्टि से और तुरन्त आवश्यकता होने के कारण सुगाको और उनकी सहपाठिनी छात्राओं को परिचर्या का संक्षिप्त पाठ्यक्रम पढ़ाया गया।

वे शीघ्र ही प्रशिक्षित होकर सेवा के क्षेत्र में आ गयीं। युद्ध और महामारी की दोहरी भारी मार पड़ने पर उन्होंने रात-रात भर जागकर सेवा-साधना की और रोगियों को अपनी मुस्कान से ही आधा नीरोग बना दिया। वे इस पेशे के लिए इस कारण आकर्षित हुई थीं कि उन्होंने सोचा था, देशवासियों की सेवा का यही अच्छा अवसर है। इसलिए युद्ध समाप्ति के बाद उन्होंने अन्य परिचारिकाओं को अवकाश मिलने से पहले ही अपना त्यागपत्र दे दिया और आगे पढ़ने का विचार करने लगीं।

युद्धोत्तर अस्त-व्यस्त स्थिति में भी उन्होंने अपनी माँ के सहयोग से आगे पढ़ने का प्रबन्ध किया। परन्तु अभी वर्ष भर भी नहीं हुआ था कि उन्हें टोकियो के समीपस्थ उमङ्गाओं सेतगाया स्वास्थ्य केन्द्र में कार्य करने का निमन्त्रण मिला। इसकी उन्हें आशा भी नहीं थी।

यह स्वास्थ्य केन्द्र तपेदिक के विरुद्ध अभियान चलाने के लिए स्थापित हुआ था। इसकी परिचारिका होने के कारण उनके सम्मुख बड़े उत्तरदायित्व थे। स्वास्थ्य केन्द्र के अधिकारी से परामर्शकर उन्होंने पाया कि देशवासियों की सेवा का एक और अवसर उनके सामने आया है। जिसे किसी भी दशा में हाथ से नहीं खोना है। वस्तुतः सेवाभावी तो अपनी आवश्यकता के अवसर तलाश करते ही रहते हैं। जब भी उनकी आवश्यकता होती है, वे प्रस्तुत होते हैं और उत्साहपूर्वक निर्धारित दिशा में बढ़ने लगते हैं। स्वास्थ्य-केन्द्र की परिचारिकायें लोगों को निःशुल्क परामर्श देती हैं। गोष्ठियाँ आयोजित करती हैं। मच्छर-मक्खियों और महामारियों को परास्त करने के लिए अभियान चलाती हैं।

सुगाको इस सेवाभावी संगठन में सम्मिलित होकर नागरिकों को स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य नियमों का पालन और ध्यान रखने के लिए प्रेरित करने लगीं। जिससे बीमारी और रोगों से सर्वसाधारण की सुरक्षा हो सके। सुगाको ने अपने ऊपर एक और विशेष उत्तरदायित्व लिया, वह था माताओं को सन्तान-पालन की शिक्षा देना।

चूँकि सुगाको ने परिचर्या का कार्य व्यवसाय के रूप में नहीं अपनाया था। वह तो विशुद्ध सेवा भाव और माँ की सहृदय प्रकृति के संस्कारों से प्रेरित होकर ही इस क्षेत्र में आयी थी इसलिए उन्हें इन कार्यों में कभी भार और विवशता का अनुभव नहीं हुआ।

तब सुगाको की माता ने उनके विवाह की बात चलायी। परन्तु एक नर्स से विवाह करने के लिए कोई भी तैयार नहीं हुआ। कारण उस समय जापान में परिचारिका का पेशा बहुत गन्दा और घृणित समझा जाता था। उनकी माँ को इस स्थिति से बड़ी निराशा और ग्लानि हुई। यों तो जापान जैसे उन्नत राष्ट्र में नर्सों को आज भी वह सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं है, जो दूसरे सामान्य व्यक्ति को भी आसानी से मिली होती है।

विवाह के लिये कोई तैयार न हुआ देखकर माता की निराश मुद्रा ने सुगाको को चिन्तित कर दिया और एक दिन उन्होंने अपनी माँ से कहा कि मैंने अपने उपयुक्त वर तलाश कर लिया है और वह है मेरा अपना काम। दाम्पत्य सुख मुझे नहीं मिल सकता तो इसका कोई रंज नहीं है।

सचमुच वह अपने कार्य में इतनी तन्मय और एकाकार हो गई थीं कि उन्हें गृहस्थ सुख का अभाव खलना तो दूर रहा, महसूस तक नहीं होता था। समाज की अन्ध-मान्यता-सेवा और परमार्थ से सरावोर परिचर्या कार्य को हेय दृष्टि से देखे तो देखती रहे। साधक का इससे क्या बनता-बिगड़ता है। उन्होंने क्वारेपन को अपनी सेवा-साधना के लिए वरदान समझा और अहर्निशि इस साधना में लगी रहीं।

समाज की विकृत मान्यताओं और धारणाओं का शिकार होकर तड़पते रहने की अपेक्षा उसे वरदान समझकर लाभ उठाने की कला जिसे आ गयी, वह हर दशा में अपना काम यथावत् जारी रख सकेगा। सुगाको इस कला में प्रवीण थी और सेवा-साधना में तन्मय। इसलिए न तो उन्हें शिकायत करने की सूझी और न समाज को गाली देने की।

वे स्वास्थ्य-विभाग के कर्मचारियों के साथ हमेशा दौरे पर जाया करतीं और इस दौरे के क्रम में समाज के सभी वर्गों के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता। नाई की दुकान से लेकर सार्वजनिक स्नानागारों तक सुगाको

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को जन-स्वास्थ्य का परीक्षण करने के लिए जाना पड़ता और तरह-तरह के लोग उनसे परोक्ष अश्लील व्यवहार करते। उन सबको ममतापूर्ण मातृ-हृदय से भुलाकर सुगाको सेवा में तत्पर रहती।

यही नहीं उन्हें और भी कई दिक्कतों का सामना करना पड़ा। सामान्य आदमी विशेषतया महिलायें अपनी स्वास्थ्य-स्थिति का आसानी से समाचार नहीं देते। बिना ऊबे उनसे प्रश्न-परिश्रम करते रहना और उत्तर देने का आग्रह करना सुगाको जैसी सेवा-सिद्ध स्त्री के लिए ही सम्भव था। इसलिए ऐसे हर अवसर पर उन्हें ही याद किया जाता।

देश की स्वास्थ्य समस्या का समाधान कब और कैसे इसकी चिन्ता किये बिना परिणाम के प्रति निरपेक्ष रहकर काम करने वाली कर्मयोगी अब लगभग ४५ वर्ष की हो गयी है। अब भी उनकी यही साध है, देशवासी स्वस्थ और समुन्नत स्तर का जीवन जियें।

अपने साधारण से कार्य में उत्कृष्ट भावनाओं का समावेश कर विश्व और राष्ट्र के लिए सम्मान के अधिकारी बनकर उन्होंने कर्मयोगी की साधना को अपने जीवन में साकार कर लिया है।

सजीव सेवामूर्ति—श्रीमती लस्सीचेस

श्रीमती लस्सीचेस इंग्लैण्ड की रहने वाली थीं। उनके पति भारतीय-सेना में मेजर के पद पर थे। भौतिकवाद की समर्थक ब्रिटिश सभ्यता में पली नारी और फिर एक फौजी मेजर की पत्नी—लस्सीचेस, बड़े ठाठ-वाट से रहतीं और सैर-सपाटा करतीं। जिन्दगी उनके लिए एक उत्सव के समान थी और उसे उसी प्रकार जी भी रही थीं।

श्रीमती लस्सीचेस को दो खास शौक थे। एक, फिल्म देखना और दूसरा, मित्रों को दावत देना। उनके घर आयेदिन मित्रों की दावत होती रहती है और हर नये चित्र को वे देखे बिना न रहतीं। पैसे के सम्बन्ध में लस्सीचेस पति पर ही निर्भर न रहती थीं। उन्हें अपने पिता से वसीयत में एक लम्बी रकम मिली हुई थी। पैसे की उन्हें जरा भी कमी न थी।

एक लम्बे अरसे तक उनका यह जीवन चलता रहा फिर सहसा एकदम बदल गया। यह परिवर्तन उनमें तब हुआ जब वे कुछ समय भारत में अपने पति के साथ रहकर लन्दन वापिस आ गईं। भारत-प्रवास के बाद से उन्होंने शराब पीना छोड़ दिया। रंगीन, कीमती और तड़क-भड़क वाले कपड़ों में उन्हें अरुचि हो गई। रहन-सहन में सादगी और आचार-विचार में शालीनता आ गई। उनका खर्च हजारों से घटकर सैकड़ों में प्रतिमास तक आ गया। भारत से आने के बाद श्रीमती लस्सीचेस में एक अप्रत्याशित सन्तत्व आ गया।

परिचितों, मित्रों और सखी-सहेलियों को श्रीमती चेस के इस आमूल एवं आकस्मिक परिवर्तन पर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपने लिए इस असहनीयता से व्यग्र होकर पूछ ही बैठे—"श्रीमती चेस ! हम सब देखते हैं कि आप जब से भारत-प्रवास से वापिस आई हैं, तब से आपका जीवन ही बदल गया है। आखिर ऐसा कौन-सा शोक आपके हृदय में घुस बैठा है, जिससे आप जिन्दगी से उदासीन हो गई हैं ?"

श्रीमती लस्सीचेस ने मित्रों को धैर्यपूर्वक सुना और उत्तर दिया—"भारत-प्रवास के समय मैं उसके प्राचीन साहित्य को पढ़ चुकी हूँ और उसकी प्रेरणा से मुझे यह प्रकाश मिला है। जो शान्ति सादगी में है, उसका रंचमात्र प्रदर्शन में नहीं है। फिर भी अभी मेरा जीवन अपूर्ण है। कुछ ही समय में मैं उसकी पूर्ति करने का कार्यक्रम चलाने वाली हूँ।

वास्तव में कुछ ही समय बाद लोगों ने देखा कि श्रीमती लस्सीचेस ने समाज-सेवा का कार्यक्रम शुरू कर दिया। उन्होंने लन्दन की मजदूर तथा गरीब बस्तियों में जाना और स्वच्छता तथा शिक्षा का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। वे गरीब तथा महिला-मजदूरों और उनके बच्चों को स्वयं पढ़ातीं और शराब व सिगरेट पीने से विरत करतीं। अपने जीवन का उदाहरण देकर उन्हें जीवन का सच्चा मार्ग बतलातीं और अनुभव करातीं कि गरीबी में भी सुन्दरतापूर्वक रहा जा सकता है, यदि उसे दुर्व्यसनों से दूषित न किया जाये।

श्रीमती लस्सीचेस अपने शौक आदि पर जो रुपया खर्च करती थीं, वह अब अपने पर खर्च न करके समाज-सेवा व गरीबों की सेवा में खर्च करने लगीं, जिससे उन्हें न केवल आत्म-शान्ति ही मिलती बल्कि वे अपने सेवा-क्षेत्र में देवी के रूप में पुजने भी लगीं।

कुछ समय बाद उनके पति का देहान्त हो गया। उनके मित्रों तथा सम्बन्धियों ने बहुत कुछ समझाया कि वे फिर विवाह कर लें और अपनी सम्पत्ति का जी भरकर उपभोग करें। श्रीमती चेस इसके लिए किसी प्रकार भी तैयार न हुईं। उन्होंने हर बार यही उत्तर दिया कि, "मैं समाज हूँ, मेरी सम्पत्ति समाज की है। उसे फूँकने और बहाने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। अब इसका व्यक्तिगत जीवन में उपभोग करने का प्रश्न ही नहीं उठता। हाँ, इसका सामाजिक हित में सदुपयोग अवश्य करूँगी।" श्रीमती चेस की इस दृढ़ता एवं उच्चता से प्रभावित होकर उनके सम्पर्क में आने वाली न जाने कितनी महिलाओं का जीवन बदल तथा सुधर गया।

कुछ समय बाद जब उनकी मृत्यु हुई तो उनकी वसीयत के अनुसार उनकी लाखों की सम्पत्ति इंग्लैण्ड के गिरजाघरों को बाँट दी गई, जिन्हें उस देश में सच्चे धर्म, गरीबों की सहायता तथा उन विधवाओं की मदद में खर्च करने के लिए निर्देश दिया गया था, जो पुनः विवाह न कर शेष जीवन उन्हीं की तरह समाज की सेवा में लगाने की इच्छुक हों।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य देवता की आराधिका—
एडविना माउण्टबेटन

द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो चुका था। इंग्लैण्ड के माउण्ट बेटन जो बाद में भारत के अन्तिम वायसराय बनकर भी आये थे—ने शत्रु का सामना करने के लिए रणक्षेत्र का मोर्चा सम्हाला और शत्रु सेना को पीछे धकेलने लगे। महायुद्ध में एक्सिस पॉवर बने देशों को भी कमजोर नहीं कहा जा सकता। इन अर्थों में माउण्टबेटन के पीछे हर क्षण मौत खड़ी थी और वे उससे साक्षात करने के साथ-साथ उससे लोहा भी ले रहे थे। ऐसी स्थिति में किसी पत्नी का, जब उसका पति मौत से जूझ रहा हो तो निश्चिन्त हो किसी कार्य में लगे रहना प्रायः सहज सम्भव नहीं है। परन्तु—लुई माउण्टबेटन की धर्मपत्नी एडविना इन विषम क्षणों में भी गृहक्षेत्र में मोर्चा सम्हाले रहीं। गृहक्षेत्र अर्थात् निजी परिवार नहीं पूरा राष्ट्र परिवार। माउण्ट बेटन ने देश की रक्षा के लिये सीमा पर मोर्चा सम्हाला था तो उनकी धर्मपत्नी ने अन्तर्बल बनाये रहने के लिए देश की अन्दरुनी समस्याओं से जूझने के लिए मोर्चा सम्हाला। वे जनसामान्य का मनोबल बनाये रखने के लिए आवश्यक प्रयासों के साथ-साथ घायल सैनिकों की चिकित्सा के लिए भी काम कर रही थीं। चिकित्सा के लिए एम्बुलेन्स तथा नर्सिंग कार्यकर्ताओं को संगठित करने में उन्होंने अद्वितीय योग्यता का परिचय दिया था और उसमें उल्लेखनीय सफलता भी अर्जित कर दिखाई थी।

महायुद्ध अपने पूरे उफान पर था। इंग्लैण्ड के ऊपर दिन-रात गोलाबारी हो रही थी। एक क्षण को भी न रुकने वाली निरन्तर गोलाबारी चल रही थी और सैकड़ों नागरिक रोज मरते चले जा रहे थे, घायलों की संख्या तो उनमें और भी अधिक थी। लेडी माउण्ट बेटन ने ऐसे लोगों की सेवा-सुश्रूषा में अपने आपको खपा दिया, उधर माउण्ट बेटन अपनी और अपने परिवार की चिन्ता छोड़कर सीमा पर जूझ रहे थे, तो इधर लेडी माउण्ट बेटन देश के भीतर देशवासियों की सेवा में लगी रही थीं। लॉर्ड माउण्टबेटन को दक्षिणी पूर्वी एशिया में ब्रिटेन की पूर्वी कमान के सुप्रीम कमाण्डर पद पर शत्रु से जूझने के लिए भेज दिया और लेडी माउण्ट बेटन में आन्तरिक व्यवस्था को सम्हालने में उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका निभायी।

इस प्रकार पारिवारिक दायित्वों और सुख-सुविधाओं का सामाजिक सुख-शान्ति के लिए बलिदान कर देने वाली लेडी माउण्टबेटन ने वैसा ही साहस उस समय भी किया था, जब उन्होंने पति के रूप में लॉर्ड माउण्ट बेटन को चुना। लुई माउण्टबेटन को भी कम साहस नहीं करना पड़ा था, एडविना को जीवन साथी के रूप में चुनने का निर्णय करते समय। एडविना थीं सामान्य परिवार की सदस्या और लुई माउण्ट बेटन राज परिवार से सम्बद्ध थे। दोनों की पारिवारिक स्थिति में तो कहीं साम्य नहीं था, पर आन्तरिक दृष्टि से दोनों ही एक-दूसरे से समानता रखते थे। दोनों का उद्देश्य और जीवनलक्ष्य था समाज सेवा व दोनों ही इस लक्ष्य के प्रति अन्तर्निष्ठा से समर्पित थे।

लुई माउण्ट बेटन जानते थे कि एडविना से विवाह करने पर एक तूफान-सा उठ खड़ा होगा, जिसका जन्म घर-परिवार या बाहर समाज में हर स्थान से हो सकता है। वे कृत संकल्प तो थे कि उस तूफान से अपनी आकांक्षाओं और लक्ष्य पूर्ति के प्रयासों में कहीं भी अवरोध खड़ा नहीं होने देंगे। परन्तु मनुष्य के हाथ में केवल प्रयत्न ही तो है। फल पक्ष में हो या विपक्ष में इसका पूर्वानुमान भविष्य में झाँकने जैसा ही होता है और भविष्य के गर्भ में झाँककर आज तक कौन देख पाया है ? कि वहाँ क्या होना लिखा है ? इसी आशंका के कारण लुई ने हृदय मिलन के ही किन्हीं क्षणों में अपनी प्रेयसी से कहा था—'एडविना ! यदि मैं विवाह करूँगा तो केवल तुम्हारे साथ। इतना ही नहीं, मेरा विवाह तुम्हारे साथ ही होगा। अन्यथा जीवन भर तुम्हारी मूर्ति को प्राणों में सँजोये आगे बढ़ने का प्रयत्न करूँगा। क्योंकि मैं जानता और विश्वास करता हूँ कि हम दोनों मिलकर एकाकी प्रयत्नों की अपेक्षा दसियों गुना अधिक काम कर सकते हैं।

सच भी है। यों एक और एक दो होते हैं परन्तु सजीव प्राण एक और एक मिलकर ग्यारह बन जाते हैं। लेकिन जब लोकमंगल के लिए दो उत्साही प्राण मिलकर इकट्ठे होते हैं तो एक और एक के बीच में सभी स्थानों पर अव्यक्त शून्य भी व्यक्त हो जाता है और उनकी शक्ति शतगुनी हो जाती है। दोनों के प्रेम और प्रणय बन्धन में कई अड़चनें थीं। लुई के माता-पिता एडविना ऐशले को अपनी कुलवधू के रूप में स्वीकार करने के लिए किसी भी कीमत पर तैयार नहीं थे। वे चाहते थे अपनी वंशपरम्परा के अनुरूप किसी ऊँचे खानदान से ही विवाह किया जाना चाहिए। परन्तु लुई वंश परम्परा और अन्धानुकरण की अपेक्षा जीवन साथी के चुनाव में प्रगतिशीलता और गुण, कर्म, स्वभाव में सामंजस्य के अनुयायी थे। उनकी धारण थी कि इन सब परम्पराओं को तोड़कर सुयोग्य तथा गुणवान नारी को ही अपने जीवन साथी के रूप में वरण करना चाहिए ताकि पत्नी भी जीवन लक्ष्य की पूर्ति में कन्धे से कन्धा मिलाकर चल सके। एडविना ऐशले में इन सब विशेषताओं के साथ लक्ष्य सामंजस्य की एक और विशिष्टता अतिरिक्त थी। घर वाले विरोध करते रहे, रिश्तेदार छींटाकशी से बाज नहीं आये। परन्तु इन सबकी चिन्ता किये बिना लुई ने अपना विवाह सन् १९२२ में वेस्ट मिनिस्टर चर्च में एडविना ऐशले से कर लिया और एडविना ऐशले से एडविना माउण्ट बेटन हो गयी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन दिनों विवाह में ऐसे विवाहों की आलोचना उसी प्रकार होती थी जैसे कि भारत में अन्तर्जातीय विवाह की होती रही है। लोग समझते थे कि लॉर्ड माउण्ट बेटन वासना में अन्धे हो गये हैं और एडविना ने एक पुरुष की कमजोरी से फायदा उठाकर बड़ी चतुराई से अपने भविष्य को सँवार लिया है। वस्तुतः चतुराई तो थी परन्तु एडविना ने न तो वासना के ज्वार से लाभ उठाने में वह दिखाई थी और न लुई ने कामान्ध होकर यह कदम उठाया था। वरन् दोनों ने इस स्तर का चातुर्यपूर्ण व्यवहार किया था, जिससे कि वे अपने वरेण्य पथ पर सुगमतापूर्वक आगे बढ़ सकें। यही कारण है कि नवदम्पत्ति अन्य दम्पत्तियों की तरह प्रणयलीलाओं में ही नहीं डूब गये वरन् विवाह के तुरन्त बाद ही वे सजगतापूर्वक अपने पाथ की ओर चल पड़े।

विवाह के कुछ समय बाद ही लुई माउण्टबेटन को माल्टा जाने का आदेश मिला। एडविना माउण्टबेटन भी अपने पति के साथ माल्टा गयी और उनके कार्यों में बराबर हाथ बँटाने लगी। जब द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ और लुई मोर्चे पर चले गये, तो इन पृष्ठों की प्रारम्भिक पंक्तियों में उल्लेखित प्रकार से एडविना भी देश सेवा में जुट गयीं। लुई को जब एशिया को पूर्वी कमान का सुप्रीम-कमाण्डर बनाकर भेजा गया तो प्रश्न उठा कि उनके जाने से जो स्थान रिक्त हुआ, उसका उत्तरदायित्व किस योग्य व्यक्ति पर सौंपा जाय। यह पद देश की आन्तरिक सुरक्षा से बड़ा सम्बन्ध रखता था और इस पद पर साहसी तथा शौर्यवान व्यक्ति ही भली-भाँति काम कर सकता है। इंग्लैण्ड के तत्कालीन प्रधानमन्त्री सर विंस्टन चर्चिल आदमी की योग्यता को पहचानने में बड़ी सूक्ष्म-दृष्टि के स्वामी थे। उन्होंने उन सभी जिम्मेदारियों को निभाने में एडविना को ही सर्वथा योग्य समझा और एडविना को उस पद पर नियुक्त किया गया।

हर समय जर्मनी वायुसेना के जहाज इंग्लैण्ड पर बमबारी कर रहे थे। जिससे देश की संचार व्यवस्था, बिजली और पानी की लाइनें कट जाती थीं। फलतः उद्योग-धन्धे और सामान्य जन-जीवन में अस्त-व्यस्तता तो आ ही जाती, किसी अन्य स्थान से सहायता मँगाना भी दुश्वार था। ऐसी परिस्थितियों में एडविना ने कुशल प्रशासनिक दक्षता का परिचय दिया। बमबारी के भय से आतंकित सामान्य लोग अपने-अपने घरों में छुपे बैठे रहते थे और चारों ओर सड़कें सुनसान थीं। चौबीसों घण्टे सन्नाटा रहता था। कभी-कभी दुश्मन के जहाज तेज आवाज करते हुए ऊपर से गुजर जाते और एक उसी का कोलाहल रहता। ऐसा वातावरण कितना भयानक होगा—इसका अनुमान लगाना मुश्किल है। सन्नाटा और तेज आवाज फिर सन्नाटा। इस खौफनाक वातावरण में भी एडविना निकलती और अपने प्राणों की परवाह किये बिना भी लोगों के पास पहुँचती। स्थान-स्थान पर घूमते हुए उन्होंने मलवे के नीचे में कई लाशों को निकाला, घायलों और रोगियों को अस्पताल पहुँचाया तथा भयग्रस्त जनता में उत्साह के, आशा के प्राण फूँके।

जिस क्षेत्र में वे कार्य करती रहीं उस क्षेत्र में उनकी प्रशासनिक क्षमता और सेवा-भावना के कारण शत्रु की योजना पर पानी फिर गया। हिटलर का विचार यह था कि पानी, बिजली और संचार व्यवस्था को तोड़कर शीघ्र ही ब्रिटेन के घुटने टिका दिये जायँ। परन्तु लॉर्ड माउण्ट बेटन ने शासन-व्यवस्था को एक नयी दिशा दी कि टूटी हुई व्यवस्था को पुनः जोड़ दिया जाय। न केवल ब्रिटेन वरन् फ्रांस, बैल्जियम और हॉलैण्ड ने भी यही रास्ता अपनाया। वहाँ ऐसे मनस्वी, देशभक्त और साहसी व्यक्तियों को इकट्ठा किया और यह सेवा कार्य चलाया।

देश पर आये विपत्तियों के बादलों में एडविना ने न अपने स्वास्थ्य की चिन्ता की और न अपने सुखों की। युद्धकाल में वे कई स्थानों पर दौरा करने पहुँची और लोगों से सम्पर्क स्थापित कर मनोबल ऊँचा उठाया। सन् १९४५ में चार माह तक उन्होंने दक्षिण-पूर्वी एशिया की यात्रा की और वहाँ के अस्पतालों तथा मेडीकल इंस्टीट्यूटों को देखा व उनके लिए कई उपयोगी सुझाव दिये। जापानी हमलों के कारण जब वर्मा और सिंगापुर मुक्त हुए तो इन देशों की स्थिति बड़ी ही कारुणिक थी। युद्ध की विभीषिका ने उनका सुख-चैन तो क्या उनकी शक्ति और सामर्थ्य भी छीन ली थी। वहाँ की संचार व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो गयी थी। आवागमन और यातायात भी अस्त-व्यस्त हो चुके थे और लोगों को भरपेट भोजन भी नहीं मिलता था। लेडी माउण्टबेटन से यह सब नहीं देखा गया और उन्होंने युद्ध पीड़ितों के लिए एक सेवा संगठन तैयार किया। विश्व के उदार और मानवीय अन्तःकरण से सम्पन्न व्यक्तियों से सम्पर्क साधा तथा उनसे सहयोग माँगा। थोड़े ही समय में मानवता की पुकार सुनकर सहृदय व्यक्तियों ने अपने भण्डार खोल दिये। इस संगठन के प्रयासों से अत्यल्प समय में ही सिंगापुर और मलाया का कायाकल्प हो गया। इसी प्रकार एक और युद्ध पीड़ित देश श्याम में आस्ट्रेलियन कार्यकर्त्ता काम कर रहे थे। वे गये तो थे सेवा करने पर वहाँ पहुँचकर उनकी स्वयं की स्थिति अति दयनीय हो गयी। लेडी माउण्टबेटन ने उन लोगों के बीच जाकर उनका उत्साह जगाया और वहाँ के निवासियों सहित उनकी भी सहायता की।

वे लन्दन के एक अस्पताल में वहाँ का निरीक्षण कर रही थीं तो उन्हें एक बार श्याम देश के तीन सैनिक मिले। एडविना तो उन्हें नहीं पहचान सकीं पर उन तीनों सैनिकों ने उन्हें पहचान लिया और इस प्रकार उनका स्वागत किया, जिस प्रकार कि कोई भाई अपनी बहिन का करता है। यह उनकी सेवा से उपकृत व्यक्तियों की कृतज्ञता ही है। कारण कि श्याम देश में उन सैनिकों को एडविना की सेवा-सुश्रूषा का लाभ मिला था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.३६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

सन् १९४७ में भारत आजाद हुआ। इससे पूर्व लुई माउण्टबेटन भारत के अन्तिम वायसराय बनकर आये थे। हमारे देश को स्वतन्त्रता उनके शासनकाल में ही मिली। भारत के प्रति लेडी माउण्ट बेटन का दृष्टिकोण बड़ा ही उदारतापूर्ण था। वे भारत की स्वतन्त्रता को न्याय और औचित्यपूर्ण मानती थीं तथा स्वयं उन्होंने व्यक्तिगत रूप से भी इस न्यायिक अधिकार को दिलाने के लिए प्रयत्न किये थे। दुर्भाग्य से स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में साम्प्रदायिक दंगे भड़के। इन दंगों के समाचार सुनकर एडविना का हृदय बड़ा दुःखी हुआ। यही नहीं उन्होंने उन स्थानों का भी दौरा किया, जिन पर कि दंगे हुए। लड़ाई-झगड़ों को शान्त कराने के लिए वे दोनों पक्षों के बीच भीड़ में घुस जातीं और लोगों को शान्त करतीं। पति के उच्च पद का जरा भी ख्याल न करते हुए उन्होंने सामान्य कार्यकर्त्ताओं की भाँति दंगा पीड़ित क्षेत्रों की पुनर्व्यवस्था में योग दिया। लॉर्ड माउण्ट बेटन के साथ वापस चले जाने के बाद भी वे कई बार भारत आयीं और इस देश की स्थिरता तथा प्रगति के लिए योगदान देती रहीं।

'नगर-सुधार' आन्दोलन की जनक— आक्टेविया हिल

बड़े नगरों में गरीब लोगों के रहने की समस्या सदा से बड़ी दूषित और कठिन रही है। आज भी बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली जैसे शहरों में लाखों व्यक्तियों को स्थानाभाव से जैसे गन्दे और अस्वास्थ्यकर स्थानों में रहना पड़ता है, यह कहने का नहीं देखने का का विषय है। दो-दो गज की एक अँधेरी और सीली हुई कोठरी में आठ-आठ व्यक्ति भरे रहते हैं। वे लोग जरा-से स्थान में खाना-पीना, रहना और सोना आदि किस प्रकार करते होंगे, यह सोचकर आश्चर्य होता है। पर परिस्थितियों से विवश होकर उनको तरह-तरह के उपायों से उसी में काम चलाना पड़ता है। उसका दूषित प्रभाव निश्चित रूप से उनके स्वास्थ्य पर घातक पड़ता है और ऐसे स्थानों में रहने वाले बच्चे तो भावी जीवन में कभी स्वस्थ शरीर और प्रसन्न मन का लाभ उठा ही नहीं सकते और न सभ्य समाज का सदस्य हो सकने की ही योग्यता प्राप्त कर सकते हैं।

अब से १०० वर्ष पूर्व संसार के सबसे बड़े और श्रेष्ठ नगर कहलाने वाले लन्दन की भी ऐसी ही दशा थी। वहाँ पर अधिकांश मुहल्ले ऐसे घने और घिचपिच बसे थे कि उनमें न तो ठीक तरह से सफाई हो पाती थी और न लोगों को शुद्ध वायु नसीब होती थी। इसका कुप्रभाव उनके शरीरों और स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता था और वे प्रायः निस्तेज और कुम्हलाये हुए किसी प्रकार जीवन की गाड़ी घसीटते दिखते थे।

ऐसी परिस्थितियों में सन् १८३८ की ३ दिसम्बर को आक्टेविया का जन्म हुआ। उसके पिता आरम्भ में एक अच्छे व्यवसायी थे और उनमें समाज-सेवा का बड़ा उत्साह था। पर १८४० में अनेक बैंकों का दिवाला निकला और उनको बड़ा आर्थिक धक्का लगा, जिससे वे सँम्हल न सके और अन्त में अपने एक मित्र की सहायता से किसी छोटे नगर में एक छोटा-सा मकान लेकर गरीबी का जीवन बिताने लगे।

आक्टेविया की माता केरोलिन बड़ी धार्मिक, विदुषी और कर्त्तव्यपरायण स्त्री थी। इस गरीबी की दशा में भी वह अपनी कन्याओं को बड़े मनोयोग से ऐसी शिक्षा देने लगी, जिससे वे स्वावलम्बी बनकर अपनी तथा दूसरों की भलाई के कार्यों को कर सकने में समर्थ हो सकें। आक्टेविया स्वभावतः प्रतिभाशाली बालिका थी और उसने छोटी आयु में ही कविता तथा चित्रकारी में अच्छी निपुणता प्राप्त कर ली थी। केरोलिन इस बात को पूर्णतः समझती थी कि मेरी कन्याओं को आजीविका के लिए कोई-न-कोई धन्धा करना ही होगा। वह चाहती थी कि आक्टेविया को कोई ऐसा कार्य मिल जाये जो उसकी रुचि के अनुकूल हो और जिससे उसकी प्रगति में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। उसी बीच में उन्होंने एक विज्ञापन देखा कि "लन्दन में एक ऐसा कारखाना खोला जा रहा है, जिसमें स्त्रियों को काँच के रंगीन तख्तों से तरह-तरह की चीजें बनाने की शिक्षा दी जायेगी।" केरोलिन को यह काम अपनी लड़की के उपयुक्त जान पड़ा और वह दो कन्याओं व स्वयं भी उसमें काम करने को चली गई। उस समय आक्टेविया की अवस्था १२ वर्ष की थी।

लन्दन पहुँचकर वहाँ की गन्दगी को देखकर आक्टेविया को बड़ा दुःख हुआ। उसने अनुभव किया कि इसमें कोई गरीब या साधारण स्थिति का व्यक्ति सुख और सन्तोष का जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। इसी समय उसने मेह्यू नामक विद्वान की लिखी 'लन्दन के गरीबों का जीवन' पुस्तक पढ़ी, जिसमें वहाँ के दीन-दरिद्र व्यक्तियों का हृदय-द्रावक चित्र खींचा गया था। इन वृतान्तों को पढ़कर आक्टेविया के हृदय में ऐसे दुःखी लोगों के लिए कुछ करने की अभिलाषा प्रबल हो उठी। कुछ समय बाद उसके कारखाने में बाहर के छोटे विद्यार्थियों को भी दस्तकारी की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई और उनका प्रबन्ध आक्टेविया के सुपुर्द कर दिया गया। ये सब विद्यार्थी कंगाल घरानों के ही थे और आरम्भ से ही उनका जीवन क्लेशपूर्ण रहा था। आक्टेविया इनको कारखाने के नियमित कार्य के साथ रहन-सहन तथा जीवन-सम्बन्धी अन्य नियमों की शिक्षा भी देती थी। छुट्टी के दिन वह उन्हें खुले मैदानों में भ्रमण के लिये ले जाती और प्रकृति की सुन्दरता तथा विशेषताओं का परिचय कराती। जब इस कारखाने का काम बन्द हो गया तो आक्टेविया एक स्त्री-विद्यालय की सेकेट्री बन गई।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धीरे-धीरे उसने अपना एक निजी, बालकों का स्कूल खोल दिया और उसकी योग्यता, सद्व्यवहार और सच्ची लगन के कारण वह शीघ्र ही एक अच्छे स्कूल के रूप में परिणित हो गया।

समाज-सेवा की भावना से वह कितनी ही असहाय स्त्रियों को भी अपने यहाँ बुलाकर सीने-पिरोने, कसीदा काढ़ने आदि की शिक्षा देने लगी। एक दिन ऐसी ही एक स्त्री आने के कुछ देर बाद ही मूर्छित हो गई। पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि वह पिछली रात भर घर में कपड़े धोती रही थी। आक्टेविया दूसरे दिन घर पहुँची और देखा कि वह इतना तंग, अँधेरा और सीलन से भरा है कि उसमें रहकर मनुष्य का बीमार न होना ही आश्चर्यजनक है। उसे इन लोगों की दुर्दशा पर बड़ा तरस आया और उसने संकल्प किया कि "मैं अपनी जान-पहिचान की सब गरीब बहिनों को नाममात्र के किराये पर किसी ऐसे मकान में रखूँगी, जहाँ स्वास्थ्य की सब सुविधायें और रहन-सहन का पूरा सुपास हो। यह मकान एक आदर्श निवास-स्थान हो, जिनके दुःख-दर्द में मैं शरीक हो सकूँ और उनके जीवन को सुखमय, स्वस्थ और सेवारत बनाने की चेष्टा करूँ।"

अवसर मिलने पर आक्टेविया ने अपने इस विचार को इंग्लैण्ड के विख्यात सर्वोदय-सिद्धान्तवादी दार्शनिक रस्किन के सामने प्रकट किया और उन्होंने उसे स्वीकार करके आक्टेविया के मुहल्ले में ही तीन मकान ५९ वर्ष के पट्टे पर खरीदे। ये तीनों मकान मिलकर 'कोर्ट' कहलाते थे और लन्दन ही नहीं, समस्त योरोप में बस्ती-सुधार (हाउसिंग रिफार्म) का बीज इसी योजना से बोया गया। आक्टेविया ने गरीबों को सस्ते किराये में स्वच्छ घर ही नहीं दिये वरन् उनके बच्चों की शिक्षा का भार भी अपने स्कूल की बड़ी लड़कियों को सौंपा। जो किरायेदार आये, अब तक वे सफाई व स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों तथा उनके लाभों से अनजान थे। आक्टेविया ने उनको इसकी शिक्षा दी और सब तरह की सुविधाओं को प्रदान करने की निरन्तर चेष्टा करती रही। उसने जगह-जगह स्वच्छ पानी के कई हौज बनवा दिये। समस्त किरायेदारों के उठने-बैठने और मिलने के लिए एक पृथक् स्थान नियत कर दिया। निर्दोष आमोद-प्रमोद की भी व्यवस्था थी। उद्यान-सम्मेलन, खेल-कूद, व्यायाम और संगीत आदि के सामयिक समारोहों की भी व्यवस्था करती रहती थीं। इस प्रकार के प्रयत्नों से कुछ समय में ही उन लोगों के जीवन की कया-पलट हो गई। उदाहरण के लिए इन किरायेदारों में एक व्यक्ति पहले हद दर्जे का शराबी था। थोड़े दिनों यहाँ रहने पर उसका दुर्व्यसन बिल्कुल छूट गया और वह शराब का इतना कट्टर विरोधी बन गया कि लोगों ने उसे 'मादक-वस्तु-निषेधकारिणी' सभा का सभापति निर्वाचित किया।

'कोर्ट' की योजना सफल होने से अनेक सेवाभावी सज्जनों का उत्साह इस दिशा में बढ़ गया। स्वयं रस्किन ने कई मकान इस उद्देश्य से खरीदे। लीड्स शहर में ३००० पौण्ड चन्दा करके यह कार्य ओरम्भ किया गया। 'चैरिटी आर्गेनाइजेशन सोसाइटी' (दान-व्यवस्था समिति) ने आक्टेविया के कार्य की उपयोगिता को समझकर उसे अपने कार्यक्रम का एक अंग बना लिया। आक्टेविया स्वयं भी अपने कार्य-क्षेत्र को बढ़ाती गई और कोर्ट की स्थापना के १२ वर्ष बाद, १८७७ में उसने एक पत्र में लिखा—

"आज ३५०० किरायेदारों को प्रबन्ध-भार मेरे जिम्मे है और ३०-४० हजार पौण्ड की सम्पत्ति इस आयोजन में लगी है।"

आक्टेविया की निःस्वार्थ सेवा के फलस्वरूप बड़ी-बड़ी संस्थाओं ने उसे मान्यता देना आरम्भ कर दिया। 'ईक्लिजियास्टिकल,' 'वेस्टमिनिस्टर,' 'लेम्बेथ,' 'पालवर्थ' आदि अनेक बड़े ट्रस्टों ने लाखों पौण्ड की जायदादें उसके सुपुर्द कर दीं ताकि वह गरीबों के रहने की सुव्यवस्थाकर सके। आक्टेविया ने इन सब स्थानों पर स्वास्थ्यकर भवनों का निर्माण करके हजारों लोगों की गृह-व्यवस्था को हल कर दिया। अब समाचार पत्रों में भी उसकी प्रशंसा और कार्यक्रम सम्बन्धी लेख बराबर निकलते रहते थे। स्वयं आक्टेविया ने भी 'दी होम्स ऑफ दी लन्दन पूअर' (लन्दन के गरीबों के वासगृह) नाम की पुस्तक लिखी, जिसका खूब प्रचार हुआ।

अब आक्टेविया ने अपना ध्यान एक दूसरी समस्या पर लगाया। उन दिनों योरोप के सभी नगर घिचपिच बसे थे और उनके बीच में कहीं ऐसे पार्क या खुले मैदान न थे जहाँ बालक और वयस्क खेल-कूदकर शुद्ध वायु सेवन करके लाभ उठा सकें। उनको गन्दी गलियों में ही समय व्यतीत करना पड़ता था। इस त्रुटि को दूर करने के लिए उसने मुहल्लों के बीच पार्क और खुले स्थान छोड़ने का आन्दोलन शुरू किया। पहले तो जिन मुहल्लों में पार्क बनाये गये उनके उद्दण्ड लोग उसे नई बात समझकर उपद्रव मचाने लगे, पर धीरे-धीरे इनकी उपयोगिता सबकी समझ में आ गई और आक्टेविया के प्रयत्न से ही अनेक पार्क ऐसी बस्तियों में बनाये गये। इस सम्बन्ध में कुछ समय बाद आक्टेविया ने एक स्थान पर लिखा—

"वे छोटे-छोटे बच्चे जो गन्दी गलियों में घूमा करते थे, जिनके चेहरों पर मुर्दनी-सी छाई रहती थी, जिनके कोमल शरीर आलस्य और उदासीनता के शिकार हो रहे थे और जो सदा गाली-गलौज और मारपीट में अपना समय बिताते थे, वे आज अपूर्व उत्साह तथा प्रसन्न हृदय से मैदान के खेलों में भाग लेते हैं। यद्यपि अभी इन खेल के मैदानों में कोई खास सामग्री नहीं है तो भी सिर्फ मैदान ही के मिल जाने से बालकों की स्थिति में हर तरह से महान परिवर्तन हो गया है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.३८ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

फिर भी अनेक लोग जिनका धन्धा शहरों में अधिक मकान बनाकर धन कमाना था, उसके प्रयत्नों का विरोध करते और उसके कार्यक्रमों में बाधा डालते थे। इसलिए आक्टेविया ने 'ओपिन स्पेस मूवमेण्ट' (खुले मैदानों की रक्षा) के नाम से एक आन्दोलन चलाया। उसके प्रचार की बदौलत कई प्रतिष्ठित और परोपकारी सज्जन उसकी सहायता को उद्यत हो गये और उन्होंने ''कामन्स प्रिजरवेशन सोसाइटी'' (मैदानों की रक्षा करने वाली संस्था) की स्थापना की। हर रॉयल हाइनेस प्रिंसेस लुई ने इस संस्था का सभापतित्व स्वीकार किया। इस प्रकार कुछ समय में यह आन्दोलन भी सफल हो गया आक्टेविया ने इस सम्बन्ध में लिखा कि ''जब पहले-पहल मैंने यह आन्दोलन उठाया तब लोग कहते थे कि हम गरीबों को रोटी-कपड़े की सुविधा के लिये दान दे सकते हैं, किन्तु हमारी समझ में नहीं आता कि गरीबों को बड़े-बड़े मैदानों की क्या जरूरत है ? पर अब लोग कहते हैं—हाँ अवश्य ही गरीबों को आमोद-प्रमोद की सुविधा बहुत आवश्यक है।''

इस प्रकार अपने जीवन के अन्तिम समय तक गरीबों की दशा सुधारने का प्रयत्न करते हुए सन् १९१२ में इस परोपकारी महिला का परलोकवास हुआ। पर उसके आदर्श आज भी जीवित हैं तथा इंग्लैण्ड तथा अन्य देशों में उनकी प्रेरणा से गरीबों की सहायतार्थ अनेक प्रकार के सेवा-कार्य कर रहे हैं।

पीड़ित मानवता की त्राता— केथरीन ब्रेश्कोवस्की

रूस का एक साधारण कस्बा शर्नीगाँव और निवास करता एक निम्नवर्गीय परिवार। इस परिवार का सबसे छोटा सदस्य एक बालिका अपने पिता से बातें कर रही थी, उसकी बातें बड़ी मोहक और कल्पनापूर्ण थीं। अतः पिता भी रुचि से सुन रहे थे और बीच-बीच में उसी की भाषा में उसी के स्तर के अनुरूप कुछ कहते भी जा रहे थे। बहुत-सी बातें सुन चुकने के बाद पिता ने पूछा—बेटी तुम बड़ी हो जाओगी तब क्या करोगी ?

''बड़ी हो जाऊँगी तो फिर क्या करूँगी बताऊँ''—बालिका ने कहा—''मैं कैलिफोर्निया जाऊँगी और वहाँ से बहुत सारा सोना लाऊँगी।''

''सोना लाकर'' क्या करोगी ?

'उस सोने को अपने देश में लाऊँगी और आसमान के बराबर जमीन खरीदूँगी।

'अच्छा फिर ?'

''जमीन खरीदकर सारी दुनिया के गरीब लोगों को बाँट दूँगी और उनसे कहूँगी कि उस जमीन पर मकान बनाकर रहें और खेती करें। तब सारी जमीन धनधान्य से भरी होगी और कोई भी फिर गरीब न रहेगा।''

पिता ने कहा—पगली कोई इस तरह के फिजूल कामों में भी पैसा खर्च करता है।

यह बात कदाचित उस बालिका को सहन न हो सकी, तभी तो उत्तेजित होकर वह बोली—आप इसे फिजूल का काम कहते हैं, जबकि इससे ज्यादा कोई काम ही नहीं हो सकता। धन का सच्चा उपयोग तो गरीबों की सेवा से ही हो सकता है न, आप भी तो अपनी कहानियों में यही शिक्षा देते हैं।

और पिता हृदय में उमड़ आये ममता के सागर को रोके न रख सके। उन्होंने बरबस ही अपनी बेटी को उठाया और प्यार से चूम लिया। सचमुच ही बचपन में सुनी इन कहानियों का बालिका की आन्तरिक मनोभूमि पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा और आगे चलकर उस लड़की ने चिरतारुण्य की भाषा में अपना आदर्श वाक्य बना लिया था यह—मैं एक ऐसे युग के लिए प्रयत्नशील हूँ और उसी के लिए जी रही हूँ, जब सारी मानवता देश, राष्ट्र, जाति और धर्म के भेदभावों से ऊपर उठकर एक हो जायेंगे, यहाँ तक कि कोई अमीर-गरीब का भेदभाव भी नहीं मानेगा और आवश्यक हुआ तो मैं इस स्वप्न को साकार करने के लिए मरने को भी तैयार हूँ।'' इस महान महिला ने अपना सारा जीवन ही पीड़ित मानवता की सेवा और विश्वकल्याण के लिए लगा दिया। नाम था उनका—केथरीन ब्रेश्कोवस्की।

केथरीन का जन्म सन् १८४४ ई. में शर्नीगाँव नामक गाँव में हुआ था। करुणा और सहृदयता उन्हें अपने परिवार से विरासत में मिली थी, यही कारण था कि शैशव से ही वे मनुष्य तो क्या पशु-पक्षियों से भी अति आत्मीयता और स्निग्धतापूर्ण व्यवहार करने लगी थीं। माँ सोते समय बाइबिल की कहानियाँ सुनाया करती, जिनमें ईसा के प्रेम और उनकी करुणा की शिक्षायें भरी होती थीं। इस शिक्षण का प्रभाव बालमन पर असामान्य हुआ और उस अन्तःकरण में भी मानवी सहृदयता तथा करुणा का निर्झर बहने लगा। वस्तुतः परिवार में बच्चों को अच्छी कहानियाँ सुनाने की परम्परा अपनी संस्कृति में इसी कारण है कि उनके अन्तःकरण पर मानवी आदर्शों के प्रति आस्थायें दृढ़ता से उनके बाल्यकाल में ही अपना अस्तित्व बना लें और उन्हें उत्कृष्ट आदर्शवादिता की ओर चलते रहने के लिए प्रेरित करते रहें।

केथरीन के जीवन में शैशव से ही करुणा के संस्कार डाले गये थे। वे अंकुरित भी तभी से होने लगे थे। एक बार की बात है कि वे स्कूल जा रही थीं। शीत ऋतु थी और कड़कड़ाती ठण्ड गिर रही थी। ऐसी सर्दी में भी कई लोग ऐसे होते हैं, जिन्हें धरती का बिछौना और आकाश का ओढ़ना ही नसीब हो पाता है, एक भिखारिन सड़क के एक ओर गठरी बनी सिकुड़ी पड़ी थी। केथरीन से यह देखा नहीं गया। उसने गर्म कोट पहन रखा था जो अभी हाल में ही सिला था। वह

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह भी देख रही थी कि कई लोग उस रास्ते से गुजर रहे थे और किसी का ध्यान उस बुढ़िया भिखारिन की ओर नहीं जा रहा था। इक्का-दुक्का लोग उधर देखते भी क्षण भर देखकर उसी सहज भाव से निगाह फेर लेते जैसे कुछ देखा ही नहीं। लेकिन केथरीन थी कि देखने के साथ ही उसके कदम भी ठिठक गये। कुछ क्षण वह सोचती रही फिर उसने अपना नया कोट उतारा और बुढ़िया को दे दिया। इसके बाद बुढ़िया ने क्या कहा यह सुनने के लिए केथरीन वहाँ रुकी नहीं। पर स्कूल में जितने समय तक भी वह रही, उसकी अन्तरात्मा उसे बार-बार धन्यवाद दे रही थी।

स्कूल से जब वह घर लौटी तो माँ ने देखा कि उसके बदन पर वह कोट नहीं है, जिसे पहनकर वह स्कूल गयी थी। पूछा कोट कहाँ गया ? तो सारा वृत्तान्त ज्यों का त्यों सुना दिया। सुनकर माँ ने डाँटा कि—ऐसे कोट बार-बार नहीं बनवाये जा सकते। घर में इतना पैसा कहाँ है ? और फिर तो हर बार किसी बुढ़िया भिखारिन के तन पर उसे ओढ़ाती फिरोगी।

'दुबारा बनवाने की क्या जरूरत है माँ, मेरे पास वैसे भी पर्याप्त कपड़े हैं। उन्हीं से यह जाड़े कट जायेंगे। बड़े भोलेपन से कहा।'

'जाड़े कट जायेंगे—माँ कुढ़कर बोली पर मैं पूछती हूँ, उस भिखारिन को देने की क्या जरूरत थी ?'

'नाराज क्यों होती हो माँ। तुम्हीं तो हमेशा सिखाती रही हो कि यदि तुम्हारे पास ज्यादा कपड़े हैं, तो अपने लिए आवश्यकता भर रखकर शेष सब जरूरतमंद लोगों को दे दो। मैं तो पुराने कपड़ों से भी काम चला लूँगी। परन्तु वह बुढ़िया ऐसा कोट कहाँ से पायेगी।'

यह सुनकर माँ का सारा क्रोध रफू हो गया और उसने अपनी लाड़ली को बाहों में भरते हुए कहा—मैं तो तुम्हें परख रही थी लाड़ली। तुम आगे चलकर प्रभु यीशू की सच्ची अनुयायिनी बनोगी।

केथरीन के बचपन का एक-एक क्षण बड़े लाड़-प्यार और नाजी अन्दाज में बीता था परन्तु वह उन सबमें खोयी नहीं थी। सुख-सुविधाओं का उपयोग उसने उनकी दासी बनकर नहीं मालिकन बनकर ही किया था। उसकी सहेलियाँ नये-नये खेलों और नये-नये स्थानों पर सैर करने में अपना समय गुजारा करतीं पर केथरीन घर के एक छोटे-से घरेलू पुस्तकालय में बैठी अच्छी-अच्छी पुस्तकों में डूबी रहती। जब विद्यार्जन के अतिरिक्त और कोई दायित्व उन पर नहीं तब एकमात्र काम था अध्ययन—अध्ययन स्कूली किताबों के साथ-साथ अन्य महान लेखकों की कृतियों का अध्ययन। उनका पढ़ना केवल अक्षरों और शब्दों की यात्रा आँखों से पूरी करना नहीं था वरन् पढ़े हुए को समझना और समझे हुए को गुनना ही उनके अध्ययन की विशिष्ट शैली थी। इस अध्ययन का एकमात्र उद्देश्य था, दरिद्रता और अभाव के दो पाटों में पिसती जनता को किसी प्रकार उससे मुक्त होने का रास्ता खोजा जाय।

बचपन अतिथि बनकर आया था और चला गया था, कैशोर्य भी इसी प्रकार बीत गया और जब यौवन आया तो साथ में स्वाभाविक ही एक दोराहा भी लाया। यौवन हर युवा के लिए एक चुनाव लेकर आता है। जीवनी शक्तियों की बाढ़ में उफनती आयु का उपयोग या तो क्षणिक सुखोपभोगों में किया जाय अथवा किसी ऊँचे लक्ष्य को प्राप्त करने में। किसी प्रवाह की भाँति शक्तियों की यह बाढ़ होती है, जो जिस लक्ष्य की ओर बह जाये, मार्ग में आने वाले पत्थरों को भी उखाड़ कर अपने साथ ले जाता है। केथरीन ने दूसरी ही राह का वरण किया था, जिसके अनुसार उन्हें जीवन के उच्च शिखरों को स्पर्श करना था। उन दिनों रूस में शोषण, शोषक और शोषित—ये तीन तरह की प्रवृत्तियाँ थीं, जो सीधी श्रमजीवियों और उनके स्वामियों से सम्बन्ध रखती थीं। श्रम का लाभ सम्पत्ति के बल पर बलात् छीनकर धनवान और धनवान बनते जाते थे तथा गरीब और गरीब। केथरीन ने समाज की इस स्थिति का अध्ययन किया और गरीबों को उस शोषण चक्र से मुक्त कराना अपना लक्ष्य बनाया। इस लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए उन्होंने तत्सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन भी किया और स्वयं को मनुज देवता के चरणों पर श्रद्धा सहित अर्पित कर दिया।

सर्वप्रथम उन्होंने अपना ध्यान अपने समाज की उस समस्या पर दिया, जो सर्वाधिक दुःखद थी। अशिक्षित होने के कारण जो अपने जीविका के स्वतः प्रदत्त अधिकार को भी नहीं पहचानता था। अतः उन्होंने अपने निकटवर्ती समाज को शिक्षित बनाने की ओर प्रमुख ध्यान दिया। उन्होंने घूम-घूमकर चन्दा एकत्रित किया ताकि इस प्रकार की शिक्षण व्यवस्था आरम्भ की जा सके। इस कार्य में उन लोगों ने भी दान दिया, जो शोषण चक्र के कर्त्ता-धर्त्ता थे। हालांकि उनके दान का दृष्टिकोण ही अलग था। वे सोचते थे कि मजदूर और उनके बच्चे कुछ समझने लायक शिक्षा प्राप्त कर लेंगे, तो उन्हें धन बटोरने में और आसानी होगी। एकत्रित धनराशि से एक विद्यालय खोला गया, जिसमें गरीब किसानों और मजदूरों के पढ़ने के लिए व्यवस्था की गयी। यद्यपि मानसिक दृष्टि से बच्चे काफी अविकसित थे। स्वयं केथरीन ने एक स्थान पर लिखा है—ये लोग केवल अपनी झोंपड़ियों में रहते और उसी को संसार समझते हैं। किस्मत ही उनका देवता है। सरकार के सम्बन्ध में ये केवल इतना जानते हैं कि उसे शान्ति के दिनों में टैक्स देना पड़ता है और लड़ाई के दिनों में अपनी जिन्दगी। परन्तु केथरीन के पास लगन और ध्येयनिष्ठा की अथाह सम्पदा थी, जिसके बल पर वे एक शिक्षिका का कार्य बड़े उत्तरदायित्वपूर्वक करती रहीं। जब वे यह काम कर रही थीं, तो उनका परिचय एक ऐसे उत्साही नवयुवक से हुआ, जो विचारों और आस्थाओं के सम्बन्ध में उनकी ही तरह का था। इस युवक ने केथरीन के प्रयत्नों से प्रभावित होकर अपनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जीवन नौका की बागडोर केथरीन के हाथों में सौंप दी और केथरीन ने उसे अपना जीवन साथी बना लिया।

विवाह के बाद उस युवक के जीवन में एक अप्रत्याशित मोड़ आया। वह केथरीन के आदर्शों को नहीं उनकी सुन्दर देहयष्टि को ही सब कुछ समझने लगा। इस कारण बजाय उनका सहयोगी बनने के अवरोधी बन गया। केथरीन प्रायः अपने कार्यों से बाहर रहती थी और उनके पति को यह सब पसन्द नहीं था क्योंकि वह चाहता था कि केथरीन उसी से बँधी रहे और उसकी शारीरिक माँगों को पूरा करने के लिए ही सुरक्षित रहे। अतः वह कई तरह से अपनी महान पत्नी को घर की चाहरदीवारी में ही रहने के लिए मनाने और समझाने लगा। वह कहने लगा था कि—स्त्री का मुख्य काम घर को सम्हालना और पति का ध्यान रखना है। उसे न तो सामाजिक क्रान्ति के प्रपंच में पड़ना चाहिए और न ही आदर्शों के चक्कर में।

केथरीन को किसी भी मूल्य पर अपने आदर्शों का त्याग स्वीकार्य नहीं था। फलतः इस नवदम्पत्ति में मतभेद और अन्तर्द्वन्द्व पैदा हो गया। केथरीन इन सबकी परवाह किये बिना ही अपने काम में लगी रही। इन्हीं दिनों उनका परिचय प्रिन्स क्रोपाटकिन से हुआ। प्रिन्स अपने ढंग के अनूठे और अद्वितीय आदर्शवादी थे। उस समय के धनवान और सम्पन्न लोगों को प्रायः अपने भोग-विलासों से ही फुरसत नहीं मिलती थी, जबकि प्रिन्स क्रोपाटकिन समृद्धि और ऐश्वर्य में सबसे बढ़े-चढ़े होने के बावजूद भी दीन-दुःखियों और दरिद्र-दलितों की सेवा को अपना धर्म समझते थे। प्रिन्स को केथरीन ने अपने मार्गदर्शक के रूप में पाया और उनसे पीड़ित मानवता की त्राण साधना में जुटने की दीक्षा ली। प्रिन्स ने उन्हें काफी प्रोत्साहन दिया।

इधर उनका उत्साह ज्वार ले रहा था, उधर पति महोदय की हरकतें दबाव का रूप धारण करने लगी थीं। यह बार-बार धमकियाँ भी दे रहा था कि या तो वे उसके बताये रास्तों पर सीधे ढंग से आ जायँ या फिर सम्बन्ध-विच्छेद के लिए तैयार रहें। चालाक और कामुक पति ने यह धमकी उनकी स्थिति को जानकर ही दी थी क्योंकि उनके गर्भ में एक बच्चा भी आ चुका था। केथरीन बड़ी द्वन्द्वात्मक मनोदशा में चल रही थी। उन्होंने अपने मार्गदर्शन के सम्मुख अपनी समस्या रखी तो उन्होंने धीरज और विवेक से काम लेने तथा फिर जो उचित लगे, उसे करने को कहा। केथरीन ने पूछ ही लिया—उचित क्या है ? यही बताइये। यदि मुझे अपने जीवन-लक्ष्य को छोड़ना पड़ा तो मैं उसकी अपेक्षा अपने प्राण ही छोड़ना पसन्द करूँगी।

तो फिर एक ही रास्ता है—प्रिन्स ने परामर्श दिया इस राह पर और भी कई महिलायें चली हैं—जिन्होंने अपने आदर्शों के लिए मातृत्व, पति के प्रेम और गार्हस्थ्य सुखों को तिलांजलि दी है।

मैं भी यही करूँगी कहकर केथरीन उसके बाद पति के पास लौटी ही नहीं। कुछ दिन वे अपनी बहिन के पास रहीं और वहीं उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया। प्रसव के बाद पूर्णतया स्वस्थ हो जाने पर उन्होंने बच्चा अपनी बहिन ओल्या को सौंपा और पुनः उस अभियान की दिशा में लौट गयीं।

तब रूस में क्रान्ति की तैयारियाँ की जाने लगी थीं। वे भी इस कार्य में सक्रिय रूप से हाथ बँटाने लगीं और अपने साथियों को साथ लेकर गाँव-गाँव घूमती रहीं। कच्ची सड़कों पर, सामान लादे मीलों तक और मैले-कुचैले ग्रामीण लोगों को क्रान्ति की बात समझाना—उनका मुख्य कार्य बन गया था। वे यह काम बड़ी तत्परतापूर्वक कर रही थीं और इसके सत्परिणाम ग्रामीण जनता में चेतना जाग्रत होने के रूप में सामने भी आये। लोगों की भुजायें फड़क उठीं।

और सरकार को भी भनक पड़ ही गयी।

उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। बिना सुनवायी किये मुकदमा चला। सुनवायी भी होती तो क्या होना था। उन्हें राजद्रोही तो वैसे ही ठहरा दिया गया और इस अपराध की सजा में उन्हें जेल भेज दिया गया। दो साल तक तो उन्हें एक जेल से दूसरी जेल में भेजा जाता रहा, इसके बाद उन्हें साइबेरिया के बारगुजिन नगर में भेजं दिया गया। साइबेरिया रूस का एक ऐसा भू-भाग है, जहाँ पहुँचने पर ही यात्रीगणों का जीवित रह पाना मुश्किल हो जाता है। उस समय भयानक समझे जाने वाले कैदियों को वहीं भेजा जाता था, जिनमें से अधिकांश तो बीच रास्ते में ही प्राण और शरीर का सम्बन्ध विच्छेद कर देते। परन्तु केथरीन साइबेरिया भी उसी आह्लाद के साथ गयीं, जिस आह्लाद के साथ बाहर काम कर रही थीं। उन्हें खली तो केवल वहाँ की निष्क्रियता और फिर वे स्वयं की मुक्ति का प्रयास करने लगीं।

एक बार तो उन्होंने भागने का प्रयास किया। वे जेल से निकलकर कुछ दूर तक निकल भी आयी थीं। पर अधिकारियों को शीघ्र ही पता चल गया और वे फिर पकड़ ली गयीं। बाद में उन्हें इस शर्त पर छोड़ दिया गया कि वे क्रान्तिकारी गतिविधियों में कोई भाग नहीं लेंगी, केथरीन ने यह शर्त भी स्वीकार कर ली। लेकिन स्वीकार तो केवल जेल से छूटने के लिए की थी। अतः जेल से छूटने के बाद उन्होंने छद्म रूप से काम करना आरम्भ कर दिया।

काफी समय तक वे छिपकर काम करती रहीं और फिर सरकार की निगाह में आ गयीं। उन्हें साइबेरिया ही भेजा गया। लेकिन मार्ग में ही वे पहरेदारों की आँखों में धूल झोंककर भाग जाने मे सफल हो गयीं। कुछ दिनों बाद वे पुनः बन्दी बना ली गयीं। इस बार उन्हें सर्वाधिक भयानक इलाके उत्तरी साइबेरिया भेजा गया, जहाँ

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि सबसे ज्यादा बर्फ गिरती है और इस कारण उत्तरी साइबेरिया को बर्फिस्थान भी कहा जाता है।

वर्षों तक वे वहाँ रहीं। अब शरीर साथ नहीं दे पा रहा था। अतः वे भागने का प्रयास नहीं कर रही थीं। वृद्धावस्था नजदीक आ गयी और वे अनामंत्रित मृत्यु अतिथि की प्रतीक्षा कर रही थीं। लेकिन नहीं—उनका स्वप्न उनके जीवन काल में ही साकार होने को था और जब रूस में श्रमजीवियों के हाथ में सत्ता चली गयी, तो सभी क्रान्तिकारियों को तत्काल छोड़ दिया गया। उस समय कैथरीन की आयु छहत्तर वर्ष की थी। उनके वार्धक्य में भी एक बार पुनः उत्साह का संचार हुआ और वे कर्मठतापूर्वक समाज सेवा में लग गयीं। अब पुनः वे उसी प्रारम्भ पर पहुँच गयी थीं, जहाँ से कि उन्होंने अपने काम का श्री गणेश किया था। उन्होंने एक विद्यालय खोला और गरीब बालकों को उसमें पढ़ाने लगीं।

चौदह वर्षों तक निरन्तर वे देश के भावी कर्णधारों की टकसाल चलाती रहीं और सन् १९३४ में नब्बे वर्ष की आयु में महाप्रयाण कर गयीं। रूस की वर्तमान प्रगति का श्रेय इस कर्मठ, त्यागमयी महान महिला को भी जाता है, जो प्रेरणादीप के रूप में अब भी जाज्वल्यमान है।

व्यस्त और चुस्त—
श्रीमती क्लाडिया जानसन

पश्चिमी टेक्सास के कारनाक नगर में जन्म लेने वाली क्लाडिया आल्टा टेलर नामक बालिका प्रारम्भ से ही इतनी शर्मीली थी कि विद्यालय के किसी कार्यक्रम में ५ मिनट भी अपने विचार व्यक्त न कर पाती थी। पर पढ़ने में वह बहुत तेज थी। हमेशा अच्छे नम्बरों से पास होती। एक बार जब उसे पता चला कि वह अपनी कक्षा में प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त करेगी तो उसे चिन्ता होने लगी, क्योंकि स्कूल के वार्षिक उत्सव में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को कुछ बोलना भी पड़ता है। वह भगवान से प्रार्थना करने लगी—हे भगवान ! मैं अन्य छात्राओं से कम अंक प्राप्त करूँ या मुझे उत्सव वाले दिन चेचक निकल आये, ताकि मैं उसमें सम्मिलत न हो पाऊँ। सचमुच आल्टा टेलर की इच्छा पूर्ण हुई। उन्हें परीक्षा में केवल ९४ अंक मिले, जबकि अन्य बालिका को ९५ अंक प्राप्त हुये। एक अंक की कमी के कारण वह उत्सव में बोलने से बच गयी।

किसे मालूम था कि वह शर्मीली बच्ची आगे चलकर एक दिन अमरीका की प्रथम महिला बनेगी और श्रीमती जानसन के नाम से ख्याति प्राप्त करेगी। आल्टा टेलर की आयु जब केवल पाँच वर्ष थी, तभी उसे अपनी माँ की ममता और प्यार से वंचित होना पड़ा। पिता साहसी और दृढ़ संकल्प वाले व्यक्ति थे। उनके दो औद्योगिक केन्द्र तथा एक कपास साफ करने की फैक्ट्री थी। उनके मार्गदर्शन में ही आल्टा टेलर की पढ़ाई चली।

टेक्सास से कला और पत्रकारिता में डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् वे आस्टिन चली आईं। वहीं अपनी एक सहेली के कार्यालय में उनकी भेंट लिण्डन जानसन से हुई, जो आगे चलकर विवाह में परिणित हो गई। विवाह के बाद उनकी शर्म जाने कहाँ चली गई और उन्होंने सन् १९३४ में दिखा दिया कि वे अपने घर में ही नहीं पति के राजनीतिक जीवन में भी कंधे से कंधे मिलाकर चल सकती हैं और पूरा-पूरा सहयोग दे सकती हैं।

पुरुष हो या स्त्री उसमें दृढ़ इच्छाशक्ति, परिश्रमशीलता और कर्त्तव्यनिष्ठा है, तो वह कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपनी राह बनाकर सफलता को प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार के अनेक गुण श्रीमती जानसन में हैं। उस समय जिले के एक कॉंग्रेसी की मृत्यु हो गई। मित्रों के आग्रह पर लिण्डन जानसन उस सीट के लिए खड़े हो गए पर उन्हें जीतने की तनिक भी आशा न थी। श्रीमती जानसन के अथक् प्रयत्नों के पश्चात् लिण्डन जानसन को वह सीट हाथ लगी। दिसम्बर, १९४२ में जब वह सेना में भर्ती हो गए तो उनकी पत्नी ने ही पूर्ण दक्षता के साथ सारे कार्य को संभाला।

सन् १९४४ में उन्हें माता बनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। पुत्री लिण्डा ने जन्म लिया। दूसरी पुत्री लसो का जन्म सन् १९४७ में हुआ। इससे उनके जीवन की व्यस्तता और बढ़ गई। पारिवारिक कार्यों तथा उत्तरदायित्वों में भी वृद्धि हुई, फिर भी उन्होंने राजनीतिक जीवन में कोई कमी न आने दी। वे अपने पति के साथ सामाजिक और राजनीतिक दोनों ही प्रकार के कार्यों में लगी रहीं।

सन् १९४८ के दिन, जब जानसन सिनेट की सदस्यता के लिये खड़े हुए थे। श्रीमती जानसन के लिये कठिन परीक्षा के थे। उस समय वे अस्वस्थ थीं। उन्होंने बीमारी का भी ध्यान न कर पति का धुँआधार प्रचार किया, जिससे वह ८७ मतों से विजयी हुये। कितनी ही बार चुनाव के दौरों में उनका जीवन संकट में फँस गया फिर भी वह अपने लक्ष्य से तनिक भी विचलित न हुई। जिस मोटर से वे प्रचार के लिये जा रहीं थीं, दो बार पलट गई। चोट भी आई फिर भी सभाओं में बराबर भाषण देती रहीं। आस्टिन के अधिकतर लोगों से फोन पर सम्पर्क बनाये रहीं और जानसन को वोट देने की अपील करती रहीं। उस बार की विजय का श्रेय श्रीमती जानसन को ही है।

श्रीमती जानसन केवल राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में ही नहीं औद्योगिक क्षेत्र में भी अपना दखल रखती हैं। उनका यह विश्वास है कि राजनीति में कार्यरत नेताओं की जीविका का कोई स्वतन्त्र साधन होना चाहिये, तभी कोई व्यक्ति ईमानदारी से इस क्षेत्र में कार्य कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाता है, साथ ही बदनामी से बच पाता है। यदि कोई नेता पूर्ण रूप से राजनीति को अपना व्यवसाय बना ले तो उसे अपने तथा परिवार के पालन-पोषण के लिये दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है, इसलिये उन्होंने सोचा कि आस्टिन का रेडियो स्टेशन बिकाऊ है, खरीद लिया जाये। पर लिण्डन जानसन इसे खरीदने के पक्ष में न थे क्योंकि वह घाटे में चल रहा था और आकार में भी छोटा था। जो बागड़ फसल को ही खा जाये या जिस उद्योग में गाँठ की पूँजी भी डूब जाये, ऐसे व्यापार से क्या लाभ ? पर श्रीमती जानसन की सूझ-बूझ तथा सुझाव से उस रेडियो-स्टेशन को खरीदा गया। उसमें कार्यरत कर्मचारियों की संख्या केवल ९ थी, पर श्रीमती जानसन की दूरदर्शिता तथा व्यावसायिक बुद्धि से धीरे-धीरे कर्मचारियों की संख्या बढ़कर सौ हो गई और घाटा देने वाला रेडियो स्टेशन लाभ देने लगा। सबसे पहले तो उन्होंने हानि होने के कारणों का अध्ययन किया और फिर उसे दूर करने का प्रयास किया। देखते ही देखते वह जानसन परिवार की आय का मुख्य साधन बन गया।

आज उनके असली नाम को तो लोग भूल गये, वे 'लेडी बर्ड' के नाम से वे विख्यात हैं। इस नाम के पीछे भी एक मजेदार घटना जुड़ी हुई है। जब वे छोटी थीं, उनकी नर्स उन्हें बहुत प्यार करती थी और सौन्दर्य के कारण 'लेडी बर्ड' कहकर पुकारती थीं। बाद में उनके इसी नाम ने लोकप्रियता प्राप्त करली।

आज भी लेडीबर्डजानसन अमेरिका में अपना व्यस्त जीवन जी रही हैं। एक ओर अपने पति की कुशल सलाहकार हैं, तो दूसरी ओर कुशल गृहिणी भी। गृहस्थ जीवन की उपेक्षा करने वाली महिलाएँ सामाजिक जीवन में कहाँ सफल हो पाती हैं, उन्हें अपने जीवन में सदैव अपूर्णता का ही आभास होता रहता है। वे प्रातः उठने से लेकर रात्रि को सोने तक बराबर व्यस्त रहती हैं। अपने नाम आये हुए सैकड़ों पत्रों के उत्तर देने का कार्य हो, पति के साथ किसी भोज नें शामिल होना हो, किसी सार्वजनिक सभा में भाषण देना हो या किसी प्रतिनिधि मण्डल से चर्चा करनी हो वे प्रत्येक कार्य को बड़ी चुस्ती और दिलचस्पी से करती हैं, उन्हें समय की कीमत मालूम है इसीलिये प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करके सीमित समय में ढेर-सा कार्य निबटा लेती हैं।

यह भी एक तथ्य है कि व्यस्त रहते हुए ही व्यक्ति चुस्त और मुस्तैद रह सकता है। अवकाश और विश्राम के बहाने खाली बैठे रहने का अर्थ है, सुस्ती और आलस्य को आमन्त्रण देते रहना और उनकी अधीनता स्वीकार करना। एक-एक क्षण का सदुपयोग करके संसार में व्यस्त से व्यस्त लोगों ने अपना उत्कर्ष किया है तथा उत्कर्षाभिलाषियों के लिए प्रगति का मार्ग प्रदीप्त किया है।

अथक अन्वेषिका—डा. केट केम्पवैल

संसार में हजारों-लाखों डाक्टर और लेडी डाक्टर हैं। उनमें से हजारों किसी न किसी रोग के विशेषज्ञ भी होंगे। वे नित्य प्रति लाखों रोगियों की चिकित्सा भी करते हैं। तरह-तरह के नये-पुराने रोग भी उनके सामने आते हैं। किन्तु उनमें से अधिकांश अपने एक सीमित क्षेत्र में उपचार का व्यवसाय करते-करते अपनी जिन्दगी खत्म कर देते हैं। उन्हें संसार तो दूर साधारण क्षेत्रीय निवासी भी याद नहीं रख पाते। रोगी भी जब तक उनके उपचार में रहते हैं, उन्हें याद रखते हैं और निवृत्त होने पर भुला देते हैं। उन हजारों-लाखों डाक्टरों में से कोई विरला ही ऐसा होता है, जिसे देशीय अथवा अन्तर्देशीय ख्याति मिल पाती है। वे साधारण डाक्टर से संसार के असाधारण व्यक्ति बन जाते हैं। ऐसे ही साधारण डाक्टर से संसार के असाधारण व्यक्ति बन जाने वालों में डा. केम्पवैल भी हैं।

आरम्भ में उनके जीवन में कोई विशेषता नहीं थी। वे एक बाल-रोग विशेषज्ञ डाक्टर थीं और आस्ट्रेलिया के एक अस्पताल में काम करती थीं। अन्य डाक्टरों और डा. केम्पवैल में एक मौलिक अन्तर था और इसी अन्तर के कारण वे एक दिन अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति तथा आदर की अधिकारिणी बनीं।

वह अन्तर यह था कि जहाँ अन्य डाक्टर रोगी को देखते, रोग का निदान करते और दवा देकर छुट्टी पा लेते हैं, वहाँ डा. केम्पवैल का स्वभाव रहा है कि वे हर रोगी और हर बीमारी और उसके हर स्वरूप का रिकार्ड रखती थीं और नित्य ही उस रिकार्ड का चिकित्साशास्त्र के प्रकाश में अध्ययन तथा मनन किया करती थीं और कोशिश इस बात की करती थीं कि वे इन सब पुरानी बातों में से कोई नई बात निकाल सकें और उस आधार पर रोग, चिकित्सा, निदान अथवा रोगी के सम्बन्ध में किसी भी ज्ञान-शाखा को कुछ आगे बढ़ा सकें। साथ ही जहाँ किसी नये रोग के सम्बन्ध में अन्य डाक्टर उदासीन होकर अपनी असमर्थता प्रकट कर देते हैं, वहाँ डा. केम्पवैल के लिये वह नवीन रोग विशेष अध्ययन-मनन तथा खोज-बीन का विषय बन जाता था। उनके रात-दिन, सप्ताह-मास और वर्ष उस विषय के लिये समर्पित हो जाते थे और कभी-कभी तो भूख-प्यास और नींद भी और जब तक इस सम्बन्ध में वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति और योग्यता खर्च न कर लेती थीं, निश्चिन्त न होती थीं। बहुत बार वे अपने इस अगाध परिश्रम में कोई लाभ न पातीं थीं, तब भी परिश्रम—परिश्रम की वृद्धि करता है इसी लाभ से सन्तुष्ट हो जाती थीं और ऐसा एक दिन भी न जाता था, जिस दिन उनकी मेज पर खोज-बीन का कोई प्रसंग न रहता हो। दिन भर अस्पताल में ईमानदारी से सेवा करने के बाद वे चार घण्टे नियमित रूप से अपनी खोज-बीन में लगाया करती थीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो खोजता, खोजता और खोजता ही रहता है वह आखिर एक दिन पा ही लेता है। उन दिनों एक विचित्र प्रकार के रोग ने डाक्टरों की परेशानी बढ़ा दी। वह रोग था, नव-जात शिशुओं की आँख के परदे की पृष्ठ-भूमि में साधारण भूरे रंग की जाली पड़ जाना, जिससे अधिकांश बच्चे अन्धे हो जाते थे।

इस रोग का पहला परिचय हार्डवर्ड मेडिकल कॉलेज के नेत्र विज्ञान के प्रोफेसर डा. थ्योडोर टेरी को हुआ। वे एक अस्पताल में एक छह मास के शिशु की आँख का आपरेशन करने के लिये बुलाये गये थे। बच्चे की आँख में मोतिया-बिन्द का अनुमान किया गया था। किन्तु जब डा. थ्योडोर टेरी ने बच्चे की आँख की परीक्षा की, तो उन्हें उसमें मोतिया-बिन्द के लक्षण तो नहीं मिले, उसकी आँखों के परदे के पिछले भाग में एक हल्के भूरे रंग की जाली, जिसके कारण वह बच्चा देख सकने में असमर्थ था। उनके चिकित्सा-काल में यह एक नया रोग था। इसके पूर्व ऐसा कोई भी रोगी उनके सामने नहीं आया था। उन्होंने चिकित्साशास्त्र तथा रोग विज्ञान की पुस्तकें खोल डालीं किन्तु कहीं भी उस रोग का विवरण अथवा वर्णन नहीं मिला। फिर उसके निदान अथवा उपचार का प्रश्न ही नहीं उठता था। उन्होंने अन्य डाक्टरों से उसके सम्बन्ध में चर्चा की सभी ने यही कुछ किया जो डाक्टर टेरी ने किया था। कुछ समय तो डाक्टर उसके विषय में परेशान तथा जिज्ञासु रहे फिर बाद में मजबूरी समझकर अपने दूसरे कामों में व्यस्त हो गये और सन्तोष कर लिया कि इस रोग का जब कहीं जिक्र नहीं है, तो उपचार हो भी कैसे सकता है ? उनके प्रयत्न तथा पुरुषार्थ की मात्रा केवल कुछ किताबों तथा कुछ सीमा तक विचारों तक ही रही, आगे उन्होंने अपने आपको थकाना जरूरी नहीं समझा, जबकि खपाना तो बहुत दूर की बात थी। दुश्मन सामने था, लेकिन योद्धा मैदान छोड़ गये और इस रोग के बच्चों को उनके अँधेरे भाग्य पर छोड़ दिया।

इस नये रोग की सूचना अखबारों में छपकर दो दिन में ही संसार के कोने-कोने में पहुँच गई। सारे बाल-विशेषज्ञ तथा नेत्र चिकित्सक सावधान रहने लगे—डा. केट केम्पवैल भी। बल्कि एक तरह से उनको तो यह जिज्ञासा रहने लगी कि कब उनका साक्षात्कार उस रोग से ही हो और कब उनको एक नई खोज-बीन का प्रसंग मिले। उन्होंने यह भी सोचा कि—"सम्भव है यह रोग नया न हो पुराना ही हो और इस रोग से अन्धे बच्चों का मोतियाबिन्द का ही इलाज होता रहा हो अथवा उन्हें असाध्य समझकर छोड़ दिया जाता रहा हो और बेचारे बच्चे प्रकृति द्वारा नहीं, रोग द्वारा अन्धे बन जाते रहे हों। निःसन्देह इस विषय में जरूर प्रमाद बरता जाता रहा है।" किसी ने कोई खोज-बीन नहीं की और न असाध्य माने जाने वाले बच्चों का ठीक से परीक्षण ही किया जाता रहा। जिससे न जाने कितने अबोध शिशु आजीवन अन्धे रहकर यह न देख पाये होंगे कि जिस दुनिया में वे आये हैं, वह काली है या पीली। अपनी इस विचारधारा में डा. केट केम्पवैल बड़ी करुण हो उठीं। उनके हृदय में अन्धे बच्चों के लिये बड़ी सहानुभूति उत्पन्न हो गई और उन्होंने निश्चय किया कि वे मानवता के इस नये दुश्मन का उपाय खोजने में अपनी जिन्दगी लगा देंगी।

कुछ दिनों बाद डा. केम्पवैल के सामने भी उसे रोग का प्रसंग आ गया। उन्होंने बच्चे की आँखों का परीक्षण किया, रोग का विवरण उपलब्ध चिकित्साशास्त्रों में खोजा और पाया कि निःसन्देह रोग नया है और उसका कोई भी विवरण वर्तमान चिकित्सा शास्त्र में नहीं है। उन्हें खोज-बीन का एक बहुत बड़ा प्रसंग मिल गया और पूरी तरह उसमें लग गईं।

उन्होंने प्रत्येक रोगी का लेखा रखना शुरू कर दिया। माता-पिता के साथ परिवार तथा कई पीढ़ियों का शारीरिक इतिहास इकट्ठा किया और यह भी पता किया कि यह रोग किन आयु के बच्चों को होता है। इन सब लेखों-जोखों से वे इस निष्कर्ष पर पहुँची कि यह रोग अधिकांशतः नव-जात शिशुओं में ही पाया जाता है और यह जरूरी नहीं कि वे यह रोग माता-पिता अथवा परिवार के किसी सदस्य के किसी प्रकार के नेत्र विकार से लेकर आते हों। उन्हें यह भी पता चला कि इस रोग के रोगी बहुत-से ऐसे भी बच्चे होते हैं, जिनकी पिछली कई पीढ़ियों में कोई आँखों का रोगी नहीं रहा है। उन्होंने समझ लिया कि परम्परा अथवा पैतृकता से इस रोग का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सर्वथा मौलिक तथा नया है।

अब उन्होंने खोज की दूसरी दिशा दी। उन्होंने पता लगाना शुरू किया कि यह रोग किस स्वास्थ्य के बच्चों को होता है। पता चला कि सभी स्वास्थ्य के बच्चों को। इन सब खोजों और जाँच-पड़तालों में डा. केम्पवैल को कई वर्ष लग गये किन्तु उस परिश्रम का कोई फल न निकला। उनके सहयोगियों, सहकर्मियों और स्वजन सम्बन्धियों ने उन्हें बहुत बार समझाया कि वे बेकार में इस खोज-खाज में अपना समय तथा स्वास्थ्य खराब न करें और अपना सामान्य काम करते हुए यह प्रश्न वैज्ञानिकों के लिये छोड़ दें। अनेक लोगों ने तो उन्हें सनकी तक कह डाला। किन्तु डा. केम्पवैल ने किसी की कहासुनी पर ध्यान नहीं दिया और अपनी खोजों में निरन्तर लगी रहीं। उन्हें पूरा विश्वास था कि किसी का भी सत्श्रम कभी बेकार नहीं जाता। उनका भी बेकार नहीं जायेगा। उनको एक दिन इसका निदान मिलेगा और वे निश्चय ही मानवता की एक सुन्दर-सी सेवा कर सकेंगी। पूरे परिश्रम, आशा तथा आत्मविश्वास के साथ वें लगी ही रहीं।

उन्होंने चिन्तन, अध्ययन तथा खोज की दूसरी दिशा ग्रहण की और अनुमान किया कि हो सकता है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रजनन प्रक्रिया अथवा परिचर्या की असावधानी से बच्चे इस रोग के शिकार हो जाते हों। उन्हें पता चला कि इस रोग के रोगी वे बच्चे भी होते हैं, जिनका जन्म उत्तम से उत्तम श्रेणी के अस्पतालों में होता है और वहाँ जच्चा-बच्चा की ठीक-ठीक वैज्ञानिक परिचर्या की जाती है और ऐसे ही अस्पतालों में जन्मे बच्चों को यह रोग अधिक होता है—''ऐसे ही अस्पतालों में जन्म बच्चों को यह रोग अधिक होता है''। बस इसी निष्कर्ष ने डा. केम्पवैल को चौंका दिया और उन्हें लगा जैसे उन्होंने किसी अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचने का सूत्र पा लिया। उन्होंने उन बच्चों पर अपनी खोज केन्द्रित की और सोचा। आधुनिकतम अस्पतालों में बच्चों के जन्म-जीवन के लिये आधुनिकतम उपाय काम में लाये जाते हैं। जरूर ही उन उपायों में से कोई ऐसा उपाय है, जो बच्चों की आँखों पर बुरा प्रभाव डालता है। अब तो उनकी खोज में जल्दी-जल्दी फल मिलने लगे थे। साधना-सिद्धि की कक्षा में संक्रमण कर रही थी।

उन्होंने खोज को आगे बढ़ाया और पाया कि यह रोग उन्हीं बच्चों में मुख्यतः पाया जाता है, जिनका जन्म समय से पूर्व हो जाता है। लेकिन शत-प्रतिशत बच्चों को क्यों नहीं होता, जो समय से पूर्व जन्म लेते हैं ? वे थोड़ी पीछे धकलीं, किन्तु फिर तुरन्त सँभल गईं। उन्होंने समय से पूर्व जन्म और प्रथम श्रेणी के अस्पतालों के इस अप्राकृतिकता को अप्रभावी करने के उपाय का तारतम्य बिठाया और पाया कि समय से पूर्व जन्मे बच्चों के सामान्य स्वास्थ्य के लिये ऑक्सीजन दी जाती है। डा. केट केम्पवैल ऐसे सतर्क तथा सावधान हो गईं मानो नब्बे प्रतिशत संदिग्ध तथा संदेहास्पद कारण मिल गया हो। 'ऑक्सीजन' ! वे मन ही मन बुदबुदाईं और समय से पूर्व बच्चों तथा उनको दी जाने वाली ऑक्सीजन पर सम्पूर्णतः केन्द्रित हो गईं। उन्होंने सौ-पचास ऐसे बच्चों का परीक्षण तथा निरीक्षण किया और सच्चे चोर को पकड़ ही लिया।

उन्होंने अपने निष्कर्ष को अच्छी प्रकार से पुष्ट तथा प्रामाणिक कर घोषणा कर दी कि यह रोग उन्हीं नवजात शिशुओं को होता है, जिन्हें समय से पूर्व जन्म लेने के कारण ऑक्सीजन दी जाती है। अवश्य ही ऑक्सीजन देने की मात्रा अधिक है। यदि परीक्षणों के बाद यदि उसकी मात्रा कम कर दी जाये तो किसी बच्चे को यह रोग न हो। आगे सामान्य स्वास्थ्य के लिये ऑक्सीजन की घटी मात्रा के स्थान पर कुछ और उपाय किया जा सकता है।

डाक्टर केट केम्पवैल की इस खोज ने चिकित्सा क्षेत्र में हलचल मचा दी। उनके निष्कर्ष का वैज्ञानिक परीक्षण किया गया और ठीक पाये जाने पर उसका चिकित्साशास्त्र में समावेश कर दिया गया। उस रोग का नाम—'रेट्रोलैटल काई मोप्लासिया' रखा गया और उसका उपचार निकाल लिया गया।

'जिन खोजा तिन पाइयाँ'—वाले सिद्धान्त में विश्वास रखकर लक्ष्य में निरन्तर लगे रहने के कारण संसार के अन्य साधारण डाक्टरों की तरह एक दिन साधारण डाक्टर मानी जाने वाली डा. केट केम्पवैल सामान्य से उठकर असामान्य स्तर पर जा पहुँचीं और आज वे सार्वभौम सम्मान वाली बनकर अब भी विक्टोरिया राज्य की राजधानी मेलवोर्न में डाक्टरी करती हैं और साथ ही निःशुल्क शिशु-चिकित्सालय के अतिरिक्त नर्सों का प्रशिक्षण केन्द्र भी चलाती हैं। उनकी खोज का काम अब भी चल रहा है, जिस पर वे उतना ही समय अब भी दे रही हैं, जितना कि पहले देती थीं।

पचहत्तर बच्चों की निस्संतान माता—जेन मैक्सवेल

सन् १७१० में एक प्रेमी युगल दाम्पत्य जीवन में बँधे। पति का नाम था बेन ग्रियार्ड और पत्नी का जेन मैक्सवेल। विवाहित जीवन के प्रारम्भिक दिन तो बड़े मौज-मस्ती में कटे। पर जैसा कि स्वाभाविक है कि विवाहित युवती में कुछ दिनों बाद मातृत्व की आकांक्षा भी उत्पन्न होने लगती है। स्वाभाविक ही जेन को भी मातृत्व की आकांक्षा जगी। लेकिन सन्तान थी कि जन्म ही नहीं ले रही थी। पति बेन ग्रियार्ड भी इससे खिन्न हुए, वे डाक्टर भी थे और उन्होंने जेन के स्त्री अंगों, गर्भाशय आदि का परीक्षण किया और उस परीक्षण के बाद बड़े दुःखपूर्वक अपनी पत्नी से कहा 'जेन हमारा दुर्भाग्य है कि हम कभी सन्तान का सुख नहीं देख सकते।' इसमें दुर्भाग्य की क्या बात है—जेन ने सन्तोष के साथ कहा जैसे उसमें कभी मातृत्व की भावना ही न रही हो।'

दुर्भाग्य नहीं तो क्या ? अन्य दम्पत्ति जब अपने बच्चों को खिलाते हैं, जेन सोचो हम जब युवा अवस्था को पारकर प्रौढ़ बनेंगे तो उन माता-पिताओं को देखकर हम पर क्या गुजरेगी।

यह सब मन की लीलायें हैं प्रिय ! संतान नहीं होती है, तो इसमें दुःखी होने का कौन-सा उचित और विवेकसम्मत कारण खड़ा हो जाता है।

क्यों नहीं। प्रेम का एक रूप वात्सल्य भी तो है और वही अतृप्त रह जाये तो प्रेम की परिपूर्णता का आनन्द कैसे मिलेगा।

''वात्सल्य तृप्ति ही तो चाहिए न। वह तो कहीं भी तृप्त की जा सकती है। दूसरे बच्चों पर अपना स्नेह लुटाकर क्या हम यह सुख अर्जित नहीं कर सकते।''

'कर तो सकते हैं पर अपनी सन्तान के प्रति जो वात्सल्य होता है, वह स्वाभाविक और घनीभूत होता है। दूसरों के बच्चों से तो केवल उसे नशा ही दिया जा सकता है।' जेन ने अपनी व्यथा कही।

नशा नहीं औषधि कहो। इस औषधि के लिए परमात्मा मुझे हमेशा प्रेरित करता रहा है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जेन बोली 'अब मुझे अनुभव में आया कि क्यों उपेक्षित और नियति से दण्डित बच्चों के प्रति आकर्षण अनुभव करती थी और क्यों मुझे आनन्द मिलता था। शायद मेरे भाग्य में अपनी सन्तान का सुख नहीं लिखा था। पर मैं इसे दुर्भाग्य नहीं मानती। निस्संतान होते हुए भी मातृत्व की गरिमा से वंचित नहीं रह सकती हूँ। क्योंकि हमेशा से मुझे ऐसे बच्चों की तलाश रही है, जिन्हें मेरी आवश्यकता हो और उस तलाश में भी मुझे उतना ही आनन्द मिलता है, जितना कि उपलब्धि में। उसी मार्ग की सलाह दूँगी। सचमुच जेन मैक्सवेल को विवाह से पहले कहना चाहिए था कि किशोरावस्था से ऐसे बच्चों की तलाश रहा करती थी; जिन्हें पाकर वे उन पर अपना वात्सल्य लुटा सकें। उनके एक पड़ौसी के अनुसार वे ११ वर्ष की आयु से ही बच्चों में पर्याप्त रुचि लिया करती थीं। सम्भव है यह अतिशयोक्तिपूर्ण हो क्योंकि इस वय में अपने समवय बच्चों के प्रति आकर्षण का भाव कोई अस्वाभाविक नहीं है। पर जब उन्होंने युवावस्था की देहरी पर कदम रखा तो भी यह आकर्षण यथावत् बना रहा। यथावत् ही नहीं वरन् कई अर्थों में बढ़ा भी सही। इसका कारण चाहे जो रहा हो पर सन्तान को जन्म न देने की शारीरिक त्रुटि से उत्पन्न हृदय में अतृप्त मातृत्व की भावना को उन्होंने विवेक और प्रज्ञा के द्वारा पूरा किया। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि जब वे किशोरावस्था में थीं तो स्कूल जाते समय कई गरीब परिवार के बालकों को देखतीं और उनकी दशा को देखकर उन्हें रोना आ जाता। इन बालकों के माता-पिता तो दिन भर पेट की आग बुझाने के लिए आवश्यक ईंधन जुटाने जाते और बच्चे घर पर इधर-उधर आवारागर्दी करते।

स्कूल जाते समय जेन उन्हें धींगामस्ती मचाते देख रुक जातीं। बच्चों के हाथ-पैर, मुँह धोथीं तथा शाम स्कूल से लौटते समय उनके माता-पिता को यह समझातीं कि वे अपने बच्चों को स्कूल क्यों नहीं भेजते ? कुछ लोगों की समझ में आ जाता तो वे अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए राजी हो जाते। इस स्वीकृति के कारण पढ़ाने-लिखाने और बच्चों को योग्य बनाने की अपेक्षा शाम के समय थके-हारे लौटने पर भी बच्चों की आने वाली अनेक शिकायतों से छुटकारा पाने का भाव अधिक था। जेन के लिए किस आशय से बच्चों को स्कूल भेजा जा रहा है, यह महत्त्वपूर्ण नहीं था वरन् यही एक सुखद सफलता थी कि चलो इतना काम तो हुआ। वे अपने छोटे-छोटे भाई-बहिन की तरह बच्चों को साथ ले जातीं और साथ ही वापस भी लातीं। यह काम तब तक सुचारु रूप से चलता रहा, जब तक कि स्वयं पढ़ती रहीं। लेकिन जब वे नौकरी करने लगीं तो क्रम भले ही बदल गया हो, सेवा का आदर्श जहाँ का तहाँ रहा।

१९१० में विवाह हो जाने के बाद पाँच वर्ष तक वह निस्संतान रहीं और डा. पति ने उपचार की असम्भावना बतायी तो जो काम वे पहले किया करती थीं; उसने एक व्यवस्थित पुनर्जीवन प्राप्त किया। उनके मस्तिष्क में एक कल्पना उभरी और कल्पना चूँकि आदर्श प्रेरित थी। अतः उसने व्यावहारिकता का रूप भी धारण किया। उन्होंने अपने आराध्य सेव्य के रूप में ऐसे बच्चों को चुना, जो समाज ही नहीं घर-परिवार से भी उपेक्षित और प्रताड़ित थे अथवा जिन्हें ममत्व और वात्सल्य की आवश्यकता थी। हालांकि उनके पति वेन ग्रियर्ड को प्रारम्भ में तो कुछ समझ नहीं आया पर जैसे-जैसे वे जेन के विचारों तथा क्रिया-कलापों से परिचित होते गये, उनके अन्तःकरण में भी ऐसी ही अवस्थाओं का उद्भव होने लगा।

सन् १९१५ में एक दिन वे बोर्डिंग होम पहुँचीं। इससे पूर्व उन्होंने बोर्डिंग में रह रही एक ऐसी लड़की को देख लिया था जो दुबली और क्षीणकाय थी, स्वास्थ्य भी उसका गिरा हुआ था और शायद देख-रेख करने वाला भी कोई नहीं था। जेन ने उस लड़की को अपनी पुत्री बनाने का निश्चय किया और इस निश्चय के अनुसार पूर्वानुमति के लिए बोर्डिंग होम गईं और डाक्टर से उस बच्ची को देने के लिए कहा। डाक्टर ने समझाया कि आप इस लड़की को ले जाकर क्या करोगी ?

'मैं इसे अपनी बेटी की तरह पालूँगी'—जेन ने कहा। बेटी की तरह ही पालना है तो और स्वस्थ लड़की को ले जाइये। इस मरियल लड़की—जो संसार में कुछ ही दिनों की मेहमान है ले जाकर क्या करेंगी ? डाक्टर ने कहा।

"दरअसल डाक्टर मुझे ऐसे ही बच्चों की आवश्यकता है। स्वस्थ बच्चों की अपेक्षा रुग्ण और अशक्त बालकों को ममत्व और प्रेम की अधिक आवश्यकता है। मैं इसे पुनः स्वस्थ बनाने का प्रयास करूँगी।" जेन ने कहा। डाक्टर उनका उत्तर सुनकर इस अनन्त वत्सला नारी की ममता के आगे नत-मस्तक हो गया और जेन उस लड़की को अपने घर ले आयीं। जिस किसी ने देखा कि जेन एक मरियल-सी बच्ची को अपनी बेटी बनाकर लायी हैं। हँसी उड़ाने के भाव से वे तरह-तरह की बातें करने लगे। पर ऐसे समझदार व्यक्तियों की भी कमी नहीं थी। जो जेन के हृदय में से महान मातृत्व की गरिमा को समझते थे।

जिस लड़की को उन्होंने अपनी पुत्री बनाया था। वह काफी दुबली-पतली थी और रोगी भी। जेन मैक्सवेल की परिचर्या और बेन ग्रियार्ड की चिकित्सा ने शीघ्र ही उसे नीरोग बना दिया। यह एक तथ्य है कि रोगी पर चिकित्सा तथा तथ्य का उतना प्रभाव नहीं होता, जितना कि परिचारिका के स्नेह, आत्मभाव और प्रेम का आहार बालिका को जेन द्वारा प्रचुर मात्रा में मिला था। अतः वह नीरोग होने के साथ हृष्ट-पुष्ट भी बनने लगी। यह लक्ष्य की ओर बढ़ने में मिली पहली-पहली सफलता थी। उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बाद जेन ने एक साथ ग्यारह बच्चों को अपनी संतान के रूप में शरण दी। ये बच्चे या तो रोगी थे अथवा इतने ज्यादा उपेक्षित कि मिली उपेक्षाओं के कारण उनकी बौद्धिक क्षमता और स्वाभाविक विकास ही कुण्ठित हो गया था। इन ग्यारह बच्चों में से कुछ के सम्बन्ध में डाक्टरों ने यहाँ तक कह दिया कि वे कभी ठीक न रह सकेंगे और जब तक जीवित रहेंगे। मुर्दों की भाँति। ग्रियर्ड दम्पत्ति ने इन डाक्टरी निष्कर्षों को भी झुठला दिया। यह एक सुखद संयोग था कि ग्रियर्ड जैसे डाक्टर को जेन जैसी परिचारिका मिली और जेन जैसी से रुग्ण खिलती कलियों की संरक्षिका को ग्रियर्ड जैसा डाक्टर मिला। ग्यारहों बच्चे अच्छी तरह स्वस्थ हो गये।

उनका ध्यान रुग्ण बच्चों के साथ ऐसे बालकों की ओर भी गया, जिन्हें सहृदय वात्सल्य की आवश्यकता थी और उनका परिवार अब बढ़ने लगा। कुछ बच्चों को तो उन्होंने अपने घर पर ही रखा। ऐसे बच्चों में अधिकांशतया वे बालक थे, जो निराश्रित होने के साथ समाज की उपेक्षा और घृणा के शिकार भी हुए थे। बहुत संभव था कि यदि वे इसी प्रकार अत्याचार और दुर्व्यवहार के शिकार हुआ करते, तो समाज के लिए एक समस्या ही बन जाती, शायद गम्भीर अपराधी भी। जेन ने ऐसे बच्चों को अपने पास रखा और उनकी आवश्यकतायें पूरी करने के साथ-साथ माँ का प्यार भी दिया।

जिन बच्चों के माता-पिता थे पर अभाव, दैन्य और दारिद्रय के कारण उनका ठीक से पालन-पोषण नहीं हो पाता या जिनके माता-पिता रात-दिन निर्वाह के लिए आवश्यक व्यवस्थायें जुटाने में ही व्यस्त रहते और अपने बच्चों पर ज्यादा ध्यान नहीं दे पाते—जेन ने उन्हें भी प्यार का हिस्सेदार बनाया। वे प्रतिदिन अपने इन बच्चों के पास जातीं, उन्हें प्यार करतीं, सहलातीं, उनकी समस्याओं को ध्यान से सुनतीं और उनका समाधान करतीं। कभी-कभी ऐसा भी होता कि उनके बच्चों को माता-पिता दिनों भर मेहनत करने के बाद भी दूसरे दिन के लिए खाने-पीने का प्रबन्ध करने में समर्थ नहीं रहते और जेन को जब यह पता चलता कि मेरे इन बच्चों को आज भोजन नहीं मिला है, तो वे फिर घर जातीं और घर से खाना लाकर खिलातीं। यह कार्य परिस्थितियाँ कैसी भी हों, व्यतिक्रिमित नहीं हो पाया। चाहे बर्फ गिर रही हो वे जाती अवश्य थीं ।

इस प्रकार उनका परिवार बढ़ता ही चला। उनकी हार्दिक आकांक्षा यह रही कि उपेक्षित बच्चों पर ध्यान देने के लिए एक व्यवस्थित संगठन होना चाहिये और नियोजित कार्यक्रम चलना चाहिए पर साधनों के अभाव में उनकी आकांक्षा को अपूर्ण ही रखा। जिस समय वे अपनी संतानों की संख्या बढ़ाने में लगी हुई थीं, उसी समय उनके पति का देहान्त हो गया। जेन जैसी भावना प्रधान व्यक्तित्व की नारी के लिए यह अनभ्र वज्रपात था पर उन्होंने जल्दी अपने आपको सम्भाल लिया तथा पुनः अपना कार्य बढ़ाने लगीं।

उन्हें जब भी पता चलता कि अमुक जगह मेरी आवश्यकता है तो वे अविलम्ब उस स्थान पर पहुँचतीं। एक बार किसी अस्पताल में उन्होंने एक ऐसी महिला को मरणासन्न स्थिति में देखा, जो घुट-घुटकर प्राण छोड़ रही थी। प्राण थे कि निकल न रहे थे और आलाप था मैं तब तक नहीं मरना चाहती, तब तक कि मेरे पाँचों बच्चों को आश्रय नहीं मिलता।

इसे अन्तरात्मा की पुकार कहना चाहिए कि जेन वहाँ पहुँचीं, उस महिला ने जेन के सम्बन्ध में पहले से ही सुन रखा था। अतः उसने इस निस्सन्तान माता से अपने बच्चों को आश्रय प्रदान करने का आग्रह किया। जेन ने उस महिला को आश्वासन दिया और उसके पाँचों बच्चों को अपने साथ ले उनकी माँ के पास से आयीं। योग्य और समर्थ संरक्षण में अपने बच्चों को पहुँच गया देखकर वह महिला सुख से मृत्यु को प्राप्त हो गयी।

इस प्रकार बिना प्रसव वेदना सहे जेन ने अपने बच्चों की संख्या बढ़ायी और चालीस वर्ष में पचहत्तर बच्चों का पालन-पोषण ही नहीं किया, उन्हें मातृोपम वात्सल्य भी दिया। जेन ने वाणी से नहीं कर्म से उन लोगों के लिए यह आश्वासन दिया है, जो सन्तान सुख से वंचित है और कहा है यदि हमारे अपने बच्चे नहीं तो उद्विग्न होने की क्या आवश्यकता, हम समाज के दलित, तिरस्कृत और शोषित बच्चों को अपनायें। यदि यह हम कर सकें तो निश्चित है कि सन्तान का अभाव कभी महसूस नहीं होगा।

जन-जन की पीड़ा बाँटने वाली—
श्रीमती डिक्सन

प्रेस बिटेरियन चर्च कनाडा के विदेशी मिशन विभाग के अधिकारियों को सूचना मिली कि उनके फारमोसा क्षेत्र के योग्यतम मिशनरी डा. जेम्स डिक्सन की पत्नी लिलियन डिक्सन ने उस क्षेत्र में बहुत काम किया है। उसने वहाँ के अधिकारियों की लालफीताशाही को लगाम दी है, नयी पीढ़ी को जेल व वेश्याओं के कोठों से निकालकर एक उज्ज्वल भविष्य के पथ पर अग्रसर किया है, अशिक्षितों को शिक्षा की प्रकाश किरणों से नहलाया है। रोगियों को रोग के दल-दल से निकालकर स्वास्थ्य की महकती भूमि पर रखा है।

उसने अपने इन क्रिया-कलापों की कोई सूचना प्रेस बिटेरियन चर्च के अधिकारियों को नहीं दी, न उनसे सहायता ही माँगी और न कोई मार्गदर्शन ही चाहा। बोर्ड ने एक प्रतिनिधि उससे मिलने के लिए भेजा। प्रतिनिधि ने पूछा—"आपने इतना बड़ा काम किया और कोई सहयोग, सहायता नहीं चाही, न बोर्ड को सूचना ही दी।" श्रीमती डिक्सन प्रतिनिधि की इस बात पर तमककर बोली—"तो क्या आप लोगों ने—बोर्ड के अधिकारियों ने ही मानवीय

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संवेदना का ठेका ले रखा है ? ईश्वर जैसे तुम्हें सद्कार्यों को करने के लिए प्रेरित करता है, क्या मुझे नहीं कर सकता या किसी इतर व्यक्ति को नहीं कर सकता ? यह तो मानवीय अन्तःकरण की स्वाभाविक भूख है। शरीर को पोषण के लिए आहार चाहिए, मन को पोषण के लिए स्वास्थ्य, मनोरंजन आदि चाहिए वैसे ही आत्मा के पोषण के लिए परमार्थ अनिवार्य है। यह स्वाभाविक प्रक्रिया है, मानवीय धर्म है। इसमें किसी से क्या पूछना ?'' प्रतिनिधि चकित हो इस महिला की ओर देखता ही रह गया।

मनुष्य का मन यत्र-तत्र भटकता ही रहता है। कभी वह भौतिक ऐश्वर्य की तृप्ति चाहता है, तो कभी प्रसिद्धि का मानसिक विलास चाहता है, तो कभी अस्थि-चर्ममय देह की मायामयी गिरि-कन्दराओं में उन्मुक्त विहार करना चाहता है। वासना कभी अपने उद्दाम आवेगों में उसे लपेट लेना चाहती है, तो कभी तृष्णा उसे निन्यानवें के चक्कर में फँसा लेना चाहती है। किन्तु जीवन में ऐसे क्षण भी आते हैं कि आत्मा अपनी चेतना द्वारा उसे परमार्थ पथ—बहुजन हिताय के ईश्वरीय राजपथ पर चलने की मनुहार भी करती है। इस मनुहार को जो स्वीकार कर लेता है, उस व्यक्ति को जो सुख-संतोष मिलता है, वह मात्र सांसारिक प्रयोजनों में नहीं मिल सकता। लिलियन के चंचल मन ने भी पत्रकार जीवन अपनाकर प्रसिद्धि पाने की कामना की थी। किन्तु उसकी यह कामना कितनी छोटी थी, यह उसने बाद में जाना। अपने विद्यार्थी जीवन में ही मिनिसोटा के मेकाल्स्टर कॉलेज में उसका परिचय जिम. डिक्सन से हुआ, जिसका ध्येय आगे चलकर मिशनरी जीवन अपनाना था। उनका यह परिचय बढ़ता हुआ विवाह की मंजिल तक पहुँचा और उन्नीस वर्ष की लिलियन मिशनरी पादरी जिम डिकसन की पत्नी बनकर फारमोसा पहुँच गयी।

अमेरिका के जन-जीवन में उसने बड़े-बड़े फार्म, उन्नत डेयरी फार्म, सोना उगलती खानें और कारखाने देखे थे। औसत अमरीकी आदमी भी कार पर सवार होकर चलता था। किन्तु यहाँ की स्थिति वहाँ से बिल्कुल उल्टी थी। सर्वत्र गरीबी, उत्पीड़न, अशिक्षा, रूढ़ीवाद और दयनीयता का साम्राज्य था। विवश माता-पिता अपनी लड़कियों को वेश्याओं के हाथ बेच देते थे। भूखे-नंगे बालक चोरी करके जेल में पहुँच जाते थे।

यह देखकर उसकी ममता का हिम शिखर पिघल पड़ा। किन्तु एक अकेली साधनहीन नारी क्या कर सकती है ? यह सोचकर वह रो पड़ी। दूसरे ही क्षण उसे अपने भीतर से एक आवाज आती हुई सुनाई पड़ी—पगली रोती है। तू यह सब कोई अपने लिए कर रही है। यह तो ईश्वरीय कार्य है। उसके हाथ बड़े लम्बे हैं। तू अकेली कहाँ ? तेरे साथ तो उसकी सत्ता है। उठ, कर्मक्षेत्र तुझे पुकार रहा है।

लिलियन ने यह रहस्यमयी, विश्वास से परिपूर्ण आवाज सुनी। यह उसके अपने भीतर से आ रही थी। उसे इसकी सच्चाई पर विश्वास हो गया। सच ही तो है। महात्मा ईसा के पास क्या था ? लेकिन आज उनकी वाणी सारे विश्व में गूँज रही है। उस दिन लिलियन की यह आस्था दृढ़ हो गयी, ईश्वर है और वह परोपकारी की सहायता अवश्य करता है, अत्याचारी को दण्ड अवश्य देता है। यह विश्वास ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति बना।

फारमोसा के पर्वतों पर रहने वाली जन-जातियाँ वर्षों से उपेक्षित पड़ी थीं। उनका जीवन रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, गरीबी, अशिक्षा तथा बीमारियों से परिपूर्ण था। सभ्य समाज से कटा हुआ यह जनसमुदाय सभ्यता के बढ़ते चरणों से भयभीत हो दुर्गम वन-प्रान्तरों में और पर्वतों की चोटियों में रहा करता था। लिलियन डिक्सन ने इन्हीं लोगों में काम करना आरम्भ किया।

सन् १९०८ में अमेरिका के मिनिसोटा प्रदेश के समृद्ध कृषक परिवार में जन्मी लिलियन ने अपना जीवन अब दीन-दुःखियों और पिछड़े वर्गों की सेवा के महान कार्य को पूर्णरूपेण समर्पित कर दिया था। उसका पति स्वयं मिशनरी-भावना से यहाँ आया था। उसने अपनी पत्नी के इस निर्णय का स्वागत किया। उसने भी पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए लोक-मंगल का बहुत काम किया। पाँच फुट से भी छोटी यह प्रसन्नवदना ममतामयी नारी फारमोसा को जनता में 'विशालहृदया नन्हीं माता' के नाम से पुकारी जाती हैं।

आदिम जातियों के उन लोगों को जो मनुष्यों को मारकर उनकी खोपड़ियाँ अपनी वीरता की निशानी के रूप में रखते थे। पुलिस भी उन पर काबू नहीं पा सकती थी। उन्हें अपनी सेवा, ममता तथा आत्मीयता के बल-बूते पर उसने अपना बना लिया।

पौष्टिक आहार नहीं मिलने व चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में अस्सी प्रतिशत आदिवासी क्षय रोग से ग्रस्त हो जाते थे। बच्चों की मृत्यु दर इतनी अधिक थी कि दर्जन बच्चे उत्पन्न होते थे, तो उनमें से एक ही जीवित बचता था।

उसने ईश्वर का नाम लेकर यहाँ चिकित्सालय खोलने की योजना बनाई। उसका यह विश्वास कि ईश्वर ऐसे कामों में सफलता अवश्य दिलायेगा, कार्य पूरा होकर रहेगा। उसने अमेरिकावासी मित्रों से आर्थिक अनुदान देने के लिए पत्र व्यवहार किया। पास में एक भी पैसा नहीं होते हुए भी उन्होंने आवश्यक उपकरण मँगाने के लिए आदेश दिये। डॉक्टरों तथा नर्सों से बिना वेतन सेवा करने की प्रार्थना की। समय के साथ धन भी आया और कई दिशाओं से आया। स्वयंसेवी चिकित्सक और परिचारिकाएँ भी सुलभ हुईं। छोटे रूप में खोला गया यह चिकित्सालय फलता-फूलता गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.४८ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

चिकित्सा के बाद शिक्षा की दिशा में चरण बढ़ाये तो बढ़ते-बढ़ते वहाँ ५००० बच्चों के लिये १०० किंडरगार्टन स्कूल तथा एक हायर सेकण्डरी स्कूल बन गया। इस क्षेत्र के २०० युवक अब बी. ए. पास कर चुके हैं।

यहाँ का अस्पताल प्रतिवर्ष २८००० व्यक्तियों को चिकित्सा सेवाएँ उपलब्ध करता है। यही नहीं अब यहाँ चार प्रसूतिगृह तथा एक क्षय चिकित्सालय भी खुल गया है।

१९४७ में उसे किसी कार्यवश तेपेह के निकट एक सरकारी बस्ती में जाना पड़ा। वहाँ हेनसेन नामक बीमारी बुरी तरह फैली हुई थी। यहाँ के लोगों की दयनीय दशा देखकर उनका हृदय भर उठा। यहाँ के अस्पताल में रोगियों को सामान्य चिकित्सा व एक हजार में से प्रत्येक को एक कटोरा चावल मिलता था, जिसे उन्हें स्वयं अपने हाथों से पकाना पड़ता था, खुले में सोना पड़ता था। उनके लिए न पलंगों की व्यवस्था थी, न कम्बलों की। उसने इस बस्ती के भ्रष्ट अधीक्षक की शिकायत उच्चाधिकारियों को की। उन्होंने स्वयं श्रीमती डिकसन से चिकित्सा व्यवस्था का पद भार सम्हालने का अनुरोध किया। लिलियन डिकसन ने उसे स्वीकार कर लिया। उसे इस चिकित्सा अभियान के लिए ३००,००० डालर की धनराशि भी मिली। इस धन राशि से उसने एक व्यवस्थित एवं सम्पूर्ण सुविधासम्पन्न चिकित्सालय का निर्माण किया। यह अन्याय और धूर्तता पर सत्य और न्याय की विजय थी।

इस बस्ती में उसने स्कूल और वाचनालय खुलवाया। इस स्कूल में उसने सुयोग्य शिक्षकों की नियुक्ति की। वाचनालय, पुस्तकालय में ज्ञानवर्धक तथा धार्मिक, नैतिक पुस्तकों का पर्याप्त संग्रह किया। वही नारकीय बस्ती अब उस प्रदेश की सुन्दरतम बस्ती है तथा 'सुखी जीवन' के नाम से प्रसिद्ध है।

जहाँ भी उसे यह अनुभव होता है कि यहाँ उसकी सेवा, सहयोग की आवश्यकता है, वहीं वह जुटी पड़ती। उसका अगला कदम अनाथ बच्चों का उद्धार करने के लिए बढ़ा। वह यह देखकर द्रवित हो उठी कि नौ वर्ष से भी कम आयु के बच्चे चोरी के अपराध में पकड़ लिये जाते हैं, वे जेल में बन्द कर दिये जाते हैं। ये अनाथ बालक आगे चलकर कुख्यात अपराधी बनते हैं। उसमें ऐसे १४० अनाथ बच्चों को एकत्रित किया। भूखे, नंगे और दुःखी, त्रस्त ये बालक पेट की आग बुझाने के लिए अपराध करने को विवश हो जाते थे।

उनकी शिक्षा तथा आवास की व्यवस्था उसने की। नैतिकता तथा स्वावलम्बन इस शिक्षा का मुख्य आधार रहता था। श्रीमती डिकसन के सद्प्रयासों का ही परिणाम है कि अब वहाँ १२ अनाथालगों में ४०० बच्चों के रहने तथा योग्य नागरिक बनने की सुविधायें जुटाई गई हैं।

एक सामान्य-सी महिला इतने सारे काम कैसे कर सकी ? यह प्रश्न प्रत्येक व्यक्ति के मन में स्वाभाविक रूप से उठता है और यहीं आकर प्रत्येक व्यक्ति अपने मन में उठती हुई समाज सेवा व लोक मंगल की भावनाओं को मूर्त व व्यवहारिक रूप नहीं दे पाता, क्योंकि वह स्वयं की सामर्थ्य को ही आँककर चलता है। इसके लिए साहस की आवश्यकता होती है। साहस ही नहीं इसे दुस्साहस भी कहा जा सकता है। सत्कार्यों की सफलता सुनिश्चित होती है। एक आदमी उन्हें पूरा करने के लिए कमर कसकर मैदान में कूद पड़ता है, तो दूसरे उसे देखते नहीं रहते। उसे देखकर उनके मन में भी हलचल अवश्य होती है। वे भी पुण्य लाभ करने को उत्सुक होते हैं। किन्तु पहले कुछ समय तक वे उस पहले कूदने वाले की हिम्मत को देखते हैं। यदि वह डटा रह गया तो उनको सहायक बनने में देर नहीं लगती।

यही श्रीमती डिकसन के साथ ही हुआ। उसने यह विश्वास नहीं खोया 'हमें आरम्भ कर ही देना चाहिये। ईश्वर सफलता अवश्य प्रदान करेगा।' उसका यह विश्वास, कर्मनिष्ठा और परमार्थ परायण दृष्टिकोण उसे प्रत्येक कार्य में सफलता दिलाता गया। उसने दूसरों को अपना सहायक बना लेने तथा उन्हें प्रभावित करने के गुणों को विकसित किया था। उसके इन लोकहित के कार्यों में हजारों स्वयं सेवक काम करते थे। जो श्रमदान कर सकते थे श्रमदान करते, समय दानी समय देते और धनपति धन जुटाते। सबको श्रेय देती हुई वह स्वयं को सबसे पीछे रखती थीं। इसका परिणाम यह होता है कि उसे सहयोगियों की कमी नहीं रहती थी।

लोक-सेवा के आकांक्षियों की क्षीण ललक को प्रबल संकल्प का रूप देने, उनके डगमगाते कदमों को सहारा देने के लिए लिलियन डिकसन का यह उदाहरण अपर्याप्त नहीं। कर्मनिष्ठा और विश्वास की सम्पदाएँ पास में हैं तो परमार्थ प्रयोजन में जुट पड़ने वालों की सहायता ईश्वर करता है और उन्हें सफल बनाता है। इस सत्य के प्रतीक रूप में उनका यह जीवनवृत्त इतिहास के पन्नों पर अमर है।

मानवता की पक्षधर—डोरोथिया डिक्स

मार्च १८४१ का एक रविवार। बोस्टन नगर निर्वासनी छरहरे बदन की लजीली युवती कुमारी डोरोथिया लिण्ड डिक्स, ईस्ट केम्ब्रिज, मेसाचुसेट्स के नगर प्रान्तर स्थित हाउस ऑफ करक्शन्स की रविवासरीय कक्षा समाप्त कर अपने घर लौटी, तो उसका मन खिन्न व उदास था। वह किन्हीं भयानक विचारों के भँवर में फँसी हुई लग रही थी। उसने जेल में चार विक्षिप्त मनुष्यों को बड़ी ही करुणाजनक स्थिति में देखा था। यह उसी की प्रतिक्रिया थी। उनके रहने की कोठरियाँ इतनी तंग, अँधेरी, गन्दी व सीलन भरी थीं, उनमें सुअर भले ही रह सकें, मनुष्य कदापि नहीं रह सकते।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोमल हृदया इस तरुणी के मन पर उनकी इस कारुणिक स्थिति का बड़ा प्रभाव पड़ा था। पागल सही किन्तु वे मनुष्य तो हैं। उन्हें इस नारकीय स्थिति में रखा जाना उसे कतई नागवार गुजरा। ऐसी स्थिति में रहकर तो स्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति भी पागल हो जाय, तो वे पागल भला कब ठीक हो सकते हैं। यदि उन्हें ठीक तरह रखा जाय, तो बहुत सम्भव है कि उनका विकृत मस्तिष्क ठीक हो जाय। किन्तु ऐसी दशा में तो यह सम्भावना नितान्त असम्भव ही है। उनके साथ मनुष्यों जैसा व्यवहार तो होना ही चाहिए।

इस घटना ने उस युवती के जीवन को एक नवीन उद्देश्य प्रदान किया। यह उद्देश्य था, इन विकृत मस्तिष्क मनुष्यों की दशा सुधार करवाने के लिए संघर्ष करना। शरीर से जब मनुष्य रुग्ण हो जाता है, तो उसकी चिकित्सा कराई जाती है। उसकी सेवा-सुश्रूषा की जाती है। उसे स्वस्थ मनुष्यों से अधिक सुविधाएँ, सुख दिया जाता है। जिससे कि उसको स्वास्थ्य लाभ हो सके। मानसिक रूप से रोगी मनुष्यों के साथ भी होना तो यही चाहिए। किन्तु होता इसके विपरीत ही है। अतः वह उनके लिए संघर्ष करेगी और उन्हें अच्छी परिस्थितियों में रखा जाय, इसके लिए आवाज उठायेगी। यह उसके जीवन का ध्येय होगा।

सामान्य मनुष्यों के लिए डोरोथिया का यह संकल्प महज एक हठ—पागलों के लिए किया जाने वाला पागलपन ही था। किन्तु वास्तव में यह कोरा हठ नहीं था और न पागलपन ही। उसके पीछे डोरोथिया की ममता, करुणा, संवेदनशीलता व बुद्धिमत्ता जुड़ी थी। वे अपने इन प्रयासों में सफल होकर रहीं। उन्होंने अमेरिका में नहीं विश्व के सभी मानसिक रुग्णों के लिए उत्तम जीवन का पथ-प्रशस्त किया।

इस सम्बन्ध में उन्होंने अधिक जानकारी पाने का प्रयास किया तो उन्हें यह ज्ञात हुआ कि ईस्ट केम्ब्रिज में विकृत मस्तिष्क लोगों को जिन नारकीय परिस्थितियों में रखा जाता है, उसी से लोग सन्तुष्ट हैं। इन्हें खतरनाक जानवरों की तरह जंजीरों में जकड़कर रखना तथा काल कोठरियों में बन्दकर देना ही उपयुक्त समझा जाता है। यही नहीं इन पागलखानों के प्रबन्धक दर्शकों से फीस लेकर उन्हें इन बेचारों की दीनता व विडम्बना से पाशविक रस लेने की सुविधाएँ भी देते थे। लोग इन भाग्य के मारों की बड़बड़ाहट सुनने व उन पर कंकड़-पत्थर व लकड़ियाँ फेंककर उन्हें परेशान करने में प्रसन्नता का अनुभव भी करते हैं।

एक शताब्दी पहले विकृत मस्तिष्क मनुष्यों के रोगोपचार की यही स्थिति थी। इन लोगों को इस विभीषिका से मुक्त कराने के लिए किसी देवदूत के अवतरण की आवश्यकता थी। यह देवदूत और कोई नहीं कुमारी डोरोथिया ही थीं, जिन्होंने चालीस वर्षों तक इनकी स्थिति सुधारने के लिए कठोर श्रम किया।

उन्होंने विक्षिप्त गृहों से सम्बन्धित उच्चाधिकारियों का ध्यान अपने पत्रों व व्यक्तिगत वार्तालाप द्वारा आकर्षित किया। अधिकारियों ने उनके इस प्रयास को स्त्री प्रकृति के विपरीत के बताया। उन्होंने थोड़ी-सी स्नान-शौच आदि की व्यवस्थाएँ जुटाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया।

इस आंशिक सफलता को दूसरे शब्दों में असफलता भी कहा जा सकता है। किन्तु कुमारी डोरोथिया इस असफलता से निराश नहीं हुईं। उन्होंने दो वर्ष तक ईस्ट केम्ब्रिज विक्षिप्त गृहों के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी व अनुसन्धान किया। इसके अनन्तर उन्होंने उक्त विषयक एक विनम्र निवेदन जनता व उच्चाधिकारियों की सेवा में भेजा। यह निवेदन विक्षिप्त गृहों का कारुणिक कच्चा-चिट्ठा था। उसमें स्थान, व्यक्ति व समय का पूरा-पूरा उल्लेख किया गया था।

इन विक्षिप्त गृहों में महिलाएँ भी थीं। बोस्टन नगर के पागलखाने की एक स्त्री बन्दिनी का ऐसा ही एक कारुणिक चित्र उन्होंने खींचा था। इसी प्रकार न्यूटन नगर की एक विक्षिप्त महिला को जंजीरों से जकड़कर प्रसाधन गृह जैसे छोटे से गन्दे कमरे में डाल रखा था। ऐसे कई वर्णन उसमें भरे पड़े थे।

उनका यह प्रयास असफल नहीं गया। विधान बनाने वाली सत्ता ने उनकी इस तथ्यपूर्ण बात को ध्यान से पढ़ा और उस पर विचार किया—और मेसाचुसेट्स विधान सभा ने तत्काल वरसेस्टर चिकित्सालय में दो सौ विकृत मस्तिष्क मनुष्यों के लिए अच्छे कमरों की व्यवस्था की। भविष्य में और भी व्यवस्था करने का आश्वासन विधान-सभा ने दिया।

कुमारी डोरोथिया का यह अभियान एक स्टेट में अपनी विजय के बाद ही रुक नहीं गया। अब तो उन्हें जनता से व अभिजात्य वर्ग से धन व समर्थन का सहयोग भी मिलने लगा था। इस संघर्ष के दौरान अब्राहमसीमेन नामक विक्षिप्त का नाम सारे अमेरिका में जाने लगा। क्योंकि उसकी दुर्दशा को लेकर अमेरिका के समाचार-पत्रों में बहुत कुछ छपा था। यह सब कुमारी डोरोथिया का ही काम था।

रिहोड द्वीप के बाद न्यू जर्सी व पेंसिलवेनिया का नम्बर आया। बीस वर्ष तक वे अमेरिका के एक कोने से दूसरे कोने तक इसी उद्देश्य से भ्रमण करती रहीं। कभी उन्हें घोड़ागाड़ी की सवारी करनी पड़ती थी, तो कभी पैदल भी चलना पड़ता था। उन्होंने इन वर्षों में कोई १०,००० मील की यात्रा की, १८ स्टेट्स में वे गयीं तथा ३०० जेलों व ५०० विक्षिप्त-गृहों का निरीक्षण किया। इनके अतिरिक्त शताधिक चिकित्सालयों तथा शरणार्थी शिविरों में भी वे गयीं, जहाँ विक्षिप्तों को रखा जाता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.५० यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

इन यात्राओं के दौरान कई बार उनके प्राण संकट में पड़े। कई बार दुर्घटना होते-होते बची। एक बार तो वे डाकुओं के फन्दे में पड़ गयीं। डाकुओं में से एक व्यक्ति उन्हें जानता था। उसने इस परमार्थ परायण महिला को सविनय मुक्त कर दिया।

उनका साहस व मनुष्यत्व के प्रति सहज विश्वास अटूट था। वे न्यू जर्सी में ऐसे पागल के निकट बेधड़क होकर चली गयीं, जिससे जेल के अधिकारी व वार्डन भी भय खाते थे। उन्होंने उन्हें सचेत भी किया था—"ऐसे खूँख्वार पागल के पास मत जाइये।" किन्तु वह मानी नहीं, उसके पास गयीं और उसे उसके नाम से पुकारा। वह उनके इस व्यवहार पर रो पड़ा। उन्होंने अपने इन प्रयासों से सिद्ध कर दिया था कि यदि इन लोगों को ढंग से रखा जाय, उचित व्यवहार किया जाय, तो उनके मानसिक रोग को दूर किया जा सकता है।

अमेरिकन गृह-युद्ध के समय उन्होंने महिला नर्सों के अधीक्षक का कार्य किया। चार वर्षों तक उन्होंने दिन-रात घायलों का उपचार किया। युद्ध समाप्ति पर पुनः वे अपने पहले वाले काम में जुट गयीं तथा मृत्युपर्यन्त उस व्रत को निभाती रहीं, जिसे उन्होंने यौवन के उषाकाल में लिया था। अस्सीवर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ। प्रशंसा से सर्वथा दूर रहने वाली इस महिला का व्यक्तित्व व कर्तृत्व सराहनीय ही नहीं अनुकरणीय भी है।

सोलडाड की संरक्षिका—
डोना लिलियन

सत्रह वर्षीय सुन्दर छरहरे बदन की किशोरी पहली बार अपने दूल्हे के साथ उसके श्वसुर द्वारा खरीदे गये इस वन प्रदेश को कौतूहलपूर्वक देख रही थी। उसकी नीली आँखों की परिधि में भी नहीं समा पाने वाला यह प्रान्तर पश्चिम के रबर के वृक्षों तथा अपनी धुन में बहते हुए निर्झरों से लेकर पूर्व में अमेजन नदी के बेसिन तक फैला था।

यह युगल २४०० मील की समुद्री यात्रा कर दक्षिणी अमेरिका के इस प्रदेश में पहुँचा था। न्यूयार्कवासी व्यापारी की कन्या लिलियन ने गगनचुम्बी भवन तो देखे थे किन्तु ऐसी छोटी-छोटी झोंपड़ियाँ तथा उनमें रहने वाले विचित्र रेड इण्डियन नहीं देखे थे। सभ्यता के प्रकाश से दूर ये लोग अपना जीवन उसी पुराने तरीके से चला रहे थे। इन विचित्र वेश-भूषा वाले लोगों तथा जंगली जानवरों से अटे प्रदेश से उसे कतई दिलचस्पी नहीं थी। उसकी लावण्यमयी आँखों में मादक स्वप्न तैर रहे थे। उसे इस प्रदेश से कुछ लेना-देना नहीं था। उसका पति न्यूयार्क नगर में इन्जीनियर था।

उस समय लिलियन को क्या पता था कि उसके जीवन का अधिकांश समय इसी प्रदेश में, यहाँ के निवासियों की सेवा-सहायता तथा संरक्षण करने में ही व्यतीत होगा। उसका कर्मक्षेत्र यही उजाड़ वन क्षेत्र उसकी कर्म स्थली बनेगा तथा यहाँ के निवासी उसे देवी की तरह पूजेंगे।

१९२६ में उसे अपने पति के साथ इसी प्रदेश में सदा के लिये रहने के उद्देश्य से लौटना पड़ा। विश्व व्यापी मन्दी के दिनों में अमेरिका ही नहीं विश्व के सभी देशों की आर्थिक स्थिति गिरने लगी थी, उसके पति अलबर्ट की नौकरी जाती रही। श्वसुर का देहान्त पहले ही हो चुका था। अब इनके लिये रबर उत्पादन करने वाला वह वन प्रदेश तथा युरीमागवा गाँव के वे दो-चार मकान ही उनके परिवार के आश्रय स्थल शेष रहे थे।

यहाँ आकर डोना लिलियन दूसरी ही महिला बन गई। पहले उसे जंगल तथा जंगली जानवरों के नाम से कँपकँपी छूटती थी। बाद में वह सोलडाड प्रदेश की जहाँ से कई पुरुष भी डरकर भाग गये थे, संरक्षिका बन गयी।

यहाँ के निवासी जो उसे असभ्य लगते थे, वही अब उसके साथी बन गये थे। इनके निकट रहकर उसने देखा कि उन्हीं को सच्चे सहयोग की आवश्यकता है। इन भोले-भाले अशिक्षित आदिवासियों में कई ऐसे मानवीय सद्गुण तथा जीवन की सफलताएँ विद्यमान हैं, जिनका सभ्य कहे जाने वाले संसार में लगभग लोप हो ही चुका है। सादगी, श्रद्धा, विश्वास, सेवा तथा प्रेम के रसों से इनका जीवनघट लबालब भरा हुआ है।

न्यूयार्क महानगर में रहते हुए उसने वहाँ के सम्पन्न किन्तु अशान्त जीवन को निकट से देखा था। जीवन में गति तो आवश्यक है किन्तु यह भाग-दौड़ तो सदा के लिए शान्ति को खो बैठना ही है। मशीनों तथा निर्जीव मुद्रा पत्रों की ललक ने मनुष्य का सुख-चैन छीन लिया है। वहाँ की अपेक्षा इस विरल जनसंख्यायुक्त प्रदेश में शान्ति है, सुख है।

औद्योगीकरण प्रक्रिया ने जन समुदाय को दूर-दूर से उठाकर एक स्थान पर एकत्रित कर दिया है। अधिक वस्तुएँ उपलब्ध होने पर उसका मूल्य कम हो जाता है, वैसे ही मनुष्य के मूल्य को घटते हुए भी लिलियन ने देखा था। वहाँ जीवन की दौड़ इतनी कृत्रिम हो गयी थी कि मनुष्य को मनुष्य की तरह सोचने की फुर्सत ही नहीं मिलती थी। यहाँ आकर उसने अपने समक्ष विशाल कर्मक्षेत्र खुला पाया, जहाँ स्वार्थ और परमार्थ, धरती व आकाश की तरह एक क्षितिज पर चिर मिलन की मुद्रा में खड़े उसके अगवानी कर रहे थे। यह देखकर वह हर्ष विभोर हो गयी। अरे ! अब तक मैं जीवन के सच्चे सुख से वंचित ही थी।

आज लिलियन डी एकोस्टा पीरू के अमेजनिया क्षेत्र की जानी-मानी महिला है। इस सोलडाड नामक वन प्रदेश की वह स्वामिनी ही नहीं, वहाँ के आठ सौ रेड इण्डियन्स की संरक्षिका तथा पालनकर्त्ता भी है। १९४७ में

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने पति अलबर्तो के देहावसान के पश्चात् वह अकेली ही इस प्रदेश को सम्हाल रही है। एक दुबली-पतली शारीरिक शक्ति में न्यून इस महिला ने जिस प्रकार भावनात्मक स्तर पर मानवीय संवेदनाओं को इन भोले-भाले आदिवासियों से जोड़कर इस प्रदेश की—इनके निवासियों की प्रगति की है, वह आश्चर्यचकित करने वाली है। उनका यह प्रयास इस भ्रम तथा भ्रान्त धारणा को समूल नष्ट करने के लिए पर्याप्त है कि नारी पुरुष की तरह ही प्रत्येक कार्य में सक्षम है, जिस वन्य जीवन से परास्त हो कई पुरुष भाग गये थे उसे उन्होंने सम्पन्न करके दिखा दिया है।

दुःख के, रोग के तथा धनाभाव के क्षणों में पल-पल पर सहारा देने वाली यह सुनहरे केशों वाली क्षीणकाय महिला सोलडाड के निवासियों में देवी की तरह पूजी जाती है। वह उनकी न्यायकर्त्ता, आध्यात्मिक सलाहकार, घर-गृहस्थी के कामों की सलाहकार, इन्जीनियर, नगर प्रबन्धिका तथा साहूकार सब कुछ है। उसके सामने अपराधी लोग भी अपना अपराध स्वीकार करते हिचकिचाते नहीं। सहायता माँगते समय किसी के मन में दैन्य का भाव नहीं आता। उसने इनके अँधेरे जीवन में एक नवीन ज्योति जलाई है। सभ्य कहे जाने वाले मनुष्यों के शोषण, उत्पीड़न से इन गरीब आदिवासियों को बचाया है।

भगवान भास्कर की प्रथम किरण के साथ ही उनका दैनिक जीवन क्रम चल पड़ता है। दिन भर का आधा समय वह अपने लिये तथा आधा समय वह सोलडाड निवासियों के लिए निकालती है। सोलडाड की दो सौ एकड़ पपीता कृषि योग्य भूमि, पैंसठ चौपाये तथा अनाज, धान, पपीता तथा अनन्नास के खेत—उपवन उन्हीं के अधिदर्शन (ओवरसीयरी) का परिणाम है।

सोलडाड प्रदेश का आर्थिक आधार वहाँ के रबर के वन तथा जड़ी-बूटियाँ हैं। इस जंगल में काम करने वाले १०८ रेड इण्डियन परिवार की वह एकमात्र क्रेता, साहूकार तथा भण्डारी है। वह उन्हें काम करते समय पहनने के वस्त्र, सुन्दर वस्त्र, बारूद, हथियार तथा दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ उपलब्ध कराती है। यही नहीं उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिये तथा सामाजिक प्रगति के लिये सभी प्रबन्ध वह मुफ्त ही करती है। उनके यह व्यावसायिक प्रबन्ध अपने निहित स्वार्थ के लिये नहीं वरन् उन्हें समुचित मूल्य देने के लिये ही होता है।

सन् १९२७ में उनके पुत्र आस्टिन के श्वास द्वार पर ऐंठन हुई तथा उसके कारण उसका श्वास लेना रुक गया। डाक्टरों ने उसके श्वाँस लेने के लिये एक धातु की नलिका उस स्थान पर फिटकर दी, साथ ही उन्होंने निराशा से सिर हिलाते हुए कह भी दिया—''यह अधिक दिनों तक बच नहीं सकेगा।''

यह लिलियन के लिये एक चुनौती थी। माँ की ममता कभी अपने से अपना शिशु दूर होते नहीं देख सकती। रात में जब आस्टिन सो जाता, तो वह उसकी निगरानी किया करती कि कहीं नलिका में कोई अवरोध न आ जाय तथा आस्टिन को खोना पड़े। नित्य वह उस नलिका की सफाई करती। बड़े होने पर आस्टिन स्वयं उसकी सफाई कर लेता था किन्तु रात्रि की यह सतर्कता तो जब तक वह पन्द्रह वर्ष का नहीं हो गया, उसकी माता को रखनी ही पड़ी।

सफाई करते जितनी देर तक आस्टिन बिना नली के श्वाँस लेता था। इससे लिलियन के मस्तिष्क में एक विचार उत्पन्न हुआ। क्यों न इस समय को धीरे-धीरे बढ़ाते हुए एक दिन सदा के लिये आस्टिन को इस नलिका से मुक्त कर दिया जाय। वह अपनी प्रबल इच्छाशक्ति के बल पर इस कार्य में सफल भी हो गयी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सेना को बारबेसो नामक झाड़ी की जड़ों की अत्यधिक मात्रा में आवश्यकता थी, जो सोलडाड प्रदेश में होती थी। इस जड़ी से एक विषैली गैस निकलती है, जो मनुष्य को विकलांग बना देती है। इसके अधिक सम्पर्क में रहने से लिलियन को पक्षाघात हो गया। वह पीरू की राजधानी लीमा के डाक्टरों के पास गई किन्तु उसे निराशा ही हाथ लगी। हारकर उसने अपने आधे सक्रिय शरीर से ही सोलडाडवासियों की सेवा करने का निश्चय कर लिया। उसकी आत्मविश्वास भरी जिजीविषा अन्ततः अमोघ औषधि हुई और क्रमशः रोग मुक्त होती चली गई। कुछ ही वर्ष उपरान्त वह अपना सामान्य कामकाज सरलतापूर्वक कर सकने योग्य हो गई।

डाक्टरों ने जिस रोग को असाध्य बता दिया था, उसका एक जड़ी-बूटी से ठीक हो जाना आश्चर्यजनक ही था। लिलियन के इस प्रकार स्वस्थ हो जाने से चिकित्सा के नये आयाम खोलकर रख दिये।

समय के साथ सोलडाड प्रदेश की प्रगति होने लगी है। युरी मारवास अब दस हजार की आबादी का नगर हो गया है। रेल्वे, सड़कों तथा यातायात के साधनों का विस्तार हो रहा है। इस प्रगति की रजत रश्मियों का स्वागत लिलियन मुस्कुराकर कर रही है। अपने सह-कर्मियों को इस योग्य बनाने में वह रात-दिन जुटी रहती है ताकि वे उसका भरपूर लाभ उठा सकें।

सत्रह वर्ष की आयु में इस बीहड़ वन प्रदेश, यहाँ के निवासियों की छोटी-छोटी झोंपड़ियों तथा चित्र-विचित्र वेश विन्यास देखकर वह काँप-सी उठी थी, आज वह प्रदेश अपना रूप बदल रहा है, उसके साथ ही वे सम्भावनाएँ भी बढ़ रही हैं, जो इन भोले-भाले आदिवासियों को लील जायँ। डोना लिलियन उनकी रक्षा ढाल की तरह कर रही है तथा उन्हें शिक्षित तथा सभ्य बना रही है।

ऐसी साहसी, सेवा परायण महिलाओं की आज की त्रस्त मानवता को बड़ी आवश्यकता है। सजने-सँवरने तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने आपको 'कामिनी' की विडम्बना से बचाकर डोना लिलियन की तरह कर्मक्षेत्र में उतर पड़ने तथा धन्य हो जाने का साहस उत्पन्न करके हर कोई नारी अपने आपको पुरुष के समान सिद्ध कर सकती है।

नेत्रहीनों के जगत की चन्द्रिका— डोरीना

एक अन्धे ब्राजीलवासी युवक को साओ पालो नगर में कहीं नौकरी नहीं मिली। वह एक निपुण मालिशकर्त्ता था किन्तु नेत्रहीन होने के कारण जहाँ भी जाता वहीं उसे निराश होना पड़ता। उस युवक को किसी ने डोरीना डी ग्वाइया के पास जाने को कहा।

डोरीना स्वयं एक नेत्रहीन महिला है किन्तु अपने आत्मविश्वास व प्रबल उमंगों के बल पर उसने स्वयं को ही स्वावलम्बी एवं सुशिक्षित नहीं बनाया वरन् उन हजारों नेत्रहीनों के अँधेरे जीवन में भी वह प्रकाश किरण बनकर उतरी जो इस युवक की तरह निराशा के अन्धकार में सिर पटकने के लिए विवश हो गये थे। विश्व विख्यात प्रज्ञा चक्षु समाजसेविका हेलन-केलर के डोरीना के सम्बन्ध में कहे गये ये शब्द "जहाँ डोरीना है, वहाँ अन्धकार नहीं रह सकता।" अत्युक्ति नहीं वरन् यथार्थ सत्य है।

युवक निर्दिष्ट 'ब्राजेलियन फाउण्डेशन फॉर दी ब्लाइण्ड' जिसकी डोरीना संस्थापिका-संचालिका थी, के कार्यालय में पहुँचा तथा अपनी समस्या डोरीना के सामने रखी। युवक की परेशानी पर पूर्ण संवेदना जताते हुए उसने कहा—"मैं पूरा-पूरा प्रयास करूँगी कि तुम्हें काम दिला सकूँ।" हजारों आँखों वालों को अन्धा कहा जाय या इस महिला को जिसके आन्तरिक नयन खुले हुए थे।

डोरीना ने उस युवक का नाम-पता नोटकर लिया तथा तलाश आरम्भ कर दी। उसे ज्ञात हुआ कि साओ-पालो सोलर क्लब में एक मालिश करने वाले की आवश्यकता है, तो उसने वहाँ फोन करके अध्यक्ष से मिलने का समय माँगा। पता चला कि अध्यक्ष महोदय अस्वस्थ होकर चिकित्सालय में स्वास्थ्य लाभकर रहे हैं, तो वह वहीं जा पहुँची। उसकी बात सुनकर उन्होंने भी वही उत्तर दिया—"युवक से मुझे सहानुभूति है किन्तु मैं एक अन्धे को कैसे रख लूँ ?"

"श्रीमान मालिश आँखों से तो की नहीं जाती—हाथों से की जाती है। आप इस सहानुभूति को थोड़ा और विकसित करें, उसे रखकर देखें समझ में न आये तो मना कर दें।"

अध्यक्ष के बात समझ में आ गयी। उसने युवक को अपने क्लब में नौकरी दे दी। उसके कार्य से सभी सन्तुष्ट हुए तथा वर्षों तक वह वहाँ नौकरी करता रहा।

यही एक उदाहरण नहीं उसने हजारों ऐसे लोगों को नौकरियाँ दिलवायीं तथा उन्हें सम्मानित और स्वाभिमानपूर्वक जीवनयापन करने का सुअवसर दिलाया। हमारे देश में अधिकांश अन्धे भीख माँगकर जीवन चलाते हैं। यह मार्ग वे तभी अपनाते हैं, जब वे सब ओर से निराश हो जाते हैं। समाज यदि उन्हें काम दे तो वे कदापि ऐसा न करें।

नेत्रहीनों को काम दिलाने में ही नहीं उन्हें शिक्षित बनाने तथा स्वावलम्बी बनाने की दिशा में भी उसने आश्चर्यजनक काम किये। उसका संस्थान बहुत बड़ी मात्रा में ब्रेल पुस्तकों का मुद्रण व प्रकाशन करता है। इसी के अन्तर्गत अन्य उद्योग भी चलाए जाते हैं, जहाँ नेत्रहीनों को काम मिलता है—सम्मानित जीवन जीने का अवसर मिलता है। वे समाज पर भार नहीं समाज के लिये उपयोगी बन जाते हैं। यह सब डोरीना के जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

सत्रह वर्ष की आयु में नियति ने उसकी स्थूल आँखें छीन लीं। यह दुर्घटना उसके जीवन में एक नया मोड़ लायी। उसके भीतर सोयी पड़ी शक्तियाँ जग पड़ीं और वह विश्व के आवरण में बिखरे पड़े भ्रामक आकर्षण से मुक्त हो परमार्थ पथ पर चल पड़ी। पीड़ा की अग्नि मनुष्य के हृदय-अन्तरंग को तपाकर कुन्दन बना देती है। अब तक वह जीवन में रंगीन सपनों में खोयी हुई चल रही थी। इस ठोकर ने आँखें खोल दीं। बहुत सम्भव था यह ठोकर न लगी होती, तो वह इसी मृग-मरीचिका में उलझी रहकर यह जीवन-राशि चुका देती जैसा कि अधिकांश जन करते हैं।

हेमरेज के कारण उसके नेत्र दीप बुझे, उस समय वह काफी स्वस्थ थी। किन्तु वह एक बारगी अपने आप को व्यर्थ समझ बैठी थी। उसकी माता ने उसे इस असहाय अवस्था में एक सहारा दिया। उसके सोये आत्मविश्वास को तनिक थपथपाकर उठाया। उसने कहा—"बेटी दो आँखों के चले जाने से यह जीवन व्यर्थ नहीं हो जाता। जीवन का सच्चा सौन्दर्य अभी भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। उसका कलेवर ही अभी तक तुम देखती आयी थीं, अब उसके प्राण-उसकी आत्मा को देखोगी। तुम्हारी ही तरह ब्रेल महाशय भी बचपन में ही अन्धे हो गये थे किन्तु वे हिम्मत नहीं हारे। उन्होंने अन्धों के लिए बेल लिपि का अनुसन्धान किया, जो उनके लिये प्रगति का द्वार खोले हुए है। तुम भी ब्रेल लिपि सीखकर अपने तथा अपने जैसे नेत्रहीनों के हित में कोई काम करो। माता के इस प्रोत्साहन से उसे बड़ा सहारा मिला। उसने ब्रेल स्कूल में प्रवेश पा लिया।"

१९४३ में उसने अपनी मित्र रेगिना की सहायता से शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में अध्ययन आरम्भ किया। उसके सहपाठी उसे नित्य कॉलेज ले जाते व लाते थे। डोरीना ने भी अपने मृदुल व्यवहार से उनका हृदय जीत लिया था। इस प्रकार उसने अध्यापन का प्रशिक्षण प्राप्त किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब उसका आत्म-विश्वास ही नहीं लौट आया था वरन् एक सुन्दर तथ्य भी उजागर हुआ था कि जन सहयोग के आधार पर नेत्रहीनों की रूठी हुई प्रसन्नताओं को पुनः लौटाया जा सकता है। वह सहयोग अर्जित करने की कला में पर्याप्त दक्ष हो चली थी। उसने यह निश्चय कर लिया कि वह अपनी क्षमताओं का लोकहित में ही विनियोग करेगी।

यह निश्चिय उसे महानता के पथ पर अग्रसर करता रहा। अपने विद्यार्थी जीवन में ही उसने रेडक्रास की आर्थिक सहायता और अपने पाँच मित्रों के स्वेच्छापूर्वक समय दान से एक छोटा-सा ब्रेल स्कूल चलाया। ब्रेल टाइपराईटर पर वे पाठ्य सामग्री का निर्माण भी करतें थे। किन्तु ब्रेल प्रेस का अभाव थोड़े ही दिनों में बुरी तरह खलने लगा।

उसने अच्छे अंकों से अपनी परीक्षा पास की। कॉलेज के अधिकारी उसकी इस सफलता पर बहुत हर्षित हुए। उन्होंने उसे अपने कॉलेज में ही अध्यापक बनने का प्रस्ताव रखा। उसने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तथा अन्धों के लिए विशेष कक्षा चलायी।

कॉलेज में पढ़ाने के साथ-साथ वह ब्रेल स्कूल तथा ब्रेल पुस्तक प्रकाशन का कार्य भी करती थी। एक धनी महिला उसके इस उत्साह, लगन व समाजसेवा से अत्यधिक प्रभावित हुई। उसने उसे अपनी धर्मपुत्री बना ली तथा उसे ६,००० डालर की राशि उसके अन्ध संस्थान के लिये दान दी। इस राशि से ही 'ब्राजीलियन फाउण्डेशन फॉर बुक्स फॉर ब्लाइन्ड' का शुभारम्भ हुआ। यह संस्था निरन्तर विकसित होती गयी, इसका आकार बढ़ता ही गया।

इस संस्थान की प्रगति के समाचार जब विश्व के अन्य देशों में पहुँचे तो वहाँ की सरकारों तथा समाज सेवी संस्थाओं ने इनकी काफी प्रशंसा की। उन देशों में नेत्रहीनों की प्रगति के नूतन द्वार खुलने की प्रेरणा इस संस्थान से मिली। संयुक्त-राज्य-अमेरिका सरकार ने डोरीना तथा उसके तीन सहयोगियों को छात्रवृत्ति देकर अपने देश में अध्यापन के विशिष्ट ढंग को सीखने के लिए आमन्त्रित किया। यहाँ उन्होंने नेत्रहीनों के जितने भी संस्थान थे, उन्होंने बड़ी जिज्ञासापूर्वक देखे। एक संस्थान ने उन्हें ब्रेल प्रेस देने का वचन भी दिया। अन्य संस्थानों ने भी उन्हें हर सम्भव सहायता देने का वचन दिया।

यही न्यूयार्क में एक दिन टेलीफोन पर उसे एक व्यक्ति का सन्देश मिला—"मैं एक घरेलू वातावरण का अभ्यस्त साओ-पालो निवासी युवक हूँ। देखने में बुरा नहीं हूँ। क्या आप मेरा परिचय किसी ब्राजीलवासी युवती से करा देंगी।" डोरीना ने हँसते हुए कहा—"मैं नेत्रहीन हूँ। अतः यह तो नहीं कह सकूँगी कि तुम कैसे हो। 'हाँ', परिचय अवश्य करा दूँगी।" यह युवक अलेक्स इस दृढ़ युवती से मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसका मित्र बन गया। यह मित्रता उनके विवाह में परिणित होकर रही।

डोरीना ने समाज सेवा और परिवार का दायित्व दोनों पूरी जिम्मेदारी व उत्साह से निभाये। उसके पति तथा तीन पुत्रों को कभी उसके अन्धे होने का गुमान ही नहीं हुआ। नारी की ममता, स्नेह और माधुर्य की अविकल मंदाकिनी उस परिवार में बही तथा स्वर्ग का वातावरण उपस्थित करती रही। एलेक्स डोरीना को पाकर धन्य हो गया।

संयुक्त राज्य अमेरिका से लौटकर उसने अपने संस्थान को बड़े सदन में स्थानान्तरित किया। बढ़ते हुए कार्य तथा कार्यकर्त्ताओं के कारण यह स्थान थोड़े ही दिनों में छोटा पड़ने लगा। साओ पालो नगर निगम के अध्यक्ष से उसने बड़ा भवन देने की माँग की। उसकी यह माँग पूरी हुई। ९९ वर्ष की लीज पर उन्हें वह बड़ा भवन किराया नहीं देने की शर्त पर मिल गया। तीन वर्षों में ही यह स्थान भी छोटा पड़ने लगा और उसे वर्तमान में ५०,००० डालर लागत के भवन में स्थानान्तरित करना पड़ा।

डोरीना अब ८३ वर्ष की हो चुकी हैं। वे इस आयु में भी अपने संस्थान को पूरा-पूरा समय देती हैं। वे 'ब्राजीलियन फाउण्डेशन' नामक संस्थान की अध्यक्ष तथा प्राण हैं। 'विश्व नेत्रहीन कल्याण समिति' की वे उपाध्यक्ष हैं।

उनका संस्थान ब्राजील नगर की व्यस्त गली में स्थित है। इसमें अस्सी से भी अधिक नेत्रहीन व्यक्ति, संस्थान के प्रबन्ध तथा पुस्तक प्रकाशन का कार्य पूरी तत्परता व कुशलता से करते हैं। इस संस्थान का काम लिपि रूपान्तरण, मुद्रण तथा वितरण का है। इसके पुस्तकालय में ५००० पुस्तकों के वॉल्यूम्स हैं। ये डोरीना तथा उसकी ५०० स्वयंसेविका महिलाओं के अथक् परिश्रम का शुभ परिणाम हैं। ये पुस्तकें ब्राजील भर में पढ़ने के लिए डाक द्वारा भेजी जाती हैं। इस संस्थान के मुद्रण विभाग में प्रति घण्टे २००० ब्रेल लिपि के पेज छप जाते हैं।

संस्थान के स्वागत कक्ष का द्वार प्रत्येक नेत्रहीन के लिए खुला रहता है। यहाँ आकर वे अपनी समस्याओं का समाधान, कठिनाइयों का हल तथा अपने कष्ट-कठिनाइयों से परित्राण पाने का मार्ग पाते हैं। इन सबसे अधिक वे उस आत्मविश्वास और आत्म-सम्मान को पाते हैं, जिसके बिना मानव जीवन शुष्क, नीरस व भारस्वरूप ही रहता है। चिकित्सा द्वारा जिनकी नेत्र ज्योति पुनः मिलने की सम्भावना होती है, उन्हें संस्थान चिकित्सा के लिए भेजता है। अभिभावक यदि ऐसे बालक का चिकित्सा व्यय वहन नहीं कर सकते तो संस्थान उसका भार भी उठाता है। प्रतिमाह ५०-६० बालक तथा कई वयस्क संस्थान की सेवाओं से लाभान्वित होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस सबके लिये बड़ी मात्रा में धन चाहिये। सेवाभावी संस्थानों व व्यक्तियों का आर्थिक अनुदान व सरकारी सहायता इसे पूरा नहीं कर सकती। अर्थ सदा समस्या ही बना रहता है। फिर भी उनका कोई काम रुका नहीं रहता। डोरीना ने अर्थ प्राप्ति के अन्य साधन भी जुटाए हैं। संस्थान की आय का स्रोत उसका उद्योग विभाग है। इसके अतिरिक्त बिंगो पार्टीज, नये सिनेमा के चेरिटी शो, कला मंच प्रदर्शनों से भी धन जुटाया जाता है।

डोरीना ने बड़ी कुशलता व तत्परता से इस संस्थान के लिए अर्थ प्रबन्ध किया है। वे कहा करती हैं—"सद् कार्यों के लिए धन तो आता ही है। किन्तु कोई व्यक्ति स्वयं देने के लिए नहीं आता। उसके पास जाना पड़ता है। मैं कहीं जाने के लिए, किसी से माँगने में संकोच नहीं करती।" धन ही नहीं जन सहयोग जुटाने का भी उन्होंने पूरा-पूरा ध्यान रखा है। यही कारण है कि हजारों व्यक्तियों का सहयोग इस संस्थान को मिला है।

किसी रेलगाड़ी को चलाने के लिए इंजिन का होना अनिवार्य है, डिब्बे तो उसके पीछे खिंचे चले आते हैं। यही तथ्य एक संस्था की गाड़ी पर भी लागू होता है। एक व्यक्ति इंजिन की सामर्थ्य वाला होता है, वह बड़ी से बड़ी संस्था बना लेता है। ऐसे व्यक्तियों की समाज को हर समय आवश्यकता रहती है। डोरीना डी. ग्वाइया ने ऐसा ही एक समर्थ व्यक्तित्व विकसित किया है। इस विकास में न घर-गृहस्थी बाधा बनती है, न शारीरिक दोष ही व्यवधान बनते हैं।

सेवा व ममता की देवी— पिरेरा वेजीबुल

थाइलैण्ड की अपने समय की एकमात्र महिला डाक्टर ने जब अपने सब मरीजों को निपटाकर घड़ी पर नजर डाली तो पता चला कि वह अपनी ड्यूटी से तीन घण्टे अधिक बैठ चुकी थी। पर यहीं उसके कार्य की समाप्ति नहीं हुई थी। अभी तो उसे एक लड़की को उसके घर पर देखने जाना भी शेष था। दिन को उससे टेलीफोन पर बात-चीत हुई थी, पर वह गरीब लड़की सार्वजनिक टेलीफोन पर अपने गुप्त रोग की सूचना कैसे दे सकती थी ? डाक्टर ने उसे बताया कि वह उस समय तक उसे देखने उसके घर आ जाएगी।

डाक्टर जब रोगिणी के घर पहुँची तो टेलीफोन पर निर्देशित समय से दो घण्टे देर हो चुकी थी। किन्तु वह चिकित्सालय में बैठी रोगियों को छोड़कर तो आ नहीं सकती थी। वहाँ पहुँचने पर उसे जो कुछ ज्ञात हुआ, वह दिल दहला देने वाला था।

उस युवती को कोई रोग नहीं था वरन् वह गर्भवती थी। किसी युवक ने उसके भोलेपन और विश्वासी प्रकृति का गलत लाभ उठाया था। अपनी हवस की आग मिटाकर वह तो जाने कहाँ गुम हो गया और सजा इस युवती को भोगनी पड़ी। डाक्टर के समय पर नहीं पहुँचने पर वह इतनी निराश हुई कि उसने आत्महत्या कर ली। डाक्टर को उसकी निष्प्राण देह भर मिली। नारी की पीड़ा नारी ही जानती थी और इस डाक्टर महिला ने तो जैसे अपने देश की समस्त नारी जाति की वेदनाओं को अपने हृदय में स्थान दे डाला था। वे अपना सारा जीवन अपनी बहिनों की सेवा को समर्पित कर चुकी थीं। इस घटना से उन्हें अपनी बहिनों के बारे में ही नहीं वरन् उनकी सन्तान के बारे में भी सोचना पड़ा।

यह घटना पुरानी भी नहीं पड़ी थी कि ऐसी ही एक दुःखिया युवती साकार वेदना बनकर उसके सामने आ खड़ी हुई। वह उस दिन उनकी अन्तिम मरीज थी। अन्य सब मरीजों के चले जाने तक वह प्रतीक्षा करती रही। अन्त में उसने डाक्टर को अपनी विवशता बताते हुए गर्भपात का घृणित आग्रह किया। डाक्टर एक बारगी यह सुनकर काँप उठी। यह कैसी विवशता है कि नारी को अपनी प्राकृत कामना का यों गला भी घोंटना पड़ सकता है।

उसका यह प्रस्ताव धर्म, नीति, विवेक और हर दृष्टि से घृणित था। एक डाक्टर के रूप में वह यह अनुचित कार्य कैसे कर सकती थी और फिर वह मात्र डाक्टर ही तो नहीं थी सेवा, करुणा और ममता से परिपूर्ण भावनाशील नारी भी थी। अपनी समाज सेवा में एक कदम और आगे बढ़ाना पड़ा। वह बोलीं—"यह अनैतिक कार्य तो मैं नही कर सकती पर यदि तुम तैयार हो तो मैं तुम्हारे पुत्र को अपना दत्तक पुत्र स्वीकार कर उसके भरण-पोषण का दायित्व अपने ऊपर ले सकती हूँ। मेरी ओर से यही सहायता तुम्हें मिल सकती है।"

वह युवती इस साहसी नारी के ये वचन सुनकर उसका मुँह देखती रह गयी। इतना सहारा उसके लिये पर्याप्त था। समाज के भय से एक भूल के कारण वह जो अपने मातृत्व को कलंकित करने जा रही थी, अब उस घृणित विचार से मुक्त हो चली थी। वह समाज से लड़ सकती थी। वह डाक्टर की शरण में आ गई।

आज वह अविवाहित डाक्टर महिला हजार से भी ऊपर बालकों की माँ कहलाती हैं। उनका परिवार इतना बड़ा है कि उसका मासिक व्यय ७,००० रुपये है। अपने नारीत्व और मातृत्व को इतना विस्तार देने वाली ये महिला है, डा. पिरेरा वेजीबुल। यह वेजीबुल उनके पिता का गौत्र नहीं है। अविवाहित होने के कारण पति का गौत्र स्वीकार करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यह कल्पित गौत्र है। जब वे अवैध सन्तानों की माँ बनने लगीं और उनका निर्वाह व्यय देने लगीं, तो उनके रूढ़िवादी पिता को यह बहुत अखरा कि वह उनकी पुत्री कहलाये। अतः उन्होंने अपनी पुत्री को सख्त ताकीद कर दी कि वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने पिता का गौत्र 'हम' अपने नाम के साथ लगाकर उसे बदनाम न करे। वे अपनी पुत्री का मुँह भी नहीं देखना चाहते थे। उन्होंने कहला भेजा—"पहले ही तुम घर से भागकर विदेशों में पढ़ी और मर्दों की तरह डाक्टर बनी हो। यही बदनामी बहुत है अब लावारिस और अवैध बच्चों को हमारे कुल में सम्मिलत करने की धृष्टता तो मत करो।" उनके पिता के इस अविवेक को क्या कहा जाय ? उनकी बेटी तो परमार्थ और समाज सुधार का कार्य कर रही थी और वे अपने परिवार की सड़ी-गली खानदानी शान को रो रहे थे।

डॉ. पिरेरा की गणना उन नारी रत्नों में की जाती है, जिन्होंने दलित, शोषित व अपने समता के अधिकार से च्युत नारी जाति के लिए प्रगति के द्वार खोले, उसके प्रगति पथ के काँटों को बीना, रोड़ों-कंकड़ों को साफ किया इसके लिये उन्हें कितनी ही कठिनाइयों व विरोधों को सहना पड़ा था।

पिरेरा का जन्म थाइलैण्ड के एक सम्पन्न सागौन व्यापारी पिता के घर हुआ था। उन दिनों थाइलैण्ड में लड़कियों को पढ़ाना आवश्यक नहीं समझा जाता था। कोई-कोई व्यक्ति अपनी लड़कियों को घर पर ही अक्षर ज्ञान करा दिया करते थे ताकि वह धार्मिक पुस्तकें पढ़ सके या पत्र आदि लिख सके। मुश्किल से गिनी-चुनी सौभाग्यशाली लड़कियाँ ही स्कूल का मुँह देख पाती थीं। पिरेरा भी उन्हीं थोड़ी-सी सौभाग्यशाली लड़कियों में से एक थी।

जब वह पन्द्रह वर्ष की थी तो उसकी माता एक असाध्य रोग से से ग्रस्त हुई। उसके नगर के हकीम ने महीनों तक उसकी माता का इलाज किया पर उसका कोई प्रभाव उसकी माता की रुग्ण काया पर परिलक्षित नहीं हुआ। उन दिनों थाइलैण्ड में डाक्टरों की बड़ी कमी थी। उसकी माता की दिन पर दिन भयंकर होती दशा को देखकर उसके पिता को बेंकॉक के पाश्चर इन्स्टीट्यूट से एक डाक्टर बुलाना पड़ा। इस डाक्टर की चिकित्सा से किशोरी पिरेरा की माता थोड़े ही दिनों में पूर्ण स्वस्थ हो गयी। इस घटना ने उसे बहुत प्रभावित किया। उसके बाल मन में डाक्टर बनने की कामना जाग्रत हो गयी।

थाइलैण्ड में उन दिनों जो गिने-चुने डाक्टर थे, वे सब पुरुष ही थे। महिला डाक्टर एक भी नहीं था। थाइलैण्ड में कोई मेडीकल स्कूल व कॉलेज नहीं था। डाक्टरी की पढ़ाई करने के लिये विदेश जाना पड़ता था।

पिरेरा ने अपने पति को जब विदेश जाकर डाक्टरी पढ़ने का मन्तव्य बताया तो वे बिल्कुल इन्कार कर गये। उस समय थाइलैण्ड के रूढ़िवादी समाज में स्त्रियों द्वारा डाक्टरी या ऐसा ही कोई सेवा का कार्य करना प्रायः निषिद्ध ही था। पिरेरा के पिता को अपनी पुत्री की इच्छा में अपने खानदान की बेइज्जती और सामाजिक बहिष्कार का भय दीख पड़ा। उन्होंने तो स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि पिरेरा इस प्रकार की सिरफिरी बात करेगी। उन्होंने तो उसके लिये वर भी खोज रखा था। वे शीघ्र ही उसका विवाह करके उसे महिलाओं के पारम्परिक जीवन में बाँध देने की तैयारियाँ कर चुके थे। पिरेरा का यह निश्चय सुनकर वे बुरी तरह नाराज हुए। घर में भी बड़ा बवेला मचा।

पिरेरा भी कम दृढ़ निश्चय नहीं थी। उसे अपने पिता को प्रकारान्तर में पुरुष समाज का नारी जाति के प्रति अन्याय लगा और वह इस अन्याय के सामने किसी भी शर्त पर झुकने को तैयार नहीं थी। स्त्री के लिये पुरुष की सम्पत्ति बनकर मात्र चहारदीवारी में कैद हो जाना व पग-पग पर उसके कठोर अनुशासन का पालन करना ही अनिवार्य मान लेना उसे उपयुक्त नहीं लगा। उसने निश्चय कर लिया कि वह इन रूढ़-परम्पराओं के अन्धभक्त समाज से विद्रोह करेगी, विदेश जाकर डाक्टरी पढ़ेगी और डाक्टर बनकर महिला समाज की सेवा करेगी।

पिरेरा ने यह निश्चय अपने आपके विश्वास पर किया था। यदि वह किसी भी तरह विदेश जा सके तो वह किसी भी तरह डाक्टर बनकर ही अपने देश लौटेगी, इस बात का उसे पूरा विश्वास था। विदेश जा सकने का अवसर भी उसे संयोग से मिल ही गया। उसका एक सहयोगी जो थाईलैण्ड के राज परिवार से सम्बन्धित था, अपने परिवार के साथ विदेश यात्रा पर जा रहा था। उसके छोटे भाई की साज-सम्हाल के लिये एक नौकरानी भी साथ जा रही थी। उसने अपने सहपाठी के सहयोग से वह नौकरानी का स्थान पा लिया। इस परिवार के साथ वह पेरिस जा पहुँची। राज परिवार यात्रा से वापस लौट आया और वह वहीं रह गयी, डाक्टरी पढ़ने के लिए।

पेरिस विश्वविद्यालय के मेडीकल स्कूल के आचार्य के सम्मुख जब यह सोलह वर्षीय थाई किशोरी प्रवेश पाने के लिये खड़ी हुई तो दोनों के लिए स्थिति बड़ी विचित्र हो गयी। उस समय पिरेरा की जेब में पढ़ाई के और पेरिस जैसे खर्चीले नगर में रहने के खर्च के नाम पर एक पैसा भी नहीं था। मेडीकल स्कूल में प्रवेश पाने की अर्हताओं से वह सर्वथा शून्य थी और तो ठीक उसे फ्रेंच भाषा भी ठीक से बोलना नहीं आता था। वह जो टूटी-फूटी फ्रेंच बोल रही थी, उसका अर्थ आचार्य समझ नहीं पा रहे थे।

पिरेरा ने थाइलैण्ड के स्कूल में जो शिक्षा प्राप्त की थी वह अपर्याप्त थी, मेडीकल स्कूल में प्रवेश पाने के लिए। इस शिक्षा के आधार पर तो वह पेरिस में कोई ठीक सी नौकरी भी नहीं पा सकती थी। आचार्य ने बड़ी देर में उसका आशय समझा तो उसने उसे पहले फ्रांस के किसी विद्यालय में पढ़कर मेडीकल स्कूल में प्रवेश पाने की योग्यता अर्जित करने की राय दी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.५६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

पिरेरा घर से यों ही भावावेश में नहीं भाग आयी थी। विदेशों में अपने सामने आने वाले हर सम्भावित कठिनाइयों को सहने और विषम परिस्थितियों के बीच अपना प्रगति पथ प्रशस्त करने की मानसिक तैयारी करके आयी थी। वह हर परिस्थिति को सहज रूप से स्वीकारते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कठोर श्रम करने की दृढ़ निष्ठा लेकर आयी थी। चार वर्ष तक उसे अनपढ़ मजदूरों की तरह कठोर श्रम करना पड़ा। इन चार वर्षों में उसने फ्रांस के स्कूल में पढ़कर मेडीकल स्कूल में प्रवेश पाने की योग्यता प्राप्त की।

१९३६ में उसकी चिरसंचित अभिलाषा पूरी हुई। वह डाक्टर बन सकी। इसके लिये उसे दस वर्ष तक लोगों के घर नौकरानी का काम करना पड़ा था। उसने लोगों के घरों में खाना बनाया, प्लेटें साफ कीं, फर्श व कपड़े धोये तथा अन्य सभी घर के कार्य किये। इन कामों से उसे थकान नहीं आती थी। इसके बाद वह पढ़ने जाती, अपने विद्यालय का गृह कार्य किया करती। इन सब कार्यों में उसे सुख ही मिलता था, क्योंकि वह दिन पर दिन अपने लक्ष्य के निकट से निकटतर पहुँचती जा रही थी। किसी ने सच ही कहा है कि संकल्प के बल पर असम्भव को भी सम्भव बनाया जा सकता है। इसी संकल्प के सारे वह विदेश में बिना संगी-साथी-सहयोगी के उपार्जन करते हुए पढ़ सकी थी। यह कोई साधारण कार्य नहीं था।

दस वर्ष बाद पिरेरा डाक्टर बनकर स्वदेश लौटी। यहाँ भी उन्हें अपने पथ में काँटे ही बिछे हुए दिखाई दिये। पर अब तो वे काँटों पर चलते हुए नई राहें बनाने की सामर्थ्य भी पा चुकी थीं और उसमें मिलने वाले सुख का स्वाद भी। अपने एकाधिकार पर चोट पड़ती देख पुरुष वर्ग इस साहसी नारी से शत्रु का सा व्यवहार करने लगा था। उन्हें इसी कारण बैंकाक के श्रीराज मेडीकल स्कूल में शिक्षिका का पद नहीं मिल सका। उन्होंने सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग में नौकरी पाने के लिये प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया। उनकी यह प्रार्थना तो स्वीकार कर ली गयी पर समानता का व्यवहार यहाँ भी उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। उन्हें पुरुष डाक्टरों से कम वेतन दिया गया। उनके साथी पुरुष डाक्टरों के मन में भी उनके प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। उनका दुराग्रही मन नारी को पारम्परिक वर्जनाओं में ही बँधा देखना चाहता था।

डॉ. पिरेरा को ८५ रुपये प्रति सप्ताह के वेतन पर यौन रोगों की चिकित्सा के लिये नियुक्त किया गया। वैश्यावृत्ति पर प्रतिबन्ध न होने के कारण स्त्री-पुरुष आतशक व सुजाक जैसे संसर्गजन्य यौन रोगों की मर्मांतक पीड़ा भोगते थे। पुरुष तो पुरुष चिकित्सकों से अपनी चिकित्सा भी करा सकते थे पर स्त्रियाँ तो बेचारी शर्म के कारण पुरुष डाक्टरों के सामने अपनी व्यथा प्रकट भी नहीं कर सकती थीं। महिला चिकित्सक की नियुक्ति से उन्हें बड़ी राहत मिली। इस सेवा कार्य से उन्हें फुर्सत ही नहीं मिलती। पहले के डाक्टरों ने तो इन रोगों को प्राकृतिक रोग कहकर छुट्टी पा ली थी पर डा. पिरेरा ऐसा कैसे कह सकती थीं।

इन रोगों का कारण थाइदेश की वेश्याएँ थीं। अकेले बैंकॉक नगर में दस हजार लाइसेंसधारी वेश्यायें थीं। वेश्यागामी पुरुष इस रोग से ग्रस्त हो अपनी सीधी-सादी पत्नी तक भी यह घृणित संसर्जना रोग पहुँचा देते थे। थाइदेश के समाज ने इन वेश्याओं की तरह इस रोग को भी स्वीकार कर लिया था। वेश्याओं को किसी प्रकार की चिकित्सा सुविधायें उपलब्ध नहीं थीं। वे भी अन्ततः स्त्रियाँ ही हैं। उन्होंने स्वेच्छा से यह नारकीय जीवन नहीं स्वीकार था। वे तो विवश थीं। डाक्टर पिरेरा अपनी ड्यूटी के बाद ऐसे बदनाम वेश्यालयों में जाती और वहाँ रोगियों की चिकित्सा करतीं। वेश्यालयों के मालिक उन्हें धक्के दे-देकर बाहर तक निकाल देते थे, परन्तु वे तो पर-पीड़ा से दुःखित होने वाली करुणामयी नारी थीं, इन सब अपमानों को सहती हुई भी अपना काम करती रहीं।

उनके पास आने वाले रोगियों की संख्या ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी, त्यों-त्यों उन्हें समय की कमी पड़ती गयी। उनके पास अपने कहने के लिये चौबीस में से चार घण्टे ही रह गये, इनमें ही वे नींद लेती थीं। दिन रात उनकी यह सेवा-साधना चलती ही रहती थी। उन्हें रोगियों की अधिकता के कारण अपना निजी चिकित्सालय भी खोलना पड़ा। आगे चलकर तो उनका घर पीड़ित नारियों का अपना घर ही बन गया। उनका यह भावनात्मक परिवार कितना बड़ा हुआ, यह तो पहले ही बताया जा चुका है।

आज वे अपने महान कार्यों के कारण जन-जन की श्रद्धा की पात्र बनी हुई नारी की महानता और विशाल हृदयता को उजागर कर रही हैं। अपने जीवन और व्यक्तित्व के माध्यम से उन्होंने मनुष्य समाज का बहुत बड़ा भ्रम तोड़ा, जो समाज सदियों से वह पाले आ रहा है कि नारी का क्षेत्र घर-परिवार ही है अथवा वह पुरुष की अनुचरी मात्र है, आश्रिता है। इसका अपना अलग कोई व्यक्तित्व नहीं होता। इन मान्यताओं और भ्रान्तियों को तोड़कर उन्होंने सिद्ध कर दिखाया कि नारी का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है, वह सक्षम है और शक्तिस्वरूपा है। घर-परिवार के सीमित दायरे से उसे निकलने और अपना व्यक्तित्व विकसित करने का अवसर मिले, तो वह समग्र समाज के लिए मातृस्वरूपा सिद्ध हो सकती है। पिरेरा वेजीबुल ने इसी आत्मभावना के विकास द्वारा समग्र समाज की इतनी महती सेवा कर सकी, जिसके लिए समाज उनके उज्ज्वल आदर्शों द्वारा युग-युग तक प्रेरणा और प्रकाश प्राप्त करता रह सकेगा।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तिहरे मोर्चों पर सफल सन्नद्ध— मैडम च्यांग-काई-शेक

विश्वविद्यालय में एक चीनी लड़की ने प्रवेश किया ही था कि पहले दिन ही उसे अपने सहपाठी छात्रों और छात्राओं के मजाक का शिकार बनना पड़ा। विद्यार्थी उस छोटी-सी नाटे कद की किशोरी को देखते हुए ठठाकर हँस पड़े थे—'ओह येलो गर्ल' अरे पीली लड़की।

सचमुच ही वह पीले रंग की थी और यह रंग उसे किसी रोग या बीमारी के कारण नहीं, अपनी जाति और नस्ल के कारण मिला था। उसका नाम था मेलिंग और वह चीन से पढ़ने के लिए अमेरिका पहुँची थी। मेलिंग को अपने देश की कोई भी लड़की या युवक वहाँ दिखाई नहीं दिया था। आता भी कौन ? इस छोटी-सी उम्र में और एकादशोत्तर अध्ययन के लिए कौन पिता अपनी सन्तान को हजारों मील दूर भेजता। परन्तु महत्त्वाकांक्षी और अपने उत्तरदायित्वों के प्रति सजग उसके सम्पन्न पिता के कारण मेलिंग को अध्ययन के लिए अमेरिका जाने का अवसर मिला।

पहले दिन भले ही मेलिंग अपने सहपाठी छात्रों-छात्राओं के बीच उपहास का कारण बनी हो परन्तु दूसरे, तीसरे, चौथे क्रमशः जैसे-जैसे कैलेण्डर की तारीखों के पन्ने बदलते गये, सहपाठियों में मेलिंग की स्थिति भी बदलती गयी। वह धीरे-धीरे अपने व्यवहार, सौजन्य और मिलनसारिता के बल पर सहपाठी मित्रों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनती गयी। पिता ने अपनी लाड़ली को प्रारम्भ से ही सामाजिक कार्यों की ओर बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया था। न केवल अमेरिका में ही वरन् स्वदेश में भी छात्र जीवन के दौरान विद्यालय और विद्यालय से बाहर के जीवन में मेलिंग सामाजिक कार्यों के प्रति रुचि लेती रही थी। परिणामस्वरूप विदेशी छात्र-छात्राओं ने भी उसकी प्रतिभा का लोहा माना। मेलिंग ज्ञानार्जन में तो अग्रणी थी ही खेल-कूद, भाषण प्रतियोगिता, विद्यालयों में चलने वाली वाद-विवाद प्रतियोगितायें और अन्य कार्यक्रमों में भी वह उत्साहपूर्वक भाग लेती तथा अपनी प्रतिभा का विकास करती।

परिणाम यह हुआ कि मेलिंग सहपाठी छात्र-छात्राओं के साथ अध्यापक और प्राचार्य की भी स्नेह भाजन बनी। सन् १९०८ में मेलिंग ने बी. ए. की परीक्षा सर्वाधिक अंकों से उत्तीर्ण की। जब उनका यह परीक्षा परिणाम निकला, तब तक उन छात्रों की स्मृति से वह बात जाती रही थी, जिसमें पहले दिन मेलिंग को येलो गर्ल कहकर हँसी उड़ाई थी। परन्तु मेलिंग ने बाद में अपने संस्मरण लिखते हुए कहा कि—पहले दिन का अनुभव मेरे लिए सचमुच कड़वा था। परन्तु मेरे मन में अपने (ईसाई) धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा थी और वह श्रद्धा मुझे निरन्तर इस बात के लिए प्रेरित करती रही थी कि भले ही लोग कितना भी उपहास उड़ायें प्रगति के आकांक्षी व्यक्तियों को अपनी सारी शक्ति और सारा ध्यान लोकापवाद की चिन्ता किये बिना अपने लक्ष्य पर केन्द्रित रखना चाहिए। "मेरे धर्म के प्रवर्त्तक का क्या कम उपहास हुआ था।"

बी. ए. पास करने के बाद वे आगे के अध्ययन के लिये अगली कक्षाओं में भर्ती हुईं। उनके पिता भी उन्हें खूब पढ़ाना चाहते थे पर उन्हीं दिनों चीन में गृहयुद्ध छिड़ गया और पिता ने मेलिंग को वापस बुला लिया ताकि इन विषम परिस्थितियों में देश की सेवा की जा सके। यहाँ मेलिंग ने भी व्यक्तिगत सम्भावनाओं और हितों का सार्वजनिक हितों के लिए त्याग किया तथा वे स्वदेश आ गयीं। चीन लौट आने के बाद मेलिंग क्रान्तिकारियों की गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने लगीं। उन दिनों चीन की लिबरल गवर्नमेण्ट का पतन हो चुका था और डाक्टर सनयात सेन को भी आत्मरक्षार्थ जापान भाग जाना पड़ा था। युवती मेलिंग ने एक सक्रिय क्रान्तिकारिणी के रूप में अपना सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया।

क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय रहते हुए ही मेलिंग जनरल च्यांग-काई-शेक के सम्पर्क में आयीं। जनरल शेक उनके व्यक्तित्व से बड़े प्रभावित हुए। उन दिनों वे अपने लिए एक ऐसी जीवनसंगिनी की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे, जो उनके संघर्षमय जीवन को अपने प्रेम से स्निग्ध बना सके और उनके सार्वजनिक जीवन में भी कदम से कदम मिलाकर चल सके। इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें मेलिंग सर्वथा योग्य जँची और एक दिन जनरल शेक ने मेलिंग के सामने अपनी जीवनसंगिनी बनने का प्रस्ताव रखा।

एक बारगी तो मेलिंग को विश्वास नहीं हुआ कि कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ। परन्तु जब शेक ने अपना हृदय खोलकर रख दिया तो मेलिंग भावाभिभूत हो उठी। वस्तुतः उस समय जनरल शेक अपने लिए जिस प्रकार की जीवनसंगिनी को तलाश रहे थे, वह तत्कालीन परिवेश में तो मिलना सम्भव नहीं था; क्योंकि वह समय ऐसा था जबकि चीन की नारियाँ उसी प्रकार घरों में कैद रहती थीं जैसे कि बाड़ों में पशु। घर की चहारदीवारी ही उनकी लक्ष्मण रेखा थी और कूप-मण्डूक ही उनका विकास। तब तो यह भी मान्यता लोकरीति के रूप में प्रचलित थी कि छोटे पैरों वाली स्त्री ही सुन्दर होती है और इस मान्यता के कारण स्त्रियों को बचपन से ही पाँवों में लोहे के जूते पहनाये जाते थे। ताकि शरीर के अन्य अंगों की भाँति पैरों का स्वाभाविक विकास न हो। भला ऐसे समाज में संघर्षशील नारी की खोज कब पूरी हो; नहीं कहा जा सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जनरल शेक का प्रस्ताव स्वीकार कर, मेलिंग शीघ्र ही मैडम च्यांग-काई-शेक बन गईं। उनके जीवन की प्रमुख उल्लेखनीय उपलब्धियाँ इससे बाद की हैं।

जनरल च्यांग-काई-शेक तब चीन के राष्ट्राध्यक्ष बन चुके थे और एक आलीशन बँगले में रहते थे। मेलिंग ने मैडम च्यांग-काई-शेक के रूप में उस प्रासाद में कदम रखते ही कहा—'इस प्रासाद में मेरा दम घुट रहा है।'

सहसा जनरल शेक को लगा कि कहीं उन्होंने धोखा तो नहीं खाया है। जिस लड़की को अपने लिए सर्वथा योग्य समझकर जीवनसाथी के रूप में चुना था, उसने पहले ही दिन यह टीका कर दी। जो स्त्री पति के आवास में ही अपना दम घुटता अनुभव करने लगे, वह क्या अच्छी पत्नी सिद्ध हो सकती है। असन्तोष का कारण जानने के लिए जनरल शेक ने अपने मनोद्वेगों पर थोड़ा नियन्त्रण रखते हुए कहा—'क्यों' क्या बात है ?

'मैं तो आपको ऐसा व्यक्ति समझती थी कि जो समाज सेवा का आदर्श लेकर चल रहा हो। पर आपका ठाठ-बाट, रहन-सहन, प्रासाद-भवन, यह सब शान-शौकत देखकर तो मुझे लग रहा है कि मैं चुनाव करते समय कोई गलती तो नहीं कर बैठी'—मैडम च्यांग-काई-शेक ने विनम्रतापूर्वक कहा।

सुनकर जनरल शेक भाव-विभोर हो उठे। शंका-कुशंकाओं के सारे बादल छँट गये, विश्वास हो गया कि जीवनसाथी चुनने में कहीं कोई गलती नहीं हुई है और उन्होंने कहा—'प्रिये मैं अपनी गलती को स्वीकार करता हूँ और इसे दूर करने में कोई कसर नहीं छोड़ूँगा।

''ठीक भी है। हमारे देश में करोड़ों लोग ऐसे हैं, जिन्हें रहने के लिए एक ढंग का कमरा भी उपलब्ध नहीं है। लाखों लोग फूँस की झोंपड़ियों और पेड़ों की छाँह तले रैन गुजारते हैं। हम समाज-सेवा का व्रत धारण किये हैं तो हमें क्या अधिकार है कि इतने बड़े प्रासाद में रहें।''—मैडम शेक की उक्ति थी।

जनरल ने शीघ्र ही अपनी भूल को सुधारा और सामान्य लोगों की बस्ती में साधारण-सा मकान लेकर रहने लगे। सच भी है—जन सेवा का आदर्श जन सामान्य से अच्छे और ऊँचे स्तर का जीवन कभी स्वीकार नहीं कर सकता। लोकसेवक की कसौटी पर वही खरा उतरेगा, जो अपने रहन-सहन, खान-पान और जीवन स्तर को भी शेक के स्तर का बना ले।

नयी कुटिया समुद्र के किनारे बनायी गयी थी ताकि विलासिता का अभ्यस्त मन प्रकृति के आँचल में रहकर अपना अभ्यास छुड़ा सके और बाद में भी वह गोदी उसके लिए शीतलता, शान्ति और प्रेम की भावनायें उद्दीप्त करती रहे। जब भी अवसर मिलता शेक दम्पत्ति समुद्र के किनारे घूमने के लिए निकल जाते और वहाँ सागर की लहरों से खेलते रहते। प्रकृति के सान्निध्य में सचमुच दिनभर के थके-हारे जनरल शेक को विश्रान्ति मिलती और नव-स्फूर्ति से भर जाते।

मेडम शेक में समाज सेवा के व गृहस्थ जीवन के प्रति बराबर निष्ठा थी। आमतौर पर कुशल गृहणियाँ अच्छी समाजसेविका नहीं बन पातीं या कर्मठ समाज सेविकायें गृहिणी जीवन के प्रति उदासीन रहती हैं; परन्तु मेडम शेक के सम्बन्ध में ऐसा कहना व्यर्थ होगा। पति के जीवन में प्रवेश करते ही उन्होंने अपने मधुर प्रेम और स्निग्ध आत्मीयता के बल पर जनरल शेक को वशीभूत कर लिया। शेक ने स्वयं भी कहा है—'मेलिंग के साहचर्य से पूर्व मैं केवल सैनिक था, परन्तु उसको पत्नी के रूप में पाकर मैं मनुष्य बनने का प्रयास भी करने लगा या कहना चाहिए बन सका।''

अपने देश में नारियों को दुर्दशा से उबारने के लिए मैडम शेक ने रचनात्मक दृष्टिकोण से विचार किया और उसी दृष्टि से गहन विचार-मन्थन के बाद एक आन्दोलन का शंखनाद किया। यह आन्दोलन था—नव जीवन अभियान, यद्यपि यह आन्दोलन समग्र रूप से चीन में पुनर्निर्माण को समर्पित था, पर उसमें महिला जागरण के लिए भी पर्याप्त व्यवस्था थी क्योंकि समाज के अर्धांग पर ध्यान दिये बिना शेष के आधार पर समूचे चीन के काया-कल्प का लक्ष्य कल्पनामात्र ही बनकर रह जाता; अतः उन्होंने इस दिशा को भी नजर-अन्दाज नहीं किया। इस अभियान के अन्तर्गत उन्होंने चीन के विद्यालयों और शिक्षण-संस्थाओं में भी रचनात्मक कार्यक्रम चलाये। मेडम शेक की मान्यता थी कि अच्छे नागरिकों के निर्माण हेतु समुचित संस्कार बाल्यावस्था से ही पड़ने चाहिए। आदर्श चरित्र की सम्पदा से सम्पन्न व्यक्ति समाज के लिए एक वरदान ही सिद्ध होते हैं। इसके लिए उन्होंने बच्चे, किशोर और वयस्क सभी आयु के छात्रों को नैतिक शिक्षण के पाठ्यक्रम में दीक्षित किया। चीन ने आज जो प्रगति की है, उसकी आधारशिला में ईंटें जोड़ने का श्रेय मैडम शेक को भी है।

धीरे-धीरे चीन की राजनैतिक स्थिति डगमगाने लगी। उत्तर में कम्युनिष्टों ने विद्रोह कर दिया, जिससे कि राज्य व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा होने लगी। इधर वहाँ के निवासियों की दशा भी बड़ी दयनीय थी। अशिक्षा, अज्ञान और अन्धविश्वास के गर्त में आकण्ठ डूबे बेचारे वे जरा से प्रलोभन में आकर ही उग्रपन्थियों का साथ देने लगते, उन्होंने उग्रवादियों के दमन हेतु भी व्यक्तिगत रूप से रचनात्मक कार्यक्रमों का संचालन किया और उत्तरी प्रान्तों के निवासियों में शिक्षा, सद्विचार और ज्ञान की रश्मियाँ पहुँचाना आरम्भ किया। शिक्षा के बल पर ही उन्होंने कई एक लोगों को अन्धविश्वासों, कुरीतियों और अज्ञान के पाश बन्धनों से मुक्त किया।

इन सब सामाजिक क्रिया-कलापों में भाग लेते हुए भी मैडम शेक पति के कार्यों में पूर्णरूपेण सहयोग देती रहीं। वे अपने पति के लिए व्याख्यान तैयार करतीं, उनकी चिट्ठियाँ लिखतीं और उन्हें भी टाइप करतीं तथा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गम्भीर समस्याओं पर उनसे विचार-विमर्श करतीं। मैडम शेक अँग्रेजी और चीनी भाषा के अतिरिक्त अन्य देशों की राष्ट्रभाषायें भी अच्छी तरह जानती थीं। अतः पति के लिए समय पड़ने पर वे दुभाषिये का काम भी करतीं। साथ ही वे एक विचारवान लेखिका भी थीं। चीन की तत्कालीन समस्याओं पर उन्होंने पर्याप्त रचनात्मक साहित्य का सृजन किया और उसे लोगों में फैलाया। यों तो उनकी लिखी प्रत्येक पुस्तक में अपना एक अलग अनूठापन और एक अलग विशेषता थी पर उनकी लिखी 'चाइना एट क्रास रोड्स' अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य में गिनी जाती है। इस पुस्तक में उन्होंने समाज की विभिन्न समस्याओं का समाधान व्यावहारिक ढंग से प्रस्तुत किया है। वे न केवल एक कुशल समाजसेविका, चतुर गृहिणी और श्रेष्ठ लेखिका भी थीं वरन् शासन में भी उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण पदों पर काम किया। नेतृत्व की क्षमता भी उनमें अपार थी। सन् १९३६ में जब जनरल च्यांग-काई-शेक बन्दी बनाये गये, तो उनके स्थान पर मैडम शेक ने ही जनता का मनोबल बनाये रखा था।

आज भी मैडम शेक का नाम न केवल जनवादी चीन में वरन् पूरे विश्व में बड़े आदर के साथ एक प्रेरणा पुंज के रूप में लिया जाता है।

निर्धनों के लिए विक्रमादित्य जैसी न्यायकरिणी एडिथ सेम्पसन

शिकागो की म्युनिसिपल कोर्ट दुनिया के सबसे बड़े और सबसे व्यस्त न्यायालयों में से एक है। प्रतिवर्ष इस न्यायालय में लगभग ३० लाख से भी अधिक मुकदमे आते हैं—यातायात के नियमों को भंग करने से लेकर पारिवारिक सम्बन्धों के दायित्वों को भंग करने तक के। इसी न्यायालय में एक महिला जज हैं—श्रीमती एडिथ सेम्पसन, जो मुकदमों के शीघ्र निपटाने में सिद्धहस्त भी हैं और विख्यात भी।

उनका न्यायालय विश्व का अपने ढंग का अनूठा न्यायालय है। वे दिन भर में सैकड़ों मुकदमे निपटा देती हैं। एक मुकदमे को निपटाने में उन्हें प्रायः डेढ़ मिनट से अधिक समय नहीं लगता। इस तेजी के साथ न्याय देने पर भी इनके निर्णय इतने पूर्णरूपेण तर्कसम्मत, गंभीर और सहानुभूतिपूर्ण होते हैं कि किसी भी पक्ष को कोई शिकायत उनके निर्णय से नहीं होती।

श्रीमती सेम्पसन दिन भर के सब मुकदमों को निपटाकर ही छुट्टी करती हैं। उनका कहना है—"ये व्यक्ति न्याय पाने के लिए एक दिन के काम का हर्ज करें, यह भी उनके लिए बहुत होता है। यदि उन्हें कई दिनों तक इन्तजार करना पड़े तो इसका स्पष्ट अर्थ आर्थिक संकट होगा, न केवल इस व्यक्ति के लिए ही वरन् समूचे देश के लिए भी।"

उनके इस कथन में कितनी सच्चाई है। समय अमूल्य है। समय गँवाने का अर्थ होता है—जीवन गँवाना। इस तथ्य को वे बखूबी जानती हैं और अपने दायित्व को भी बखूबी पहचानती हैं। हर व्यक्ति को सस्ता व शीघ्र न्याय मिल जाय तो उसका भी भला हो और देश का भी भला हो। उसके काम का हर्ज न हो और राष्ट्र का उत्पादन न घटे। कितना सुलझा दृष्टिकोण अपनाया श्रीमती सेम्पसन ने। इस दृष्टि से हमारे देश की जो जटिल न्याय प्रक्रिया है, वह कितनी हानिकारक है इसका अनुमान लगाया जाय तो आँखें चकरा जायें।

श्रीमती सेम्पसन की कोर्ट के एक वकील का कहना है—"उनके न्यायालय में मानवीय अधिकारों को संपदा के अधिकारों से उच्च स्थान दिया जाता है। उनके न्याय की सबसे बड़ी विशेषता सहज अनौपचारिक प्रक्रिया है। जज का सम्मान भी कम नहीं होने पाये और काम भी शीघ्र ही हो जाय इस दृष्टि से वे सर्वोत्तम न्यायाधीश हैं।"

आजकल मनुष्य का जीवन दिन पर दिन जटिलतर होता जा रहा है। उसे सहजता के कहीं दर्शन ही नहीं होते। श्रीमती सेम्पसन ने उसकी इस समस्या को समझा और उसका समुचित समाधान दिया है। उनकी न्याय पद्धति इतनी क्रान्तिकारी होते हुए भी अलोकप्रिय नहीं हुई है, यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। यह सब उनकी गहरी समझ, करुणा और मानव मन की अच्छी परख का परिणाम है।

वे संयुक्त-राष्ट्र-अमेरिका की प्रथम अश्वेत महिला हैं, जिन्हें हाईकोर्ट बेंच स्तर का न्यायाधीश पद मिला है। किन्तु उनके व्यवहार से यह कतई नहीं झलकता कि वे इतनी बड़ी जज हैं। मुस्कान हर समय उनके होठों पर खेलती रहती है। न्याय की जटिल प्रक्रियाओं से वे दूर का भी नाता नहीं रखतीं। उनका न्याय का तरीका ठीक वैसा होता है, जैसे किसी परिवार की जानकार दादी अपने परिवार के सदस्यों के आपसी झगड़ों का निपटारा करती हो। बस उनकी वेश-भूषा भर उनके न्यायालय के जज होने का विज्ञापन करती है।

उनके न्यायालय में जो मुकदमे आते हैं उनमें ७५ प्रतिशत मुकदमे अश्वेत लोगों के होते हैं, बाकी पच्चीस प्रतिशत लोग भी ऐसे होते हैं, जो बहुत गरीब होते हैं। वे हँसी-हँसी में अपने न्यायालय के लिए कहा करती हैं—"यही उन गरीबों का सर्वोच्च न्यायालय है, क्योंकि उनके पास आगे अपील करने के लिए पैसे ही नहीं होते हैं।"

आज वे हाईकोर्ट स्तर की न्यायाधीश हैं पर इस पद तक पहुँचने के लिए उन्हें बहुत संघर्ष करने पड़े हैं। अमेरिका में जहाँ गोरे-काले का भेद चरम शिखर पर है। जीवन के हर क्षेत्र में अश्वेतों को हिकारत की निगाह से देखा जाता है। उन्हें प्रगति के अवसर बहुत मुश्किल से दिए जाते हैं। उनके साथ सदा पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता है। ऐसी स्थिति में उनका इस पद पर पहुँचना एक आश्चर्य ही कहा जायेगा। इसके लिए उन्होंने अपना पात्रत्व कितना विकसित किया होगा, कितनी स्पर्धा की होगी ? तब कहीं जाकर वे इस स्थिति तक पहुँची होंगी।

एडिथ स्पर लोक, पिट्सवर्ग पेंसिलवानियाँ में १९०१ में जन्मीं थी। एडिथ के पिता एक सफाई की दुकान में कर्मचारी थे। घर की आर्थिक स्थिति कमजोर थी। वे आठ भाई-बहिन थे। फिर भी उन्हें कभी किसी वस्तु का अभाव नहीं खटका क्योंकि श्रम और संतोष की सम्पदा उनके पास पर्याप्त थी। घर के सभी सदस्य काम करते थे। कर्म तो सौभाग्य का दूसरा नाम होता है, सो उनके घर में किसी प्रकार का अभाव, किसी को दृष्टिगोचर नहीं हुआ। आवश्यकता की हर वस्तु उन्हें उपलब्ध रही। दूसरी बात यह थी कि उन्होंने आवश्यकताएँ भी अपनी स्थिति के अनुरूप ही रखी थीं, आसमान को छूने वाली नहीं।

एडिथ की माता हेट बनाती थी। एडिथ को अपने जीवन में कई काम करने पड़े थे। श्वेत लोग उन्हें 'काले' कहा करते थे। उनकी यह टिप्पणी एडिथ के मन में बुरी तरह गड़ जाती थी। पर उसके आगे वह हारने वाली नहीं थी। उसने इस घृणासूचक शब्द को अपने लिए एक चुनौती बना दिया था। वह मन ही मन कहती थीं—"हाँ मैं अश्वेत हूँ। मुझे तुम्हारे जैसी सुविधाएँ नहीं मिलीं, रंग नहीं मिला पर मैं इसकी चिन्ता नहीं करती। जो कुछ मुझे ईश्वर ने दिया है, उसी से मैं तुमसे स्पर्धा कर सकती हूँ।"

यही चुनौती उसे जाने कहाँ से वह धैर्य और लगन दे गयी कि वह विधि में दो-दो उपाधियाँ प्राप्त कर सकी। आरम्भ से अन्त तक उसकी शिक्षा रात्रि पाठशालाओं और रात्रि कॉलेजों में हुई। दिन को काम करना और रात को पढ़ना, एक-दो वर्ष तक नहीं पूरे बीस वर्ष तक यह क्रम चला। उसकी इसी तपस्या का यह फल है कि आज वे जिस पद पर हैं, उसे देखकर श्वेतों को भी उनसे ईर्ष्या होती है।

जब वे लॉ कॉलेज में पढ़ती थीं तभी रफस सेम्पसन नामक व्यक्ति से उनका विवाह हुआ। मास्टर ऑफ लॉ की शैक्षणिक उपाधि पाकर कुछ वर्षों तक उन्होंने वकालत की। थोड़े ही दिनों में वे शिकागो की जानी-मानी वकील गिनी जाने लगीं। उनकी प्रतिभा छिपी न रह सकी। उसे सम्मान देना ही पड़ा। राष्ट्रपति ट्रुमेन ने उन्हें पहले १९५० में और फिर १९५२ में स. रा. अमेरिका के स. रा. संघ में भेजे गए प्रतिनिधि मण्डल की सदस्या नियुक्त किया। वर्षों तक वे शिकागो के म्युनिसिपल कारपोरेशन की सदस्य भी रहीं। १९६२ में वे जज के रूप में नियुक्त हुईं।

श्रीमती सेम्पसन के पास चार-चार मानद डाक्टरेट की उपाधियाँ हैं। अमेरिका के राष्ट्रपति उनके अभिन्न मित्रों में से एक हैं। इन सबसे बड़ी बात यह है कि शिकागो का एक सामान्य से सामान्य आदमी भी उनसे परिचित है। एक बार जे. डी. रेटक्लिफ नामक संवाददाता एक टैक्सी में बैठकर जा रहे थे। उनके मन में श्रीमती सेम्पसन पर कुछ लिखने की बात उठ रही थी। अचानक उनके मन में एक विचार उठा और उन्होंने उस टैक्सी ड्राइवर से पूछा—"क्या तुम जज श्रीमती सेम्पसन को जानते हो ?" उत्तर निश्चित ही मनचीता था, वह बोला—"क्यों नहीं। मैं स्वयं भी एक बार उनके समाने न्याय के लिए उपस्थित हुआ। साहब मानना पड़ेगा, गजब की समझ है उनमें। उनके सामने मुझे ऐसा लगा ही नहीं कि वे जज हैं। मुझे उनमें अपनी माँ की तस्वीर दिखायी दी, जो किसी गलती पर मेरे कान खींच दिया करती थीं। मेरी पहली पत्नी ने मुझ पर कर्ज का दावा किया था। जज ने आदेश दिया था कि उस समय जितने डालर मेरी जेब में हैं, वे सब मैं अपनी पहले वाली पत्नी को दे दूँ। मेरी जेब में उस समय पचास डालर थे। मैं वे सभी देना नहीं चाहता था पर वे सभी बाहर निकल आये थे, सो अब छिपाने की गुंजाइश भी नहीं थी। मुझे पूरे के पूरे पचास डालर उसे दे देने पड़े।"

जब हम जाने लगे तो उन्होंने हमें रुकने को कहा और मेरी पत्नी से बोले—"इसे पाँच डालर वापस कर दो। इस बेचारे को भी इतने पैसे खर्च के लिए चाहिए।" तभी तो मैं कहता हूँ कि वे शक्ल देखते ही अपराधी का अपराध जान जाती हैं और उसके मन की बात को भी। उनका न्याय कानून से नहीं हृदय से होता है।

इतनी लोकप्रिय हैं जज श्रीमती सेम्पसन कि वे जिधर भी निकल जाती हैं, उधर ही उनके परिचित मिल जाते हैं और इस सहृदय महिला का सभी श्रद्धायुक्त अभिवादन करते हैं। सच में वे गरीबों के लिए किसी दयालु सर्वोच्च न्यायाधीश से कम नहीं हैं। आत्मीयता, दया, ममता और प्रसन्नता से भरा-पूरा उनका व्यक्तित्व हर मिलने वाले के मन में एक नया उत्साह भर देता है।

अपने अश्वेत समाज को ऊपर उठाने के लिए वे पूरी-पूरी सहायता करती हैं। उनका अपना रहन-सहन बहुत ही सादा होता है। अपने वेतन का एक चौथाई भाग ही वे अपने लिए खर्च करती हैं, शेष गरीब, अश्वेत विद्यार्थियों को सहायता देने में चला जाता है। एक बार विवाह करने के बाद तलाक हो जाने के कारण उन्होंने फिर विवाह ही नहीं किया। उनकी अपनी कोई सन्तान नहीं है, पर बड़ी बहिन उन पर अपने तीन शिशुओं का भार छोड़कर परलोक सिधार गयीं, उसी दिन से उन्होंने उन बालकों को अपना ही पुत्र मान लिया।

उनका यह व्यक्तित्व और उनका अध्यवसाय अपने आप में अमेरिकावासी अश्वेत नागरिकों के लिए एक प्रेरणा-प्रकाश का कार्य करता है। वे प्रेरणा देती रहती हैं, आगे बढ़ने को कहा करती हैं—"अपनी योग्यता,

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपना पात्रत्व विकसित करो, श्रेय व सम्मान तो तुम्हारी बाट जोहता हुआ मिलेगा।'' और सच है, उनके प्रति न केवल अश्वेतों के मन में श्रद्धा है वरन् कितने ही श्वेत लोग भी उनको अपनी माता की तरह मानते हैं।

श्रीमती सेम्पसन की तुलना हमारे देश के न्यायविदों से करें तो हमें बड़ी निराशा होती है। जिनके न्यायालयों से गरीब देशवासियों को जो न्याय मिलता है, वह इतना महँगा और समयसाध्य होता है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। उनके न्याय का यह तरीका कितना उपयोगी हो सकता है हमारे लिये भी।

विज्ञान जगत की द्युतिमान चन्द्रिका— मदाम क्यूरी

सन् १९०२। सारबान विश्वविद्यालय पेरिस के विज्ञान विभाग के एम. ए. प्रथम वर्ष का परीक्षाफल घोषित हुआ, तो प्रथम आने वाली एक विदेशी लड़की थी, जिसके पास न पहनने को ढंग कपड़े थे और न रहने को ढंग का मकान, न पर्याप्त पुस्तकें, न उपकरण। गरीबी और अभावों से जूझने वाली इस लड़की ने अपने उन सहपाठियों को पीछे छोड़ दिया था, जिनके पास पढ़ने के लिये ढेरों पुस्तकें, अच्छा सा अध्ययन कक्ष, प्रयोग करने के लिये उपकरण, मस्तिष्क को पोषण देने के लिए पौष्टिक आहार आदि सब कुछ था।

प्रथम आने वाली यह विदेशी लड़की पेरिस में गरीबों के क्यार्ते ल्यांता नामक मौहल्ले के एक मकान की छठी मंजिल की बरसाती में रहती थी, जो सर्दियों में इतनी ठण्डी हो जाती थी कि वहाँ रहना कठिन हो जाता और फिर उस लड़की के पास तो पूरा ओढ़ना-बिछौना भी नहीं था। पराधीन देश पोलैण्ड से आने के कारण उसका शैक्षणिक स्तर इस विश्वविद्यालय से बहुत नीचे था। इस कारण उसके सामने समय की कमी भी थी।

इन सब अभावों को उसने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति तथा अपने पुरुषार्थ के बल पर जीत लिया और वह प्रथम आयी। इस लड़की का नाम था मारी स्क्लोडोवस्का। जो अपनी इन्हीं विशेषताओं के सहारे विश्वविख्यात वैज्ञानिक के रूप में प्रसिद्ध हुई। जिसे दो बार नोबुल पुरस्कार मिला। जिसने गरीब होते हुए भी अपनी नवीनतम आविष्कार 'रेडियम' को पेटेंट नहीं कराया—उससे अपना स्वार्थ नहीं साधा वरन् अपने श्रम और शोध को विश्व मानव के हित के लिए निष्काम-भाव से प्रयुक्त होने दिया। मदाम क्यूरी के नाम से वह आज भी विज्ञान जगत में अविस्मरणीय बनी हुई है।

मारी का सम्पूर्ण जीवन संघर्ष की एक जीती-जागती कहानी है। मनुष्य किस प्रकार विपरीत परिस्थितियों से जूझता हुआ अपने असम्भव से दिखने वाले संकल्पों को पूरा कर जाता है। यह तथ्य उनके जीवन में खुलकर सामने आता है।

७ नवम्बर, १९६७ को पोलैण्ड के अध्यापक पिता के घर जन्मी मारी स्क्लोडोवस्का ने बचपन में ही यह सीख लिया था कि संघर्ष का नाम ही जीवन है। उन दिनों पोलैण्ड रूस के जार के अधिकार में था। मारी के पिता ब्लादिस्लाव स्क्लोडोवस्की देशभक्त तथा स्वातंत्र्य प्रेमी जीव थे। उनका सम्बन्ध पोलैण्ड के क्रान्ति दल से था। वे अपने देश को स्वतन्त्र देखना चाहते थे।

यों तो वे सरकारी स्कूल के अध्यापक थे और उन्हें पर्याप्त धन मिलता था किन्तु रुग्ण पत्नी, तीन बच्चियाँ व एक बच्चे के जीवन-निर्वाह के लिये यह धनराशि स्वल्प ही थी। ऊपर से स्वतन्त्रता प्रेमी होने के कारण वे विद्यालय के प्रधानाध्यापक की आँखों में खटकते थे। अतः इस नौकरी के स्थायित्व का भी कोई पक्का आधार नहीं था। रूस सरकार के जासूसों का जाल सारे पोलैण्ड में फैला हुआ था। रूसी-भाषा में ही शिक्षा दी जाती थी। रूस का इतिहास पढ़ाया जाता था। मारी के पिता और उनके साथी अध्यापक चोरी-चोरी पोलिश भाषा व पोलैण्ड का इतिहास बच्चों को पढ़ाते थे।

मारी को देशभक्ति व विज्ञान के प्रति रुचि अपने पिता से ही मिली थी। वह रूसी साम्राज्य से बहुत घृणा करती थी। अपनी कक्षा में वह सबसे तेज-तर्रार विप्लवी बाला के रूप में जानी जाती थी। वह पोलिश तथा रूस दोनों भाषाएँ बड़ी अच्छी तरह सीख गयी थी। इससे रूसी निरीक्षकों की आँखों में वह सहज ही धूल झोंक देती थी।

उसके पढ़ाई में तेज होने के कारण अपनी लगन, परिश्रमशीलता व तन्मयता आदि थे। वह जब पढ़ने बैठती तो वह पुस्तकों में इतनी डूब जाती कि उसके आस-पास क्या हो रहा है, यह पता ही नहीं चलता। उसके सहपाठी उसकी इस तल्लीनता को लक्ष्य करके कभी-कभी उसके साथ कोई शरारत भी कर बैठते थे।

मारी ने बचपन में जीवन के उन कटु सत्यों को बहुत कुछ परिचय पा लिया था, जो व्यक्तित्व के निर्माण में बड़े सहायक होते हैं। उसने अपने स्वतन्त्रताप्रेमी पिता को रूसी जासूस उनके विद्यालय के हैडमास्टर की शिकायत पर अपनी नौकरी से हाथ धोते देखा था। उन्हें नीचे स्तर के स्कूल में कम वेतन पर अध्यापकी करते देखा था। माँ के क्षय से जूझकर हारते हुए प्राण गँवाते देखा था। पैसों के अभाव में उसके अपने भाइयों व बहिनों के साथ स्वयं को भी दूसरे सम्पन्न लोगों के घर नौकरी करनी पड़ी थी, उसने इन विकट स्थितियों में भी आदर्श-पथ पर चलने का सुख व गौरव की अनुभूति पायी थी।

उसके पिता की नौकरी छूट जाने पर उनके एक सम्बन्धी ने उनकी जमा पूँजी भी व्यापार के बहाने स्वाहा कर दी थी। उनके पास अपने बच्चों को पढ़ाने व लड़कियों के विवाह पर दहेज देने के लिए कुछ भी धन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नहीं बचा था। इस आर्थिक दुरावस्था ने उन भाई-बहिनों में परस्पर प्रेम व आर्थिक सहानुभूति उत्पन्न कर दी थी। वे भोग नहीं त्याग की महत्ता को समझते थे। परिश्रमी आदर्शवादी पिता और महत्त्वाकांक्षी सन्तानों ने इस दुरावस्था पर विजय पायी। उसके भाई जोजफ, बहिन ब्रोन्या व स्वयं उसे पढ़ाई में गोल्डमेडल मिला। मारी ने स्वयं एक धनी जागीरदार के बच्चों की गवर्नेस बनकर अपनी बड़ी बहिन वान्या को उच्च शिक्षा पाने के लिये फ्रांस भेजा। सच है, जहाँ प्रेम, पुरुषार्थ व त्याग बसते हैं, वह परिवार आर्थिक अभावों में भी पल्लवित-पुष्पित होता है—स्वर्ग जैसा वातावरण वहाँ निर्मित होता है।'

वान्या के पेरिस आने पर उसका विवाह काशीमीर नामक एक रूसी युवक से हुआ। उसने मारी को भी उच्च-शिक्षा पाने के लिये पेरिस बुला लिया।

पेरिस में विज्ञान की उच्च-शिक्षा पाना मारी के लिये किसी स्वर्ण देश का राज्य पाने जैसा ही सुख था। उसने अपने पिता को जब अपने अध्ययन-कक्ष में प्रयोग करते देखा था। उसी दिन से उसने भी अपने मन में वैज्ञानिक बनने का स्वप्न सँजो लिया था। उसका वह चिर संचित स्वप्न अब पूर्ण होने जा रहा था। वह दिन-रात पढ़ने व प्रयोग करने में जुटी रहती। उसे खाना बनाने व खाने की भी सुध नहीं रहती थी।

अपनी पढ़ाई में हर्ज न हो इसलिये वह अपने बहिन-बहिनोई से पृथक इस मकान की छटी मंजिल की बरसाती में कर्मयोग की साधना करती थी। एक बार तो कई दिन तक ठीक से खाना नहीं खाने के कारण वह स्कूल में बेहोश हो गयी थी। इस पर उसके बहिन-बहिनोई ने उसे प्रथक् रहने से मनाकर दिया। बड़ी मिन्नत, खुशामद व वचनबद्ध होने वह उनसे पृथक रह सकी थी।

प्रथम वर्ष की परीक्षा उत्तीर्ण कर यह पोलैण्ड अपने घर लौटी, तो उसने घर की दशा और भी गिरी हुई पायी। उसे लगा कि 'वह अब आगे पढ़ नहीं पायेगी' किन्तु जहाँ चाह होती है वहाँ राहें भी खुल जाती हैं। एक धनी पोलिश महिला के सद्प्रयासों से उसे 'अलेक्जेन्ड्रो विच स्कॉलरशिप' मिली और वह पुनः पेरिस पढ़ने जा सकी।

रंग उड़े बेढंगे सिले वस्त्रों में लिपटी, फटे जूतों में परिस्थितियों से जूझते रहने के कारण प्रौढ़ हुए चेहरे वाली मारी में जाने ऐसा क्या था कि उस पर एक युवा अध्यापक रीझ गया और शादी का प्रस्ताव कर बैठा। उसकी इस पसन्दगी का कारण शारीरिक आकर्षण नहीं मारी की वैज्ञानिक महत्त्वाकांक्षा व मेधा थी। दोनों असाधारण योग्यता वाले थे। संकोच स्वभाव की इस युवती ने पहले तो आना-कानी की पर फिर वह सहमत हो गयी और वह पियरे क्यूरी नामक इस अध्यापक से विवाह करके मदाम क्यूरी बन गयी।

वैज्ञानिक बनने की लालसा ने मदाम क्यूरी को डाक्टरेट करने की प्रेरणा दी और उन्होंने अछूते विषय पर शोध आरम्भ करदी। यह विषय था—९२ तत्त्वों के अतिरिक्त एक और तत्त्व जो अभी खोजा नहीं जा सका था।

एक सामान्य आय के अध्यापक की पत्नी व एक नन्हीं बालिका की माँ पर घर-गृहस्थी का कितना बोझ हो सकता है ! उस बोझ को उठाते हुए इतने कठिन विषय पर शोध करना, जिस पर पूरे समय स्वतन्त्र काम कर सकने वाले तथा अपनी समृद्ध प्रयोगशाला रखने वाले वैज्ञानिक भी नहीं कर सकते, असम्भव-सा काम था, जिसे मदाम क्यूरी ने उठाया था।

मदाम क्यूरी पढ़ने भी जाती थी, अपना शोध कार्य भी करती थी, बच्चों की साज-सम्हाल भी करती थी और गृहस्थी भी सम्हालती थी। इस स्थिति में भी उन्होंने प्रथम श्रेणी में एम. ए. किया। अर्थाभाव व समयाभाव में भी एक मन, एक रुचि के इन दम्पत्तियों को जो दाम्पत्य सुख मिला, वह अनेक को नसीब नहीं होता। नन्हीं बालिका इरिन को पियरे क्यूरी के माता-पिता रखते थे फिर भी इन्हें अपने प्रयोगों से फुर्सत नहीं रहती थी।

मदाम क्यूरी की इस शोध के आश्चर्यजनक परिणाम ने वैज्ञानिक जगत में तहलका मचा दिया। उन्होंने 'रेडियम' नामक नये तत्त्व को खोज निकाला। इसी पर उन्हें १९०३ में नोबुल पुरस्कार मिला।

रेडियम की खोज में उन्हें पूरे चार साल लगे। उसके लिये मदाम क्यूरी व उसके पति को बहुत श्रम करना पड़ा था। वेतन का आधे से अधिक भाग तो प्रयोग के उपकरणों व कच्चे पदार्थ खरीदने की भेंट चढ़ जाता था। बड़ी मिन्नतें करने पर पियरे अपने स्कूल की प्रयोगशाला की सुविधा मारी को जुटा सके थे। पिच ब्लेण्ड नामक जिस पदार्थ में रेडियम पाया जाता है, वह बड़ा महँगा होता था। अतः वे काँच के कारखाने से जहाँ इसका प्रयोग होता था, कचरा मँगाते और मारी उन्हें लोहे के कड़ाहों में उबालती। चार वर्ष की कठोर साधना के बाद वे सफल हुईं। उनका नाम सारे संसार में विख्यात हुआ।

अभी मदाम क्यूरी की परीक्षा समाप्त नहीं हुई थी। उनके पति एक दुर्घटना में मारे गये। उन्हें जीवन की नौका अकेले ही खेनी पड़ी। उन्हें अपने पति के रिक्त पद पर नियुक्ति मिली। यद्यपि पियरे जैसे हमसफर को खोकर उनका जीवन वीरान हो चला था, फिर भी वे जीवन से उदासीन नहीं हुईं। विज्ञान के माध्यम से जगत की सेवा करती रहीं। १९११ मे उन्हें पुनः नोबुल पुरस्कार मिला। अबकी बार यह रसायन-विज्ञान की उपलब्धि पर मिला था।

उन्होंने अपने पति की याद में एक विशाल वैज्ञानिक प्रयोगशाला का निर्माण भी कराया। जिससे कि उन जैसे किसी प्रतिभाशाली वैज्ञानिक की प्रतिभा के लाभ से जगत वंचित न रह जाय।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

४ जुलाई, १९३४ को विज्ञान जगत की यह चन्द्रिका सदा के लिए अस्त हो गयी, फिर भी उसका प्रकाश अभी भी द्युतिमान है। देशभक्ति, कर्मनिष्ठा, त्याग, बलिदान की यह जीवन गाथा मानवीय सामर्थ्य की अनुपम कीर्ति गाथा के रूप में इतिहास के पृष्ठों पर अमर है।

शरीर विज्ञान की दुर्लभ विभूति— डॉ. गर्टीथेरेसाकोरी

अपने जीवन की सांध्य वेला में गर्टीथेरेसाकोरी ने एक पुस्तिका लिखी—'दिस आई बिलीव' "जिसमें मैं विश्वास करती हूँ।" इस पुस्तक में उन्होंने अपनी आस्थाओं, मान्यताओं, आदर्शों और विश्वासों का विवेचन किया था। जीवन में किस गुण को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाय, इस सम्बन्ध में स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा—"जीवन की विभिन्न अवस्थाओं को मैं इन गुणों में से कभी एक को तो कभी दूसरे को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व देती रही हूँ। पर सबके मुकाबले अब जिस गुण का महत्त्व सबसे अधिक मुखर हो चला है, वह है उदारता। विशेष रूप से उदारता ही किसी मनुष्य को ऊँचा उठा सकती है।" यह परिच्छेद थेरेसाकोरी ने केवल लिखने का उपदेश देने की दृष्टि से ही नहीं लिखा वरन् जीवन में भी उतारकर दिखाया। उनके सम्पर्क-सानिध्य में आने वाले लोग निरन्तर यह अनुभव करते रहे कि गर्टीकोरी में उदारता दिनों-दिन मुखर होती जा रही है।

तब तो रोग के कारण उनका सारा दिन ही घर में बीतता था फिर भी लोग उसकी उदारता से लाभ उठाने के लिए चले ही आते और गर्टीकोरी उनकी बातों को बड़े ध्यानपूर्वक सुनती, उनसे सहानुभूति जताती, समस्याओं का हल करती तथा यथासम्भव सहयोग भी देती। सम्भवतः उदारता के प्रति इसी निष्ठा से प्रेरित होकर वे विचार के क्षेत्र मे आयीं और स्वास्थ्य-विज्ञान मे अपनी महत्त्वपूर्ण खोजो के द्वारा मानव-जाति को निरन्तर उपकृत करती रहीं। इन उपकारों के बदले ही कोरी दम्पत्ति को १९४७ में शरीर-विज्ञान तथा चिकित्सा क्षेत्र में अमूल्य सेवाओं के लिए नोबुल-पुरस्कार मिला।

उनका जन्म १५ अगस्त, १८९६ को आस्ट्रिया के प्राहानगर में हुआ था। उनके पिता रैण्डनिल्ज कई चीनी मिलों के मालिक थे। अच्छा समृद्ध परिवार और उसी के अनुरूप उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई, पालन-पोषण हुआ। सम्पन्नता और समृद्धि के बीच पल रही गर्टी को दस वर्ष की आयु में एक अच्छे पब्लिक स्कूल में भर्ती करवाया गया, जहाँ केवल समृद्ध घरानों की लड़कियाँ ही पढ़ती थीं। ऐसे स्कूलों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि 'इन शिक्षण-संस्थाओं का उद्देश्य उच्च अधिकारियों के लिए सफल पत्नियों का निर्माण करना ही होता है।' जिस पब्लिक स्कूल में उन्हें भर्ती कराया गया, वहाँ केवल विज्ञान और गणित ही पढ़ाया जाता था। गर्टी इन विषयों को बड़ी रुचि के साथ पढ़ती तथा अपनी आयु की सहपाठी छात्राओं से प्रायः आगे ही रहतीं।

परिवार समृद्ध था फिर भी वहाँ के सदस्य अपने बच्चों में नैतिक गुणों और संस्कारों के विकास की ओर सजग ही रहते। अन्यथा प्रायः होता यह है कि सम्पन्न घरानों में बाल-बच्चों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। रैण्डनेत्ज का परिवार इसका अपवाद था। स्वयं गर्टी के पिता अपनी सन्तान को सम्पन्नता का अभ्यस्त और विलासिता का आदी नहीं एक सभ्य, सुसंस्कृत शिष्ट व्यक्ति के रूप में निर्मित करना चाहते थे। इस उद्देश्य से बरती गयी सावधानियों और सतर्कताओं का परिणाम यह हुआ कि गर्टी में शालीनता, उदारता, सहानुभूति, करुणा आदि नैतिक गुणों के साथ परिश्रमशीलता, अध्यवसाय, लगन और तन्मयता जैसी विशेषताओं का भी विकास होने लगा। पब्लिकस्कूल के अध्यापकों ने इन गुणों और विशेषताओं से परिचित होकर उनके विकास में सहयोग ही दिया।

उनकी अध्ययनशीलता और करुणा का ही प्रमाण यह है कि विज्ञान की एक विशिष्ट शाखा शरीर-रचना तथा स्वास्थ्य-चिकित्सा ने उन्हें आकृष्ट किया। अपने आस-पास के कई लोगों को वे रोगी और अस्वस्थ्य देखतीं तो करुणा से उनकी आँखें नम हो जातीं और वे मन ही मन संकल्प करने लगतीं कि कदाचित् अवसर मिले तो समाज से रोग और बीमारियों को दूर हटाने के लिए वे पहल करें। सन् १९१२ में वे स्नातक बनीं तभी उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे डाक्टर बनेंगी।

डाक्टर बनने का उद्देश्य बनाकर वे प्राहा मेडीकल कॉलेज में प्रवेश प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने लगीं, लेकिन वहाँ गर्टी ने अनुभव किया कि यह लगभग असाध्य है। क्योंकि मेडीकल कॉलेज में प्रवेश की योग्यता प्राप्त करने के लिए उन्हें आठवर्षों तक लैटिन भाषा सीखनी पड़ेगी तथा पाँचवर्ष तक गणित के साथ-साथ भौतिकी व रसायन का अध्ययन करना पड़ेगा। अर्थात् कुल तेरह वर्ष और पढ़ना पड़ेगा, यह अवधि कोई थोड़ी नहीं होती। परन्तु वे निराश न हुईं और उसके लिए भी राजी हो गयीं, घर वालों ने समझाया कि इस प्रकार के अपने जीवन के तेरह महत्त्वपूर्ण वर्ष व्यर्थ में क्यों बर्बाद किये जायें। परिवार पर्याप्त समृद्ध है, किसी बात की कमी नहीं है। समाज प्रतिष्ठा के बल पर अच्छा ऐश्वर्यसम्पन्न वर भी मिल जायेगा। परन्तु गर्टी को तो जैसे एक ही धुन सवार थी—डाक्टर बनना और रुग्ण मानवता की सेवा करना। इसके लिए तेरहवर्ष तो क्या तेरह जन्म भी वे श्रम और प्रतीक्षा करने के लिए उद्यत थीं।

लगन और धुन के पक्केपन में उन्होंने किसी की नहीं सुनी और घरवालों को इसके लिए सहमत होना ही पड़ा। इसी संकल्प-साधिका ने तेरह वर्ष दूर अपने लक्ष्य को और निकट खींच लाने के मार्ग खोजे तथा निश्चय किया कि गर्मी की छुट्टियों का उपयोग अपने लक्ष्यवेध की योग्यता अर्जन में करेगी। स्नातक परीक्षा से निवृत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

होने के बाद कुछ दिनों विश्राम करेंगी तथा बाद में इस दिशा में पद प्रवेश करेंगी। उस वर्ष उन्होंने छुट्टियाँ बिताने के लिए कहीं बाहर न जाने का निर्णय लिया और गर्मी की छुट्टियाँ अध्ययन में ही बिताईं, वहाँ उन्होंने रेत्शोन नामक एक अध्यापक से सम्पर्क साधा तथा अपनी स्थिति और आवश्यकता के सम्बन्ध में बातचीत की। उन्हें छुट्टियों में लैटिन-भाषा सिखाने के लिए राजी हो गया। छुट्टियाँ खत्म होते-होते उन्होंने लैटिन भाषा में इतनी योग्यता अर्जित कर ली जितनी कि तीन वर्षों में सीखी जा सकती थी। इस प्रकार तीन वर्षों की खाई तो उन्होंने अवकाश के समय में ही पाट ली।

उसी वर्ष वे रॉयल जिमनेजियम में भर्ती हुईं, जहाँ कि रेत्शोन पढ़ाया करते थे। उन्हें इस शर्त पर प्रवेश दिया गया कि यदि वे योग्य सिद्ध होंगी, तभी उन्हें वहाँ रहने दिया जायेगा। एकाग्रता, लगन और बौद्धिक क्षमता के आधार पर उन्होंने यह शर्त सहजता से पूरी कर दिखाई और दो वर्ष तक पढ़ती रहीं। इन दो वर्षों तक उनके सामने एक ही लक्ष्य था कि शीघ्रातिशीघ्र मेडीकल स्कूल में प्रवेश प्राप्त करने योग्य, क्षमता, अर्जित करना और इसी लक्ष्य को सामने रखकर चलीं। गर्टी अपने प्राप्तव्य को प्राप्त करने में सफल हुईं। उन्होंने वहाँ रहकर गणित और विज्ञान विषय का भी अध्ययन किया था और तेरह वर्ष में होने वाला कार्य दो वर्ष में ही कर दिखाया।

सन् १९१४ में उन्होंने पुनः मेडीकल कॉलेज में प्रवेश प्राप्त करने के लिए परीक्षायें दीं और इस बार सफल हुईं। प्राहा विश्वविद्यालय जो उस समय चार्ल्स फर्डिनाड विद्यालय के नाम से जाना जाता था—की जर्मन शाखा में उन्होंने अपना नाम दाखिल करवाया और जी-जान से पढ़ने लगीं। जीव रसायन प्रयोगशाला में कार्ल गोरी नामक एक युवक उनका सहपाठी बना और दोनों कक्षा के साथ-साथ कक्षा के बाहर भी अच्छे मित्र सिद्ध हुए। कार्ल गोरी तथा गर्टीथेरेसा साथ-साथ प्रयोग करते और बाहर घूमने-फिरने भी प्रायः साथ-साथ जाते। दोनों ने जीव-रसायन में एक साथ अध्ययन किया।

गर्टी और कार्ल कक्षा में मित्र होने के साथ-साथ स्वस्थ प्रतिद्वन्द्वी भी थे। दोनों का उद्देश्य रहता था कि परीक्षा में कौन अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो। इस प्रकार उनका तारुण्य अन्य विकृतियों को जन्म देने के स्थान पर एक-दूसरे का प्रेरणा स्रोत बना। इस प्रकार मेडीकल कॉलेज के दिन कब गुजर गये, कुछ पता नहीं चला और उन्होंने छह वर्ष का पाठ्यक्रम पूरा कर १९२० में एम. डी. की डिग्री ली। इससे दो वर्ष पूर्व उनके पास डाक्टर बनने का अवसर आया था। १९१८ के प्रथम विश्वयुद्ध में आस्ट्रिया को भयंकर तबाही का सामना करना पड़ा था। यहाँ तक कि उसका विभाजन भी हो गया और चेकोस्लोवाकिया एक नये राष्ट्र का उदय हुआ।

प्राहा नवनिर्मित देश की राजधानी बना और वहाँ का विश्वविद्यालय भी चेक गणराज्य में आया। उस समय डाक्टरों की काफी माँग हुई, लेकिन गर्टी और कार्ल ने तो अपना सम्मिलित ध्येय बनाया था, जीव रसायन पर अनुसंधान। ताकि नये-नये रोगों के कारण जाने जा सकें। विद्यार्थी जीवन में ही उन्होंने इस विषय पर अनुसन्धान कार्य आरम्भ कर दिया था और उसमें एक सीमा तक सफल भी हुए थे परन्तु इतना मात्र अपर्याप्त ही था। अतः उन्होंने एम. डी. की डिग्री प्राप्त करने के बाद इस दिशा में आगे कदम बढ़ाया। एम. डी. की डिग्री प्राप्त करने के बाद ही उन्होंने विवाह कर लिया और गर्टी टेरेसा अपने नाम के साथ पितृकुल के स्थान पर पतिकुल का नाम लिखने लगी गर्टी कोरी।

उनके पति जीव-रसायन में अपने अनुसन्धान कार्यों को विकसित करने के लिए बियना चले गये। डा. गर्टी कोरी भी उनके साथ गयीं और पति को सहयोग देने के अतिरिक्त नगर में बच्चों के एक अस्पताल में भी काम करने लगीं लेकिन वहाँ आवश्यक सुविधाओं का अभाव देखकर दोनों पति-पत्नी अमेरिका आ गये। अमेरिका में उनकी नियुक्ति दुर्दम्य रोग के शोध-संस्थान में जीव रसायन के रूप में हुई और डा. गर्टी कोरी सहायक विकृति विज्ञानी बनकर आयी लेकिन शीघ्र ही जीव रसायनज्ञ बन गईं। इस प्रकार दोनों पति-पत्नी का साथ-साथ काम करने का स्वप्न पूरा हो गया और उन्हें उपयुक्त अवसर मिला।

कोरी दम्पत्ति का प्रिय विषय था शरीर की क्रिया-संचालन प्रक्रिया। उन्होंने अपनी प्रारम्भिक शोध शरीर की असामान्य वृद्धि के विभिन्न पहुलओं पर से की। शरीर की सभी प्रकार की वृद्धि भोजन पर ही निर्भर करती है। अतः उनका ध्यान शरीर की पाचन क्रिया पर गया। तब तक इन्सुलिन की खोज की जा चुकी थी। यह हार्मोन क्लास का एक प्रोटीन है और पाचन क्रिया में भोजन के शर्करा तथा कार्बोहाइड्रेट्स तत्त्वों पर नियन्त्रण करता है। वे इस विषय पर अपना अनुसन्धान और प्रयोग करने लगे तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि शरीर में जब अवशोषित शर्करा अधिक जमा होने लगती है, तब उसका आधा भाग यकृत और माँसपेशियों में एकत्रित होने के साथ चर्बी के रूप में भी इकट्ठा होने लगता है। शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओं में यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि कही जाती है और इसीलिए मोटापा कम करने, चर्बी हटाने के लिए डाक्टर लोग शर्करा तथा कार्बोहाइड्रेट्स वाले आहार का सेवन कम करने के लिए कहते हैं।

जीव रसायन में उन्होंने और भी महत्त्वपूर्ण खोजें कीं। जिनसे उनकी प्रतिभा का समुचित लाभ समाज को देने के लिए सेण्टलुई के वाशिंगटन विश्वविद्यालय ने अपने यहाँ आमन्त्रित किया। डा. कार्ल गोरी उक्त

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर बनकर आये तथा डा. गर्टी कोरी फैलो के शोध अधिकारी के रूप में। बाद में डा. गर्टी प्रोफेसर भी बन गयी। वहाँ यह दम्पत्ति साथ-साथ प्रयोगशाला में जीव रसायन पर अनुसन्धान करते। कार्य क्षेत्र में उनके छात्र तथा सहयोगी अलग-अलग थे। फिर भी कार्य और उद्देश्य की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त साम्य था। वहाँ उन दोनों ने जीवन रसायन के विकास में अनूठा योगदान दिया। जिसके लिए दोनों को १९४७ में नोवेल पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया।

नोबुल पुरस्कार यद्यपि दोनों को ही मिला। परन्तु गर्टी कोरी उसे लेने नहीं जा सकीं। कारण कि इसी बीच उन्हें ऐसे रोग ने आ घेरा, जिससे उनका चलना-फिरना और यात्रा करना असम्भव ही हो गया लेकिन अमेरिका जनता ने उन्हें अभिनन्दन और श्रेय देने में अपनी ओर से कोई चूक नहीं रखी। वे ७ से ५० तक राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की सदस्या, रिक्बव अवाडे, गारबन स्वर्ण पदक तथा वोर्डन अवार्ड आदि सम्मानों के साथ-साथ केमिकल सोसायटी आदि संस्थानों की सदस्यता भी रहीं। २६ अक्टूबर, १९५७ को उनका देहान्त हो गया और मानव शरीर विज्ञान के अनुसन्धान इतिहास का एक आवरण पृष्ठ क्षतिग्रस्त हुआ।

सामाजिक विषमता की शत्रु— एंजेला डेविस

रंगभेद को कायम रखने में ही अपना स्वार्थ समझने वाले गोरे अँग्रेजों को एंजेला डेविस की बढ़ती जा रही ख्याति फूटी आँखों न सुहाई। उन्होंने डेविस पर तरह-तरह के आरोप लगाये, षडयन्त्र रचे और निरुत्साहित करने के प्रयास किये। परन्तु विजय सदैव डेविस की हीं होती रही। कुछ दिनों पूर्व संसार चौंक उठा, जब श्वेत प्रभावशाली गोरे लोगों ने षडयन्त्र रचकर एंजेला डेविस को गिरफ्तार करवा दिया। एक साथ उन्हें तीन अपराधों में घसीटा गया था। पहला तो यह कि एंजेला ने अपने जीवनसाथी को पुलिस की हिरासत में से निकालने का षड्यन्त्र रचा था और अदालत पर सशस्त्र आक्रमण की योजना बनाई थी तथा न्यायाधीश जे. हेली की हत्या और अपहरण में भी उन्हीं का हाथ था।

परन्तु एंजेला सर्वथा निर्दोष थी। उन्होंने रंगभेद के खिलाफ तीव्र संघर्ष छेड़ रखे थे—यह तो सच था लेकिन उस संघर्ष में कहीं भी हिंसा या गैरकानूनी तरीकों का उपयोग नहीं हुआ था। उनका दोष था तो केवल यही कि वे नीग्रो लोगों को सामाजिक अधिकार दिलाने के प्रयत्न कर रही थीं। अमेरिकी कानून ने भले ही रंगभेद की प्रथा को अवैधानिक करार दिया हो। लेकिन कानून बना देने मात्र से किसी समस्या का समाधान नहीं हो जाता। वहाँ के श्वेत नागरिक तो आज भी नीग्रो जनता को दूसरी तथा निचली श्रेणी की जनता समझ रहे हैं।

सामाजिक समानाधिकार को जनस्तर पर प्राप्त करने के लिए उस वर्ग का जागरूक होना आवश्यक है, जो अभिजात कुल के लोगों द्वारा पीछे ढकेल दिया गया। एंजेला डेविस उस सामाजिक चेतना की चुनौती बनती जा रही थीं और स्वार्थपरस्त श्वेत नागरिक उन्हें अपना शत्रु समझते जा रहे थे। लेकिन न्यायालय ने उन्हें निर्दोष बरी कर दिया। जब तक वह पुलिस हिरासत में रहीं यद्यपि वह अवधि कोई लम्बी नहीं थी, फिर भी उनकी अनुगामिनी नीग्रो जनता निरन्तर चिन्ताशील बनी रही। कभी चर्च में न जाने वाले अश्वेत युवकों ने भी इन दिनों प्रभु से प्रार्थनायें कीं। यह उनकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

एंजेला डेविस का जन्म सन् १९४४ ई. में वरमिंघम (अमेरिका) के पास एक छोटे से गाँव में हुआ था। इस समय उनकी आयु लगभग ५१ वर्ष है। इस उम्र में ही उन्होंने लोकप्रियता के जिस उच्च-शिखर को छू लिया है—वह निश्चय ही ध्येय के प्रति उनकी अडिग निष्ठा, मानवता के प्रति टीस और कसक का ही परिचायक है।

अमेरिका में रंगभेद के विरुद्ध अश्वेत नागरिकों का संघर्ष कई शताब्दियों पूर्व से चला आ रहा है। बाल्यावस्था में भी बाल विनोद के रूप में एंजेला डेविस अश्वेत प्रदर्शनी में भाग लेती रहीं। इसी के परिणामस्वरूप उनमें श्वेत नागरिकों की अहंजन्य विकृत मान्यताओं और व्यवस्थाओं के प्रति एक तीव्र आक्रोश पलता रहा, जो आगे चलकर फला-फूला।

एंजेला डेविस एक साधारण परिवार की सदस्या थीं। माता-पिता मेहनत-मजदूरी कर अपना जीवन-निर्वाह करते थे। साथ ही यह भी चाहते कि उनकी बेटी को भविष्य में अच्छा सुख मिले। वर्तमान परिस्थितियों से संघर्ष व्यक्ति भविष्य को आधार बनाकर करता है। अभी नहीं तो आगे चलकर सुख मिलेगा या मेरी सन्तान सुखी बनेगी—यही आशा मनुष्य में धैर्य और पुरुषार्थ जगाती है। डेविस के माता-पिता ने भी अपनी बेटी को इसी आशा से स्कूल में भर्ती करवाया।

एंजेला भले ही कम उम्र की नासमझ बालिका रही हो। परन्तु माता-पिता ने उसे इस बात का आभास करा दिया था कि पढ़ना अच्छा है। इस समय कठिनाइयों और अभावों को स्वीकार कर माँ-बाप जिस तरह उसकी शिक्षा के लिए पैसा निकालते रहते हैं। सहृदय और स्नेहपरायण अभिभावकों के बच्चे उनके उद्देश्य और गम्भीर मन्तव्य को भावात्मक रूप से अवश्य अनुभव कर लेते हैं। इस भावना प्रधान अनुभूति ने एंजेला को तन्मयतापूर्वक अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। लगन और निष्ठा के होते हुए कोई भी व्यक्ति चाहे वह युवा हो या बालक कब असफल हुआ है। एंजेला को सफलता मिलती गई और इतनी अच्छी सफलता कि वह अपने सहपाठियों की ईर्ष्या का विषय बन गई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१५ वर्ष की आयु में ही वे न्यूयार्क सिटी के हाईस्कूल में भर्ती हो गयीं। इस समय उनकी प्रतिभा को विकास का अवसर देने के लिए स्कूल की ओर से उन्हें छात्रवृत्ति भी दी गई। इस छात्रवृत्ति को उन्होंने घरवालों के पास भेजा परन्तु माँ-बाप ने यह कहकर लौटा दिया कि वह इसका उपयोग स्वयं के विकास में ही करे।

एंजेला डेविस ने छात्रवृत्ति की रकम को अपनी आवश्यकतायें बढ़ाकर या आमोद-प्रमोद के साधनों में नहीं लगाया। बचपन से अभावों के शिकार बने बालक कुछ उन्मुक्तता अनुभव करते ही अक्सर बहक जाते हैं। ऐसी स्थिति में स्वयं को सम्हालने की आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता सन्तान के पालन-पोषण में समझदारी बरतने से ही पूरी हो सकती है। छात्रवृत्ति की सहायता से उन्होंने अपनी आगे की शिक्षा का प्रबन्ध किया। उन्होंने फ्रेंच-भाषा के अध्ययन में विशेष रुचि ली। स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धान्तों ने उनका मन मोह लिया। हाई-स्कूल के बाद की शिक्षा समाप्त कर वे पी. एच. डी. की तैयारी करने लगीं। इन्हीं घड़ियों में अश्वेत आन्दोलन की ओर सैद्धान्तिक तौर पर आकृष्ट हुईं। इन दिनों उन्होंने कैलिफोर्निया में नीग्रो-कामगरों की दयनीय दुर्दशा देखी थी। गन्दी बस्तियों में भेड़-बकरियों की तरह भरे हुए ये अमेरिका के मूल निदासी जैसे श्वेत जाति वालों द्वारा अपनी थोथी शान पर धब्बा समझकर समाज के शरीर से पोंछ दिये गये हों। इन्हें खाने-पीने के योग्य मजदूरी भी नहीं मिल पाती थी जबकि दिन भर कोल्हू के बैल की तरह काम में जुते रहना पड़ता था।

भोजन के साथ-साथ अन्य छोटी-छोटी जरूरतें भी—जिनके लिए सामाजिक व्यवस्था होती है का लाभ भी इन्हें नहीं मिलता। कभी कोई नीग्रो बालक बीमार पड़ जाता है, तो डाक्टर आना तो दूर मरीज के रूप में उसे अस्पताल में भर्ती भी नहीं किया जाता। हालांकि ऐसी कोई वैधानिक बाधा तो नहीं थी क्योंकि सरकार ने तो कानून द्वारा सभी रंग-वर्ण के लोगों को समानता का दर्जा दे रखा था, फिर भी जन-मानस में तो वह कुहासा छाया था, जो उनके मानवीय अस्तित्व को ही नकारता, अनदेखा करता था।

एंजेला ने अनुभव किया कि इस प्रकार की समाज की व्यवस्था को बदलने के लिए एक जबर्दस्त क्रान्ति की आवश्यकता है, जो नीग्रो लोगों में अपने अधिकार का बोध कराकर उसे प्राप्त करने के लिए झकझोर डाले। वे अपने इस विचार और प्रेरणा से जन-मानस को आप्लावित करने के लिए कमर कसकर आगे आयीं। शान्तिपूर्ण तरीकों तथा आवश्यकता होने पर क्रान्तिकारी रवैया अपनाने से भी न चूकने का निश्चय कर वे अपने विचार, उद्देश्य को सफल बनाने के लिए जन-सम्पर्क करने लगीं। कई सभाओं में उन्होंने नीग्रो जनता को उनके अधिकार से अवगत कराया। इस कार्य को सरलतापूर्वक पूरा करने के लिए वह मूँगा क्लब की सदस्य भी बनीं। साम्यवादी विचारधारा के दलों से भी उनका सम्बन्ध स्थापित हुआ।

सन् १९६१ में वे लॉस एंजेल्स के एक कॉलिज की अध्यापिका बनीं। अपने छात्रों को उन्होंने दर्शन-शास्त्र के माध्यम से समत्व की शिक्षा दी। एंजेला के ये विचार महाविद्यालय के श्वेत अधिकारियों को पसन्द नहीं आये। षडयन्त्रकारी कम्युनिष्ट होने का आरोप लगाकर एंजेला को सेवा से हटा दिया गया। उनके लिए यह बड़ा परीक्षण का विषय था। शान्ति से न मिलने पर संघर्ष का रास्ता अपनाते हुए अपना अधिकार प्राप्त करने का विचार अभी तक उन्होंने दिया था। इस विचार की कसौटी पर अब वे स्वयं चढ़ रही थीं। उन्होंने विश्वविद्यालय के निर्णय को न्यायालय में चुनौती दी और विजय उन्हीं की हुई। रंगभेद के खिलाफ अब तक लड़ रही एंजेला डेविस की मार्टिन लूथर किंग के बाद सर्वाधिक ख्याति हुई। अमेरिका और विश्व के सुधारवादी विचारक उन्हें मार्टिन की उत्तराधिकारिणी मानते हैं।

सहचरत्व की सच्ची देवी— श्रीमती जयिनी मार्क्स

प्रशिया के एक प्रतिष्ठित और उच्च पद पिता के घर जन्मी लड़की के लिये अच्छा, स्वस्थ, सुयोग्य पति प्राप्त करना कोई बड़ी मुश्किल बात न थी। पर इस लड़की ने अपनी आयु से भी चार वर्ष कम आयु के एक साधारण लड़के को पसन्द किया, तो घरवालों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

पिता ने इरादा बदलने के लिये कई बार कहा। उन्हें सबसे बड़ा दुःख इस बात का था कि उनकी बेटी जिस युवक से विवाह करना चाहती है, वह आयु में काफी छोटा है। इसी बात को लेकर उन्होंने बच्ची को समझाया पर उसने उत्तर दिया—"पिताजी यदि बड़ी आयु के आदमी कम आयु की कन्याओं से विवाह कर सकते हैं तो कन्यायें भी ऐसा क्यों नहीं कर सकतीं ? युवक स्वस्थ है, परिश्रमी है, सूझ-बूझ वाला, विचारशील है तो कम आयु का होना कोई बड़ी भारी समस्या नहीं। आप इस पर चिन्ता न कीजिये। अपना दाम्पत्य जीवन बनाना मेरे कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर निर्भर है। आप निश्चिन्त रहिये, मुझे इस सम्बन्ध में पूर्ण सन्तोष है।"

अपनी दृढ़ता से अपने पिता को झुका लेने वाली यह महिला और कोई नहीं साम्यवाद के प्रवर्त्तक मार्क्स की पत्नी जयिनी मार्क्स थीं। कार्ल मार्क्स के विचार आज दो-तिहाई संसार को अपना अनुयायी बनाये हुये हैं। उनका जीवन नितान्त निराशा और कठिनाइयों का जीवन था। उनके जीवन में यदि कुछ प्रेरणा और प्रकाश था, जो उनमें निरन्तर जीने और पीड़ित मानव समाज की सेवा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने की शक्ति जगाये रखता था तो वह एकमात्र उनकी धर्मपत्नी थीं। दुनिया में ऐसी बहुत कम महिलायें होती हैं, जो भीषण कष्ट और कठिनाइयों में भी अपने पतियों के विचारों और सिद्धान्तों पर चलकर भी सन्तुष्ट बनी रहती हैं। जयिनी मार्क्स ऐसी महिलाओं में शिरोमणि कही जा सकती हैं।

मार्क्स उन दिनों लन्दन में रहते थे। वे जिस मकान में रहते थे वह अत्यन्त गन्दी बस्ती थी, आजीविका बहुत थोड़ी थी, सामयिक पत्रों में उनके लेख छपते थे, उन्हीं का जो थोड़ा-सा पारिश्रमिक मिलता था, उसी से परिवार का गुजारा चलता था। आमदनी की कमी के कारण किराया अधिक न दे सकते थे। मकान में दो कमरे थे। एक शयन गृह और दूसरा बैठक के लिये। रसोई पकाना अथवा बैठकर लिखना-पढ़ना बैठक वाले कमरे में ही होता था, जिससे घर में रहते हुये भी लोग तूफानी रेगिस्तान के से कष्ट अनुभव करते थे। सम्पन्न परिवार में पली जयिनी के इन कष्टों की खबर से उसके घरवाले बहुत दुःखी हुये, उन्होंने चाहा कि जयिनी मायके रहे पर उसने यह लिखकर वहाँ जाने से इन्कार कर दिया—"मैंने मार्क्स से इसलिये सम्बन्ध नहीं किया कि केवल उनके सुख की सहभागिनी रहूँ। पत्नी का कर्त्तव्य प्रत्येक परिस्थिति में अपने पति को सहयोग और सेवा प्रदान करना है। उससे वंचित होकर मैं अपनी आत्मा को गिराना नहीं चाहती। मुझे अपने कष्टों की परवाह नहीं, मेरी एक ही चाह है कि इनके अन्तःकरण में पीड़ित मानवता के प्रति जो दर्द और योजनायें हैं, समाज में उनका आदर हो और सामाजिक विषमताओं का अन्त हो। इस उद्देश्य में यदि थोड़ा भी सफल होती हूँ, तो वह मेरे लिये सबसे बड़ा सुख, सौभाग्य और सम्पन्नता होगी। इससे अधिक की चाह मेरे लिये कुछ नहीं है।"

व्यक्ति की उत्कृष्टता और सिद्धान्तवादिता से कभी परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं हो जातीं। मनुष्य की दृढ़ता की परीक्षा के लिये कठिनाइयाँ तो आती ही रहती हैं। कभी-कभी तो वे इतनी उग्र हो उठती हैं कि बड़े-बड़े निष्ठावान व्यक्ति तक अपने संकल्प और सिद्धान्त से विचलित होने को विवश हो जाते हैं। बच्ची के हाथ से बन विलाव रोटी का टुकड़ा छीन ले गया था, इस मानसिक कष्ट ने राणाप्रताप जैसे महारथी में अकबर की आधीनता स्वीकार करने की भूल जगा दी। वे तत्काल सँम्हल गये, यह दूसरी बात है पर ऐसी परिस्थितियाँ हर दृढ़ संकल्प और सिद्धान्तवादी व्यक्ति के सामने आती हैं इनमें दोरायें नहीं।

मार्क्स को उन दिनों कभी-कभी इतनी आर्थिक तंगी हो जाया करती थी कि सारे कुटुम्ब को भूखों मरने की नौबत आ जाती थी। कभी खाने के लिये केवल रोटी मिलती थी। जयिनी उसमें भी अपने हिस्से को छुपाकर रख देती, पता नहीं कब मार्क्स अथवा बच्चों को आवश्यकता पड़ जाये। पत्नीव्रत की सच्ची साधिका और मातृत्व की देवी जयिनी कई-कई दिन तक भूखी रहती। उसके इस दर्द को मार्क्स पहचानते थे। बर्तन, बिस्तर, ओवर-कोट जो भी आवश्यक वस्तुयें होतीं, उन्हें बेचकर भी वे स्थिति को काबू में लाने का प्रयास करते पर दुर्भाग्य ही है। कठिनाइयाँ इकट्ठे पहाड़ की तरह टूटती हैं। यह दशा इनके जीवन में अक्षरशः सत्य थी पर जयिनी ने ऐसी उदासी और निराशा कभी प्रकट नहीं होने दी, जिससे उसके पति को मानसिक आघात पहुँचता अथवा विचारों की एकता में, सेवा-भावना में बाधा पहुँचती।

मकान का किराया लम्बे अर्से से नहीं चुकता हो पाया था। किसी तरह जोर-बटोरकर उन्होंने २५० थेलर मकान मालिकन को दिये और शेष के लिये अवधि बढ़ाने की प्रार्थना की। ५ पौण्ड बाकी थे। मकानवाली को संदेह था, पता नहीं यह रुपये कब तक लटके रहें इसलिये उसने नालिश कर दी। दो पुलिस के सिपाही आये और वे घर का सारा सामान, चारपाई, कपड़े, बिछौने और यहाँ तक कि बच्चों के खिलौने कुर्क करके ले गये। माँ का हृदय रो पड़ा पर उसने पति की निराश आँखों की ओर देखा, तो उन आँसुओं को ज्यों का त्यों पी गई। उसने यह नहीं प्रकट होने दिया कि "मार्क्स मैं तुम्हारी जीवन शैली से असन्तुष्ट हूँ।" जितना सम्भव था वह उत्सर्ग के लिये ही तत्पर बनी रही।

जयिनी की इस अवस्था का उसकी एक सहेली को पता था, उसने पत्र लिखकर संवेदना व्यक्त की और अपने जीवनक्रम पर नये सिरे से विचार करने की शिक्षा दी। इस पर जयिनी ने जो उत्तर दिया, वह किसी दिव्य लोकोपकार्थ जन्मी आत्मा का ही उत्तर हो सकता था। जयिनी ने लिखा—संवेदना के लिये आभार। यह ख्याल मत करना कि इन छोटे-छोटे कष्टों के कारण मैं हिम्मत हार बैठी हूँ, मुझे अपनी चिन्ता उतनी नहीं। देखती हूँ दुनिया में लाखों लोग मुझसे अधिक कष्ट पा रहे हैं। किसी को साबित रोटी नहीं तो किसी को सिर छुपाने को मकान नहीं। दर्द से चिल्लाते हुये सैकड़ों मरीज हैं, जिन्हें दो आने की दवा नसीब नहीं होती और वे अकाल मौत के मुँह में चले जाते हैं। मेरी स्थिति अभी उनसे अच्छी है यह मानकर मैं सन्तुष्ट हूँ, बल्कि इन तमाम दुःखों के होते हुये भी मैं सौभाग्यशालिनी हूँ और अपने को सुखी मानती हूँ क्योंकि मेरे प्रिय पति जो मेरे जीवन के आधार हैं, सदैव समीप रहते हैं। उन्हें इतनी तकलीफ उठानी पड़ती है, चिन्ता करनी पड़ती है, दुःख है तो बस इतना ही। मार्क्स इन भयंकर कष्टों में भी आत्मविश्वास नहीं खोते, निराश नहीं होते। हमेशा प्रसन्न बने रहते हैं, हँसी-मजाक किया करते हैं, मुझे और बच्चों को प्रसन्नचित्त देखकर उन्हें शक्ति मिलती है। उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। अब आप बताइये इन परिस्थितियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

में मैं किसलिये दुःख करूँ ? मुझे तो अभी भी ऐसा लगता है कि हम संसार के अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक सुखी और सन्तुष्ट हैं।''

संसार में सुख है न दुःख। मनुष्य के विचारों का संतुलन और ऊर्ध्व होना ही सुख और सन्तोष है। असन्तुलित विचार, जीवनक्रम और अधोगामी परिस्थितियाँ ही दुःख का कारण होती हैं, यह बात कार्ल मार्क्स और जयिनी मार्क्स के जीवन से साफ स्पष्ट हो जाती है। परमात्मा ने मनुष्य को वह योग्यतायें दी हैं कि वह कष्ट और अभाव की स्थिति में भी आत्म-सुख, संतोष और आनन्द की अनुभूति कर सकता है। विचारों की उच्चता से भयंकर कष्ट भी सामान्य होकर कट जाते हैं, यह कोई इनके जीवन से सीखे।

इतना होते हुये भी मनुष्य में आखिर कमजोरियाँ भी होती हैं। जयिनी अपने अभावग्रस्त जीवन की याद दिलाकर कम से कम इतना तो कर सकती थी कि पति को संयमित जीवन की प्रेरणा दे सकती थी। ऐसा न कर और अपने आप को पति की स्वेच्छागामी बनाकर इन्होंने निर्धनता में भी अपना कुटुम्ब बढ़ा लिया। फलस्वरूप ४-५ बच्चों की न तो समुचित शिक्षा की व्यवस्था हो पाती थी और न उनकी समुचित सुरक्षा का ही प्रबन्ध हो सका। बच्चे कम होते तो कठिनाइयाँ भी हल्की हुई होतीं तब वे और भी अच्छे और अधिक विचार समाज को दे सके होते। बच्चों को अच्छी शिक्षा मिलती तो उनके व्यक्तित्व का प्रभाव भी उन पर उतरता और वे कार्ल मार्क्स से भी अधिक प्रतिभाशाली निकलते। यह भूल उन्हें और भी कष्ट देती रही।

दरिद्रता के कारण जयिनी का चौथा पुत्र हेनरी छोटी अवस्था में ही अपार कष्ट सहनकर मर गया। सन् १८५२ में छोटी लड़की फ्रांसिस्का की कंठ नली में प्रदाह हुआ, उसकी भी दवा-दारू न हो सकी और वह भी मर गई। उस रात लड़की का शव कमरे में ही खुला पड़ा रहा और यह दम्पत्ति भी अपने तीन बच्चों के साथ लेटे रहे। जब पड़ौसियों ने इकट्ठा करके दो पौण्ड दिये तब कहीं बालिका के कफन आदि की व्यवस्था हुई।

जयिनी का एक बेटा ''एडगर'' जिसे मार्क्स प्रेम से ''मश'' कहकर पुकारा करते थे। वही बचा था सो भी ज्वर से पीड़ित हुआ और एक दिन वह भी चल बसा। इनके जीवन में यह भयंकर वज्रपात था किन्तु होता भी क्या ? मनुष्य जैसी परिस्थितियाँ बनाता है, वैसे परिणाम भुगतने को भी विवश होता है। मार्क्स ने अपनी निर्धनता का विचार किया होता और अधिक संतान न पैदा करते तो क्यों इस तरह अशान्ति में दिन काटने पड़ते। छोटे कुटुम्ब में साधनयुक्त जीवन जीकर वे नई परिस्थितियों का भी आनन्द ले सकते थे, सम्भव था, तब वे संसार को और अच्छी रचनात्मक दिशा दे सकते थे।

इन परिस्थितियों में भी जयिनी ने जो उच्च साहस और धैर्य बनाये रखा, संसार के निर्धन और पीड़ित व्यक्तियों को उससे सान्त्वना अवश्य मिल सकती है। इस बच्चे की मृत्यु ने उनका स्वास्थ्य बिल्कुल तोड़ दिया। मानसिक स्थिति बिल्कुल विक्षिप्त सी हो गई। इस मृत्यु से कुछ दिनों बाद जयिनी ने एक पत्र में बड़े ही करुणाजनक ढंग से लिखा—''हम इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि इस प्रकार के आघातों को सहन करना कितना कठिन होता है। अपने पूर्व जीवनक्रम पर आने में कितना समय लगता है। उस समय भी छोटे-छोटे कष्ट, अभाव, दैनिक झंझटें आती हैं, वे बड़े कष्ट को बँटाने में बड़ी सहयोगिनी होती हैं। धीरे-धीरे पहला घाव मन्द पड़ने लगता है। यह तो नहीं कह सकती कि बिल्कुल भर जाता है—माँ के लिये वह सम्भव ही कहाँ ? लेकिन क्रमशः हृदय में एक नई शक्ति पैदा होने लगती है। घाव भी भरता रहता है और नवीन आशाओं का संचार होने लगता है, इससे बड़ी शाश्वत शान्ति मिलती है। आज फिर हम अपना कर्त्तव्य उसी भावना से पालन करने लगे हैं, यह इसी का परिणाम है।''

जयिनी ने सारा जीवन दुःखों, अभावों और भयंकर वज्राघातों की छाया में बिताया पर वह अपने पति के जीवन आदर्श में कभी आड़े नहीं आई। जितना बन पड़ा उनकी पीड़ाओं को बाँटने का ही प्रयत्न किया। इस प्रकार उन्होंने सहचरत्व को सच्चे अर्थों में सार्थक बनाकर विश्व की महिलाओं को एक नया प्रकाश दिया। ऐसा प्रकाश जो उन्हें कठिनाइयों में भी धैर्य और पतियों के साथ एकात्मा का संदेश देता रहेगा।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नारी उत्थान को समर्पित उदारमना महिलाएँ

श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय—
नारी उत्कर्ष ही जिनका लक्ष्य था

परिवार की परम्परा और समाज की रीति-नीति के अनुरूप ही पिता ने अपनी बेटी का विवाह बड़े धूमधाम के साथ कर दिया। इसे अपने समाज का अभिशाप ही कहा जाना चाहिए कि साधारण परिवारों में कन्या का जन्म होते ही माँ-बाप की निश्चिन्त शान्ति और प्रगाढ़ निद्रा खो जाती है। वे घर का सब कुछ समेटकर ले जाने वाले पराये धन को—लड़की को अपने पर, अपने परिवार पर और अपने कुटुम्ब पर भार समझकर ही ढोते हैं और तब तक उस भार की बोझिलता का अनुभव करते हैं, जब तक लड़की के हाथ पीले न हो गये हों।

परन्तु कमलादेवी के अभिभावक इस तरह के नहीं थे। जिस समय में वे रह रहे थे, उस समय की स्थिति को देखते हुए उन्हें साहसी, मनस्वी, सुदृढ़ मनोबल सम्पन्न जो कुछ भी कहा जाय थोड़ा है। उन्होंने अपनी बेटी का बड़े लाड़-प्यार से पालन-पोषण किया था और उसी नाजो-अन्दाज के साथ उसका पाणिग्रहण संस्कार भी करवा दिया था।

परन्तु नियति का विधान कि कमलादेवी के भाग्य में पति का सुख न लिखा था। विवाह के कुछ समय बाद ही कमलादेवी के पति का देहान्त हो गया। पत्नीत्व का अनुभव किये बिना ही कुमारी कमलादेवी अकस्मात् ही विधवा हो गयीं। पति क्या होते हैं, गृहस्थ क्या होते हैं, दम्पत्ति के परस्पर क्या दायित्व होते हैं, उनका अनुभव भी नहीं किया था कि उनके माथे से सिंदूर पुँछ गया। परन्तु माता-पिता के लिए तो एक समस्या उत्पन्न हो गयी थी।

कमलादेवी एक विचारशील युवती थी। घर वालों को इस अनभ्र वज्रपात पर जब बार-बार यह कहते हुए सन्तोष करते देखा कि—"अब जो हो गया सो हो गया। विधाता को यही मंजूर था" और साथ ही यह चिन्ता भी कि—कमला का क्या होगा, तो कमला विचार करने लगी। कुछ समय तक गहन विचार-मन्थन करते रहने के बाद कमला ने अपने माता-पिता को यों समझाया—विधवा होना तो विधाता का विधान है—पिताजी ! विधाता का विधान कभी भी झूठा नहीं हो सकता। मुझ पर और आप पर जो विपत्ति आयी है, वह निश्चित ही अमङ्गलकारी है, पर मैं उसमें भी शुभ और शिव का दर्शन करती हूँ।"

"सो कैसे बेटी ?"

"ऐसे कि मुझे अपने पैरों पर खड़ा होने का अवसर मिलेगा"—कमला ने निश्चय व्यक्त किया। परन्तु माता-पिता को जैसे विश्वास ही नहीं आ रहा था और विश्वास किसी क्षण उभरता भी तो उन्हें अमंगल ही दिखाई देता। कितना निष्ठुर है समाज ? विवाहित स्त्रियों को भी मनचले लोग खा जाने वाली भूखी नजरों से देखते हैं, तो युवती कन्या को कौन नहीं अपनी वासना का ग्रास बनाने के लिए भूखे शेर की तरह टूटेगा ? विधवा, युवती और उस पर भी सुन्दर कन्या ? कौन जाने हृदय से वह भी पतित न हो जाये और कुल की इज्जत पर कालिमा पोत दे।

"परन्तु तुम अपने पैरों पर किस प्रकार खड़ी होगी ?" पिता के इन शब्दों में अनिश्चित भविष्य की कल्पना व्यक्त हो पड़ी।

"मैं अध्ययन करूँगी, पढ़ूँगी और अपने पैरों पर स्वयं खड़ी होने के लिए प्रयत्न करूँगी"—कमला का दृढ़ निश्चय सामने आ गया।

"लेकिन बेटी ! समाज ऐसा नहीं है कि उसमें तुम अपने को कीचड़ के छींटे से बचा सके।"—पिता ने कहा।

"आप व्यर्थ ही आशंकित हो रहे हैं पिताजी ! क्या आप मुझ पर विश्वास नहीं करते, स्वयं पर भी विश्वास नहीं करते कि आप ऐसी बेटी के पिता हो सकते हैं, जो परिस्थितियों से समझौते कर सामने घुटने टेक दे, कमलादेवी ने कहा और समझाया कि "अब मैं रो-रोकर शेष जीवन घर में ही व्यतीत कर दूँ, इससे बेहतर तो यह है कि पुरुषार्थ और परिश्रम करते हुए मर जाऊँ।"

बेटी ! जब इतना साहस दर्शा रही है तो मैं ही क्यों पीछे कदम हटाऊँ ? सोचकर पिता ने भी अपनी बेटी को आगे पढ़ाने का निश्चय कर लिया। एक बार जब वे कोई निश्चय कर लेते तो मुश्किल से ही पीछे हटते, फिर भले ही लोक निन्दा हो या जमाना अँगुली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उठाये। कमलादेवी ने गृहिणी और विधवा का बाना छोड़ा और छात्रा का वेश धारण किया। कॉलेज की छात्राओं में घुलने-मिलने के लिए उन्होंने सारी मायूसी को कूड़े के ढेर में डाल दिया। लोगों को तो इससे कोई लेना-देना नहीं था कि कमलादेवी किस उद्देश्य के लिए पढ़ रही है ? वे तो केवल उनका हँसना-बोलना और अच्छे कपड़े पहनना ही देखते थे और वह भी कोई अच्छी दृष्टि से नहीं, इसलिए कि कमला और उसके परिवार वालों पर अँगुली उठाई जाये, उन्हें नीचा दिखाया जाय।

समाज में उन दिनों विधवाओं की बड़ी दयनीय दुर्दशा थी। उन दिनों विधवा स्त्री को निष्प्राण और निरानन्द जीवन ही जीना पड़ता था। न अच्छा खाना, न ठीक ढंग का पहनना, यहाँ तक कि उसकी हँसी, उसकी बोलचाल और उसकी बातचीत पर भी समाज का प्रतिबन्ध था। कमलादेवी ने इन सब रूढ़ियों की अवमानना की तो उन्हें लोकापवाद का शिकार होना पड़ा।

परन्तु यह लोकापवाद भी उनके लिए प्रेरणादायी सिद्ध हुआ था। उन्होंने अच्छी तरह अनुभव कर लिया कि समाज में विधवाओं की क्या दशा है ? वे तो साहसी थीं। अतः उन सभी अवरोधों का सामना करते हुए लगे हुए रूढ़-प्रतिबन्धों का सामना कर सकीं, पर उन स्त्रियों की दशा क्या रही होगी, जिनमें इतना सामान्य मनोबल भी नहीं था। अतः उन्होंने निश्चय किया कि पढ़-लिखकर भविष्य में नारियों की स्थिति सुधारने के लिए प्रयत्न करूँगी।

और सचमुच ही पढ़-लिखकर स्वावलम्बी बनने के बाद उन्होंने अपने इस वरेण्य जीवन लक्ष्य की ओर ध्यान दिया। कार्यकारी जीवन से जब भी अवकाश मिलता, तभी वे उन महिलाओं के पास जातीं और उनसे सम्पर्क करतीं तथा उन्हें बतातीं, समझातीं कि लोग कहने-सुनने और अँगुली उठाने तक ही अपनी करतूतें बताते हैं। यदि थोड़ा भी साहस किया जाये तो अनायास ही अपनी प्रगति और सुख-शान्ति के द्वार खोले जा सकते हैं।

उनकी बातें कुछ विधवायें सुनतीं, कुछ समझतीं और स्वीकार भी करतीं तथा उनकी प्रेरणा से आगे भी बढ़तीं। परन्तु ऐसी स्त्रियों की भी कमी नहीं थी, जिनका मस्तिष्क ही रूढ़िग्रस्त दासता का शिकार बना रहता था। ऐसी स्त्रियाँ उनका उपहास उड़ातीं, मजाक बनातीं और व्यंग करती थीं। परन्तु मनस्वी शूरमा निन्दा, अपवाद और उपहास के आगे कब रुके हैं, कब रुकेंगे ? कमलादेवी अपने श्रेयपथ पर अनवरत् बढ़ती रहीं। इन्हीं दिनों उनका परिचय भारत कोकिला सरोजनीनायडू के भ्राता हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के साथ हुआ। चट्टोपाध्याय भी सुधारवादी विचारधारा के प्रगतिशील व्यक्ति थे। उन्होंने जब कमला देवी के नारी-उत्थान के प्रयासों के सम्बन्ध में सुना तो वे बड़े प्रभावित हुए। चट्टोपाध्याय प्रतिभाशाली लेखक, अच्छे कवि और कुशल राजनीतिज्ञ थे। उनका लक्ष्य भी प्रगतिशील विचारों, आदर्शों और परम्पराओं का समाज में प्रचलन करना था और वे भी शक्ति भर अपनी लेखनी, वाणी और प्रतिभा के बल पर इस दिशा में कार्य कर रहे थे। दोनों के लक्ष्यों में एक सीमा तक समानता थी। अतः उन्होंने एक-दूसरे को अपना अच्छा साथी समझा और ध्येय की समानता के आधार पर एक-दूसरे को अपना सहधर्मी बनाने के लिए विकल हो उठे। कमलादेवी भी हरीन्द्रनाथ से प्रभावित थीं और हृदय से चाहती थीं कि उन्हें यह प्रतिभा अपने जीवन साथी के रूप में मिले।

कुछ दिनों के साथ ने ही दोनों को उस बिन्दु पर पहुँचा दिया, जहाँ वे अपने हृदय की भावनाओं को साकार-आकांक्षा बना सके। कमलादेवी ने जब हरीन्द्रनाथ के साथ विवाह का निर्णय लिया तो परिवार के सदस्यों से लेकर स्वजन-सम्बन्धियों और रिश्तेदारों तक की नाराजगी का सामना करना पड़ा। अधिकांश हितचिन्तकों ने उन्हें समझाया कि तुम एक पापपूर्ण कदम उठा रही हो। कमलादेवी ने उत्तर में कहा कि—मैं अपने वैयक्तिक सुख के लिए विवाह नहीं कर रही हूँ। अपितु समाज की इस रूढ़िग्रस्त स्थिति को हटाने के लिए ही विवाह कर रही हूँ कि विधवा स्त्रियों को अपने सुख-दुःख की चिन्ता करने का अधिकार ही नहीं है। यह कहाँ का न्याय है कि विधुर पुरुष तो विवाह कर सकते हैं और विधवा स्त्रियाँ पुनर्विवाह नहीं कर सकतीं ? कमलादेवी ने अपने विवाह का प्रयोजन समाज सेवा के लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए एक और सहयोगी प्राप्त होने का भी बताया।

विवाह के बाद उनके कार्यक्षेत्र की परिधि बढ़ गयी। पहले नारी उत्थान ही उनका लक्ष्य था, अब नारी उत्थान बढ़कर समाज का उत्कर्ष भी बन गया। परिवार और पति का दायित्व तो सम्हाला ही, आपत्ति धर्म के रूप में लड़े जा रहे स्वाधीनता-संग्राम में भी उन्होंने सक्रिय भाग लेना आरम्भ किया। जब वे स्वतन्त्रता-संग्राम में कूदीं तो पूर्ववत् ही पूर्व प्रकार के शुभ-चिन्तकों ने समझाया कि आप गृहिणी हैं। पूरे परिवार का उत्तरदायित्व आप पर है। इस सार्वजनिक क्षेत्र में आकर तो आपका पूरा परिवार ही लड़खड़ा जायेगा।

कमलादेवी का कहना था—सारा देश ही तो मेरा घर है। मेरा घर तो उसका एक छोटा-सा अंग है। जीवन को इस छोटे-से अंग के लिए ही खपा डालना अपनी आत्मा के साथ, परमात्मा के साथ विश्वासघात है और ऐसा विश्वासघात मुझसे हो नहीं सकता। सच-मुच ही सारा देश उनका घर था और सभी देशवासी उसमें रहने वाला परिवार। इस निष्ठा के बल पर उनमें अपरिमित उत्साह उत्पन्न हो गया। उत्साह और निष्ठा के बल पर वे निरन्तर आगे बढ़ती रहीं और लोकप्रिय संस्था काँग्रेस की वरिष्ठ सदस्या बनती चली गयीं।

स्वराज्य-आन्दोलन के अन्तर्गत चलाये जाने वाले आन्दोलनों में वे पूरी सक्रियता से, निर्भयता और

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साहसपूर्वक भाग लेती थीं। जनता पर इनके असाधारण व्यक्तित्व का असामान्य प्रभाव पड़ता था। घटना उन दिनों की है जब राष्ट्रपिता बापू ने नमक कानून तोड़कर नमक बनाने का आह्वान किया था। ब्रिटिशकाल में नमक पर भी पाबन्दी लगा दी गई थी। इस पाबन्दी को तोड़कर गाँधी जी ने सत्याग्रह का एक प्रयोग किया था। श्रीमती चट्टोपाध्याय ने भी नमक सत्याग्रह में बढ़-चढ़कर भाग लिया। बताते हैं कि जब बम्बई के किसी इलाके में एक भी व्यक्ति नमक खरीदने को तैयार नहीं हुआ, तो श्रीमती चट्टोपाध्याय उस क्षेत्र में गयीं। साथ में उनके नमक की छोटी-छोटी पुड़ियाँ भी थीं। अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के आधार पर श्रीमती चट्टोपाध्याय ने कुछ ही देर के भीतर उस क्षेत्र में हजारों रुपयों का नमक बेच डाला।

बाद में जब सत्याग्रही स्वयंसेवक पकड़े जाने लगे तो कमलादेवी का भी नम्बर आया और जैसे ही उन्हें पता चला कि सत्याग्रही गिरफ्तार किये जा रहे हैं, तो वे तुरन्त ही वहाँ से निकल गयीं। लेकिन छुपे रहना अधिक समय तक सम्भव नहीं था। पुलिस ने उन्हें शीघ्र ही बन्दी बना लिया और जब वे न्यायालय में उपस्थित की गयीं तो देखा कि भारतीय न्यायाधीश अँग्रेजों का पक्ष लेकर अपने ही भाई-बन्धुओं पर कहर ढा रहा है। यह देखकर कमलादेवी आपे से बाहर हो गयीं। भरी अदालत में ही उन्होंने न्यायाधीश को बड़ी बुरी तरह लताड़ा। इसके बदले उन्हें अतिरिक्त दण्ड भी मिला।

जब वे पहली बार सींखचों के अन्दर पहुँची तो कुछ मित्रों ने कहा कि—आपको यहाँ रहते एक अर्सा बीत गया है, फिर भी आपके शरीर पर न कोई प्रभाव है और न मन पर। आप तो बचपन से सुख-सुविधाओं भरे वातावरण में पली हैं। इन परिस्थितियों में किस प्रकार प्रसन्न रह लेती हैं ?''

इन प्रश्नों को सुनकर उन्होंने बड़े ही मृदु स्वरों में कहा—''आपने अभी भारतीय महिला को पहचाना ही कहाँ है ? वह अबला ही नही दुर्गा और रणचण्डी-सी सबला भी है।''

सचमुच उत्साह, शौर्य और साहस के क्षेत्र में उनकी सानी नहीं थी और उनके शौर्य व साहस के कारण अँग्रेज सरकार भी घबराती थी। स्वतन्त्रभारत में संसद सदस्या भी रहीं और उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नारीजागरण के लिए भी काम किया। वे जब तक जीवित रहीं, हृदय में साहस और आशावादिता लेकर निरंतर भारत की युगों से शोषित नारियों के उत्थान में लगी रहीं। मृत्यु शैय्या पर भी जब लोगों ने उनसे पूछा—''आपकी अन्तिम इच्छा क्या है ?'' तो उनके मुख से यही निकला—''मैंने अपना अधिकांश जीवन भारतीय नारियों को शिक्षित, सभ्य और सुसंस्कृत बनाने मे लगाया है। प्रत्येक भारतीय नारी खरा सोना बन सके, मेरी यही इच्छा पूरी नहीं हुई है। अभी भी मेरी बहिनें शोषित और पीड़ित हैं। भगवान से, प्रार्थना है कि मुझे अगले जन्म में भी भारतीय-नारियों की दशा सुधारने के लिए भारतवर्ष में ही भेजे।''

निष्काम जनसेवी दुर्लभ विभूति—देवी माई

चौदह वर्ष की अल्पायु में देविकाबाई दुल्हन बनकर ससुराल आयीं। उस समय गंगोवा कुछ बीमार हुए और थोड़े-से समय के बाद ही वे चल बसे। भारतीय समाज में वधू-प्रवेश के समय कई अटकलें लगायी जाती हैं। सम्पन्नता और विपन्नता के कारण में बहू का अच्छा और बुरा पाँव पड़ा—ऐसा सोचा जाता है। ऐसी ही रूढ़िग्रस्त धारणा का शिकार यह परिवार भी हुआ। यद्यपि घर के सब लोग सुसंस्कृत थे, फिर भी रूढ़ियाँ तो रूढ़ियाँ ही ठहरीं। जिस घर में ये रूढ़ियाँ घुस जायें उसे बर्बाद कर देती हैं। अबोध बालिका को ताने सुनने पड़े। सभी परिजनों ने उसे तिरस्कृत किया—ऐसी कुलच्छनी ने घर में पाँव रखा है कि आते ही सब चौपट होने लगा।

एक दिन उनके पति रमानाथ को तेज ज्वर हुआ। जो बढ़ता गया, दुर्भाग्य से वे भी चल बसे। अब क्या था स्वजन-सम्बन्धियों ने उन्हें और भी तिरस्कृत करना आरम्भ कर दिया। सोलह वर्षीया देविका का सर्वस्व छिन गया। भारतीय समाज में स्त्रियों की बड़ी बुरी दशा है। उनका कोई अलग व्यक्तित्व और स्वतन्त्र सत्ता तो होती ही नहीं। एक आश्रय रहता है पति और 'वह' छिन जाय तो स्त्री बेचारी निर्जीव ही हो जाती है।

अपनी दुनिया उजड़ जाने के बाद देविका रानी ने अन्य स्त्रियों की तरह अनेक संत्रास देखे। व्यंग्य-बाण, तिरस्कार, अपमान, उपेक्षा तो जैसे सामान्य-सी बात है। असमय में वैधव्य कितना त्रासदायी है, यह तो कोई भुक्तभोगी ही जानती होगी। फिर भी देविका ने धैर्य नहीं खोया। प्राप्त दुःखों को उन्होंने परमात्मा का मंगल विधान माना और संतोष किया, यह विश्वास रखकर कि दुर्भाग्य के ये क्षण आगे कोई शुभ परिणाम लायेंगे।

उनका भाई हरिनाथ अपनी बहिन की इस दशा को सह नहीं सका और उन्हें अपने घर लिवा लाया। इस इरादे से कि अब कभी अपनी बहिन को ससुराल नहीं भेजेगा। भेजे भी तो क्यों, जो सहारा था, जिसके आश्रय की छत्रछाया थी वह तो टूट चुका था। घर लाकर हरिनाथ ने अपनी पत्नी सुभद्रा को अच्छी तरह समझा दिया कि मेरी बहिन को कोई असुविधा न हो।

परन्तु भौजाई की आँखों में ननद खटकने लगी। देविका रानी अपनी भावज के साथ गृहस्थी के हर कार्य में हाथ बँटाती। लेकिन सुभद्रा कोई न कोई मीन-मेख निकाल ही देती। हरिनाथ अपनी पत्नी को समझाते रहते। इस भाग्य की मारी का हमारे सिवा और है ही कौन !

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.४ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

तुम्हें इसकी सेवा करनी चाहिए, किसी प्रकार की दुःख-तकलीफ नहीं होने देना चाहिए। सुभद्रा इस पर बिगड़ उठती और पति को भी खरी-खोटी सुनाने लगती। इससे घर में कलह बना रहता। इसका कारण भी भावज की दृष्टि में देविका का आगमन था। "हँसती-खेलती गृहस्थी में इस अभागिन विधवा ने पैर रखकर हरे-भरे परिवार में कलह की आग लगा दी।" एकान्त में जब पति घर पर नहीं होता, सुभद्रा कहती। बेचारी देविका फिर भाई भी से शिकायत नहीं करती क्योंकि झगड़ा और बढ़ने की सम्भावना जो रहती थी।

सर्दियों के दिन आए। शीत लहर के कारण सुभद्रा के बच्चे बीमार होने लगे। उसका कुढ़ना और भी ज्यादा बढ़ गया। देविका को सुना-सुनाकर वह अपने बच्चों को पीटती और कहती—"जाने किस कलमुँही को देखकर मुआ मौत के मुँह में घुसा जा रहा है।"—सुभद्रा की बातों को सुनकर देविका सब कुछ समझ तो जाती परन्तु करे क्या ? बच्चा ज्यादा बीमार होने लगा तो उसका रोष फूट पड़ा। एक दिन अपने पति से कहने लगी—"इस कलमुँही ने जब से घर में पैर रखा है, यहाँ की शान्ति जाती रही।"

हरिनाथ ने धैर्य बँधाने के अंदाज में कहा—"किसी के पैर रखने से कुछ नहीं होता सुभद्रा।"

"होता क्यों नहीं ? ससुराल में तो अपने ससुर और पति को खा गयी है। अब मायके वालों को ही और खाना था।"

"सुभद्रा, मेरी बहिन सुनेगी तो क्या सोचेगी ? जरा सँभलकर जवान चलाओ।"

"सच कहती हूँ। जब से आयी है, तभी से मेरे बच्चे बीमार रहने लगे हैं।" हरिनाथ का धीरज जाता रहा और उसका हाथ उठ गया। पत्नी को कसकर तमाचा लगाया। रसोई में बैठी देविका रानी सब कुछ देख-सुन रही थी। उसे बड़ा क्षोभ हुआ और सोचने लगी—"पहले भैया और भाभी कितने प्रेमपूर्वक रहते थे। हँसती-खिलखिलाती गृहस्थी में उसके कारण विष घुल गया है। पति-पत्नी के मन-मुटाव का कारण मैं ही हूँ। इसलिए क्यों न इन लोगों के साथ रहना छोड़ दूँ।"

परन्तु कहाँ जाऊँ ? भैया से ही परामर्श करना ठीक रहेगा। एकान्त पाकर देविका रानी हरिनाथ से बोली—"भैया ! मैं देख रही हूँ कि मेरे कारण आप लोग सुखी नहीं हैं।"

भाई समझ गया, बोला—"नहीं बहिन, ऐसी बात नहीं है। यह तो तेरी भाभी है, तुच्छ विचार वाली है। तू इसकी चिन्ता न कर।"

"भैया मानो तो एक बात कहूँ। मेरे लिए कहीं रोजगार की व्यवस्था कर दो ताकि आप लोगों पर बोझ न लगूँ।"

बात भाई के समझ में आ गयी और उसने देविका को पास के शहर में नर्सिंग ट्रेनिंग के लिए भेज दिया। वहाँ देविका को रोगियों की सेवा-सुश्रुषा में बड़ा आनन्द मिलने लगा। बड़ी लगन और मनोयोग से उसने परिचर्या का प्रशिक्षण प्राप्त किया तथा परीक्षा में सबसे अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुई। थोड़ा और आगे बढ़ने की इच्छा हुई तो दाई का प्रशिक्षण लेने लगी।

परीक्षा प्रारम्भ होने में तीन माह शेष थे। प्रायोगिक प्रशिक्षण के लिए अन्य प्रशिक्षणार्थियों के साथ उन्हें बड़े हॉस्पीटल में भेजा गया। जहाँ की प्रधान थीं डॉ. मिस हेलन। इस अस्पताल में भारतीय रोगियों और गोरे मरीजों में बड़ा भेदभाव और पक्षपात बरता जाता था। यूरोपीय और भारतीय महिलाओं के लिए अलग-अलग वार्ड बने हुए थे। रंगभेद और पक्षपात का साम्राज्य था। देविका की देख-रेख में अस्पताल की एक प्रसूता हरिजन महिला प्रसव के बाद बीमार पड़ गयी। कमजोरी और रोगजन्य निर्बलता के कारण वह उठ भी नहीं सकती थी। शौचालय तक जाने में भी वह असमर्थ थी। इसलिए देविका ने यूरोपीय वार्ड से कमोड लाकर उसे शौच कराया।

यूरोपीय वार्ड की नर्सों ने इस घटना की शिकायत डॉ. हेलन से कर दी। वे आग-बबूला हो उठीं। देविका को अपने पास बुलाया और डाँटा-फटकारा। परन्तु देविका को यह पता नहीं चला कि उसका अपराध क्य है ? इस सम्बन्ध में पूछा तो मालूम हुआ कि यूरोपीय महिलाओं के उपयोग में आने वाले कमोड का प्रयोग भारतीय महिलाओं के लिए अनुचित है।

उन्होंने कहा—"इसमें अनुचित क्या है ? चमड़ी गोरी हो या काली, शरीर में खून तो वही लाल रहता है। प्राण तो एक ही परमात्मा का है।"

"जवान दराजी मत करो देविका, तुम्हें इसके गम्भीर परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं"—डॉक्टर ने कहा।

"मैं अनुचित से कभी सहमत नहीं हो सकती। चाहे मुझे कितने ही गम्भीर परिणाम क्यों न भोगने पड़ें।"

"अपनी अनुशासनहीनता के कारण तुम्हें एक वर्ष के लिए परीक्षा से निकाला जाता है।"—डॉक्टर ने अपराध का दण्ड सुनाया। जिन्दगी भर सिसक-सिसककर रोती हुई, अपने परिजनों के अत्याचारों को चुपचाप सहन करने वाली देविका रानी में इतना स्वाभिमान कहाँ से आ गया ? दण्ड की घोषणा होने के बाद डॉक्टर ने उसे क्षमा-प्रार्थना लिखने की सलाह दी। परन्तु स्वाभिमानिनी देविका ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और अपने भाई को सारी बातें खुलासा लिख दीं।

भाई यह जानकर बड़ा प्रसन्न हुआ कि ससुराल और मायके के परिजनों के अत्याचारों को सहने वाली स्त्री में इतना साहस पैदा हो गया है कि वह अब किसी भी अनुचित बात का प्रतिरोध करने की बात सोच सकती

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, विरोध कर सकती है। हरिनाथ ने देविका की बड़ी प्रशंसा की और लिखा कि एक वर्ष तक शहर में ही रहकर पढ़ना चाहो तो पढ़ो और घर आना चाहो तो आ जाओ। देविका अपने अभ्यास और अध्ययन में किसी प्रकार का व्यतिक्रम नहीं आने देना चाहती थी। सो भाई को शहर में ही रहने का निश्चय लिख दिया।

हरिनाथ पूरे वर्ष भर खर्च भेजता रहा। अगले साल अच्छे अंकों के साथ देविका ने परीक्षा पास की। पास हो जाने के बाद भाई ने एक मकान में पाँच पलंग लगवा कर देविका के लिए प्रसूति गृह खुलवा दिया। उस समय देहातों में न तो इस प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थीं और न ही साधन। प्रसव का कार्य फूहड़ और अशिक्षित दाइयाँ करवाती थीं, जिससे माता एवं बालक दोनों का स्वास्थ्य बिगड़ने का खतरा रहता था।

देविका का प्रसूति गृह खुलते ही लोकप्रिय हो गया। उनकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। निःस्वार्थ सेवा-भावना ने देविका को देवी माई बना दिया। हरिनाथ के एक धनी मित्र देवी माई से प्रभावित हुए और उन्होंने अपना पूरा मकान उन्हें दे दिया तथा अपनी आय का एक अंश नियमित रूप से 'प्रसूति गृह' की सहायतार्थ देने लगे।

स्थान और साधनों के सुलभ होते ही पाँच के स्थान पर पच्चीस बिस्तर लगवा दिए। अब तो जो लोग देवी माई से पहले घृणा करते थे वही उनके हाथ मजबूत करने के लिए आगे आने लगे। हरिनाथ की पत्नी सुभद्रा ने भी अपनी 'कलमुँही' ननद को दो हजार रुपयों की सहायता की। सच है दूसरों का मुँह ताकने वालों को कहीं भी सम्मान नहीं मिलता है। अपने पैरों पर खड़े होने वाले आत्मावलम्बियों का सम्मान हर कोई करता है।

धीरे-धीरे उनका प्रसूति गृह समृद्ध तथा सुविधा सम्पन्न होता गया। नागपुर सिविल लाइन्स में ऑपरेशन थियेटर और एक्स-रे साधनों से सम्पन्न एक विशाल प्रसूति गृह का निर्माण कराया गया। यहाँ उन्होंने रोगी महिलाओं और गरीब स्त्रियों की चिकित्सा एवं परिचर्या की समुचित व्यवस्था की। जो महिलाएँ वहाँ तक आ नहीं सकती थीं, उनकी देख-रेख के लिए देवी माई स्वयं उनके घर पहुँचती। दवाइयाँ बाँटतीं, पूछताछ करतीं। लोग उन्हें सचमुच अपनी माँ समझने लगे।

धीरे-धीरे उस अस्पताल की कीर्ति डॉ. मिस हेलन के कानों तक पहुँची। उस समय वे रिटायर हो चुकी थीं। अपने एक मित्र को साथ लेकर प्रसूति गृह देखने आईं। वे नहीं जानती थीं कि इस अस्पताल की नींव उनके ही द्वारा अपमानित और व्यर्थ ही दण्डित एक छात्रा ने रखी है।

आफिस में देवी माई को देखकर लगा—चेहरा कुछ पहचाना है। देविका ने डॉ. हेलन को पहचान लिया। डॉक्टर ने पूछा—"लगता है मैंने आपको कहीं देखा है।"

"मैं आपकी वही अभागिन शिष्या हूँ—देविका"—देवी माई ने कहा।

मिस हेलन की स्मृतियाँ जाग उठीं। बीते जीवन की यादों के पन्ने खुलते गए और आँखें सजल हो उठीं। एक कर्त्तव्यनिष्ठ छात्रा के प्रति अन्याय हुआ था। वे क्षमा माँगने लगीं। देवी माई को लगा कि वे शर्म से गड़ी रह गयीं और विनीत भाव से उन्होंने डॉक्टर के चरण छू लिए, बोलीं—"मुझे और शर्मिंदा मत करो।"

डॉक्टर चली गयीं। दूसरे दिन डॉक्टर का चपरासी एक लिफाफा लाया जिसमें डॉ. हेलन की वसीयत थी। जिसके अनुसार उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति देविका के नाम लिख दी थी। देवी माई की आँखों में आँसू आ गए।

नागपुर सिविल लाइन्स में स्थित विशाल प्रसूति गृह, जिसकी गणना देश के गिने-चुने अस्पतालों में की जाती है, के पीछे देवी माई की निष्ठा ही काम कर रही है।

संघर्ष के शीश महल में दफन—

ताहिरा

"मुट्ठी भर लोग राष्ट्र की सम्पत्ति का मनमाना उपभोग करें और शेष प्रजा विषमता के अन्तर्ज्वाला में जले, यह इस देश के राजा व प्रजा दोनों को कलंक की बात है, पर उससे भी अधिक कलंक की बात है, मातृत्व की विडम्बना। समाज निर्मात्री नारी दासता की जंजीरों में जकड़ी है। पुरुष उसे भोग-विलास की सामग्री मानकर हीनता का व्यवहार करते रहें, समाज में, परिवार में उसका कोई अधिकार नहीं। उस अशिक्षा और अन्ध-विश्वास के अन्धकार से निकलने नहीं दिया जा रहा है, मैं चाहता हूँ कि तुममें से ऐसी नारियाँ निकलकर आयें और संघर्ष करें, ताकि वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाओं से, ताकि समाज में स्त्री को भी पुरुषों की तरह ही समान अधिकार और विकास की सुविधायें मिलें। उसे हीन मानकर विज्ञापन में न घसीटा जाय।"

ईरान के प्रसिद्ध समाज सुधारक बाबमुहम्मदअली बाब के यह शब्द सारे राज्य में गूँज उठे। जहाँ भी गया उसने सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया। कुल ७ वर्ष ही उसे मिले इस कार्य के लिए और अन्त में उसे फाँसी दे दी गई, पर वह चिल्लाता ही रहा कि महिलाओं को अपनी स्थिति समझनी ही चाहिए। कुछ साहसी महिलाओं को आगे आकर संघर्ष करना ही चाहिए। उसे फाँसी हो गई, ठीक—पर क्या वह आवाज निरर्थक चली गई ?

एक दिन ईरान की शाही मसजिद पर जुमे की नमाज आयोजित की गई थी। हजारों रईस और मौलवी अगली पंक्तियों में और उनके पीछे चिथड़ों में बँधे अनेक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

निर्धन जब नमाज पढ़ने की तैयारी कर ही रहे थे, तभी सामने ऊपर की छत से काले वस्त्रों में लिपटा एक बोझ नीचे जमीन पर आ गिरा। बोझ नहीं—यह तो ताहिरा थी—एक सम्पन्न परिवार की स्त्री—उसने बुरका एक ओर निकाल फेंका और कड़ककर बोली—ईश्वर की उपासना (नमाज) पढ़ने वालो, अन्ध भक्तो क्या उपासना (नमाज) में आप लोग संसार भर के लोगों में एकता और भाईचारे की प्रतिज्ञा नहीं करते ? यदि हाँ तो क्या तुम्हारे आदर्श पुस्तकों और पाठ तक ही सीमित रहेंगे। फेंक दो ऐसे धर्म ग्रन्थों को जिनका पाठ करके आपके अन्तःकरण प्रकाशित नहीं होते। जब तक समाज में छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष का भेद-भाव बना है, तुम्हारी उपासना झूठी है। सच्चे धार्मिक हो तो हम पर लाद रखी हैं जो कुरीतियाँ, पहले उन्हें तो दूर करो।

ऐसा लगा कि भूचाल आ जायेगा। नारी जब तक सहन करती है, तभी तक। वह भी आखिर अपना अपमान कब तक सहनकर सकती है। उसे दहेज, पर्दा, अशिक्षा, धार्मिक कर्मकाण्डों में अनधिकार और अश्लील चित्रों एवं साहित्य में अगुआ बनाने का अभिशाप कब तक चल सकता है ? वह जाग गई तो फिर कोई भी शक्ति उसके प्रवाह को रोक नहीं सकती।

वहाँ खड़े हजारों लोग कसमसा उठे, पर शाही मस्जिद को पल भर में सेना के संरक्षण में ले लिया गया। सैकड़ों लोग बन्दी बना लिये गये। यह युवती ताहिरा जो महिलाओं की प्रतिनिधि बनकर सर्वप्रथम बलिदान के लिए कूद पड़ी थी—बन्दिनी बना ली गई। पति आया, बाबा आया। दोनों उसके लिये रोने लगे तो उसने कहा—आप लोग रोयें नहीं, मैं चाहती हूँ कि मुझे मृत्यु दण्ड मिले ताकि आप लोग मेरी पीड़ा और समाज की आवश्यकता को समझें और उसके लिए कुछ करने को उद्यत हों।

शाह ने उसे मृत्युदण्ड दिया। ऐसा-वैसा मृत्युदण्ड नहीं, एक गधे की पूँछ पर बाँधकर उसे सड़कों में घसीटा गया और उसे जीवित धधकती अग्नि में झोंक दिया गया।

ताहिरा दफन हो गई पर क्या सुधार-आन्दोलन रुका, ताहिरा के बलिदान से प्रेरित होकर हजारों स्त्रियाँ कूद पड़ीं और उन्होंने ईरान में महिलाओं के विकास के अधिकार प्राप्त कर ही लिये। हमारे देश में तो संघर्ष अपनी कुरीतियों से ही करना है, तो भी ताहिरा की आवाज सुनने को कोई महिला तैयार नहीं, भले ही उसकी सामाजिक स्थिति कितनी ही दयनीय क्यों नहीं ?

नारी जागरण को समर्पित—
श्रीमती धनवन्ती रामराव

क्वीन मेरी कॉलेज की अध्यापिका का विवाह भारतीय विदेश सेवा में नियुक्त एक उच्च पदाधिकारी के साथ सम्पन्न हुआ, तो उसने अपनी इस सेवा से त्याग-पत्र प्रस्तुत कर दिया। अब तक तो वह अपनी आर्थिक आवश्यकताओं के लिए यह नौकरी किए हुए थी। किन्तु अब जब पति विदेश सेवा में उच्च पदाधिकारी के रूप में पर्याप्त धनोपार्जन कर रहे थे, तो उसे नौकरी से चिपके रहना उचित नहीं लगा। पुरुष उपार्जन करता है। अतः महिलाएँ भी उपार्जन में उनसे प्रतिद्वन्द्विता करे इसमें कौन-सी बड़ी बात है ? महिलाओं का पुरुषों के समान ही प्रत्येक क्षेत्र में दखल रखना और उन्हीं तरह उपार्जन करना समानता की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम तो है, पर उसी से समानता नहीं प्राप्त की जा सकती। अब जब वह पति की पर्याप्त आय के कारण उपार्जन के दायित्व से सर्वथा मुक्त है तो क्यों न अपने जीवन का सदुपयोग महिला समाज को जाग्रत करने में करें। यही निश्चय कर वह पूरी तरह नारी जागरण के लिए कटिबद्ध हो गई। यही महिला अपने पचास वर्ष के महिला नेत्री के कर्तृत्व के कारण लेडी रामराव के नाम से विख्यात है।

श्रीमती धनवन्ती रामराव का जन्म १० मई सन् १८९३ हुबली के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। उनके पिता कश्मीरी थे। धनवन्ती के जन्म के उपरान्त वे इलाहाबाद आकर बस गये। मद्रास विश्वविद्यालय से उन्होंने एम. ए. किया। इस प्रकार उनका परिचय क्षेत्र काफी विस्तृत हो गया। उन्हें उत्तर तथा दक्षिण भारत की महिलाओं की दशा को निकट से देखने का अवसर मिला था। अशिक्षा और रूढ़िवादिता के पंक में फँसी हुई नारी शक्ति की दुर्दशा को उन्होंने अपने ज्ञान के प्रकाश में देखा, तो उनका अन्तःकरण उन्हें नारी-समाज की प्रगति के लिए कुछ करने को विवश करने लगा। इसी कारण उन्होंने अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व विकसित करने के लिए क्वीन मेरी कॉलेज, मद्रास में प्राध्यापिका की नौकरी करली तथा अपनी नौकरी से बचा हुआ समय वे समाज सेवा, विशेषकर महिला जागरण में लगाने लगी।

१९१७ में ही वे 'विमेन-इण्डियन-एसोसियेशन' की सदस्या बन गयीं। यह संगठन उस समय सद्यारोपित पादप की तरह ही अविकसित था। इस प्रारम्भिक स्थिति में उनका इसके विकास में बहुत योगदान रहा। यहीं से उनके सामाजिक जीवन की नींव पड़ी, जिस पर उनके व्यक्तित्व की भावी अट्टालिका निर्मित हुई। महिला मताधिकार की माँग को लेकर तत्कालीन वायसराय से मिलने वाले महिला-प्रतिनिधि-मण्डल में भी उन्हें सम्मिलित किया गया था। १९२७-२८ में 'शारदा बिल' के समर्थन में बनाई गयी 'अखिल-भारतीय-बाल-विवाह निरोध-समिति'

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की भी वे सदस्या रहीं। परदा विरोधी महिला-समिति की सचिव के रूप में उन्होंने नारी को बन्धनों की कारा से मुक्त करने का प्रयास किया।

विवाह के पहले तो उन पर अपनी नौकरी का दायित्व भी था। विवाह के पश्चात् वे तो पूरी तरह समाज-सेवा के क्षेत्र में ही कूद पड़ी थीं। यों नौकरी करने के पीछे भी उनका उपार्जन लक्ष्य गौण व समाज सेवा का हेतु मान अध्यापकी करना मुख्य दृष्टिकोण रहा था। अपनी छात्राओं को वे भावी जीवन में व्यक्तिगत एवं पारिवारिक दायित्वों को निभाते हुए समाज-सेवा और नारी उत्थान का कार्य करने की प्रेरणाएँ देती रहतीं।

उन्होंने भी अपने पचास वर्ष के समाजसेवी जीवन में कभी पारिवारिक दायित्वों की उपेक्षा नहीं की और न ही उन्हें अपनी समाज-सेवा में बाधक माना। एक बार एक लेखिका ने उनसे पत्र द्वारा कुछ प्रश्न पूछे। उत्तर में उन्होंने इतना ही लिखा ''इन दिनों मेरे पति अस्वस्थ हैं। उनके स्वस्थ होने तक पत्र का पूरा उत्तर देने में असमर्थ हूँ। उनकी सेवा करना मेरा प्रथम कर्त्तव्य है।'' उनके पति के स्वस्थ होते ही उस लेखिका के सभी प्रश्नों का उत्तर उन्होंने दिया। आजकल जैसी कि कुछ तथाकथित समाज सेवी महिलाओं में यह प्रवृत्ति चल पड़ी है कि उन्हें महिला सभा में भाषण देने जाना है, तो घर-गृहस्थी का सारा भार पति पर डाल दिया जाता है। समाज सेवा करती हैं इसलिए अपने बच्चों को आया—नौकरों के भरोसे छोड़ देती हैं। यह प्रवृत्ति तो उल्टे समाज को निन्दनीय ठहराती है। वे इस प्रकार की लोक दिखाऊ समाज सेवा में विश्वास नहीं करती थीं। मजा तो तब है जब परिवार का भार भी उठाया जाता रहे और समाज-सेवा का क्रम भी न टूटे। श्रीमती धनवन्ती का यह उदाहरण उन महिलाओं को समाज सेवा में प्रवृत्त करने के लिए पर्याप्त है, जो पारिवारिक दायित्वों के बहाने बनाकर अपने सामाजिक दायित्व से मुकरती हैं तथा उन महिलाओं के लिए भी पर्याप्त है, जो समाज सेवा के नाम पर पारिवारिक दायित्वों की उपेक्षा करती हैं। यह असन्तुलन ठीक नहीं कहा जा सकता।

१९२९ से १९३८ तक उनके पति इंग्लैण्ड में नियुक्त रहे। वहाँ भी उनके महिला-जागरण के कार्य-कलाप यथावत् चलते रहे, वहाँ रहकर उन्होंने लन्दन में अखिल-भारतीय-महिला-सम्मेलन का नेतृत्व किया। इंग्लैण्ड में स्थान-स्थान पर उन्होंने भारतीय महिलाओं की स्थिति व प्रगति पर व्याख्यान दिये। वहाँ की जागरूक महिलाओं से भारत आकर काम करने, भारतीय महिलाओं की प्रगति के लिए आर्थिक सहयोग देने की अपील की। वहाँ के महिला संस्थानों को उन्होंने देखा, उनकी कार्य-पद्धति को समझा। १९२३ में 'बर्लिन में हुए अन्तर्राष्ट्रीय महिला मताधिकार लीग' में भारतीय-महिला-प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व किया। वे जहाँ भी गयीं उनके प्रखर व्यक्तित्व, विशद्ज्ञान व तेजस्वी वाणी ने लोगों के सामने भारतीय-नारी का जाग्रत स्वरूप प्रस्तुत किया। डरबन में भारतीय-महिला-संघ की स्थापना का श्रेय इन्हीं को दिया जा सकता है।

वे उन अग्रणी महिलाओं में गिनी जाती हैं, जिन्होंने नारी को बच्चे जनने व खाना पकाने वाली बन्दिनी व पुरुष से प्रतिद्वन्द्विता कर उपार्जन करने वाली श्रमिक से पृथक् एक गौरवपूर्ण पद दिया। वह पद था समाज को संचालित करने का सम्मानित पद, जो नारी की गौरव-गरिमा के उपयुक्त ही है। १९३८ तक तो उनको इतनी प्रसिद्धि मिल गयी कि भारत सरकार ने उन्हें 'कैसरे हिन्द' स्वर्ण पदक से विभूषित किया। यह पदक बंकिघम पैलेस में स्वयं जार्ज षष्ठम ने उन्हें प्रदान किया।

उनका नाम ''सेव द चिल्ड्रन कमेटी'' ग्रामीण वाहन स्वास्थ्य कमेटी की अध्यक्षा के रूप में भी जुड़ा हुआ रहा। १९४६-४७ में उन्हें अखिल-भारतीय-सम्मेलन की अध्यक्षा चुना गया। वे केवल पद को ही विभूषित नहीं करती रहीं वरन् उन्होंने अपने कार्य-कलापों के बल पर इन पदों का निर्वाह भी किया था। १९४३-४४ के 'बंगाल दुर्भिक्ष' के समय उन्होंने दिन-रात अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए जन-जन के आगे झोली फैलायी और उन्हें सहायता का अभाव खटकने न दिया।

भारतवर्ष में सर्वप्रथम परिवार-नियोजन कार्यक्रम आरम्भ करने का श्रेय भी उन्हीं को है। विश्व में परिवार नियोजन का सूत्रपात करने के पीछे जिस प्रकार मार्गरिट सेंगर का नाम जुड़ा है। वैसे ही भारत में इसकी प्रणेता धनवन्ती रामराव ही मानी जाती हैं। भारत जैसे रूढ़िवादी देश में परिवार नियोजन की बात कहना एक विप्लव खड़ा करने जैसी बात थी। सन्तान को भगवान की देन मानना—पुत्र को स्वर्ण दिलाने व मोक्ष दिलाने का हेतु मानने आदि की भ्रान्त-धारणाओं के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस कोई बिरला ही कर सकता है। वह इस साहसी महिला ने किया।

प्रजनन की कष्टसाध्य व स्वास्थ्य क्षीण कर देने वाली प्रक्रिया में बार-बार गुजरकर नारी अपना स्वास्थ्य, सौन्दर्य, शारीरिक, मानसिक क्षमता तो गँवाती ही है। उनका पालन-पोषण भी ठीक प्रकार नहीं हो पाता। ऐसी विडम्बना को बन्दरी के मरे बच्चे की तरह छाती से चिपकाए रखना कोई बुद्धिमत्ता नहीं थी। उन्होंने इस अन्धाधुन्ध सन्तानोत्पादन का विरोध किया। यह व्यक्तिगत कठिनाइयों की जननी ही नहीं परिवारद्रोह, समाजद्रोह व देशद्रोह भी है। जनता चाहे उनकी आवाज को बुरा माने, उन्हें लाँछित करे वह तो उसके विरोध में परिवार नियोजन का प्रणयन करेंगी ही।

महात्मा गाँधी भी परिवार नियोजन के समर्थक थे किन्तु उनका जोर ब्रह्मचर्य पर था। सीधा-सच्चा तरीका होते हुए भी यह ब्रह्मचर्य का नुस्खा जन-सामान्य मान लें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यह सम्भव नहीं था। रोग सामान्य स्थिति का हो तो उसे साधारण दवा से ठीक किया जा सकता है, आहार के संयम से उसे रोका जा सकता है। किन्तु पाँव में भयंकर व्रण हो जाने—उसमें विष उत्पन्न हो जाने की आशंका उत्पन्न हो जाने की स्थिति में जीवन-रक्षा के लिए चिकित्सक शल्य-क्रिया द्वारा टाँग ही काट देते हैं। हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि की यही भयंकर स्थिति थी। ऐसी दशा में जन-सामान्य के लिए कृत्रिम उपकरणों द्वारा परिवार नियोजन सीधा-सच्चा मार्ग न होते हुए भी उपयोगी था। अतः उन्होंने उसका प्रचार आरम्भ कर दिया। १९४९ में उन्होंने एक स्वैच्छिक सेवा-संगठन के रूप में "अखिल भारतीय परिवार नियोजन संघ" की स्थापना की। अपने सीमित साधनों से ही इस संगठन ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। इसकी स्थापना के कारण उन्हें यत्र-तत्र आलोचनाएँ भी सुननी पड़ीं। किन्तु वे धीर भाव से उन्हें सुनती गयीं व काम करती गयीं। कुछ वर्ष बाद ही भारत सरकार ने इसे राष्ट्रीय समस्या मानकर सरकार ने यह दायित्व अपने कन्धों पर ले लिया। अब उनका यह कार्यक्रम पर्याप्त विस्तारे पा चुका है। उनकी इस संस्था को श्रीमती उषाबाई वाडिया जैसी सहयोगिनी मिली, जो निरन्तर प्रगति ही करती गयीं।

१९६३ से वे "इण्टर नेशनल पेरेंटहुड" नामक अन्तर्राष्ट्रीय परिवार-नियोजन संस्था की अध्यक्षा रहीं, उनकी ख्याति विश्व-स्तर तक फैल चुकी थी, फिर भी वे भारतीय संस्थाओं की ओर पूरा-पूरा ध्यान रखती रहीं, वे 'सेण्ट्रल बोर्ड ऑफ फेमिली प्लानिंग' की सम्मानित सदस्या व सरकारी योजनाओं की मूल्यांकन समिति की उपाध्यक्षा रह चुकी थीं। उनका सारा जीवन राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक संस्थाओं को समर्पित रहा है। उन्हें कई बार इन सेवाओं के कारण सम्मानित भी किया गया। १९५५ में वे 'अल्बर्ट एण्ड मेरी लस्कर एवार्ड' से सम्मानित की गयीं। १९४९ में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्म-भूषण' उपाधि से विभूषित किया।

इतना सम्मान पाने, ख्याति पाने के बाद भी उनमें रंच मात्र भी गर्व नहीं आया था। वे स्वभाव से मिलनसार, मधुर व सुरुचि सम्पन्न थीं। वृद्धावस्था में भी उन पर स्वास्थ्य की चमक तथा समाज सेवा का परितोष झलकता रहता था। वे जितनी कर्मनिष्ठ थीं, उतनी ही लोकप्रिय भी। उन्होंने समाज की जो सेवा की है वह भुलायी नहीं जा सकती। उनका हम पर जो ऋण है, उसे उनके पद-चिन्हों पर चलकर ही चुकाया जा सकता है।

नारी जागरण की अग्रदूत—
श्रीमती उर्मिला शास्त्री

मेरठ शहर का प्रसिद्ध नौचन्दी मेला। घर की चहार दीवार में बन्द रहने वाली मातृशक्ति जब राष्ट्रप्रेम से प्रेरित होकर बाहर निकली, तो लोग देखते ही रह गये। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के लिये विलायती कपड़े की दुकान पर जब इन देवियों ने धरना दिया, चौदह-चौदह घण्टे तक पिकेटिंग की, तब परिणाम यह हुआ कि अस्सी प्रतिशत बिक्री बन्द रही। मेरठ की महिलाओं के इस साहस से भारत के नारी-समाज में एक जागृति फैली। इस सोयी नारी-शक्ति को जगाने का श्रेय श्रीमती उर्मिला शास्त्री को दिया जाएगा।

उर्मिला-जी का जन्म कश्मीर के श्रीनगर में २० अगस्त, १९०९ को हुआ था। इनके पिता जाने-माने ठेकेदार थे। ये प्रगतिशील विचारों के धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे।

स्कूली-शिक्षा इन्होंने हिन्दी मिडिल तक ही पाई थी। ज्ञानार्जन की भूख ने इन्हें चुप नहीं बैठने दिया। घर पर ही वे अध्ययन करने लगीं। संस्कृत तथा अँग्रेजी का अच्छा ज्ञान इन्होंने घर पर ही प्राप्त कर लिया था। ये धर्म-ग्रन्थों को बड़े चाव से पढ़ती थीं तथा उनके आदर्शों को अपने जीवन में ढालने का प्रयास करती थीं। इन्होंने स्त्री जाति की वर्तमान दशा को देखा, तो उसे धर्म शास्त्रों में बताये गये उसके स्वरूप से बहुत मिला पाया। उन्होंने निश्चय किया कि मैं नारी समाज को जगाऊँगी।

पंजाब विश्वविद्यालय की 'प्रभाकर' परीक्षा स्वाध्यायी छात्रा के रूप में उत्तीर्ण करने के बाद इन्होंने इण्टर पास किया और अपने ध्येय पथ पर अग्रसर होने का शुभारम्भ श्रीनगर की आर्य कन्या पाठशाला की मुख्याध्यापिका बनकर किया। अध्यापन का कार्य ये अपनी जीवन साधना समझकर करती थीं। इसका एक अनुपम उदाहरण है कि ये अपने विवाह के दिन भी पाठशाला से अनुपस्थित नहीं रहीं।

अपना देश भारत उन दिनों विदेशियों के आधीन था। पराधीनता से मुक्त होने के लिये उर्मिलाजी का हृदय छटपटाता था। उन्होंने अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि वे किसी संकीर्णमना व्यक्ति से विवाह करके अपने ध्येय पथ में रोड़ा नहीं अटकाएँगी। भले ही आजीवन उन्हें अविवाहिता ही क्यों न रहना पड़े।

गाँधीजी के नेतृत्व में असहयोग-आन्दोलन की धूम मच रही थी। भावनाशील उर्मिला जी भला इस हवा से अछूती कैसे रह जातीं ? उन्होंने नारी वर्ग में चेतना फूँकने का संकल्प लिया। इन्होंने अपने सभी विदेशी वस्त्रों में आग जला दी, अब खादी उनके तन-मन की शोभा बढ़ाने लगी थी।

इनके विचारों तथा रहन-सहन से प्रभावित हो इनके साथ की एक अध्यापिका कहने लगी—"आपके विचार तो बहुत ऊँचे हैं। महिलाओं में जागृति आनी ही चाहिये। पर महिला-समाज युगों-युगों से पददलित रहा है, हीन भावना उसके रक्त-माँस में घुल चुकी है, उससे भला आप मुक्त कैसे कर लेंगी ?"

इस प्रश्न का उत्तर उर्मिला जी ने इन शब्दों में देकर उसे समझाया—"यह आवश्यक नहीं कि जो नीचे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की ओर जा रहा है, वह ऊपर उठना ही नहीं चाहेगा। जमीन पर फेंकी गेंद भी फिर उछलती है। जड़ वस्तुएँ भी इसी तरह प्रभावित होती हैं, तो चैतन्य मनुष्य क्यों न उठेगा ? हम सोये ही रहें और कहें कि उठना मुश्किल है तो यह कोई बात नहीं होती।'' उर्मिला जी का यह धैर्य देखकर वह अध्यापिका भी इनकी सहयोगिनी बन गई और भविष्य में भी इसी प्रकार उनकी सहयोगिनियों की संख्या बढ़ती ही गई।

यदि कोई आगे चलने वाला साहस कर ले तो पीछे चलने वाले तो मिल ही जाते हैं। उर्मिला जी आगे बढ़ीं तो अन्य महिलाओं ने उनका साथ दिया। महिला स्वयं सेविकाओं का एक दल उर्मिला जी के नेतृत्व में पुरुषों के समकक्ष ही स्वतन्त्रता-संग्राम में कूद पड़ा।

इन आन्दोलनों के माध्यम से वह प्रोफेसर धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री के सम्पर्क में आई। उनके विचार तथा कार्यों को देखकर उर्मिला जी को वे उपयुक्त जीवन साथी जँचे। दोनों एक ही पथ के पथिक थे। ९ अक्टूबर, १९२९ को ये दोनों विवाह सूत्र में बँध गये। इस प्रकार अन्तर्जातीय विवाह उन दिनों प्रचलित नहीं थे। उर्मिला जी का यह सराहनीय कदम था।

समाज-सेवा की लगन तो पहले ही लगी हुई थी। अब तो उन्होंने पूर्णरूप से इसी जीवन को अपना लिया था। उपार्जन की चिन्ता तो अब उन्हें रही नहीं थी।

विधवाओं के आँसुओं से भारत माता का आँचल भीग उठा था। उसे जीवित होते हुए भी मौत को पीठ पर ढोना पड़ता था। इस दीन-हीन दशा में पड़ी मातृ-शक्ति का उद्धार करने के लिये श्रीमती उर्मिला ने कमर कस ली। उन्होंने मेरठ की महिलाओं को इस अन्याय का प्रतिकार करने के लिये एक सूत्र में पिरोकर एक मजबूत संगठन खड़ा किया। जिसका काम इसी प्रकार की विधवाओं का पुनर्विवाह कराना था तथा अपने आपको जगाना था।

उन दिनों पुरुषों के सभा-सम्मेलन तो हुआ करते थे किन्तु महिलाओं के नहीं होते थे। महिलाएँ जाग उठी हैं इसका, बोध कराने के लिये ३० जनवरी, १९३० को मेरठ में एक विशाल महिला-सम्मेलन का आयोजन किया और उसकी अध्यक्षा के रूप में विचारोत्तेजक भाषण दिया। जिसमें महिलाओं को जगाने का उद्‌बोधन दिया। उन्हें अपने पाँवों पर खड़े होने तथा अपने अधिकारों के लिये संघर्ष की प्रेरणा दी।

समाज-सुधार के साथ-साथ राजनैतिक स्वतन्त्रता पाने के लिये किये जाने वाले आन्दोलन में भी इनका महिलादल सक्रिय भाग लेने लगा था, महिलाओं का दल इनके नेतृत्व में बाजार-बाजार में निकल पड़ता तथा विदेशी वस्तुओं के लिये दुकानों पर धरना देता। महिलाओं की इस नैतिक शक्ति के आगे दुकानदार हार जाते।

यह टोली जब प्रतिदिन मेरठ के बाजार में निकलने लगी, तो मेरठ में विदेशी वस्तुएँ बिकना बहुत कम हो गया। मेरठ की महिलायें भारत में इस काम में अग्रणी रहीं। लोग इन जागृति शक्तिस्वरूपा महिलाओं को देखकर आश्चर्य करते थे। इसका यह परिणाम हुआ कि ७-८ दुकानदारों को छोड़कर शेष सब व्यापारियों ने अपनी विदेशी वस्तुओं की सील करवा लिया।

महात्मा गाँधी की गिरफ्तारी के विरोध में मेरठ में ५ मई, १९३० को एक विशाल जुलूस निकाला जो लगभग पौन मील लम्बा था तथा उसमें पाँच हजार महिलाओं ने भाग लिया। इसका व्यापक प्रभाव पुरुषों पर भी पड़े बिना न रहा, इसका परिणाम यह हुआ कि उस दिन ३४ स्थानों पर सभाएँ हुईं और २२०० व्यक्तियों ने खादी पहनने का संकल्प किया।

इन्होंने देखा कि केवल नगरों में ही जागृति फैलाने से विशेष प्रभाव उत्पन्न नहीं होने वाला है। भारत गाँव प्रधान देश है। देश की ८० प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। इतनी बड़ी जनशक्ति को जगाना आवश्यक है। आस-पास के गाँवों में जाकर वहाँ स्वतन्त्रता संग्राम के लिये जनमत तैयार करना तथा संग्राम के लिये सैनिक जुटाने का काम करने में इन्होंने रात-दिन एक कर दिया।

बहादुरगढ़, देहरादून तथा मुजफ्फरनगर में इन्होंने ओजस्वी भाषण दिये, उसका परिणाम यह हुआ कि हजारों लोग देश के लिए अपने पारिवारिक एवं व्यक्तिगत सुखों को छोड़कर आन्दोलन करने के लिए उठ खड़े हुए।

उर्मिला जी के इस दुर्गा रूप को देखकर ब्रिटिश सरकार इन्हें बन्दी बनाने को तैयार बैठी थी पर उसे कोई मार्ग नहीं मिल रहा था। १६ जुलाई, १९३० को मेरठ के प्रसिद्ध नेता श्री प्यारेलाल शर्मा गिरफ्तार कर लिये गये। शर्माजी की गिरफ्तारी के विरोध में १७ जुलाई को एक विशाल आम सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में उर्मिला जी ने ब्रिटिश शासन की तीव्र भर्त्सना की। दूसरे दिन प्रातःकाल इन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। न्यायालय ने इन्हें छः महीने की सजा दी।

नारी जाति की हीन दशा के लिये उनके हृदय में बड़ा दर्द था। वह पीड़ा ही थी, जो इन्हें सदा कर्मरत रखती थी। बिना रुके, बिना थके पूरे नगर तथा आस-पास के गाँवों में प्राण फूँकने का कार्य करती थीं। वह नारी को अपने गौरवमय पद पर प्रतिष्ठित देखना चाहती थीं।

वेश्या भी नारी ही होती है। उनके प्रति भी उर्मिलाजी के मन में वैसा ही स्थान था जैसा कि अन्य नारियों के प्रति होता है। उन्होंने मेरठ की वैश्याओं की सभा में डेढ़ घण्टे तक भाषण दिया। इनके भाषण का यह प्रभाव हुआ कि वे रोने लगीं। पश्चाताप के इन आँसुओं में उनकी दुष्प्रवृत्तियाँ बह निकलीं। उन्होंने शराब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का त्याग किया तथा खद्दर पहनने का संकल्प किया। उस समय इस तबके में जाकर भाषण देना एक क्रान्तिकारी कदम था।

अपने तीन छोटे-छोटे बालकों तथा पति को अकेले छोड़कर जेल की सींखचों में बन्द रहने पर उनका मातृ हृदय चीत्कार कर उठा पर होठों पर मुस्कान ही बरसती रही, चेहरे पर शिकन नहीं आयी। उर्मिला जी मोम से भी नरम और पत्थर से भी कठोर बन सकती थीं। अपने कैन्सर के ऑपरेशन के समय में भी उन्होंने क्लोरोफार्म नहीं ली तथा दर्द को हँसते हुए सह लिया।

१९३७ में उन्होंने मेरठ में एक महिला दस्तकारी स्कूल की स्थापना की। आरम्भ में इस स्कूल की अध्यापिकाओं और प्रबन्ध का खर्च उन्होंने अपनी ही जेब से दिया। तत्पश्चात् कुछ परिचितों का सहयोग मिलने लगा। इसकी प्रगति देखते हुए सरकारी सहयोग भी मिलने लगा। इस प्रकार अल्पकाल में ही यह छोटा-सा स्कूल प्रगति कर गया। आज यह स्कूल "उर्मिला महिला दस्तकारी स्कूल" के रूप में उर्मिला जी के स्मारक के रूप में कार्य कर रहा है।

१९४२ के सत्याग्रह-आन्दोलन में फिर इन्हें जेल जाना पड़ा। छः महीने के कारावास तथा निरन्तर श्रम करने के कारण इनका स्वास्थ्य जर्जर हो चुका था। जब ये जेल से छूटकर आई तो अस्वस्थ थीं, फिर भी इनका आन्दोलनों में भाग लेना नहीं छूटा। फलस्वरूप इनकी हालत बहुत बिगड़ गई। इन्हें कैन्सर हो गया। ऑपरेशन व पर्याप्त उपचार भी इनके प्राण न बचा सके। ६ जुलाई, १९४२ को इनका देहान्त हो गया।

नारी-जागरण व राष्ट्र-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत उर्मिला जी का यह जीवन भारतीय-नारी का जीवित जाग्रत रूप है। अपने छोटे-से जीवन में इतना बड़ा काम करके उन्होंने बता दिया कि नारी किसी भी दृष्टिकोण से महत्त्वहीन व कमजोर नहीं हैं। ऐसी जाग्रत नारियाँ समयानुकूल लक्ष्य निर्धारित कर कर्म-क्षेत्र में उतर पड़ें तो इस धरा को स्वर्ग बनते देर न लगे।

साक्षरता की देवी—
श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख

१९३३ में ग्रामीण क्षेत्र की एक छात्रा ने आन्ध्र विश्वविद्यालय विशाखापतनम् में उच्च अध्ययन के लिए प्रवेश लेने के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत किया। किन्तु उसे प्रवेश नहीं मिला। इसका कारण उस छात्रा की शैक्षणिक व चारित्रिक न्यूनता नहीं वरन् वहाँ कन्या छात्रावास का न होना था। इसका उस छात्रा के मन पर बहुत प्रभाव पड़ा किन्तु वह भी मन मारकर बैठने वाली नहीं थी। वह संकल्प की धनी थी। परिस्थितियों के सामने झुकना उसने नहीं सीखा था वरन् परिस्थितियों से जूझते हुए पथ-प्रशस्त करना सीखा था। बने बनाए मार्ग पर तो हर कोई चल लेता है। मजा तो तब है, जब नया मार्ग बनाया जाय।

दूसरे ही दिन इस दृढ़मना छात्रा ने समाचार-पत्र में उक्त आशय का विज्ञापन प्रकाशित कराया कि वह विशाखापतनम् में पढ़ने की इच्छुक छात्राओं के लिए छात्रावास खोल रही हैं। जो लड़कियाँ प्रवेश लेना चाहें उनसे तुरन्त सम्पर्क करें। इस विज्ञापन को पढ़कर बारह लड़कियाँ जो छात्रावास में रहने की इच्छुक थीं, उनसे मिलीं। उन दिनों उस क्षेत्र में लड़कियों का पृथक् रहना लोग बुरा मानते थे। उन्हें वर्जनाओं के घेरे व परिवार के परिवेश में ही सुरक्षित समझते थे। ऐसी निराधार मान्यताओं के विपरीत उन्होंने बारह लड़कियों का छात्रावास सफलतापूर्वक चलाया।

यही छात्रा आज भारत विख्यात समाजसेवी कार्यकर्त्री श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख के नाम से जानी जाती है। उन्होंने समाजसेवा व शिक्षा के क्षेत्र में अपना अविस्मरणीय योगदान दिया है। उन्हें अपने साक्षरता प्रयासों के कारण चतुर्थ नेहरू-साक्षरता-पुरुस्कार देकर सम्मानित किया गया है।

उनका जन्म एक कट्टर पन्थी जमींदार परिवार में हुआ था, जहाँ नारी का क्षेत्र केवल घर-परिवार ही था। समाज में पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करने वाली नारी की कल्पना का चित्र उनके माता-पिता के मस्तिष्क में कतई नहीं था। ऐसे परिवार में लड़की को शिक्षित करने का प्रयास अभिभावकों की तरफ से होना दुष्कर ही था किन्तु बालपन से ही जिज्ञासु व ज्ञान प्राप्ति के लिए आतुर दुर्गा भला कैसे चुप रहती। वह पढ़ना चाहती थी। जहाँ चाह होती है, राह अपने आप निकल आती है। उन्होंने भी अपने पिता के एक वयोवृद्ध मित्र से हिन्दी व अन्य विषय पढ़ने आरम्भ कर दिये।

जब वे थोड़ी शिक्षित हुईं तो उन्हें स्पष्ट दीखने लगा कि बिना शिक्षा पाए नारी जाति की प्रगति सम्भव नहीं है और बिना नारी की प्रगति के समाज की प्रगति के स्वप्न देखना निरर्थक है। अतः उन्होंने दूसरी लड़कियों और महिलाओं को पढ़ाना आरम्भ कर दिया। पहले कुछ दिनों तो वे यों ही पढ़ाती रहीं फिर उन्होंने विधिवत् पाठशाला चलानी आरम्भ कर दी। पहले तो उनके माता-पिता ने आपत्ति उठाई पर पुत्री ने जब उनकी शंकाओं का समाधान कर दिया, तो उन्होंने महिला साक्षरता के महत्त्व को स्वीकारते हुए उन्हें स्कूल चलाने की आज्ञा दे दी। यही नहीं उन्होंने आर्थिक सहायता भी दी। इस प्रकार उनका यह स्कूल चल निकला। इस स्कूल में हिन्दी भाषा भी पढ़ाई जाती थी। १९२३ में जब काकीनाडा में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ, तो उनके स्कूल की ५०० स्वयं सेविकाओं ने दुभाषिए का काम किया। बड़े-बूढ़े लोग अपने कन्याओं की इस प्रगति पर बड़े प्रसन्न हुए तथा दुर्गाबाई का बहुत मान करने लगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जहाँ दीपक जलता है, वहाँ प्रकाश होकर रहता है। दुर्गा भी अपने परिवार में एक दीपक बनकर ही आयी थी। तेरह वर्ष की छोटी आयु में ही वह स्वदेशी-आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेती थीं। अपनी माता के साथ वे घर-घर खादी बेचा करती व नशाबन्दी का प्रचार करतीं। लोगों की ऐसी दुष्प्रवृत्तियों को छुड़ाने के लिए वह द्वार-द्वार जाकर इनसे होने वाली व्यक्तिगत व सामाजिक हानियाँ बताती व उनसे ऐसी आदतें छोड़ने का आग्रह करतीं। इस प्रखर बालिका की तथ्यपूर्ण बातें सुनकर लोग प्रभावित हुए बिना नहीं रहते—दुष्प्रवृत्तियाँ छोड़ देने के लिए संकल्पबद्ध हो जाते।

प्रख्यात गाँधीवादी नेता श्रीप्रकाश उन दिनों दक्षिण में स्वतन्त्रता का सिंहनाद कर रहे थे। १९३० में जब वे जेल गये तो उन्होंने मद्रास के स्वाधीनता-संग्राम का भार इस अल्पवयसी तरुणी के कन्धों पर डाला। उन्होंने इनका चयन उनकी प्रतिभा, योग्यता व व्यवहार कुशलता को देखते हुए ही किया था। इस काम को उन्होंने बड़ी तत्परता के साथ पूरा किया था। नमक-सत्याग्रह में भाग लेने के कारण उन्हें एक वर्ष का कठोर कारावास दिया गया था।

एक वर्ष तक जेल में रहने पर भी देश-प्रेम की उनकी लगन कम नहीं हुई थी वरन् बढ़ी थी। वे हिन्दुस्तान सेवा-दल नामक राष्ट्रीय-संगठन की कर्मठ कार्यकर्त्री बनकर मैदान में उतर आयीं। फिर उन्हें तीन वर्ष तक जेल भोगनी पड़ी।

स्वाधीनता-संग्राम की सेनानी होने के साथ वे समाज सुधार—विशेष कर नारी-शिक्षा के प्रचार-प्रसार में पूरा-पूरा योगदान देती रहीं। आन्ध्र महिला-सभा की स्थापना उन्हीं के प्रयासों के परिणामस्वरूप हुई। उन्होंने कई कन्या छात्रावास व महिला छात्रावास उस क्षेत्र में आरम्भ किये, जिनमें मालाम्मा देवी छात्रावास, चिन्नबंगा विद्या मन्दिर आदि प्रमुख हैं।

वे अपने व्यक्तित्व का विकास, राष्ट्रीय-आन्दोलन में सक्रिय सहयोग तथा नारी-शिक्षा प्रचार-प्रसार तीनों मोर्चों पर सन्नद्ध रहीं और तीनों पर सफल हुईं। तीनवर्ष की जेल काटने के बाद उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से स्वाध्यायी छात्रा के रूप में स्नातक परीक्षा व अन्य परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। तत्पश्चात् १९४२ में उन्होंने आन्ध्र विश्वविद्यालय से एल. एल. बी. परीक्षा उत्तीर्ण की। एल. एल. बी. करके उन्होंने वकालत करना आरम्भ कर दिया। वे प्रथम भारतीय महिला वकील थीं, जिन्होंने हत्या के मुकदमे की पैरवी की थी। कानून में उनकी गहरी पैठ थी। जिससे उनकी वकालत बड़ी अच्छी चलने लगी। लोग कहते हैं कि महिलाएँ वकालत, प्रशासन आदि का काम उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकतीं, जितने पुरुष करते हैं किन्तु उस धारणा को उन्होंने निराधार सिद्ध कर दिया।

वकालत के क्षेत्र में सफल हो जाने के बाद भी वे इस व्यवसाय में ही नहीं डूब गयीं। बचपन में जो लक्ष्य उन्होंने बनाया था, उससे वे किंचितमात्र भी इधर-उधर नहीं हुईं। व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ आ जाने वाली क्षमता तथा अभिमान की सहज मानवीय दुर्बलताएँ उन्हें ग्रस्त नहीं कर सकी थीं। महिला-समाज के जागरण के लिए शिक्षा व साक्षरता के प्रयास के लिए वे उसी पहली की सी स्वयं-सेविका की निष्ठा से कार्य करती रहीं।

१९४६ में उन्हें भारतीय-संविधान सभा की सदस्या मनोनीत किया गया। भारतीय-संविधान के निर्माण में उनका भी योगदान रहा है। १९५० में जब भारत में गणतन्त्रीय-शासन-पद्धति लागू की गयी, तो उन्हें योजना आयोग का सदस्या बनाया गया। अपने बढ़ते हुए सम्मान को उन्होंने बढ़ते हुए दायित्व समझकर अपने व्यक्तित्व को वैसा ही ऊँचा बनाने का प्रयास किया। वे अपने को सदा विद्यार्थी ही मानती रही हैं।

आप उस क्षेत्र में पैदा हुई हैं जहाँ हिन्दी-भाषा बोली नहीं जाती। वहाँ प्रायः हिन्दी-भाषा के विरुद्ध आन्दोलन कराये जाते रहे हैं—कुछ स्वार्थी और नासमझ लोगों के द्वारा। किन्तु हिन्दी के प्रति उनका प्रेम असाधारण ही रहा। बचपन में भी उन्होंने सबसे पहले हिन्दी भाषा सीखी। उनके द्वारा स्थापित विद्यालयों में हिन्दी को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। वे राष्ट्रीय एकता व सम्मान के लिए हिन्दी के प्रचार-प्रसार को अनिवार्य मानती रही हैं। यह उनके गहन चिन्तन व विवेकशीलता का परिचायक है।

उनका विवाह भूतपूर्व केन्द्रीय वित्तमन्त्री सी. डी. देशमुख के साथ हुआ। उन्होंने विवाह के लिए जल्दबाजी नहीं की। यदि विवाह करके नारी एक गाय की तरह परिवार के खूँटे से ही बँध जाय, उसका सामाजिक जीवन समाप्त हो जाये तो ऐसा विवाह न करना ही ठीक है। अतः उन्होंने ऐसे सुलझे विचारों के पात्र की प्रतीक्षा लम्बे समय तक की, जो उन्हें सामाजिक-क्षेत्र में सहर्ष कार्य करने दे। अपने पति के साथ कई बार विदेश यात्रा पर गयीं। वहाँ के महिला समाज को उन्होंने खुली आँखों से देखा, खुले दिमाग से परखा। हमारे देश की महिलाओं की तुलना उनसे करते हुए उन्होंने नारी-प्रगति के लिए नये कार्यक्रम प्रस्तुत किये।

वर्षों तक वे केन्द्रीय समाज-कल्याण बोर्ड की अध्यक्षा तथा महिला शिक्षा की राष्ट्रीय समिति की अध्यक्षा के रूप में कार्य करती रहीं। उन्होंने बच्चों को शिक्षित करने के कार्यक्रमों की तरह ही प्रौढ़ पुरुषों व महिलाओं को साक्षर बनाने के लिए सरकारी व सामाजिक क्षेत्रों में कई संस्थान खुलवाए।

उन्होंने समाज-सेवा व पारिवारिक उत्तरदायित्वों का सुन्दर सामंजस्य स्थापित कर रखा है। समाज सेवा के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पीछे न वे परिवार को उपेक्षित करती हैं और न परिवार में ही उलझकर सामाजिक दायित्वों से विमुख हो जाती हैं। उनकी समाज-सेवा को देखते हुए उन्हें चतुर्थ नेहरू साक्षरता पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। उनका यह व्यक्तित्व व कर्तृत्व नारी शक्ति को अपनी सामर्थ्य पहचानने व अपने सामाजिक दायित्वों को निवाहने के लिए प्रेरित करने के लिए पर्याप्त है।

विधवाओं और अभागिनों की बड़ी बहिन—सुब्बुलक्ष्मी

घुटा हुआ सिर, तन पर केवल एक मोटी धोती, चोली भी नहीं, एक वक्त भोजन और चौबीसों घण्टे चूल्हा, चक्की की चाकरी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भी किसी नैष्टिक ब्राह्मण घर की विधवा का यही जीवन था। आजीवन अनचाही तपश्चर्या या त्रासमय दूभर जीवन। ऐसे कठोर नियमोपनियम से तो यही प्रतीत होता है कि शायद विधवा ने कोई ऐसा बड़ा अपराध किया हो, जिसके दण्डस्वरूप समाज ने यह सजा दी है।

मद्रास के एक ब्राह्मण इन्जीनियर परिवार ने अपनी बेटी का विवाह आठ-दस वर्ष की अल्पायु में ही कर दिया। दुर्योग से वह ग्यारह वर्ष की आयु में पहुँचते ही विधवा हो गयी। माता-पिता के सामने अपनी लाड़ली बेटी का अन्धकारमय भावी जीवन ताण्डव करने लगा। वे बड़े दुःखी हुए और अल्पायु में ही विवाह कर देने के कारण पछताये भी सही। जो कुछ हो चुका था, उसे बदला तो जा नहीं सकता। लड़की का जीवन, मृत्यु न बने ऐसा प्रयास करना था और माता-पिता ने एक साहसिक कदम उठाया।

पुत्री सुब्बुलक्ष्मी पर वैधव्य के प्राणान्तकारक त्रासदायी नियमों का बोझ नहीं डाला। सुब्बुलक्ष्मी को अपनी इच्छा और रुचि के अनुरूप रहने की छूट दे दी। वह रंगीन कपड़े पहनती, न उसने सिर ही घुटवाया, सुन्दर-सलीके से गूँथे हुए बाल। इन सब बातों को लेकर परम्परावादी परिवारों में बड़ा रोष फैला। सुब्रह्मण्यम अय्यर को घोर नास्तिक, पापी और धर्मघाती करार दिया परन्तु पिता ने यह सब सहन किया और इसके उपरान्त भी अपनी पुत्री को चिन्ताग्नि में जीवित-मृत्यु का त्रास नहीं बनने दिया। सुब्बुलक्ष्मी का मन अपने पिता पर आये इस लोकापवाद से क्षुब्ध रहने लगा। पिता समझदार थे। उन्होंने सुब्बु को जीवन दिशा देने के लिए घर पर ही पढ़ाना आरम्भ किया। घर पर ही अँग्रेजी, संस्कृत और गणित की शिक्षा आरम्भ हुई। संगीत सिखाने के लिए भी अलग मास्टर नियुक्त किये गये। वर्ष भर में ही सुब्बु अँग्रेजी सीख गयी और उसे मद्रास के ही एक पी. टी. स्कूल में भर्ती करवा दिया गया।

इस स्कूल में एकमात्र हिन्दू विद्यार्थी वही थी। किसी दूसरे स्कूल में भर्ती करवाने पर हिन्दू बालक-बालिकाओं से तिरस्कृत और परेशान होने का भय था। पी. टी. स्कूल में भर्ती करवा देने पर सुब्रह्मण्यम अय्यर का मित्रों और स्वजन, सम्बन्धियों का विरोध सहना पड़ा परन्तु वे निश्चिन्त रहे। पी. टी. स्कूल घर से लगभग बीस मील दूर पड़ता था। परिवार अपनी अबोध पुत्री का जीवन बनाने के लिए वह मकान छोड़कर जिस उप नगर एग्मोर में स्कूल था, वहाँ आकर बस गया।

सुब्बुलक्ष्मी थोड़ा-थोड़ा समझने लगी तो उसे अपने वैधव्य का भान हुआ। एक दिन वह स्कूल से लौट रही थी, तो देखा कि एक गली में सात-आठ बड़ी लड़कियाँ दो साल की नंग-धड़ंग बच्ची को घेरे खड़ी हैं और उसे चिढ़ा रही हैं। वह बच्ची बाल-विधवा थी और दूसरी लड़कियाँ इसी कारण उसे छेड़ रही थीं। वे पूछतीं—तेरा मंगल सूत्र कहाँ है ? इसी तरह के बहुत-से प्रश्न और कटाक्ष। सुब्बु ने अपने को धन्यवाद दिया कि परमात्मा ने उसे इस प्रकार परेशान होने से बचा लिया। वह सोचने लगी कि ईश्वर ने मुझे ये सब सुविधाएँ दीं। इन क्रूरताओं से बचाये रखा तो इसका कोई प्रयोजन होना चाहिए। अन्यथा अन्य बाल-विधवाओं की तरह मेरा भी जीवन दूभर होना था।

पन्द्रह-सोलह वर्ष की अपरिपक्वहृदया विचार-सरिता में गोते लगाने लगी और इस निश्चय पर पहुँची कि—यह सब एक लक्ष्य पूर्ति के लिए हुआ है। यह लक्ष्य क्या है ? इन विधवा बहिनों की सेवा करना।

सुब्बु ने विधवाओं की सेवा करने का जीवनलक्ष्य चुना और तन्मयता से अपनी शिक्षा पूरी करने में लग गयी। १९०५ में उसने सभी विषयों में अच्छे अंक प्राप्त कर मैट्रिक की परीक्षा पास की। पूरे बोर्ड में वह तीसरे स्थान पर आयी। मद्रास की अँग्रेज इन्स्पेक्ट्रेस ने प्रस्ताव रखा कि सुब्बु को सरकारी छात्रवृत्ति और व्यय पर विलायत पढ़ने भेजा जाय। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया परन्तु माता-पिता ने कुछ कारण-विवशता से विनम्र असहमति व्यक्त कर दी।

सुब्बुलक्ष्मी को अब एक कान्वेण्ट में भर्ती किया गया। यहाँ भी सेवा-साधना का स्वरूप निर्धारित करने में उलझी रहती। आखिर उसने सोचा कि अज्ञान सब अन्धविश्वासों की जड़ है। विधवा बहिनों पर बरती जा रही क्रूरता और ढाये जा रहे अत्याचारों का कारण अन्धविश्वास के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? अन्धविश्वास मिटाने के लिए अज्ञान का उन्मूलन आवश्यक है और अज्ञानोन्मूलन शिक्षा के प्रचार से ही सम्भव है। शिक्षा प्रचार के लिए स्वयं का समर्थ और शिक्षित होना अनिवार्य है। अतएव वह और अधिक लगन से पढ़ने लगी। पहले अपने सुख की ही चिन्ता थी, अब अपनी सरीखी अन्य विधवाओं का दारुण दुःख भी अपनी ही वेदना बन गया था। इसलिए निष्ठा एवं लगन और अधिक प्रखर बनती चली गयी।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लड़कियों के लिए उन दिनों कॉलेज तो थे नहीं। अतः सुब्बु सह शिक्षा के आधार पर चल रहे प्रेसीडेन्सी कॉलेज में ही भर्ती की गयी। नारीशिक्षा का आज इतना प्रचार भी नहीं था। अतएव कुछ सम्पन्न और विचारशील परिवारों की मुट्ठी भर लड़कियाँ ही कॉलेज में थीं। शरारती लड़कों के बीच लड़कियों को दाँतों के बीच जीभ की स्थिति में रहना पड़ता था। सुब्बु बड़े धीरज और दृढ़भाव से पढ़ती रही।

पिताजी का तबादला होने के कारण सुब्बुलक्ष्मी को कोयम्बटूर जाना पड़ा। वहाँ पर इनका परिचय लेडी इन्सपेक्ट्रेस मिस क्रिस्टीना लिंच से हुआ। लिंच के हृदय में भारत के प्रति अगाधश्रद्धा और बेहद् प्यार था तथा तत्कालीन दुर्दशा से क्षोभ भी। लिंच ने नारी शिक्षा के सम्बन्ध में बहुत कुछ सोचा था। उनका विचार था कि स्त्री-शिक्षा का प्रसार हिन्दू परम्परा में पली उच्च कुलीन महिलाओं से अधिक सुलभ सफल हो सकेगा। इसी प्रयोजन के लिए उन्होंने ब्राह्मण घरानों की विधवा स्त्रियों को आकृष्ट करने के लिए सरकार के सामने एक विधवा-सदन की योजना रखी थी। सुब्बुलक्ष्मी ने जब मिस लिंच के बारे में तथा उनके विचारों और योजनाओं के बारे में सुना तो लगा कि अपना जीवन ध्येय प्राप्त करने के लिए उनसे बड़ा सहयोग मिल सकेगा।

दोनों मिली तो एक-दूसरे को परस्पर सहायक पाया। सरकार ने विधवा-सदन की योजना का प्रस्ताव अभी तक स्वीकार नहीं किया था। परन्तु परिस्थितियाँ ऐसी बनती जा रही थीं कि सुब्बुलक्ष्मी का जीवन ध्येय तथा मिस क्रिस्टीना लिंच का स्वप्न साकार होने के लिए स्वयं आतुर हो। बात कुछ इस प्रकार हुई कि सुब्बु के पिता सुब्राह्मण्यम अय्यर के एक प्राध्यापक मित्र की बेटी विधवा हो गयी। वे उन दिनों बड़े अर्थ संकट में चल रहे थे इसलिए अपनी बेटी को अय्यर के घर में नौकरानी रखने का आग्रह करने लगे। अय्यर ने प्राध्यापक की पुत्री अम्मुकुट्टी को अपनी बेटी मानकर अपनाया और सुब्बुलक्ष्मी के साथ मद्रास पढ़ने के लिए भेज दिया। वहाँ दो विधवा बालिकाएँ और आ गयीं। मिस लिंच का भी स्थानान्तर भी अकस्मात् मद्रास हो गया। सुब्बुलक्ष्मी ने बी. ए. उत्तीर्ण कर लिया। इस बार वह प्रान्त में सर्वप्रथम आयी थीं।

मैसूर और ट्रावनकोर राज्य में उन्हें उच्च अधिकारी बनने का निमन्त्रण दिया। सीलोन सरकार ने भी इसी प्रकार की तत्परता दिखाई परन्तु सुब्बुलक्ष्मी ने मात्र इसीलिए यह सब इन्कार कर दिया कि उन्हें अपने निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करना था। उन्होंने मिस लिंच से मिलकर विधवा-सदन की स्थापना करा ली।

यहाँ बाल-विधवाओं से लेकर वयस्क विधवाओं तक को रखा जाता, उन्हें पढ़ाया-लिखाया जाता। सामान्य लड़कियों की ही तरह उन्हें पढ़ाया-लिखाया जाता, वे उसी तरह खाती-पहनतीं। वैधव्य का कोई भी बाह्याचार पालन करना अनिवार्य नहीं था। अब सरकार भी सहयोगी बनने लगी। समुद्र तट पर एक बड़ा बंगला 'आइस हाउस' विधवा सदन को मिल गया। विधवा सदन का एक स्कूल भी खुल गया। दोनों संस्थाओं ने खूब तरक्की की। सरकार छात्राओं को शिक्षावृत्तियाँ देने लगी। बाद में विधवा सदन ने कुमारी कन्याओं को भी प्रवेश देना शुरू कर दिया ताकि उन्हें बाल-विवाह और तज्जनित वैधव्य की नाटकीय स्थिति से बचाया जा सके। कट्टरपन्थियों ने उनका बड़ा विरोध किया परन्तु वे अपने मार्ग पर अविरल बढ़ती रहीं।

धर्मद्रोही और संस्कृतिद्रोही के सम्बोधनों से उन्हें बुरी तरह लांछित किया जाता रहा परन्तु भारतीय परम्पराओं के प्रति उनके मन में अचल निष्ठा थी। सन् १९२१ की बात है। एक समारोह में उनका परिचय प्रिंस ऑफ वेल्स से कराया गया। प्रिंस हाथ मिलाने के लिए आगे बढ़े तो सुब्बुलक्ष्मी ने हाथ जोड़कर नमस्ते भर की। बाद में उनसे किसी ने पूछा तो बताया कि—भारतीय होने के नाते मुझे यहाँ की आदर्श परम्पराओं का परिपालन भी अनिवार्य प्रतीत होता है। वे सही माने में हिन्दू-समाज की इस विशेषता का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिसके अनुसार हमारी सभ्यता और संस्कृति युग प्रतिकूल विधि-विधानों को छोड़कर नयी परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढाल लेती है।

महिला-जाग्रति के लिए समर्पित—कमलाबाई होस्पेट

'नारी कल्याण के लिये यदि महिलाएँ ही प्रयास करें तो अधिक कार्य हो सकता है।' यह सत्य अपने जीवन में श्रीमती कमलाबाई होस्पेट ने चरितार्थ कर दिखाया। यह मान्यता कि कोई भी बड़ा कार्य, सामूहिक अभियान पुरुषों के नेतृत्व में ही सम्भव है, निर्मूल एवं भ्रान्त मान्यताओं में से एक है। पिछलों दिनों सामाजिक अव्यवस्था के कारण स्त्री-समाज को अपनी योग्यता के विकास का अवसर नहीं मिला। इस कारण यह मान्यता बन गई कि उनमें सामार्थ्य की कमी है। किन्तु जिन नारी रत्नों ने अपने कठिन श्रम, लगन तथा विशाल हृदयता के आधार पर उक्त मान्यता का खण्डन कर नारी की श्रेष्ठता प्रमाणित की, उनमें श्रीमती कमलाबाई का नाम भी सादर लिया जाता रहेगा।

श्रीमती कमलाबाई का जन्म नागपुर में हुआ था। उनका पितृपरिवार समाज-सुधार का समर्थक था। अतः कमलाबाई में भी प्रगतिशीलता एवं सुधारवादी दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही था। संयोग की बात कि उन्हें अल्पायु में ही वैधव्य का सामना करना पड़ा। हमारे समाज में विधवा की क्या स्थिति है, इससे सभी परिचित हैं। वह भी छोटी आयु में तो और भी भयानक हो जाती है। भले में तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घर का हर सदस्य श्रेय बँटाना चाहता है किन्तु अप्रिय प्रसंग का सारा का सारा दोष बहू पर थोपा जाता है। जहाँ बेचारी को आश्वासन, सद्भावना की आवश्यकता होती है, वहाँ और भी कटु-शब्द एवं तिरस्कार उसके हिस्से में पड़ते हैं। बेचारी का सुकुमार हृदय और भी टूट जाता है तथा कुछ भी उपयोगी कार्य करने का उसका साहस समाप्त हो जाता है।

कमलाबाई पर जब वैधव्य का क्रूर प्रहार हुआ तो उन्होंने धैर्यपूर्वक उसका सामना किया। उन्होंने ससुराल वालों की मनोभूमि का अध्ययन सद्भावनापूर्वक किया। उन्हें लगा कि मुझे देखकर मृत सदस्य की याद उमड़ आना इनके लिए स्वाभाविक है। बार-बार उसका स्मरण इनके लिए भी हानिकारक है तथा मेरे लिए भी कष्टकर। अतः उन्होंने विनयपूर्वक अपने शिक्षण आदि के लिए भाई के पास रहने की अनुमति ससुराल वालों से प्राप्त कर ली।

बड़े भाई के सहयोग से उन्होंने शिक्षण का क्रम बढ़ाया। उन्होंने अपने आदर्श के अनुरूप ही 'नर्स' का कार्य चुना और पूरे मन से उसके लिए योग्यता अर्जन का प्रयास प्रारम्भ किया। आदर्श-बल, तीव्र लगन, कठिन श्रम तथा व्यावहारिक मार्गदर्शन के प्रभाव से उनकी प्रगति आश्चर्यजनक तीव्रता से हुई। एक-एक करके उन्होंने योग्यता विकास की सीढ़ियाँ तय करना प्रारम्भ कीं। ठीक समय पर अपने बहुमुखी ज्ञान के साथ उन्होंने नर्सिंग का पाठ्यक्रम पूरा कर लिया।

बहुधा ऐसी स्थिति में महिलाएँ कहीं नौकरी करके स्वावलम्बी होने की बात सोचती हैं। किन्तु कमलाबाई के सामने लक्ष्य कुछ और ही था। अपने उदर-पोषण की समस्या के लिए ही स्त्री प्रयास करे, उन्हें यह नारी जाति के गौरव के प्रतिकूल लगता था। उनके विचार से प्रबुद्ध नारी का वास्तविक कार्य अपनी सेवा तथा श्रम द्वारा समाज को परिपुष्ट करना ही है। पतिगृह में भी स्त्री इसी उद्देश्य से प्रवेश करती है। यह पावन लक्ष्य सामने रखते हुए उन्होंने सोचा कि जिस जीवन को पतिगृह के उत्कर्ष के लिए लगाया जा सकता है, उसे समाज के उत्कर्ष के लिए क्यों न लगाया जाये ? अपनी थोड़ी-सी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो सहज ही हो सकती है।

कमलाबाई ने नागपुर में ही एक सूतिकागृह प्रारम्भ कर दिया। जहाँ उद्देश्य ऊँचा रहता है, वहाँ थोड़े साधन तथा सामान्य योग्यता द्वारा भी आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। कमलाबाई अपने पूरे कौशल, समय तथा लगन के साथ सूतिकागृह के विकास में लग गईं। उनकी तन्मयता, मृदुल व्यवहार तथा कठिन श्रम के गुणों ने शीघ्र ही प्रभाव दिखाया। सूतिकागृह अपनी विशेषताओं के कारण पर्याप्त प्रसिद्धि पा गया। यही नहीं वहाँ के हर प्रबन्ध, हर कार्य से जन-कल्याण की भावना की महक उठती थी। इससे प्रभावित होकर जन-सहयोग भी मिलना स्वाभाविक था। नगर के स्त्री-रोग विशेषज्ञों के सहयोग से कमलाबाई ने सूतिकागृह को नवीनतम जानकारियों से समृद्ध किया।

उपयोगी वस्तु को सम्मान तथा विकास दोनों का अवसर मिलता है। उक्त सूतिकागृह की अनेक शाखाएँ नागपुर के अतिरिक्त अन्य नगरों में भी खुलीं। उनमें अनाथ महिलाओं एवं विधवाओं को नर्सिंग के प्रशिक्षण की व्यवस्था बनाई गई, जो आज तक चालू है।

सूतिकागृहों का कार्य व्यवस्थित हो जाने पर कमलाबाई ने अपनी दृष्टि नारी-उत्थान के अन्य कार्यक्रमों की ओर घुमाई। समाज में दीन-हीन जीवन बिताने वाली महिलायें अनाथ स्त्रियाँ बड़ी संख्या में हैं। केवल नर्सिंग के कार्य से उनकी समस्या का समाधान सम्भव नहीं है। यह सोचकर उन्होंने महिलाओं के लिए औद्योगिक प्रशिक्षण की सुविधाएँ दिलाने के लिए शासकीय स्तर पर प्रयास किया। किन्तु सरकारी स्तर पर ही यह कार्य सीमित न रह जावे, इस हेतु उन्होंने सामाजिक स्तर पर भी प्रयास करके उद्योग-मन्दिर की स्थापना कराई, जहाँ उपयोगी कुटीर-उद्योग तथा शिल्पों का प्रशिक्षण प्राप्त करके महिलायें स्वावलम्बी बनें तथा समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकें।

स्थान-स्थान पर परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के अनुरूप उन्होंने अनेक कार्य किए तथा संस्थाओं का निर्माण किया। सूतिका-केन्द्रों तथा उद्योग-मन्दिरों के अतिरिक्त शिशु सगोपनगृह, मातृ-सेवा-मण्डल आदि के माध्यम से भी उन्होंने महिला-कल्याण के अभियान को प्रगतिशील बनाया। उनके प्रयासों को न तो व्यक्तिगत दुर्भाग्य की कल्पना रोक सकी और न सामाजिक रूढ़ियों के बन्धन। सारे विदर्भ में उनके सद्प्रयासों से नारी कल्याण एवं संस्थाओं का कार्य तीव्र गति से फैल गया। उनके सद्कार्यों के अभिनन्दनस्वरूप भारतसरकार द्वारा उन्हें पद्मश्री की उपाधि से भी सम्मानित किया गया। किन्तु उनका वास्तविक सम्मान तो जन-मानस में है। हजारों महिलाएँ उक्त सद्प्रयासों से लाभान्वित हुईं तथा हो रही हैं। हो सकता है उनसे प्रेरणा पाकर अन्य महिलाएँ ऐसा आदर्श और अनुकरणीय जीवन जीने के लिए आगे बढ़ें।

अन्धकार में एक रश्मि किरण—

सरला नायक

भाऊ रघुनाथ ठाकुर ने एक दिन अपनी पत्नी से कहा—"देखो सरला की माँ। मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं भी अपनी बेटी को पढ़ाऊँ-लिखाऊँ" ताकि आगे चलकर उसे किसी का मुँह न ताकना पड़े।

पढ़ाई और बेटी के लिए—पत्नी ने कहा—बेटी को पढ़ाने की क्या जरूरत है ? उसकी तो सारी जिन्दगी ही पति के सहारे कटनी है। आदमी कमाकर लायेगा और बेटी घर चलाती जायेगी। इसमें पढ़ने-लिखने की क्या जरूरत ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'घर चलाने के लिए भी तो शिक्षा का होना जरूरी है। बिना पढ़े-लिखे घर नहीं चलता केवल धकेला ही जा सकता है'—ठाकुर साहब ने कहा। इस पर उनकी पत्नी को बुरा लगा क्योंकि वह भी अनपढ़ ही थी। बोली—'तो आपका मतलब है, मैं भी घर को ठेल भर रही हूँ।'

''नहीं-नहीं मेरा मतलब यह नहीं है।'' ठाकुर साहब बोले—'मैं तो यह कह रहा था कि हम लोग एक ऐसे जमाने में जी लिए हैं, जिसमें तुम्हारी अशिक्षा के कारण कोई रुकावट नहीं आयी। परन्तु आने वाला कल शिक्षा और ज्ञान का युग होगा। उसमें वही व्यक्ति सफलतापूर्वक जी सकेगा, जो पढ़ा-लिखा हो। अनपढ़ और गँवार आदमी की किस्मत में तो केवल ठोकरें ही खाना लिखा होगा।'

'जो आपके मन में आये वह करो। मुझसे पूछने की कोई जरूरत नहीं है'—पत्नी का रोष अभी भी गया नहीं था। इस पर ठाकुर साहब ने थोड़ी और विनम्रता से कहा—'मुझे अपने मन की ही करनी होती तो तुमसे पूछता काहे को। नहीं मैं अपनी सहधर्मिणी की राय के खिलाफ जाने का पाप नहीं करूँगा।'

इन वाक्यों ने उनकी पत्नी का क्रोध थोड़ा कम किया और वह कहने लगी—'ठीक है बात तो मेरी समझ में आती है परन्तु दुनिया क्या कहेगी ?'

'दुनिया क्या कहेगी ? इसकी चिन्ता हमें नहीं करनी है। दुनिया का क्या है, वह तो कोई अच्छा काम करे तो भी कहती ही रहती है। इस बेकार की चिन्ता से हमें अपना दिमाग खराब नहीं करना है। हम कोई चोरी तो कर नहीं रहे हैं, नहीं कोई डाका डाल रहे हैं और न ही किसी का खून। फिर दुनिया की चिन्ता करने से क्या लाभ ? पत्नी प्रसन्नता से फूल उठी कि मेरा पति दुनिया की चिन्ता नहीं करता है और मेरे कहने के खिलाफ भी नहीं जाता।

उन दोनों का विवाह अल्पायु में ही हो गया था। जब रघुनाथ ठाकुर की आयु तेरह वर्ष की थी, तो उनकी कुल ढाई वर्ष की। अच्छा मजाक था—गुड्डे-गुड़ियों का खेल। परन्तु उस समय की प्रचलित परम्परा के अनुसार यह एक श्रेष्ठ और अभिनन्दनीय कृत्य था, उनके अभिभावकों की समझदारी थी। जैसे-जैसे ठाकुर साहब का चिन्तन विकसित होता गया, वे इस अन्ध-परम्परा से व इससे होने वाली हानियों से परिचित होते गये और उन्होंने उस समय निश्चय कर लिया जबकि उनके परिवार में एक कन्या का आगमन हुआ सन् १८९१ में कि वे अपनी बेटी के सम्बन्ध में तो ऐसी मूढ़ता करेंगे ही नहीं। वे बम्बई के पास एक उच्च कुलीन ब्राह्मण परिवार के मुखिया थे। उस समय ब्राह्मण समाज में स्त्रियों की बड़ी बुरी दशा थी। बाल-विवाह, पर्दा प्रथा, अशिक्षा, जेवर आदि जैसी कई एक कुरीतियाँ अभिशाप की तरह समाज को लगी हुई थीं।

ऐसे काल में भाऊ रघुनाथ ठाकुर ने अपनी बेटी को स्कूल में भर्ती करवाकर एक बड़ा साहसपूर्ण कदम उठाया था। सामान्यतः इस वय की कन्यायें तो दो-तीन वर्ष का तथाकथित दाम्पत्य जीवन बिता चुकी होती हैं और लड़कियों का घर से बाहर निकलना भी जहाँ पाप समझा जाता हो, ऐसे वातावरण में उन्होंने अपनी बेटी को हँसने-खेलने के लिए सर्वदा मुक्त छोड़ा। जैसा कि सदैव होता आया है—किसी भी साहसपूर्ण कदम का विरोध सर्वप्रथम घर से ही होता है, ठाकुर साहब का भी विरोध किया रिश्तेदारों तथा स्वजन सम्बन्धियों ने, लेकिन ठाकुर साहब अपने इस विचार पर दृढ़ बने रहे कि संकीर्ण मनोवृत्ति के लोग भले ही अपने आपको अन्धकार में रखें, अविवेक के आगे सिर झुका-झुकाकर अपना गौरव नष्ट करते रहें तो भी ऐसा नहीं करेंगे। पिता का यही साहस और दृढ़ता सरला को विरासत में मिला और वे जगत् के उपवन में अपनी सुगन्धित और आत्मिक-सौन्दर्य से चारों ओर का वातावरण महका देने में सफल हुईं।

आगे चलकर सरला बाई ने अपने पिता के विचारों, संकल्पों को समाज की आवश्यकता को अनुभव किया और उन्होंने नारी जाति के पाँवों में पड़ी दोहरी तथा वजनदार बेड़ियाँ काटने के लिए अपनी सभी सुख-सुविधायें छोड़ बैठी। जिन दिनों उन्होंने समाज-सेवा के इस क्षेत्र में पदार्पण किया उन दिनों भारतवर्ष की समूची जनसंख्या का आधा भाग—पूरी नारी समाज निरक्षरता, पर्दा, दहेज, जेवर, कैद आदि कुरीतियों से बड़ी बुरी तरह जकड़ा हुआ था। इन कुरीतियों के खिलाफ कतिपय जागरूक और विचारशील व्यक्तियों ने आवाज भी उठायी थी। महादेव गोविन्द रानाडे, प्रो. आगरकर, भागवत तथा तैलंग विभूतियों ने नारी जागरण के लिए पर्याप्त परिश्रम किया था। लेकिन उन्हें जिन कारणों से सफलता न मिल सकी, उनका अभाव सरलाबाई ने पूरा किया। वस्तुतः जब तक महिलाओं के उत्थान के लिए महिलायें ही आगे न आयें, पुरुषों द्वारा चलाये गये सभी कार्यक्रम एकांगी और अधूरे ही सिद्ध होंगे। सरलाबाई से पूर्व नारी-उत्थान के लिए उन जैसी और कोई कर्मठ कार्यकर्त्री महिला नहीं मिल सकी थी। सरलाबाई इस दिशा में आवश्यक उत्साह लेकर आगे आयीं।

जब वे पढ़ रही थीं दुर्भाग्य से उनके पिता का देहावसान हो गया। अभी संकल्पों ने गहरी जड़ें भी नहीं जमायी थीं कि इस वज्रपात ने उनके भविष्य को अन्धकारमय-सा बना दिया। परन्तु वे निराश न हुईं। पिता के स्थान पर बड़े भाई आये और उन्होंने सरला को धीरज बँधाया। उनके भैया इस मार्ग पर बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करने के साथ-साथ सरला के विवाह के लिए भी चिन्तित थे। वे तब एम. ए. पास कर चुकी थीं और अपने भावी जीवन की योजना तैयार कर रही थीं, तब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उनके भाई अपनी बहिन के हाथ पीले करने की फिक्र में थे। एक दिन वे कोई योग्य लड़का अपने साथ लेकर आये। सम्बन्ध तय हो जायेगा, इसकी पूरी-पूरी आशा थी।

परन्तु सरला ने विवाह का प्रस्ताव ही ठुकरा दिया और कहा—'जब तक मैं अपना वह दायित्व पूरा करने में सफल न हो जाऊँ, जो मैंने अपने समाज के लिए चुना है, मैं विवाह की बात ही नहीं सोच सकती। आप सबने मुझे पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाया, अब मेरा कर्त्तव्य है कि मैं अपनी अन्य बहिनों को भी इसी स्तर तक ऊँचा उठाने का प्रयास करूँ। मेरे लिए मेरा यह कार्य ही मेरा वर है।

विवाद रद्द हो गया और सरलाबाई अपने वर को प्राप्त करने के लिए मनोयोगपूर्वक जुट गयीं। उन्हीं दिनों पूना में महर्षि कर्वे ने विधवा आश्रम की स्थापना की थी। इस आश्रम के लिए योग्य संचालिका की आवश्यकता थी। उधर सरलाजी के पास की विद्यालयों से भी अच्छे-अच्छे पदों के निमन्त्रण आ रहे थे। पद, अच्छा वेतन और सांसारिक सुख-सुविधायें तो उनका अभीष्ट थी ही नहीं। वे तो अपना जीवन लक्ष्य पूरा करने की साध में थी। आश्रम के व्यवस्थापकों को जब यह पता चला कि इस कार्य के लिए सरलाजी सर्वथा योग्य हैं, तो उन्होंने सरलाजी के पास यह भार सम्हालने का निमन्त्रण भेजा और उन्होंने निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार कर लिया। प्रेय के स्थान पर श्रेय को चुनकर वे विधवा आश्रम की अधिष्ठात्री बनकर समाज की सेवा करने लगीं।

इस आश्रम में एक कन्या विद्यालय था, जहाँ असमय वैधर्व्य को प्राप्त हुई, लड़कियों को शिक्षा दी जाती। सरलाजी को विद्यालय ही अपर्याप्त लगा और उन्होंने बड़े प्रयत्न तथा परिश्रम के बाद इस विद्यालय को हाईस्कूल और बाद में यूनिवर्सिटी में बदलवा दिया।

हमारे ही समाज की कोई युवती लड़की, हमारे समाज की पूर्व परम्परा को इस प्रकार भंग करे, यह लोगों को कदापि सहन न हुआ। रूढ़िवादियों ने उनका बड़ा विरोध किया। विरोध तो उनके पिता का भी कहाँ कम हुआ था, जब उन्हें पढ़ने के लिए स्कूल भेजा गया था। परन्तु पिता ने एक बात जन्म घुटी की तरह घोंट-घोंटकर पिलायी थी कि जनमत और भीड़ की कभी पर्वाह न करना तथा अपने विवेक और बुद्धि को जो बात सत्य लगे, उसी का अनुसरण करना। इसी शिक्षा का संस्कार था यह कि वे आजीवन विरोध की चिन्ता न करते हुए अपनी सेवा-साधना में लगी रहीं।

कुछ समय बाद उनकी मुलाकात इन्दौर निवासी प्रो. बी. एच. नायक से हुई। श्रीनायक सरलाजी के सेवा कार्यों से बड़े प्रभावित हुए। वे एक विचारशील और नारी वर्ग में चेतना तथा जागरण के समर्थक युवक थे तथा अपनी स्थिति और क्षमता के अनुसार इस दिशा में कार्य भी करते रहते थे। सम्भवतया लक्ष्य में समानता होने के कारण ही दोनों की भेंट हुई थी। नायक को सरलाजी के व्यक्तित्व और कृतित्व ने उनका आराध्य बना दिया। जब उन्हें यह पता चला कि विधवा आश्रम की यह अधिष्ठात्री अभी अविवाहित ही है, तो उनका मन इन्हें अपने जीवन साथी के रूप में चुनने का हुआ और बातों ही बातों में अविवाहित रहने का कारण पूछ भी लिया।

तो सरला जी ने कहा—'बात यह है कि मुझे विवाह करने में तो कोई आपत्ति नहीं है परन्तु मुझे मेरे योग्य वर मिले तब न। मैं चाहती हूँ कि मेरा पति मेरे जीवन लक्ष्य में कोई रुकावट पैदा करने वाला होने के स्थान पर मेरा सहयोगी सिद्ध हो।'

यह विचार सुनकर नायक ने अपने हृदय की बात होठों पर ला दी। प्रस्ताव सुनकर एक और एक ग्यारह के हिसाब से इन लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता ही मिलेगी। यह सोचकर सरलाजी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वे दोनों परिणय-बन्धन में बँध गये। विवाह कर लेने के बाद उन्होंने अपना कार्य क्षेत्र और भी बढ़ा लिया था। शादी के कुछ वर्षों बाद ही उन्होंने इक्कीस कन्या विद्यालय खुलवाये, जहाँ बाईस हजार से भी अधिक लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त करने लगीं। इससे पूर्व उनका कार्य क्षेत्र पूना का विधवा आश्रम ही था परन्तु शादी के बाद इन्दौर के मालवा क्षेत्र में उन्होंने नारी-उत्थान के कार्य का बीजारोपण किया और यह बीज उनके अपने ही समय में अंकुरित और फलित-पुष्पित होने लगा।

सुयोग्य जीवन साथी के प्राप्त हो जाने पर उनका उत्साह बढ़ा ही था। दोनों पति-पत्नी ने कन्धे से कन्धा मिलाकर समाज के इस कार्य हेतु झोली फैलायी, स्कूलों के लिए चन्दा, बीमार, अबलाओं के लिए दवाइयाँ, रुग्णों के लिए चिकित्सा आदि आवश्यकतायें उन्होंने इसी तरह जुटायीं। अपना समूचा जीवन नारी उत्थान के लिए समर्पित कर सरला व नायक ने सिद्ध कर दिया कि आज ऐसी शिक्षित, निष्ठावान और कर्मठ महिलाओं की आवश्यकता है, जो नारी-जागरण के लिए अपना जीवन अर्पित कर सकें।

श्रीमती सावरकर— जिन्होंने आधुनिक युग में उर्मिला जैसी साधना की

पति विदेश से शिक्षा प्राप्त कर लौट रहे हैं—यह सुनकर ही श्रीमतीसावरकर का हृदय प्रफुल्लित हो उठा। वर्षों बाद पति देवता के दर्शन हो रहे हैं और वह भी उस रूप में जिसे पूरे परिवार के लिए सौभाग्य कहा जाना चाहिए। श्रीमती सावरकर ने कल्पना की थी, उस समय जब पति ने सभी स्वजनों से विदाई ली थी और भारतभूमि को अन्तिम नमस्कार किया। तब उन्होंने सोचा था कि पति बहुत बड़े बैरिस्टर होकर आयेंगे। घर में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और रिश्तेदारों में ही नहीं समाज में तथा यहाँ तक कि देशभर में उनका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जायेगा।

जो कुछ भी हो, एक भारतीय पत्नी के लिए केवल यही पर्याप्त है कि उस राह पर बिछी हुई आँखें अपने देवता का दर्शनकर तृप्त हो जायें। परन्तु न केवल आँखें ही तृप्त होनी थीं, हृदय भी भर आया था उल्लास से कि वर्षों से जिस जीवन इष्ट के दर्शन न हो सके थे, जिनके शब्द कानों से नहीं टकराये थे, उसी इष्टदेवता को जी भरकर देख सकेगी, उसका तीव्र अट्टाहास सुन सकेगी। एक-एक क्षण प्रतीक्षा में युगों-सा लग रहा था। यह सन् १९१० की बात है, तब सावरकर लन्दन से लौट रहे थे। युवक विनायक दामोदर सावरकर अपने समय के प्रतिभाशाली और मेधावी छात्र थे। उन्होंने पूना के फर्ग्युसन कॉलेज से बी. ए. की परीक्षा अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की थी तथा विदेश जाकर पढ़ने की योजना भी बनायी थी, परन्तु आर्थिक समस्यायें मार्ग का रोड़ा बनी हुई थीं।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक तब उसी कॉलेज से सम्बद्ध थे और वे सावरकर की प्रतिभा तथा कुशाग्र बुद्धि से भलीभाँति परिचित ही नहीं प्रभावित भी थे। जब उन्हें यह पता चला कि सावरकर विदेश जाकर पढ़ने का मन रखते हैं, परन्तु आर्थिक कारणों से ऐसा नहीं कर पा रहे हैं तो उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया इसके लिए कि उनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध हो सके और उन्होंने शिवाजी छात्रवृत्ति दिलवायी।

सावरकर प्रतिभाशाली और कुशाग्रबुद्धि के छात्र होने के साथ-साथ प्रखर राष्ट्रवादी देशभक्त भी थे। इसलिए विदेश यात्रा का एक उद्देश्य यह भी था कि वहाँ जाकर मातृभूमि को आजाद कराने के लिए कुछ प्रयत्न किये जायँ। इन दोनों समन्वित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए उन्होंने परिजनों तथा मित्र-सम्बन्धियों से विदा ली। जिस समय वे विदा हो रहे थे। श्रीमती सावरकर भी उन्हें छोड़ने बन्दरगाह तक गयी थीं। पति के विदेश जाने का विछोह उस समय उन्हें नहीं साल रहा था क्योंकि उन्हें विश्वास था कि मेरा पति और भी ऊँचा इन्सान बनकर लौटेगा।

जब काफी समय बीतने लगा इस बात को और उन्हें पता लगा कि मेरे पति वहाँ केवल पढ़ने के लिए ही नहीं गये हैं वरन् उनकी विदेश यात्रा का एक और दूसरा कारण भी है। वह है मातृभूमि की सेवा, तो उनका हृदय हर्ष से भर उठा और सिर गौरव से ऊँचा उठ गया कि वह एक ऐसे व्यक्ति की अर्द्धांगिनी है, जो जीवन की सब आवश्यकताओं से अधिक अपनी मातृ-भूमि की, अपने देश की और अपने समाज की, स्वाधीनता का पुजारी है। महाराष्ट्र की उस गौरवपूर्ण परम्परा के प्रति, जिसके पोषक महाराज छत्रपति शिवाजी जैसे वीर और समर्थगुरुरामदास जैसे सन्त रहे हैं, अनुयायी हैं।

श्रीमती सावरकर इस सेवा मार्ग के खतरों से भी भली-भाँति परिचित थीं। इसलिए वे अपने पति की कुशलता के लिए भगवान से नित्य मंगल-कामना करती रहतीं कि वे इस सेवामार्ग पर निर्बाध, अविराम और निरन्तर चलते रहें। सावरकर लौट रहे हैं और मार्ग में उन पर क्या बीतती रही है, इसकी पल-पल की सूचना श्रीमती सावरकर को मिलती रही थी। अभी ताजी सूचना तक तो उन्हें अच्छी तरह मालूम हो गया था कि यात्रा निरापद सम्पन्न हो रही है।

लेकिन दूसरी सूचनायें मिलने में विलम्ब हो गया है। इसलिए उनका मन तरह-तरह की आशंका, कुशंकाओं से भरने लगा। तभी पता चला कि २३ मार्च को सावरकर बन्दी बना लिये गये हैं। बन्दी बनाकर उन्हें जहाज में ही रखा गया था। कारावास से बचने और स्वतन्त्र रहकर देशसेवा करने के लिए सावरकर जहाज से कूद गये। लेकिन उनका पीछा हुआ वे पुनः पकड़े गये। अब वे पुनः बन्दी बनकर जेल की कठोर यातनायें भोग रहे हैं।

यह हृदय-विदारक समाचार सुनकर श्रीमती सावरकर खून के आँसू रो उठीं। अभी कुछ समय पूर्व मन भविष्य की सुखद कल्पनाओं में डूबा हुआ था और थोड़ी देर बाद ही मिले इस हृदय-विदारक समाचार ने उनके मन का चैन छीन लिया। कोई सामान्य हृदय होता तो शायद फट सकता था परन्तु भाई का हृदय तो था दृढ़ और सबल। चिन्ता, उद्वेग, दुःख और अशान्ति के साथ-साथ मन में यह गौरवानुभूति भी होने लगी कि मेरा पति अपने देश के लिए यम यातनायें सह रहा है। श्रीमती सावरकर को, परिवार को, परिवार में छोटे-बड़े सभी सदस्य भाई कहा करते थे। यह उनका पारिवारिक नाम था।

पति के साथ रहकर उसके कार्यों में सहयोग देने वाली महिलाओं के अगणित उदाहरण देश-विदेश में देखने को मिलते हैं। किन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम ही देखने में आते हैं, जब पति को कर्त्तव्य की साधना में कहीं दूर स्वयं की सुधि भूलकर भी लगना पड़ा हो और दूसरी पत्नी अपने सुख, स्नेह, सेवा-प्रेम आदि के अधिकारों को पति के आदर्शों पर बलि चढ़ाकर बिना शिकवा-शिकायत किये त्याग और तप की अग्नि में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला की तरह तप रही हो। भाई सावरकर ऐसी ही अँगुली पर गिनी जा सकने जैसी महिलाओं में से थीं, जिन्होंने जीवनभर अपने पति की साधना में व्यवधान न बनकर, उन्हें इस मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ने रहने के लिए प्रेरित किया।

उर्मिला की प्रतिमूर्ति श्रीमती भाई सावरकर ने एक ऐसे परिवार में जन्म लिया था, जहाँ नानी-दादी वीर पुरुषों और महिलाओं की कहानियाँ सुनाया करती थीं। सन् १८९० में वे महाराष्ट्र प्रान्त के जाव्हार राज्य के दीवान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.१८ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

श्री चिपलू ठाकुर के परिवार में जन्मी थीं। परिवार हर प्रकार के सुख-सुविधा साधनों से सम्पन्न था। उनका बचपन बड़े लाड़-प्यार में बीता। भाई जो भी चीज माँगती वह तुरन्त हाजिर की जाती और जो भी हठ करतीं वह तुरन्त पूरी होती। ऐसे लाड़-प्यार में पली बिटिया को आगे चलकर पति जैसे प्रिय आत्मीय के जीवित होते हुए भी तपस्वी जीवन बिताना पड़ा।

११ वर्ष की अवस्था में तत्कालीन सामाजिक रूढ़ियों के अनुसार उनका विवाह १८ वर्षीय युवक विनायक तात्याराव के साथ सम्पन्न हुआ। उस समय तात्याराव भी किशोर छात्र थे और पढ़ रहे थे परन्तु रूढ़ियाँ तो रूढ़ियाँ ही हैं। इन दिनों अपरिपक्व वय के किशोर-किशोरी को भी इन्हीं रूढ़ियों का शिकार बनना पड़ा।

सावरकर को १९१० में बन्दी बनाकर भारत लाया गया और उन पर देशद्रोह का मुकदमा चला। इस अपराध के दण्डस्वरूप उन्हें दो आजीवन कारावास की सजा दी गयी जो एक के बाद एक चलाना था। अर्थात् ४० वर्ष तक अण्डमान कालापानी में रहने की सजा। सावरकर का लौह-हृदय तो इस परिस्थिति में नहीं डिगा। परन्तु भाई की आँखों के आगे अन्धेरा छा गया। उन्होंने अपने पति से शायद अन्तिम भेंट की प्रार्थना की, सरकार से और वह प्रार्थना स्वीकार भी हो गयी।

जिन आँखों से अपने पति को बैरिस्टर के रूप में देखने की कल्पना की थी, वे ही आँखें उन्हें बन्दी के रूप में देखकर किसी नदी के स्रोत की तरह फूट पड़ी। फिर भी भाई अपने कलेजे पर पत्थर रखकर आगे बढ़ी और जेल के सींखचों से ही अपने देवता को प्रणाम किया। प्रणाम करने के बाद उन्हें अपने पति की ओर देखा, तो वहाँ प्रत्याशा के विपरीत विषाद और पश्चाताप के स्थान पर राष्ट्रभक्ति एवं कर्त्तव्यपालन का दिव्य तेज चमक रहा था। भाई जैसी पति परायण स्त्री का दुःख पति के कष्टों की कल्पित-पीड़ा, तो तत्क्षण ही जाता रहा। रहा सहा दुःख सावरकर के संदेश ने दूर कर दिया।

सावरकर ने उनसे कहा था—मात्र संतान की संख्या बढ़ा लेना, कुछ तिनके जोड़कर घर बना लेना और इतने मात्र को ही जीवन सुख की सीमा मान लेना, मानवीय जीवन के लिए शोभनीय नहीं है। ऐसा जीवन तो पशु-पक्षी भी बिता लेते हैं। मनुष्य के लिए तो उच्च आदर्शों, मानवीय कर्त्तव्यों, जाति प्रेम और देशभक्ति के लिए उत्सर्ग करना ही सर्वाधिक गौरवास्पद है। मैंने जो मार्ग चुना है, उससे हम दोनों का मान बढ़ेगा। हम यदि थोड़ा-सा कष्ट सह लेंगे तो अगणित घरों में सुख की वृद्धि होगी। धैर्य रखना और मेरी सहधर्मिणी के रूप में अपने कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करना।

इस संदेश ने उन्होंने अपने पति में बन्दी के रूप में भी उन्मुक्त आत्मा के दर्शन किये और वे सावरकर की महानता से परिचित हुईं। जीवन के उतार-चढ़ाव, सुख-दुःख और कष्ट-तकलीफों में साथ देना तो उन्होंने सीखा ही था। अब मानव जीवन की सार्थकता और सफलता की साधना से परिचित होकर उन्होंने भी अपने ढंग से उस दिशा में कदम बढ़ाया, जिस दिशा में कि उनके कदम उठ रहे थे। अब उनके हृदय में दुःख के स्थान पर कर्त्तव्यपालन की निष्ठा उभर आयी थी। एक ओर तो सामने जीवन अनिश्चितता की कालिमा थी दूसरी ओर आदर्श-निष्ठा का ज्योतिर्मय प्रकाश। उस कारावास में अपने पति का संदेश प्राप्त कर तथा उनके चरणों में सिर झुकाकर वे संयत मनोभूमि लिये लौट आयीं। उन्हें उस समय केवल एक ही दुःख था, जिसके कारण उनकी दृष्टि में उनके पिता थे। वह दुःख था, शिक्षा का अभाव। अल्पायु में ही शादी हो जाने के कारण वे पढ़-लिख नहीं सकी थीं। फिर भी वे अपनी समझ-बूझ के अनुसार पति का हित-चिन्तन करती रहीं।

कुछ वर्षों बाद ही वीर सावरकर को अण्डमान से भारत लाकर रत्नागिर में नजरबन्द रखा गया। भाई को पति के सान्निध्य एवं सेवा का अवसर मिला। इस नजरबन्द कारावास में अपने पति की सेवा और सहयोग में लगीं इस कामना से कि पति को कारागृह की कष्ट यातनायें व्यापें नहीं। कारावास काल का सफल समापन हो। भाई ने सदैव यह सतर्कता रखी कि मेरी किसी भी कमजोरी का पता चल जाने से पति को किसी प्रकार का दुःख न हो और न ही उनकी साधना को कोई क्षति पहुँचे। इसलिए वे अपने पति के सामने सदैव प्रफुल्लित और उल्लास भरे वातावरण को बनाये रखने का प्रयत्न करती रहती थीं। यही नहीं आगे के जीवन की कल्पना करते हुए भी उनके मन में यही संकल्प उभरता था—अब उनके (वीर सावरकर के) उद्देश्य की पूर्ति में सहयोग देते ही इस जीवन की अन्तिम साँस निकले। भाई सावरकर की यह कामना महाकाल भी अस्वीकार न कर सके। अपने आदर्श जीवन द्वारा भारतीय नारियों के लिए प्रेरणा देती हुई वे सन् १९६३ में इस संसार से विदा हो गयीं। उनके जीवन का आदर्श न केवल भारतीय नारियों के लिए वरन् संसारभर की महिलाओं के लिए अनुकरणीय हैं।

शहजादी जहाँनारा का जीवन अनुभव

दिल्ली में हजरत निजामुद्दीन चिश्ती की दरगाह में अमीरखुसरो की मजार के सामने एक मिट्टी की मामूली-सी कब्र है, जहाँ लगभग तीन सौन वर्ष पहले एक शहजादी को दफन किया गया था। शहजादी ने अपनी इस मजार के लिये यह स्थान चुनकर एक पत्थर लगवाया था, जिस पर ये पंक्तियाँ अंकित थीं—

"हरी घास को छोड़कर किसी अन्य वस्तु से मेरी कब्र न ढकी जाय; मुझ गरीब की कब्र के लिए घास ही

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपयुक्त आवरण है।'' यह कब्र है, अपने आपको इस जहाँ का शाह कहलाने वाले मुगल सम्राट शाहजहाँ की लाड़ली, ऐश्वर्यशालिनी और विदुषी बेटी जहाँनारा की।

इतने बड़े सम्राट की बेटी अपने आपको गरीब कहे यह बात अवश्य ही रहस्यपूर्ण और विस्मयकारक लगती है। जहाँनारा ने ही नहीं उसके उत्तराधिकारी औरंगजेब की पुत्री ने भी अपने मजार पर कुछ इसी आशय की पंक्तियाँ पद्यबद्ध रूप में अंकित करवायी थीं—फारसी शेर के रूप में—

बर मजारे मा गरीबा ने चिरागे ने गुले।

ने परे परवाना सोदज ने सएदा बुलबुले।।

(हम गरीबों की समाधि पर न तो दीप ही जलते हैं और न फूल ही खिलते हैं, न किसी शलभ के पंख ही जलते हैं और न ही बुलबुल की चहक ही सुनायी पड़ती है।)

ऐसा क्यों ? जहाँनारा बेगम और जेबुन्निसा बेगम अपने-अपने पिताओं की लाड़ली पुत्रियाँ थीं। पिता भी कोई सामान्य स्थिति के व्यक्ति नहीं। दोनों ही भारत सम्राट और संसार का स्वामी होने का दम भरने वाले शाहजहाँ के आलमगीर। फिर उनकी बेटियाँ अपने आपको इतना दीन-हीन और दुःखी क्यों मानती रहीं, इसके लिए हमें उनके जीवन को कुछ निकट से देखने की आवश्यकता होगी।

मनुष्य का यह देखना प्रायः बहिरंग जीवन पर ही अधिक केन्द्रित रहता है, उसके अन्तरंग जीवन की झाँकी पर बहुत ही कम देख पाता है। इस कारण तत्सम्बन्धी निर्णय भी प्रायः गलत हो जाते हैं। जो व्यक्ति सुखी है, वह तो दुःखी नजर आता है और जो दुःखी है वह सुखी नजर आता है। यह आवश्यक नहीं कि जो सम्पन्न है, ऐश्वर्यवान है वह सुखी ही हो किन्तु देखने वालों को तो यही लगता है कि वह सुखी है, सन्तुष्ट है।

जहाँनारा और जेबुन्निसा भी यदि अपनी मजारों पर अपनी इस गरीबी का इजहार करने वाले इश्तिहार अंकित नहीं करा जाती, तो शायद हम उनके जीवन को निकट से देखकर उस निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास भी नहीं करते, जो सुख का कारण बनता है।

जहाँनारा जब सत्रहवर्ष की थी, तो उसकी माता मुमताज चल बसी, तब उसके रुतबे में और वृद्धि हो गयी। उसकी हैसियत ठीक मुमताज जैसी हो गयी, दिल्ली के शाहीखानदान में। उसे बादशाह बेगम का खिताब मिला। लाखों रुपये उसे सालाना खर्च के लिए मिलते थे, जो सब शहजादों और बेगमों में अधिक थे। माँ की सम्पत्ति के आधे भाग का अधिकार भी उसे वसीयत के अनुसार मिला था। भारत का उस समय का प्रसिद्ध बन्दरगाह सूरत उसे जागीर में मिला था। भेंट, उपहार के मामले में सम्राट के बाद उसी का स्थान था।

इस भौतिक सम्पदा के साथ ही ईश्वर ने उसे अनिंद्य सुन्दरता प्रदान की थी। बौद्धिक-सम्पदा में भी वह किसी से पीछे नहीं थी। उन्नीसा नामक फारसी-महिला के द्वारा उसे फारसी-भाषा, ज्ञान-विज्ञान व धर्म का पर्याप्त शिक्षण मिला था। वह स्वयं फारसी में कविता करती थी। राज-काज के मामले में शाहजहाँ उससे राय लिया करता था। उसकी प्रखर बुद्धि के सभी कायल थे। उसके चारों भाई उसके कृपाकांक्षी बने रहते थे, अमीर उमरावों का तो कहना ही क्या ?

पिता की वह कितनी लाड़ली थी इसका भी एक उदाहरण प्रस्तुत है। एक बार अपने जन्म-दिवस के शानदार जश्न के अवसर पर शहजादी के जामदारी लहँगे की एक परत मशाल की लौ को छू गयी, इससे उसके कपड़ों में आग लग गयी। कनीजों ने तुरन्त उस आग को बुझाया, फिर भी वह बुरी तरह जल गयी थी। इस दुर्घटना से शाहजहाँ विक्षिप्त-सा हो गया। देश-देश के हकीम बुलाये गये।

चार महीने तक वह अस्वस्थ रही, तब तक दीन-दुःखियों को हजार रुपये रोज की खैरात बाँटकर उनकी दुआएँ बटोरी गयीं। स्वास्थ्य लाभ के अनन्तर २५ नवम्बर, १६४४ के दिन एक शानदार शाही जश्न इस खुशी में मनाया गया ।

इतना सब होते हुए तो उसे सुखी होना चाहिए था। धन, मान, ऐश्वर्य, बुद्धि, सौन्दर्य सभी कुछ तो था जहाँनारा के पास और वह भी बेशुमार तादाद में। यह तो उसका बहिरंग था। अब अन्तरंग जगत् की झाँकी भी देख लीजिये, जिसके कारण वह अपने आपको भाग्यहीन समझती थी।

शाही परम्परा के अनुसार उसे अविवाहित ही रहना था और वह भी उस वातावरण में जहाँ वासना का सागर लहराता था। सुरा, सुन्दरी के मोह पाश में जकड़े हुए सम्राट और शहजादों के लिए स्त्री मात्र उपयोग की वस्तु थी। ऐसे वातावरण से मुक्ति नितान्त असम्भव थी, उसके लिये।

इन परिस्थितियों ने उसे अपने भीतर झाँककर देखने को विवश किया। उसकी रुचि अध्यात्म की ओर मुड़ चली। तब उसे ज्ञात हुआ कि वह नित्य सुख तो उसके पास ही है। वह इन भौतिक सुख-सुविधा के उपकरणों में नहीं है और न ही स्त्री-पुरुष के दैहिक, मानसिक आकर्षण और सम्मिलन में है। उसकी पहले की सब कामनाएँ कितनी तुच्छ थीं, इसका ज्ञान उसे हो गया ? अब तक तो वह भोग की ही बात सोचती आयी थी। अपने धन, अपने ऐश्वर्य, अपने रूप और अपने यौवन को वह भोगना चाहती थी। वह समझती थी कि, उसमें सुख मिल जायेगा। किन्तु अब उसने त्याग करना सीख लिया था और उस सच्चे सुख का आस्वादन भी कर लिया था, जो भोग से नहीं त्याग से ही पाया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.२० यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

भोग का सुख दैहिक होने के कारण पाशविक और त्याग का सुख आत्मिक होने के कारण दैवी होता है। अतः वह भोगजन्य सुख से हजार गुना तृप्तिदायक होता है। उसके पास जो अतुल सम्पदा और वैभव था, उसका उपयोग वह अपने लिये नहीं दूसरों के लिये करने लगी। अनाथों की देखभाल, सेवा, सहायता और दुःख दूर करना उसका काम हो गया।

वह देख रही थी कि धन, राज्य और वैभव उसके कुटुम्बीजनों में द्वेष और अनुचित स्पर्धा पैदा करने का कारण बन रहा था। स्वयं उसका पिता अपने पिता से विद्रोह कर चुका था। वह भी अपने भाइयों को बन्दी बनाकर राज्य का स्वामी बना था। अब उसके भाई भी राज्य के लिए एक-दूसरे के प्राणों के ग्राहक बन रहे थे। अतः अब वह उनके बीच स्नेह-सद्भाव स्थापित करने का प्रयत्न करने लगी। उसके इन प्रयत्नों से क्या होता ? उनके सिर पर तो राज्य प्राप्ति का भूत सवार था।

अपने भाई दारा जो सूफी सन्तमत और हिन्दू वेदान्त-दर्शन से अत्यधिक प्रभावित था, से उसकी अच्छी पटती थी। वह स्वयं भी प्रसिद्ध सूफी-सन्त मियाँमीर की मुरीदा (शिष्या) बन गयी थी।

सन् १६५७ के अन्तिम दिनों में राज्यारोहण को लेकर चारों मुगलशहजादों में जो युद्ध और कूटनीति के दाँव-पेंच चले और औरंगजेब अपने तीन भाइयों को मारकर तथा पिता को कैद करके तख्त पर बैठा, उससे जहाँनारा और भी विरक्त हो गयी। वह देख रही थी कि संसार में जब इतने दुःखी हैं, तो वह सुख की आकांक्षा कर ही किस हृदय से सकती है ?

उसके अपने परिवार में ही स्वयं उसका बूढ़ा पिता अपने पुत्र के हाथों अपने कर्मों का फल भोग रहा था, बन्दी बनकर। उसका प्रिय भाई और रुग्ण पिता द्वारा मनोनीत सम्राट दारा औरंगजेब के हाथों मारा गया था। यद्यपि उसने इस रक्तपात को रोकने की पूरी कोशिश की थी पर यह तो मुगल खानदान की परम्परा बन चुकी थी सो टूटती कैसे ? दारा की अनाथ पुत्रियाँ भी अब शहन्शाह कहलाने वाले शाहजहाँ की पौत्रियाँ होते हुए भी दर-दर की ठोकरें खाने को विवश हो चली थीं।

जहाँनारा को इस उलट-फेर से उस स्थिति में पहुँचा दिया, जहाँ व्यक्ति के लिये सुख-दुःख समान हो जाते हैं। वह अपने बन्दी पिता की सेवा और अपनी भतीजियों की परवरिश दत्तचित्त होकर करने लगी। संसार में हमारी दृष्टि के सामने जब तक एक भी व्यक्ति दुःखी है, तो हम सुख की आकांक्षा किस मन से कर सकते हैं ? हमारा सुख तो यही हो सकता है कि हम उसका दुःख दूर कर सकें।

१६६६ में शाहजहाँ की मृत्यु पर उसको दफन करने का सारा प्रबन्ध उसी ने किया। औरंगजेब के कुकर्मों के प्रति उसे बड़ा दुःख होते हुए भी उसने कभी उसके साथ कटुता प्रदर्शित नहीं की। पिता की मृत्यु के पश्चात् भी वह पन्द्रहवर्ष तक जीवित रही पर, वह एक भिक्षुणी की तरह अपना जीवन व्यतीत करती हुई, सामर्थ्य भर दीन-दुःखियों की सेवा करती रही। आध्यात्मिक-चिन्तन और दीन-दुःखियों की सेवा यही उसके प्रिय कार्य थे।

जहाँनारा ने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में इस सत्य का परिचय पा लिया था कि व्यक्ति सच्चा सुख तभी पा सकता है, जब वह अपनी आत्मा की आवाज को सुनकर तदनुरूप ही आचरण करता रहे। नहीं तो चाहे वह राजा हो या रंक, सम्पन्न हो या विपन्न वह सुखी नहीं हो सकता। उसी सत्य से सबको अवगत कराने के लिये उसने गरीब व्यक्ति की तरह दफन होना चाहा था। उसका यह अनुभव हमारे लिये भी कम लाभदायक नहीं।

कथा-सम्राट की निर्मात्री

हिन्दी साहित्य जगत् में दीप्तिमान नक्षत्र प्रेमचन्द जी की धर्मपत्नी श्रीमती शिवरानीदेवी ने अपने संस्मरणों में बताया है। ''उन्हें आज देश का एक महान् लेखक होने का गौरव प्राप्त हुआ है। दर असल हर चीज लगन पर निर्भर है। वह इतने ज्यादा लगनशील थे कि लिखने बैठते तो समय की सुधि ही नहीं रहती थी। हँस-मुख ऐसे थे कि हँसते थे तो हँसते ही रह जाते थे। अपनी मित्र मण्डली में इसी बजह से लोग उन्हें 'बम्बूक' कहा करते थे।

यहाँ इस बात का जिक्र करना बहुत जरूरी है कि मेरी सास कैसी थीं ? बहुत प्रखर बुद्धि और कई भाषाओं की विज्ञा थीं मेरी सास। सिफ्त यह थी कि पढ़ तो सब लेतीं लेकिन एक भी अक्षर नहीं लिख सकती थीं। उनके किस्से, उनकी कहानियाँ इतनी लम्बी होती थीं कि सुनाते-सुनाते खत्म ही नहीं होने को आतीं और क्रम लगभग पन्द्रह दिन तक जारी रहता था। श्रोता सहज में जिज्ञासु हो चुपचाप सुना करता था। उनका लिखने का शौक भी दर-असल यहीं से पैदा हुआ था। अपनी माँ से प्रेरणा लेकर ही उन्हें आज उपन्यास सम्राट होने का गौरव प्राप्त हुआ।''

विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जितने भी महापुरुष हुए हैं, उनके निर्माण और उत्थान में उनकी माता का प्रथम हाथ रहा है। बालक का प्रथम क्रीड़ास्थल माता की गोद ही है। जननी के स्नेह, ममत्व एवं सौहार्द्र से अनुप्राणित बालक उसके आदेश को बड़ी तत्परता से मानता है। माता के आदेश पालन और अनुकरण में उसे सुख मिलता है। यों तो बच्चा परिवार के अन्य लोगों से भी घुलता-मिलता है परन्तु आरम्भ में माता जैसी घनिष्ठता किसी से भी स्थापित नहीं हो पाती। माता ही उसका प्रथम मित्र है, माता ही प्रथम गुरु है और माता की गोद ही प्रथम पाठशाला है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शास्त्रों में माता को बालक का प्रथम गुरु कहा गया है, इसके पीछे भी यही तथ्य अन्तर्निहित है कि माता ही सर्वप्रथम उसे आचार-व्यवहार की शिक्षा देती है तथा संसार की विविध वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कराती है। इसके लिये उसके पास एक ही साधन होता है—बालक की जिज्ञासाओं की परितृप्ति। बच्चों को कुछ भी पता नहीं होता कि संसार में क्या हो रहा है ? माता द्वारा ही वह उस ज्ञान का बहुत बड़ा अंश पाता है।

माता के व्यक्तित्व का प्रभाव बालक पर पड़ना स्वाभाविक ही है। यदि माता का व्यक्तित्व ही कमजोर हुआ तो बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण की कल्पना निराधार ही होगी। प्रेमचन्द जी को साहित्य-सम्राट बनाने का श्रेय उनकी माँ को ही जाता है।

यह प्रेमचन्दजी की ही बात नहीं है, ऐसे कई उदाहरणों से हमारा इतिहास भरा पड़ा है। छत्रपति शिवाजी को बनाने में उनकी माता जीजाबाई का ही हाथ था। महाराणाप्रताप को बनाने वाली उनकी माँ ही थीं। विज्ञान के प्रसिद्ध आविष्कारक एडीसन की प्रतिभा को पहचानने वाली उसकी माता ही थी।

प्रेमचन्द हिन्दी-साहित्य जगत् के उपन्यास-सम्राट के रूप में भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी विख्यात हैं। उनके उपन्यासों में, कहानियों में जो सहजपात्र, जो स्वाभाविक घटनाक्रम, जो आदर्शोन्मुख यथार्थ और भारतीय जन-जीवन का सजीव चित्रांकन हुआ है वह बहुत कुछ उनकी माता की ही देन थी। किस प्रकार वे अपनी लम्बी-लम्बी कहानियों में भी श्रोता को बाँधे रखती थीं कि वे लम्बे समय तक उनमें तन्मय रह जाते थे। उनके कथा कौशल ने प्रेमचन्द को बहुत कुछ दिया था। ऐसी ही बौद्धिक और सद्ज्ञान की सम्पदा से भरी-पूरी - माताएँ ही अपने बालकों को ऐसा कुछ दे सकती हैं कि वे आगे चलकर विशिष्ट व्यक्ति कहला सकें। हमारी नारी जाति में ऐसी सामर्थ्य उपजाने के लिये अभी बहुत प्रयास करने पड़े हैं। उनकी मानसिक, बौद्धिक, शैक्षणिक और अध्यात्मिक प्रगति के सदियों से अवरुद्ध द्वारों को खोलना होगा, योग्य माताएँ होंगी, तभी हमारे देश को योग्य नागरिक प्राप्त होंगे।

सच्चा समर्पण पति एवं समाज के प्रति

कमरे के कोने में रखी कुर्सी पर हाथ में किताब पकड़े गुम-सुम बैठे पति को देखकर गृहिणी ने पूछा—"क्यों जी ! इतने परेशान क्यों हैं ?"

"कोई खास बात नहीं" पति ने टालने के स्वर में कहा। "टालने की कोशिश न करिए, चेहरा मानव मन का दर्पण है और वह साफ बता रहा है कि आप विशेष उदास हैं।"

पत्नी के सहानुभूति के स्वरों ने उसे खुलने को प्रेरित किया—"बात समानता, स्वाभिमान और न्याय की है। अँग्रेज प्रोफेसरों को पूरा वेतन मिलता है, जबकि मुझे सिर्फ दो-तिहाई देने को तैयार हैं। सिर्फ इस कारण कि मैं हिन्दुस्तानी हूँ। छात्रों के कल्याण और स्वाभिमान की रक्षा करते हुए अभी तक मैंने वेतन के चैकों को अस्वीकार किया है।" तो अब क्या परेशानी है ?

"परेशानी का कारण है शोध-कार्य में व्यय और विवाह से खर्च का दो गुना हो जाना।"

"ओह ! तो यह बात है। दुनिया में हर समस्या का समाधान है। इसका क्यों नहीं होगा ?" "क्या है समाधान ?" उन्होंने पत्नी के चेहरे की ओर ताकते हुए पूछा।

"हम लोग कलकत्ते की जगह हुगली के पार चन्द्रनगर में रहें। इससे मकान किराया आधे से भी कम हो जाएगा। रही बात शोध कार्य की उसे रोकना न पड़े, इसके लिए मैं अपने सारे गहने आपको दिए देती हूँ। आपका यह कार्य कोई निजी स्वार्थों के लिए तो है नहीं। राष्ट्रीय गौरव के लिए किए जा रहे इस कार्य में गहनों की खपत को अपना सौभाग्य मानूँगी। जहाँ तक अन्य खर्चों का सवाल है जितने में पहले आप गुजारा करते थे, उतने में ही अब हम दो कर लेंगे। खर्च की यदि व्यवस्थित रीति-नीति अपनाई जाय और मात्र आवश्यक खर्च ही किए जाएँ तो एक के खर्च में दो की बसर सहज सम्भव है।"

पत्नी की इस अद्भुत योजना को प्रोफेसर पति सुन रहा था। वस्तुतः विवाह साधक भी है और बाधक भी। साधक तब है जब पत्नी और पति दोनों ने भौतिकवादी महत्त्वाकांक्षाओं से रिश्ता तोड़ लिया हो। वे इस बात के लिए संकल्पित हों कि चमक-दमक को तिलांजलि देकर कम से कम में अपनी गुजर-बसर करेंगे और अपनी सम्मिलित सामर्थ्य का उपयोग राष्ट्र, समाज और आदर्शों के लिए करेंगे। इसके विपरीत महत्त्वाकांक्षाएँ टकराएँ। बेहूदे खर्चे की बेतुकी आदतें सँभाले न सँभलें, तो विवाह सहज बाधक हो जिन्दगी नरक बन जाती है। न स्वार्थ सधता है न परमार्थ। हम लोगों की स्थिति और मानसिकता में विवाह साधक है और रहेगा।

पति ने कहा—"योजना तो उत्तम, बातें भी ठीक हैं, पर" "पर क्या ?"

"चन्द्रनगर में मकान लेने पर रोज-रोज हुगली कैसे पार करेंगे ? नाव का किराया कहाँ से आएगा? "किराया क्यों ? पुरानी वाली छोटी नाव मरम्मत करा लेंगे।" "यह भी ठीक है किन्तु घर में अध्ययन और शोध कार्य कॉलेज में अध्यापन। ऐसी स्थिति में नाव चलाने का अतिरिक्त श्रम कार्य में व्यवधान बनेगा। जहाँ अभी रात भर काम कर लेता हूँ, वहाँ सोना पड़ेगा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.२२ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

"यह तभी होगा न जब आप नाव चलाएँगे ?" "मैं नहीं तो फिर कौन ?" " मैं पत्नी का दृढ़ स्वर था," "तुम" पति ने विस्फारित नेत्रों से देखा। "क्यों विश्वास नहीं क्या ?" "तुम पर नहीं तो किस पर विश्वास करूँगा।"

उस दिन के बाद नियमित क्रम बन गया। पत्नी नाव चलाती, पति वैज्ञानिक समस्याओं के समाधान सुलझाते रहते, उनके अध्ययन में व्यवधान न पड़ता। उन्हें पहुँचाकर वापस होती, शाम को लेने आ जाती। वर्षों यह क्रम चलता रहा। पत्नी की तपश्चर्या एवं पति की दृढ़ता के सामने अँग्रेज अधिकारियों को झुकना पड़ा। न्याय मिला वेतन समान हुआ। वे भी अब तक विश्वविख्यात वैज्ञानिक हो चुके थे।

पति की नाव खेने वाली श्रमशील पत्नी थीं अबला बसु एवं पति थे, प्रख्यात वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु। अबला बसु ने अनुकूल परिस्थितियाँ आने पर भी काम नहीं छोड़ा। वे सिस्टर निवेदिता के साथ सतत् शिक्षण में लगी रहीं, गिरों को उठाती रहीं। पति-पत्नी एक साथ मिलकर किस प्रकार अपने पुरुषार्थ से नवनिर्माण का प्रयोजन पूरा कर सकते हैं। इसकी साक्षी देते हैं, बसु दम्पत्ति।

चरित्र और तप

पाटलिपुत्र का सामन्त स्थूलिभद्र सौन्दर्य और प्रेम का उपासक था। नगरवधू कोशा के नूपुरों में बँधा हृदय, मदिरा के चषकों में लहराता यौवन। अनिंद्य सुन्दरी कोशा और सामन्त स्थूलिभद्र, पाटलिपुत्र में एक-दूसरे के पर्याय बन गये।

किन्तु, अन्त में विवेक ने ठोकर मारी और स्थूलिभद्र में विराग जगा। नगरवधू कोषा की अट्टालिका से उठकर वह एक जैन सन्त के आश्रम में जा बैठा। ध्यान, धारणा और समाधि में लीन उसका जीवन परिवर्तित हो गया।

चातुर्मास आया तो जैन सन्त ने अपने शिष्य को व्रत निर्वाह हेतु भयंकर स्थानों में भेजना प्रारम्भ किया—एक को नागराज की वाँबी के निकट, दूसरे को सिंह की गुफा में और स्थूलिभद्र को कोशा की अट्टालिका में।

स्थूलिभद्र अतीत की प्रेयसी के निकट चार मास रहा—पावस की झड़ियाँ, कोशा की अट्टालिका और स्थूलिभद्र। किन्तु, वह सच्चे अर्थों में विरागी हुआ था। उसका मन कमल वासना पंक में भी अलिप्त रहा।

शिष्यों के लौटने पर जैन सन्त ने कहा—'स्थूलिभद्र सर्वश्रेष्ठ है, उसकी तपस्या वन्दनीय है।'

सिंह की गुफा से लौटे शिष्य ने दम्भ से ओंठ सिकोड़े, 'स्थूलिभद्र ने क्या तपस्या की ? ऐसा तप तो मैं सहस्र बार कर सकता हूँ।'

जैन सन्त मौन रहे। अगले चातुर्मास उन्होंने दम्भी शिष्य को कोशा की अट्टालिका में भेजा।

शिष्य गया और पहली ही रात में नगरवधू के विलास बाणों से बिंधकर निरीह हो रहा। तप से उद्धत योगी वारांगना के चरणों में प्रणय की भिक्षा माँगने लगा।

कोशा ने निर्दय स्वर में आज्ञा दी, 'इस रूप का पान करना चाहते हो तो शुल्क दो।'

'मैं अपरिग्रही कहाँ से लाऊँ ?' तपस्वी ने निरीह स्वर में कहा।

'सुना है नेपाल देश का शासक भिक्षुओं को नेपालकम् बाँटता है। तुम जाकर वहीं से ला दो।'

कामार्त तपस्वी गहन वनों को पार करके नेपाल गया और वहाँ से नेपालकम् रत्नजटित कम्बल ले आया।

नगरवधू सरोवर में स्नान कर रही थी। तपस्वी नेपालकम् लिए सीधे सरोवर की ओर गया। कोशा ने कठिन परिश्रम से लाये उस वस्त्र को लिया और उपेक्षापूर्वक उससे अपने पैरों का मैल पोंछने लगी।

'देवी, मैं कितने प्रयत्न से तुम्हारे लिए यह वस्त्र लाया और तुम इससे मैल पोंछ रही हो।' तपस्वी का स्वर करुण हो उठा।

'उचित ही तो कर रही हूँ।' कोशा सरल भाव से मुस्करा दी, 'मलिन वस्त्र से मैल पोंछना क्या अनुचित है ?'

'मलिन वस्त्र।'

'हाँ, मलिन वस्त्र। इसमें एक तपस्वी के दुखांत जीवन का समस्त मल निहित है। एक तपस्वी ने अपने उज्ज्वल चरित्र को भ्रष्ट कर इसे पाया है। क्या अब भी तुम इसकी मलिनता नहीं देख पाये ?'

तपस्वी मौन रह गया।

पतिव्रता—शिवदेवी

घटना उन दिनों की है जब स्वामी श्रद्धानन्द एक सामान्य गृहस्थ थे। वे लिखते हैं कि ..... उन्हीं दिनों मेरे मामू महाशय ने मुझे कुछ-कुछ मद्यपान का अभ्यास शुरू करा दिया था। अब तो मैंने मद्यपवीर का पूरा रूप धारण कर लिया, यदि उस रामायण पर से श्रद्धा न उठ गई होती, जिसमें सीता के आदर्श पतिव्रत पर मैंने बार-बार पवित्र अश्रुधारा बहायी थी तो मुझे निश्चय है कि गढ्ढे से बच जाता जिसमें गिरने के पीछे मुझे घोर प्रायश्चित करने पर ही शान्ति प्राप्ति हुई थी। यदि अपने प्राचीन इतिहास पर श्रद्धा होती तो पीड़ित स्त्री जाति का रक्षाबन्धन भाई बनकर उनकी रक्षा का व्रत

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेता। परन्तु मैंने तो अपनी सभ्यता को जंगलीपन और अपने साहित्य को मूर्खता का भण्डार समझ रखा था, फिर उनसे मुझे सहायता कब मिल सकती थी ?''

''बरेली आने पर शिवदेवी (मेरी धर्मपत्नी) का यह नियम हुआ कि दिन का भोजन तो मेरे पीछे करती ही, परन्तु रात को जब कभी मुझे देर हो जाती और पिताजी भोजन कर चुकते तो मेरा और अपना भोजन ऊपर मँगा लेती और जब मैं लौटता उसी समय अँगीठी पर गर्म करके मुझे भोजन करा पीछे स्वयं खाती। एक रात मैं आठ बजे मकान लौट रहा था। गाड़ी दर्जी चौक के दरवाजे पर छोड़ी। दरवाजे पर ही बरेली के बुजुर्ग रईस मुन्शी जीवनसहाय का मकान था। उनके बड़े पुत्र मुन्शी त्रिवेनीसहाय ने मुझे रोक लिया। गजक सामने रखी और जाम भरकर दिया। मैंने इन्कार किया। बोले—''तुम्हारे ही लिए तो दो आतिशा खिंचवायी हैं। यह जौहर है। त्रिवेनीसहाय जी छोटेपन के मेरे मित्र थे। उनको मैं बड़े भाई के तुल्य समझता था, न तो आतशा का मतलब समझा न जौहर का। एक गिलास पी गया। फिर गपबाजी शुरू हो गयी और उनके मना करते-करते मैं चार गिलास चढ़ा गया। असल में वह बड़ी नशीली शराब थी। उठते ही असर मालूम हुआ। दो मित्र साथ हुये। एक ने कहा चलो मुजरा करायें। उस समय तक न तो मैं कभी वेश्या के मकान पर गया था, न कभी किसी वेश्या को बुलाकर अपने यहाँ बातचीत की थी। केवल महफिलों में नाच देखकर चला आता था। शराब ने इतना जोर किया कि पाँव जमीन पर नहीं पड़ता था .....।''

एक वेश्या के घर में जा घुसे। कोतवाल साहब के पुत्र को देखकर सब सलाम करके खड़ी हो गयीं। घर की बड़ी नायिका का हुक्म हुआ कि मुजरा सजाया जाय। उसकी नौची के पास कोई रुपये देने वाला बैठा था। उसके आने में देर हुई। न जाने मेरे मुँह से क्या निकला सारा घर काँपने लगा। नौची घबड़ायी हुई दौड़ी आई और सलाम किया। तब मुझे किसी अन्य विचार ने आ घेरा। उसने क्षमा माँगने के लिये हाथ बढ़ाया और मैं ''नापाक-नापाक'' कहते हुए नीचे उतर आया। यह सब पीछे साथियों ने बताया। नीचे उतरते ही घर की ओर लौटा, बैठक में तकिये पर जा गिरा और बूट आगे कर दिये जो नौकर ने उतारे। उठकर ऊपर जाना चाहा परन्तु खड़ा नहीं हो सकता था। पुराने भृत्य बूढ़े पहाड़ी पाचक ने सहारा देकर ऊपर चढ़ाया। छत पर पहुँचते ही पुराने अभ्यास के अनुसार किवाड़ बन्द कर लिये और बरामदे के पास पहुँचा ही था कि उल्टी होने लगी। उसी समय एक नाजुक छोटी उँगलियों वाला हाथ सिर पर पहुँच गया और मैंने उल्टी खुलके की। अब शिवदेवी के हाथों में मैं बालकवत् था। कुल्ला करा, मेरा मुँह पोंछ ऊपर का अँगरखा जो खराब हो गया था, बैठे ही बैठे फेंक दिया और मुझे आश्रय देकर अन्दर ले गई। वहाँ पलंग पर लिटाकर मुझ पर चादर डाल दी और बैठकर सिर दबाने लगी। मुझे उस समय का करुणा और शुद्ध प्रेम से भरा मुख कभी न भूलेगा। मैंने अनुभव किया मानो मातृशक्ति की छत्र छाया के नीचे निश्चिन्त लेट गया हूँ। पथराई हुई आँखें बन्द हो गयीं और मैं गहरी नींद सो गया। रात का शायद एक बजा था, जब मेरी आँख खुली। वह चौदह-पन्द्रह वर्ष की बालिका पैर दबा रही थी। मैंने पानी माँगा। आश्रय देकर उठाने लगी, परन्तु मैं उठ खड़ा हुआ। गरम दूध अँगीठी पर से उतार और उसमें मिश्री डालकर मेरे मुँह से लगा दिया, दूध पीने पर होश आया। उस समय अँग्रेजी उपन्यास मगज में से निकल गये और गुसांई जी के खींचे दृश्य सामने आ खड़े हुये। मैंने उठकर और पास बैठकर कहा—''देवी ! तुम बराबर जागती रहीं और भोजन तक नहीं किया। अब भोजन करो।'' उत्तर ने मुझे व्याकुल कर दिया। परन्तु उस व्याकुलता में आशा की झलक थी। शिवदेवी ने कहा ''आपके भोजन किये बिना मैं कैसे खाती ? अब भोजन करने में क्या रुचि है।'' उस समय की दशा का वर्णन लेखनी द्वारा नहीं हो सकता। मैंने अपनी गिरावट की दोनों कहानियाँ सुनाकर देवी से क्षमा की प्रार्थना की परन्तु वहाँ उनकी माता का उपदेश काम कर रहा था—''आप मेरे स्वामी हो यह सब कुछ सुनाकर मुझ पर पाप क्यों चढ़ाते हो ! मुझे तो यह शिक्षा मिली है कि मैं आपकी नित्य सेवा करूँ।'' उस रात बिना भोजन किये दोनों सो गये और दूसरे ही दिन से मेरे जीवन बदल गया।

''वैदिक आदर्श से गिरकर भी जो सतीत्व धर्म का पालन पौराणिक समय में आर्य महिलाओं ने किया है, उसी के प्रताप से भारत भूमि रसातल को नहीं पहुँची और उसमें पुनरुत्थान की शक्ति अब तक विद्यमान है—यह मेरा निज का अनुभव है। भारत-माता का ही नहीं, उसके द्वारा तहजीब की ठेकेदार संसार की सब जातियों का सच्चा उद्धार भी उस समय होगा, जब आर्यवर्त की पुरानी संस्कृति जागने पर देवियों को उनके उच्चासन पर फिर से बिठाया जायेगा।''

महाराणा प्रताप की जननी

महाराणा उदयसिंह अरावली की दुर्गम घाटियों में भटक रहे थे। भूख-प्यास से स्वयं तथा अश्व दोनों जर्जर हो उठे थे। प्यास के मारे तो प्राण निकले जा रहे थे। ऐसी स्थिति में एक-एक कदम पहाड़ हो रहा था।

अकबर की विशाल सेना से चित्तौड़ का बचा रहना सम्भव नहीं लगा तो उन्होंने वहाँ का भार जयमल व पत्ता सिसोदिया पर छोड़ स्वयं इस उद्देश्य से निकल आए थे कि अन्यत्र जाकर, सैन्य संगठित करके फिर चित्तौड़ छुड़ा लेंगे। पर अब तो जान के ही लाले पड़ गए थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.२४ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

अन्धकार में प्रकाश की एक किरण फूटी। उसी समय उन्हें एक किसान कन्या आती दिखाई दी। उनके मुख पर आशा की मुस्कान फूट पड़ी।

उसके सिर पर बड़ी-सी टोकरी थी, जिसमें दस व्यक्तियों की रोटियाँ, दल की बड़ी-सी हंडिया और खेती में काम आने वाले औजार रखे थे। हाथ से गाय के सात-आठ बछड़े पकड़ रखे थे तथा बिना किसी कठिनाई के वह कठिन चढ़ाई चढ़ रही थी।

पास आकर महाराणा को देखा तो उनकी वेश-भूषा तथा मुर्झाए मुख से उनकी दशा का अनुमान लगाने में कठिनाई न हुई। उसने इनसे अपने साथ चलने का आग्रह किया।

आशा जागी तो मन में उत्साह, अँगड़ाई लेने लगा। वे उसके पीछे चल दिए। उनके मन में विचार आया कि इस सिंहनी से उत्पन्न होने वाला बालक कितना बलिष्ठ तथा योग्य होगा ? उन्हें इस कृषक-कन्या का शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य अपूर्व लगा। उन्होंने निश्चय किया कि इस असाधारण कृषक-कन्या से वे विवाह करेंगे।

थोड़ी दूर जाने पर पहाड़ियों के बीच मैदान निकल आया, जिस पर उसके पिता के खेत थे। यही इसके परिवार की आजीविका का साधन था।

किसान ने महाराणा का स्वागत किया। परिचय पाकर तो वह फूला न समाया। उसने अपने पाँचों पुत्रों को भी यह बात बताई। महाराणा को पानी पिलाया और उनके अश्व को भी पानी पिलाकर हरी दूब पर चरने छोड़ दिया। महाराणा ने इस परिवार के साथ बैठकर भोजन किया। आज तो मक्का की रोटियाँ व चने का साग उन्हें अमृत-तुल्य लगा।

महाराणा ने अपने मन की बात जब किसान को बताई तो वह बोला—"वैसे तो हम भी देवड़ा राजपूत हैं पर कहाँ आप और कहाँ हम ?"

महाराणा ने उसे समझाया कि मनुष्य अपने गुणों से बड़ा होता है पद से नहीं।

महाराणा का विवाह हो गया। रानी जैसा सुयोग्य सहायक पाकर उनमें नवीन उत्साह जाग उठा। उन्होंने मिलकर अरावली पर्वत श्रेणियों के बीच उदयपुर नगर की नींव डाली। सेना एकत्रित की और पुनः अपना राज्य सुव्यवस्थित किया।

इस रानी की कोख से ही नर-रत्न राणा प्रताप का जन्म हुआ, जिनकी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक क्षमता अपूर्व थी। मिट्टी से कुम्हार जैसे मूर्ति गढ़ता है, वैसे ही रानी ने राणा को बड़े मनोयोग व सावधानी से गढ़ा था।

सामन्तों के कहने पर उदयसिंह दूसरा विवाह भी कर चुके थे। इस महारानी के भी दो पुत्र थे। इन दो पुत्रों की माता जहाँ राज्य के लोभ में पड़ी रही, वहीं वीर जननी ने अपने बालकों को मातृभूमि की सेवा का पाठ पढ़ाया। एक साधारण राजकुमार से उन्हें महान् देशभक्त बनाया।

विवाह का आदर्श जीवन के महत प्रयोजन हेतु एक सच्चे साथी को पाना है। जब यह आदर्श महाराणा उदयसिंह ने अपनाया तो कितना शुभ परिणाम हुआ परन्तु जहाँ वे मान और यश के फेर में पड़ गए, वहीं राजद्रोही पैदा हुए। दूसरी रानी का पुत्र शक्ति सिंह अकबर से जा मिला था और अपनी ही मातृभूमि के साथ विश्वासघात कर बैठा।

पन्ना धाय का अपूर्व त्याग

"उदयसिंह कहाँ है ? ऐ दाई ?" नंगी तलवार हाथ में लिये बनवीर सामने खड़ा था। दाई ने पालने की तरफ इशारा किया। सिर पर मुकुट बाँधे, गले में सोने का हार पहने एक बच्चा पड़ा था पालने में। बनवीर ने तलवार उठाई और खटसे उस बच्चे के टुकड़े कर डाले।

दाई, पन्नादाई बेचारी चीख भी न सकी। बनवीर के जाते ही वह महल से निकलकर बीरा नदी के किनारे पहुँची। बच्चे का अन्तिम संस्कार कर उसने पास में रखी टोकरी में से दूसरा बच्चा निकाला और उसे लेकर मेवाड़ से दूर चली गई—बहुत दूर। यह दूसरा बच्चा ही था, राणासांगा का बेटा उदयसिंह।

मेवाड़ के इस राजकुमार के प्राण बचाने के लिए पन्ना दाई ने अपने बच्चे चन्दन की भेंट चढ़ा दी थी। कितना महान त्याग ! कितनी कर्त्तव्य-परायणता ?

चन्दन और उदय दोनों एक उम्र के थे। पन्ना की आँखों के दो तारे। दोनों को वह एक से प्यार से पालती-पोसती। पर जब उसने देखा कि उदयसिंह की जान खतरे में है, बनवीर उसे मारकर मेवाड़ की गद्दी हथियाना चाहता है और उसे मारने के लिए आ रहा है, तो उसने तुरन्त उदयसिंह को टोकरी में छिपाकर नदी के किनारे भेज दिया और उसका मुकुट और हार अपने बेटे को पहनाकर उसकी जगह सुला दिया।

बाद में बनवीर को अपने कुकर्मों का बदला मिला। उदयसिंह देयरा के राजा के आश्रय में बढ़े, पनपे और एक दिन पन्ना दाई के पैर छूकर मेवाड़ की गद्दी पर आसीन हुए।

धन्य है, पन्ना दाई ! उसके त्याग और कर्त्तव्य-परायणता की कहानी इतिहास के स्वर्ण पृष्ठ पर अंकित रहेगी। हमारी भारतीय संस्कृति का इतिहास इस प्रकार की अगणित घटनाओं से भरा हुआ है, जो हमारे उज्ज्वल अतीत और उसकी उदार सभ्यता का साक्षी रहा है। काश, आज की मातायें और बहिनें अपनी स्वार्थपरता और विलासप्रियता की क्षुद्र भावनाओं से ऊपर उठकर समाज और देश के प्रति कठोर कर्त्तव्यपालन के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कटिबद्ध हो पातीं, तो आज समाज में फैली हुई संकीर्णता और अनुदारता का वातावरण अवश्य ही तिरोहित होकर उसमें पुनः हमारी प्राचीन संस्कृति की तेजस्वी की किरणें फूट निकलतीं।

विवेकशीला मानकुँवर—जिसने अनौचित्य का विरोध किया

"दिल्ली प्रयाण के लिये तैयार हो जाओ।" पति ने दर्प भरे स्वर में कहा—

"क्यों ? यकायक आपको यह क्या सूझी ?"

"तुम्हारे इस क्यों का भी उत्तर देना होगा ? तुम स्वयं नहीं समझ सकती। महाराणा की अन्तिम इच्छा के विपरीत किस प्रकार सरदारों और कुमार प्रताप ने मिलकर भ्राता जयमल को मेवाड़ के राज्य सिंहासन पर बैठने से वंचित कर दिया है। यह हमारा अपमान है। बड़े भैया तो उसी क्षण यहाँ से चले गये। मैं यह सोचकर यहाँ रह गया कि प्रताप के हृदय में मेरे प्रति सम्मान हो, पर उन्होंने भी आखेट के अवसर पर मुझे अपमानित किया। अब मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं रुक सकता। मैं अपने इस अपमान का बदला लूँगा।"

"लेकिन इसमें आप लोगों का ऐसा क्या अपमान हो गया है कि आप अपनी मातृभूमि मेवाड़ ही छोड़कर जा रहे हैं ?"

"जरा-सी तो बात थी, प्रताप चाहते तो मेरा सम्मान रख सकते थे। पिताजी—महाराणा उदयसिंह जी के दिवंगत होने पर जब पिताजी की इच्छानुसार जयमल राज सिंहासन पर बैठने के लिए, उठे तो राजपुरोहित को उन्हें उस आसन पर बिठाने के लिए आगे आना चाहिए था, जो राज्याभिषेक के समय प्रयुक्त होता है। पर वह तो अपने स्थान से उठे ही नहीं। सरदारों ने भी उन्हें टोक दिया। मैंने जब पुरोहित से उनके पक्षपात की निन्दा की तो प्रताप ने मेरा पक्ष लेने की बजाय पुरोहित का पक्ष लिया। यह मेरा सरासर अपमान है।"

"और इस अपमान के लिए आप मेवाड़ छोड़कर जाने को उद्यत हो गये।"

"मेवाड़ छोड़कर जाने के लिए ही नहीं, अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए भी। मैं प्रताप का गर्व चूर नहीं कर दूँ, तो मेरा नाम शक्ति नहीं। प्रताप की माँ साधारण किसान की पुत्री है, हमारी माता की तरह राज कन्या नहीं और फिर पिताजी की अन्तिम इच्छा भी यही थी जयमल महाराणा बने। इतना होते हुए भी मैंने अपना मुँह नहीं खोला पर इस अपमान को मैं सह नहीं सकता। मैं दिल्ली जा रहा हूँ, मुगल सम्राट अकबर के पास। अब प्रकोप का मान-मर्दन के लिये ही आऊँगा।"

"यह आपका अन्तिम निर्णय है ?"

"हाँ"

"तो मेरा निर्णय भी सुन लीजिये। मैं मेवाड़ के राजवंश की वधू हूँ। जिस माटी से मेरा यह शरीर बना है, उस माटी के प्रति भी मेरा कुछ कर्त्तव्य है। जिस कुल की बहू बनकर मैं आयी हूँ, उसकी मान रक्षा के प्रति भी मेरा कुछ दायित्व है। मैं पहले सिसोदिया कुल की वधू हूँ फिर आपकी पत्नी। मेरे पिताजी ने मुझे आपकी पत्नी ही नहीं इस कुल की वधू भी बनायी थी। आप मातृभूमि से द्रोह कर सकते हैं मैं नहीं। आप जा सकते हैं। आप मेवाड़ का मान-मर्दन करने आयेंगे तब रणक्षेत्र में ही आपसे भेंट होगी।

शक्तिसिंह अपनी पत्नी के इस उत्तर को सुनकर क्रोध से जल उठा। वह आवेश में बोला—"क्या यही तुम्हारा पत्नीवृत है ?"

"पत्नीवृदा का अर्थ यह नहीं होता कि आपके देशद्रोह में भी आपकी सहायता करूँ। आपके प्रति जो प्रेम, जो निष्ठा है, उसके प्रकटीकरण के लिए साथ रहना ही आवश्यक नहीं। यह तो मन की बात है। मन उन्हें पालता रहेगा।"

"ठीक है, जैसी तुम्हारी इच्छा।" कहता हुआ शक्तिसिंह वायु वेग से कक्ष से बाहर हो गया। मान कुँवर अपने इस मति विभ्रमित पति को जाते हुए देखती ही रह गयी।

मानकुँवर बूँदी के अधिपति की ज्येष्ठ पुत्री थी। उन्हें महाराणा उदयसिंह से ब्याही थी। उसका पालन-पोषण भी उनके पिताजी ने पुत्र की तरह ही किया था। वह बुद्धिमती भी थी और शस्त्रास्त्र संचालन में प्रवीण भी। वह कानों के सुने पर कम और आँखों के देखे पर अधिक विश्वास करती थी। वे भी देख रही थीं राज्याभिषेक के क्रियाकलाप को।

महाराणा उदयसिंह दिवंगत हो गये थे। राज परम्परा के अनुसार एक तरफ महल में उनकी अन्तिम यात्रा की तैयारियाँ चल रही हैं और दूसरी ओर दरबार में राज्याभिषेक का कार्य सम्पादित हो रहा था। राज सिंहासन तो खाली नहीं रह सकता। राजा बनाने वाले व्यक्ति को अपने पारिवारिक दायित्वों को कम महत्ता देकर सामाजिक व राष्ट्रीय दायित्वों का बोझ उठा लेना पड़ता था। पिता की मृत्यु का शोक भी नहीं मना पाता बेचारा, जी भरकर रो भी नहीं पाता। राजमहल में शोक नहीं मनता। रोना-धोना पुरोहित के घर होता है। कितना बड़ा दायित्व आ जाता है उस पर। पतिदेव को सौभाग्य ही मानना चाहिए कि यह भार उसके बड़े भाई जयमल के कमजोर कन्धों पर नहीं आया।

प्रताप स्वयं महाराणा बनने के इच्छुक नहीं थे। वे तो मातृभूमि के सेवक भर रहना चाहते थे। किन्तु जब जयमल सिंहासन पर बैठने के लिए उठ खड़े हुए तो सरदारों ने विरोध किया—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

"राजकुमार, मेवाड़ का यह राजमुकुट दीखता तो सोने और मणि-मुक्ताओं का है, पर यह है वास्तव में काँटों का ताज। इसे पहनने की सामर्थ्य आपकी नहीं।"

"नहीं मेरे पिताजी मेवाड़ के महाराणा थे और उनकी अन्तिम इच्छा के अनुसार मैं उनके स्थान पर बैठ रहा हूँ।"

"यह आपके पिताजी का राज्य नहीं। यह तो देवाधिदेव एकलिंग का सिंहासन है, महाराणा तो उनके दीवान होते हैं। दिवंगत महाराणा के स्थान पर किसे बिठाया जाय ? यह सोचने का काम सोलह-बत्तीसी सरदारों का है। भीण्डर के राव भुज-बंधन बाँधते हैं, कानोड़ वाले झगा पहनाते हैं सलूम्बर वाले मेवाड़ के भीष्म राजकुमार चूड़ामणि के वंशज, सलूम्बर के राव सहमति प्रकट करते हैं। ये सब चुनाव मर्यादाएँ हैं। इन काँटों के ताज को पहनने की सामर्थ्य स्वर्गीय महाराणा के पुत्रों में से किसी में है तो वह राजकुमार प्रतापसिंह में है। अतः उन्हीं को इस पद पर अभिषिक्त किया जाना मेवाड़ के हित में है।"

सरदारों के इस कथन पर राजकुमार प्रतापसिंह बोले—"मैं महाराणा बनूँ या सामान्य सैनिक" इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। अपनी मातृभूमि की मान-मर्यादा और गौरव-रक्षा के लिए शक्तिभर प्रयास करता रहूँगा। आप भैया जयमल को महाराणा बना दीजिये। मेरी सेवायें तो स्वदेश को मिलती ही रहेंगी।"

किन्तु सरदारगण नहीं माने। जयमल खिसियाकर सभा से बाहर निकल आये। राजकुमार प्रतापसिंह का अभिषेक हुआ। वे मेवाड़ के महाराणा बने। मानकुँवर जानती थीं कि मेवाड़ का अधिपति होना काँटों की सेज पर सोना है। मुगलों की दृष्टि में सदा खटकने वाला मेवाड़ सदा ही उनकी प्रतिष्ठा की चुनौती बना है। कोई उनके आगे नहीं झुका था, तो वह मेवाड़ ही था। महाराणा उदयसिंह उस परम्परा को निभाने में असमर्थ थे। इसी कारण चित्तौड़ उनके हाथ से निकल गया था और उन्होंने उदयपुर नगर बसाकर उसे अपनी नयी राजधानी बनाया था। निकट भविष्य में मेवाड़ पर मुगलों का आक्रमण होना सुनिश्चित-सा था। ऐसी स्थिति में प्रताप को महाराणा बनाने का सरदारों का आग्रह उचित ही था। वे शरीर-बल, शस्त्र-संचालन और युद्ध-कला में ही राजकुमार जयमल से श्रेष्ठ नहीं थे वरन् कष्ट-सहिष्णु और स्वाभिमानी भी थे। देश प्रेम का लावा उनकी नस-नस में बहा करता था। मानकुँवर को उन्हें महाराणा बनाया जाना अच्छा लगा था।

शक्तिसिंह शीघ्र ही प्रतिशोध लेने के लिये आ पहुँचा। साथ में जयपुर नरेश मानसिंह और अकबर का ज्येष्ठ पुत्र भी था। हल्दी घाटी के मैदान में महाराणा के मुट्ठीभर सैनिकों ने दिल्ली के शहनशाह की इस विशाल सेना का सामना किया। मानकुँवर मर्दाने वेश में अपने निश्चय के अनुसार पिछली पंक्ति में घायलों की सेवा-सुश्रुषा करने व संकट के समय दुर्गम व वनकान्तरों में आश्रय बनाने के काम में जुटी रहती थी।

मेवाड़ी वीर बड़ी वीरता से लड़े। कितनों को ही मारकर एक मरा। महाराणा उन्मत्त से शत्रु दल का संहार करने में जुटे थे। उनकी तलवार तड़ित की-सी त्वरा से शत्रु सैनिकों को स्वर्ग पहुँचा रही थी। ऐसा लगता था मुट्ठीभर राजपूत इस विशालवाहिनी को गाजर-मूली की तरह काटकर रख देंगे। महाराणा आगे बढ़ते ही चले जा रहे थे। वे उस हाथी तक पहुँच गये, जिस पर मुगल सेना का सेनापति सलीम बैठा था। महाराणा के घोड़े चेतक ने अगले पाँव ऊँचे उठा लिये। उन्होंने ताककर सलीम पर भाला फेंका। वह होदे में दुबक गया। तभी किसी मुगल सैनिक ने चेतक की एक टाँग पर तलवार चला दी। वह आहत हो गया। महाराणा शत्रुओं से घिर गये। ऐसी विंकट स्थिति में सादगी के मन्ना झाल ने उनकी प्राण रक्षा के लिए उनका मुकुट स्वयं धारण कर लिया। स्वामिभक्त चेतक उन्हें लेकर वीहड़ वनों की ओर भागा।

दो मुगल सैनिकों ने उनका पीछा किया। शक्तिसिंह भी प्रतिशोध लेने का स्वर्ण अवसर समझ उनके पीछे चल पड़ा। पर यह क्या ? अन्तःकरण से एक ऐसी आवाज आयी कि वह रो पड़ा। क्या कर रहा हूँ मैं ? शक्तिसिंह का अहं विगलित हो गया। कैसी भूलकर रहा था वह ? अपनी भूल ज्ञात होते ही उसे ध्यान आया महाराणा के प्राण संकट में हैं। चेतक घायल है। दो मुगल सैनिक महाराणा के पीछे लगे हैं।

उसने तेजी से घोड़ा आगे बढ़ाया। तभी उसने एक चमत्कार देखना सनसनाता हुआ एक तीर आया, दूसरे ही क्षण दूसरा और दोनों मुगल सैनिक धूल चाटते नजर आये। फिर एक स्वर उभरा—"सावधान आगे बढ़ने का अर्थ है, मृत्यु के मुँह में जाना। साथियों की गति देख ही चुके हैं।" स्वर कुछ पहचाना-सा लगता था। ओह, यह तो मानकुँवर थीं, उसकी पत्नी। उसकी आँखें उस ओर उठीं, जिधर से यह स्वर आया था, देखा एक वृक्ष के पीछे मानकुँवर पुरुष वेश में घोड़े पर बैठी, उसकी ओर लक्ष्य साधे खड़ी थीं।

"मैं हार गया। मैं भूल कर रहा था। मैं महाराणा से क्षमा माँगने आया हूँ।"

"विश्वास नहीं होता। मुगलों के साथ रहकर वैसे ही आचरण सीख गये होंगे।"

"तो यह लो शस्त्रास्त्र।" शक्तिसिंह ने अपने सभी शस्त्र उतारकर धरती पर रख दिये।

मानकुँवर आगे बढ़ी। शक्तिसिंह गद्‌गद् कण्ठ से बोला—"तुम जीतीं और मैं हारा। मैं तुम्हें अपनी मार्गदर्शिका मानता हूँ। मेरी भूल क्षमा कर दो। मानकुँवर की आँखों के कोर गीले हो आये। शक्तिसिंह चल पड़ा अपने अग्रज, महाराणा प्रताप से क्षमा माँगने। उसे राह दिखा रही थी मानकुँवर।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदर्शों को समर्पित—साहचर्य

सन् १८७१ में महाराष्ट्र के दवोली गाँव में बाल गंगाधर तिलक दूल्हा बनकर गये। उस समय उनकी उम्र तो कम थी, पर गीता, रामायण की शिक्षाओं ने अनासक्त जीवन की रीति-नीति पर गहन श्रद्धा जमा दी थी।

दूल्हे से पूछा गया—तुम्हें क्या चाहिये ? मित्रों ने भाँति-भाँति की चीजें माँगने की सलाह दी। सभी ने सोचा था कि तिलक उनकी आशा के अनुरूप माँगेंगे, पर हुआ आशा के विपरीत। तिलक ने अपनी संक्षिप्त-सी माँग रखी—पढ़ने योग्य अच्छी-अच्छी पुस्तकें जितनी आप दे सकें।

विवाह के बाद भी तिलक ने अपने पढ़ने का क्रम नहीं छोड़ा। उनकी पत्नी सत्यभामा वय के हिसाब से अपरिपक्व थीं, पर चिन्तन विकसित था। उन्होंने भी अपनी निरक्षरता दूर करने का संकल्प लिया। अपने पति के सर्वथा अनुरूप होना है। कन्धे-से-कन्धा मिलाकर समाज में चलना है। इन प्रेरणाओं ने सत्यभामा के भीतर एक लगन जाग्रत कर दी थी। आदर्श भावनाओं से प्रेरित लगन और निष्ठा स्वाभाविक श्रमशीलता को जन्म देती है। सत्यभामा ने इन्हीं गुणों के बल पर पढ़ना-लिखना सीख लिया।

कॉलेज की शिक्षा के दौरान तिलक का सम्पर्क प्रसिद्ध सुधारवादी चिन्तक श्री अगाकर से हुआ। उनके विचारों से प्रभावित होकर राष्ट्रीय-चेतना को जाग्रत करने के लिये वे लेखनी व वाणी द्वारा प्रचार कार्य में जुट गये। अध्ययन और प्रचार कार्य में जुटे रहने के कारण उन्हें पत्नी से वार्तालाप के लिये भी पर्याप्त समय नहीं मिलता। तिलक ने सोचा—कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं पत्नी के प्रति अन्याय कर रहा होऊँ। उन्होंने उनके मनोभाव जानने चाहे। सत्यभामा का उत्तर था—इसमें क्या है ? पत्नी का तो कर्त्तव्य है कि पति को उच्च आदर्शों की ओर जाने में सहायता दे। फिर मैं तो आजकल पढ़ना सीख गयी हूँ, गृह कार्यों के बाद अतिरिक्त समय में अच्छा साहित्य पढ़ती रहती हूँ।

उनके इन विचारों को सुनकर तिलक भी प्रसन्न हुए। उन्होंने विस्तारपूर्वक अपने विचारों को सुबोध भाषा में समझाया और कहा कि तुम्हें सभी परिस्थितियों में प्रसन्न रहने तथा धैर्य धारण करने की आदत बनाये रखनी चाहिये।

सत्यभामा ने इस सत्य को पकड़ लिया और अपने जीवन में उतार लिया। सन् १८७१ में तिलक ने वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की। उनके चाचा इसी खुशी में अपने भतीजे की बहू के लिये कीमती साड़ी लाये। सत्यभामा ने विनम्रतापूर्वक अस्वीकार करते हुए कहा कि यह साड़ी एक लोकसेवी की पत्नी के अनुरूप नहीं है। अतएव मैं इसे नहीं पहन सकती।

उत्तर सुनने की आशा में चाचा ने तिलक की ओर देखा। गंगाधर ने कहा—सरकार की नौकरी कर जी-हुजूरों की संख्या बढ़ाने के लिए मैंने शिक्षा प्राप्त नहीं की है। बल्कि मैं तो अपनी शिक्षा का उपयोग राष्ट्रीय-चेतना जाग्रत करने के लिये करूँगा।

फिर भी जीवन-यापन के लिये तो कुछ करना पड़ेगा। "मैंने शिक्षक बनने का निर्णय लिया है। यह कार्य मेरे उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होगा। ऐसी स्थिति में धन और मान की अभिलाषा व्यर्थ है।" तिलक ने दृढ़ निश्चय के साथ कहा।

१८८० में संस्थापित राष्ट्रीय संस्थान 'न्यू इंग्लिश स्कूल' में तिलक ने अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। वेतन के रूप में जो कुछ मिलता था। उससे अति साधारण स्तर का ही निर्वाह हो सकता था। जो कुछ मिलता उसमें से भी बहुत कुछ बचाकर जन-जागरण के कार्यों में लगा देते। परिणामस्वरूप इस नयी गृहस्थी को कई तंगियों एवं परेशानियों का सामना करना पड़ता। कभी-कभी कई-कई दिन भूखे गुजर जाते। परन्तु सत्यभामा ने अपने चेहरे पर शिकन तक नहीं आने दी। उल्टे पति को समझाती—हम लोग तो ब्राह्मण हैं, तपस्या हमारा स्वाभाविक धर्म है। यदि चार-छः दिन पानी पीकर रह जाना पड़ता है, तो क्या हुआ ?

सन् १८८१ में केसरी का सम्पादन शुरू हुआ। इस पत्र की प्रगति के साथ तिलक का सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन व्यापक होता चला गया। अब तो उन्हें घरेलू कामों की बात तो दूर घर पहुँचने तक का अवकाश न रहा। ऐसी दशा में सत्यभामा ने उन्हें पूर्ण मुक्त करते हुए कहा—मैं पूरी तरह सक्षम हूँ, आप निश्चिन्त होकर अपने काम में लगे रहिये।

प्रत्येक अवसर पर सत्यभामा देवी कर्त्तव्यनिष्ठ, समझदार और अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक बनकर आगे आयीं। पति के लक्ष्य व विचारों का महत्त्व समझकर अपना कर्त्तव्य निर्धारित किया और उसे पूरा करने के लिए तत्परतापूर्वक जुट गयीं। एक लोकसेवी के दाम्पत्य जीवन में कर्त्तव्यों के प्रति ऐसी सजग दृष्टि और परस्पर का प्रगाढ़ विश्वास ही संफलता की सृष्टि व आनन्द की वृष्टि करता है।

सन् १९०८ में तिलक को छः वर्ष के लिए देश निर्वासन की सजा हुई। सत्यभामा बाई उस समय मधुमेह की घातक बीमारी की शिकार थीं। स्थिति गम्भीर थी। कुछ लोगों ने तिलक को सलाह दी कि वे सरकार से क्षमा-याचना कर ले। ऐसे में उन्होंने पत्नी के मनोभाव जानने के लिये पत्र लिखा। जवाब आया—आपकी अणु मात्र निर्बलता भी सर्व-साधारण पर पहाड़ बनकर गिरेगी, जिससे राष्ट्र का आत्म-सम्मान कुचल जायेगा। रही मेरी बात सो आप चिन्ता न करें। अभी आपको कर्त्तव्यनिष्ठ देखकर खुशी हूँ और मरकर अचल-अटल शान्ति में पहुँच जाऊँगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

और सचमुच वे शान्ति में पहुँच गयीं। उन्हें बचाया न जा सका। परवर्ती जीवन में भी तिलक को अपनी पत्नी की दृढ़ता रह-रहकर याद आती रही। बाद में भी वे कहते थे कि लोकसेवी की पत्नी को कैसा होना चाहिये, मेरी पत्नी इसका स्पष्ट उदाहरण है।

निःसन्देह पति का जीवन सँवारने-सुधारने, गढ़ने-निखारने में पत्नी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। तिलक का दाम्पत्य जीवन लोक सेवियों के लिये आज भी अमर आदर्श है और पत्नियों के लिये प्रकाशदीप।

सच्ची सहधर्मिणी—

श्रीमती ललिता शास्त्री

सन् १९२७। सत्रह वर्ष की ललिता अपने माता-पिता का घर छोड़कर पति के घर आई। विवाहोपरान्त माता-पिता से बिछुड़कर स्नेह की स्मृतियाँ और भावी जीवन की सुखद कल्पनाएँ लेकर नव-वधुएँ अपने पति के घर आती हैं, तब बिछोह के दुःख के साथ मिलन का सुख भी जुड़ा होता है। पतिदेव के बारे में उसने बहुत कुछ सुन रखा था। प्रत्यक्ष देखा तो उन्हें उससे भी कई ऊँचा पाया।

नौ वर्ष की आयु से ही वह शिव की उपासना करने लगी थी। उन दिनों कन्याओं के पढ़ने-लिखने की कोई विशेष व्यवस्था नहीं थी। उन्होंने घर पर ही अपने-अपने स्वाध्याय के बल पर इधर-उधर से पढ़ना सीखा। इनकी नियमित शिक्षा-दीक्षा न हो सकी।

इनके पतिदेव उन दिनों इलाहाबाद के लोकसेवक मण्डल में काम करते थे। उनका वेतन उन दिनों ६०/- रुपये महीना था। सुबह आठ बजे ही खाना खाकर वे दफ्तर के लिये निकल जाते और रात को १०-११ बजे लौटते थे। ललिता देवी को इस कर्मयोगी में उनके शिव के ही दर्शन होते थे। प्रतीक्षा करते-करते थक जाने से कभी-कभी तो ललिता देवी की आँखें बन्द होने लगतीं। माताजी कहा करती थी—"बेटी ! सो जा नन्हें का कोई आने का समय नहीं। क्यों अपनी नींद खराब करती है ? वह तुझे इस प्रकार प्रतीक्षा करते देखेगा तो दुःखी होगा।" ललिता अपने देवता को भोग लगाए बिना कैसे भोजन कर सकती थी ? कैसे सो सकती थी ? उन्हें इन्हें इतना परिश्रम करते देखती, साथ ही उनकी काया को देखती तो लगता कि वे अपने साथ ही नहीं उसके साथ भी अन्याय कर रहे हैं। एक दिन तो वह शिकायत ही कर बैठी। उसका यह साहस देखकर पहले तो वे मुस्कराये फिर बोले—"देखो ! सेना में लड़ने वाले सैनिकों के भी पत्नियाँ होती हैं। सभी पत्नियाँ यदि स्वार्थी हो जायँ और अपने पति को युद्ध में न जाने दें, तो देश की रक्षा कौन करे ? सैनिक मोर्चे पर लड़ते हैं, उनकी पत्नियाँ घर के मोर्चे पर रहती हैं। हमारी भारतीय देवियों का आदर्श यही रहा है कि उन्होंने अपने पति को वीरता, साहस और तितिक्षा की प्रेरणा दी है। वे मोर्चे पर लड़ते थे और उनकी पत्नियाँ अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से लड़ती थी और दोनों जीतते थे। आज वैसी ही लड़ाई फिर लड़ी जाने वाली है। भारत को स्वाधीन करने के लिये जो सैनिक लड़ रहे हैं, मैं भी उनमें से एक हूँ। हमारा दोनों का अब पृथक् व्यक्तित्व नहीं रहा। हम दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। तुम मुझसे अधिक बहादुर निकलोगी ऐसा मेरा विश्वास है।"

ललिता देवी ने उस दिन अपने आप को एक महान् उद्देश्य से सम्बद्ध पाया तो उनका मयूर नाच उठा। उन्हें एक ऐसे व्यक्ति की पत्नी बनने का सौभाग्य मिला, जिनका आदर्श हिमालय की तरह ऊँचा था। जीवन का एक-एक क्षण अपने पीड़ित देशवासियों की सेवा में अर्पित करने वाले तपस्वी पति का भार हल्का करने में वे जुट गईं। उन्होंने घर का सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर पति को पारिवारिक दायित्वों से सर्वथा मुक्त कर दिया ताकि उनका बहुमूल्य समय अपने उद्देश्य की पूर्ति में ही खर्च हो।

श्री शास्त्रीजी कहते थे—"मुझे आज तक किसी पारिवारिक समस्या का भान नहीं हुआ। मैं घर आता और खा-पीकर चला जाता। इससे मुझे आगे बढ़ने का मौका मिला।" आरम्भिक दिनों में जब वे लोकसेवा मण्डल के अन्तर्गत विदेशी दासता से मुक्ति पाने के लिये देश-सेवकों का निर्माण करते थे, इन्हें ७० रुपये (जो बाद में १०० रुपये हो गये थे) मिलते थे। महीना पूरा होते ही वे, ये रुपये ललिता देवी के हाथ पर रखकर निश्चिन्त हो जाते थे।

स्वतन्त्रता-आन्दोलन बढ़ता गया। आन्दोलन बढ़ने के साथ-साथ शास्त्रीजी के काम भी बढ़ते गये, उन्हें लम्बी अवधि तक जेल में रहना पड़ा था। जब वे नैनी जेल में थे, तब इनकी बच्ची बुरी तरह बीमार हो गई। आदर्शवादी शास्त्री जी पेरोल पर छूटने के लिये लिखित प्रतिज्ञा नहीं देना चाहते थे। ललिता देवी पर उन्हें भरोसा था। इन्होंने अपने पति को कभी आदर्शों से गिरने नहीं दिया। बच्ची अपने पिता को देखने के लिए तरसती हुई परलोक सिधार गई।

शास्त्रीजी को कर्मयोगी बनाने में ललिता देवी की त्याग तपस्या का महत्त्वपूर्ण हाथ था। बच्चे को टाइफाइड हो गया। शास्त्रीजी जेल से पेरोल पर छूटकर आये। पेरोल की अवधि पूरी हो चुकी थी। टाइफाइड तो समय पर ही ठीक होता। १०४ डिग्री तापमान में बच्चा कह रहा था—"पिताजी मत जाइये।" ललिता देवी ने हृदय पर पत्थर रखकर उन्हें विदा किया। आदर्श और ममता अपनी-अपनी ओर खींच रहे थे। यह ललिता देवी का धैर्य था कि उन्होंने पति को आदर्शों से डिगने न दिया।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्त्रियों में कई कामनाएँ होती हैं। वे चाहती हैं अपना घर हो, सुख-सुविधा के साधन हों, उनके अभावों में न पलें। ललिता देवी ने इस प्रकार की छोटी मनोभूमि नहीं अपनाई। उन्होंने अपने पति को कभी इसके लिये बाध्य नहीं किया। शास्त्रीजी वर्षों तक जेल में रहे। उस समय इन्होंने अपने परिवार का भरण-पोषण किस प्रकार किया वे ही जानती हैं। उन्होंने स्वेच्छा से गरीबी को वरण किया। अपने पति को कभी उन अभावों को बताकर उन्हें कमजोर नहीं बनाया।

भारत स्वतन्त्र हो गया। शास्त्रीजी वर्षों तक मन्त्री रहे, फिर प्रधानमन्त्री बने। इतने उच्च पद पर होते हुए भी उनके घर की स्थिति साधारण ही रही। उनको इस प्रकार निस्पृह बनाने में ललिता देवी का बहुत सहयोग रहा। उन्होंने ईमानदारी व सद्गुणों को ही सम्पत्ति माना। वे कहा करती थीं—"सच्चा सुख तो अपने ही अन्दर है, सोने-चाँदी में सुख ढूँढ़ने से नहीं मिलता।"

ललिताजी को उनकी समधिनें प्रायः कहा करती थीं—"बहिनजी आप बाबूजी से कुछ कहती नहीं हैं और नेता लोगों ने कोठियाँ बनवाली हैं। इतने साल मिनिस्टर रहते हुए भी बाबूजी तो वैसे के वैसे ही हैं न शरीर बढ़ा है और न घर का मकान बना है, न मोटर ही आई है। एक एम. एल. ए. भी पाँच वर्ष में लखपति बन जाता है।" इस पर ललिताजी हँस देती और कहती—"बहिनजी जिस सत्य और ईमानदारी ने उन्हें इतना मान दिया है, उसे खोकर धनवान बनना ये नहीं चाहते न मैं चाहती हूँ।"

जेल की यातनाएँ सहकर शास्त्रीजी का शरीर पहले ही कमजोर हो गया था। स्वतन्त्र भारत को सँवारने में उन्हें दिन-रात परिश्रम करना पड़ता था, दिल के दौरे पड़ने आरम्भ हो गये थे। श्रीमती शास्त्री को उनकी चिन्ता लगी ही रहती थी। मानसिक यन्त्रणा के मारे उनका बुरा हाल रहने लगा। एक ओर तो उनके देवता का स्वास्थ्य उन्हें विवश करता था कि उसकी रक्षा करे, दूसरी ओर सदियों से पिछड़े देश का पुनर्निर्माण था। वे मन ही मन घुटकर रह जाती थीं। एक दिन तो वज्रपात ही हुआ। सारा देश शास्त्री जी के लिये बिलख-बिलखकर रो पड़ा। ललिता देवी का सिंदूर पुँछ गया, आँखों से गंगा-जमुना बह निकली।

श्रीमती ललिता देवी ने अपने मोर्चे को पूरी बहादुरी से सम्हाला। नारी-पुरुष की निर्मात्री है। शास्त्रीजी के गौरवमय चित्र में ललिता देवी ने अपनी ममता, त्याग, तप तथा सादगी की तूलिका से रंग भरकर, उन्हें अमर बना दिया। वर्तमान सर्वग्राही अनैतिकता से लड़ने के लिये ऐसी ही महिलाएँ मोर्चा बाँध सकती हैं।

अमृता शेर गिल—
जिसने कला को जीवन प्रदान किया

छोटी-सी बालिका घर के बाग में तूलिका लेकर घण्टों बैठी रहती थी। वह वृक्ष, लताओं और पुष्पों के चित्र बनाती तथा उनमें रंग भरती थी। माता-पिता प्रारम्भ में तो इसे पुत्री की सनक मात्र समझते रहे। परन्तु एक दिन माँ का ध्यान बिटिया के चित्रों की ओर गया तो वह प्रसन्नता और आश्चर्य से ठगी-सी रह गयी। निरन्तर अभ्यास तथा दृढ़ लगन से उसकी कला इतनी निखर आयी थी कि विश्वास ही न होता था कि ये पाँचवर्षीय बालिका ने बनाये हैं। यही बालिका आगे चलकर अमृत शेरगिल के नाम से विश्व प्रसिद्ध कलाकारों में गिनी जाने लगी।

कला के क्षेत्र में नारियों के योगदान का प्रायः अभाव ही रहा है। एक पाश्चात्य विद्वान ने तो यहाँ तक कह दिया है कि विश्व में जितने महान् चित्रकार हुए हैं—वे सब पुरुष ही हैं। नारियाँ इस क्षेत्र में प्रायः आगे बढ़ ही नहीं सकतीं। परन्तु इन्होंने अपने अध्यवसाय से इस कथन को सारहीन कर दिखाया।

अमृत भारतीय थी। उनके माता-पिता उन दिनों हंगरी रह रहे थे। अस्तु, उनका जन्म ३० जनवरी, १९१३ में बुडापेस्ट (हंगरी) में हुआ था। इनकी माँ चाहती थीं कि ये बड़ी होकर डाक्टर बनें। परन्तु बालिका की रुचि कला की ओर थी। माँ ने भी सोचा कि बच्चे पर अपनी इच्छाओं को न थोपकर उसकी रुचि के अनुसार ही प्रोत्साहन देना चाहिए तभी उसकी प्रतिभा का पूर्ण विकास हो सकता है। उन्होंने कला-विषयक शिक्षण के लिए घर पर ही एक शिक्षक की नियुक्ति कर दी।

अध्यापक इनकी सच्ची लगन को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने अपना सारा ज्ञान शिष्य को प्रदान करने का निश्चय कर लिया। ठीक ही है—जहाँ पात्रता होती है, वहाँ दाता स्वयं ही मुक्त मन से लुटाता है। तीन वर्ष तक इनके निर्देशन में अमृत कला की साधना करती रही।

शिक्षक ने सोचा कि यदि वे इस क्षेत्र में निरन्तर बढ़ती रहे तथा परिश्रम करती रहें तो एक दिन विश्व की महान् कलाकार बनकर अपनी कला से समाज को लाभान्वित कर सकती हैं। अतएव इन्होंने एक दिन अवसर पाकर उनके पिता से कहा—"यद्यपि मुझे आपके पारिवारिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है तथापि मैं अमृत के विषय में आपसे कुछ कहना चाहती हूँ। आपकी पुत्री को कला के क्षेत्र में असामान्य रुचि है, यदि इसे इस विषय की उच्च शिक्षा दिलायी जाये तो निस्सन्देह एक दिन अपने प्रयास में असाधारण सफलता प्राप्त कर सकती है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.३० यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

पिता बिटिया की प्रशंसा सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने इस क्षेत्र में आगे बढ़ाने का पूरा-पूरा वचन दिया।

१९४२ में इनका परिवार इटली चला गया। अमृत आर्ट स्कूल में दाखिल हो गयी। वहाँ अध्ययन करते हुए भी इनकी कला की प्यास अतृप्त ही बनी रही। भारत लौटने पर इन्होंने घर पर ही अभ्यास जारी रखा तथा अपना सारा अवधान, मानसिक शक्तियाँ तथा श्रम इस ओर लगा दिया।

पन्द्रह वर्ष की आयु में ही ये इतने सुन्दर चित्र बनाने लग गयीं कि लोग देखते तो मुग्ध रह जाते। वे पूछते—"आप इतनी छोटी होते हुए भी ऐसे सुन्दर चित्र कैसे बना लेती हैं ?" अमृत हँस पड़ती और कहती—"आयु और कला में कोई सम्बन्ध नहीं। कला की साधना के लिए अध्यवसाय, तन्मयता और लगन चाहिए। यदि ये तीनों गुण बालक में हैं, तो वह भी श्रेष्ठ कलाकार बन सकता है। इनके अभाव में वृद्ध व्यक्ति भी किसी दिशा में कुछ कहने लायक प्रगति नहीं कर सकता।"

इन्हीं दिनों ये अपने माता-पिता के साथ पेरिस गयीं। एक दिन विश्वविख्यात कलाकार पीरेबेर्नो की चित्रकला को देखने तथा उनसे भेंट करने गयीं। उन्हें अपने बनाये हुये कुछ चित्र भी दिखाये। पीरे की सूक्ष्म दृष्टि ने तभी समझ लिया कि किशोरी में प्रतिभा के अंकुर हैं और यदि उन्हें पोषण मिले तो वे विकसित हो सकते हैं। उन्होंने कहा—"मैं स्वयं आपको इस क्षेत्र में निर्देशन देना चाहता हूँ।" अमृत को तो मानो बिना माँगे ही वरदान मिल गया। इन्होंने पाँच वर्ष तक उनके पास रहकर अत्यन्त परिश्रम और निष्ठा से अभ्यास किया। जब तक वे भारत लौटीं, उनकी ख्याति सर्वत्र फैल चुकी थी।

पेरिस के प्रोफेसर भी इनकी कला का आदर करते थे। प्रो. ल्यूरियन साइमन ने इन्हें अपनी 'इकोल डि बो आर्टस' नामक चित्रशाला में भर्ती कर लिया। इन्होंने कला की पाश्चात्यशैली पर अच्छा अधिकार कर लिया था। अमृतजी के अनेक चित्र विशिष्ट कला प्रदर्शनियों द्वारा प्रदर्शित किये गये तथा अनेक पत्रों में भी उनकी प्रशंसा की गयी। पाश्चात्यकलाशैली पर एक विदेशिनी का इतना अच्छा अभ्यास देख लोग ठगे से रह जाते थे। उन्हें 'ग्रेंड सैलों' की सदस्या भी बना लिया गया जो कि एक भारतीय के लिए अत्यन्त सम्मान का पद था।

भारत आने पर अमृत दुविधा में पड़ गयी। उन्होंने पेरिस के विलासमय वातावरण और रंगीनियों को ही अभी तक अपनी तूलिका से वाणी दी थी परन्तु अब उनके सम्मुख भारत की करुण-दशा थी। कुछ समय तक वे इस असमंजस में ही रहीं कि किसे छोड़ें, किसे अपनायें ? अन्ततः उन्होंने बाह्य चमक-दमक का परित्याग कर कला के आन्तरिक तत्त्व को उभारने का तथा भारतीय जन-जीवन को अपनी तूलिका द्वारा मुखरित करने का निश्चय किया।

कला के क्षेत्र में अमृत शेरगिल ने एक और साहसपूर्ण कदम उठाया। उन्होंने पाश्चात्य तथा पूर्वीय किसी भी कला का अन्धानुकरण न करके दोनों से आवश्यक तत्त्व लिए और उनका सफल समन्वय किया। इस शैली में इन्होंने जो चित्र बनाये, वे आन्तरात्मा का स्पर्श करने में सूक्ष्म थे। इन्होंने अपने चित्रों में जन-जीवन का, भारतीय दर्शन तथा संस्कृति का सफल चित्रण किया।

शेरगिल की कला पर गागिन तथा अजन्ता की चित्रकला का विशेष प्रभाव है। 'तीन बहिनें', 'पनिहारिन', 'वधू-शृंगार' आदि चित्रों में जीवन का निगूढ़ सत्य प्रस्फुटित हुआ तथा आशा-निराशा, सुख-दुःख के आकुल-व्याकुल भाव अत्यन्त आकर्षक रीति से अभिव्यक्त हुए हैं।

इनका मत था कि कला में मानवीय भावनाएँ उभारने तथा चिन्तन एवं अभिरुचि को मोड़ने एवं दिशा देने की अद्भुत क्षमता भरी पड़ी है। वह अमृत भी है, विष भी है। समाज को पतन के गर्त में भी डुबो सकती है तथा उत्थान के शिखर पर भी खड़ा कर सकती है। अतएव कला की महान् शक्ति का प्रयोग लोक-मंगल में ही होना चाहिए, समाज में अश्लीलता तथा दुष्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने में नहीं। दुःशासन बनकर नारी का विकृत तथा नग्न चित्रण करने वाले लोगों से इन्हें सख्त चिढ़ थी। ऐसे लोगों के लिए वे कहा करतीं—"ये कलाकार थोड़े ही हैं—समाज को पतन के मार्ग में गिराने वाले दानव हैं।"

चित्रकला को सीखने अनेकानेक विद्यार्थी इनके पास आते ही रहते थे। विश्वप्रसिद्धि पाकर भी अभिमान इन्हें छू तक न गया था। विद्यार्थियों को अत्यन्त स्नेह के साथ पढ़ाती थीं तथा के सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान कराने के लिए सदैव तत्पर रहती थीं।

५ दिसम्बर, १९४१ को २९ वर्ष की अल्पायु में ही कला की यह साधिका चिरनिद्रा में लीन हो गई। लोग सारी जिन्दगी में जो कार्य नहीं कर पाते वह उन्होंने थोड़ी-सी आयु में ही कर दिखाया। यद्यपि समय सभी के पास चौबीस घण्टे का होता है, शक्तियाँ सभी के पास एक-सी होती हैं तथापि जो उद्देश्य में लक्ष्य प्रगति में तन्मय हो जाते हैं, मानसिक क्षमताओं को एकाकारित कर आगे बढ़ते है, वे ही सफलता का वरण करते हैं। जैसाकि अमृत ने अपने साधनारत मनोयोग के द्वारा वरण किया।

साधारण महिला का महान् कार्य

अजीव नाम था उन महिला महान् का—'लेडी गाँधी'। बात जमशेदपुर की है। शायद क्रिश्चियन थीं। काम भी उनका नाम की तरह ही लोगों को विचित्र लगता रहा, जब तक कि वह पूर्णता की ओर बढ़ता रहा।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सबेरे तीन बजे ही उठ जाना और न जाने किस काम-काज का दफ्तर खोलकर बैठ जाना। सात बजे तक कागजों और कुछ साज-सामान के साथ व्यस्त रहना। दस बजे तक बच्चों और घर वाले को भोजन आदि से निवृत्ति कराकर अपने-अपने काम पर भेज देना और तब घर का प्रबन्ध कर खुद बाहर निकल जाना। दो-ढाई बजे लौटना। ऊन, पैसे, थैले आदि न जाने क्या सामान जो साथ लाई होतीं यथास्थान रखना और फिर घर की भोजन व्यवस्था में लग जाना। पाँच-छः बजे कुछ लेकर निकल जाना और सात बजे के लगभग कुछ लेकर घर आना। अजीब व्यस्त और न समझ में आने वाला कार्यक्रम इधर कुछ दिनों से उनका चल पड़ा था।

लोग अनुमान लगाने लगे—शायद कहीं कोई नौकरी कर ली है। हो सकता है कोई गृह-उद्योग प्रारम्भ कर रही हों ? ऐसा लगता है कोई संस्था चालू की है। निश्चय ही किसी सेवा संस्था की सेक्रेटरी हो गई हैं। किन्तु वे वास्तव में क्या करतीं और धरती-उठाती हैं, इसको अभी तक कोई ठीक से समझ न पाता था। पूछता कोई इसलिये नहीं था कि एक तो वे यों ही कुछ गम्भीर स्वभाव की थीं, दूसरी इस तरफ की उनकी व्याकुल-व्यस्तता ने उन्हें और भी मौन तथा गम्भीर बना दिया था। पति को केवल इतना पता था कि उनकी पत्नी कुछ अच्छा काम कर रही है, जिसके लिये उनका न टोकना और यदि दैनिक जीवन में थोड़ा-बहुत व्यवधान आ जाये तो उसे सह लेना ही उचित है।

धीरे-धीरे लेडी गाँधी की जुबान खुली और उनकी व्यस्तता का रहस्य भी। लोगों ने देखा कि उन्होंने स्थानीय महिलाओं की एक मीटिंग की और सुना वे कह रही थीं—"पाकिस्तान से छिड़ी लड़ाई के मोर्चे पर जो अपने प्राणों की बाजी लगाकर जूझ रहे हैं। वे सब हमारे पिता, ताऊ, चाचा, भाई और बेटे-पोते ही तो हैं। मोर्चे पर जीवन की सारी सुविधायें सिपाही के कठोर कर्त्तव्य छीन लिया करते हैं। मैदान की इन्च-इन्च भूमि—अपनी को हमारे भाई-बन्धु अपने रक्त से रंगकर शत्रु को पीछे हटाते हैं कि हमारे देश की स्वतन्त्रता सुरक्षित रहे और हम सब मान-सम्मान के साथ अपना नागरिक जीवन चलाती रहें। लेकिन हम सब उनके इस अनन्त उपकार, अखण्ड बलिदान के बदले उनके लिये क्या कर रही हैं ? यह सोचना कि उनके लिये सब कुछ अथवा कुछ करना सरकार का ही काम है गलत होगा। जनता के सहयोग के बिना सरकार निर्बल और निकम्मी हो जाती है, जिसका परिणाम पराधीनता और सम्मानहीनता तक हो सकता है। आइये हम सब मिलकर उन बलिदानी वीरों की महानता में जो कुछ सहायता, भेंट, पूजा अथवा उपहार भेज सकें भेजें।"

नारियों के रोम-रोम में उत्साह की वह लहर दौड़ गई, जो किसी भी देश, राष्ट्र अथवा समाज के सौभाग्य को चिरंजीवी रखने के लिये संजीवनी कही जा सकती है। काम शुरू हो गया।

महिलाओं ने लिपिस्टिक और पाउडर छोड़ा, पैसे दिये, दोपहर का आलस्य व निद्रा का त्याग किया, समय दिया। जो बुन सकती थीं उन्होंने स्वेटर, मोजे और दस्ताने बुनना शुरू किया, जो बुनना नहीं जानती थीं, उन्होंने जल्दी-जल्दी सीखना शुरू किया। घर पर महिलाओं के मशीन जैसे हाथों में प्रतियोगिता भाव से सलाइयाँ चलने लगीं। जब तक दाल, शाक पकती है, सलाई चलती है। जुबान बच्चों को पढ़ाती जाती है और हाथ अपना काम करते रहते हैं। घर के काम से बचा हुआ एक-एक क्षण उपहार और भेंट के सृजन को समर्पित कर दिया गया। देखते-ही-देखते राष्ट्र-रक्षकों के लिये निर्धारित उपहारों का कोटा पूरा हो गया।

पच्चीस दिसम्बर बड़े दिन का उल्लास लेकर आया और मेजर सोहनी प्रमुख अतिथि के रूप में ! भेंट, समारोह हुआ और लेडी गाँधी ने उन्हें यह कहते हुए लगभग दो सौ ऊनी स्वेटर, डेढ़ सौ जोड़ा दस्ताने और इतने ही जोड़े मोजों के साथ मिठाइयों व बिस्कुटों के चार पैकेट और छः ट्रान्जिस्टर भेंट किए कि हमारे सैनिक भाइयों को उनकी गरीब माँ-बहिनों के यह तुच्छ उपहार भेजने की कृपा करें।

मेजर सोहनी ने आर्द्र आँखों, उत्सुक हाथों से वे उपहार लिए और गद्‌गद् कण्ठ से धन्यवाद देते हुए कहा—"जिस राष्ट्र में लेडी गाँधी जैसी महान् महिलायें हैं, उस राष्ट्र की विजय को कौन बाधा दे सकता है ?"

एक साधारण-सी महिला लेडी गाँधी देखते ही देखते जनता की आँखों पर चढ़कर महान् हो गईं। सच्ची सेवा से कौन-सा श्रेय दुर्लभ रह सकता है ?

स्वयं अपना मार्ग बनाने वाली—

प्रतिभा बनर्जी

आज भारत को पुनः नारी के रमणी तथा कामिनी स्वरूप की आवश्यकता न होकर उसके शक्ति, दुर्गा तथा चण्डी स्वरूप की ही आवश्यकता है। दुर्गा स्वरूप, केवल हाथ में तलवार लेकर युद्ध क्षेत्र में उतर पड़ने से ही प्रगट नहीं होता। आज के इस बुद्धि प्रधान युग में प्रत्येक वस्तु का स्वरूप सूक्ष्म तथा बुद्धिग्राही हो गया है। आज का संघर्ष, बौद्धिक संघर्ष ही है। उदाहरणार्थ—अभी तक जितने भी देश स्वतन्त्र हुए अथवा जीते गये केवल तलवार तथा तोपों के बल पर ही, किन्तु पहला उदाहरण है कि भारत ने बौद्धिक संघर्ष करके, अहिंसात्मक युद्ध किया और विदेशियों के हाथ में गई हुई सत्ता को पुनः प्राप्त किया।

ऐसे ही संघर्ष में अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करने वाली है—श्रीमती प्रतिभा बनर्जी, जिन्होंने निज के ही सतत् प्रयास एवं श्रम के बल पर समाज से टक्कर लेते हुए अपना उल्लेखनीय विकास किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.३२ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

आपके पिता उत्तर बिहार के प्रमुख एडवोकेट स्व. राय बहादुर सुशीलकुमार राय थे। मिथिला के एक छोटे कस्बे मधुबनी में आपका जन्म हुआ।

यहाँ लड़कियों के लिए कोई ऊँचा स्कूल न था। उस समय स्त्री शिक्षा की आवश्यकता भी इतनी नहीं समझी जाती थी जितनी अब, शिक्षा के प्रसार युग में समझी जाने लगी है। सुशिक्षित परिवार में जन्म लेने के कारण और कुछ अपने संचित संस्कारों के कारण—बालिका प्रतिभा में विद्याध्ययन के प्रति अदम्य जिज्ञासा थी। उन्होंने अपने पिताजी से बहुत आग्रह किया कि वे उन्हें कहीं बाहर पढ़ने के लिए भेज दें। किन्तु उस समय की प्रचलित रूढ़िवादी परम्पराओं के वशवर्ती विचारधारा के कारण वे उन्हें विद्याध्ययन के लिये बाहर न भेज सके।

प्रगति की लालसायें—निर्बल मनोबल वालों के मन में जन्मती हैं, तो अशक्त बीज की भाँति सड़-गलकर नष्ट हो जाती हैं किन्तु जब ये किसी संकल्पशील अन्तःकरण में जन्मती हैं—तो साहस, विवेक तथा निरन्तर प्रयत्नशीलता के खाद-पानी के बल पर वे निर्बाध गति से विकसित, पुष्पित तथा पल्लवित होती चली जाती हैं और जब उसके सुफल सामने आते हैं तब वे ही, जो उनका विरोध करते थे कभी उनका लोहा मान जाते हैं और प्रशंसा करते नहीं थकते।

प्रतिभा जी ने भी निश्चय कर लिया कि वे अपने जीवन का कोई उद्देश्यपूर्ण हल अवश्य खोज निकालेंगे। पर उसके लिए सर्वप्रथम आवश्यकता शिक्षा की थी। उन्होंने विचार किया कि अभी तो पिता के घर हूँ—तभी इतनी अन्ध मान्यतायें तथा सामाजिक बन्धन आड़े आ रहे हैं। पतिगृह में पहुँच जाने पर तो ये सीमायें और भी संकुचित हो जावेंगी। किन्तु विवाह भी जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है। तब ? तब कोई ऐसा मार्ग अवश्य ढूँढ़ना पड़ेगा, जो साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।

जब स्वयं ही पहाड़ काटकर मार्ग बनाना है तो क्या काँटों, कंकरों की परवाह करना ? और क्या किसी आसरे, सहारे को तकना। उन्होंने निश्चय किया कि वे ऐसे ही युवक से विवाह करेंगी, जो प्रगतिशील विचारधारा का हो तथा उनके विकास में बाधक न होकर सहायक बन जाय और उन्होंने स्वयं ही चुनाव करके श्री तुलसीप्रसाद बनर्जी से विवाह किया, जो बहुत ही सुधरे हुए विचारों के तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण के व्यक्ति हैं।

यहाँ भी प्रतिभा जी को समाज से काफी संघर्ष करना पड़ा। वे वैश्य परिवार में जन्मी थीं तथा श्री बनर्जी ब्राह्मण परिवार में। उस समय समाज में अन्तर्जातीय विवाह भी किसी अजूबे से कम न था। पर इस प्रथम परीक्षा में वे उत्तीर्ण हुईं और विवाह सम्पन्न हो गया।

अब तो जैसे उन्हें उड़ने के लिये पर मिल गये थे। जीवन की संचित अभिलाषा पूर्ण करने का अवसर आ गया था। अब वे मनोयोगपूर्वक पढ़ने में ही दत्त चित्त हो गईं। पारिवारिक तथा अन्य उत्तरदायित्व सम्हालते हुए भी, केवल बचे हुए समय में ही उन्होंने अपनी पढ़ाई प्रारम्भ की।

कुछ दिनों में ही सीनियर कैम्ब्रिज पास कर लिया। तब इण्टर तथा बी. ए. की परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण कीं। परीक्षा में प्रथम आने के कारण उन्हें छात्रवृत्ति भी मिलने लगी थी।

अब बी. ए. करने के साथ कहीं एक सोपान पूर्ण हुआ था। अभी तो केवल समतल भूमि बनी थी—खड़े होने भर के लिये। भवन के निर्माण की रूपरेखा बनायी जा रही थी।

कई मानचित्र बने और बिगड़े। अपनी शिक्षा तथा प्रतिभा का उपयोग वे सामाजिक हितों में करना चाहती थीं। उनका उद्देश्य विद्या के माध्यम से केवल द्रव्यार्जन करना मात्र नहीं था। उनकी इच्छा थी कि वे अपनी योग्यता का लाभ ऐसे माध्यमों से वितरित करें, जो अधिक से अधिक व्यक्ति उससे लाभान्वित हो सकें।

अतः उन्होंने वकालत करने का निश्चय किया। उसके लिये एल. एल. बी. में प्रवेश लिया और उन्नीस सौ पचपन में प्रशंसनीय सफलता के साथ परीक्षा पास की।

अब उन्होंने वकालत करना प्रारम्भ किया। क्षेत्र कोई भी हो, पहले तो अभ्यास आवश्यक होता है, तब कहीं उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त होती हैं तथा विशेष योग्यता आती है।

कुछ दिनों तक उन्होंने सामान्य न्यायालयों में वकालत की। वे अधिकतम ईमानदारी के साथ श्रम करतीं और सम्पूर्ण लगन के साथ अपने पक्ष का प्रतिपादन। कुछ समय में ही उनकी योग्यता की धाक जम गई और उनकी गणना अच्छे स्तर के वकीलों में की जाने लगी।

सफलता से साहस उसी प्रकार बढ़ता है, जैसे एक जीना चढ़ लेने के पश्चात् मंजिल तक पहुँचने का विश्वास बढ़ता है।

अब वे कलकत्ता हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करने लगीं। बड़े-बड़े उलझे हुए केस आते और वे उन्हें आश्चर्यजनक रूप से सफलता के साथ सम्पादित करतीं।

"वे यथा नाम तथा गुण" हैं। उनकी तीव्र बुद्धि यथार्थ में ही "**बुद्धि नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मनः**" की उदाहरण है। अनोखी सूझ-बूझ एवं प्रगल्भ कार्य-कुशलता ने उन्हें और आगे बढ़ाया और वे कुछ समय में सुप्रीम कोर्ट में एडवोकेट बन गईं।

योग्यता को ही सम्मान प्राप्त होता है। अब उन्हें भारतीय कानूनवेत्ता सम्मेलन की अध्यक्षता करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आज भी उनकी गणना उच्चकोटि के न्यायवेत्ताओं में है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनके इस स्वरूप को देखते हैं और याद करते हैं उस किशोरी प्रतिभा को, जिसके मन में आगे पढ़ने की ललक, उछाह बन-बनकर घुमड़ती थी और परिस्थितियों का दबाव उसे पुनः नीचे की ओर धकेल देता था। पर उन्होंने अपने साहस, विवेक, प्रयत्न तथा पुरुषार्थ के बल पर अपने लिये स्वयं अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित कीं और मनोवांछित प्रगति करके भारतीय-नारी-समाज के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया।

उनका यह संघर्ष उन कई महिलाओं को कुछ प्रेरणा अवश्य दे सकता है जिनमें प्रतिभा है, योग्यता है, क्षमताएँ हैं, किन्तु प्रगति के मार्ग में प्रतिकूल परिस्थितियाँ सामने दीवार बनकर खड़ी हैं।

ज्ञान साधना को मूर्तरूप प्रदान करने वाली डॉ. इरावती कर्वे

फर्ग्युसन कॉलेज के भूतपूर्व प्राचार्य श्री दि. धों. कर्वे की पत्नी तथा महर्षिकर्वे की पुत्र वधू इरावती कर्वे उन महिलाओं में से एक हैं, जिन्होंने सामाजिक कुपरम्पराओं को तोड़कर अपने ही उदाहरण से यह सिद्ध कर दिखाया कि व्यक्ति चाहे तो अपनी पुरुषार्थ शक्ति से-कठिन-से-कठिन कार्यों को भी सरल बना सकता है और हर क्षेत्र में सफलता को वरण करने के लिये विवश कर सकता है।

यथा नाम तथा गुण के अनुरूप वे एक सरिता की तरह सदैव प्रवाहित होती रहीं। जीवन में विश्राम क्या होता है ? यह तो उन्होंने जाना ही नहीं। जिस युग में नारी शिक्षा को अनावश्यक माना जाता था। इरावती ने केवल २५ वर्ष की आयु में बर्लिन विश्वविद्यालय से मानव वंश शास्त्र में डॉक्टेरट की उपाधि प्राप्त की। इरावती कर्वे प्रथम भारतीय-महिला थीं, जिन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय से इतना बड़ा सम्मान प्राप्त किया।

सन् १९०५ में बर्मा में जन्म लेकर भी वे उच्च शिक्षा हेतु जर्मनी गईं। मानववंशशास्त्र उनका मुख्य विषय था। इसकी जानकारी प्राप्त करने के लिये वे देश के कोने-कोने में घूमीं। अफ्रीका, यूरोप और अमरीका आदि कितने ही देशों में उन्हें भ्रमण करने का अवसर मिला। वे वर्तमान काल की समस्याओं में ही नहीं उलझी रहीं वरन् भूतकाल का अध्ययन करके दोनों कालों के सत्य को पारस्परिक जोड़ने का प्रयास किया और भविष्यकाल के सम्बन्ध में भी कुछ अनुमान लगाये।

सन् १९३९ में वे पूना के डेवकन कॉलेज में समाजशास्त्र व मानव वंश शास्त्र विभागों की अध्यक्ष रहीं। महाभारत पर जब उनका 'युगान्त' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ तो महाराष्ट्र के अनेक विद्वानों ने उसकी आलोचना की। महाराष्ट्र सरकार तथा साहित्य-अकादमी द्वारा दिये गये पुरस्कारों से उस ग्रन्थ की उपयोगिता तथा महत्ता का ठीक-ठीक पता लगता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अँग्रेजी में 'हिन्दू सोसायटी एण्ड इण्टर प्रिटेशन', 'रेशियल प्रोब्लम इन एशिया', 'मील्स ऑफ वेस्ट खान देश' ग्रन्थों की रचना की।

उन्होंने सन् १९४८ से 'अभिरुचि' मासिक में अनेक लेख लिखने शुरू किये, जिनमें मानव-जीवन की अनेक समस्याओं का सजीव-चित्रण तथा उनका समाधान रहता है।

उनकी कही हुई बात को लोग मन्त्र-मुग्ध होकर सुनते थे। उनकी वाणी में माधुर्य तथा स्त्री-सुलभ कोमलता रहती थी। जीवन के अन्तिम दस वर्षों में हृदय-विकार से पीड़ित रहने पर भी उन्होंने अपने उद्देश्य में किसी प्रकार की ढिलाई न आने दी थी। वे अपना बिस्तर बाँधकर तैयार रहीं, परन्तु उन्होंने अपनी अस्वस्थता को किसी कार्य में बाधक न बनने दिया। बल्कि देखने में यह आया कि जिस कार्य में उन्हें आनन्द आता था, उसमें वे अपने आप को समर्पित कर देती थीं और सुख-दुःख की तनिक भी चिन्ता न कर लगी रहती थीं।

अक्का महादेवी—
जिसने वासना पर विजय पाई

कर्नाटक प्रान्त के एक छोटे-से ग्राम उद्रुतड़ी में एक साधारण गृहस्थ के घर एक कन्या ने जन्म लिया, अक्कामहादेवी उसका नाम रखा गया।

अक्का को उनके पिता श्री निर्मल ने संस्कृत की शिक्षा दिलाई। उससे उनके धार्मिक संस्कार बल पा गये उनके मन में आध्यात्मिक जिज्ञासायें जोर पकड़ गईं, उन्होंने सत्य की शोध का निश्चय कर लिया और उसी के फलस्वरूप वे ईश्वर-भक्ति, साधना और योगाभ्यास में लग गईं।

आज हमें पाश्चात्य सभ्यता बन्दी बना रही है, उन दिनों भारतवर्ष में मुस्लिम-संस्कृति और सभ्यता की आँधी आई हुई थी। मुसलमान शासकों की दमन नीति से भयभीत भारतीय अपने धर्म, अपनी संस्कृति को तेजी से छोड़ते जा रहे थे। ऐसे लोग थोड़े ही रह गये, जिनके मन में इस धार्मिक अवसान के प्रति चिन्ता और क्षोभ रहा हो, जिन्होंने अपने धर्म और संस्कृति के प्रति त्याग-भावना का प्रदर्शन किया हो।

अक्का महादेवी—एक साधारण-सी ग्राम्यबाला ने प्रतिज्ञा की कि वह आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर ईश्वर उपासना और समाज-सेवा में रत रहकर अपने धार्मिक गौरव को बढ़ायेगी।

अक्का का सौन्दर्य वैसे ही अद्वितीय था, उस पर संयम और सदाचार की तेजस्विता की कांति सोने में सुहागा बन गई। उनके सौन्दर्य की तुलना राजकुमारियों से की जाने लगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.३४ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :-

तत्कालीन कर्नाटक राजा कौशिक को अक्का महादेवी के अद्वितीय सौन्दर्य का पता चला तो उनके सामने विवाह प्रस्ताव रखा। साधारण लोगों ने इसे अक्का का महान् सौभाग्य समझा पर अक्का ने उस प्रलोभन को भगवान की उपस्थित की हुई परीक्षा अनुभव की। उन्होंने विचार करके देखा—सांसारिकता और धर्म-सेवा, दोनों बातें एक साथ नहीं चल सकतीं। भोग और योग में कोई सम्बन्ध नहीं। यदि अपनी संस्कृति को जीवन देना है तो सांसारिक सुखोपभोग को बढ़ाया नहीं जा सकता। इच्छाओं को बलिदान करके ही उस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। यह विचार आते ही उन्होंने कौशिक का प्रस्ताव ठुकरा दिया।

जिनके उद्देश्य छोटे और तृष्णा वासनाओं से घिरे हुए हों, वे बेचारे त्याग, तपश्चर्या का महत्त्व क्या जानें ? कौशिक ने इसे अपना अपमान समझा। उसने अक्का के माता-पिता को बन्दी बनाकर कारागृह में डलवाकर एक बार पुनः सन्देश भेजा—'अब भी सम्बन्ध स्वीकार कर लो अन्यथा तुम्हारे माता-पिता का वध कर दिया जायेगा।'

अक्का ने विचार किया—'लोक में अपने माता-पिता, भाई-बन्धु भी आते हैं। सबके कल्याण की बात सोचें तो उनके ही कल्याण को क्यों भुलायें ?' सचमुच यह बड़ा सार्थक भाव था, उसे भुलाने का परिणाम ही पलायनवाद के रूप में इस देश में पनपा।

तो भी उन्होंने सूझ-समझ से काम लिया—उन्होंने एक शर्त पर प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि वे समाज सेवा, संयम और साधना का परित्याग न करेंगी। कौशिक ने यह बात मान ली।

विवाह उन्होंने कर लिया पर अपनी निष्ठा से अपने कामुक पति को भी बदलकर सन्त बना दिया। अक्का और कौशिक दोनों ने मिलकर अपने धर्म, अपनी संस्कृति का सर्वत्र खूब प्रसार किया, उसी का यह फल है कि कर्नाटक प्रान्त अभी भी पाश्चात्य-सभ्यता के बुरे रंग से बहुत कुछ बचा हुआ है।

उदारमना—श्रीमती चम्पादेवी

उपेक्षा और प्रताड़ना भरे वातावरण में कोई भारतीय विधवा लोकलाज से इस नारकीय पीड़ा को सहन करती हुई जीती है। बात आज से कुछ दशाब्दी पूर्व की है। कानपुर का एक श्री सम्पन्न परिवार परन्तु एक विधवा के लिए सब कुछ सूना, व्यर्थ और विवशता से ढोया जाने वाला निरा भाररूप जीवन।

दुःख और वेदना के क्षणों में स्वयं को असहाय पाकर कोई आलम्बन शेष बचता है तो वह है—परमात्मा। उक्त विधवा चम्पादेवी का झुकाव भी ईश्वर की ओर हुआ और वह सब कुछ छोड़कर मथुरा आ गयी।

ससुराल में काफी सम्पत्ति थी परन्तु उसमें विधवा का क्या हक ? लेकिन निर्वाह की व्यवस्था तो विधवा के लिए भी आवश्यक थी। अदालत की शरण लेकर तीन सौ रु. की पेन्शन रूप में व्यवस्था बनी।

ईश्वर की सेवा में शेष सारा जीवन बिताने के लिए कृत-संकल्प की आवश्यकताएँ बहुत कम हो जाया करती हैं। ऐसे साधक का सामान्य जीवनक्रम भी तपस्वी सरीखा दीखने लगता है। चम्पादेवी को अपने तपस्वी जीवन के लिए अत्यन्त साधनों की ही आवश्यकता थी और वे इस पेंशन में से भी आवश्यकताभर ही उपयोग करती थीं। अतः अधिकांश पैसा बच जाता था।

बचत धन भी ईश्वर की सेवा साधना का अंग बने, इसका उपयुक्त उपाय चम्पादेवी ने ढूँढ़ निकाला था या मिल गया था। एक दिन मथुरा में ही घूमते हुए राजा महेन्द्रप्रताप द्वारा संस्थापित प्रेम महाविद्यालय देखा। उन दिनों मथुरा में एक छोटा-सा हिन्दी मिडिल स्कूल था। उच्च शिक्षा की भारी कमी महसूस होती थी। चम्पादेवी के अन्तःकरण ने सोचा—ज्ञानदान इस युग का सबसे बड़ा परमार्थ है। अपने पैसे को भी इस पुनीत कार्य में क्यों ने लगाया जाए।

कुछ हितैषी सज्जनों ने भी चम्पादेवी के इस विचार को सराहा और अच्छा कहा। विधवा ने अपने सारे जेवर बेच दिए और उनसे जो कुछ मिला, सबका सब विद्यालय को दे दिया। हर महीने जो कुछ पैसा बचता वह भी नियमित रूप से विद्यालय को ही दिया जाने लगा। सहायता का स्रोत खुल जाने पर विद्यालय नित प्रतिदिन प्रगति करने लगा और देश की आदर्श संस्थाओं में उसका गौरवपूर्ण स्थान है।

यों भजन तो कितने ही लोग करते हैं। परन्तु सार्थकता का सौभाग्य जिन्हें मिलता है, ऐसे साधक गिने-चुने ही हैं। इसका एकमात्र कारण है, भजन के फलस्वरूप अपनी तुच्छ मनोकामनाओं और मनोरथ पूर्ति की व्यापारिक शैली को न छोड़ पाना। पूजा, उपासना का लक्ष्य आत्म-शुद्धि, सद्बुद्धि की प्रार्थना है और जो इस ढंग से ईश्वर की आराधना करते हैं, वे अयाचित ही परमात्मा के बहुमूल्य अनुदानों से लाभान्वित होते रहते हैं।

भगवान की प्रसन्नता सत्कर्म के लिए प्रेरित करती है। चम्पादेवी की सार्थक-पूजा-उपासना से ईश्वर ने उसे वह मार्ग सुझाया। मितव्ययितापूर्वक अपना निर्वाहकर जनता जनार्दन की सेवा के लिए ज्ञानामृत वितरित करने के लिए जो कुछ किया, उससे मिलने वाला आत्मिक आनन्द और सत्कीर्ति अन्य निर्बल मनोभूमि वालों को कहाँ मिलती है ?

उनके द्वारा स्थापित और पालित-पोषित चम्पा अग्रवाल विद्यालय का वट-वृक्ष आगे चलकर बहुत समृद्ध और विशाल हो गया। इण्टर कॉलेज विभाग में ढाई हजार से भी अधिक छात्र और सौ के लगभग अध्यापक

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। डिग्री कॉलेज, बाल मन्दिर, कन्या विद्यालय आदि विभागों में बड़ी संख्या में छात्र और अध्यापक माता सरस्वती की आराधना में लगे हुए हैं।

चम्पा अग्रवाल विद्यालय देखने में शिक्षा संस्था भले ही हो परन्तु मूल में चम्पादेवी की उदारता, दूरदर्शिता और सच्ची साधना का प्रकाश ही दीख पड़ता है।

श्रीमती अन्नाचेण्डी— गृहिणी, पत्रकार, विधायिका और हाईकोर्ट जज

१९२७ में त्रावनकोर से लॉ कॉलेज में एक बाईस वर्षीय युवती ने प्रवेश लिया। यह पूरे केरल प्रदेश के इतिहास में पहली घटना थी, जब किसी साहसी महिला ने विधि-क्षेत्र में पुरुषों के एकाधिकार को तोड़ने और महिलाओं के लिये प्रगति के द्वार खोलने का साहस दिखाया हो। लीक से हटकर, परम्पराओं से हटकर कोई कार्य किया जाता है तो रूढ़िवादी और परम्परावादी समाज पर उसकी प्रतिक्रियाएँ भी कम नहीं होतीं। इन प्रतिक्रियाओं को सहना और अपने विवेकसम्मत मार्ग पर अड़े रहना बड़े दिल-गुर्दे का काम होता है।

इस युवती को भी उन सब परिस्थितियों से गुजरना पड़ा, जो अच्छों-अच्छों को विचलित कर देती हैं। पूरे लॉ कॉलेज में वह अकेली लड़की थी। बत्तीस दाँतों के बीच अकेली जीभ की सी विषम स्थिति थी, उसकी अपने एकाधिकार का व्यूह टूटने की खीझ और साथ ही मन में बसा यह पूर्वाग्रह कि लड़कियाँ क्या खाकर कानून की पढ़ाई करेंगी और कर भी लें तो उनकी पतली, कमजोर आवाज कैसे न्यायालयों में गूँज सकेगी, वह तो नक्कार खाने में तूती बनकर ही रह जायेगी, यह सब बातें मिलकर लड़कों को इस अकेली लड़की का मजाक बनाने के लिये उकसाती थीं। वे सीटियाँ बजाते, नित नये फिकरे कसते और उसे परेशान करते थे। स्थिति उस समय और विकट हो गयी, जब इस विवाहिता युवती ने एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया। कक्षा में कोई शैतान छात्र बच्चे के रोने की आवाज निकालकर उसे चिढ़ाने व परेशान करने का प्रयास करता तो उसकी हिम्मत भी टूटने लगती पर तभी उसके भीतर से साहस का संचार होता—"अन्ना। तू भी क्या इन बातों से परेशान होती है। तू नारी जाति के लिये समानता का एक मुक्ति द्वार खोलने के लिये उठ खड़ी हुई है। नया मार्ग बनाने के लिये तो मार्ग के काँटों और कंकड़ों को तो हटाना ही पड़ेगा। परम्पराओं के पत्थरों को तोड़कर गिट्टी बना उन्हें मार्ग में बिछाना ही पड़ेगा।" और अन्तःस्फूर्त यह विचार उसे नया साहस दे जाता था।

समाज से भी उसे कम अवरोध नहीं मिले थे। हर कोई यही कहता था क्या करेगी पढ़कर ? लॉ कर भी लिया तो वकालत कैसे कर पाएगी ? कोई कहता अरे सिर फिर गया है इसका। भले घर की बहू-बेटियाँ अदालत में जायँ। राम-राम कैसा जमाना आ गया है कि लड़कियों को भी वकालत करने की सूझ रही है। कभी-कभी तो यह सुनकर उसकी भी हिम्मत डूबने लगती कि पुरुषों की भारी-भरकम आवाज का सामना वह अपनी पतली-सी मधुर आवाज से कैसे कर सकेगी ? पर जब वह यह सोचती कि नारी जाति के लिये इस क्षेत्र में जगह बनानी है तो उसे यह सब करना ही होगा। वह अपने अकेले के लिये नहीं सोचती थी। इसमें समाज का हित है, पूरे नारी समाज का हित है। अतः वह इसमें असफल नहीं हो सकती क्योंकि जहाँ एक से अधिक लोगों का हित होता हो वहाँ परमेश्वर भी सहायक होता है।

त्रावनकोर के लॉ कॉलेज में प्रवेश लेने वाली यही युवती आगे चलकर भारत ही नहीं पूरे ब्रिटिश कॉमनवेल्थ की पहली महिला जज बनने का गौरव प्राप्त कर सकी थी। श्रीमती अन्नाचेण्डी, यही है उस प्रगतिशील महिला का नाम, जिसने भारतीय नारी के लिये विधि-क्षेत्र के काँटे-कंकड़ बीनकर मार्ग बनाया था। यह उन्हीं के उस सत्साहस का परिणाम है कि आज हर कहीं महिलाएँ को काला कोट पहने न्यायालय में वकालत करती देखी जा सकती हैं। कई महिलाएँ मजिस्ट्रेट व जज बनने में भी सफल हुई हैं। अब तो एडमिनिस्ट्रेशन के क्षेत्र में भी वे अपना जौहर दिखा रही हैं। एक समय भारतीय-समाज में स्त्री का न्यायालय में जाना अपमानजनक माना जाता था, उस रूढ़ि को तोड़ने की वीरता अन्नाचेण्डी ने ही दिखायी थी।

श्रीमती अन्ना चेण्डी का जन्म केरल के अलप्पी (त्रावनकोर) नगर के एक प्रतिष्ठित परिवार में सन् १९०५ में हुआ। उस समय हमारा देश न केवल अँग्रेजी दासता से जकड़ा हुआ था वरन् हमारा समाज भी हानिकारक और निरर्थक मूढ़-परम्पराओं से जकड़ा हुआ था, स्थिति समाज की आज भी कुछ विशेष सुधरी नहीं है, इसके लिये आगे भी प्रयास चलते रहने चाहिए। ये प्रयास अन्नाचेण्डी जैसी जाग्रत महिलाएँ कर सकती हैं।

बालिका अन्ना यों तो सम्पन्न और प्रतिष्ठित परिवार में जन्मी थी पर वह अपने आस-पास लड़कियों और लड़कों के साथ जिस प्रकार असमानता का बर्ताव होते देखती थी, उसका कुछ अंश उसके साथ उसके परिवार वालों के द्वारा भी बरता जाता था। इसका कारण उसकी बुद्धि में नहीं आता था। ईश्वर ने लड़के व लड़कियों को एक ही जैसा बनाकर भेजा है, तो फिर उनके साथ परिवार और समाज में यह भेदभाव क्यों बरता जाता है ? उसके मन में इस प्रश्न का उत्तर उसे कुछ नहीं मिला। इसका अर्थ यही था कि यह असमान व्यवहार नारी-जाति के प्रति एक प्रकार का अन्याय ही है। वह इस अन्याय का विरोध करेगी। यह निश्चय उसने अपने प्रारम्भिक जीवन में ही कर लिया था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.३६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

बचपन से ही एक उच्च ध्येय मन में जाग जाने के कारण अन्ना ने पढ़ने-लिखने की ओर विशेष ध्यान देना आरम्भ किया। वह खूब परिश्रम से विद्याध्ययन करती, उसकी प्रतिभा विकसित होती गयी और उसे परिवार वालों और अध्यापकों ने विलक्षण के विशेषण से विभूषित कर दिया था। अपने सहपाठियों में वह श्रेष्ठ घोषित होती तो उसे एक गर्व मिश्रित आनन्द होता था। उसके मन में यह धारणा पुष्ट होती जाती थी कि वह आगे भी इसी तरह शीर्षस्थ शिखरस्थ रहती रहीं, तो कोई कारण नहीं कि वह पुरुषों की ही तरह मनचाहे क्षेत्र में आगे न बढ़ सके। उसकी इस विलक्षण प्रतिभा का परिचय पाकर उसके माता-पिता को भी यह ज्ञात हो गया कि उनकी अन्ना आगे चलकर मात्र गृहिणी ही नहीं वरन् समाज का एक सक्रिय घटक भी बनेगी।

मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के साथ ही अन्ना ने यह निश्चय कर लिया कि वह आगे चलकर वकील बनेगी क्योंकि अभी कानून के क्षेत्र में महिलाओं का अपना कुछ भी दखल नहीं है। वह कानून पढ़ेगी तो वह नारी जाति की समता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण काम कर सकेगी।

प्रचलित परम्पराओं के अनुसार अन्ना का विवाह जल्दी ही हो गया था। अब वह श्रीमतीअन्नाचेण्डी बन चुकी थी। हमारे समाज में यह परम्परा बड़ी ही विघातक कि लड़के लड़की के अपने शैक्षणिक और वैयक्तिक अरमान पूरे होने के पूर्व ही उन्हें विवाह-बन्धनों में बाँधकर उनकी प्रगति का मार्ग अवरुद्ध कर दिया जाता है।

सौभाग्य से अन्ना का विवाह एक ऐसे व्यक्ति से हुआ, जो विचारों से सुधारवादी और सुलझे हुए थे। उसके पति श्री पी. सी. चेण्डी तब पुलिस इन्स्पेक्टर थे। पर उन्होंने अपनी पत्नी पर पुलिस इन्स्पेक्टरी नहीं जमायी। उन्होंने अन्ना की भावनाओं को समझते हुए अपनी ओर से पहल की कि वह अपनी पढ़ाई का क्रम जारी रखे। अतः अन्ना चेण्डी के साथ वह कुछ नहीं हुआ जो सामान्य भारतीयनारी के साथ होता है। हमारे यहाँ लड़कियों को पढ़ाया तो जाने लगा है पर उनकी उस पढ़ाई का समाज को पूरा लाभ मिले, इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। पढ़ी-लिखी बहू घर आये यह तो सभी चाहते हैं पर वे उससे काम वही लेना चाहते हैं। मात्र गृहिणी का या बहुत हुआ तो उसको नौकरी कराकर परिवार की आय बढ़ाने का। इन दो के अतिरिक्त तीसरी कोई उपयोगिता उन्हें दिखती ही नहीं। हम यह नहीं कहते कि नौकरी बुरी है या चूल्हा, चक्की करने में नारी के हेठी होती है, सो नहीं करना चाहिए। किन्तु पढ़ी-लिखी महिला अपनी नारी जाति के उत्थान और समाज-सुधार के काम में भी कुछ योगदान दे सकती हैं। इस सम्बन्ध में कितनी महिलाएँ सोचती हैं ? कितने परिवार सोचते हैं ?

श्रीमती अन्ना चेण्डी ने बी. ए. किया। उसके बाद एल. एल. बी. किया। १९३० में त्रावनकोर के न्यायालय में महिला वकील के रूप में खड़ी होने वाली यह प्रदेश की प्रथम महिला थी। संघर्ष की समाप्ति यहाँ भी नहीं हुई थी। पहले कॉलेज के छात्र उपहास करते थे, तो अब यहाँ पुरुष वकीलों के व्यंग बाणों की बौछारें सहनी पड़ीं। किन्तु इन सबके लिये तो समग्र मानसिक तैयारी करके वे कार्यक्षेत्र में आई थीं। वे जानती थीं कि ये व्यंग बाण तभी तक चल सकते हैं, जब तक वे अपनी योग्यता प्रमाणित न कर दें। जब वे धड़ाधड़ केस जीतने लगीं और उनकी पतली पर तर्क भरी वाणी न्यायालय में गूँजने लगी तो लोगों की बोलती बन्द हो गयी। थोड़े ही दिनों में वे त्रावनकोर की शीर्षस्थ वकील बन गयीं।

वकालत में सफलता अर्जित करने के बाद उनका नया कैरियर आरम्भ हुआ, न्यायाधीश के रूप में। वे सबसे पहले छोटी अदालत में मुंसिफ बनीं। १९३८ में वे भारत की प्रथम महिला जिला मजिस्ट्रेट बनीं। उसके बाद तो वे प्रगति की सीढ़ियाँ चढ़ती ही गयीं। यह सब किसी सिफारिश या पहुँच के कारण नहीं हुआ। उनकी योग्यता व प्रतिभा ही सबसे बड़ी सिफारिश थी। वे सामान्य मुंसिफ से हाईकोर्ट की महिला जज के सम्मानित उच्च पद पर एक दिन में नहीं पहुँच गयीं। उसके लिये वे सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ी थीं। १९४३ में वे एडीशनल डिस्ट्रिक्ट जज बनीं तदनन्तर १९४८ में डिस्ट्रिक्ट जज। १९५९ में जब वे केरल हाईकोर्ट की जज बनीं तो वे राष्ट्रमण्डल की प्रथम महिला जज के रूप में जानी गयीं।

श्रीमती चेण्डी के पति विवाह के समय पुलिस इन्स्पेक्टर थे, वे भी उत्तरोत्तर करते हुए डिप्टी इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस के पद पर पहुँचे। दोनों की इस प्रगति के पीछे उनके पारस्परिक सौहार्द्र, सहयोग का बड़ा हाथ रहा था। उन्हें एक-दूसरे से दूर-दूर भी रहना पड़ा था। ऐसी स्थिति में गृहिणी और परिवार के कर्त्ता का सम्मिलित दायित्व श्रीमती चेण्डी को निभाना पड़ा था। अपने कैरियर, परिवार और सामाजिक दायित्व में से एक को भी उपेक्षित नहीं रहने देकर, उन्होंने नारी की सामर्थ्य का एक नया आयाम प्रस्तुत किया है।

इतना सब करते हुए भी उन्होंने अपनी लेखन, सम्पादन की अभिरुचि को पूरा करने के लिये जाने कहाँ से समय निकाल लेती थीं। उन्होंने श्रीमती नामक एक पत्रिका का संचालन-सम्पादन भी किया। यह केरल की प्रथम महिला पत्रिका है। इसके कुशल सम्पादन के माध्यम से उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अपना अधिकार प्रमाणित किया। वे त्रावनकोर विधान परिषद् की सदस्या भी रही थीं। एक वकील, जज, पत्रकार और विधायक के रूप में नारी अधिकारों के लिये उन्होंने जमकर संघर्ष किया है। नारी-जागरण के क्षेत्र में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस संघर्ष और सुधार में भाग लेते हुए भी उनके भीतर की 'माँ', 'नारी', 'पत्नी' और 'गृहिणी' को रंच मात्र भी हानि नहीं उठानी पड़ी। पति के प्रति समर्पणश्रद्धा, बच्चों के प्रति ममता और उनके सुख-सन्तोष का उन्हें हर समय ध्यान रहा है। अपने पति के कमीज की बटन टाँकने और उनकी पसन्द के पकवान बनाकर उन्हें तृप्ति प्रदान करने में वे उतना ही आनन्द अनुभव करती हैं, जितना किसी मुकदमे का निर्णय सुनाने में। आज वे कई पोते-पोतियों की दादी हैं। नारीत्व को व्यापक, क्षितिज प्रदान करने वाला उनका यह प्रेरक जीवन भारतीय नारी के लिए आदर्श बनने योग्य है।

कृषि-विशेषज्ञ महिला—
श्रीमती लक्ष्मी रघुरमैया

किसी उच्च-शिक्षा प्राप्त सुसंस्कृत महिला का कृषक के नाते सम्मान भारत में आज यद्यपि आश्चर्यजनक प्रतीत हो, पर वह दिन दूर नहीं जबकि यहाँ की पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ भी कृषि-फार्म, डेरी-फार्म आदि कार्यों में रुचि लेने लगेंगी। देश की समृद्धि और पारिवारिक रहन-सहन में इन प्रवृत्तियों की नितान्त आवश्यकता अब महिलाओं को भी महसूस हो रही है और इस दिशा में पहल भी आरम्भ हो गई है। ऐसी ही पहल करने वाली महिलाओं में श्रीमती रघुरमैया अग्रगण्य हैं।

'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' की महामन्त्री लक्ष्मी रघुरमैया पिछले दिनों रूसी महिला सरवेति के निमन्त्रण पर मास्को गई थीं, जहाँ भारतीय महिलाओं की प्रतिनिधि के नाते उनका यथोचित सम्मान तो हुआ ही, सोवियत सरकार द्वारा उन्हें 'सर्वोत्तम सामूहिक कृषक' के रूप में एक स्वर्ण-पदक से भी अलंकृत किया गया। श्रीमती रघुरमैया ने बताया कि "रूस में अधिकांश कृषि विशेषज्ञ महिलाएँ ही हैं। जब मैंने उन्हें अपनी योजनाओं व भारत में किये गये अपने प्रयोगों से अवगत कराया और उनसे इस सम्बन्ध में विचार-विनिमय किया तो मुझे यह जानकर बड़ा बल मिला कि मेरी 'थिओरी' में मौलिक गुण विद्यमान हैं, जिनके कार्यान्वयन के लिए केवल अनुकूल परिस्थितियों की अपेक्षा है।

श्रीमती लक्ष्मी रघुरमैया केन्द्रीय पेट्रोलियम व रसायन मन्त्री श्री के. रघुरमैया की पत्नी हैं। किन्तु इस नाते नहीं, अपितु स्वयं अपनी प्रतिभा और बहुमुखी व्यक्तित्व के कारण ही उनका भारतीय-महिला-समाज में ही विशिष्ट स्थान है। वे जितनी सफल समाज-सेविका हैं, उतनी ही सफल गृहिणी एवं पाक-कला विशारदा भी हैं। एक ओर अनेक भाषाओं की व्यंग-शैलीकार लेखिका के रूप में उन्होंने ख्याति प्राप्त की है, तो दूसरी ओर कृषि विशेषज्ञ के रूप में भी।

अ. भा. महिला सम्मेलन से उनका बहुत पुराना सम्बन्ध है। सम्मेलन की महामन्त्री के नाते उत्तरदायित्व वहन करते हुए वे अन्य संस्थाओं में भी सक्रिय हैं। 'इण्डियन लीग फार पीस एण्ड फ्रीडम', 'भारतीय ग्रामीण महिला संघ' और 'भोजन की आदतों में परिवर्तन हेतु नियुक्त महिला समिति' की आप उपाध्यक्षा हैं और 'भारतीय-महिला-स्वैच्छिक-सेवा' की उपनिर्देशिका हैं।

इसी समिति के अन्तर्गत 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन के सिलसिले में उन्होंने स्वयं दो कृषि-फार्म स्थापित किये हैं, जिनमें से एक पर सामूहिक कृषि का प्रयोग चल रहा है और दूसरे फार्म पर बकरी-पालन द्वारा दुग्ध उत्पादन का कार्य सफलतापूर्वक जारी है। सोवियत-रूस द्वारा इन्हीं सेवाओं के फलस्वरूप आपको 'स्वर्ण-पदक' प्रदान किया गया है।

प्रतिवर्ष ८ मार्च को रूस में 'अन्तर्राष्ट्रीय-महिला-दिवस' बड़ी शान-बान से मनाया जाता है। श्रीमती रघुरमैया ने वहाँ से लौटकर बताया—"रूस में आज महिलायें खेतों, कारखानों से लेकर अन्तरिक्ष विज्ञान की शोध तक के कार्यों में पुरुषों से बाजी ले रही हैं और इसीलिये आज रूस में स्त्रियों का इतना सम्मान है। रूस में बालकों को यह सिखाया जाता है कि वे अपनी काम-काजी माताओं का उचित सम्मान करें और उनके काम में पूर्ण सहयोग प्रदान करें। भारत में भी काम-काजी स्त्रियों के सम्मान और उनके प्रति पति व बच्चों की सहयोगी भावना का विकास करके ही समाज आगे बढ़ सकता है।

महिला-दिवस-समारोह पर रूसी बच्चों और पतियों द्वारा अपनी माताओं और पत्नियों के लिये उपहारों की खरीद, उनके मनोरंजन के लिए विविध आयोजनों के प्रति उत्साह और परिवारों में सम्मिलित खुशी का वातावरण देखकर श्रीमती रघुरमैया बहुत प्रभावित हुईं। उनके संस्मरण सुनाते समय भारत में महिलाओं के उज्ज्वल भविष्य का सुखद स्वप्न उनकी आँखों में रह-रहकर तैर जाता था।

भारत की प्रथम महिला इन्जीनियर—
श्रीमती ललिता

सन् १९३७ का पराधीन भारत। उस समय देश में महिलाओं की विशेषतया विधवाओं की कितनी दयनीय दशा थी, उसकी कल्पना ही की जा सकती है। एक ओर एक लम्बी अन्धेरी राह थी, जिस पर चलने के लिए प्रायः उस समय की विधवायें बाध्य थीं—कुटुम्बीजनों की सेवा करते हुए और उनके आश्रय में पलते हुए रात-दिन अपमान के घूँट पीने की राह। दूसरी ओर एक राह थी, जिसमें पग-पग पर काँटे बिछे थे, और विरले व्यक्ति ही इस पर चलने का साहस कर पाते थे पर जो चल पाते थे, एक नयी राह बनाते थे। हर युग में ऐसी राहें बनायी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाती हैं, जो पहले धूमिल पगडंडी मात्र होती हैं पर धीरे-धीरे जब असंख्य कदम उन पर पड़ने लगते हैं, तो वे उजला प्रशस्त पथ बन जाते हैं। भारत की प्रथम महिला इन्जीनियर बनकर श्रीमती ए. ललिता ने ऐसी ही एक नयी राह बनायी थी।

ललिता १८ वर्ष की छोटी-सी अवस्था में ही विधवा हो गयी थी। गोद में चार महीने की बच्ची थी। भाग्य ने उनके साथ क्रूर खेल खेला था पर वे उसके हाथों खेले जाने के लिए नहीं, उससे लड़कर उसे बदलने के लिये बनी थीं। पर इसका श्रेय वे स्वयं न लेकर अपने पिता को देती हैं। वे कहती हैं—"मेरे पिताजी ने कहा—एक महिला इन्जीनियर क्यों नहीं बन सकती ? मैं अपनी बेटी को बनाकर दिखाऊँगा और मित्रों तथा सम्बन्धियों के विरोधों के बावजूद वे अपने निश्चय पर अडिग रहे।"

श्रीमती ललिता का जन्म १९१७ में मद्रास में हुआ पिता श्री पप्पू सुब्बाराय मद्रास इन्जीनियरिंग कॉलेज में इलैक्ट्रिकल इन्जीनियरिंग के प्रोफेसर थे। अपने आठ भाई-बहिनों में ललिता का पाँचवा स्थान है। सभी भाई-बहिनों ने अपने समय के अनुकूल पर्याप्त शिक्षा पायी थी। लड़कियों की छोटी अवस्था में विवाह उस समय की प्रथा थी। ललिता का विवाह भी १५ वर्ष की आयु में कर दिया गया था, पर विवाह के बाद भी उनकी शिक्षा तब तक जारी रही, जब तक कि उन्होंने मैट्रिक पास न कर लिया। १९३७ में उन्हें कन्या रत्न की प्राप्ति हुई और बच्ची जब चार महीने की हुई, उनके पति माँ-बेटी को अकेला छोड़कर चल बसे। ललिता की आँखों के आगे एक बार ही अन्धेरा छा गया पर उनके पिता ने उन्हें धीरज देते हुए तुरन्त सँम्हाल लिया। अन्य लोगों ने उन्हें डॉक्टर बनने की सलाह दी और वे भी यही चाहती थीं क्योंकि महिलाओं के लिये तब तक तकनीकी उच्च शिक्षा का केवल यही क्षेत्र खुला था। वे कहती हैं—"उस समय मुझे इसके अतिरिक्त अन्य नये क्षेत्र में जाने का साहस भी नहीं था, फिर छोटी बच्ची की देखभाल का भी ध्यान था। मुझे लगता था कि इन्जीनियरिंग में मुझे पर्याप्त समय देना पड़ेगा, तो बच्ची की उपेक्षा होगी पर पिताजी ने समझा-बुझाकर तथा ढाढ़स देकर मेरा दृष्टिकोण बदल दिया। मुझे पहली महिला इन्जीनियर बनाने का वे निर्णय ले चुके थे। उन्होंने मुझे इण्टर की परीक्षा दिलाई और फिर बड़े प्रयत्न से इन्जीनियरिंग कॉलेज के प्रिंसिपल और शिक्षा-निर्देशक की विशेष आज्ञा प्राप्त कर इन्जीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश दिलाने में सफलता प्राप्त कर ली। १९४० में मैंने जब कॉलेज में प्रवेश किया तब न केवल वहाँ मैं अकेली लड़की थी, अपितु इस लाइन में नयी होने से सर्वत्र चर्चा का विषय भी थी। सभी लोग सोचते थे कि मैं इसमें टिक जाऊँगी कि नहीं। इस अजीब-सी स्थिति में पहले मैं घबरा उठी। एक बार घर आकर रोई तो पिताजी ने मेरा उत्साह कायम रखने के लिए एक और प्रयत्न किया। उन्होंने अखबार में एक महिला के लिए स्थान का विज्ञापन देकर एक अन्य लड़की कुमारी लीला जार्ज को भी कॉलेज में प्रवेश लेने के लिए आकर्षित कर लिया, जो बाद में सिविल इन्जीनियरिंग में चली गयी। इस प्रकार प्रारम्भ में उखड़ते से दिखायी देने वाले मेरे पैर फिर जम गये और १९४३ में मैंने आनर्स के साथ इन्जीनियरिंग की डिग्री प्राप्त कर ली।"

एक बार साहस के साथ किसी ओर कदम चल पड़ते हैं तो फिर आगे की राह भी स्वयं ही खुलती चली जाती है। श्रीमती ललिथा ने इलैक्ट्रिकल इन्जीनियर बनने के बाद भूतपूर्व 'ईस्ट इण्डिया रेलवें' की लोकोमोटिव वर्कशाप में एक साल तक एपरेंटिस उम्मीदवार के रूप में काम कर अनुभव प्राप्त किया। फिर शीघ्र ही उन्हें भारत-सरकार के इलैक्ट्रिकल कमिश्नर के कार्यालय में ऊँची नौकरी मिल गयी। दो वर्ष तक यहाँ काम करने के बाद उन्होंने पिता की इच्छा पर नौकरी छोड़कर उनके साथ शोध-कार्य में हाथ बँटाया। श्रीमती ललिता के पिता बिजली के जलतरंग, बगैर धुएँ की भट्टी तथा अन्य कई वस्तुओं के आविष्कर्त्ता हैं। उनके इस शोध कार्य में सहायक होकर ललिता जी का ज्ञान और विस्तृत हो गया। इस बीच उन्होंने लन्दन के इलैक्ट्रिकल इन्जीनियरिंग इंस्टीट्यूट से उपाधि प्राप्त की। फिर उन्हें १९५३ में वहाँ से 'एसोशिएट मेम्बर' घोषितकर 'चार्टर्ड इलैक्ट्रिकल इन्जीनियर' बना दिया गया। १९४९ से अब तक श्रीमती ललिता 'एसोशिएटेड इलैक्ट्रिकल इंडस्ट्रीज' कलकत्ता में कार्य कर रही हैं।

अपने परिवार के व्यवसाय के बारे में ललिताजी ने कहा है—"मेरे पिता, मेरे चारों भाई, मैं, मेरा भतीजा और मेरा दामाद सभी इलैक्ट्रिकल इन्जीनियर हैं।"

क्या भारत में महिला इन्जीनियरों के लिए कार्य-क्षेत्र व्यापक हैं ? इसके उत्तर में श्रीमती ललिता का कहना है कि उनके अनुमान में अकेले इलैक्ट्रिकल इन्जीनियरिंग में ही लगभग २०० महिलाएँ इस समय देश में काम कर रही हैं। औद्योगीकरण बढ़ने के साथ-साथ धीरे-धीरे कार्य-क्षेत्र भी बढ़ता जा रहा है और महिलाओं को भी ऐसे कार्यों के उपयुक्त माना जा रहा है। फिर भी उन क्षेत्रों में स्त्रियों को नौकरी पाने में अभी कठिनाई है। लेकिन अपने विदेशों के अनुभव से वे कहती हैं कि यह कठिनाई वहाँ भी है, जहाँ अधिक संख्या में महिलाएँ इन्जीनियर बन चुकी हैं। दूसरे देशों की स्थिति देखते हुए हमारे यहाँ कम कठिनाई है। साथ ही उनका विश्वास है कि संघर्ष के बावजूद धीरे-धीरे स्थिति में सुधार होता जायेगा।

'महिला इन्जीनियरों और वैज्ञानिकों की विश्व-संस्था' की कोई शाखा भारत में नहीं है। फिर भी उनके निजी संपर्कों के आधार पर उन्हें इस संस्था के १९६४ में

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न्यूयार्क में हुए पहले विश्व-सम्मेलन में सादर निमन्त्रित किया गया है। उन्होंने उसमें भारत का प्रतिनिधित्व किया था। इस सम्मेलन में ३५ देशों की तथा संयुक्त राज्य अमरीका के सभी ५० राज्यों की ५०० से अधिक महिला प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। भारतीय महिलाएँ केवल दो ही थी। एक भारत से इलैक्ट्रिकल इन्जीनियर श्रीमती ललिता तथा दूसरी श्रीमती उषा सेनानी जो भारतीय होकर भी कनाडा में काम करने के कारण वहाँ के प्रतिनिधि होकर आयी थीं। संयोग से श्रीमती सेनानी भी बम्बई विश्वविद्यालय की प्रथम महिला सिविल इन्जीनियर थीं। जुलाई १९६७ में उक्त विश्व-संस्था का द्वितीय विश्व-सम्मेलन कैम्ब्रिज (इंग्लैण्ड) में हुआ था, जिसमें भी श्रीमती ललिता भारतीय प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुई थीं। वे निकट भविष्य में संस्था की भारतीय शाखा के निर्माण तथा उसके संचालन के लिए प्रयत्नशील हैं।

ललिता जी का सन्देश है—"भारतीय जनता का जीवन-स्तर उठाने के लिए महिलाओं को अधिक संख्या में विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में आना चाहिये। इससे उन्हें अच्छे सम्मान तथा देश सेवा का सुअवसर एक साथ मिलेगा।"

नारी जागरण की प्रवर्तिका—
सराह हेला

उन्नीसवीं सदी के मध्य की बात है। एक अमरीकी महिला एलिजाबेथ ब्लैक बेल के मन में डाक्टर बनने की इच्छा जाग्रत हुई। आवश्यक पढ़ाई पूर्ण करने हेतु अनेक चिकित्सा महाविद्यालयों में आवेदन किया। सबने नकारात्मक उत्तर दिया। उनका उत्तर था—महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने एवं आत्मनिर्भर हो आजीविका प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं। उसे तो अपने घर की चार दीवारी के भीतर रहकर जीवन-यापन करना चाहिए। घर के बाहर का क्षेत्र पुरुषों का है। उसका मन टूट गया।

यह बात वहाँ की एक संवेदनशीला नारी के कानों में पड़ी। नारी पर इस तरह के प्रतिबन्धों की बात सुनकर वे तिलमिला उठीं। सम्पर्क स्थापित कर उस लड़की को धैर्य बँधाया। उन्होंने कहा कि ऐसी समस्याओं का समाधान संगठित होकर ही किया जा सकता है। उन्हें निराश नहीं होना चाहिए। वे स्वयं आगे बढ़ें तो अनेक महिलाएँ देखते ही देखते संगठित हो सकती हैं। उन्हें आश्वस्त किया कि वे इसके समाधान हेतु सहयोग ही नहीं अपितु अग्रिम मोर्चा सम्भालने हेतु प्रस्तुत हैं। अपना यह संकल्प उन्होंने पूरा भी कर दिखाया। न केवल उस युवती को मनोवांछित डाक्टर बनने का सौभाग्य मिला, अपितु नारी जाति पर लगे कठोर बन्धन शिथिल हुए और उनकी प्रगति के अनेक रास्ते खुलते चले गये।

नारी को केवल इसलिए पुरुषों के समान अवसर न मिले कि वह नारी है—एक असहनीय बात है। अपनी क्षमता और योग्यता का विकास करने का अवसर मिले तो वे भी पुरुषों के बराबर सिद्ध हो सकती हैं। कुछ कार्य तो ऐसे हैं, जिन्हें केवल नारी ही कर सकती है। पुरुषों में वह कोमलता और तेज भावना कहाँ जो नारी में होती है ? नारी की उपेक्षा किया जाना अपने आपको अवनति के गर्त में धकेल देना है। इस विचार की प्रवर्तिका अमेरिका की महान् विभूति सराह हेला थीं, जिनका सम्पूर्ण जीवन नारी उत्कर्ष के लिए समर्पित हुआ।

उन दिनों समाज में पुरुषों का वर्चस्व था। नारी को शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ने का किंचितमात्र भी अवसर नहीं दिया जाता था। उसे पुरुषों के गुलाम की तरह रहना पड़ता था। पुरुष वर्ग में उसे केवल अपने आमोद-प्रमोद की वस्तु मानकर चारदीवारी के भीतर बन्द रखता था। पुरुषों को यह भय था कि यदि नारी को शिक्षा का अवसर दिया जायेगा, तो वे शिक्षित होने के पश्चात् उनका आधिपत्य स्वीकार नहीं करेंगी। यह स्थिति एक नारी होने के नाते सराह हेला को असह्य थी। उन्होंने पुरुषों के समाज पर प्रभाव के विरुद्ध एक अभियान शुरू किया। इस अभियान का नाम महिला मुक्ति आन्दोलन रखा गया। वे स्वयं घूम-घूमकर महिलाओं को संगठित करतीं और अपने आन्दोलन का स्वरूप समझाती थीं। प्रत्येक श्रेष्ठ कार्य शुरू करने पर आने वाली अनेक बाधाओं का सामना उन्हें भी करना पड़ा। पुरुषों ने अपने घर के बाहर जाने से नारी को बहुत रोका, बहुत ताड़नायें दीं किन्तु बात केवल साहस की होती है। अवांछनीयतायें, अनैतिक आचरण तो फूस के ढ़ेर के तरह दिखते भर हैं। भारी-भरकम उनका आकार ही होता है। उनमें जीवन शक्ति रत्तीभर भी नहीं होती। साहसपूर्वक खड़े हो जाने वाले छोटे-छोटे लोग ही उन्हें खाक कर डालते हैं। एक से दस, दस से सौ की संख्या बढ़ती गई। देखते-देखते कुछ ही दिनों में एक संगठित अभियान चल पड़ा। जिन्हें कभी घर से बाहर झाँकने तक का अवसर नहीं दिया गया था। ऐसी महिलायें भी अपनी मुक्ति हेतु संगठन में सम्मिलित हो गईं।

सराह हेला ने इस विसंगित के मूल कारणों की ओर दृष्टि दौड़ाई तो पता चला कि नारी जाति के प्रति बन्धन और विकृत दृष्टिकोण मध्य सामन्ती-युग की मान्यताओं और साहित्य में प्रतिबिम्बित उसके कामिनी और रमणी रूप के कारण हैं। जिन प्रतिबन्धों को शास्त्रीय बताया गया था। खोजने पर उल्टी निकलीं। शास्त्र और महापुरुष तो पग-पग पर नारी जाति के वर्चस्व का समर्थन करते थे। अतः एक उन्होंने इस सत्य को उजागर करने से आन्दोलन की शुरूआत की, प्रखर साहित्य लिखा और रूढ़िवादी विचारों पर तीव्र प्रहार किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.४० यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

यह सिद्ध कर दिया कि इतिहास में नारी की गरिमा महान् रही है। उसे समान अधिकार ही नहीं वरन् पुरुषों से अधिक प्राप्त थे। उसका समाज पर पूर्ण प्रभाव था। यहाँ तक कि पुत्र का नाम पिता के साथ न चलकर माता के नाम पर चलता था। इतिहास में अनेक नारियाँ ऐसी हुई हैं, जो समाज सेवा से लेकर देश सेवा तक में अग्रणी रही हैं। वे ओजस्वी भाषण और तर्कपूर्ण प्रमाण देकर पुरुषों की अन्धमान्यता पर कुठाराघात करती थीं। निष्ठापूर्वक किया गया सत्कार्य कभी निष्फल नहीं होता। पहले तो पुरुष वर्ग ने इसका डटकर विरोध किया परन्तु अन्त में उन्हें प्रामाणिक सत्य को स्वीकार करना ही पड़ा।

यह विजय सराह हेला की न होकर नारी समाज की थी—सत्य की थी। अब नारी को पुरुषों के समान अवसर मिलना प्रारम्भ हो गया। वे पुरुषों की खिलौना मात्र न रहीं। लड़के-लड़कियों के लिये समान शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की गई। जो लोग पहले नारी शिक्षा का विरोध करते थे, वे ही आगे आने लगे, उनके लिये पृथक् रूप से उच्च शिक्षा का प्रबन्ध करने लगे। मेडिकल एवं आर्ट कॉलेज खुलते गये। वह समय भी आया, जब विद्यालयों एवं अस्पतालों में महिलाओं को भी नौकरी दी जाने लगी। वे अध्यापिका और परिचारिका तथा डाक्टर के रूप में अपनी दक्षता प्रमाणित करने लगीं। अपनी सेवा भावना से नारी ने पुरुषों का मन जीत लिया।

'नारी मुक्ति आन्दोलन' की सफलता ने सराह हेला का हौसला बुलन्द कर दिया। अब वे समाज के माथे पर लगे दास प्रथा का कलंक धोना चाहती थीं। दास प्रथा के अनुसार भेड़-बकरियों की तरह खसेदे और बेचे जाते थे। उसे अपने स्वामी की प्रत्येक आज्ञाओं का पालन मूक भाव से करना अनिवार्य होता था। एक आदमी दूसरे के साथ अमानुषिक व्यवहार करे यह एक समाज सुधारक के लिए कैसे सहनीय हो सकता था ? उन्होंने लोगों की संवेदना जगाने हेतु वैसा ही साहित्य का सृजन किया। अपनी कविताओं के माध्यम से लोगों को बताया कि सभी लोग एक ही पिता के पुत्र हैं। भाई-भाई के बीच स्वामी-सेवक अथवा ऊँच-नीच की भावना रखना किसी भी तरह उचित नहीं। ''दि जीनियस ऑफ ओवलीवियन'' कविता संग्रह प्रकाशित कर लोगों की अन्ध मान्यता पर प्रहार किया। लोगों को यह पुस्तक इतनी पसन्द आई कि कई संस्करण निकाले गये। इसी तरह अपना उपन्यास ''नार्थ बुड ए टोल ऑफ न्यू हेम्पशायर'' लिखकर लोगों की विचार करने की शैली बदल दी, जो दास प्रथा का समर्थन करते थे, वे ही अब इसका खुलकर विरोध करने लगे।

सराह हेला एक कार्य में सफलता मिलने पर समाज सुधार का दूसरा कार्य हाथ में लेती हुई निरत रहने लगीं। उनका प्रत्येक कदम प्रगतिशील सुधारों की ओर बढ़ता गया। महिलाओं का मार्गदर्शन करने वाली कोई पत्रिका नहीं थी। कुछ ही दिनों में आदर्श की बातें उनके मानस पटल पर धूमिल हो जाती थीं। पानी ढाल की ओर तो बड़ी आसानी से बह जाता है। परन्तु उसे ऊपर की ओर चढ़ाने के लिए मोटर-पम्प जैसी मशीनों की व्यवस्था बनानी पड़ती है। यह सोचकर उन्होंने ''लेडिज मेगजीन'' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इससे आवश्यकता की पूर्ति न होते देखकर ''लेडी बुड'' का भी सम्पादन किया गया। इन पत्रिकाओं द्वारा महिलाओं को चरित्र, कर्त्तव्य, सदाचार तथा कर्त्तव्य परायणता की शिक्षा दी गई। इसका प्रभाव उनके मस्तिष्क पर लगातार पड़ता रहा। उन्होंने यह अनुभव किया कि उक्त ज्ञान के अभाव में वे परमात्मा का प्यार नहीं प्राप्त कर सकतीं। सराह हेला ने न केवल स्वयं साहित्य सृजन किया, वरन् अनेक महिलाओं को इस ओर आकर्षित किया। समाज के दर्पण, साहित्य को रूढ़िवादिता और अन्ध परम्पराओं के घेरे से बाहर निकालने हेतु अनेक रचनायें की गईं। अश्लील और गन्दे चित्रों के स्थान पर अच्छे चित्रों की माँग बढ़ती गई। इस हेतु अनेक अच्छे चित्रों का प्रकाशन किया गया। गन्दे और अश्लील उपन्यासों में नारी को खिलौना बना दिया गया था। उसने इसे अपने और सहयोगियों द्वारा लिखित श्रेष्ठ उपन्यासों द्वारा ममतामयी माता का स्वरूप प्रदान किया। लोगों को बताया गया कि बहिन, पुत्री, माता के रूप में नारी साक्षात् त्याग की मूर्ति होती है। वह अपने आदर्शों के प्रति सदा जागरूक रहती है। उसे उचित सम्मान देना अपने आपको ही सम्मानित करना है।

सराह का जीवन सामाजिक सुधारों के लिये ही सुरक्षित था। बोस्टन की गरीब स्त्रियाँ तथा सैनिकों की स्त्रियाँ अपनी गरीबी के कारण बड़ी गन्दी तथा दरिद्र थीं। उन्हें सफाई का ज्ञान न होने के कारण अनेक तरह की बीमारियाँ घेरे रहती थीं। उनका जीवन एक तरह से नारकीय बन गया था। उनकी आत्मा को इसका समाधान न पाने के कारण छटपटाते देख समाज-सेविका की आत्मा व्याकुल हो गई। वे स्वयं उनके घर जा-जाकर अलख जगातीं और उन्हें स्वच्छता का पाठ पढ़ाती थीं। उन्हें परिश्रम का महत्त्व समझातीं और उनका श्रम रचनात्मक कार्यों की ओर प्रेरित करती थीं। उन्हें औद्योगिक शिक्षा और हस्तकला सिखाने के लिये एक पाठशाला की योजना बनाई। यहाँ सहायक धन्धे के रूप में सिलाई और कढ़ाई करना तथा महिला उद्योग सिखाया जाता था।

सराह हेला के महान् कार्यों के लिए अमेरिका के लोग आज भी उनकी याद श्रद्धा और आदर से करते हैं। वे नारी-जागरण से लेकर समाज-जागरण तक के अभियान अभिनव पद्धति से चलाती रहीं। ऐसी विभूति का देहावसान सन् १८७९ में हुआ। आज उनका शरीर हमारे बीच नहीं रहा, परन्तु उनके आदर्श आज भी कीर्ति-स्तम्भ बने हुए हैं। उनके पद-चिह्नों पर चलकर समाज का उत्थान करने की लालसा प्रत्येक के मन में होती है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अमेरिका की महान् नीग्रो महिला— फिलिस व्हिट्ले

वह अतीत जो वेदनापूर्ण आँसुओं के सिवाय कुछ नहीं दे सकता—अघटित घटना के समान भूल जाना चाहिये। यदि मनुष्य ऐसा नहीं करता तो उसका वर्तमान ही नहीं भविष्य भी निराशा और असफलता की द्विमुखी कहानी के सिवाय और कुछ नहीं बन सकता। जिन्होंने अपने ऐसे अतीत को भुलाकर भविष्य के चित्र देखे और वर्तमान में उनके बीज बोने का साहसपूर्ण पुरुषार्थ किया, वे समय की शिला पर अपनी उज्ज्वल रेखायें बना गये। ऐसे ही वीर व्यक्तियों की सूची में एक नाम "फिलिस व्हिट्ले" का भी है।

"फिलिस व्हिट्ले" का अतीत कैसा था ? इसका आभास उसी के शब्दों में इस प्रकार है—

"दुर्भाग्य के क्रूर हाथों ने मुझे बाल्यकाल में ही मातृभूमि अफ्रीका की आनन्ददायिनी धरती से वंचित कर दिया। आह ! वह क्षण कितना दुःखपूर्ण होगा ? मेरे माता-पिता के हृदय में, उस समय कितनी असहनीय वेदना हुई होगी ? जिस समय किसी पाषाण हृदय व्यक्ति ने उनकी अबोध बच्ची को उनकी गोद से बलपूर्वक छीना होगा। बस यही मेरा करुण कथा है। हे परम पिता परमात्मा ! किसी को भी ऐसा अत्याचार न सहना पड़े।"

यह फिलिस व्हिट्ले की एक कविता का भाव है, जो उसने अलडार्ट माउथ को समर्पित की थी। प्रकट है कि फिलिस व्हिट्ले एक कवयित्री थी। उसकी विशेषता केवल एक कवयित्री होने तक ही सीमित नहीं है। वह एक नीग्रो बालिका थी और अफ्रीका से ले जाकर अमेरिका में बेची गई थी। जिस समय वह अमेरिका में बिकी थी, उस समय उसकी आयु केवल छः वर्ष की थी। उसके माता-पिता दास थे।

निश्चय ही उस व्यक्ति का हृदय पत्थर का रहा होगा, जिसने इस रोती हुई अबोध बच्ची को उसके बेबस माता-पिता की गोद से छीनकर किसी अपने जैसे ही पाषाण हृदय के हाथ बेच दिया होगा। भगवान जाने बेचने वाले ने माता-पिता की उस निरीह दृष्टि को किस आसुरी साहस से देखकर सहन किया होगा, जो अपनी ओर मुड़-मुड़कर देखती, बिलखती और बार-बार हाथ फैलाती बच्ची को दूर तक देखती रही होगी और किस पाशविक क्रूरता से खरीदने वाले ने माता-पिता की गोद के लिये मचलती उस अबोध बालिका को वशं में किया होगा। ऐसे बेरहम व्यवसायी अपने बच्चों को प्यार करते होंगे—इस बात में सन्देह करने की पूरी गुंजाइश है।

साहसिनी फिलिस व्हिट्ले ने अपने इस वेदनापूर्ण अतीत को भुला और वर्तमान से सामंजस्य कर भविष्य की ओर देखा। उसकी स्मृति ने पीछे मुड़कर नहीं देखा कि उसके माता-पिता उसे किस प्रकार प्यार करते थे ? अपने एकाकी जीवन में उसने कभी याद न किया कि सबेरे की नर्म और गर्म धूप में उसकी जन्मभूमि सिगेनल में उगे ताड़-वृक्षों के पत्ते कैसे चमक उठते थे ? न्यू इंग्लैण्ड की भयानक सर्दी ने उसे अफ्रीका की गर्मी कभी याद न आई और न उसने कल्पना में अफ्रीका में बजने वाले नगाड़ों की आवाज ही सुनी और न अपने बचपन का कोई स्वप्न ही देखा। वह अपने जीवन के उस अंश को अघटित घटना की भाँति भुलाकर भविष्य की यात्रा में लग गई थी।

फिलिस व्हिट्ले की अबोधता, निरीहता और सुन्दरता ने उसके नये स्वामी की अच्छाई को और भी बढ़ा दिया था। सिगेनल से आने वाला दास-दासियों का जहाज जैसे ही बोस्टन के बन्दरगाह पर रुका कि जॉन व्हिट्ले ने उसे, मुँह माँगी कीमत देकर खरीद लिया। घर आकर फिलिस अपनी नई मालकिन को ऐसी आत्मीयता से देखने लगी, जैसे मूक भाषा में कह रही हो—"अब आप ही मेरी माता हैं।" मालकिन की आत्मा ने उसके इस आन्तरिक स्वर को सुन लिया और उसी क्षण से वह मानवीय सहानुभूति के साथ फिलिस की ओर झुक गयी। यह कोई अनहोनी बात न थी।

संसार की इस विचित्र रचना में एक ही आत्मा ओत-प्रोत है। संसार के सारे बच्चे अपने ही बच्चे हैं और संसार के सारे माता-पिता सभी बच्चों के अपने माता-पिता हैं। किन्तु यह सत्य स्वर्गिक सत्य है, जिसकी आधारशिला अभी पूरी तरह संसार में रखी नहीं गई है, तब भी आत्मवादी सत्पुरुष इसके विकास एवं प्रकाश में लगे हुये हैं। संसार एक दिन स्वर्ग बनेगा।

फिलिस की मालकिन ने उसे दास नहीं समझा और अपनी बच्ची की तरह ही व्यवहार किया। जब तक वह अबोध रही, उसे अपने पास ही रखती रही। थोड़ा बड़ी होने पर उसको एक अलग कमरा रहने के लिये दे दिया। फिलिस जब आई थी, छः वर्ष की थी। पर उसे अपनी स्थिति का ज्ञान बना रहा। उसने अपने स्वामियों की कृपा का दुरुपयोग कभी नहीं किया। जब से वह काम करने योग्य हुई। सारा काम सँभाल लिया। वह सबेरे तड़के ही उठ जाती थी। सारे घर की सफाई करती थी। सारी चीजें झाड़ती-पोंछती थी। घर भर के लिये नहाने का पानी तैयार करती थी और कपड़े धोती थी। जब से उसने भोजन बनाना सीख लिया, भोजन भी अपने हाथ से बनाने लगी। नहाने-धोने का काम छोड़कर बाकी सब काम वह शाम को भी करती थी। इस प्रकार फिलिस सबेरे तड़के से लेकर रात के नौ-दस बजे तक काम में व्यस्त रहती थी।

फिलिस का स्वामी दर्जी का काम करता था। फिलिस ने कपड़ा सीने का भी काम सीख लिया और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्वामी का भी हाथ बँटाने लगी। उसने अपनी बुद्धि के अनुसार कपड़ों के नये-नये प्रकार बनाये और स्वामी के काम में विशेषता पैदा कर दी। इससे स्वामी की आय में वृद्धि हो गई। स्वामी और स्वामिन को उससे बड़ा प्रेम हो गया। प्रेम हो भी क्यों न जाता ? सभी काम को प्यार करते हैं, चाम को नहीं।

स्वामी जब कभी कोई काम उसे आराम देने के लिये अपने आप करने लगता था, तो फिलिस तुरन्त अपने हाथ में ले लेती थी। मालकिन मना भी करती तो वह कहती—"नहीं मम्मी, काम तो मैं ही करूँगी। मुझे काम करने में बड़ा सुख मिलता है। मेरे रहते हुए आप काम करें, यह कैसे हो सकता है ? आप मुझे काम नहीं करने देंगी, तो मैं आलसी और निकम्मी हो जाऊँगी।

फिलिस की सेवा और शालीनता देखकर उसके स्वामी ने उसे पढ़ने की स्वतन्त्रता दे दी। यह फिलिस की बहुत बड़ी विजय थी। उन दिनों नीग्रो दास-दासियों को पढ़ने की स्वतन्त्रता देना तक एक बड़ा सामाजिक अपराध माना जाता था। जो गोरा ऐसा करता था, समाज में उसकी बड़ी निन्दा और भर्त्सना होती थी। जॉन व्हिट्ले की भी हुई। उनके दूसरे सजातीय लोग उनके पास आये और बोले—"यह आप क्या गजब कर रहे हैं ? नीग्रो दासी को शिक्षा की छूट देकर एक गलत परम्परा चला रहे हैं। आप शीघ्र ही उसकी इस स्वतन्त्रता को छीन लीजिये।"

जॉन व्हिट्ले ने उत्तर दिया—"फिलिस दासी नहीं है, वह तो मेरी बेटी है। मैं उसे अवश्य शिक्षित बनाऊँगा। इसके लिये यदि मेरा सामाजिक बहिष्कार भी होगा तो मैं उसके लिये भी तैयार हूँ।" ऐसे दृढ़-व्रती के आगे कहा भी क्या जा सकता था ? सभी अपना-सा मुँह लेकर चले गये। दैवी भावनाओं और निश्चयों में बड़ा अभाव होता है।

स्वामी ने सामाजिक विरोध सहकर भी मुझे पढ़ने की स्वतन्त्रता और सुविधा दी है इस विचार से फिलिस आपाद शिखा आभार से भर गई और उसने प्रण कर लिया कि अपने जीवन की सम्पूर्ण क्षमताएँ लगाकर उनकी इस कृपा को सार्थक बनाऊँगी। फिलिस सम्पूर्ण तन, मन से अध्ययन में लग गई। दोपहर का समय जो उसको आराम करने के लिये मिलता था, उसने अध्ययन में लगाना आरम्भ कर दिया। साथ ही उसने शयन समय में कटौती करके अध्ययन का समय बढ़ा लिया। इस परिश्रम, पुरुषार्थ, लगन और अध्यवसाय का फल यह हुआ कि उसकी प्रतिभा प्रखर होती चली गई और वह दिन पर दिन विदुषी बनने लगी और आगे चलकर अँग्रेजी की इतनी बड़ी कवयित्री हुई कि संसार में उसका नाम फैल गया। उसकी लिखी कवितायें आज भी इंग्लैण्ड और अमेरिका के विद्यालयों और विश्व-विद्यालयों में पढ़ाई जाती हैं।

फिलिस ने अपनी काव्य-प्रतिभा का उपयोग मात्र साहित्यिक मनोरंजन के लिये नहीं किया। उसने उसका उपयोग देश और जाति के हित में किया। जिस समय अमरीकी लोग जार्ज वाशिंगटन के नेतृत्व में ब्रिटिश उपनिवेशवादिता से स्वतन्त्र होने के लिए संघर्ष कर रहे थे, उस समय फिलिस ने देशभक्ति और वीररस पूर्ण प्रेरक कवितायें लिखकर प्रसारित कीं। उनकी कविताओं से देशभक्त वीरों को बड़ा साहस और उत्साह मिला। जार्ज वाशिंगटन को सम्बोधित करते हुए उसने जो कविता लिखकर प्रसारित की थी, उसने उसे अमेरिकावासियों की दृष्टि में उठा दिया—उसने जो लिखा था, उसका भाव इस प्रकार था—

"हे महान वीर ! हे महान् सेनानी ! बढ़े चलो, बढ़े चलो। सद्धर्म तुम्हारे साथ है। न्याय की देवी तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करें। हे महान वाशिंगटन चमकते हुए स्वर्ण मुकुट, प्रासाद और विजय के सिंहासन तुम्हारे हों।"

इस कविता के लिये वाशिंगटन ने फिलिस को पत्र लिखकर स्वयं धन्यवाद दिया था और आभार प्रकट करते हुये उसके दर्शन की अभिलाषा प्रकट की थी। स्वतन्त्रता के बाद फिलिस ने 'स्वतन्त्रता और शान्ति' नामक जो कविता लिखी, वह अमेरिका में ही लोकप्रिय नहीं हुई, वरन् सारे संसार के शिक्षित लोगों ने उसकी सराहना की। जिस समय उसकी 'धर्म और नीति सम्बन्धी कविताओं' की पहली पुस्तक प्रकाशित हुई, तभी वह शिक्षित वर्ग में चर्चा का विषय बन गई। उसे इंग्लैण्ड में आमन्त्रित कर काउन्टेस हर्टिंग्टन ने अपना अतिथि बनाया और सारे महान् साहित्यकारों से उसका परिचय कराया। काउन्टेस ने उसे तत्कालीन ब्रिटिश सम्राट से मिलाने का कार्यक्रम बनाया, तभी मालकिन के बहुत अधिक बीमार हो जाने से वह सम्राट से बिना मिले ही अमेरिका लौट आई।

दुर्भाग्यवश उसके स्वामी और स्वामिन का कुछ समय बाद देहान्त हो गया। फिलिस ने आश्रयहीन हो जाने पर जॉनपीटर नाम के एक व्यक्ति से विवाह कर लिया। लेकिन तीन बच्चे हो जाने के बाद पीटर उसे छोड़ गया। फिलिस ने तब भी साहस न हारा और वह वीर योद्धा की भाँति जीवन संग्राम लड़ती हुई साहित्य की सेवा करती रही। फिलिस ने अपनी कविताओं का मूल्य नहीं लिया और जो कुछ उसे मिला वह सब नीग्रो दासों और निर्धन बच्चों की सहायता के लिये दान कर दिया। इस कारण जब फिलिस की मृत्यु १७८४ में हुई तो उसके पास धन अवश्य नहीं था पर कीर्ति और सम्मान इतना था कि सम्पूर्ण अमेरिका में न जाने कितने स्कूलों, संस्थाओं और संघों के नाम उसके नाम पर रखे गये।

इस प्रकार एक नीग्रो दासी होकर भी फिलिस व्हिट्ले अपनी प्रतिभा, पुरुषार्थ, परिश्रम और सेवा के बल पर अमेरिका की एक स्वतन्त्र, सम्मानित और अमर नागरिक बनी।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानवता की अनन्य सेविका— इवेंजलीन बूथ

अत्यन्त सम्पन्न परिवार की लड़की ने एक दिन धन-वैभव तथा सुख-सुविधाएँ छोड़ दीं। उसने अपने राजसी वस्त्रों का परित्याग कर सामान्य वस्त्र धारण कर लिये तथा सामान्य लड़कियों की भाँति पिकेडिली सर्कस में फूल और दियासलाई बेचकर अपनी आजीविका कमाने लगी। लड़की की सखियाँ यह सब देखकर चकित हो गयीं। उन्होंने जब इसका कारण पूछा तो वह बोली—

''प्रत्येक युवक-युवती का कर्त्तव्य है कि वह अपनी आजीविका स्वयं कमाये। माता-पिता के धन पर उनका ही नहीं अपितु समाज के प्रत्येक प्राणी का अधिकार है। अपने धन-वैभव को केवल अपने पुत्र-पुत्रियों को ही दे देना, समाज और देश के साथ द्रोह करना है अतएव मैंने पिता की सम्पत्ति को त्यागकर अपने परिश्रम से ही जीवन-निर्वाह करने का निश्चय किया है।''

उपर्युक्त शब्द हैं इस युग की महान् क्रान्तिकारी नारी इवेंजलीन बूथ के, जिन्होंने पीड़ित मानव जाति के निराश और दुःखमय जीवन में आशा का संचार किया। कठिनाइयों भरे दुर्गम मार्ग पर यह साहसी देवी उत्साह और आस्था के साथ बढ़ती ही चली गई और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की।

इवा के पिता रेवरेण्ड विलियम बूथ चर्च में पादरी थे। उन्होंने समाज में फैली हुई गरीबी तथा कुरीतियों को निकट से देखा था। उन्होंने पाया कि पादरी के पद पर रहते हुए वे निर्धन, बुभुक्षित तथा अर्द्धनग्न जनता को धर्म के मार्ग पर नहीं ला सकेंगे। उनका विचार था कि हम खाली पेट रहकर केवल धर्म से तृप्त नहीं हो सकते। जब मनुष्यों की जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जायेगी, तभी वे उत्कृष्ट विचारधारा की ओर, ज्ञान प्राप्ति की ओर अग्रसर होंगे।

रेवरेण्ड पूरी-पूरी रातें चिन्तन में बिता देते कि किस प्रकार कर्त्तव्यविमुख, नास्तिक मनुष्यों को अध्यात्मवादी बनाया जाये, उन्हें जीवन के वास्तविक प्राप्य सर्व शक्तिमान विभु की ओर उन्मुख किया जाये। एक दिन अचानक उनके मानस पटल पर दिव्य विचार स्फुरित हुआ और उसको क्रियान्वित करने के लिए रेवरेण्ड ने अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। उन्होंने चर्च से त्याग पत्र दे दिया।

रेवरेण्ड ने समाज के भूखे, नंगे, उत्पीड़ित, दलित तथा निर्धम व्यक्तियों को एकत्रित करके 'मुक्ति-सेना दल' का गठन किया। यह 'मुक्ति-सेना' अपने नाम के अनुरूप ही दुःखित मानवों को कष्टों तथा कठिनाइयों से मुक्ति दिलाती थी। 'मुक्ति-सेना' का कार्य था—गरीबों के लिये अल्प मूल्य पर भोजनालय चलाना, दुराचारी-दुर्गुणी व्यक्तियों को सन्मार्ग पर लाना, बेकारों को किसी कार्य पर लगाना तथा मनुष्यों में आस्तिकता की भावना को जाग्रत करना।

नन्हीं इवा बचपन से ही देखती थी कि किस प्रकार उसके पिता के पास दुःखों के भार से कराहते हुए मानव आते तथा सभी सहायता पाकर सन्तोष और सुख की साँस लेकर लौटते थे। दलित और दुःखी व्यक्तियों के प्रति इवा को हार्दिक सहानुभूति थी। वह किसी की आँखों में आँसू देखती, तो घण्टों उसके दुःख से दुःखी होकर एकान्त में आँसू बहाती थी। भौतिकता तथा आध्यात्मिकता मानव जीवन के दोनों ही पक्षों को उसने तुलनात्मक दृष्टि से देखा और समझा था तथा अन्ततः उसने अध्यात्मवादी मार्ग को ही अपनाया।

इवा पर घर के वातावरण का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा। वस्तुतः जैसे माँ-बाप के आचार-विचार होते हैं, जैसा पर्यावरण होता है, वैसा ही बालक भी ढल जाता है। पिता के गुणों की पूरी-पूरी छाप इवा पर पड़ी थी। वह भी पिता की भाँति दयालु, सदाचारी, कर्त्तव्यपरायण, सेवाभावी, विनम्र तथा श्रमशील थी।

इवेंजलीन की गुण-सम्पदा से रेवरेण्ड इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने उसे 'मुक्ति-सेना' का कप्तान ही बना दिया। इवा ने भी अपना सम्पूर्ण श्रम, प्रतिभाएँ तथा योग्यताएँ, समस्त धन-वैभव अज्ञान में भटकती मानव जाति को ज्ञान का प्रकाश दिखलाने के लिए अर्पित कर दिया।

इवा के निर्देश में 'मुक्ति-सेना' का सर्वांगीण विकास हुआ तथा उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। एक-एक करके तीस लाख व्यक्ति इस संगठन में आ मिले। निर्धन, बुभुक्षित व्यक्ति आते तो थे भोजन आदि प्राप्त करने के लिए, परन्तु इस दल की सेवा-सहायता और परोपकारिता के प्रति इतने अधिक कृतज्ञ होते कि अपना सम्पूर्ण जीवन दुःखी मानवों की सेवा में लगाने का संकल्प ले लेते।

इवा के मार्ग में अनगिनत कठिनाइयाँ आयीं, उसे अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। धन-कुबेरों से जब गरीबों के विकास के लिए रुपया माँगा जाता तो वे अपमान करते। दुराचारी लोगों को जब अनुचित मार्ग पर चलने से उत्पन्न होने वाली हानियों को बताकर सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी जाती, तो वे उपदेशकर्त्ता पर ईंट-पत्थरों की वर्षा करने को तैयार हो जाते थे। नशाबन्दी के लिए जब कार्यकर्त्ता घूम-घूमकर प्रचार करते तो होटलों के मालिक उनके विरुद्ध हो जाते तथा अपने वैयक्तिक स्वार्थों के वशीभूत होकर उन्हें मरवा डालने को भी तत्पर हो जाते। लाखों भिखारियों की भीड़ जब झण्डे फहराती, बाजे बजाती, जन मुक्ति के नारे लगाती विशाल राजपथों से गुजरती, तो अनायास ही लोगों को ध्यान आकर्षित हो जाता। इतनी विशालकाय भीड़ को देखकर अधिकतर बुद्धिजीवियों के माथे पर बल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.४४ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :-

पड़ जाते थे। वे सोचने लगते कि ये भिखमंगे व्यर्थ में समय नष्ट कर रहे हैं तथा शान्ति और सुव्यवस्था को भंगकर रहे हैं। कभी-कभी तो मुक्ति सेना दल पर 'विदेशी जासूस' का संगठन होने का आरोप लगाया जाता और तब पुलिस बुरी तरह से इनके पीछे पड़ जाती, नाना प्रकार से यातनाएँ देती तथा परेशान करती।

परन्तु इवा में अप्रितम साहस था, उसके मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ आईं, झंझा और तूफान आये परन्तु दृढ़ प्रतिज्ञा इवा बिना थके, बिना रुके, बिना मुड़े निरन्तर आगे बढ़ती ही गयीं। वस्तुतः मनुष्य कठिनाइयों में तप कर ही उत्कृष्ट, सौन्दर्ययुक्त और प्रभावशाली बनता है। जन-जन द्वारा पूजी जाने वाली मूर्ति पर पैनी-छेनी की असंख्य चोटें पड़ती ही हैं।

धीरे-धीरे लोगों ने मुक्ति-सेना के उद्देश्य तथा कार्य-कलापों को सही-सही समझना प्रारम्भ किया। अब जनता के सम्मुख यह कटु सत्य स्पष्ट होता जा रहा था कि उनके देश की सरकार समाज के भूखे, नंगे व्यक्तियों की समस्या को केवल झूठे आश्वासनों से ही सुलझा देनी चाहती है जबकि मुक्ति सेना के तीस लाख सिपाही दुःखी और दरिद्र मानवों में भगवान् का सच्चा प्रतिरूप देखकर उसके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की महान् साधना में सलंग्न हैं। इस प्रकार मुक्ति-सैन्य-दल के सिद्धान्तों तथा कार्य-कलापों से प्रभावित होकर लोगों ने उसे खुले दिल से दान देना प्रारम्भ कर दिया।

मुक्ति-सेना के कार्यक्रमों में क्रमशः अभिवृद्धि होती जा रही थी। समाज का कोई भी ऐसा पीड़ित वर्ग शेष न बचा था, जिसकी समस्या को इन सैनिकों ने सुलझाने का प्रयास न किया हो। यहाँ तक कि कैदियों, आत्म-हत्यारों तथा अविवाहित माताओं के लिए भी इस सैन्य-दल ने विशेष संगठन स्थापित किये।

इवेंजलीन ने जेलखाने में बन्द कैदियों से सम्पर्क स्थापित करने पर पाया कि उनका जीवन अत्यन्त ही कष्टकर था। कैदियों के साथ उस समय पशुओं से भी निम्न स्तर का व्यवहार किया जाता था। धूप, प्रकाश तथा वायु से रहित कोठरियों में जानवरों की भाँति ठूँस-ठूँसकर भर दिया जाता था। कैदियों को दिया जाने वाला भोजन कोई भला व्यक्ति अत्यन्त कठिनाई से ही खा सकता था। इन सब समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिये तथा इन्हें दूर करने के लिए इवा ने कैदियों के लिये 'ब्राइटर डे लीग' नामक आश्रय संस्था खोली। समाज के व्यक्ति कैदियों के प्रति घृणा का भाव रखते थे परन्तु इवा ने उनकी इस घृणा को प्रेम भावना में बदलने का अथक् परिश्रम किया। इवा का कथन था कि हमें पापी नहीं पाप से घृणा करनी चाहिए। ये कहती थीं कि यदि कोई छोटा बालक गन्दगी में सन जाता है, तो उसकी माँ गन्दगी के कारण बालक को उठाकर नहीं फेंक देती अपितु गन्दगी दूर करके बच्चे को पुनः प्यार करती है, उसी प्रकार हमें भी इन अपराधी मनुष्यों से घृणा नहीं करनी चाहिए अपितु इनमें जो दोष-दुर्गुण आ गये हैं, उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए, तभी हम सच्चे मानव कहलाने के अधिकारी हैं। इवा के नेतृत्व में मुक्ति-सेना दल ने कैदियों के जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन ला दिया तथा ऐसे कानून पास कराये, जिनसे कि उनका जीवन सभ्य तथा सुसंस्कृत बन सके। मुक्ति-सैन्य-दल के अनेक सैनिक जेल में सदुपदेशों तथा धार्मिक शिक्षा द्वारा कैदियों की मनोभूमि का परिष्कार करते थे।

अविवाहित माताओं की समस्या उन दिनों गम्भीर रूप धारण किये हुए थी। ऐसी माताओं से उत्पन्न बालकों का न तो समाज में कोई आदर, सम्मान था और न उनका कोई भविष्य ही था। अविवाहित माताओं को भी समाज में उपेक्षा और तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था। कभी-कभी तो उन्हें आजीविका हेतु अनैतिक कर्मों के लिए भी बाध्य होना पड़ता था। इवा ने इन नारियों तथा बच्चों के लिए 'आउट ऑफ-लव लीग' नामक संस्था की स्थापना की। इस संस्था का कार्य था—माताओं को उनकी गलती का बोध कराना, उन्हें उचित निर्देशन तथा आजीविका के साधन प्राप्त कराना तथा बच्चों में साहस और मनोबल भरने के लिए उन्हें प्रेरित करते रहना। इन माताओं से उत्पन्न बच्चों का भी सामूहिक रूप से शिक्षण तथा पालन-पोषण किया जाता था तथा बालकों में हीन भावना न आने देने का पूर्ण प्रयास किया था।

इवा ने देखा कि समाज में आत्म-हन्ताओं की संख्या बहुत अधिक है। जीवन की विषमताओं से, कठिनाइयों से मुक्ति पाने का निराश व्यक्तियों के पास एक ही उपाय था—आत्म हत्या। ऐसे व्यक्तियों के लिए इवा ने 'सुसाइड ब्यूरो' की स्थापना की। सुसाइड ब्यूरो के संचालक लोगों को सदैव आशा, विश्वास, साहस और सम्बल देते तथा कठिन परिस्थितियों में भी न घबराने की प्रेरणा देते थे। इवेंजलीन बूथ निराश लोगों में आस्तिकता की भावना जगाने का प्रयास करती थी। वे कहा करती थीं कि आस्तिकता तथा ईश्वर में विश्वास करने से ही सदाचरण अक्षुण्य बना रह सकता है क्योंकि ईश्वर विश्वासी भगवान् सर्वव्यापी तथा समदर्शी है, ऐसा सोचकर कभी कुकर्म न करेगा और कुकर्म न करने वाला व्यक्ति कभी आत्महत्या की ओर अग्रसर न होगा।

क्रमशः मुक्तिसेना विकास के स्वर्ण-पथ पर अग्रसर होती गयी। इंग्लैण्ड, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, फ्रांस आदि अनेकानेक देशों में इसकी शाखाएँ फैल गयीं। अब यह राष्ट्रीय न होकर एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बन चुकी थी। संसार के किसी भी कोने के मानव विपत्ति में पड़ते, मुक्ति-सेना देवदूत-सी उनकी सहायता के लिए पहुँच

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाती। १९१७ के महायुद्ध में इवा ने घूम-घूमकर ऐसी माताओं, बहिनों तथा पत्नियों को सान्त्वना तथा सहायता दी, जिनके संरक्षक युद्ध में चले गये थे। भारत में अकाल पड़ा तो भूखे लोगों की क्षुधा-निवारण के लिए इस सैन्य-दल ने अन्न तथा अन्य पौष्टिक खाद्य-पदार्थ भेजे। जापान में भूकम्प आया तो इवा अपने साथियों सहित उनके कष्ट निवारण के लिए जुट गयीं।

इस प्रकार इवेंजलीन बूथ का सम्पूर्ण जीवन दीन-दुःखी मानवों की सेवा के लिए समर्पित हुआ था। उन्होंने अपने सत्प्रयासों से लाखों व्यक्तियों को सही ढंग से जीवन जीने तथा सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। आज भी 'मुक्ति-सेना' (रिलीज पार्टी) इस कर्मठ तथा अपराजेय नारी की कीर्ति-सुरभि दिग्दिगान्तर में फैलाये है।

नारी गरिमा को गौरवान्वित करने वाली— श्रीमती रूजवेल्ट

"मुझसे विवाह करके तुम्हें क्या लाभ होगा ? एली ! तुम देखती हो मैं कितना व्यस्त हूँ ? इस व्यस्तता भरे जीवन से तुम्हारे लिए समय निकाल पाऊँगा, इसमें मुझे सन्देह ही है। फिर सुख-सुविधाएँ पाने की, सभी का प्यार पाने की तुम्हारी भी अपनी वैयक्तिक इच्छाएँ होंगी—मैं उन्हें पूरा न कर पाऊँगा।"

'रूजवेल्ट' युवती ने भावभरे नेत्रों से देखते हुए कहा—"मुझे दुःख है, तुम मुझे अभी तक समझ नहीं पाये। यदि मुझे सामान्य लोगों की भाँति जीवन व्यतीत करना होता तो मैं तुमसे विवाह प्रस्ताव न रखकर किसी धनवान से विवाह करने की सोचती। परन्तु तुम्हारे व्यस्तता भरे—लोक सेवा के लिए समर्पित—जीवन से मुझे प्रेम है। मैं चाहती हूँ, तुम्हारे कार्यों में सहयोग देकर मैं भी इसी जनसेवा के मार्ग पर चल सकूँ। हम दोनों एक ही राह के पथिक हैं। एक-दूसरे का सम्बल और स्नेह पाकर मार्ग के कंटक भी पुष्पों जैसे मृदु बन उठेंगे ।"

रूजवेल्ट को लगा मानो उसके तप्त जीवन को वर्षा की ठण्डी-ठण्डी फुहारें पल भर को स्नान करा गयी हों। कृतज्ञता से उसने एलीनर का हाथ चूम लिया। रूजवेल्ट का एलीनर के प्रति कृतज्ञ होना स्वाभाविक ही था क्योंकि वही तो एकमात्र युवती उसके जीवन में आयी थी, जिसने उसके कठिनाइयों भरे जीवन को प्यार किया था, उससे विवाह करने का निर्णय कर अपनी व्यक्तिगत विलास की कामनाओं की बलि दी थी।

१९०५ में एलीनर तथा अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डीलेनो रूजवेल्ट का विवाह हो गया। एलीनर ने उस भावभरी संध्या में रूजवेल्ट को केवल वचन ही नहीं दिया अपितु अपनी प्रतिज्ञा को आजीवन निवाहा भी। वे इस लौह पुरुष के साथ कार्य-क्षेत्र में उतर पड़ीं। उन्होंने रूजवेल्ट को जिस साहस, धैर्य, त्याग और सहिष्णुता का परिचय दिया, उससे वे अभिभूत थे तथा ऐसी योग्य पत्नी पाकर अपने भाग्य को सराहते थे। रूजवेल्ट जब अमेरिका के राष्ट्रपति बने तो उनके ऊपर इतना अधिक कार्यभार आ गया कि नित्य कर्मों के लिए समय निकालना भी कठिन पड़ गया। अन्य घरेलू समस्याओं को सोचने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु एलीनर ने ऐसे सहज भाव से पति का दायित्व सँभाला कि रूजवेल्ट अपनी असीमित व्यस्तता के उपरान्त भी न तो कभी थके, न हतोत्साहित हुए। एलीनर की मधुर मुस्कान तथा स्नेहमय व्यवहार उनकी समस्त थकान को दूर कर देता था।

श्रीमती एलीनर रूजवेल्ट के ऊपर दुगुना कार्यभार था। एक ओर तो वह घर को सुचारु रूप से चलातीं तथा पति की सुख-सुविधाओं और आवश्यकताओं का हर क्षण ध्यान रखतीं तथा दूसरी ओर समाज में फैली बुराइयों को दूर करने के लिए क्रान्ति का शंखनाद बजातीं। सार्वजनिक कार्य श्रीमती रूजवेल्ट के लिए महत्त्वाकांक्षाओं के खिलवाड़ मात्र नहीं थे, अपितु त्याग, सेवा तथा लोकहित की विशुद्ध निःस्वार्थ भावना से अनुप्राणित थे।

वे समाज में चारों ओर फैली पड़ी असंख्य सामाजिक, राजनीतिक बुराइयों को देख-देखकर क्षुब्ध थीं। उन्होंने अनुभव किया कि समाज को सुधार की ओर बढ़ाने के लिए उसकी विचारधारा में परिवर्तन लाना परमावश्यक है। विचारधारा में लेखिनी द्वारा जितनी अच्छी प्रकार से परिवर्तन लाया जा सकता है, उतना अन्य प्रकार से नहीं। विचारपूर्ण पुस्तकें व्यक्ति की विचारधारा को, उनकी भावनाओं को झकझोर देती हैं तथा उलझी समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रकाशदीप का कार्य करती हैं।

लेखिनी की महत्ता से सम्बन्धित तीन बड़े उदाहरण एलीनर के सम्मुख थे—प्रथम था रूसो का, जिन्होंने अपनी कलम से संसार का ढाँचा ही बदल दिया। प्रजातन्त्र के अविस्मरणीय सिद्धान्त दिये। द्वितीय उदाहरण उनके सम्मुख था कार्ल-मार्क्स का, जिन्होंने अपनी सशक्त कलम से आधे विश्व को साम्यवादी बना दिया। तृतीय उदाहरण उनके सम्मुख था, विश्व प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती स्टो का जिन्होंने अपनी 'टाम काका की कुटिया' जैसी लघुकाय कृति से अमेरिका में हलचल मचा दी तथा उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका में गृह युद्ध करा दिया था। नीग्रो तथा पिछड़े हुए लोगों को दास प्रथा से मुक्ति दिलाने का श्रेय एक प्रकार से इसी महिला को था। अतएव समाज में फैली विकृतियों और कुण्ठाओं को दूर करने के लिये इन्होंने लेखन के मार्ग को ही सर्वोत्कृष्ट माना।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.४६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

प्रत्येक महान् कार्य श्रमसाध्य होता है। विशाल वृक्ष के अन्तराल में माली की वर्षों की साधना छिपी होती है। सफल लेखिका बनने के लिए श्रीमती रूजवेल्ट को क्या-क्या नहीं करना पड़ा ? गृह-संचालन, पति की सेवा तथा सामाजिक कार्यों में समय निकालकर वे अध्ययन में जुट जातीं। रात-रात भर बिना पलक झपकाए एकाग्र होकर वे पुस्तकालय में बैठी अध्ययन-मनन करती रहतीं। उनके अवकाश का प्रत्येक क्षण इस महान लक्ष्य की पूर्ति के लिये समर्पित था। चलती रेलगाड़ी में, होटल में, नाश्ते की मेज पर जहाँ भी समय होता, यह मननशील महिला कुछ न कुछ पढ़ती-लिखती रहतीं तथा तत्कालीन समाज में फैली विभिन्न समस्याओं का व्यावहारिक हल प्रस्तुत करती थीं। उनकी लेखिनी में कुछ ऐसा चमत्कार था कि वह अन्तस् के तारों को छू लेती थीं तथा मनुष्य अनायास उनकी विचारधारा से प्रभावित हो जाते थे। समाज की विचारधारा में परिवर्तन आने का परिणाम यह हुआ कि अब समाज के आचार-व्यवहार में, कार्य-कलापों में भी आशातीत परिवर्तन आ गया।

श्रीमती रूजवेल्ट ने अमेरिकन नारियों के जीवन को उन्नत बनाने के लिये विशेष प्रयास किया। वे अपने देश की नारियों का सर्वांगीण विकास करने के लिये कटिबद्ध थीं। उनका विचार था कि नारी जाति की उन्नति और अवनति के ऊपर ही किसी देश का उत्थान-पतन अवलम्बित है। माँ के रूप में नारी ही राष्ट्र को सुयोग्य नागरिक देती है। अतएव माता एवं बालकों के संरक्षण के लिए श्रीमती रूजवेल्ट ने प्राणपण से चेष्टा की। उन्होंने मातृ-सदनों में अनेक सुधार भी किये। अपनी ओजमयी वाणी तथा लेखों से इन्होंने अमेरिका के नारी समाज में ऐसी चेतना भरी कि वे मात्र घर को ही अपना कार्य-क्षेत्र न मानकर, सामाजिक क्षेत्रों में भी पुरुषों से लोहा लेने लगीं। श्रीमती रूजवेल्ट के पास महिलाओं के ढेरों पत्र आते थे, जिनमें वे व्यक्तिगत, राजनीतिक और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से सम्बन्धित अनेक प्रश्न पूँछती थीं। वे उन्हें इतना अपनत्वपूर्ण तथा युक्ति-युक्त उत्तर देती थीं कि उनके मध्य पत्रोत्तर की शृंखला टूटती ही न थी।

उन्होंने अनुभव किया कि लेखन कार्य के साथ-साथ उन्हें रचनात्मक या विधेयात्मक कार्यों को भी प्रारम्भ करना चाहिए। ऐसे कार्यों में कार्यकर्त्ता यद्यपि राजनेताओं की भाँति प्रख्यात नहीं होता तथापि सीमित क्षेत्र में कार्य करते हुए भी वह समाज को महत्त्वपूर्ण दिशा देता है। समाज में अभिनव चेतना उत्पन्न करने की आवश्यकता प्रारम्भ में ही होती है। आगे चलकर तो यह जनता का अपना प्रिय विषय बन जाता है तथा लोग उत्साहपूर्वक स्वतः ही प्रगतिशील कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए अग्रसर हो जाते हैं। श्रीमती रूजवेल्ट ने सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में रचनात्मक 'कार्य करने का' कार्यक्रम बनाया और वे उसमें तत्परतापूर्वक जुट गयीं। मकानों की समस्या, जनता के स्वास्थ्य, ग्रामोन्नति, श्रमिक समस्यायें तथा अन्य सामाजिक समस्याओं के इन्होंने अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण हल प्रस्तुत किये तथा लोगों को नव दिशा बोध कराया।

यदि श्रीमती रूजवेल्ट चाहतीं तो अमेरिका के राष्ट्रपति की पत्नी की हैसियत से स्वर्ग की अप्सराओं जैसा वैभवशाली जीवन व्यतीत कर सकती थीं परन्तु वे सदैव कमल पत्र की भाँति निर्लिप्त रहीं। अपनी वैयक्तिक आवश्यकताओं के लिए इन्होंने धन का न्यूनतम अंश लिया तथा शेष समाज सेवा में लगा दिया। निर्धन तथा निस्सहाय जनता के स्वास्थ्य, शिक्षण तथा सुरक्षा के लिये इन्होंने अपने धन का अधिकाधिक सदुपयोग किया। अन्धे तथा अपंग मनुष्यों के लिए श्रीमती रूजवेल्ट ने अनेक आश्रम खुलवाये। ऐसे व्यक्ति जो बिल्कुल ही कार्य न कर सकते थे, आश्रम की ओर से ही भरण-पोषण पाते थे। परन्तु कुछ ऐसे अपाहिज भी थे जो कि कुछ कार्य कर सकते थे, उनके लिये विभिन्न प्रकार के उद्योग खुलवा दिये। इन उद्योगों में लगे रहने से ऐसे व्यक्तियों में आत्मविश्वास बढ़ता था, उनकी क्षमताओं का सदुपयोग होता था तथा समाज के लिए भी अन्धे-अपाहिज भारमात्र न बनकर उपयोगी सिद्ध होते थे।

श्रीमती रूजवेल्ट के हृदय में प्राणीमात्र के लिए अगाध स्नेह था। गरीब, अमीर, छोटे-बड़े का भेद तो उन्होंने अपने जीवन में कभी किया ही न था। पति के साथ बारहवर्ष तक वे ह्वाइट हाउस में रहीं परन्तु गरीब लोगों से वे बराबर सम्पर्क स्थापित करती रहीं तथा उनकी सहायता करती रहीं। सामान्य लोगों के दिमाग तो थोड़ा-सा वैभव और उच्च पद पाकर ही असंतुलित हो जाते हैं और वे छोटे लोगों से सीधे मुँह बात भी नहीं करते। परन्तु रूजवेल्ट छोटे वर्ग के समझे जाने वाले सामान्य व्यक्तियों का भी उसी निष्कपट भाव से स्वागत करती थीं जिस प्रकार विदेशों के गण्यमान अतिथियों का। उनकी सहृदयता एवं आत्मीयता भरी मधुर मुस्कान अतिथि के मानस पर अमिट छाप छोड़ती थी।

उनका जीवन अनुशासनबद्ध था। प्रातः उठते ही वे अपने पूरे दिन का कार्यक्रम बना लेतीं तथा एक-एक क्षण का सदुपयोग करतीं। समय के मूल्य को समझकर ही वे इतिहास की गौरवमयी नारी बन पायीं। वे अपने स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखती थीं।

श्रीमती रूजवेल्ट एक कुशल वक्ता थीं। उनका भाषण जनता के हृदय को छू लेता था। इसका कारण यह था कि उनके कथन में हृदयग्राही तत्त्वों का समावेश होता था। लोग उनके मर्मग्राही भाषणों को सुनते तथा मन्त्रमुग्ध की भाँति उनके निर्दिष्ट पथ पर बढ़ने को तैयार हो जाते।

जब द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ तो अमेरिका ने भी नाजियों के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों को सहायता दी और वह युद्ध में कूद पड़ा। युद्ध क्षेत्र में अनेकानेक सैनिक

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हताहत हो जाते थे। श्रीमती रूजवेल्ट इन युद्ध-पीड़ित सैनिकों के पास जातीं, उनकी सहायता करतीं तथा उनमें उत्साह भरती थीं। युद्धकाल में उन्होंने देश के कोने-कोने में तूफानी गति से दौरा किया तथा स्थिति को अपनी आँखों से देखा और परखा। यातायात की असुविधा के कारण प्रायः उन्हें आम जनता के साथ यात्रा करनी होती थी। सामान्य लोगों के साथ यात्रा करना श्रीमती रूजवेल्ट को अत्यन्त सुखकर लगता था। एक बार तो न्यूयार्क से लौटते समय वे एक सैनिक के सूटकेस पर बैठकर आयी थीं। युद्धकाल में न इन्होंने केवल सम्पूर्ण अमेरिका में अपितु केरीबन, ग्रेट-ब्रिटेन, स्कॉटलैण्ड, न्यूजीलैण्ड आदि विभिन्न देशों में भी सारगर्भित यात्रायें कीं।

भारतवर्ष के सांस्कृतिक वैभव से, उसके विपुल ज्ञान भण्डार से श्रीमती रूजवेल्ट अत्यधिक प्रभावित थीं। उनका कथन था कि यदि भारतवर्ष को स्वतन्त्रता मिल जाये तो यह एक बार पुनः अपना सर्वांगीण विकास करके विश्व की शांति एवं प्रगति में महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पादित कर सकता है। अपने पति राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डीलेनो रूजवेल्ट को भी इन्होंने अपने इस विचार से प्रभावित किया। परिणामतः राष्ट्रपति रूजवेल्ट भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के पक्के समर्थक बन गये। भारतवर्ष को स्वतन्त्र कराने में रूजवेल्ट दम्पत्ति ने महान् सहयोग दिया, भले ही उनके कार्य पर्दे के पीछे क्यों न हों ?

श्रीमती एलीनर रूजवेल्ट अपने महान् कार्यों के फलस्वरूप आज भी विश्ववन्द्या हैं। अमेरिका की जो इन्होंने सेवायें की हैं, उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। वे अब जीवित नहीं हैं, तो भी नारी को गौरवान्वित किये हुए हैं। श्रीमती एलीनर रूजवेल्ट क्या नहीं थीं ? वे एक सफल पत्नी थीं, जो अपने पति के जीवन को प्रेम के सुधारस से मधुर बनाती रहीं और उनके प्रत्येक कार्य में हाथ बँटाती रहीं। वे एक आदर्श पण्डिता थीं, जिन्होंने अपने ज्ञान के प्रकाश से समाज के अज्ञानान्धकार को दूर किया। वे एक सफल समाज सेविका थीं, जिन्होंने विश्वात्मा के हित के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया और इन सबसे ऊपर वे एक ममतामयी माँ थीं अपितु विश्व के समस्त पीड़ित मानवों के लिए उनका स्नेहमय आँचल फैला हुआ था। ११ अक्टूबर, १८८४ को जन्मीं इस महान महिला का देहावसान सन् १९६९ में हुआ था।

पीड़ितों के लिए जीवनोत्सर्ग करने वाली—जेनएडम्स

'अपने अन्दर के दैवी प्रकाश को बुझने न दो वरन् उसे दिव्य अग्नि स्फुलिंगों में प्रज्ज्वलित कर दो। ऐसा न हो कि हम निरपेक्ष भाव से बुझी हुई चिनगारियों की राख पर हाथ मलते रहें। आगे बढ़ो और आत्मा की अमर साधना जगाओ।'—आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर समाज की सेवा में स्वयं को अर्पित कर देने वाली विश्व प्रसिद्ध नारी जेनएडम्स के उपर्युक्त शब्द आज के भौतिकवादी युग में प्रकाशदीप बनकर पथ-प्रदर्शित कर रहे हैं।

समृद्ध परिवार में जन्मी जेनएडम्स जीवन के अभाव, दुःख और कठिनाइयों से नितान्त अपरिचित थीं। एक दिन एक वृद्धा भिखारिन उनकी कार के नीचे आ गई। उसकी मरहम-पट्टी करवाकर जब वे उसे लन्दन की एक गरीब और गन्दी बस्ती में बसे उसके घर छोड़ने गयीं, तो जेनएडम्स को जीवन के अभावों को निकट से परखने का अवसर मिला।

उन्होंने देखा कि मैले-कुचैले, फटे वस्त्रों में लिपटे, हड्डियों का ढाँचा मात्र दिखने वाले अनेक मनुष्य एक गली के मोड़ पर खड़े होकर सड़ी-गली तरकारियों को कम से कम पैसों से खरीदने के लिए शोर मचा रहे थे। गली में स्थान-स्थान पर कूड़े और कीचड़ के ढेर लगे हुए थे, जिनकी दुर्गन्ध के कारण वहाँ खड़ा होना भी कठिन था। अर्द्धनग्न बच्चे रोटी के सूखे टुकड़ों के लिए एक-दूसरे से झगड़ रहे थे। एस धँसी हुई आँखों वाला निर्धन व्यक्ति नाली के किनारे बैठकर सड़ा, गला, कीड़ों से भरा हुआ सेब ऐसी तृप्ति से खा रहा था मानो उसे षड्रस व्यञ्जन मिल गये हों। यह सब देखकर कोमलमना जेन रो पड़ीं।

उसी क्षण अपने विलासीजीवन की निरर्थकता उन्होंने समझ ली। जीवन में उन्हें प्रथम बार अनुभव हुआ कि ऐसी सम्पत्ति जो इन भूखे-नंगे-पीड़ित मानवों की सेवा के लिए प्रयुक्त नहीं की जाती है—पाप के गर्त में धकेलती है। यह कहाँ का न्याय है कि कुछ व्यक्ति तो धन को मदिरा के चष्कों में बहा दें परन्तु कुछ व्यक्ति रोटी के टुकड़ों को भी तरसें और तन ढकने को वस्त्र भी न पा सकें। उसी दिन से एडम्स ने अपनी सम्पत्ति को दीन-दुःखियों की सेवा, उनके उत्थान में प्रयोग करने का व्रत ले लिया। यहाँ तक कि उन्होंने अपनी मेडिकल शिक्षा को भी बीच में ही छोड़ दिया तथा समाज-सेवा के क्षेत्र में उतर पड़ीं।

जेनएडम्स का जन्म सन् १८६० ई. में अमेरिका के सीडारविल नामक स्थान पर हुआ था। बचपन में ही इनकी माँ का देहावसान हो गया, जिससे कि इनके पालन-पोषण का समस्त भार पिता पर आ गया। एडम्स के पिता सीडारविल के एक समृद्ध मिल-मालिक थे तथा स्टेट के सीनेटर भी थे। वे ईश्वर भक्त, विचारशील तथा अत्यन्त उदार थे। इतने बड़े पद पर होते हुए भी वे अपने मिल मजदूरों के साथ, साथियों तथा पड़ौसियों के साथ अत्यन्त स्नेह और सौजन्य भरा व्यवहार करते थे। पिता के गुणों को बालिका ने प्रारम्भ से ही अपने जीवन में ढाल लिया था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.४८ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

जेन सुबह से शाम तक पिता के वृहद्-पुस्तकालय में बैठी पुस्तकें पढ़ती रहती थीं। अनेक महापुरुषों की जीवनियों तथा कृतियों का गम्भीर अध्ययन उन्होंने किया था। महापुरुषों के महान् कार्य, दैवी शक्तियों का विकास करने वाले उनके वचनामृत, एडम्स के जीवन में प्रेरणा का अक्षय-स्रोत बन गये थे। कनकॉर्ड के सन्त इमर्सन तथा क्राइस्ट की विचारधारा से वे अत्यधिक प्रभावित हुईं। इमर्सन के अन्तरात्मा के उल्लास को जगा देने वाले निबन्धों को पढ़कर इन्हें कला और काव्य-सौन्दर्य की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा मिली।

महात्मा ईसा के सदुपदेशों से उनके सम्मुख सेवा की सूक्ष्मता स्पष्ट हुई। दु:खी-दरिद्रों की सेवा ही ईश्वर की सेवा है, उनकी सहायता करके ही हम ईश्वर को पा सकते हैं—यह भावना उनके रोम-रोम में बस गई। 'न्यू टेस्टामेण्ट' को पढ़ते समय वे इतनी तन्मय हो जातीं कि बाह्य जगत् का कोई ध्यान न रहता। ईश्वरीय प्रकाशदीप उन्हें अपनी अन्तरात्मा में समाहित होता-सा लगता तथा भावावेश में उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा निकलने लगती। अपने प्रभु की भाँति ही समस्त जीवन पीड़ित मानवों की सेवा में उत्सर्ग करने की भावना उनके अन्तस् में पुष्पित-पल्लवित होती जा रही थीं।

जेन एडम्स एक बार अत्यधिक बीमार पड़ गयीं। चिकित्सकों ने उन्हें भ्रमण करने का सुझाव दिया, जिससे कि वे कठोर श्रम से बच सकें तथा प्रकृति का सामीप्य पाकर उनका स्वास्थ्य भी शीघ्र सुधर सके। एक दिन घूमते-घूमते एडम्स नगर की ओर निकल गयीं। वहाँ उन्होंने देखा कि अनेक व्यक्ति एक बड़े से बाड़े के चारों ओर बैठे शोर मचा रहे हैं। बाड़े के अन्दर दो हृष्ट-पुष्ट बैल एक-दूसरे से लड़ रहे थे। क्रुद्ध होकर वे परस्पर एक-दूसरे को सींगों से मार-मारकर घायल बना रहे थे। उनके शरीर से स्थान-स्थान से रक्त-धारा निकल रही थी।

एडम्स ने बैलों के मालिक के पास जाकर इस नृशंस लड़ाई का कारण पूछा। मालिक ने उत्तर दिया—'मनुष्य इससे अपना मनोरंजन करते हैं।' यह सुनकर एडम्स के तन-बदन में आग लग गई। वे बोलीं—'ऐसा मनोरंजन किस काम का, जिसमें निर्दोष प्राणियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़े। लड़ाई और हत्या जैसे कुकृत्यों को अपने मनोरंजन का साधन बनाना तो नृशंस और कुत्सित भावनाओं को प्रोत्साहन देना है। इन पाशविक भावनाओं को उभारकर तो मानव पतन के गर्त में ही गिर सकता है। मनोरंजन का वास्तविक उद्देश्य—शरीर और मन को स्फूर्ति प्रदान करना—इस दुष्कृत्य के द्वारा कदापि सम्भव नहीं है।'

एडम्स की पलकों में उस रात नींद न थी। रात्रि के पहर पर पहर ढलते जा रहे थे परन्तु वे यही सोच रही थीं कि किस प्रकार समाज में चारों ओर बिखरे असंख्य अनाचारों को रोका जाए ? ज्यों ही प्राची से उदित होते सूरज की प्रथम किरण उनकी पलकों पर पड़ीं—उन्हें लगा मानो उनके प्रभु ईसा प्रकाश-पुंज के रूप में खड़े कह रहे हैं—'जेन आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर समाज की सेवा करो। अपनी सत्ता को, अपनी चेतना को, मुझमें एकाकार कर दो, अज्ञान और अनाचार से लड़ो, विश्व-मानव के उत्कर्ष में लगो। मेरा आशीष और सम्बल तुम्हारे साथ है।'

उसी दिन जेन एडम्स स्वदेश लौट पड़ीं। अमेरिका आकर सर्वप्रथम उन्होंने अपनी समस्त अचल-सम्पत्ति को बेचकर धन एकत्रित किया। तदुपरान्त शिकागो में एक ऐसा स्थान चुना, जहाँ कि सभी जातियों तथा वर्गों के व्यक्ति आसानी से आ जा सकें। इस स्थान पर उन्होंने एक विशाल सेवागृह खोला। 'हल-हाउस' नामक इस सेवागृह का उद्देश्य था—गरीबों को सस्ते मूल्य पर भोजन उपलब्ध कराना, छोटे-बड़े, गरीब-अमीर सभी को मानवीयता, सद्भावना, करुणा और परोपकारिता के स्वर्ण सूत्रों में बाँधना। कुमारी एडम्स ने इसके द्वार पर लिखवाकर टँगवा दिया था—'जो भूखे हों, वे यहाँ आयें और भोजन करें, जो श्रान्त हों, वे यहाँ आयें और विश्राम करें।''

हल-हाउस में गरीब और अमीर दोनों ही वर्गों के व्यक्ति आते थे। गरीबों के लिये तो जेनएडम्स का यह सेवागृह साक्षात् स्वर्ग के समान था। अल्प मूल्य देकर यहाँ उन्हें जो पौष्टिक और स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन मिलता था, वह अन्यत्र कहीं सम्भव न था। जो व्यक्ति धनाभाव के कारण भोजन के पैसे न दे पाते थे, वे 'हल-हाउस' में थोड़ा-सा श्रमदान करके पैसे चुकाने की चिन्ता से भी मुक्ति पा जाते थे। यहाँ के साफ-सुथरे, शान्त, प्रेरणाप्रद वातावरण में बैठकर उनकी भावनाएँ भी परिष्कृत होती थीं। सौजन्यता, सेवा, सहायता, विनम्रता आदि गुण सहजभाव से उनके व्यक्तित्व में समाविष्ट होते जा रहे थे।

धनिक व्यक्ति यहाँ स्नेह और सद्भावना प्राप्त करने के लिए आते। इस सेवागृह के समस्त कर्मचारियों का स्वभाव कुछ ऐसी आत्मीयता और सौजन्यता लिये हुए था कि जो भी एक बार आ जाता—मन्त्र-मुग्ध हो जाता। एडम्स जैसी विदुषी नारी से वार्तालाप करके, अपनी समस्याओं को उनसे निस्संकोच भाव से कहकर, वे आत्मशान्ति पाते थे। जेन अपने परामर्श-कक्ष में बैठी सारे दिन आगुन्तकों का स्वागत हृदय में असीम प्रेम और अधरों पर मुस्कान लिये करतीं। जो भी उनके अलौकिक व्यक्तित्व के सम्पर्क में आया, उनका क्रीतदास होकर रह गया। लोग परेशानियों की गठरी बाँधकर मुँह लटकाये आते परन्तु जाते समय उनकी गठरी में बँधा होता असीम आत्मविश्वास, साहस और सम्बल।

हल-हाउस में विदेशी भी पर्याप्त मात्रा में आते थे। सन् १८४४ से १८८९ तक मध्य प्रदेशीय जनसंख्या दस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लाख तक बढ़ गई थी, जिसमें लगभग पचास हजार सात सौ व्यक्ति विदेशी थे। ये लोग अँग्रेज, जर्मन, यहूदी, नीग्रो, रूसी, पोलिश, आयरिश, स्विस आदि अनेक जातियों के थे। परस्पर एक-दूसरे की विचारधारा को न समझने के कारण ये आपस में वैमनस्य रखते थे। जेन एडम्स चाहती थीं कि सभी व्यक्ति जाति-भेद की रूढ़ मान्यता को विस्मृत कर ईश्वर के सच्चे पुत्रों की भाँति आपस में मिल-जुलकर रहें। वे प्रायः कहा करती थीं—"यदि विभिन्न जातियाँ एक-दूसरे को समझ सकें, तो पारस्परिक विद्वेष और युद्ध की सम्भावनाएँ बहुत कम पैदा हों।"

अपने इन विचारों को क्रियान्वित करने के लिए उन्होंने 'गुड नेवर पालिसी' अर्थात् पड़ौसियों के साथ सद्व्यवहार की नीति अपनायी। उन्होंने विदेशी-संस्कृति तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देना प्रारम्भ किया। हल-हाउस में सप्ताह में एक दिन विदेशी भोजन बनता था। विदेशी नृत्य तथा समारोहों को देखने लाखों दर्शक आते थे। इस प्रकार उनका मनोरंजन भी होता था तथा दूसरे देशों के आचार-विचारों से भी वे परिचित होते थे। एक-दूसरे के सम्पर्क में आने के कारण विदेशियों में सहयोग की भावनाएँ भी बढ़ती थीं। एडम्स की इस कार्य-पद्धति की सर्वत्र भूरि-भूरि प्रशंसा हुई तथा 'हल-हाउस' के अनुकरण पर अमेरिका में अनेक अन्तर्जातीय-सहयोग संस्थाएँ भी खोली गयीं।

जेन एडम्स ने अमेरिकन मातृ-समाज की समस्याओं का भी अध्ययन किया। उन्होंने तत्कालीन स्त्रियों की दो मुख्य समस्याएँ पायीं। प्रथम तो यह कि उन्हें ठीक ढंग से बच्चों का पालन करना नहीं आता था। दूसरी समस्या कारखाने में कार्य करने वाली माताओं के नवजात शिशुओं को पालने की थी।

उपर्युक्त दोनों समस्याओं के समाधान के लिए जेन ने 'शिशुपालन-गृह' खोला। यहाँ कुछ पैसे लेकर बच्चों के पालन-पोषण, मनोरंजन तथा पौष्टिक भोजन की सुन्दर व्यवस्था की जाती थी। एडम्स का मत था कि वातावरण असम्भाव्य रूप से बच्चों के चरित्र-निर्माण पर प्रभाव डालता है। निरंकुश वातावरण में पले बालकों से यह आशा रखना कि वे विनम्र एवं योग्य बनेंगे—सामाजिक शिष्टाचारों की रक्षा करेंगे—दुराशा मात्र है। अतएव उन्होंने शिशु-गृह में उत्कृष्ट तथा भावनापूर्ण वातावरण का निर्माण किया, जिससे कि बच्चों का आगामी जीवन श्रेष्ठ, सफल एवं सरस बन सके तथा वे अच्छे नागरिक बन सकें। माताओं के लिए प्रशिक्षण-केन्द्र भी खोला, जिसमें उनको शिशु-पालन विषयक विशेष शिक्षण दिया जाता था।

बच्चों से जेन एडम्स को हार्दिक प्रेम था। बालकों की तनिक-सी भी कठिनाई उनके मन को बोझिल बना देती थी। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में बाल मजदूरों की समस्या भयंकर रूप धारण कर चुकी थी। माँ-बाप धन के अभाव के कारण आठ-दस वर्ष के अबोध बच्चों को कारखानों में काम करने भेज देते थे। कार्य करते-करते यह बच्चे मशीनों की चपेट में आ जाते थे, जिससे कोई अपना हाथ खो बैठता तो कोई पैर और कोई-कोई तो अपने प्राणों की ही आहुति दे देते थे। एडम्स ने बाल-मजदूरों की समस्याओं का गम्भीर अध्ययन किया। उन्होंने इलिनायस में एक विशाल सभा का आयोजन किया तथा उसमें विभिन्न संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं के सम्मुख बच्चों की दुरावस्था का चित्र खींचा। उनका कथन था कि माता-पिता की गरीबी के कारण नन्हें बच्चे अपने प्राणों की आहुति दें—यह अनुचित व अमानवीय है। इन्होंने 'स्टेट-कानून' भी घोषित कराया, जिसके अनुसार अधिक बच्चों वाले गरीब व्यक्तियों को विशेष सुविधाएँ दी गयीं तथा बालकों से अधिक कार्य लेना, उन्हें अनुपयुक्त कार्य पर लगाना—इन सब बातों का निषेध कर दिया गया।

यह 'जेन-एडम्स कानून' अनेक मिलों में लागू कर दिया गया तथा इसका उल्लंघन करने वाले मिल मालिक को दण्ड देने की व्यवस्था की गयी। इस कानून से अनेकों अबोध बालकों के प्राणों की रक्षा हुई। बाल-मजदूर विशेष के रूप में एडम्स की ख्याति सर्वत्र फैल गयी।

जेन एडम्स ने बालकों के स्वस्थ मनोरंजन तथा व्यायाम के लिए अनेक क्रीड़ागृह भी खुलवाये। गरीब परन्तु प्रतिभाशाली बच्चों के लिए उन्होंने 'बुक-बैंक योजना' भी बनायी। धनी व्यक्तियों से उन्होंने इस योजना में सहायता देने की प्रार्थना की, जिससे कि अधिकतम बालक इससे लाभान्वित होकर शिक्षा प्राप्त कर सकें। देश-विदेश के लाखों बालकों ने इस महत्त्वपूर्ण योजना से लाभ उठाकर एडम्स के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

महान् समाज-सेविका के साथ-साथ जेनएडम्स यशस्वी लेखिका भी थीं। इन्होंने अपने सशक्त लेखिनी से समाज में नवचेतना भर दी। 'दि स्पिरिट ऑफ यूथ' नामक अपनी पुस्तक में इन्होंने युवा पीढ़ी की कठिनाइयों तथा झंझावातों में भी सतत् आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है। जेन एडम्स ने 'डेमोक्रेसी एण्ड सोशल इथिक्स,' 'ए न्यू कानशेन्स,' 'ट्वंटी ईयर्स ऐट हल-हाउस' नामक अनेकानेक प्रसिद्ध कृतियों की रचना की है। अपनी कृतियों में इन्होंने मानवीय सम्वेदनाओं को कोमलतम रूप में मुखरित किया है तथा जीवन के सत्यं, शिवं, सुन्दरं युक्त मार्ग का दिग्दर्शन कराया है।

मिस मेरी एडम्स की महान् सेवाओं के फलस्वरूप उन्हें 'महिला-अन्तर्राष्ट्रीय-लीग' की अध्यक्षा चुना गया। १९३१ में इन्हें नोबल पुरस्कार भी प्रदान किया गया। इस निस्पृहनारी ने नोबल पुरस्कार की समस्त धनराशि 'महिला-अन्तर्राष्ट्रीय-लीग' को दान कर दी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.५० यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :-

१९३५ की बसन्त ऋतु में यह दिव्यात्मा सदैव-सदैव के लिए अपने आराध्य ईशू में समा गयी। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर प्रत्येक व्यक्ति की आँखों में तरलता छा गयी। हर किसी के मुँह से एक ही ध्वनि निकल रही थी—'वे किसी एक देश, एक जाति और एक धर्म की अनुयायी न थीं, वरन् सारे देश, सारे धर्म, सारा विश्व उनका अपना था।'

आज के युग में जबकि वैयक्तिक स्वार्थ-संकीर्णता की कीचड़ सर्वत्र बिखरी पड़ी है—जेन एडम्स की आत्मा की पुकार प्रतिध्वनित होकर पीड़ित मानवों की सेवा के लिए निरन्तर पुकारती रहती है। आज विश्व को ऐसी ही नारियों की आवश्यकता है, जो जेन एडम्स के पदचिन्हों पर चलकर विश्वात्मा का कल्याण कर सकें।

विश्वराष्ट्र और नारी उत्थान की स्वप्नदृष्टा एमिली ग्रीन वाल्च

''विमेन्स इण्टरनेशनल लीग फॉर पीस एण्ड फ्रीडम'' की अध्यक्षा एमिली ग्रीन वाल्च अस्थमा की शिकार होकर अस्पताल में अन्तिम घड़ियाँ गिन रही थीं। अशक्त हो जाने से वे इस रोग की पीड़ा को बड़ी कठिनाई से झेल रही थीं। तभी उनसे 'न्यूयार्क वर्ल्ड टेलिग्राम' के संवाददाता ने भेंट की और कई विषयों पर प्रश्न पूछे। इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए उन्होंने अपनी विश्वराष्ट्र की कल्पना और योजना का परिचय देते हुए कहा—''यदि लोग संगठित हों और उनका भाग्य कुछ सिरफिरे राजनीतिज्ञों के हाथ में न सौंपा जाय, तो सर्व प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र मिलकर एक ऐसे विश्वराष्ट्र की कल्पना को साकार रूप दे सकते हैं, जहाँ हर मानव भय से मुक्त रह सके। ऐसे विश्व राज्य की सम्भावना में संदेह करना कायरता होगी। मैं पूरी तरह विश्वास करती हूँ कि न केवल बहुमत से वरन् विभिन्न सरकारों की सहमति से प्राप्त सर्वसम्मति से संसार में नैतिक वातावरण लाया जा सकता है।

विश्वराष्ट्र के लिए अपने जीवन की संध्या वेला में भी इस प्रकार आश्वस्त, इस महिला ने अपना सारा जीवन विश्वशान्ति के लिए लगाया था और उनकी कल्पना के विश्वराष्ट्र की सम्भावना साकार भी एक अनूठे ढंग से होनी थी। उनके मत में—''स्थायी विश्वशान्ति के लिए स्त्रियों की अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक पार्टी होनी चाहिये। जिसमें सभी देशों की राजनैतिक कार्यकर्त्रियाँ शामिल होकर विश्वशान्ति के लिए कोई व्यवहारिक योजना बनायें और फिर अपनी संगठित शक्ति द्वारा उसे अमल में लावें। दूसरे मैं चाहती हूँ कि उस संस्था की गतिविधियाँ शान्ति समर्थक महिलाओं तक ही सीमित न रहे वरन् उन्हें समस्त कामकाजी स्त्रियों तथा सामान्य गृहिणियों में भी व्यापक बनाया जाय।''

उनकी बेधक दृष्टि से यह तथ्य छुपा नहीं था कि विश्वशान्ति और विश्वराष्ट्र की स्थापना पुरुषों के बस से बाहर है। अब तक की सभ्यता में उसका ही वर्चस रहा है और उसने रक्तपात, हिंसा, युद्ध के अतिरिक्त और कुछ किया नहीं है। कुछ महापुरुष इसके अपवाद हो सकते हैं, परन्तु अधिकांश पुरुष अनिश्चित और स्वछन्द होकर उन्मत्त ही हुए हैं। जब तक शक्ति का नियन्त्रण न होगा, पुरुष शिव नहीं बन सकता और इसी तथ्य को स्वीकार कर उन्होंने ''वीमेन्स इण्टरनेशनल लीग फॉर पीस एण्ड फ्रीडम'' की स्थापना की थी और महिलाओं के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की जड़ें सींची थीं।

एमिली ग्रीन वाल्च ८ जनवरी, १८६७ ई. को जुमेका प्लेन भास (अमेरिका) में जन्मीं। उनके पिता वकील थे। समृद्धि और सम्पन्नता के बीच पली एमिली को शान्ति की अभीप्सा अपने पिता से ही मिली। वे प्रसिद्ध शान्तिवादी एडवोकेट चार्ल्स समनर के सचिव भी रह चुके थे। एमिली की प्रारम्भिक शिक्षा निजी शिक्षण संस्थाओं में चली, उसके बाद वे कॉलेज में भर्ती हुईं। कॉलेज में पढ़ते समय उनका ध्यान सुधारवादी आन्दोलन की ओर लगा। पढ़ने के लिए भी उन्होंने समाजशास्त्र जैसा विषय चुना। समाजशास्त्र के प्रति उनमें इतनी अभिरुचि और गहन जिज्ञासा जाग्रत हुई कि १८९० में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद भी प्रसिद्ध समाजशास्त्री फ्रेंकलिन एच. गिण्डिग्स के पास समाजशास्त्र का अध्ययन करने लगीं।

उसी वर्ष ब्राइनमान कॉलेज की ओर से उन्हें समाजशास्त्र में शोध अध्ययन के लिए फैलोशिप अवार्ड मिला और वे पेरिस चली गयीं। एमिली संकल्प की दृढ़ तथा धुन की पक्की युवती थी। पेरिस में रहकर उन्होंने प्रो. ई. लेवाजथुर के सान्निध्य में शोध कार्य किया। इसी शोध अध्ययन पर आधारित एक ग्रन्थ 'पब्लिक असिस्टैन्स ऑफ द पूअर इन फ्रान्स' उन्होंने लिखा और सन् १८९३ ई. में प्रकाशित कराया।

तब तक उनकी आन्तरिक मनोभूमि भी काफी परिमार्जित और परिपक्व बन गयी थी। समाज-सेवा को उन्होंने अपना ध्येय चुन लिया था। यही कारण है कि उन्होंने १८९९ में एक सोशल वर्कर के रूप में अपना कार्यकारी जीवन आरम्भ किया। इस जीवन के आरम्भ समय में उन्होंने श्रमिक समस्याओं का भलीभाँति से अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि मजदूर वर्ग अपनी पूरी सामर्थ्य अपने मालिकों के लिये पसीना बहाने में लगाता है, तो भी उसे दो जून का खाना बड़ी मुश्किल से मिलता है और खासतौर से स्त्री मजदूरों की तो बहुत ही बुरी दुर्दशा थी। उन्होंने मजदूर हितों की रक्षा के लिये ''डेनियस हाउस सोसायटी'' तथा स्त्रियों के लिये बीमेन ट्रेड यूनियन लीग की स्थापना की। यह ट्रेड यूनियन अपने ढंग का अनूठा और अद्वितीय संगठन था, जिसने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महिला श्रमजीवियों के अधिकारों के लिये संघर्ष छेड़ा। तब तक इस दिशा में किसी भी सामाजिक संगठन का ध्यान नहीं गया था। उनके द्वारा चलाये गये प्रबल प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही अमेरिकी विधान में प्रथम वेतन बोर्ड का प्रारूप बना। स्वयं अमेरिकी प्रशासन ने उन्हें इस उद्देश्य के लिये गठित कन्ज्यूमर्स लीग का चेयरमेन बनाया था।

मजदूरों के हित में इतना काम कर चुकने के बाद उन्होंने शिक्षा जगत् में पदार्पण किया। शैक्षणिक योग्यता तो उनके पास थी ही। अतः उन्हें शीघ्र ही सफलता भी मिल गयी। सन् १९०२ तक वे हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, शिकागो यूनिवर्सिटी तथा बर्लिन यूनिवर्सिटी में पढ़ाती रहीं और बाद में वेलजली कॉलेज में अध्यापन करने लगीं। १९१३ से वे इस महाविद्यालय में प्रोफेसर भी नियुक्त हुईं परन्तु इसके पाँच वर्षों बाद ही छिड़ गया विश्वयुद्ध और उसमें अमेरिका ने भी भाग लिया। उनके देश में एक वर्ग ऐसा भी था जो विश्वयुद्ध की सम्भावनाओं को किसी भी प्रकार टालने के लिए अमेरिकी सरकार पर दबाव दे रहा था। लेकिन उस वर्ग की न चली तो उन्होंने अपनी युद्ध विरोधी और शान्तिवादी नीति का प्रचार करना आरम्भ किया। एमिली भी अपनी युद्ध विरोधी विचारधारा का संदेश सर्व सामान्य तक पहुँचाने लगीं। वे सदैव मानवीय दृष्टिकोण से विचार करती थीं। अध्यापन काल में भी उन्होंने अपने छात्रों को रंगभेद की नीति के खिलाफ आवाज उठाने के लिये सदैव प्रोत्साहित किया था। युद्ध विरोधी जन-चेतना जगाने के लिये उन्हें लम्बे समय तक अध्यापन से अवकाश लेना पड़ा। सरकार ने उनकी गतिविधियों से रुष्ट होकर उनकी छुट्टी कर दी। इस प्रकार उन्हें अपने शान्तिवादी विचारों की महँगी कीमत चुकानी पड़ी, परन्तु उनके चेहरे पर न तो क्षोभ की रेखा आयी और न ही पश्चाताप की। शिक्षक के पेशे से मुक्त होना, उसके लिये तो यह एक हर्षदायी अवसर था क्योंकि उससे उन्हें समाज-सेवा के लिये और अधिक समय मिलने लगा।

जिन दिनों वे शान्तिवादी तथा युद्ध विरोधी प्रचार कर रही थीं उन दिनों अमेरिका की ही प्रख्यात समाज सेवी विदुषी जेन एडम्स भी यही कार्य कर रही थी। एमिली का उनसे परिचय हुआ और परिचय घनिष्ठता में बदला। जेन एडम्स को तो युद्ध विरोधी प्रचार के कारण दुश्मन से मिलने के सन्देह में नजरबन्द भी कर लिया गया था। इससे पूर्व उन्होंने पीस पार्टी की स्थापना की थी, जो उनके कारावास काल में छिन्न-भिन्न हो गयी। जेल से मुक्त होने के बाद उन्हें एमिली का भी घनिष्ट सहयोग मिला और जेन ने अन्तर्राष्ट्रीय महिला लीग की स्थापना कर ली। इस लीग की अध्यक्षा जेन चुनी गयीं।

एमिली तो अपने अध्यापन व्यवसाय से भी मुक्त हो चुकी थीं। अतः उनका सारा समय लीग के कार्यों में ही लगता। १९१५ में उनकी गतिविधियों में और भी तीव्रता आयी, जब उन्होंने इण्टर नेशनल काँग्रेस ऑफ वीमेन में प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया। इस काँग्रेस में संसार भर की बुद्धिजीवी महिलाओं ने भाग लिया तथा शान्ति योजनायें बनायीं। कान्फ्रेन्स में महिलाओं ने शान्ति स्थापित करने के लिये छोटी-छोटी टुकड़ियाँ बनाईं तथा विभिन्न देशों में जाकर वहाँ की सरकारों से सम्पर्क साधा। एमिली ने भी तीन अन्य सदस्याओं के साथ स्केडेनेवियन देशों तथा रूस की यात्रायें कीं और वहाँ शान्ति प्रस्ताव रखे।

इस यात्रा से लौटकर उन्होंने सैनिक वाद के विरोध तथा निरस्त्रीकरण का प्रचार अभियान चलाया। स्कूलों में अनिवार्य सैनिक-शिक्षा तथा शस्त्र-निर्माण का भी उन्होंने विरोध किया। १९१९ में इण्टरनेशनल काँग्रेस ऑफ वीमेन की द्वितीय मीटिंग हुई। यहीं शान्ति आन्दोलन को स्थाई रूप देने के लिये स्थाई संगठन की आवश्यकता अनुभव की गई। तभी जेन एडम्स की अन्तर्राष्ट्रीय-महिला-लीग तथा अन्य महिला संस्थायें एक सागर में विलीन-सी हो गयी और 'वीमेन्स इण्टरनेशनल फॉर पीस एण्ड फ्रीडम' नामक संस्था बनी, जिसकी प्रेसीडेण्ट बनी एडम्स तथा इण्टरनेशनल सेक्रेटरी का पद ग्रहण किया एमिली वाल्व ने। साथ ही उन्होंने अमेरिका की शाखा में कार्यकर्त्री रहकर राष्ट्रीय स्तर पर भी लीग की गतिविधियाँ गतिमान कीं।

कहा जा चुका है कि एमिली की समस्त प्रवृत्तियों का प्रेरणा स्रोत-विश्वमानव के प्रति उनकी टीस ही थी और वह टीस संतुष्ट हो रही थी लीग के माध्यम से। अतः वे जी जान से लीग के कार्यों में जुट गयीं। यथावसर वे लीग के लिये अपनी निजी आवश्यकताओं की भी उपेक्षा कर जाती थीं। एक बार जब उनकी संस्था आर्थिक संकट में घिर गयी तो उन्होंने अठारह महीने का वेतन, निर्वाह भत्ता संस्था को वापस कर दिया। अन्य स्रोतों से भी उन्होंने संस्था के लिये पर्याप्त धन जुटाया और संस्था को आत्मनिर्भर बनाया।

यह अन्तर्राष्ट्रीय संस्था 'लीग ऑफ नेशन्स' से सम्बद्ध थी। इस कारण एमिली को विश्व के प्रमुख राजनीतिज्ञों व शासकों से सम्पर्क साधने का भी अवसर मिला। उन्होंने अपने कार्य में लीग से सहायता अर्जित करने के लिए साथ-साथ लीग को सहयोग देने में भी आगे रहना स्वीकार किया। १९३३ में साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ अधीनस्थ देशों में प्रबल जन-आन्दोलन चलने लगे थे। एमिली भी उन जन-आन्दोलनों से परिचित हुईं तो जनता द्वारा अपने अधिकारों को माँगना उन्हें सर्वथा न्यायिक और उचित लगा और वे साम्राज्यशाही शक्तियों के विरुद्ध भी आवाज उठाने लगीं।

किसी भी देश पर वहाँ की जनता की इच्छा के विरुद्ध अपना राज्य लादे रहना, उनकी दृष्टि में नृशंस मानवीय अपराध था। अतः स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रही जनता के समर्थन में उन्होंने लेखनी और वाणी का भरपूर उपयोग किया। तब तक वे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की महिला बन चुकी थीं और उनकी बातों का सर्वसाधारण पर प्रभाव भी होता था।

१९३६ में तो हैती में अमेरिकन हस्तक्षेप का उन्होंने डटकर विरोध भी किया। वहाँ की स्थिति का अध्ययन करने के लिये वे अपनी संस्था की कुछ वरिष्ठ सदस्याओं को साथ लेकर गयीं। वहाँ का निरीक्षण कर उन्होंने एक रिपोर्ट तैयार की व भाषण तथा आन्दोलनों द्वारा जनमत जाग्रत किया। अमेरिकी प्रशासन को आखिर उनके आगे झुकना पड़ा और सरकार ने उनकी शर्तें मंजूर कर लीं।

अब तक के प्रयास विश्वशान्ति की दिशा में सफलतापूर्वक अग्रसर हो रहे थे। उन्हीं दिनों दूसरा विश्व-युद्ध छिड़ गया। यद्यपि इस युद्ध से एमिली की कोई व्यक्तिगत क्षति नहीं होनी थी, पर उनका व्यक्तिगत रह ही क्या गया था ? उनका समूचा अस्तित्व ही मानव समाज को समर्पित था। अतः विश्वयुद्ध की घटनाओं ने उन्हें एक अजीब मानसिक द्वन्द्व में डाल दिया। शान्ति स्थापना के प्रयासों में वे इधर से उधर दौड़ती रहीं और विभिन्न देशों की सरकारों से सम्पर्क साधकर उन्हें शान्ति स्थापना के लिये समझौते करने हेतु मनाती रहीं लेकिन उन्हें निराशा ही हाथ लगी।

जेन एडम्स के बाद एमिली वाल्च ही लीग की अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्षा चुनी गयीं। द्वितीय युद्ध के बाद जब लीग का दसवाँ अधिवेशन हुआ, तो उन्होंने शान्ति स्थापना व नारी उत्थान के कार्यक्रमों को व्यापक बनाने के लिये योजनायें व कार्यक्रम तैयार किये। विश्वशान्ति और नारी उत्थान की व्यावहारिक योजना से उसकी स्थापना के लिये जीवन भर प्रयत्न करने वाली लोकमंगल की महान् साधिका का निधन सन् १९६१ ई. में हुआ। मरते समय भी उनकी अन्तिम साध विश्व-मानव का स्वप्न साकार करने की थी।

नारी शिक्षा आन्दोलन की कर्णधार— रेडन कार्तिनी

'उठ, अपने आदर्शों को समझने की चेष्टा कर। भविष्य की ओर देख। उन पददलित, अन्धकार में पड़े हुए लोगों की सहायता कर, जो भले-बुरे के मिथ्यात्व में पड़े हुए कष्ट भोग रहे हैं। चल उठ आगे बढ़। जन सेवा के लिए कटिबद्ध हो और अनीति के विरुद्ध संघर्ष कर।'—रेडन के अन्तर्मन में ये शब्द निरन्तर गूँजते रहते।

उन दिनों इण्डोनेशिया में नारी-जाति की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। उनका न कोई अधिकार था, न सम्मान। घर में दासियों की भाँति रखा जाता था। शिक्षा प्राप्त करना समाज में अपराध माना जाता था। अशिक्षित तथा उपेक्षित महिलाएँ पशुओं के समान जैसे-तैसे जीवन का भार ढोती थीं।

रेडन एडजंग कार्तिनी की आत्मा यह सब देखकर रो उठती थी। वे स्वयं घर की चहारदीवारी से बाहर निकलकर रचनात्मक कार्य करना चाहती थीं। परन्तु समाज में उनके पैरों में बेड़ियाँ डाल दी थीं। इन सब बन्धनों का एकमात्र कारण यही था कि वे लड़की थीं और तत्कालीन समाज की दृष्टि में लड़कियों का कार्य-क्षेत्र घर की दीवारों के अन्दर सीमित था। रेडन प्रायः सोचा करतीं—'परमात्मा ने तो लड़की और लड़कों को एक-सा ही बनाया है—एक-सी योग्यताएँ एवं क्षमताएँ प्रदान की हैं फिर समाज उनमें जमीन-आसमान का अन्तर क्यों करता है ? यह तो घोर अन्याय है। परमात्मा के प्रति विश्वासघात है' और उन्होंने निश्चय किया कि वे हर सम्भव उपाय से इण्डोनेशियाई समाज में नारियों की स्थिति सुधारेंगी, उन्हें मनुष्यों की भाँति जीने का अधिकार दिलायेंगी।

समाज की सच्चे अर्थों में सेवा करने के लिए अपने व्यक्तित्व का विकास परमावश्यक है। अतएव रेडन ने सोचा कि अध्ययन कार्य निरन्तर आगे बढ़ाए रखकर वे अपनी क्षमताओं का सर्वांगीण विकास करेंगी और तब समाज को लाभान्वित करेंगी।

उन दिनों इण्डोनेशिया के प्रतिष्ठित परिवार अपनी कन्याओं को बाहर भेजने में हिचकिचाते थे क्योंकि ऐसा करने पर उन्हें समाज की कटु आलोचना सुननी पड़ती थी। अतएव रेडन के माता-पिता ने भी बारह वर्ष की अल्पायु में ही उन्हें स्कूल से हटा लिया। अध्ययन छोड़ने से इन्हें अपार वेदना हुई। ये हर समय अत्यन्त चिन्तित और उदास रहने लगीं। अन्ततः सोचा कि सच्ची लगन और निष्ठा से घर पर रहकर ही मैं अध्ययन कार्य को आगे बढ़ाऊँगी।

रेडन नित्य प्रति ज्ञानवर्धक पुस्तक तथा पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ती रहतीं। अध्ययन में कुछ कठिनाई आने पर ये पिता से सहायता ले लेतीं। इनके पिता जो कि जावरा के एजेण्ट थे। एक माने हुए विद्वान थे। इन्होंने पुत्री की ज्ञान प्राप्ति की लालसा तथा पिपासा को देखकर उसे आगे बढ़ने में हार्दिक सहयोग दिया।

सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं के चिन्तन-मनन से भी रेडन की ज्ञान पिपासा तृप्त न हुई। पुस्तकों का ज्ञान उन्हें सैद्धान्तिक ही प्रतीत हुआ—उसे व्यावहारिक जीवन में ढालना—जनहित के लिये प्रयोग करना सम्भव न था।

अपने वर्षों के अध्ययन-मनन के आधार पर रेडन ने नारी-जागरण का कार्य हाथ में लिया। आरम्भ में इनकी माता ने विरोध किया। वे चाहती थीं कि पुत्री व्यर्थ के झंझटों में न पड़कर विवाह करले तथा अन्य लोगों की भाँति रहे। माता ने सेवा मार्ग में आने वाली विभिन्न कठिनाइयों को बताकर इन्हें मार्ग से विरत भी करना चाहा पर इन्होंने विनम्रतापूर्वक माँ को समझाया—"माँ ! मैं इस मार्ग की कठिनाइयों को भली-भाँति जानती हूँ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्तु तुम देखती क्यों नहीं, कैसे निविड़ बन्धन नारी जाति की संकीर्णता की डोरी से बाँधे हुए हैं। उनकी उचित शिक्षा तक में बाधक बने हुए हैं। इन बन्धनों ने नारी जाति को मानवोचित विकास एवं अधिकारों तक से वंचित कर रखा है। मेरे इस प्रयास से उनके लिए उन्नति का द्वार खुल सके तो क्या यह सौभाग्य न होगा ?''

पुत्री की हठधर्मिता देखकर माँ को स्वीकृति देनी ही पड़ी। रेडन ने अपनी दो बहिनों की सहायता से बालिकाओं के लिए विद्यालय खोले तथा शिक्षा का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। साथ ही उन्होंने लेखिनी भी उठायी। अब तक का अध्ययन-मनन हृदयग्राही रूप में अबाध गति से फूट पड़ा। नारी जाति के उत्थान में उनका एक-एक क्षण समर्पित हो गया। नारी प्रगति के लिए लेख-लिखकर उन्हें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराना, पुस्तकें लिखना, समाज के कर्णधारों तथा बुद्धिजीवियों का ध्यान नारी-प्रगति के लिए आकर्षित करना—यही उनके दिनभर के प्रधान कार्य थे। उनके लेख विचारोत्तेजक होते थे। उन्हें पढ़कर प्रबुद्ध व्यक्तियों के अन्दर नयी जागृति उत्पन्न हुई तथा समाज के इस पीड़ित भाग को उन्होंने सहायता देना प्रारम्भ कर दिया।

नारी विद्यालय भी दिन-प्रतिदिन उन्नति करता जा रहा था। समाज की रूढ़ियों को तोड़कर अनेक लड़कियाँ वहाँ आने लगीं। इस विद्यालय के अनुकरण पर कई विद्यालय और भी खुल गये। रेडन भी अब घर वालों के विरोध की चिन्ता न करके, कार्य-क्षेत्र में उतर पड़ीं तथा स्थान-स्थान पर कन्या-विद्यालय खुलवाये। इनके अथक् और अनवरत् श्रम तथा निष्ठा से देशभर में उत्साह उमड़ पड़ा तथा नारी-शिक्षा पर सर्वत्र बल दिया जाने लगा।

नारी जाति के मानवीय विकास तथा उन्नति के लिए इन्होंने इण्डोनेशिया में सुव्यवस्थित आन्दोलन चलाया। इस जागरण यज्ञ में रेडन एडजंग कार्तिनी ने अपनी समस्त व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं की आहुति दे दी। इनकी आदर्शमयी आकांक्षाओं तथा त्यागमय जीवन का जनता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। देशवासियों में नारी के प्रति संकीर्णताओं को हटाने के लिये कुछ उत्साही चरण बढ़ाने के लिए स्फूर्ति बढ़ी। इण्डोनेशिया की धरती पर जन्म लेकर, सामाजिक मूढ़ता के प्रति विद्रोही इस महिला ने अपने दिव्य-प्रकाश की अन्तर्भेदी रश्मियों से चारों ओर फैले पड़े अन्धकार को छिन्न-भिन्न करने में काफी सीमा तक सफलता प्राप्त की और आने वाली पीढ़ियों के लिये एक नया आदर्श भरा मार्गदर्शन दिया।

किसी भी राष्ट्र के इतिहास में उन महान् विभूतियों का स्थान सर्वोपरि होता है, जो जन-जागृति की ज्योति को प्रदीप्त रखने के लिए अपने जीवन को लगा देने का साहस करते हैं। रेडन असाधारण मानव-प्रेम की, पीड़ित मानवता की हैं सेवा-साधना की कोमल भावनाएँ लिये हुए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुईं और आजीवन अनन्य निष्ठा के साथ अपने हृदय में सँजोये आगे बढ़ती रहीं। वे विश्व की महान् महिला थीं, जो प्रकाश की प्रज्ज्वलित अग्निशिखा बनकर जीवित रहीं और मानव-कल्याण का मार्ग आलोकित करती रहीं।

नितान्त विपरीत परिस्थितियों के मध्य पग-पग पर विरोध और उपहास सहते हुए भी रेडन एडजंग कार्तिनी ने नारी जाति के उत्थान के लिये अत्यधिक कार्य किया। इण्डोनेशिया के नारी आन्दोलन की उन्हें जन्मदात्री माना जाता है। नारी शिक्षा तथा स्वावलम्बन के लिये, सामाजिक संकीर्णता के निबिड़ बन्धनों से छुटकारा दिलाने की दिशा में उन्होंने जो सफलता प्राप्त की, उसे आश्चर्यजनक ही माना जाता। साधन रहित और अवरोधों से घिरी हुई नारी अपने अदम्य साहस से कितना कुछ कर सकती है—इसका वे अनौखा आदर्श अपने पीछे छोड़ गयीं, जो सदैव अमर रहेगा।

त्याग और तपस्या की मूर्तिमान प्रतीक रेडन की गौरवगाथा आज सारे विश्व में परिव्याप्त है। इण्डोनेशिया में उस महान् नारी की पुण्य-स्मृति प्रति वर्ष २१ अप्रैल को बड़ी धूमधाम तथा सम्मान के साथ मनायी जाती है।

महिला मताधिकार के लिये संघर्ष करने वाली— पैंखर्स्ट

दस अक्टूबर सन् १९०३ में मैंचेस्टर (इंग्लैण्ड के एक छोटे-से मकान पर एक नई संस्था का 'बोर्ड' लगाया गया—'वीमेंस सोशल एण्ड पोलिटिकल यूनियन' (महिला सामाजिक और राजनीतिक समिति) शीघ्र ही इसका आन्दोलन और नारों 'स्त्रियों को मताधिकार दो' समस्त देश में फैल गया। राजनीतिक सभाओं के अन्त में प्रश्न पूछे जाने के अवसर पर कोई न कोई महिला खड़ी होकर व्याख्यानदाता से पूछ बैठती—''क्या आगामी चुनाव में शासनाधिकार प्राप्त करने पर आपकी पार्टी स्त्रियों को मताधिकार देगी ?'' आरम्भ में इस प्रकार का प्रश्न सभी राजनीतिज्ञों को एक मजाक की तरह जान पड़ता था।

पर इस आन्दोलन की जन्मदात्री श्रीमती पैंखर्स्ट (१८५८-१९२८) एक सिद्धान्तवादी महिला थीं, जिन्होंने एक अन्यायमूलक नियम का विरोध करने के लिए सब प्रकार की बाधाओं और कठिनाइयों का सामना करने का निश्चय कर लिया था। कुछ वर्ष बाद इस आन्दोलन के उग्र रूप धारण कर लेने पर जब वे गिरफ्तार की गयीं, तो उन्होंने अदालत के सामने बयान देते हुये कहा—

''मैं इस अदालत के सामने इस आन्दोलन की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेती हूँ। मैं आपको बतला देना चाहती हूँ कि आप मुझसे मुचलका देने को कहेंगे तो मैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कभी उस पर हस्ताक्षर नहीं करूँगी। हम इस आन्दोलन को चलाते रहने का पूर्ण निश्चय कर चुके हैं। मैं यहाँ सामान्य कानून भंग करने वालों की हैसियत से नहीं आई हूँ और यह बात मैं उन सब स्त्रियों की तरफ से कहती हूँ जो इस आन्दोलन के सिलसिले में गिरफ्तार होकर इस अदालत में अथवा अन्य मजिस्ट्रेटों के सामने पेश की जा रही हैं। अगर आपको मुझे छः महीना ही नहीं, छः वर्ष, दस वर्ष या आजीवन कारावास का दण्ड देने का अधिकार हो तो भी गवर्नमेण्ट को यह नहीं समझ लेना चाहिए कि यह आन्दोलन रुक जायेगा। हम यहाँ इसलिए नहीं लाई जाती हैं कि हम कानून भंग करने वाली हैं, वरन् हमको कानून का निर्माण करने का अधिकार माँगने के 'अपराध' में यहाँ लाया गया है।''

जिस समय (सन् १९०८) श्रीमती पैंखर्स्ट ने स्त्रियों के लिए मताधिकार का नारा लगाते हुये पार्लियामेण्ट के सम्मुख जोरदार प्रदर्शन किया और इस अभियोग में गिरफ्तार होने पर अदालत के सामने उपर्युक्त बयान दिया। उस समय उनकी आयु पचास वर्ष की हो चुकी थी। उनके पति डा. रिचार्ड पैंखर्स्ट का देहान्त इससे दस वर्ष पूर्व हो चुका था। वे भी अग्रगामी विचारधारा के व्यक्ति थे और बैरिस्टरी का धन्धा करते हुए अपना बहुत-सा समय गरीबों की दशा सुधारने के काम में लगाया करते थे। श्रीमती पैंखर्स्ट उनकी सच्ची सहयोगिनी थीं और गरीबों की सहायता से लेकर पार्लियामेण्ट के चुनाव तक में उनके कामों में हाथ बँटाया करती थीं।

ऐसे सेवाभावी दम्पत्ति की आर्थिक स्थिति का सदैव मामूली बना रहना स्वाभाविक ही था। इसलिए जब डा. पैंखर्स्ट का देहान्त हो गया, तो श्रीमती पैंखर्स्ट को अपने तथा चार बच्चों के गुजारे के लिए स्वयं ही कोई कार्य करना आवश्यक हो गया। उनके कुछ परिचित मित्रों ने प्रयत्न करके उनको 'जन्म-मरण कार्यालय' के कार्यकर्ता की नौकरी दिलाई, जिससे उनको थोड़ी-सी पर बँधी हुई आमदनी होने लगी। इसके सिवाय उन्होंने गद्दे, तकियों की छोटी-सी दुकान भी खोल ली और किसी तरह परिवार निर्वाह करने लगीं।

यद्यपि इस समय उनका जीवन आर्थिक कठिनाई में व्यतीत हो रहा था, पर अब भी सामाजिक समस्याओं में उनकी रुचि पूर्ववत् थी और गरीबों की दुर्दशा के सम्बन्ध में भी उनके विचार वैसे ही उग्र थे। इस समय उनको नौकरी भी ऐसी मिली थी, जिससे समाज की दुरावस्था का अधिकाधिक अनुभव हो जाता था और सुधार की आवश्यकता प्रतीत हो जाती थी। कभी उनके सामने ऐसी निराश मातायें आतीं, जिनके कई बच्चे हो चुके हैं, खर्च की कमी पड़ रही है, पर एक बच्चा और हो गया। कभी कोई-कोई स्त्री अपने पति की मृत्यु दर्ज कराने आती और बताती कि अब उसे घोर दरिद्रता का सामना करना पड़ेगा। कभी ऐसी अविवाहित युवती लड़कियों से भेंट हो जाती, जिनको कोई प्रेमी धोखा देकर भाग गया है और अब नये उत्पन्न होने वाले शिशु का भार उसे ही उठाना पड़ेगा। इस प्रकार पैंखर्स्ट सरकारी काम करते हुए इन कष्टदायक परिस्थितियों पर विचार करतीं और सामाजिक अन्याय के प्रति अपने असन्तोष और विरोध के भाव को खुलेतौर पर प्रकट करती रहतीं। अन्त में वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचीं कि इस दुरावस्था का सबसे बड़ा कारण स्त्रियों को किसी प्रकार का अधिकार न होना है।

इन्हीं भावनाओं से प्रभावित होकर उन्होंने 'महिला सामाजिक और राजनीतिक समिति' की स्थापना की, जिसको संक्षेप में बी. एस. पी. यू. कहते थे। उनकी तीनों पुत्रियाँ, जिनकी आयु इस समय १८ से २१ वर्ष की हो चुकी थी, इन्हीं विचारों की थीं और इस आन्दोलन में पूरी तरह भाग ले रही थीं। इस सिलसिले में सबसे पहले जेल जाने वाली उनकी पुत्री क्रिस्टावेल ही थी।

बड़ी कोशिशों के बाद सन् १९०५ में पार्लियामेण्ट में एक सदस्य श्री बम्फोर्ड स्लैक इस सम्बन्ध में एक बिल पेश करने को तैयार हुए। १२ मई के दिन यह बिल पार्लियामेण्ट के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित होने वाला था। उसका भवन तथा बाहर की सड़कें स्त्रियों से ठसाठस भरी थीं, जो स्लैक के भाषण को सुनने की प्रतीक्षा में थीं। पर इसका मौका ही न आ सका। पहले जो विषय चल रहा था, उसी पर कितने ही सदस्य जान-बूझकर एक के बाद एक लम्बे-लम्बे भाषण करते चले गये और इस प्रकार 'महिला मताधिकार' के बिल को पेश करने का समय ही न बचा।

इस घटना से पैंखर्स्ट की आँखें खुल गईं और उन्होंने निश्चित रूप से समझ लिया कि स्त्रियों के मताधिकार के कार्य को पुरुषों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता वरन् स्वयं स्त्रियों को ही मैदान में आकर जोरदार सक्रिय कदम उठाना पड़ेगा। नया चुनाव होने वाला था और स्त्रियाँ 'महिला मताधिकार' के नारे लगाकर चुनाव की सभाओं में हर जगह बाधा डालने लगीं। फलस्वरूप झगड़े-फिसाद, गिरफ्तारियाँ, जुर्माने, कैद की सजा आदि की बाढ़ आ गई। कितने ही पुरुष भी इस आन्दोलन के विरोधी बन गये और प्रदर्शन करने वाली स्त्रियों पर सड़े अण्डे और गले हुए टमाटर फैंककर मारने लगे।

पर श्रीमती पैंखर्स्ट आन्दोलन को अन्त तक जारी रखने की प्रतिज्ञा कर चुकी थीं। हजारों स्त्रियाँ उनकी अनुयायी बन गईं श्री पैथिक लारेंस नाम के उदार विचारों के बैरिस्टर ने उनके कार्य में आर्थिक और प्रचार की सहायता देना आरम्भ किया। सन् १९०६ में जब नई पार्लियामेण्ट का उद्घाटन हुआ तो उन्होंने अपनी माँगों के लिए बहुत बड़ा प्रदर्शन किया। घुड़सवार पुलिस ने स्त्रियों का जलूस भंग कर दिया, पुरुषों ने भी उन पर आक्रमण किया और कितनी ही स्त्रियों को पकड़कर जेल में बन्द कर दिया गया।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसके बाद तो आन्दोलन की उग्रता दिन पर दिन बढ़ती गई। स्त्रियाँ रोके जाने पर भी किसी न किसी तरह राजनीतिक नेताओं की सभाओं में घुस जातीं और वहाँ 'वोट' की माँग पेश करके उनकी कार्यवाही को रोक देतीं। जब उनको जबर्दस्ती बाहर निकाला जाता तो वे अपने को किसी कटहरे की रेलिंग के साथ जंजीर से बाँध लेतीं। व्याख्यान भवन का दरवाजा बन्द कर लेने पर वे छत पर चढ़कर रस्सी से नीचे उतरकर भीतर पहुँच जातीं। एक स्त्री ने तो बादशाह के घोड़े को रोककर अपनी बात कहने की कोशिश की और वह घोड़े की ठोकर लगने से वहीं मर गई। पर इनमें से किसी बात से श्रीमती पैंखर्स्ट और उनके अनुयायी भयभीत नहीं हुये। उन्होंने फिर कहा—

"मेरा विश्वास है कि व्यक्तिगत आजादी का बलिदान ही जनता के ध्यान में और सहानुभूति को अपनी तरफ खींचने का सबसे बड़ा साधन है। जब तक हमारा उद्देश्य पूरा न होगा, तब तक हम न तो ठहरेंगे और न आराम करेंगे। मताधिकार के लिये हम अपने प्राण देने को तैयार हैं या इससे भी बड़ा और कोई कष्ट आये तो उसके लिए भी राजी हैं।"

जिस समय इंग्लैण्ड में श्रीमती पैंखर्स्ट इस प्रकार का उग्र आन्दोलन कर रही थीं, भारतवर्ष में भी स्वाधीनता संग्राम ने पूरा जोर पकड़ लिया था। लो. तिलक और ला. लाजपतराय जैसे नेताओं को देश निकाला दिया जा रहा था, जेलें देश भक्तों से भरी जा रही थीं, सैकड़ों युवक मरने-मारने को तैयार होकर अपने प्राण अर्पण कर रहे थे। इस प्रकार दोनों आन्दोलनों में बहुत कुछ समता होने के कारण श्रीमती पैंखर्स्ट भारतीय आन्दोलन से बहुत सहानुभूति रखती थीं।

सन् १९१४ तक यह आन्दोलन जोरों से चलता रहा। पर जब महायुद्ध शुरू हो गया और देश रक्षा का प्रश्न सामने आया तो उस कार्य में बाधा न पड़ने देने के उद्देश्य से आन्दोलन स्थगित कर दिया गया और वे युद्ध के संचालन में हर तरह से सहायता देने लगीं। परिणाम यह हुआ कि युद्ध समाप्त होने से पहले ही 'महिला मताधिकार' का कानून पार्लियामेण्ट ने पास कर दिया।

इस कानून में कितनी ही त्रुटियाँ थीं और तमाम स्त्रियों को अधिकार नहीं दिया गया था। इसलिए श्रीमती पैंखर्स्ट उसके कार्य-क्षेत्र को विस्तृत कराने का प्रयत्न करने लगीं। उनका कहना था कि स्त्रियों को भी पुरुषों के समान नियमों पर ही वोट देने का अधिकार मिले। सरकार ने इस बात को मान लिया और कुछ समय बाद इसे पूरा करने का वायदा कर लिया। इस सम्बन्ध में अन्तिम बिल जून १९२८ में पास किया गया और उसी दिन श्रीमती पैंखर्स्ट ने जिनका स्वास्थ्य जेल के कष्टों और आर्थिक कठिनाइयों से टूट गया था, इस नश्वर जगत् को त्याग दिया। मृत्यु-काल से पहले कानून के पास होने का समाचार मिल जाने पर उन्होंने शान्तिपूर्वक प्राण छोड़े और मरते हुए यही कहा—"मेरा जीवन सार्थक हो गया।"

चूँकि भारतीय-संविधान में महिला मताधिकार को पहले ही स्वीकार कर लिया गया है, इसलिये हमको यह अनुभव नहीं हो सका कि यह भी एक महत्त्वपूर्ण विषय है, जिसके लिए इंग्लैण्ड जैसे विकसित और अग्रगामी देश में इतना बड़ा संघर्ष करना पड़ा। यह सच है कि इस अधिकार को मिल जाने पर भी पुरानी स्थिति में कोई खास अन्तर नहीं पड़ा है और कभी-कभी दो-चार स्त्रियाँ पार्लियामेण्ट की सदस्या बन जाती हैं। हमारे देश की स्थिति भी इससे मिलती-जुलती है। यहाँ स्त्रियों और पुरुषों के मताधिकार सम्बन्धी नियमों में जरा-भी भेद नहीं रखा गया है और महिलायें प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्री, राजदूत, राज्यपाल जैसे ऊँचे पदों तक भी पहुँच रही हैं, पर जब ध्यान से देखते हैं तो मालूम होता है कि यह सब होने पर भी राजनीति में भाग लेने वाली सुयोग्य स्त्रियों की संख्या देश-भर में सौ-पचास से शायद ही अधिक हो। कुछ भी हो न्याय की दृष्टि से स्त्रियों को वोट का अधिकार मिलना अत्यन्त महत्त्व की बात है और इस विषय में हमको श्रीमती पैंखर्स्ट का आभार मानना पड़ेगा। संसारभर में महिला मताधिकार की अगुआ वे ही हैं और इस दृष्टि से उनका नाम युग-निर्माताओं की सूची में अवश्य लिखा जाता रहेगा।

नोबेल पुरस्कार विजेता व्यस्त गृहिणी श्रीमती सिग्रिड अनसेत

नार्वे के एक बड़े नगर में रह रहे इतिहासवेत्ता और पुरातत्त्वविद् ने आवाज लगायी—बेटी जरा सुनो तो।

तेरह-चौदह वर्ष की एक किशोरी ने अध्ययनकक्ष में प्रवेश किया और इतिहासवेत्ता के एक ओर आकर विनीत खड़ी हो गयी। तब पिता ने पुनः कहा—"सुनो तुमने मध्ययुग के इतिहास पर जो सन्दर्भ खोज करने के लिए मैंने कहा था वे खोज लिये क्या ?"

जी खोज लिये हैं—किशोरी ने कहा।

'जरा लाना तो'—पिता ने कहा और पुत्री उन्हें लेने के लिए चल दी। उक्त सज्जन के पास ही कोई छात्र-सा युवक बैठा था। उसे आश्चर्य हुआ कि उसके अध्यापक अभी जिस किशोरी को बेटी कहकर पुकार रहे थे। वह उनके नोट्स लिखने का काम भी करती थी। अब तक वह युवक जितने भी शिक्षकों के सम्पर्कों में आया था उनमें से कोई भी अपनी पुत्री से ऐसा काम नहीं लेता था बल्कि सबने ऐसे कार्यों के लिये अलग से सचिव रख छोड़े थे। आश्चर्य का समाधान इस विचार से होने लगा कि सम्भवतः यह किशोरी किसी गरीब परिवार की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कन्या हो और उदार हृदय प्रोफेसर ने उसे अपने पास निजी सचिव के रूप में नियुक्त कर लिया हो। समाधान की पुष्टि करने के लिए उसने पूछा—'सर ! यह क्या आपकी बेटी है ?

'हाँ बेटी भी है—प्रोफेसर ने कहा।

समाधान पुष्ट हुआ पर 'भी' शब्द ने उसकी जिज्ञासा को और बढ़ा दिया और उसने फिर पूछा—'बेटी के अतिरिक्त और क्या है ?'

'मेरी निजी सचिव भी है'—प्रोफेसर बोले।

'तो आप अपनी बेटी से ही यह काम लेते हैं—युवक ने कहा।'

'हाँ'। उसी से लेता हूँ। इसका कारण है कि वह भी इतिहास का अध्ययन कर लेती है और मेरा भी काम चल जाता है—प्रोफेसर ने युवक का पुष्ट समाधान किया और युवक भी अपने प्रोफेसर की दूरदर्शिता से बड़ा प्रभावित हुआ अन्यथा अब तक वह यही समझ रहा था कि अतीत में जीने और खण्डहर में रहने वाले इतिहासकार भविष्य की क्या सोच पाते होंगे लेकिन अपने प्रोफेसर को इस दूरदर्शी बुद्धिमत्ता और सादगी के दोहरे सिद्धान्त का एक साथ पालन करते देख श्रद्धानत हुए बिना नहीं रह गया।

उक्त प्रोफेसर ने जिस दूरदर्शिता का परिचय अपनी बेटी के सम्बन्ध में दिया था। वह व्यर्थ नहीं गया। उनकी बेटी अपने पिता की नई-पुरानी किताबों को सँम्हालकर रखती, उनके लेखन और अध्ययन की व्यवस्था करती, उनके लिए सन्दर्भ और नोट्स लिखती तथा अपने स्कूली विषयों के साथ-साथ इतिहास और पुरातत्त्व का भी अध्ययन करती, इसी अध्यवसायी प्रकृति के फलस्वरूप वह अपने पिता के ज्ञान और अनुभवों का भी लाभ उठा सकी। जिन्हें आधार और पृष्ठभूमि बनाकर उसने आगे चलकर एक से एक सुन्दर कृतियाँ लिखीं तथा अपने पाठकों के सम्मुख एक ऐसे आदर्श समाज का चित्रण किया—उसके निर्माण की प्रेरणा दी—जिसे सम्मानित करने के लिए संसार का सबसे बड़ा पुरस्कार नोबेल प्राइज उन्हें मिला और वह भी घरेलू दायित्वों को कुशलतापूर्वक निभाते हुए।

१९२८ में नोबेल पुरस्कार से पुरस्कृत अपने पिता की ही निजी सचिव रह चुकी साहित्यकार विदुषी सिग्रिड अनसेट का जन्म १८८२ ई. में हुआ। उनका जन्म यद्यपि डेनमार्ग में हुआ, परन्तु पिता नार्वे में ही अनुसन्धान कार्य करते थे और परिवार भी वहीं रहता था। माता डेनिश थी। अतः इसी कारण उनका जन्म डेनमार्क में हुआ। नार्वे में ही उनकी शिक्षा-दीक्षा और पालन का क्रम चला। उनके पिता इतिहास और पुरातत्त्व पढ़ाते थे। यही उनके प्रिय विषय भी थे। अतः अध्यापन की अपेक्षा उनका अध्ययन अनुसंधान की ओर ज्यादह था, इसी कारण परिवार को कभी-कभी गुजारे लायक धन इकट्ठा करने में भी मुश्किल होती थी।

आमतौर पर आर्थिक अभावों से ग्रस्त परिवार में कलह और लड़ाई-झगड़ा देखा जाता है। इससे परिवार के वातावरण में विकृतियाँ हो आती हैं, परन्तु सिग्रिड के परिवार में ऐसी परिस्थितियों को कभी सर उठाने का ही मौका न मिला। सामान्य आर्थिक स्थिति में भी पति-पत्नी बड़े प्यार से रहते और अपने बच्चों पर प्यार लुटाया करते। पिता सिग्रिड को इतिहास की रोचक कहानियाँ और किस्से सुनाया करते थे। बचपन में ही इन किस्से-कहानियों से सिग्रिड को नार्वे के इतिहास का अच्छा ज्ञान हो गया। सम्भवतः इसी कारण उनमें इतिहास के प्रति अभिरुचि जाग्रत हुई थी।

प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के बाद उन्होंने आगे की शिक्षा ओसले के महिला महाविद्यालय में प्राप्त की। अभी उनकी शिक्षा पूरी ही नहीं हुई थी कि दुर्भाग्य से पिता का देहान्त हो गया और खेलने-खाने, मौज उड़ाने की उम्र में ही सिग्रिड को जीविका की तलाश में भटकना पड़ा। इधर-उधर मेहनत-मजदूरी कर उन्होंने साधारण नौकरी पाने योग्य कक्षायें पास कीं और फिर उसके लिए साधारण अधिकारियों के सामने भी अपनी परिस्थितियों को रखा।

परन्तु लोग अपनी परिस्थितियों का हवाला देने वालों से सहानुभूति जताने की अपेक्षा उनका मजाक ही ज्यादा उड़ाया करते हैं। सिग्रिड ने प्रारम्भिक असफलताओं के बाद यह तथ्य भली-भाँति समझ लिया और इस आस्था को अपने अन्तरंग में स्थापित कर लिया कि परिस्थितियों से संघर्ष ही उन्हें पराजित करने का एकमेव मार्ग है। बड़ी ऐड़ियाँ रगड़ने के बाद उन्हें अपने शहर की ही एक संस्था में क्लर्की का काम मिला। तब उनकी आयु सत्रह वर्ष की थी और ऊपर से मालिक की यह शर्त कि काम से असंतुष्ट होने पर तत्काल बिना किसी सूचना के नौकरी से हटा दी जाओगी।

अपनी ओर से पूर्ण संतोषप्रद काम करने का उसने आश्वासन दिया और उत्साहपूर्वक काम के घण्टों में तन्मय होकर कार्य पूरे करने में लगी रहती थी। उस समय कोई यह भी नियम नहीं था कि मालिक लोग अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से कितने घण्टा काम लेंगे। जब तक काम समाप्त नहीं हो जाता, कर्मचारियों को काम करना पड़ता था। भले ही फिर काम १० घण्टों में समाप्त हो या १४ घण्टों में। इस प्रकार सिग्रिड का अधिकांश समय मालिक के सौंपे कार्यों में ही खर्च होता और शाम को या शाम के बाद जब भी वे घर लौटतीं तो बेहद् थकी होती थीं।

थकने के बावजूद भी उन्होंने घर पर अपने लिए एक नया काम अध्ययन का खोज निकाला। जिस समय उन्होंने क्लर्की शुरू की, तब वे युवावस्था में प्रवेश कर चुकी थीं और वे यह भी मानती थीं कि यौवन ऐसी वय है, जिसमें भविष्य को सुनिश्चित दिशा दी जानी चाहिए।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस दिशा के अभाव में व्यक्ति खाने-पीने और बोलने-फिरने वाला पढ़ा-लिखा पशुभर रह जाता है। सिग्रिड ने अपने लिए जीवन की एक दिशा चुनी साहित्य साधना। इतिहास पर उनका पूर्व अध्ययन था ही और वे अध्यवसायी प्रवृत्ति का भी अच्छा विकास कर गयी थीं। अतः कार्यालय से लौटने के बाद उन्हें अध्ययन के लिए समय निकालने में जरा भी कठिनाई नहीं हुई। थोड़ा-सा सुस्ताकर वे अध्ययन में जुट जातीं। साहित्य के लिए अच्छा अध्ययन भी तो कम आवश्यक नहीं है।

इस नौकरी में रहते हुए उन्होंने लेखन-साधना आरम्भ की और उनकी दो प्रारम्भिक कृतियाँ प्रकाशित हुईं। ये पुस्तकें उन्हें अच्छी-खासी प्रसिद्धि तो नहीं दिला सकीं पर उनमें आत्मविश्वास जाग्रत कर गयीं कि वे लिख सकती हैं। लेखन के प्रति अब उनमें इतना गहरा लगाव उत्पन्न हो गया था कि इसके लिए उन्होंने दस साल पुरानी नौकरी छोड़ देना ही उचित समझा। अपना यह निर्णय सुनाने के लिए वे जब मालिक के पास गयीं तो मालिक ने कहा—लेकिन सिग्रिड मैंने तो तुम्हारे काम से कभी असंतोष व्यक्त नहीं किया है।

क्षमा करना सर—सिग्रिड ने कहा—पर भविष्य मेरे लिए दूसरी बड़ी सफलताओं की सौगात लिये खड़ा है।

'अच्छा मैं समझ गया। निश्चित ही तुम एक महान् लेखिका बनोगी—चेतावनी देने वाला वह मालिक भी सिग्रिड की कर्त्तव्यनिष्ठा और तन्मयता से इतना प्रभावित हुआ कि उसके मुँह से अनायास ही यह संवाद निकल गया।

नौकरी से छुट्टी लेकर उन्होंने एक बढ़िया उपन्यास लिखा, जिसमें यह विचार प्रतिपादित किया था कि कला साधना से संतोष और आनन्द दोनों ही मिलते हैं परन्तु जब तक उन्हें बाँटा न जाये वे सुखद नहीं होते। जेनी के नाम से यह उपन्यास १९११ में प्रकाशित हुआ और जेनी अचानक ख्याति के आकाश में ध्रुवतारे की तरह प्रतिष्ठित हो गयी। इस उपन्यास में जेनी की नायिका का मानसिक द्वन्द्व, अनमेल विवाह की समस्या तथा आन्तरिक संघर्षों का अच्छा चित्रण किया गया था, जो एक भावुक स्त्री होने के साथ एक कलासाधिका भी थी।

इस उपन्यास के बाद उन्होंने पारिवारिक समस्याओं, दाम्पत्य-जीवन की उलझनों तथा भावुक प्रणय-सम्बन्धों की पृष्ठभूमि पर कई कहानियाँ लिखीं। सन् १९१२ में उनका परिचय ए. सी. स्वर्स्टेड नामक एक चित्रकार से हुआ, दोनों ने एक-दूसरे को परखा और पसन्द किया तथा दाम्पत्य सूत्र में बँध गये। दाम्पत्य और मातृत्त्व के दोहरे कर्त्तव्यों का कुशलतापूर्वक निर्वाह करते हुए उन्होंने अध्ययन और लेखन का क्रम भी जारी रखा। स्वर्स्टेड जरा संवेदनशील और भावनाप्रधान व्यक्ति थे, साथ ही साथ उन्हें अपनी कला पर अति से अधिक अहंकार भी था। सिग्रिड उनके स्वभाव की सभी कमजोरियों को सहते हुए अपने दाम्पत्य सम्बन्धों को मधुरतम बनाने के लिए प्रयत्न करती रहीं। इधर स्वर्स्टेड को सिग्रिड की ख्याति ईर्ष्याप्रद भी लगी और वह एक तरफा विमुख होने लगे। धीरे-धीरे उनके सम्बन्ध यहाँ तक बिगड़े कि उन्होंने विवाहित जीवन की अपेक्षा सम्बन्ध-विच्छेद करना ही अधिक श्रेयस्कर समझा और सिग्रिड अपने बच्चों को लेकर अलग रहने लगी।

विख्यात लेखिका होते हुए भी वे एक कुशल गृहिणी थीं और उन्हें अपना परिवार तथा बच्चे इतने अधिक प्रिय थे कि वे उनके कारण बाहर भी बहुत कम निकलती थीं। पारिवारिक दृष्टि से उनके आदर्श भारतीय नारियों से बड़ी सीमा तक मिलते थे और उनकी मान्यता के अनुसार परिवार का सुख ही व्यक्ति को अगली कक्षा में भी सफल बनाते हैं, तो समाज के हित में मनुष्य मात्र के कल्याण में निरत होने के लिए प्रेरित करते।

जब उनके सम्बन्ध विच्छेद हुए तब तक उनकी प्रसिद्धि और भी फैल गयी थी। पाठक उनके उपन्यास पढ़ने के लिए आतुर से रहते थे और प्रकाशक प्रतिदिन उनके घर पर आया जाया करते। वे सबेरे बड़े जल्दी उठतीं तब बच्चे सोये ही रहते और दो-तीन घण्टे जमकर लिखतीं। इसके बाद वे दिनभर कलम को छूती भी नहीं—सारा समय घर के काम-काज, बच्चों के साथ खेलने और शाम का थोड़ा समय अपने बच्चों के साथ घूमने-फिरने में ही बिताती थीं।

उन्होंने छोटी-बड़ी कुल मिलाकर २० पुस्तकें लिखीं, जो सर्वाधिक लोकप्रिय हुईं। इन पुस्तकों में उपन्यास, कहानियों तथा लेखों द्वारा उन्होंने अपने विचारों को अभिव्यक्ति दी है। जिन्हें पढ़कर यही लगता है कि लेखिका भारतीय-संस्कृति की सुधी अध्येता और प्रशंसिका है, यही नहीं मनुष्य मात्र का इसी में कल्याण देखने वाली विचारिका भी। पिता के साथ रहकर इतिहास का अध्ययन किया और उनके ज्ञान, अनुभवों का भी उन्होंने भरपूर उपयोग किया तथा अपने पाठक को मनोरंजन की दुनिया में बहलाने के साथ-साथ आदर्शवादी उत्कृष्ट जीवन के शिखरों पर चढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया।

उनके साहित्य कि इन्हीं सशक्त प्रेरणाओं से प्रभावित होकर स्वीडिश एकेडमी ने उन्हें सन् १९२८ में साहित्य का नोबेल पुरस्कार देने का निर्णय लिया। इस पुरस्कार को प्राप्त करते समय उन्होंने यही प्रतिक्रिया व्यक्त की कि यह मेरा नहीं, उन आदर्शों का सम्मान है, जिन्हें अपनाकर मनुष्य क्षुद्र से महान् बनता है। मैं तो उन आदर्शों को रोचक ढंग से पाठकों तक पहुँचाने वाली संदेशवाहिका भर हूँ।

सन् १९४९ में इनका निधन हुआ। उनके निधन पर एक पत्र ने अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए लिखा था—"हम ऐसी एकान्तप्रिय और गृहस्थी में ही व्यस्त रहने वाली गृहिणी के निधन से अभिभूत हैं, जिसने सर्वाधिक लोगों को मनोरंजन किया, उन्हें प्रेरणा दी और सदा साथ रहीं तथा रहेंगी भी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नारी जागरण की प्रथम नेत्री— मादाम सनयात सेन

अमेरिका के वेसलियन विश्वविद्यालय से लौट रही एक चीनी कुमारी सूङ्-चिंग-लिङ् ने जहाज में देखा कि एक नवयुवक चीनी बड़ा घबराया-सा चढ़ा और चुपचाप उसके पास आकर बैठ गया। जहाज रवाना हुआ, तो उसने आस-पास बैठे यात्रियों पर एक निगाह डाली और फिर इत्मीनान की साँस ली। अपने देश का निवासी कोई व्यक्ति विदेश में मिल जाये, तो ऐसा लगता है जैसे कोई अति आत्मीय परिजन मिल गया हो, भले ही उसे पहले कभी देखा न हो। सूङ् को भी ऐसा ही अनुभव हुआ और वह परिचय बढ़ाने के लिए आतुर हो गयी। उसने पूछ ही लिया—"आप क्या चीन में रहते हैं ?"

"नहीं ! जापान"—युवक ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया। शरीर की बनावट और आकृति में चीनियों तथा जापानियों में कोई विशेष अन्तर नहीं रहता। शायद मति भ्रम हो गया है—ऐसा विचार सुङ् के मन में आया परन्तु बोलने का ढंग तो ठीक चीनियों जैसा था। शायद कोई कारण होगा, जिसकी वजह से युवक कुछ खुलकर कहना नहीं चाहता था।

सूङ् ने फिर पूछा—"आप कुछ घबराये से हैं। कोई परेशानी है क्या ?"

"कोई परेशानी नहीं है देवी जी ! परन्तु भगवान के लिए ज्यादा बात मत कीजिए"—युवक ने कहा।

पास ही बैठा एक व्यक्ति उन दोनों का यह संक्षिप्त वार्तालाप बड़े ध्यान से सुन रहा था। जापान के हवाई अड्डे पर वह युवक उतर गया और गौर से बातें सुन रहा वह व्यक्ति भी तेजी से उसी की ओर लपका। कुमारी सूङ् भी उसी अड्डे पर उतर गयी और चुपचाप यान में घटी घटनाओं पर विचार करती हुई गन्तव्य स्थान की ओर चल दीं।

कई दिनों बाद फिर वह युवक दिखाई दिया और कुमारी चिंग ने उसे रोककर यान की घटनायें स्मरण करवाईं। उसने बताया कि वह चीन को विदेशी शासकों से मुक्त कराने के लिए इधर-उधर भ्रमण करता फिर रहा है। यहाँ भी पुलिस के जासूस उसे पकड़ने के लिए चौबीसों घण्टे पीछे पड़े रहते हैं और उस दिन अधिक बात इसलिए नहीं की क्योंकि पास बैठा व्यक्ति गौर से देख-सुन रहा था।

"चीन की स्वतन्त्रता . . . . . " सुनकर कुमारी चिंग का हृदय हर्ष से भर गया। अमेरिका में रहकर वह कई बार सोचा करती थी कि काश ! उसका देश आजाद हो सके। इसके लिए कोई प्रयत्न भी कर रहा है, यह तो उसे पता ही नहीं था। कुमारी चिंग ने भी अपनी भावनायें व्यक्त की और इस कार्य में स्वयं सहयोग देने की इच्छा प्रकट की। युवक ने अब अपना परिचय दिया—"मुझे सनयात सेन कहते हैं।"

डॉ. सनयात सेन उन दिनों चीनी स्वाधीनता आन्दोलन के लिए प्रयत्न करते हुए देश-विदेश में घूम रहे थे। कुमारी चिंग के रूप में उन्हें एक सहयोगी मिल गया। प्रथम परिचय पारस्परिक आदर, प्रेम और सहयोग में बदला। एक की ध्येय निष्ठा दूसरे की प्रेरणा बन गयी। अन्ततः सन् १९१४ में उनका प्रेम आदर्श-दाम्पत्य में बदल गया। कुछ ही वर्षों में इतने निकट आने और पति-पत्नी बन जाने का एकमात्र कारण था कि वे दोनों देश और समाज के लिए परस्पर मिल-जुलकर काम करें। यद्यपि एक लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए रिश्ते की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी दोनों को अपने जीवन साथी की जरूरत तो थी ही और उन दोनों के लिए एक-दूसरे से अधिक योग्य जीवन साथी और कौन हो सकता था ?

चीन की राजनीति में मादाम सनयात सेन का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यद्यपि एक बहुत बड़े देश के राष्ट्रपिता की पत्नी होना मात्र ही अपने आप में प्रभाव और गौरव की बात है, परन्तु मादाम सनयात सेन ने सिद्ध कर दिया कि वे महज सनयात सेन की पत्नी होने के कारण ही गौरवास्पद नहीं हैं, बल्कि उनमें स्वयं में भी देश भक्ति, जन सेवा और राजनीति चेतना पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। राजनीति में उनकी विद्यार्थी जीवन से रुचि रही। अपने देश की राजनीति में उन्होंने खुलकर भाग भी लिया।

कुमारी सूङ् (बाद में श्रीमती सनयात सेन) का जन्म क्यागसू प्रान्त के कुनशान नगर के सम्पन्न और प्रतिष्ठित परिवार में सन् १८१० में हुआ। अच्छी शिक्षा-दीक्षा के लिए उन्हें अमेरिका भेजा गया, जहाँ उन्होंने विश्व की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति का भी अध्ययन किया। पश्चिमी समाज के प्रगतिशील तथ्यों से परिचित होने पर उन्हें अपने देश में एक बहुत बड़ी कमी दिखाई दी। वह थी, स्त्रियों की दुर्दशा। चीन में स्त्रियों की हालत अन्य एशियाई देशों की तरह ही खराब थी। उन्हें पुरुष के अत्याचार, अन्याय और शोषण का शिकार बनकर बेड़ियों से बँधे पाँवों में ही सारा जीवन काट देना पड़ता था।

अमेरिका में ही उन्होंने संकल्प लिया कि वे भविष्य में इसके लिए कार्य करेंगी। तभी उनका ध्यान अपने देश की राजनैतिक स्थिति की ओर गया। छोटे-छोटे राज्यों और रियासतों में बँटे हुए पराधीन चीन को अन्य देशों की तुलना में पिछड़ा, गरीब और भूखा पाकर उनकी आत्मा कराह उठी और वे बी. ए. की डिग्री लेकर ही वापस आ गयीं।

रास्ते में उन्हें सनायत सेन मिले और जापान में ही वे उनकी सहयोगिनी तथा सहचरी बन गयीं। दाम्पत्य जीवन के प्रारम्भिक दिनों में उन्हें अपने पति का सान्निध्य बहुत कम, लगभग नहीं के बराबर मिला। परन्तु उन्होंने सन्तोष किया क्योंकि विवाह का उद्देश्य शरीर सुख,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐश्वर्य-विलास और साधन-सुविधाएँ जुटाकर गृहस्थी बसाना मात्र ही नहीं है। उससे भी ऊँचा और महान् एक उद्देश्य है, जो लक्ष्य की समानता और उसकी प्राप्ति के लिए समन्वित प्रयास के संकल्प से जन्म लेता है। मादाम सूङ् अपने पति के निर्देशों पर इधर से उधर भटकती रहीं। चीन की स्वतन्त्रता के समर्थक देशों से शस्त्रास्त्र और सहायता प्राप्तकर चीन में सहयोगी उद्देश्य से कार्य कर रहे भाइयों तक पहुँचाने के लिए सतत् उद्योग किया।

स्वातन्त्र्योत्तर चीन में वे एकमात्र क्रान्तिकारिणी महिला के रूप में देश के राजनैतिक क्षेत्र में उभरकर आयीं। महिला क्रान्तिकारी होने के कारण उनका नाम देश के कोने-कोने में फैल गया। परन्तु उन्होंने अब दूसरे कार्य की ओर ध्यान दिया और वह था नारी जागरण। स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए उन्होंने आन्दोलन चलाये और जनमत जाग्रत किया।

अपनी इन गतिविधियों के कारण वे नारी जागरण के क्षेत्र में चीन ही नहीं एशिया की सर्वाधिक प्रशंसित और चर्चित महिला बन गयीं। उनके देश में हर कोई राजनीतिक दल उनके नाम का सहारा प्राप्त करना चाहता था और उनकी प्रतिष्ठा को अपनी सफलता का आधार बनाना चाहता था।

डा. सनयात सेन का देहान्त हो जाने के बाद वे कुओमितांग की केन्द्रीय सरकार की मन्त्री बनीं। इस पद पर रहकर भी उन्होंने सर्वाधिक ध्यान अपने मूल कार्य-नारी आन्दोलन की ओर ही दिया। कुछ प्रश्नों पर मतभेद हो जाने के कारण वे कालान्तर में मन्त्रिमण्डल से अलग हो गयीं और स्वतन्त्र रूप से अपना कार्य करने लगीं। सरकार छोड़कर समाज-कल्याण और सहकारिता के क्षेत्र में उन्होंने अवर्णनीय सेवायें कीं। दोनों ही स्थितियों में जब वे सरकार में थीं और सरकार से अलग हुईं वे समान रूप से प्रसन्न रहीं। जैसे उनके लिए कोई खास अन्तर आया ही नहीं था। सेवापरायण लोगों को अपनी कुर्सी से नहीं सेवा-साधना से लगाव रहता है। वे चाहे जब अपनी इस साधना में रुकावट पैदा करने वाले बड़े-बड़े पद और अधिकार व्यर्थ चीजों की तरह त्याग देते हैं।

परन्तु जब ऐसा अवसर आता है कि समाज को उनकी सेवाओं की आवश्यकता है और उन लोगों के साथ रहकर भी कार्य करना पड़े, जिनसे मतभेद हों तो सेवानिष्ठ व्यक्ति अपने मतभेद भुलाकर आगे आते हैं। जापान युद्ध से चीनी गृह युद्ध तक उनके देश में ऐसी ही घड़ी आयी, जब उनके अतिरिक्त प्रशासन के महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों को कोई और पूरा नहीं कर सकता था, तो वे १९३९ से ४५ तक पुनः मन्त्री बनीं और इस संकट से उबरने तक मतभेद रखने वाले अन्य व्यक्तियों के साथ काम करती रहीं। १९४१ में उनकी निःस्वार्थ सेवाओं के उपहार में मादाम सनयात सेन को राष्ट्र का उपाध्यक्ष निर्वाचित किया गया।

ब्रिटिश महिलाओं के अधिकारों के लिए लड़ने वाली—

श्रीमती नेन्सी एस्टर

दिसम्बर १९१९ में ब्रिटिश संसद् के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ा। हाउस ऑफ कामन्स में तब पहली बार किसी महिला संसद-सदस्य ने आसन ग्रहण किया था। उसके पूर्व महिलाओं को राजनीति में भाग लेने का अधिकार नहीं था। यह प्रथम महिला संसद् सदस्य थीं श्रीमती नेन्सी एस्टर, जिनका नाम ब्रिटेन की महिलाओं के अधिकारों के लिए लड़ने वाली वीर नारी के रूप में आज भी जाना जाता है।

उनका संसद में आना कुछ पूर्वाग्रह मुक्त संसद सदस्यों को छोड़कर दूसरों को बहुत अखरा था। उनके पुरुष होने के मिथ्या अहं को इससे काफी चोट पहुँची थी। स्वयं तत्कालीन प्रधानमन्त्री विन्स्टन चर्चिल को ब्रिटिश संसद् में किसी महिला के समान स्तर पर बैठने में आपत्ति थी। वह भी दो वर्ष तक नेन्सी एस्टर को तिरस्कृत करते रहे थे।

चर्चिल जैसे दबंग राजनीतिज्ञ जिसके सामने अच्छे-अच्छे राजनीतिज्ञ तथा राजदूत अपने व्यक्तित्व को बौना अनुभव करते थे, तिरस्कार को सह पाना छोटे दिल गुर्दे वाले व्यक्ति का काम नहीं था और फिर जब संसद के अधिकांश सदस्य भी उसके विरोधी हों तो उसका संसद में बैठ पाना भी कठिन था किन्तु श्रीमती नेन्सी के सामने उस समय उनके अपने व्यक्तित्व का ही प्रश्न नहीं था। वरन् ब्रिटेन के नारी समाज की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। अतः उन्होंने अपने आपको लोहे का बना लिया। उनकी दबंगी व वाक्पटुता का लोहा चर्चिल को भी मानना पड़ा। बाद में वह स्वयं उसके प्रशंसक बन गये थे।

राजनीति के अखाड़े में स्वयं को एक प्रमाणित पहलवान सिद्ध करने की श्रीमती एस्टर को कोई प्रबल आकांक्षा नहीं थी। उन्हें तो अपना घर-परिवार व सामाजिक दायित्व निभाना ही प्रिय लगता था। किन्तु बिना संसद् में गये, बिना राजनीति में भाग लिये वे उन सभी सुधारों के लिए कानूनी अधिकार नहीं पा सकती थीं जिनकी तत्कालीन ब्रिटिश महिलाओं को आवश्यकता थी। अतः उन्होंने इस क्षेत्र को विवश होकर आपद-धर्म की तरह स्वीकार किया था।

पुरुष वर्ग शारीरिक दृष्टि से समर्थ होने के कारण सामन्ती-युग में नारी को अपने से नीचा मानता रहा था। उसे हर दृष्टि से पुरुष की वशवर्ती मानता रहा था। यह स्थिति किसी एक देश की महिलाओं की नहीं थी वरन् यह सम्पूर्ण नारी जाति की थी। उसके लिये ब्रिटेन में भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

महिलाओं को कड़ा मोर्चा बाँधना पड़ा था। उसी एक राजनैतिक मोर्चे की कमान श्रीमती नेन्सी के हाथ में थी।

जब किसी नूतन परम्परा का आरम्भ किया जाता है तो कितने ही अवरोध व अड़चनें उत्पन्न की जाती हैं। उन्हें संसद् सदस्य रहते हुए अपने साथी सदस्यों के व्यंग्य-बाणों का शिकार होना पड़ा था, किन्तु उनका उत्तर श्रीमती नेन्सी ने बहुत ही प्रभावशाली शब्दों में दिया जिससे वे निरुत्तर हो गये। विंस्टन चर्चिल की उक्तियाँ बड़ी पैनी व मर्मभेदी होती थीं। उनका सटीक व वैसा ही पैना उत्तर देने में श्रीमती नेन्सी का भी संसद् में अपना एक कीर्तिमान था।

इंग्लैण्ड के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री क्लीमेट एटली उनके बड़े प्रशंसक थे। वे उनके शालीन व्यक्तित्व, प्रभावशाली वाक्पटुत्व, राजनीतिक सूझ-बूझ तथा विवेकशीलता के कायल थे। किसी भी विषय पर उनका निर्णय बहुत ही उचित होता था। अपनी बात को पुरजोर शब्दों में कहने में उन्होंने कमाल हासिल किया था। महिला होते हुए भी उनकी आवाज को सदन में कोई दबा नहीं सकता था। जब उनके किसी प्रस्ताव पर उनके विरोधी मूर्खतापूर्ण शोर-शराबा करते थे, तो वह उनकी प्रतिक्रिया को सहज रूप से सहते हुए अपनी बात कह ही देती थीं।

ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स की सदस्या रहने का उनका अपना एक रिकार्ड था। वे लगातार १५ वर्षों तक हाउस ऑफ कॉमन्स की सम्मानित सदस्या रहीं। वे सात चुनावों में खड़ी हुईं और सातों में जीतीं। उनकी इस सफलता ने उन लोगों को अपनी मान्यताओं को दफना देने के लिए विवश कर दिया, जो यह मानते थे कि राजनीति के क्षेत्र में पुरुषों का ही वर्चस्व रह सकता है। श्रीमती नेन्सी ने यह प्रमाणित कर दिया कि महिलाओं को भी ईश्वर ने वे सब विभूतियाँ प्रदान की हैं, जो पुरुषों को दी हैं।

अपने पच्चीस वर्ष के संसद् सदस्य के कार्य काल में उन्होंने तत्कालीन ब्रिटिश महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए कई कानून पास करवाये, जिनमें कारखानों में काम करने वाली महिलाओं की वेतन वृद्धि, प्रसवकालीन अवकाश तथा अन्य सुविधाओं को पाने में पुरुषों जैसा अधिकार उन्हें मिला। बच्चों के लिये अनिवार्य शिक्षा के काल में वृद्धि कराने का श्रेय भी उन्हीं को दिया जा सकता है। व्यापारिक संस्थानों की महिला कर्मचारियों के पहले काम के घण्टे निर्धारित नहीं थे, उनके काम के घण्टों को निर्धारित कराने का प्रस्ताव भी उन्हीं के कारण संसद् में पास हो सका। उत्तम आवास-व्यवस्था बनाने तथा दण्ड-व्यवस्था में समुचित सुधार भी उन्होंने करवाया।

आज राजनीति के क्षेत्रों में जिन महिलाओं को हम ऊँचे-ऊँचे पदों पर बैठे हुए देखते हैं, उसकी छोटी-सी शुरूआत करने का सेहरा श्रीमती नेन्सी के सिर पर बाँधा गया था। उनकी सफलता ने महिलाओं के लिए राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करने के द्वार खोल दिये थे। अपना पात्रत्व सिद्ध करके उन्होंने पुरुषों को दुराग्रह त्यागने के लिए विवश कर दिया था।

नेन्सी एस्टर का जन्म १८७९ में अमेरिका के वर्जीनिया प्रदेश के डेनविले नगर के एक सामान्य परिवार में हुआ था। अमेरिका के गृह-युद्ध में उनके पिता की अपनी सारी सम्पदा युद्ध के भेंट चढ़ गयी थी। उनका बचपन बड़ी गरीबी में व्यतीत हुआ। अध्ययवसायी पिता ने शीघ्र ही अपने पुरुषार्थ के बल पर पुनः अपनी खोयी हुई समृद्धि को प्राप्त कर लिया था। मिरोडर में उनका अपना व्यवसाय अच्छी तरह जम गया था। वे पाँच बहिनों में सबसे बड़ी थीं। उनके बड़े से घर का प्रबन्ध उन्हीं हाथों होता था।

अठारह वर्ष की आयु में बोस्टनवासी एक युवक से उन्होंने विवाह किया। उनसे एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ, किन्तु उनका यह वैवाहिक जीवन सुखी व चिरस्थायी न रह सका। उनके पति को शराब की ऐसी लत लगी कि अन्त में उन्हें उसे तलाक ही दे देना पड़ा।

१९०५ में वे इंग्लैण्ड आयीं। यहाँ उनका परिचय वाल्ड्रोफ एस्टर नामक एक धनी मानी संसद सदस्य पिता के पुत्र से हुआ। एस्टर ने उस रत्न का मूल्य समझा, जो उसके दृष्टि पथ में अभी-अभी आया था। वे एक-दूसरे के मित्र बन गये। यह मित्रता समय के साथ दाम्पत्य के बन्धनों में परिवर्तित हो गयी।

श्री एस्टर ने अपनी सुशीला बुद्धिमती पत्नी के बारे में कहा है—"जब मैंने नेन्सी से विवाह किया था तो मुझे ऐसा लगा था कि मेरे कोट पर एक तारा जड़ गया है और जब उसने संसद में स्थान ग्रहण किया, तब तो मेरे सारे स्वप्न ही साकार हो गये।"

उनका पारिवारिक जीवन बड़ा ही आल्हाद पूरित रहा। वे अपने पति के हर काम में सहयोग देती थीं। उसी प्रकार उनके पति भी उनकी प्रगति, उनकी भावनाओं के सम्बन्ध में विशेष सजग रहते थे।

उनके राजनीतिक जीवन का शुभारम्भ १९१० में हुआ, जब उनके पति पहली बार अनुदार दल के प्रत्याशी के रूप में संसद् सदस्य पद के लिए प्लेमाउथ क्षेत्र से चुनाव में खड़े हुए थे। वे उनके क्षेत्र में प्रचार करने गयी थीं। अपने पति के लिये प्रचार कार्य करते हुए उन्हें जनता की विशेषकर महिलाओं की समस्याओं से अवगत होने का अवसर मिला। अब तक वे इंग्लैण्ड के सम्पन्न व अभिजात्य वर्ग की परिधि में ही घूम रही थीं, अब उन्होंने वहाँ के जन सामान्य को देखा, जहाँ धन की रेल-पेल नहीं थी। जहाँ अभाव व कष्ट भी थे। पति-पत्नी दो परिश्रम करके अपना तथा अपने बच्चों का पेट पालने में समर्थ होते थे। महिलाओं व पुरुषों को ही नहीं छोटे-छोटे बच्चों को भी कारखानों में काम करना पड़ता था।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह सब देखकर उनका कोमल संवेदनशील हृदय इनकी कुछ सहायता करने के लिए तड़प उठा। उन्होंने यह अनुभव किया कि संसद में इस वर्ग के लिए तथा महिलाओं के लिए जिनमें अधिकांश घर-गृहस्थी व बच्चे जनने के जाल-जंजाल में उलझकर रह जाती हैं। उन्हें न मनुष्य जीवन का रस ही मिलता है और न उसे सार्थक कर पाने का ज्ञान ही हो पाता है। उन्होंने मन ही मन यह संकल्प लिया कि वह इस सदियों से पिछड़े वर्ग की समानता के लिए संघर्ष करेगी तथा समाज में फैल रही विकृतियों को सुधारने का भरसक प्रयास करेगी।

अपना राजनीतिक केरियर बनाने के लिए उनके पति की सहायता व मार्ग-दर्शन उन्हें भरपूर मिला। उनके पति रूढ़िवादी नहीं थे। वे प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति थे तथा समाज-सुधार के कार्यों में पर्याप्त रुचि लेते थे। उन्होंने अपनी पत्नी में एक प्रखर राजनीतिज्ञ तथा समाज-सुधारक की क्षमताएँ देखी थीं। उन्हें विकसित करने में उनका पूरा-पूरा सहयोग रहा।

१९१९ में उनके श्वसुर के देहावसान पर उनका पद रिक्त हुआ। उस पर उनके पति की नियुक्ति हुई। उसके एक वर्ष पहले ही महिलाओं को मताधिकार व संसद् सदस्य बनने का अधिकार मिला था। इस अधिकार को पाने के लिए ब्रिटेन की महिलाओं ने जो आन्दोलन किया था, उसमें श्रीमती एस्टर की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी।

अपने पति के श्वसुर के स्थान पर नियुक्त हो जाने पर रिक्त हुए स्थान के लिए उन्होंने अपना नाम चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशियों में लिखाया, तो परम्परावादी ब्रिटेन में एक तूफान खड़ा हो गया। उनको हराने की बड़ी कोशिश की गयी किन्तु विपक्षियों को मुँह की खानी पड़ी और वे विजयी हुईं। इस प्रकार संसद में पुरुषों का एकाधिकार समाप्त करने का श्रेय उन्हें मिला।

राजनीति की दिग्गज और पक्की व्यवहार कुशल सामाजिक-महिला होते हुए भी वे सीधी-सादी वेश-भूषा में रहती थीं। सिगरेट व शराब को वे छूती तक नहीं थीं। जो सभ्यता की दुहाई देकर शराब व सिगरेट की वकालत करते हैं, उनके लिए यह उदाहरण पर्याप्त है कि व्यवहार कुशल व सभ्य होने के लिए शालीन व युक्तियुक्त व्यवहार आवश्यक है, न कि शराब आदि मिथ्याचार।

अनुदार दल की सदस्य होते हुए भी वे विवेक सम्मत प्रस्ताव का समर्थन करती थीं। भारत को स्वतन्त्र करने सम्बन्धी प्रस्ताव पर उन्होंने अपने दल के अन्य सदस्यों के विरुद्ध प्रस्ताव के पक्ष में वोट दिया था। राजनीति के अतिरिक्त सामाजिक क्षेत्र में भी उन्होंने शराब व्यवसाय व शराबखोरी के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किये थे।

पचहत्तरवर्ष की आयु में उनका देहावसान हुआ। ब्रिटेनवासी आज भी उन्हें चर्चिल तथा एटली की समता की राजनीतिज्ञ तथा महिलाओं के हितों की रक्षक, उनके समानता के पात्रत्व को सिद्ध करने वाली अप्रतिम महिला के रूप में याद करते हैं। हमारे देश में भी महिलाओं की सर्वतोमुखी प्रगति के लिए ऐसी साहसी महिलाओं की आवश्यकता सदा-सर्वदा रहेगी।

ध्रुव की दिशा में एक महान् महिला—श्रीमती टबमैन

अन्धेरी डरावनी रात, कोई एक डेढ़ बजे का समय था। दक्षिण अमेरिका के कस्बे में सुअरों के बाड़े में सोई हुई एक युवती करवटें बदल रही थी। आँखों में नींद का नाम नहीं। वह युवती एक नीग्रो दासी थी। दास-दासियों के लिये उस समय ऐसे ही स्थान, निवास-शयन के लिये निश्चित रहते थे। युवती उठी, कहीं और जाने के विचार से बाहर निकलकर झांका। वह इस नारकीय यन्त्रणा के भरे दास जीवन से मरना अधिक अच्छा समझती थी। आस-पास तक कोई नहीं दिखाई दिया।

आज दिन भर से उसके मन में यह उधेड़-बुन चल रही थी। अपने जीवन से जो पशुओं से भी गया-गुजरा था, उसे ऊब हो उठी थी और वह इसी उधेड़-बुन में लगी रही कि कहाँ जाया जाय ? कोई ठौर-ठिकाना दिखाई नहीं दिया। फिर भी निकलना तो था ही, सो वह चुपचाप बाड़े से बाहर निकल गयी। अन्य दूसरे दास-दासी तो इस जीवन के आदी बन चुके थे। परन्तु इस विद्रोही महिला हैरिअन टबमैन की आत्मा विद्रोह कर उठी। आखिर विद्रोह करती क्यों न ?. पीठ पर कोड़ों की मार से पड़े हुए लाल निशान रोज हरे हो जाते। उनसे खून चूने लगता। दर्द और पीड़ा से दुःखती हुई रग-रग में और चौबीसों घण्टे कोल्हू के बैल की तरह काम में जुटे रहना। उसे श्रम और काम से कोई जी चोरी नहीं थी। अनुचित लगता था तो मालिकों का पशुवत्, नहीं जड़ मशीन से भी किये जाने वाले व्यवहार से गया-गुजरा आचरण। दूसरी ओर वह अपनी करुण कथा को सुना भी नहीं सकती थी। सुनाती भी तो इतना समय किसे था, जो उस पर ध्यान देता।

टबमैन के सामने कोई मंजिल नहीं थी, न कोई रास्ता। उसे तो केवल इस घृणित जीवन से निकलना था। फिर भले ही उसे मरना ही क्यों न पड़े ? कहाँ जाये इसका विचार करते हुए उसने आकाश की ओर देखा। ध्रुवतारा काले आसमान में चमक रहा था। सोचा इसी दिशा में चला जाय। रास्ता जंगल से था, आबादी और चालू रास्तों में तो हर कोई देख सकता है और उसे पकड़कर पुनः इसी आग में झोंक सकता है। वह चल पड़ी—पास में यदि कुछ था, तो वह था ईश्वर विश्वास। वह कई दिनों तक चलती रही, जंगलों ही जंगलों में।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

धुवतारे, जंगल रास्ते और ईश्वर विश्वास यही तीन आधार थे, उसकी यात्रा के। कई दिनों तक उसे भूखा रहना पड़ा, खूँखार जानवरों का सामना करना पड़ा, भयभीत होकर उसने लौट चलने का निश्चय भी किया, परन्तु वहाँ के जीवन के चित्र ने उसका निश्चय तोड़कर चूर-चूर कर दिया।

अन्त में वह उत्तरी अमेरिका के एक नगर फिलाडेल्फिया पहुँची। वहाँ उसे स्वतन्त्र वायुमण्डल मिला। वह मेहनत करके जिन्दगी बसर करने लगी। पहले की अपेक्षा वह अब ज्यादा सुखी थी, परन्तु धीरे-धीरे उसे अपना एकाकी सुख अखरने लगा। उसे अपने परिजनों की याद आने लगी। सोचा वे अभी भी उसी प्रकार का वीभत्स जीवन व्यतीत कर रहे होंगे। उनकी ओर से निश्चित रहकर अकेले ही सुखोपभोग करना एक निकृष्ट स्वार्थ ही तो है।

यहाँ से हैरिअट टबमैन के जीवन में महानता का समावेश होता है। कोई भी व्यक्ति जब अपनी सुख-सुविधाओं की सीमा से आगे बढ़कर औरों के सुख-दुःख का विचार करने लगता, अपने स्वार्थ से ऊपर उठता है तो समझना चाहिए वह महानता और देवत्व की ओर अग्रसर हो रहा है।

टबमैन का जन्म १८२३ के लगभग मैरीलैण्ड में एक नीग्रो दासी के गर्भ से हुआ। उस समय नीग्री बालक जन्मते ही गोरे स्वामियों की सम्पत्ति बन जाया करते थे। माँ की ममता और पिता के स्नेह से ज्यादा मालिक के स्वामित्व का अधिकार उन पर होता था। टबमैन बड़ी होने लगी, तो उसे भी काम बताये जाने लगे। उस समय उसके मन में गुलाम क्या होते हैं ? इसका भान तक नहीं था। वह बड़े मनोयोग से सौंपे गये काम करती। मालिक भी इस नन्हीं-सी बालिका से खुश रहते। परन्तु उसे इन्सान नहीं समझा।

अच्छे दाम पर उसे एक-दूसरे परिवार को बेच दिया गया। मालकिन जरा दूसरे ही स्वभाव की थी। उसके मन में यह धारणा घर कर गयी थी कि काले गुलाम मारपीट से ही ठीक तरह काम करते हैं। इधर टबमैन अपने नये स्वामी की सेवा के लिए प्रस्तुत हुई। उस परिवार में तो उसे स्नेह-प्यार नहीं मिला। शायद यहाँ मिल जाये। यही सोचती हुई वह घर में प्रविष्ट हुई। मालकिन के हाथ में हण्टर था। टबमैन ने सोचा शायद उन्हें घुड़सवारी का शौक हो और किसी नौकर द्वारा लाये जाने वाले घोड़े की प्रतीक्षा हो। यह बात वह पूरी तरह सोच भी नहीं पाई थी कि तड़ातड़ पाँच-छः कोड़े उस पर पड़े। टबमैन बिलबिला उठी। लातों और घूसों से तो वह कई बार पिट चुकी थी, परन्तु हण्टर। हण्टर की मार पड़ते ही वह तड़प उठी।

उसे भगवान याद आया और वह सहिष्णु बनने का प्रयत्न करने लगी। शायद मालकिन के स्वभाव में अब सुधार आ जाये। इसी आशा के साथ वह काम करती रही परन्तु स्थिति में सुधार होने की सम्भावना ही नहीं दीखी। तभी उसने भाग जाने का फैसला किया।

फिलाडेल्फिया में अपने परिजनों को स्वतन्त्र और मुक्त वातावरण में बसाने के विचार से वह धन एकत्रित करने लगी। थोड़े-बहुत साधन जुट जाने के बाद वह दासता के जीते-जागते नरक मैरीलैण्ड पहुँची। कोई न पहचाने इसके लिए वेष बदल लिया। सबसे पहले वह अपने पति के पास पहुँची। उसे अपने साथ भाग चलने के लिए कहा परन्तु वह इन्कार कर गया। साहस के अभाव में अनेक बार लोग कई अच्छे अवसर को भी जान-बूझकर छोड़ देते हैं। टबमैन दूसरे दास-दासियों से मिली, जो इस प्रकार के नारकीय जीवन से ऊब चुके थे। वे चलने के लिए तैयार हो गये।

अब गुलामों का एक बड़ा काफिला फिलाडेल्फिया की ओर रवाना हो गया। वहाँ इनके रहने और आजीविका के साधनों की व्यवस्था इस साहसी महिला ने की। अपने श्रम, ईमानदारी और लगन के कारण नीग्रो लोगों को हर कोई अच्छे वेतन और पारिश्रमिक पर नौकरी और मजदूरी पर रख लेता था। कुछ समय बाद टबमैन फिर मैरीलैण्ड गयी, अबकी बार भी कई दास-दासी दक्षिणी अमेरिका से उत्तरी अमेरिका आये।

दो बार इस प्रकार घटी घटनाओं के कारण अमेरिका में हलचल-सी मच गई। गोरे मालिकों में बड़ा रोष फैल गया। सभायें होने लगीं और प्रस्ताव पास होने लगे। दासों का पलायन रोकने के लिए अमेरिका भर में कानून लागू कर दिये गये। उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में दासों की स्थिति एक समान कर दी गयी। उनका किसी भी भाग में स्वतन्त्र रह सकना असम्भव हो गया।

लेकिन टबमैन इससे बिल्कुल भी निराश नहीं हुई और अपनी तथा अपने साथियों की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये अमेरिका छोड़कर कनाडा चली गयी। कनाडा आकर वह दूने मनोयोग से प्रयत्नशील हो गयी। यह अकेली तो थी नहीं, साहस और पुरुषार्थ ने उसे एक से अनेक बना दिया था। अपने साथियों को, अन्य दूसरे साथियों को मुक्त कराने के लिये स्वतन्त्र दासों की उसने एक कक्षा लगाना आरम्भ कर दी। भागे हुए गुलामों की वह नेत्री बन गयी, उसका कार्य सुनियोजित ढंग से चलने लगा और दिनोंदिन गुलाम भागकर मुक्त होने लगे। स्वार्थी, निर्दयी और नर-पशु मालिकों के सामने एक ऐसी समस्या आ खड़ी हुई जिसका कोई समाधान खोज पाना मुश्किल हो गया।

निदान उन लोगों ने सोचा कि इस पलायन की जन्मदात्री हैरिएट टबमैन को ही पकड़ लिया जाये तो दास-विद्रोह की समस्या हल हो सकती है। इसके लिए योजनायें बनाई गयीं और षड्यन्त्र रचे गये परन्तु टबमैन ने अपनी बुद्धिमत्ता, चातुर्य और साहस के बल पर उन सब कुचक्रों को विफल कर दिया।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टबमैन के प्रयत्नों से खिन्न मालिकों और अनुप्रेरित गुलामों में संघर्ष होने लगे। इसी समय अमेरिका में गृहयुद्ध छिड़ गया। स्थिति का लाभ उठाकर टबमैन ने हजारों दासों को मुक्त करा लिया और उनका एक संघ बनाया। कई गुप्त केन्द्रों की स्थापना की, जहाँ स्वतन्त्र गुलामों को अपने साथियों को मुक्त कराने का प्रशिक्षण दिया जाता था।

गृह-युद्ध समाप्त होने के बाद महारानी विक्टोरिया ने दास प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। गुलामों में हर्ष की लहर दौड़ गयी। इस घोषणा के लिये बधाई तो रानी विक्टोरिया को दी गयी परन्तु श्रेय हैरिएट टबमैन को ही मिला। युद्ध के बाद दासों के संघ ने निस्वार्थ जन सेवा का काम चलाया। युद्ध के बाद अमेरिका में शीतला और पीले बुखार की महामारी फैली तो टबमैन ने पीड़ितों की सेवा में दिन-रात एक कर दिया।

उन्होंने एक नीग्रो स्काउट दल का गठन किया। गृह-युद्ध के समय इस स्काउट दल ने अद्भुत सेवा, निष्ठा का परिचय दिया। टबमैन स्काउट दल के स्वयं सेवक गली-गली, मोहल्ले-मोहल्ले में बिखर गये। युद्ध में आहत लोगों के प्राथमिक उपचार से लेकर अस्पताल तक पहुँचने तक तथा घरों में कैद हुए निरीह स्त्री-बच्चों के अनाज, भोजन की व्यवस्था जैसे कार्यों में इन वालण्टियरों ने बड़ा सराहनीय सहयोग दिया।

जब गृह-युद्ध समाप्त हुआ और देश में शान्ति आई तो चारों ओर टबमैन और उनके स्वयं सेवकों की ख्याति फैल गयी और उनकी प्रशंसा की जाने लगी। टबमैन ने अपने व्यक्तित्व को उच्च मानवीय स्तर तक ऊँचा उठा लिया था। यहाँ तक कि उन्होंने अपने पुराने मालिक—जिसके दुर्व्यवहार से पीड़ित होकर वे उसे छोड़कर भागी थीं कोई दुर्भावना व्यक्त नहीं की। वे ९० वर्ष तक जीवित रहीं। जीवन के अन्तिम दिन में कई प्रकार के पुरस्कार और वृत्तियाँ उन्हें दिये जाने लगे परन्तु टबमैन ने उन्हें अपने लिये अस्वीकार करते हुए लोक सेवा के कार्यों में प्रयुक्त करने की सलाह दी।

जिस ध्रुव तारे को अपनी दिशा बनाकर एक समय वे चली थीं, आगे चलकर नीग्रो लोगों के ही नहीं समूची मानव जाति के इतिहास में उनका नाम ध्रुव की तरह चमक उठा। यह सब विवश किन्तु साहसी, असहाय परन्तु पुरुषार्थी व्यक्तित्व की देन है।

साक्षरता की देवी—
श्रीमती वेल्दी फिशर

सड़क पर एक गन्दा और गरीब नीग्रो बालक भागा जा रहा था। उसके पीछे एक विदुषी युवती दौड़ रही थी। नीग्रो बालक बहुत तेजी से भाग रहा था और वह युवती भी जितनी तेजी से सम्भव हो सकता था, भाग रही थी। कुछ ही मिनटों में उस बच्चे को पकड़कर गोद में उठा लिया। बच्चे का नाम था जिमि और उसके पीछे दौड़ने वाली महिला थी स्कूल की अध्यापिका वेल्दी हॉसिगर।

जिमि को गोद में उठाने के कारण वेल्दी के सभी कपड़े धूल से सन गये, फिर भी उन्होंने बच्चे को पुचकारा। जिमि ने कहा—'मैं अब कभी स्कूल नहीं आऊँगा। इस पड़ौसी से मुझे डर लगता है, वह मुझे मार डालेगा।'

जिमि ने उस व्यक्ति की ओर इशारा किया जो सभी विद्यार्थियों को डाँट रहा था। वेल्दी जब स्कूल में प्रवेश कर रही थी तो पड़ौसी ने बताया कि जिमि ने उसके बगीचे से फल चुराये हैं। इस कारण जिमि को स्कूल से निकाल दिया तथा सब बच्चों को चेतावनी दे रहा था।

पड़ौसी के इस व्यवहार से वेल्दी को बहुत दुःख हुआ। फल चुराना अनैतिक है, परन्तु इसके लिए बालकों से दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए। वेल्दी ने पड़ौसी को डाँटा और एक तरफ खड़े जिमि को स्कूल में आने के लिए कहने लगी तो वह भाग उठा।

वेल्दी भयभीत जिमि की बातें सुनकर उसके साथ ही रो उठीं और बोलीं—बेटा यदि तुम स्कूल नहीं चलोगे तो मैं भी अब स्कूल नहीं जाऊँगी।

उनके प्रेमपूर्ण व्यवहार से प्रभावित होकर बच्चा वेल्दी के साथ ही स्कूल लौट गया। अमरीका जैसे देश में शिक्षण का महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य मात्र व्यवसाय समझा जाता है। गुरु-शिष्य का सम्पर्क लेक्चर देने और सुनने तक ही सीमित रहता है। ऐसे देश में वेल्दी जैसी ममतामयी अध्यापिका की शिक्षण शैली वस्तुतः विलक्षण ही लगेगी। वहाँ के मूल निवासियों के प्रति घृणित व्यवहार और रंगभेद की प्रचलित नीति के कारण नीग्रो लोगों से बातचीत करने वाले तक अपमानित किये जाने और नीच समझे जाते थे। ऐसे दूषित वातावरण में भी वेल्दी हॉसिगर ने नीग्रो लोगों में शिक्षा प्रचार का कार्य अपनाकर अपना जीवनोद्देश्य लोकसेवा को ही चुना।

अमेरिका के न्यूयार्क राज्य के अन्तर्गत रोम नामक कस्बे में १८ सितम्बर, १८७९ को वेल्दी हॉसिगर नौ भाई-बहिनों की सबसे छोटी बहिन बनकर जन्मी। बचपन में ही उनके पिता का देहान्त हो गया। वह एक सफल लेखिका बनना चाहती थीं पर इस असामयिक वज्रपात ने उनकी महत्त्वाकांक्षा को धूमिल कर दिया।

वेल्दी अपने जीवन में कुछ ऐसा काम करना चाहती थी जो औसत जीवन स्तर से उन्हें ऊँचा उठा सके। पिता के स्वर्गवास होने के बाद इनका परिवार एक पादरी के सम्पर्क में आया। वेल्दी ने अपनी इच्छा उन्हें बताई और मार्गदर्शन माँगा। पादरी ने कहा कि तुम यदि ईसाई मिशनरी बनकर काम करो तो बहुत सफल बन सकती हो। प्रभु की सेवा का यह बहुत अच्छा उपयुक्त अवसर है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.६४ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

वेल्दी आरम्भ में सहमत नहीं हुई। परन्तु उनके व्यक्तित्व के धार्मिक संस्कार धीरे-धीरे इस क्षेत्र की ओर घसीटने लगे। परिवार में रोज प्रातः पाँच बजे प्रार्थना का क्रम चलता, जिसमें छोटे-बड़े सभी परिजन सम्मिलित होते थे। फिर भी कुछ समय तक उन्होंने पादरी की सलाह पर कोई ध्यान नहीं दिया और पढ़ाई छोड़ने के बाद उसी गाँव में एक पाठशाला चलाने लगीं।

वे संसार के हर मनुष्य को चाहे वह किसी भी रंग, देश, जाति का हो परमात्मा की सन्तान समझती थीं। यही कारण है कि अपनी शिक्षा का क्षेत्र उन्होंने और अधिक विस्तृत करना चाहा। कुछ समय बाद विद्यालय बन्द हो गया और वेल्दी हॉसिगर 'क्राइस्ट मिशन' की मिशनरी बन गईं।

धर्म प्रचार के लिये उन्हें चीन भेजा गया। सन् १९०० के आस-पास चीन की जनता बहुत पिछड़ी हुई थी और अमरीकी लोगों ने चीन को अपना उपनिवेश बना रखा था। वेल्दी शंघाई शहर होती हुई नानचांग गईं। वहाँ अमरीकियों द्वारा ही एक कन्या विद्यालय चलाया जा रहा था।

चीनी समाज में महिलाओं की स्थिति भी बहुत बुरी थी। बचपन से ही उनके पैरों में लोहे के जूते पहना दिये जाते। कैदियों से भी गई-गुजरी दशा में उन्हें अपना जीवन बिताना पड़ता। यद्यपि महिलाओं की गिरी दशा में धीरे-धीरे सुधार होना आरम्भ हो गए थे। चीनी नेता डा. सनयात सेन के नेतृत्व में चीन का जन समाज जागने लगा था, परन्तु रूढ़िग्रस्त लोग अपनी परम्पराओं को सहज ही नहीं छोड़ते। वेल्दी को नानचांग शहर के उक्त विद्यालय में प्रधानाध्यापिका बनाकर भेजा गया। अपने परिवार से दस हजार मील दूरी पर रूढ़िग्रस्त जन-समाज में शिक्षा का प्रचार करने आयी वह देवी अपने लक्ष्य में तन्मयता से जुट गयीं।

यहाँ उनकी भेंट इलियन ताँग नामक पूर्व परिचित सहपाठी लड़की से हुई। ताँग भी उसी स्कूल में अध्यापिका थी। मनुष्य-मनुष्य में भेद की दीवारें खड़ी करने वाले अँग्रेजों ने चीनियों को निम्न श्रेणी में रखा था। जो सुविधाएँ स्वयं लेते थे, वे चीनी लोगों को कहाँ ? इसी कारण ताँग को वेल्दी से ज्यादा मिलने-जुलने नहीं दिया जाता। वेल्दी ने माँग की कि उन्हें भी ताँग के साथ रहने दिया जाय। बड़े अधिकारियों ने बहुतेरा समझाया परन्तु वेल्दी अपने निर्णय पर दृढ़ रहीं और अन्त में वेल्दी पर यह प्रतिबन्ध हटा लिया। कुछ समय बाद ताँग भी वेल्दी के साथ ही रहने लगी।

कुमारी वेल्दी, ताँग के साथ बराबरी और समानता का व्यवहार करतीं। उसकी योग्यता देखकर बहुत-से उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य भी सौंपे। स्कूल की छात्राओं को यह बहुत अखरा और समय-समय पर उनके अभिभावकों द्वारा कई प्रकार की चेतावनियाँ दी जाने लगीं परन्तु वे अपने सिद्धान्तों पर अटल रहीं।

चीनी समाज को अन्धविश्वास तथा गरीबी से मुक्त करने के लिए कुमारी वेल्दी ने अनेक प्रयत्न किये। एक तो विदेशी होने के कारण, दूसरे अज्ञानवश उनके क्रिया-कलापों में संस्कृति मिटाने के कुचक्र की सम्भावना समझकर वहाँ की जनता का ही कोप-भाजन बनना पड़ा। एक बार स्कूल में छात्राओं के अभिभावकों ने आकर प्रश्न किया "क्या एक चीनी औरत हमारी लड़कियों पर हुकूमत करेगी ?"

वेल्दी ने कहा—"हाँ मैं यही चाहती हूँ, क्योंकि लड़कियों को जो कुछ बनना है, उसका सही उदाहरण मैं एक विदेशी स्त्री—नहीं एक चीनी औरत ही हो सकती है।"

वहाँ की छोटी बच्चियों के पैर में जो लोहे के जूते पहना दिये जाते, उसके कारण उन्हें चलने-फिरने में बहुत परेशानी होती। कुमारी वेल्दी उनके जूते खोल देती। पाँवों का टेढ़ापन दूर करने के लिए अपने हाथ से मालिश करतीं।

कुमारी वेल्दी ने इस प्रकार ग्यारह वर्ष तक चीन की जनता की सेवा की। सन् १९१७ में विश्वयुद्ध भड़का। अमरीका ने भी उसमें भाग लिया। युद्ध में फँसे युवकों की सेवा के लिए उनके मन में छटपटाहट होने लगी। उन्होंने सोचा—चीन में जो काम करने के लिए ईश्वर ने उन्हें भेजा था, वह पूरा हो चुका। अतः उन्होंने चीन छोड़ने का निश्चय किया। उनके निश्चय को सुनकर स्कूल में शोक छा गया।

कुमारी वेल्दी ने इलियन ताँग को स्कूल की अध्यक्षा मनोनीत किया और भारी मन से विदा ली। लड़कियों ने सोने का एक भुजबन्द और मन्दिर का घण्टा यादगार के रूप में भेंट किया।

अमरीका लौटने पर वे वाय. डब्ल्यू. सी. ए. में भर्ती हो गईं। यह अमरीकी नव युवतियों का एक संगठन था जो युद्ध क्षेत्र में पीछे रहकर सैनिकों की सेवा करता था।

युद्ध समाप्त होने पर कुमारी वेल्दी स्वदेश लौट आईं। इस समय उनकी आयु अड़तीस वर्ष की थी। अमरीका में ही उनका परिचय फ्रेडिक वान फिशर से हुआ। वे फिशर से प्रभावित हुईं और अपने जीवन-लक्ष्य के मार्ग सहायक मानकर प्रणय-सूत्र में बँध गईं। शादी के समय कुमारी वेल्दी तथा वान फ्रेड्रिक की आयु क्रमशः ४४ तथा ४२ वर्ष की थी। वे दोनों लगभग अधेड़ावस्था में पहुँच गए थे फिर भी उनका दाम्पत्य-जीवन युवा दम्पतियों की अपेक्षा ज्यादा आनन्दमय था।

कुमारी वेल्दी श्रीमती फिशर बन जाने पर उन्होंने अपने पति को मानव-सेवा के पथ पर एक सहयोगी के रूप में देखा। इसी उद्देश्य के लिये वे अविवाहित रहीं और विवाह किया भी तो इसी लक्ष्य पूर्ति के लिये। उनके दाम्पत्य-जीवन से विवाह का लक्ष्य बहुत सरलता से समझा जा सकता है। काम-लिप्सा और भोग को ही

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवाह का लक्ष्य समझने वाले कितनी भारी भूल करते हैं ? उनके जीवन में फैला हुआ विष इस बात का उदाहरण है। विवाह की पवित्रता या लक्ष्य को समझा जाय तो हर दम्पत्ति का जीवन फिशर दम्पत्ति की तरह आनन्दमय बन सकता है।

फ्रेड्रिक वान फिशर भी अनेक लोकसेवी संस्थाओं से सम्बद्ध थे। इन्हीं संस्थाओं के माध्यम से जन-सेवा के लिए दोनों भारत आये। यहाँ की धर्म प्राण जनता को देखकर फिशर दम्पत्ति ने एक निश्चय किया—''यदि हमें जनसेवा करनी है तो उसका एक ही रास्ता है कि हम सभी धर्मों का समान आदर तथा सम्मान करें।'' इस निश्चय को उन्होंने तत्काल अपने व्यवहार में उतारा और कलकत्ता में रहने लगे। एक बार की बात है, फिशर दम्पत्ति वर्मा के माण्डले शहर में गए। वहाँ एक पहाड़ी पर तीर्थ के समान प्रसिद्ध एक बौद्ध मन्दिर था। दूर-दूर से लोग वहाँ आते थे। उस पहाड़ी पर एक बुढ़िया अपनी बच्चियों की मदद से धीरे-धीरे चढ़ रही थी। श्री फिशर एवं श्रीमती फिशर भी पीछे-पीछे चल रहे थे। वहाँ के धार्मिक विश्वास के अनुसार बुढ़िया एक बड़ा पत्थर उठाने का प्रयत्न कर रही थी, परन्तु शारीरिक असफलता के कारण उठा नहीं पा रही थी। वह मन्दिर की वेदी पर अपना सिर रखकर प्रार्थना करने लगी और बाद में उस पत्थर को किसी फुटबाल की तरह उठा लिया। ईश्वर की सर्वव्यापकता के सिद्धान्त में वान फ्रेड्रिक की आस्था और दृढ़ हो गई। वे दोनों मन्दिर में गये और कुछ देर तक ध्यान के लिये बैठे। उठने के बाद श्री फिशर ने कहा—''इस मन्दिर में मैंने वैसा आनन्द अनुभव किया, जैसा कि अमरीका में अपने गाँव के गिरजाघर में किया करता था।''

अब वे दोनों समान रूप से गिरजाघरों की तरह ही मन्दिरों तथा मस्जिदों में भी जाने लगे। उनके सर्व धर्म समभाव के आदर्श के कारण महात्मा गाँधी बहुत प्रभावित हुए। सुनते हैं कि फिशर से ही प्रेरित होकर गाँधीजी सोमवार का मौन व्रत रखा करते थे।

सन् १९३० में फिशर दम्पति वापस अमरीका लौट गए और सन् ३८ में श्री वान फ्रेड्रिक फिशर का देहान्त हो गया। १४ वर्ष का विवाहित जीवन व्यतीत कर ही श्रीमती फिशर विधवा हो गईं। परन्तु इस कारण वे तनिक भी क्षुब्ध नहीं हुईं और पति से आत्मिक एकता का अनुभव करती रहीं। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—पति से वियोग होने के कारण मुझे ऐसा लगा मानो वे पहले से भी अधिक मेरे निकट हैं और लगातार मेरे साथ रह रहे हैं।

श्रीमती फिशर ने विश्व भ्रमण करने का निश्चय किया और अनेक देशों की यात्रा करते हुए सन् ४७ में भारत आईं। वे भारत में रहकर जनसेवा करने को उत्सुक थीं और अपने निश्चय से महात्मा गाँधी को अवगत कराया। गान्धीजी ने कहा—आप गाँवों में जाएँ, भारत की आत्मा गाँवों में ही बसती है।

गाँधीजी के इन्हीं विचारों ने श्रीमती फिशर के जीवन को दिशा दी और वे सन् ५२ में स्थायी रूप से भारत आ गईं। भारत को उन्होंने अपना घर समझा। दिल्ली में जब उन्हें एक होटल में ठहरना पड़ा तो बहुत अखरा। भला अपना घर होते हुए भी कोई होटल में ठहरता है। होटल में तो वह ठहरे जिसका अपना घर न हो।

उन्हीं दिनों इलाहाबाद में नैनी एग्रीकल्चरल इन्स्टीट्यूट में निरक्षर प्रौढ़ों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण करने वाले व्यक्ति की आवश्यकता थी। श्रीमती फिशर की शिक्षा-सेवाओं की जानकारी मिलते ही इस कार्यभार को सम्हालने के लिए उन्हें तार द्वारा बुला लिया गया। उनका अधिकांश जीवन शिक्षा-दान करने में बीता था। निरक्षरता मानव जाति का एक कलंक है और उसे मिटाने के लिए सभी लोगों को अपनी स्थिति और समता के अनुरूप प्रयत्न करना चाहिए—यह विचारकर श्रीमती फिशर इलाहाबाद रवाना हो गयीं। उन्हें एक बँगला मिला। जिसका आधा भाग तो निवास के लिए उपयोग में लाना था तथा आधा प्रशिक्षण देने में। भारत में अपना घर बनाने की उनकी लम्बी साध पूरी हुई और उन्होंने बड़े शौर्य से अपने कार्य का श्री गणेश किया।

प्रौढ़ों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देते समय उन्होंने बहुत बारीक-बारीक बातों की ओर भी इंगित किया जैसे—हमें चूल्हों को सुधारना है। पुराने ढंग से चूल्हों में लकड़ी भी ज्यादा लगती है और धुआँ भी ज्यादा होता है, जिससे न केवल रसोईघर की दीवारें काली पड़ जाती हैं, वरन् औरतों की आँखों पर भी बुरा असर होता है।

ग्रामीण लोगों के लिये आवश्यक पहलुओं पर प्रकाश डालकर प्रौढ़-साक्षरता के माध्यम से वे जनजीवन में व्यापक और समग्र सुधार लाना चाहती हैं। उनका साक्षरता अभियान मात्र अक्षर ज्ञान तक ही सीमित नहीं है वरन् एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा गाँवों में अनेक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है।

ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है, जो सामाजिक बुराइयों की निन्दा करते हैं और साथ ही यह भी कहते हैं कि दुनियाँ में बुराइयाँ इतनी ज्यादा फैली हुई हैं कि उन्हें दूर करने की कोशिश करना ही बेकार है। स्वयं तो कुछ करते नहीं हैं परन्तु जो कोई करने को तैयार होते हैं, उन्हें भी हतोत्साहित करते हैं। भारत की सत्तर प्रतिशत निरक्षर जनता को शिक्षित बनाने का काम आसान नहीं है, परन्तु श्रीमती फिशर का विश्वास है कि करोड़ों अनपढ़ लोगों को एक न एक दिन साक्षर अवश्य बनाया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.६६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :-

इतने महान् उद्देश्य को लेकर भी उन्होंने प्रसिद्धि कभी न चाही। जो लोग ख्याति से दूर भागते हैं, ख्याति उनके पीछे-पीछे दौड़ती है, इसी तरह श्रीमती फिशर की बढ़ती हुई लोकप्रियता से 'नैनी एग्रीकल्चरल इंस्टीट्यूट' के लोग ईर्ष्या करने लगे। इनके काम में बाधाएँ पड़ने लगीं। विवश होकर इन्होंने अपनी अलग संस्था खोल ली।

अलग संस्था खोलने के लिये आर्थिक स्थिति का सुदृढ़ होना आवश्यक है। श्रीमती फिशर अमरीका गईं और वहाँ चन्दा किया। परमार्थ कार्यों के लिये माँगने में श्रीमती फिशर को कोई संकोच नहीं हुआ। लोगों ने भी मुक्त हस्त से दिया और तीन लाख रुपये एकत्रित कर वे भारत लौट आईं।

इस धन और जनता की सद्भावना के बल पर १३ सितम्बर, १९५६ को 'साक्षरता निकेतन' की आधारशिला लखनऊ (उ. प्र.) से छः मील दूर रखी गई।

आरम्भ में आस-पास के गाँवों को ही अपना कार्य क्षेत्र चुना गया परन्तु बाद में इस निकेतन की ख्याति देश-देशान्तर में फैल गयी। सन् ५८-५९ में ही नेपाल तथा अफगानिस्तान के प्रशिक्षार्थी भी यहाँ आकर प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे।

अपने प्रारम्भ से लेकर आज तक साक्षरता निकेतन लगातार उन्नति कर रहा है। हजारों शिक्षक प्रशिक्षण ले लेकर देश के कोने-कोने में निरक्षरता का कलंक मिटाने में रत हैं। पाठ्यक्रम का निर्धारण तथा प्रकाशन भी वही संस्थान करता है।

बहुत कम समय में साक्षरता निकेतन की आशातीत प्रगति देखकर लगता है कि साक्षरता की देवी का स्वप्न साकार होकर रहेगा। जो लोग स्वयं को लोकसेवा के लिए समर्पित करते हैं, उनका योगक्षेम भी भगवान ही धारण करता है।

मानवता की सहृदय उद्गाता— सेल्मा लागर लोफ

मानवीय एकता को तोड़ने और उनमें फूट, विषम भावना के बीज बोने में जो बातें राष्ट्रीयता, जातीयता, वर्ण, रंग और धन-प्रतिष्ठा से भी अधिक कारण बनी हैं, तो वे हैं परम्परावादी, अन्धभक्त, सम्प्रदायवादी। हिन्दुस्तान में ही हिन्दू और मुसलमानों को लेकर हमेशा से झगड़े होते रहे हैं और कुछ कहा नहीं जा सकता कि वे कब तक चलते रहेंगे ? उसी प्रकार यहूदी, ईसाई, मुस्लिम-हिन्दू, पारसी, बौद्ध और संसार के जितने भी धर्म हुए हैं, उनके अनुयायियों को जहाँ-जहाँ भी साथ रहने का अवसर मिला, प्रायः सभी वर्ग के लोग अपने को सामने वाले से ऊँचा समझते रहे। निश्चित ही इन्हें धर्मों के अनुयायी नहीं कहा जा सकता है फिर भी बहुलता में ऐसे ही लोग रहे हैं।

साम्प्रदायिक वैमनस्य प्रायः पृथ्वी के हर भू-भाग में रहा है और धर्म के मर्म को समझने वाले व्यक्तियों ने उसके विरुद्ध आवाज भी उठायी है। यूरोपीय देशों में बर्फीले भू-भाग पर बसा एक औद्योगिक देश स्वीडन-जहाँ के अधिकांश लोग ईसाई हैं—में भी ईसाइयों के दो प्रमुख सम्प्रदाओं में परस्पर झगड़े होते रहते हैं। प्रोटेस्टैण्ट और रोमन कैथोलिकों में झगड़ों का प्रधान कारण यह है कि वे भी अपने को एक-दूसरे से ऊँचा समझते हैं। इस शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में जब दुनियाँ के अधिकांश देश अँग्रेजी—उपनिवेश थे तब तो यह अहंकार और भी प्रबल हुआ और ऐसे समय में वहाँ की विख्यात साहित्य सर्जिका सेल्मा लागर लोफ ने लोगों को यह समझाने का दायित्व अपने पर लिया कि 'धर्म एक-दूसरे को ऊँच-नीच सिद्ध करने और विषमता फैलाने का नहीं वरन् समानता के धरातल पर अभिन्न एकता उत्पन्न करने का साधन है। जो लोग धर्म के कारण दूसरों को घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं, वे भले ही धार्मिक होने का गर्व करते हैं परन्तु वे सबसे ज्यादा अधार्मिक हैं।''

इस विचारणा को उन्होंने इतनी प्रबलता से जन-सामान्य के सम्मुख रखा कि उसका प्रभाव हुए बिना न रहा। साहित्य की एक ही परिभाषा हो सकती है कि जिससे समाज का हित सधे वही साहित्य। सामाजिक हित साधना के लिए अपनी लेखनी का प्रयोग करने से पूर्व लेखक अपने व्यक्तित्व में इतनी तेजस्विता उत्पन्न करेगा कि उसकी लेखनी से निःसृत विचार पाठक के अन्तस् को स्पर्श करें, उनमें हलचल मचा दें। उपयुक्त दिशा में सन्निद्ध कर देने की सामर्थ्य जिस लेखक या कवि की लेखनी में हो, उसे ही साहित्यकार कहा जा सकता है। ऐल्मा लागर लोफ इस कसौटी पर एकदम खरी उतरी हैं और उनकी रचनाओं में अद्वैत उसी तरह व्यक्त हुआ जिस प्रकार कि कबीर की साखियों में।

बीस से भी कम चर्चित कृतियाँ लिखकर साहित्य के क्षेत्र में अमर हो जाने वाली इस साहित्य साधिका का जन्म १८५८ में स्वीडन के मारबाका नामक स्थान में हुआ। यह स्थान यार्मलैंन क्षेत्र में है। उनका परिवार अच्छा सम्पन्न और प्रतिष्ठित वंश परम्परा में से था। पिता एरिफ लागर लोफ सेना में लेफ्टिनेण्ट थे तथा माता लोबिसा बालराथ स्वीडन के सचिव परिवार की पुत्री थी। सेल्मा के पिता एरिफ लागर लोफ खुशमिजाज और जिन्दादिल व्यक्ति थे। सेना से अवकाश प्राप्त कर वे प्रायः घर ही रहा करते और अपने मित्रों के साथ हँसी-खुशी से जीवन गुजारने के साथ-साथ अपने बच्चों से भी घुल-मिलकर रहते। उनके स्नेह और वात्सल्य ने बच्चों को यह आभास तक नहीं होने दिया कि वे अपने से बड़े व्यक्ति के साथ हँस बोल रहे हैं या खेल-कूद रहे हैं।

सेल्मा का पालन-पोषण सम्पन्न और समृद्ध वंश परम्परा के अनुसार ही हुआ परन्तु नियति का प्रकोप उन

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर साढ़े तीन वर्ष की आयु में ही टूटा। तब अचानक वे लकवे का शिकार हो गयीं। घर वालों द्वारा उपचार तथा चिकित्सा में जरा भी ढील न देने के कारण वे रोग मुक्त हो तो गयीं परन्तु उनका एक पाँव हमेशा के लिए बेकार हो गया। साढ़े तीन वर्ष की सेल्मा अपनी ही वय के बच्चों को आँगन में खेलते-कूदते देखती तो उसे अपने पर बड़ा तरस आता और वे चीख मारकर रोने लगतीं। घर वालों से भी सेल्मा की यह दशा देखी न जाती और वे अपनी गीली आँखों को पोंछकर सेल्मा को चुप कराने लगते।

ऐरिफ लागर लोफ ने ऐसे समय में अपूर्व सूझ-बूझ और धैर्य का परिचय दिया। उन्होंने सोचा कि सेल्मा इसी प्रकार रोती-कलपती रही, तो उसमें हीन भावना घर कर जायेगी और उसका व्यक्तित्व हमेशा के लिए कुण्ठाग्रस्त बन जायेगा। यद्यपि उन्होंने अपनी ओर से कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी, परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला तो सेल्मा को मानसिक त्राण से मुक्ति दिलाने के लिए कोई न कोई उपाय करना तो था ही।

यह सच था कि सेल्मा इसी प्रकार रोती रहती तो उनका व्यक्तित्व कुण्ठाग्रस्त हो जाता। इसलिए उनके पिता ने बचपन में उनका बड़ा ध्यान रखा। घर के प्रायः सभी लोग उनका ध्यान रखते और इस बात के लिए निरन्तर सचेष्ट रहते कि सेल्मा अपनी बाधित अवस्था को लेकर चिंतित न हुआ करे। इसके लिए वे हर समय सेल्मा को व्यस्त रखते। कभी पिता कहानियाँ सुनाया करते तो कभी भाई चुटकुलों को सुनाकर हँसाया करते। उनकी दादी भी अपने पूर्वजों की कीर्ति-गाथायें तथा लोक-कथायें सुनाकर सेल्मा का मनोरंजन करती रहतीं। थोड़े दिनों बाद घर पर ही पढ़ने-लिखने की व्यवस्था भी कर दी गयी। ज्यों-ज्यों सेल्मा बड़ी होती गयीं, उनके मन पर से यह दुःखदायी अनुभूति मिटने लगी कि मैं बाधित हूँ। घर में एक सुन्दर पुस्तकालय था। वहाँ बैठकर सेल्मा अपनी रुचि की पुस्तकों का स्वाध्याय करती रहती। इस प्रकार यह बाधित अवस्था उनके व्यक्तित्व के विकास में एक प्रकार से सहायक ही सिद्ध हुई और बचपन में ही उनका सामान्य ज्ञान अपनी वय के अन्य बच्चों की अपेक्षा काफी बढ़ गया।

घर में किसी बात की कमी तो थी नहीं। पिता तथा परिवार की सूझ-बूझ, पूरी सजगता से उन्हें सृजनात्मक दिशा दी तो उनका व्यक्तित्व विकासोन्मुख हो उठा। पुस्तकालय में कई ग्रन्थों का स्वाध्याय और उससे अर्जित ज्ञानराशि ने व्यक्तित्व को तो परिमार्जित किया ही अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए भी प्रेरित किया। अपनी बाल्यकाल की अनुभूतियों को उन्होंने 'मारवाका' नामक रचना में बखूबी चित्रित किया है। उनमें जब लिखने की प्रेरणा उठी तो उन्होंने सबसे पहले एक कहानी के लिये कलम चलायी। इस कहानी का आधार बचपन में पिता से सुनी एक कहानी थी। जिसका नायक प्रभावशाली व्यक्तित्व के लिए आवश्यक सभी विशेषताओं से सम्पन्न था। पाठक उसके चरित्र-चित्रण को पढ़ते-पढ़ते मुग्ध हो उठता है परन्तु नायक में एक बहुत बड़ी शारीरिक त्रुटि है, जिसके लिए पाठक के हृदय में सहानुभूति भी नहीं उमड़ती। इस कहानी को पढ़कर अनुमान लगाया जा सकता है कि उनके पिता अपनी बेटी को सुनाने के लिए किस स्तर की कहानियों का चयन करते थे और इस बात का कितना ध्यान रखते थे कि सेल्मा स्वयं को ही अकेली बाधित न समझे और भी लोग उस प्रकार की उससे भी भीषण परिस्थितियों में रहे हैं तथा शान से जिये हैं।

उनकी शिक्षा-दीक्षा का क्रम यों तो घर पर ही चला। पर स्वावलम्बी बनने के उद्देश्य से उनके पिता ने अध्यापन का प्रशिक्षण दिलवाया। अध्यापिका का प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद वे लैण्ड कौना नगर में अध्यापन कार्य करने लगीं। वहाँ स्कूल के बाद जो समय मिलता उसे लिखने में लगातीं। जिस समय वे प्राध्यापिका नियुक्त हुईं तब उनकी आयु मात्र २२ वर्ष थी। इसी वय में आम आदमी भी रोजगार-धन्धे से लगता है। यह उल्लेखनीय इसलिए है कि बाधित होते हुए भी उनके पिता ने अपनी बेटी में किस कदर आत्मविश्वास का संचार कर दिया था कि उनका विकास सामान्य रूप से होता चला। उत्तरी स्वीडन के लैण्ड कौना नगर में बच्चों के साथ रहते हुए, उन्हें बाल-मनोविज्ञान के अध्ययन का भी अवसर मिला और उन्हें बच्चों की कहानी विषयक उत्सुकता का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ और उन्होंने कहानी सम्बन्धी मसाला जुटाना शुरू किया। वार्मलैण्ड तथा डेस्केरिया क्षेत्र में प्रचलित लोक कथाओं तथा ग्राम गीतों का उन्होंने अध्ययन किया और संकलन' भी।

१८९० में आउडन नामक पत्रिका ने एक कहानी प्रतियोगिता आयोजित की। तब सेल्मा के पास पर्याप्त मात्रा में स्वलिखित कहानियों का संकलन हो चुका था। अब तक वे कहानियाँ लिखती जातीं और रखती जातीं। उनकी बहिन ने सेल्मा से कहानी प्रतियोगिता में कहानियाँ भेजने के लिए कहा और उन्होंने कुछ कहानियाँ प्रतियोगिता के लिए निकालीं। प्रतियोगिता का जब परिणाम निकला तो सेल्मा को प्रथम पुरस्कार मिला था। ऐसी सफलता शायद ही कहीं किसी को मिलती है ? सम्पादक ने बधाई का तार भेजने के साथ पुरस्कृत कहानी के लिए यह एक परामर्श भी दिया कि वे इस कथानक की पृष्ठभूमि पर एक उपन्यास भी यदि लिखें तो वह काफी रोचक हो सकता है।

इस प्रकार सेल्मा ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया और अपना भविष्य उज्ज्वल जानकर सम्पादक का परामर्श मान लिया। स्कूल में छुट्टियाँ लेकर उन्होंने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उपन्यास भी लिख डाला। १८९४ ई. में उनकी प्रथम पुस्तक कृति प्रकाशित हुई 'गेस्टा बार्लिंगा' यह एक ऐसे कवि के जीवन वृत्त पर लिखा गया था जो फक्कड़ होने के साथ-साथ पियक्कड़ भी था। चरित्र नायक का चरित्र-चित्रण काफी हृदयस्पर्शी और मोहक बन पड़ा था। अतः यह पुस्तक काफी लोकप्रिय भी हुई और सरकार ने उन्हें इस पुस्तक के लिए पुरस्कृत भी किया। सरकार से मिली छात्रवृत्ति से वे इटली गयीं और वहाँ से यूरोप के कई देशों का पर्यटन करते हुई फिलीस्तीन पहुँचीं।

फिलीस्तीन भेजने के पीछे सरकार का एक प्रमुख उद्देश्य था, वहाँ के प्रवासी स्वीडन के नागरिकों की स्थिति का अध्ययन करना। उन दिनों स्वीडन में यह अफवाह बड़े जोरों पर थी एक फिलीस्तीन में रह रहे प्रवासी स्वीडन गरीबी और रोगों के बड़े शिकार हो रहे हैं। सेल्मा लागर लोफ ने वस्तुस्थिति का यथातथ्य चित्रण किया और बताया कि यह अफवाह आंशिक रूप से ही सच है। यहाँ रहकर उन्हें यहूदियों के तीर्थ येरूसलम जाने का अवसर भी मिला। सेल्मा ने अपने लिए ईसामसीह के सम्बन्ध में प्रचलित दन्त कथायें भी संकलित कीं। इसी यात्रा के दौरान उन्हें यह अनुभव करने में आया कि ईसाई लोग अपने आपको अन्य धर्मानुयायियों से ऊँचा समझते हैं तथा उन्हें घृणास्पद मानते हैं, जबकि ईसाई इतर लोगों की भी यही मान्यता थी।

सेल्मा लागर लोफ के धार्मिक चित्त के लिए यह विडम्बना असह्य थी। अतः उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से जनमानस का परिष्कार किया। इस विचारधारा का प्रतिनिधि "मिरैकिल्स ऑफ एण्टी क्राइस्ट" काफी प्रसिद्ध हुआ। धार्मिक एकता के उद्बोधन में उनके द्वारा रचे गये गीत और कवितायें जो जन-जन की जवान पर आ गये थे। समतामूलक विचारों का एक प्रतिनिधि लघु कथा संकलन भी १८९४ में 'इनविजिबल लिंक्स' के नाम से प्रकाशित हुआ, उनमें किसानों, मछुओं तथा बच्चों द्वारा पशुओं से स्थापित आन्तरिक सम्बन्धों का अच्छा चित्रण किया है। इस कृति के प्रकाशनोपरान्त उन्हें कई स्वर्णपदक और पुरस्कार मिले। मपसाला यूनिवर्सिटी ने उन्हें एल. एल. डी. की उपाधि से भी विभूषित किया।

इन दिनों उनकी ख्याति शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति बढ़ती जा रही थी, जिसके लिए वे सर्वथा योग्य भी थीं। सन् १९०९ में उन्हें नोबुल पुरस्कार मिला। साहित्य के लिए दिया जाने वाला यह सर्वप्रथम नोबुल पुरस्कार था। नोबुल पुरस्कार के निर्णायकों में से कुछ लोग उन्हें यह पुरस्कार देने के विरुद्ध भी थे और इसी कारण यह मामला वर्षों से टलता आ रहा था, परन्तु अन्ततः उनकी प्रतिभा को कोई उपेक्षित नहीं कर पाया।

विभिन्न समस्याओं तथा आदर्शों पर अपनी कलम उठाने के साथ-साथ उन्होंने नारी उत्कर्ष के लिए पर्याप्त श्रम किया था। १९११ में महिलाओं के अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन में उनके भाषण तो जैसे नारियों की समानता के लिए धर्मग्रन्थ ही बन गये। इन भाषणों में उन्होंने स्त्री समानता की इतनी जोरदार वकालत की है कि बाद में उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करना पड़ा। आजीवन अविवाहित रहकर साहित्य-साधना में निरत रहने वाली इस साहित्यिक विभूति को उनके देहावसान अवसर पर जब यह कहा गया कि 'उनमें जीवन और साहित्य को एकाकार करने की अद्भुत क्षमता थी' तो लगता है इस एक पंक्ति में ही उनका व्यक्तित्व बोल उठा हो।

विचारों के बल पर इतिहास का रुख बदलने वाली महान महिला— हैरियट स्टो

समाज में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन तभी सम्भव होते हैं जब समाज उन परिवर्तनों को स्वीकार करने के लिए तैयार हो अर्थात् जनमानस में प्रस्तुत स्थिति के प्रति वितृष्णा और नई स्थिति का निर्माण करने के लिए जागृति आये। यह कार्य पुस्तकों द्वारा बड़े अच्छे और प्रभावशाली ढंग से सम्पन्न किया जा सकता है। विश्व इतिहास के प्रमुख घटनाचक्रों का यदि अध्ययन किया जाय तो पुस्तकों ने जन-जागृति के कार्य में कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निवाही है, यह आसानी से समझा जा सकता है। इस युग में जिन पुस्तकों ने किसी देश या समाज की परिस्थितियों और वातावरण को सर्वाधिक प्रभावित किया है—वह है 'अंकल टाम्स केबिन'—'टाम काका की कुटिया'।

अमेरिका के मूल निवासी नीग्रो जाति के लोगों को यहाँ के रहने वाले गोरे अँग्रेज अपना गुलाम बनाकर रखते थे। उनका क्रय-विक्रय उसी प्रकार किया जाता था जैसे मवेशियों की खरीद बिक्री की जाती है। यह स्थिति सारे अमरीका में व्याप्त थी और विचारवान भावनाशील व्यक्ति के लिए इस स्थिति को सह पाना प्रायः असम्भव ही था। मनुष्य द्वारा मनुष्य के साथ जानवर और मवेशियों का-सा व्यवहार मानवता के नाम पर कलंक नहीं तो और क्या कहा जायेगा ? इस कलंक को मिटाने के लिए देश के कई व्यक्तियों ने गुहार मचाई थी, परन्तु उनका कोई प्रभाव नहीं हो सका था।

तत्काल अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने भी दासों की मुक्ति का आश्वासन दिया था और वैसी घोषणा भी की थी। पर इस घोषणा का इतना विरोध हुआ कि अमेरिका में गृहयुद्ध की-सी स्थिति बन आई। कारण था जनमत द्वारा इस घोषणा को समर्थन न मिल पाना। उन्हीं दिनों सन् १८५१ में एक पत्रिका 'इरा' ने एक वर्ष तक 'टाम काका की कुटिया' उपन्यास धारावाहिक रूप में छापा। इस उपन्यास का धारावाहिक प्रकाशन लोगों द्वारा बहुत पसन्द किया गया। "इरा"

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पत्रिका में धारावाहिक प्रकाशित होने के बाद उपन्यास पुस्तक रूप में छापा। पत्रिका में छपते समय ही यह उपन्यास इतना लोकप्रिय हुआ था कि देश-विदेशों में इसकी बड़ी माँग हुई। जब वह पुस्तक रूप में छपा तब तो अमेरिका के बाहर भी, उप महाद्वीप में, फ्रान्स तथा जर्मनी में इस पुस्तक की बड़ी चर्चा हुई। कई गोरे मालिकों ने तो अपने यहाँ से नीग्रो दासों को भी मुक्त कर दिया। कारण था उपन्यास के प्रभाव से जाग्रत होने वाली मानवीय संवेदना।

ऐसा क्या था इस उपन्यास में ? स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है। जिस दिन 'टाम काका की कुटिया' प्रकाशित हुई, उसी दिन उसकी ३००० प्रतियाँ बिक गयीं। वर्ष भर के भीतर ही उस पुस्तक के १२० संस्करण छापने पड़े और उनकी तीन करोड़ प्रतियाँ बिकीं। यद्यपि इस पुस्तक द्वारा समाज की एक वीभत्स कुरीति पर आघात किया गया था, किन्तु वही लोग जो उस दुःस्थिति के लिए जिम्मेदार थे, उपन्यास पढ़कर इतने प्रभावित हुए कि सारे अमेरिकी महाद्वीप में जनमानस ने परिवर्तन की एक अँगड़ाई ली।

समाज की भयंकर कुरीति दास प्रथा पर आघात करने के बावजूद भी इस पुस्तक के लोकप्रिय होने का कारण था। वह कारण था पुस्तक पढ़ जाने के बाद पाठक के मन पर होने वाली प्रतिक्रिया। 'टाम काका की कुटिया' में दास नीग्रो पर होने वाले अत्याचारों और उत्पीड़न से दासों को मिलने वाली यन्त्रणा का इतना मार्मिक चित्रण है कि पाषाण हृदय से भी संवेदनाओं का स्रोत फूटकर बह निकले। पुस्तक में दो दास स्वामियों की कहानी है—श्रीमती शेल्वी और आगास्टन सेण्टक्लेयर तथा दूसरा साइमन लेग्री। श्रीमती शेल्वी और सेण्टक्लेयर सहृदय व्यक्ति हैं और साइमन लेग्री एक बहुत ही धूर्त पुरुष हैं। दासों की स्थिति देखकर शेल्वी और सेण्टक्लेयर जिन अनुभूतियों से गुजरते हैं, वह पाठक में अनायास ही मानवीय भावनाओं को उत्पन्न किये बिना नहीं रहती।

इस ऐतिहासिक पुस्तक की लेखिका का नाम था—हैरियट स्टो। स्टो की यह पहली औपन्यासिक कृति थी, जिसने उन्हें प्रसिद्धि, सम्मान और यश के उच्च शिखर पर पहुँचा दिया। उन्हें न केवल सम्मान मिला बल्कि सम्मान से भी कई गुना अधिक लोक श्रद्धा प्राप्त हुई। दिखने में अति सामान्य, नाटेकद की घरेलू महिला स्टो किन्तु संवेदन और अनुभूति का सागर अपने भीतर छुपाये हुए स्टो ने दास नीग्रो की पीड़ा को कितने भावुक हृदय से अनुभव किया होगा, जिसकी अभिव्यक्ति ने ही लाखों-करोड़ों दिलों को बदल दिया। उनसे मिलने के बाद राष्ट्रपति लिंकन ने आश्चर्य व्यक्त किया था—"क्या तुम्हीं वह महिला हो जिसने ऐसी पुस्तक लिखी कि उसके फलस्वरूप गृह-युद्ध हुआ।" रहन-सहन की दृष्टि से स्टो बहुत ही साधारण लगती थी। देश और समाज में ऐसा क्रान्तिकारी परिवर्तन करने वाले उपन्यास की लेखिका के सम्बन्ध में कोई अनुमान लगाना चाहे तो यही सोचेगा कि वह बहुत तड़क-भड़क वाली, गर्वीली और अभिमानी होगी। किन्तु स्टो इतनी सरल और सहज महिला थी कि उन्हें एक नजर देखने व जानने के बाद उनके सम्बन्ध में इतनी प्रसिद्धि होने का विश्वास पहली ही नजर में नहीं लगाया जा सकता। करोड़ों की संख्या में उनका उपन्यास बिक जाने के बाद भी स्टो अपना घरेलू काम स्वयं अपने ही हाथों से करती थी। एक बार उनके पति रैवरेण्ड कैल्विन ई. स्टो ने उनसे कहा—"हैरि ! तुम घर में इतनी व्यस्त रहती हो कि तुम्हें देखकर मुझे विश्वास नहीं होता कि तुम वही हैरियट हो, जिसने इतना महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखा।"

तब स्टो ने कहा था—"लोगों के लिए भले ही मैं कोई महान् लेखिका होऊँ पर तुम्हारे लिए तो वही हैरियट हूँ जो उपन्यास लिखने से पहले थी।" वस्तुतः यशस्वी और ख्याति प्राप्त हो जाने से कोई व्यक्ति महान् नहीं बन जाता है। महानता आती है, उसके उत्कृष्ट व्यक्तित्व और आदर्श कर्तृत्व से। प्रसिद्धि के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाने के बाद भी कोई इतना विनम्र हो सकता है—यह बहुत कम ही देखने में आता है किन्तु हैरियट स्टो के लिए वह सहज और स्वाभाविक ही था।

साहित्य और व्यक्तित्व दोनों ही दृष्टि से महान् हैरियट स्टो का जन्म १४ जून, १८११ को लिट्चफील्ड (कनैक्टीकट) में हुआ था। उनके पिता अपने समय के प्रसिद्ध धर्माचार्य और आध्यात्मिक स्वभाव के व्यक्ति थे। लाइमैन बीचर—हैरियट के पिता अपने परिवार के लिए सुख-सुविधायें जुटाने की अपेक्षा लोकसेवा के कार्यों में ही अधिक रुचि लेते थे। प्रायः वे घर से बाहर रहते और कहीं कोई बीमार पड़ता या कोई दुर्घटनाग्रस्त होता तो तुरन्त वहाँ पहुँचते तथा कष्ट-पीड़ितों की सेवा सुश्रुषा में सन्तोष का अनुभव करते थे। अपनी आस्थाओं और मान्यताओं के अनुरूप ही बीचर ने अपने बच्चों में भी संस्कार डाले और उन्हें अपनी सुख-सुविधाओं से अधिक कष्ट-पीड़ितों और दुःखितों, त्रस्तों की सेवा पर ध्यान देना और उसके लिए प्रयत्न करना ज्यादा महत्त्वपूर्ण सिखाया और इन संस्कारों, शिक्षाओं का ही परिणाम था कि हैरियट स्टो तथा उनकी अन्य बहिनें दूसरों की सेवा का व्यक्तिगत कठिनाइयों से अधिक महत्त्वपूर्ण मानने लगीं।

परिवार के वातावरण में उच्च आदर्शों से संस्कारित होने के साथ ही स्टो की शिक्षा पर भी समुचित ध्यान दिया गया। स्थानीय शिक्षा पूरी कर लेने के बाद हैरियट को आगे पढ़ने के लिए ऑक्सफोर्ड भेज दिया गया। उस समय उनकी आयु १६ वर्ष मात्र थी। चरित्र और व्यक्तित्व में आदर्श होने के साथ-साथ हैरियट पढ़ने-लिखने में भी प्रतिभाशाली और मेधावी थीं। शीघ्र ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उन्होंने यहाँ की शिक्षा भी पूरी कर ली। अब उनके सामने अपने भविष्य का चुनाव पड़ा था। मित्रों ने सुझाव दिया कि वे अपनी प्रतिभा और योग्यता का लाभ उठाते हुए अपना भविष्य बनायें। सुझाव स्पष्ट ही सम्पन्नता और समृद्धि की ओर प्रेरित करने वाला था पर स्टो ने तो बाल्यकाल से ही अपनी नसों में पीड़ा के निवारण और पतन के निराकरण के संस्कारों से अभिषिक्त रक्त दौड़ता हुआ अनुभव किया था। उन्हीं दिनों हैरियट के पिता सिनसियाटी में एक विद्यालय की स्थापना के लिए प्रयास कर रहे थे। सम्पन्न और अमीर वर्ग के लोग तो अपने बच्चों को महँगी शिक्षा दिलाने में समर्थ थे, किन्तु निर्धन और गरीब लोगों के पास निर्वाह के साधन ही वमुश्किल जुटते तो बच्चों को पढ़ाने की व्यवस्था कहाँ से हो पाती ? हैरियट के पिता—लाइमैन बीयर विद्यालय की स्थापना कर ऐसे असमर्थ और साधनहीन व्यक्तियों को शिक्षा-सुविधा सुलभ करने की सेवा साधना में संलग्न थे।

हैरियट भी सनसियाटी (ओहियो) पहुँच गई और अपने पिता के लक्ष्य को पूरा करने में जुट गयी। वे शाला के कार्य समय में तो कक्षाओं में पढ़ाती और बाद में जो समय बचता उसे लोगों से सम्पर्क करने में व्यतीत करती। निर्धन और अशिक्षित परिवारों से सम्पर्क करने तथा उन्हें अपने बच्चों को पढ़ने के लिए तैयार करते समय उन्हें बड़े ही धैर्य से काम लेना पड़ता है क्योंकि जिन व्यक्तियों के बीच उन्हें जाना पड़ता था, उनका मानसिक और बौद्धिक स्तर बहुत ही पिछड़ा रहता था। उन्हें समझाना भी कोई आसान काम नहीं था। किन्तु हैरियट बड़े उत्साह और धैर्यपूर्वक अपने कार्य में जुटी रहतीं। इस दौरान उन्हें कई खट्टे-मीठे अनुभव हुए। इन अनुभूतियों ने हैरियट के भावुक मन को लिखने के लिए प्रेरित किया। आरम्भ तो उन्होंने धार्मिक पत्रों में लिखने से किया किन्तु शीघ्र ही वे उन लोगों के बारे में लिखने लगीं जिन्हें वे जानती थीं।

यहीं से उनकी लेखन यात्रा आरम्भ हुई। हैरियट और उनके पिता लाइमैन बीचर के साथ ही शिक्षा अभियान में एक और सेवाभावी सामाजिक कार्यकर्त्ता भी जुटे हुए थे—''कैल्विन ई. स्टो''। कैल्विन हैरियट के सम्पर्क में आकर उनसे बहुत प्रभावित हुआ। लक्ष्य, विचार और कार्यपद्धति की समानता ने दोनों को दाम्पत्य सूत्रों में बँधने के लिए प्रेरित किया और कुछ दिनों बाद ही हैरियट बीचर तथा कैल्विन स्टो दम्पत्ति बन गए। हैरियट बीचर से हैरियट स्टो बन गयीं। विवाह कर लेने के बाद हैरियट स्टो अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व को कुशलतापूर्वक निभाने के साथ ही समाज सेवा और साहित्य-साधना के लिए भी समय निकालती रहीं। उन्हें आठ व्यक्तियों के परिवार में गृहिणी का उत्तरदायित्व सम्भालना पड़ा। कैल्विन स्टो सभी काम अपने हाथ से करतीं और इसके बाद भी वे पढ़ने-लिखने का समय निकाल ही लेतीं।

साहित्य के माध्यम से समाज-सेवा का काम उन्हें इतना जँचा कि बाद में अध्यापन कार्य छोड़कर इसी माध्यम से सेवा-साधना के लिए अपना सारा समय लगाने लगीं। जब कैल्विन स्टो अपने परिवार के साथ बर्नसक्कि में जा बसे तो वहाँ नीग्रो दास-दासियों का जीवन निकट से देखने को मिला। उन्होंने देखा कि वे लोग कितना नारकीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनकी दुर्दशा को स्टो सह न सकी और अपनी व्यथा को कलमबद्ध करना आरम्भ कर दिया। जिन दिनों उनके पति बर्नसक्कि के ब्रोडाइन कॉलेज में प्रोफेसर के रूप में काम करते रहे, उन दिनों हैरियट स्टो अपना उपन्यास लिख रही थी। पति कॉलेज जाते थे और बच्चों को वे स्कूल भेज देती थीं। दोपहर के तीन-चार घण्टे उन्हें खाली मिलते थे—इस खाली समय में वे लेखन साधना करती थीं। उपन्यास में नीग्रो दास-दासियों के जीवन का यथार्थ चित्रण आ जाय, इसके लिए वे गली-मुहल्लों में निकल पड़तीं। जहाँ नीग्रो दास काम करते थे, वहाँ जातीं और उनकी पीड़ाओं को देखतीं, समझतीं, कठिनाइयों को सुनतीं और उनका विश्लेषण करतीं।

इस पुस्तक को तैयार करने में उन्होंने इतने परिश्रम से काम किया था और इस आत्म-कल्याण से वे इस कार्य में संलग्न थीं कि अपनी घनिष्ठ मित्र-महिलाओं को वे बातचीत के दौरान कहती हैं कि इन दिनों मैं एक ऐसी पुस्तक लिख रही हूँ, जिससे समूचे राष्ट्र के लोग यह समझने लगेंगे कि दासता एक अभिशाप है' और जब वह पुस्तक प्रकाशित हुई तो 'टाम काका की कुटिया' दासता के अभिशाप और उससे मुक्त होने के लिए एक विद्रोह का ही प्रतीक बन गई।

१८६९ में हैरियट स्टो का देहान्त हो गया। परन्तु उनकी कृति ने एक ऐसा तूफान मचा दिया, जिसके कारण मानव समुदाय के एक पीड़ित वर्ग को आज समानता का अधिकार प्राप्त है। अमेरिका में कई नीग्रो व्यापारी, चिकित्सक, कलाकार, राजनेता और शिक्षाशास्त्री हैं। उनमें मार्टिन लूथर, किग सल्फबच और मेरियन एण्डर्सन जैसी विश्वविख्यात विभूतियाँ हैं। विश्लेषणकर्त्ता इसका अधिकांश श्रेय हैरियट स्टो को देते हैं। वहाँ के एक सुप्रसिद्ध राजनेता का कहना है—यदि टामकाका की कुटिया न होती तो अब्राहम लिंकन और मार्टिन लूथर किंग जैसे व्यक्ति इतिहास पुरुष नहीं बन पाते।

प्रबल नारी आन्दोलन की जन्मदात्री—बेट्टी फ्राइडन

मार्क्स की 'दास कैपिटल' हेरियट बीचर स्टो की 'अंकल टॉम्स केबिन' विचारों, तथ्यों, सत्यों की शक्ति का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करती है कि किस प्रकार एक विचार, एक तथ्य, एक सत्य प्रभावशाली ढंग से प्रकाशित, प्रचारित होकर विश्वव्यापी प्रभाव डालता है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी श्रेणी में एक पुस्तक का नाम गिनना आरम्भ हुआ है जिसका नाम है ''द फेमिनिन मिस्टीक'' जिसकी लेखिका है बेट्टी फ्राइडन। इसी पुस्तक ने नारी मुक्ति आन्दोलन को जन्म दिया है, जो पाश्चात्य जगत् में नारी वर्ग द्वारा किया जा रहा एक जबरदस्त आन्दोलन है।

इस पुस्तक में लेखिका ने नारी-मन और नारीत्व के प्रतिमान के उन रहस्यों को खोलकर संसार भर की उन महिलाओं के सामने रख दिया है, जिन्हें वे वर्षों से ही अपने अन्तर्मन में महसूसती आ रही हैं, पर जिन्हें आज तक कोई नाम या व्यापक रूप नहीं दिया जा सकता था।

अपनी इस पुस्तक में प्रतिपादित बातों को व्यवहार कराने के लिये उन्होंने राष्ट्रीय महिला संगठन नामक संस्था का अमेरिका में गठन किया। इसी महिला संगठन ने 'नारी मुक्ति आन्दोलन' नामक बहुचर्चित आन्दोलन को जन्म दिया है। इस आन्दोलन की जननी तो वस्तुतः बीज रूप में यह पुस्तक ही है। यह आन्दोलन अभी पाश्चात्य देशों में ही चल रहा है, किन्तु इस आन्दोलन की प्रतिध्वनियाँ समस्त विश्व की जागरूक नारियों के मन से उठ रही हैं। नारी को मात्र पुरुष खिलवाड़ का साधन न बनकर पुरुष की तरह स्वयं को समाज का एक उपयोगी घटक बनना और उस नाते पुरुष के समान अधिकार पाना इस आन्दोलन का लक्ष्य है।

यों बेट्टी फ्राइडन के मन में पहले ही नारियों को समानता के अधिकार दिलाने की प्रबल कामना जाग रही थी। किन्तु इस पुस्तक के लेखन प्रकाशन के बाद यह उनकी अपनी कामना न रहकर उनकी तरह सोचने वाली असंख्यों महिलाओं का ध्येय बन गया है। अमेरिका की महिलाओं के मताधिकार प्राप्त दिवस २६ अगस्त को अमेरिका भर की महिलाओं ने पुरुषों के समान वेतन पाने और उन्हीं की तरह उच्च पदों पर समान रूप से नियुक्तियाँ पाने के लिए प्रदर्शन किया।

नारी जाति को जो मानव समाज का आधा भाग है, उन्हें उन पचास प्रतिशत कामों से वंचित रखा जाना, जो रोचक, श्रेयस्कर व लाभदायक हैं, नारी के तो व्यक्तित्व के विकास के लिये घातक और समाज के लिये घाटे का सौदा है। पुस्तक की इस मूल भावना का इस दिवस पर समाचार-पत्रों के माध्यम से इजहार किया गया और समाचार-पत्रों से अनुरोध किया कि वे ऐसे विज्ञापन न छापें, जिनमें नारी और पुरुष के बीच भेद किया जाता है।

'फेमिनिन मिस्टीक' बेट्टी फ्राइडन द्वारा एकत्रित किये गये आँकड़ों व तथ्यों का परिणाम है। इन सबके माध्यम से उन्होंने जो बात कही है, वह सदियों से पीड़ित, शोषित, पाश्चात्य, विशेषकर अमेरिकन नारी की आवाज है। व्यापक अध्ययन और शोध पर आधारित सैकड़ों तथ्यों को पुस्तकाकार प्रस्तुत करके लेखिका ने यह सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है कि विश्वयुद्ध के बाद पुरुष प्रधान समाज ने स्त्रियों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालकर उन्हें माँ, गृहिणी तथा उपभोग्या की भूमिकाएँ स्वीकार करने को विवश किया है। इससे न केवल नारी की मौलिक प्रतिभा कुण्ठित हुई है, वरन् समाज भी घाटे में रहा है। समाज में उच्छृंखलता बढ़ाने का एक कारण नारी को मात्र छोटे-से अधिकार क्षेत्र में बाँध देना भी है।

लेखिका का यह कहना कि पुरुष ने उसे माँ, गृहिणी या उपभोग्या बनने को विवश किया है, केवल इसी अर्थ में ध्वनित होता है कि उन्हें उन्हीं कामों में जकड़कर रहने को विवश किया गया है। वह मातृत्व के प्राकृतिक दायित्व को निभाते हुए भी समाज का उतना ही काम कर सकती है, जितना पुरुष। लेखिका का यह कहना पूर्णतः सही है या नहीं, यह तो आने वाला समय ही बता सकता है, किन्तु जहाँ तक अमेरिकी जन-जीवन की बात है, वहाँ का समाज जिस पारिवारिक अलगाव की स्थिति में जी रहा है, उसे देखते हुए उनका यह निष्कर्ष सामयिक तौर पर सही भी हो सकता है, पर देश, काल व परिस्थितियों के अनुसार उनका यह चिरन्तन नहीं बन सकेगा।

बेट्टी फ्राइडन की इस पुस्तिका ने समाज का सबसे अधिक हित फ्रायड की कटु आलोचना करके किया है। फ्रायड के इसी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ने मनुष्य को प्रस्तर युग का-सा संयमरहित जीवन व्यतीत करने का औचित्य स्वीकार करने को प्रेरित किया है। वे लिखती हैं—''फ्रायड ने अपने परिवार की यहूदी परम्पराओं के प्रभाव में और उस समय की कुण्ठाग्रस्त स्त्रियों के अध्ययन से जो निष्कर्ष निकाले हैं, उन निष्कर्षों ने बहुत भ्रम फैलाये हैं। यहाँ तक कि प्रसिद्ध मानवशास्त्री मार्गरिट मीड जैसी प्रबुद्ध नारी भी भ्रमित हो गयी।''

अपरिचित आदिम जातियों के समाजों को समझने में फ्रायड के विचार उनके लिये सहायक सिद्ध हुए, लेकिन उन विचारों के आधार पर यह घोषणा करके कि ''प्रजनन और बच्चों का पालन-पोषण ही नारी की मुख्य भूमिका है और स्त्रियों को यह सलाह देना कि उनका घर से बाहर का काम भी समाज में उनकी मुख्य भूमिका से जुड़ा होना चाहिए, मार्गरिट मीड ने न केवल नारी जाति के प्रति अन्याय किया है वरन् अपने प्रति भी।''

लेखिका ने अपनी पुस्तक में फ्रायड व मार्गरिट मीड द्वारा प्रस्थापित भ्रान्त मान्यताओं की जमकर खबर ली है। उन्होंने आगे बताया है कि मातृत्व नारी की शारीरिक भूमिका है और रहेगी इसलिये विवाह करके मात्र घर बसाना और उसी में खटते रहना, समाज में उसका मात्र यही योगदान हो व स्थान निर्धारित किया जाय; यह उचित नहीं है। मातृपद की प्रतिष्ठा हर युग में हर समय रही है, लेकिन इसके कारण उसे पुरुष से हीन माना जाय इसमें क्या तुक है ? यह नारी के प्रति सरासर अन्याय है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.७२ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

अमेरिका व अन्य पाश्चात्य देशों में जहाँ का जीवन दर्शन मात्र भौतिक सुखोपलब्धि रहा है, वहाँ आज के आर्थिक और यान्त्रिक सभ्यता के युग में पारिवारिक संस्था लगभग मृत प्रायः हो चुकी है। स्त्री-पुरुष में से प्रत्येक को कमाना पड़ता है। वहाँ की नारी को दोहरी चक्की में पिसना पड़ता है। बाहर काम भी करो और घर का चूल्हा-चक्की भी सम्हालो, बच्चे-बच्ची भी पालो। फिर नौकरी में भी समान वेतन नहीं, समान पदाधिकार नहीं, इस अन्याय के विरुद्ध अपनी पुस्तक के द्वारा लेखिका ने जो आवाज उठायी है, वह पाश्चात्य नारियों के लिये ठीक ही है।

हमारे देश में स्थिति वैसी नहीं है। यहाँ नारी को सुरक्षा, संरक्षण तो दिया जाता है, पर उसे पुरुष से हीन मानने की जड़ता तो अभी भी हमारे देश के पुरुष वर्ग के मस्तिष्क में भरी पड़ी है। भारतीय नारियों के वर्चस्व को हीनता का राहु आज भी ग्रसे हुए हैं। वे आज भी पुरुषों को अपने से ऊँचा स्थान देती आ रही हैं। किन्तु समय के साथ जो जागरण हो रहा है, वह दोनों को अपने इन पूर्वाग्रहों को त्यागने के लिये सचेत कर रहा है। हमारा देश भी विचारों के संधिकाल में से गुजर रहा है। अधिकांश लोगों की आँखें पाश्चात्य चमक-दमक से चौंधिया रही हैं। उसके साथ उन्हें 'नारी मुक्ति आन्दोलन' की ओर भी एक नजर डालनी चाहिए। हम यदि पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति का अन्धानुकरण करते रहे, तो हमारे यहाँ भी किसी दिन वैसी ही स्थिति आ सकती है। अतः हमारा प्रयास यह होना चाहिए, हमारी पारिवारिक मर्यादाएँ विशृंखलित भी न हों और नारी जाति को समानाधिकार मिले, वे समाज का एक सक्रिय उपयोगी घटक बन जायें यह मार्ग भारतीय-सभ्यता-संस्कृति ही सुझाती है। पाश्चात्य अन्धानुकरण तो हमारे समाज को भी उसी स्थिति में ले जा पटकेगा कि नारी समाज मातृत्व को मात्र शारीरिक दायित्व मानने लगेगा और पारिवारिक दायित्व को बोझ। यह स्थिति बड़ी भयंकर रहेगी।

इस पुस्तक के जन्म के पीछे वे ही कुण्ठाएँ हैं, जो सामान्य पाश्चात्य नारी भोगती रही है। उन कुण्ठाओं को स्वयं बेट्टी फ्राइडन ने भोगा है। वे स्वयं एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हैं। वे लिखती हैं—"मैं स्वयं एक गृहिणी, एक पत्नी और तीन बच्चों की माँ हूँ, पर पत्नी, माँ और एक कामकाजी महिला की भूमिका निभाते हुए मुझे हर समय यही लगता रहा है कि कहीं कुछ गलत है। मैं घर में आधे-अधूरे मन से काम करती और बाहर जाते हुए एक अपराध भावना से घिरी रहती। व्यापक क्षेत्र में अपनी योग्यताओं का उपयोग मन में अपराधी भावना जगाए—ऐसा क्यों ? यह प्रश्न मेरे भीतर से बार-बार फूटता।"

यह प्रश्न जब उन्हें बहुत मथने लगा तो उन्होंने इसका कारण जानने के लिये एक प्रश्नावली तैयार की और उसे अपनी पूर्व सहपाठियों के पास तथा अन्य परिचिताओं के पास भेजा। उनमें से दो सौ के उत्तर प्राप्त हुए। उनसे स्पष्ट हुआ कि यह जो मेरे अन्तर्मन में उठ रहा है, वह प्रत्येक के भीतर से उठता है। इसी प्रश्न का उत्तर खोजने के क्रम में यह पुस्तक तैयार हुई है।

शिक्षा के कार्यक्रम में लड़कियों को घरेलू बनाये रखने की व्यवस्था, पत्र-पत्रिकाओं के महिला कॉलम में बतायी जाने वाली—पति, बच्चों, गृह सज्जा, अपने आप को सजाने-सँवारने आदि की बातें, समाज का वातावरण परिवेश आदि वे तथ्य हैं, जो मन में इस प्रश्न को उठाते हैं। एक ओर सब तरह से उन्हें घर में कैद किये जाने की प्रक्रियाएँ चल रही है, दूसरी ओर उन्हें प्रगति की सीढ़ियाँ चढ़ने की बात कही जाती है। उनसे पुरुषों की तरह उपार्जन करने की उपेक्षाएँ की जाती हैं। ये दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं, जो नारी मन को विभाजित करके रख देती हैं।

नारी चाहती है कि वे पत्नीत्व, मातृत्व व गृहिणीत्व से ऊपर उठकर समाज में पुरुषों के समान ही काम करें, अपनी उपयोगिता सिद्ध कर अधिकार प्राप्त करें पर रूढ़ियाँ ऐसी बन गयी हैं कि वे उन्हीं में जकड़ी रहें। इन्हीं रूढ़ियों को तोड़ने वाली यह पुस्तक बेट्टी फ्राइडन के द्वारा रची गयी है।

इसके लिए उन्हें बड़ा श्रम करना पड़ा। स्वयं रिपोर्टर बनकर उन्होंने हर क्षेत्र में लगी हुई महिलाओं से भेंट की, विस्तृत सामाजिक सर्वेक्षण के पश्चात् इस पुस्तक की रचना हुई।

इसी के आधार पर नारी-मुक्ति आन्दोलन आरम्भ हुआ। समानता के साथ-साथ 'नेत्रियो अपने शरीर पर अपना वश हो' का नारा जो इस आन्दोलन की शीर्षस्थ नेत्रियाँ हैं, वह सभी पुरुष के सम्बन्धों को स्वस्थ आयाम प्रस्तुत करता है।

इण्डोनेशिया में नारी-जागरण की देवदूत—इबूकारतिनी

इण्डोनेशिया की महान् महिला इबूकारतिनी का जन्म २१ अप्रैल, १८७९ में हुआ। वे जावा के एक कुलीन परिवार की लड़की थीं। परिवार में अथाह दौलत और मान-सम्मान की कमी न थी। इबूकारतिनी का लालन-पालन राजकुमारियों की तरह किया गया। उन्हें हर प्रकार की सुख-सुविधा के साधन उपलब्ध थे।

बहुत कुछ सुख-सुविधा के होते हुए भी इबूकारतिनी को अपने जीवन में चैन नहीं था। उनकी इस बेचैनी का कोई ज्ञात-अज्ञात अन्य कारण नहीं था। न तो उन्हें परिवार में स्नेह की कमी थी और न जीवन में कोई अभाव था। उनकी बेचैनी का एकमात्र कारण था—इण्डोनेशिया की

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महिलाओं की अधिकारहीनता। उन दिनों इण्डोनेशिया की साधारण महिलायें तो दूर, बड़े और ऊँचे परिवार की स्त्रियों को भी किसी प्रकार का अधिकार नहीं था। न उनकी शिक्षा की व्यवस्था थी, न उन्हें समाज में बाहर निकलने दिया जाता था और न वे अपना मत व्यक्त कर सकती थीं। विवाह योग्य होने पर लड़कियों को घर से बाहर पैर तक न रखने दिया जाता था। वे ठीक इसी प्रकार घर की चहारदीवारी में बन्द रखी जाती थीं जिस प्रकार कुछ समय पूर्व भारतीय-समाज की नारियों को बन्द रखा जाता था। इबूकारतिनी अपने देश की महिलाओं की यह दुर्दशा देखकर मन ही मन बेचैन रहा करती थीं।

उन्होंने बहुत बार सोचा कि देश की वन्द्रिनी नारी के लिये कुछ किया जाये, किन्तु उनके स्वयं के ही पारिवारिक-बन्धन इतने कठिन थे कि उन्हें अपने स्वयं के विकास के लिये लाले पड़े हुए थे। किन्तु उन्होंने हिम्मत न हारी और महिलाओं के प्रति जगी हुई अपनी सहानुभूति को कार्यान्वित करने का निश्चय कर लिया।

ऐसा निश्चय करते समय उन्हें अच्छी तरह से पता था कि इण्डोनेशियायी समाज में महिला-जीवन को जिन लौहरूढ़ियों ने बन्दी बना रखा है, उनको तोड़कर उन्हें बाहर निकालना लोहे के चने चबाना है। हो सकता है कि उन्हें अपने उद्देश्य के लिये एक बड़ा संघर्ष करना पड़े और उस संघर्ष में उन्हें अपने परिवार से ही नहीं प्राणों से भी हाथ धोना पड़े, किन्तु इस सम्भावना की शंका ने उनके इरादे को कमजोर न बना पाया बल्कि इसके विपरीत उनका संवेदनशील कोमल हृदय नारी-समाज के लिये सच्ची सहानुभूति से भरकर इतना साहसी हो गया कि उन्हें उक्त सम्भावनाओं से जूझ पड़ने की जिज्ञासा होने लगी।

उनका अपना निजी जीवन पराकाष्ठा तक सुख-सुविधाओं से भरपूर था किन्तु समाज के क्रूर बन्धन उन्हें बिच्छू की तरह डंक मारते थे। वे निरन्तर सोचती रहती थीं कि जब मेरे जैसे कुलीन, सम्भ्रान्त, शासक तथा सम्पन्न परिवार में महिलाओं को पुरुष की जूती समझकर व्यवहार किया जाता है, तब उन गरीब परिवारों की विवश नारियों की क्या दशा होती होगी, जिनके पुरुष एकदम अशिक्षित एवं उजड्ड होते होंगे। स्वावलम्बन की योग्यता के अभाव में निस्सन्देह वे घर के भीतर पशुओं के समान ही वरती जाती होंगी। बन्धनों की उनकी अपनी व्यक्तिगत वेदना सहानुभूति एवं सद्भावना के रूप में विस्तृत होकर सामाजिक हो गई।

इबूकारतिनी जब काफी समझदार हो गई तो उसने अपने पिता से शिक्षा के लिये प्रस्ताव किया। रूढ़िविवश पिता ने पहले तो उनके प्रस्ताव पर आनाकानी की, किन्तु जब उनकी प्रिय बेटी दिन-रात उदास रहने लगी तो उन्होंने उसे एक प्रारम्भिक पाठशाला में भरती करा दिया। उस समय इबूकारतिनी के लिए यह बहुत बड़े सौभाग्य की बात थी। उस समय इण्डोनेशिया में लड़कियों को पढ़ाने की प्रथा न थी। छोटे-से बड़े परिवार तक की किसी लड़की को पढ़ाया जाना, एक भयानक लोकापवाद बन जाता था। किन्तु इबू के पिता ने साहस किया और बेटी की सदिच्छा की पूर्ति कर दी, यद्यपि उन्हें इसके लिये अपने वर्ग में कटु आलोचना एवं अपवाद का शिकार बनना पड़ा तथापि उन्होंने बेटी की ममतावश ही सही समाज की एक अहितकर लौह-रूढ़ि पर आघात कर ही दिया।

इबूकारतिनी ने पिता की इस साहसपूर्ण कृपा का भरपूर लाभ उठाया और इतनी संलग्नता के साथ अध्ययन किया कि वे अपनी पाठशाला में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुईं। इबू की इस आशंका ने उसे और भी तत्पर बना दिया था कि सम्भव है कि अधिक लोकापवाद के भय से उसके पिता आगे पढ़ाने से इन्कार कर दें। वह अपनी प्रतिभा को अधिक से अधिक चमकाकर—अपने में होनहार लड़की के लक्षण उत्पन्न कर—आगे के लिये भी पिता का साहस एवं उत्साह बढ़ाये रखना चाहती थी।

किन्तु उस समय के रूढ़िवादी इण्डोनेशियाई समाज की क्रूर हठधर्मी ने उनके आगे के मार्ग में अन्धकार कर ही दिया। उसने अपनी आलोचना और अंगुश्तनुमाई के तीखे बाणों से इबू के पिता का साहस जर्जर ही कर दिया। निदान उन्होंने बेटी को प्रारम्भिक शिक्षा दिलाकर घर नहीं बिठाल लिया बल्कि विवाह तक उसे घर के बाहर कदम नहीं रखने दिया। इबू की आशापूर्ण अभिलाषा निराश होकर तड़प उठी और उसकी अन्तरात्मा रोकर कह उठी—"ऐ ! बेरहम समाज, हम गरीब लड़कियों ने तेरा क्या अपराध किया है ? जो उन्हें शिक्षा जैसे पुण्य कार्य से वंचित बना रखा है। उसे हम लोगों की उन्नति और विकास में ऐसा कौन-सा अमंगल दिखाई दे रहा है, जिसके डर से हम लोगों की लौह शृंखलाओं की एक छोटी-सी कड़ी भी ढीली नहीं करना चाहता। शिक्षित एवं संस्कृत होकर हम नारी से पुरुष बनकर तेरी सत्ता को तो छीन न लेतीं बल्कि तेरे श्रम एवं निर्माण में हाथ ही बँटातीं।" घर से लेकर बाहर तक कोई भी इबू की पीड़ा अनुभव न कर सका। किन्तु फिर भी उद्देश्य की वह उपासिका इससे हताश न हुई। उसने समाज की जड़ता पर अपनी शक्ति एवं साधन भर आघात करते रहने की बात सोच ली।

स्कूल ही तो छूटा। उसकी उपार्जित योग्यता तो नहीं। कुमारी इबू ने घर बैठे-बैठे ही कलम, किताबों का सहारा ले लिया। उसने पुस्तकों से ज्ञान की और बाहर की सहेलियों से पत्र-व्यवहार द्वारा समाज एवं संसार की जानकारी हासिल करना शुरू कर दिया। यदि कोई सेवा ही करनी है, तो वह परिस्थितियों के अनुसार एक बड़ी योजना से लेकर एक अक्षर तक से की जा सकती है। इबू ने अपनी विदेशी सहेलियों से पत्र-व्यवहार करके घर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बैठे-बैठे ही अपने विचार विकसित एवं विस्तृत करने शुरू कर दिये। इबू अपने विचार इस सच्चाई तथा मार्मिकता से व्यक्त करती थी कि वह देश से लेकर विदेश तक की अपनी पत्र-मित्रों की प्यारी बन गई। विचारों द्वारा विचारों का नेतृत्व करते हुए इबू शीघ्र ही ख्यातनामा हो गई। अब उसके पास ढेरों के ढेर पत्र आने लगे। इबू की इस लोकप्रियता से उसके पिता तथा परिजनों को उसकी प्रतिभा में अधिकाधिक विश्वास हो गया और ऐसी सम्भावनायें जन्म लेने लगीं कि शायद उसे उच्च शिक्षा के लिये विदेश भेजा जाये।

किन्तु तब तक इबू विवाह योग्य हो गयी और पिता ने यही उचित समझा कि उसका विवाह करके दामाद से इबू को योरोप भेज देने अथवा अपने साथ ले जाने की सिफारिश की जाये। इस प्रकार वे क्वारी बेटी को भेजने के अपवाद से बच जायेंगे और इबू भी योरुप जा सकेगी।

किन्तु इबू के पिता की आशा फलवती न हुई। उनका दामाद और भी दकियानूसी निकला। उसने फिर भेज देने की टालमटोल करते हुए शिक्षा एवं समाज सेवा के लिये लालायित इबू को घर की चहारदीवारी में बन्द कर लिया।

इस प्रकार की बाधाओं के बीच भी इबू ने हताश होना उचित न समझा और उस बन्दी जीवन में भी कुछ न कुछ समाज सेवा का कार्य करने के लिये रास्ता खोज निकालने पर विचार करती रही। उसने अपनी सेवा एवं शालीनता से पति को प्रसन्न करके अपनी बहिन के साथ मिलकर घर पर ही एक बालिका पाठशाला खोल ली। उस पाठशाला में वह जहाँ लड़कियों को शाब्दिक शिक्षा देती, वहाँ उनमें अपने अधिकारों के लिए जागरूकता भी भरती। इबू की पढ़ाई हुई बालिकायें रूढ़िवादी समाज के लिए आगामी क्रान्ति की चिन्गारियाँ बन-बनकर भविष्य की पृष्ठभूमि में जमा होने लगीं। इबू ने कुछ लड़कियों को शिक्षित बनाया और कुछ ने बहुतों को साक्षर कर डाला। इस प्रकार बन्दिनी जैसी बन्दनीया इबू घर की चहारदीवारी के अन्दर से ही इण्डोनेशिया की महिलाओं में साक्षरता की एक लहर फैला दी और उनमें एक जीवन जगने लगा।

बेचारी इबू एक वर्ष ही यह सेवा कर सकी थी कि विवाह के बाद प्रथम प्रजनन में उसकी मृत्यु हो गई। इण्डोनेशिया के जागते हुए नारी समाज पर यह एक वज्राघात था। किन्तु इबू अपने पत्रों एवं प्रयत्नों से जिस सामाजिक क्रान्ति का बीजारोपण कर गई थी, वे शीघ्र ही फले और आज इण्डोनेशिया का नारी-समाज काफी शिक्षित तथा प्रगतिशील है। आज इण्डोनेशिया का कोई भी सामाजिक अथवा प्रशासनिक क्षेत्र ऐसा नहीं है, जहाँ पर महिलाओं ने स्थान न बना लिया हो। इण्डोनेशिया में आज महिलायें शिक्षिकायें, प्रशिक्षिकायें, पुलिस इन्स्पेक्टर, बस कन्डक्टर के पदों से लेकर राजनीतिक, नेता, मन्त्री, संसद सदस्य, विधायिकायें, राजदूत महासचिव, पत्रकार बनी हुई राष्ट्र की सेवायें कर रही हैं।

इतना ही नहीं वहाँ की महिलायें पाइलेट, ड्राइवर, इन्जीनियर, वकील, सरकारी वकील तथा न्यायाधीश तक हैं। क्रान्ति के दिनों में तो उन्होंने सशस्त्र सैनिकों के रूप में संगठित होकर दुश्मन के पुरुष सिपाहियों से लोहा लिया है।

इबूकारतिनी की जलाई हुई एक छोटी-सी चिन्गारी आज इण्डोनेशियाई नारी-समाज के लिए आलोकपुंज बन गई है, जिसके लिये अपने उस आदि उद्धारिका के लिए वे धन्यवाद देती हुई दिन-दिन आगे बढ़ती जा रही हैं। अपनी छोटी-सी सीमा, साधनों एवं सुविधाओं का समुचित उपयोग कर इबूकारतिनी जिस बड़े काम का सूत्रपात कर गई, उसके लिये वह इण्डोनेशिया के इतिहास में युग-युग अमर रहेगी।

विश्वशान्ति की उपासिका—
बेरन ब्रेथा वान सटनेर

युद्ध की भावी आशंका से वह काँप उठी थी। उसने काकेशस में युद्ध की भयानकता को निकट से देखा था। मृत्यु और विनाश का प्रतीक यह ताण्डव पुनः होगा ? इससे अधिक दुःखद समाचार उसके लिए और क्या हो सकता था ? युद्ध की आशंका से इस तरह उद्विग्न हो जाने वाली यह महिला थी 'ब्रेथा बेरोनेस'।

प्राणियों में श्रेष्ठ समझे जाने वाले मनुष्य के स्वभाव में आत्म-केन्द्रितता की संकुचित वृत्ति जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों के कारण गहराई तक पैठी रहती है। उसे अपने ऊपर जब तक संकट, दुःख, कष्ट, क्लेश आते नहीं दीखते, तब तक वह उनसे संघर्ष करने के लिए प्रस्तुत नहीं होता। दूसरों पर जो कुछ बीतने जा रही है, उसकी चिन्ता हम क्यों करें ? वे अपने आप भुगतते रहेंगे। ऐसा सोचना मनुष्य जैसे विकसित मस्तिष्क के भावनाशील प्राणी को शोभा नहीं देता। सच्चे मानव दूसरों के दुःखों में अपने ऊपर आये क्लेशों की अपेक्षा अधिक ही कातर हो उठते हैं। वैसी ही पर दुःख कातरता ब्रेथा बेरोनेस ने भी पायी थी।

नोबुल पुरस्कार के प्रणेता अल्फ्रेड नोबुल का नाम तो जगत् विख्यात हो चुका है, परन्तु उस महिमा-मण्डित नारी का नाम बहुत कम मनुष्य जानते हैं, जिसके सानिध्य में रहकर अल्फ्रेड नोबुल जैसे विस्फोट व्यवसायी धनपति के अन्तःकरण में सोयी हुई उदात्त भावनाएँ अंकुरित, पल्लवित एवं पुष्पित हुईं। उसने अपनी विशाल सम्पदा को लोकहित में—संसार में लोक-सेवा करने वाले मानवों के सद् प्रयासों को पुरस्कृत करने के लिये अर्पित कर दी। उसके मन में यह प्रेरणा जगाने वाली वह महिला ब्रेथा बेरोनेस ही थी।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रेथा का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हुआ था। उसका बचपन बहुत दुःखद तथा विपन्न परिस्थितियों में बीता था। यद्यपि उसके पिता आस्ट्रेलिया की सेना में फील्ड मार्शल थे तथा उन्हें 'काउण्ट' की उपाधि भी मिली हुई थी। किन्तु युद्ध के राक्षस ने ब्रेथा के पिता को उसके जन्म लेने से पहले ही उससे छीन लिया था उसके परिवार को घोर अभावों का सामना करना पड़ा था।

भावुक प्रकृति की ब्रेथा को युद्ध तथा अनीति से बचपन से ही घृणा हो जाना स्वाभाविक था। वह बचपन से ही लेखन की ओर रुचि रखती थी। संगीत में भी उसकी पर्याप्त रुचि थी। यौवन के आरम्भ में ही उसने कुछ नाटक लिख लिये थे।

पेरिस में उसने थोड़ी-बहुत संगीत की शिक्षा भी प्राप्त की थी। किन्तु परिवार की जिस बची हुई सम्पदा से कण-कण करके उसकी अनुभवी माता इतने दिनों तक अपना तथा अपने बच्चों का पालन-पोषण करती आ रही थी वह समाप्त हो चुकी थी। विवश होकर उसे एक धनी परिवार 'बेरनवान सटनेर' में बच्ची की संरक्षिका की नौकरी करनी पड़ी।

उसकी यह नौकरी अधिक समय तक नहीं चल सकी। उसी परिवार का एक युवक आर्थर उससे प्रेम करने लगा। भावुक युवती ब्रेथा भी उस सुशील युवक आर्थर को चाहने लगी। आर्थर से माता को जब यह ज्ञान हुआ कि आर्थर एक गरीब कुल की नौकरानी के स्तर की युवती से जो उससे छः वर्ष बड़ी भी है, विवाह करके परिवार की शान को मिट्टी में मिला देना चाहता है, तो उसने ब्रेथा की नौकरी समाप्त कर दी। ब्रेथा की आयु इस समय ३२ वर्ष की हो चुकी थी।

'बेरन वान सटनेर' परिवार से नौकरी छोड़ने पर उसने एक धनी व्यक्ति द्वारा विज्ञापित एक सचिव के पद के लिए आवेदन प्रेषित किया। उसको उस स्थान पर नियुक्त कर लिया गया। उसका नियोजक नोबल पुरस्कार प्रणेता अल्फ्रेड नोबल था।

अल्फ्रेड नोबल ने अपनी सचिव इस सहृदया आत्मविश्वासी महिला से बहुत कुछ सीखा। अब तक वह केवल धन कमाने की विद्या ही जानता था। अब उसमें सोयी मानवीय संवेदना भी जाग्रत होने लगी थी। ब्रेथा का उसके हृदय पर स्थायी प्रभाव पड़ा था।

अपार धन सम्पदा का स्वामी होने के कारण अल्फ्रेड लोक-सेवी संस्थाओं को काफी धन दान में दिया करता था। किन्तु उसके पीछे परमार्थ की भावना नहीं थी। वह अपने अहं की तुष्टि के लिये यह सब करता था। किन्तु ब्रेथा अपने विचारों, तर्कों तथा आचरणों से उसके अन्तःकरण में परमार्थ वृत्ति पनपायी थी तथा उसका यह निश्चय दृढ़ होता जाता था कि वह अपनी सम्पदा से ऐसी व्यवस्था बना जायेगा, जिससे लोकहित की प्रेरणाएँ विकास पाती रहें।

ब्रेथा के अन्यत्र नौकरी पाने पर भी आर्थर उसे भुला नहीं पाया था। ब्रेथा से उसका पत्र व्यवहार होता रहता था। विवाह के लिए योग्यता तथा रुचि का मानदण्ड तो ठीक था, किन्तु परिवार की झूठी शान के पीछे किसी नारी को अपमानित करना कहाँ का न्याय था ? अतः एक दिन अपने परिवार की इच्छा के विरुद्ध उसने ब्रेथा से सीदे-सादे ढंग से विवाह कर लिया।

काकेशस के मिंगरेलिया नामक नगर के एक छोटे-से चर्च में ये दोनों विवाह सूत्र में बाँधे गये। यहीं पर उन्होंने दस वर्ष व्यतीत किये। आर्थर ने यहाँ एक छोटी-सी पुस्तकों की दुकान खोल ली तथा ब्रेथा अभिजात्य वर्ग की कन्याओं को संगीत की शिक्षा देकर परिवार की गाड़ी को चलाने लगी।

इन दोनों की पारस्परिक प्रीति का आधार शारीरिक सौन्दर्य अथवा यौन आकर्षण मात्र नहीं था वरन् आर्थर तथा ब्रेथा दोनों के विचार तथा सिद्धान्त एक थे। दोनों ही साहित्य में रुचि रखते थे। उसके माध्यम से ही एक-दूसरे के निकट आये थे।

काकेशस प्रान्त उन दिनों रूस के अधिकार में था। यहाँ उन्होंने दस वर्ष अज्ञातवास की तरह व्यतीत किये। सामान्य आय में घोर गरीबी में भी वे स्वर्गोपम सुख भोगने जैसे आनन्द पा रहे थे। यहाँ ब्रेथा ने छः उपन्यास लिखे थे, जो भ्रातृभाव तथा शान्ति की भावनाओं से ओत-प्रोत थे।

१८७७ में जब रूस और टर्की के बीच युद्ध छिड़ा तो काकेशस का प्रान्त युद्ध शिविर के रूप में परिणित हो गया। यहीं उसने युद्ध की भयंकरता को निकट से देखा था। उसकी आँखों के सामने जो सैनिक कवायद करते हुए युद्ध-क्षेत्र को प्रस्थान करते थे। वे वहाँ से घायल होकर अपाहिज की तरह ट्रेनों में भरकर वापस आते थे। कितने ही मर जाते थे ? वह मनुष्य के इस पागलपन का कोई कारण समझ नहीं पाती थी। मनुष्य क्यों इस तरह पशु हो जाता है तथा एक-दूसरे के प्राणों का प्यासा हो जाता है ? हँसते-खेलते मनुष्य जो इस धरती को सुन्दर-समुन्नत बनाने में समर्थ थे, अपने ही जैसे मनुष्यों का विनाश करते थे।

मोर्चे पर लड़ने वाले सैनिकों को ही क्षति पहुँचती हो ऐसी बात नहीं। युद्ध कितनी ही सुहागिनों के माथे से सिन्दूर पोंछकर उन्हें वैधव्य की आग में झोंक देता है ? कितने ही बालक पितृहीन हो जाते हैं—हँसते-खेलते परिवार उजड़ जाते हैं।

यह सब देख-सुनकर वह विषाद एवं आवेग से पागल हो जाती थी किन्तु वह अवश थी। युद्ध को रोक पाना उसकी सामर्थ्य से परे था फिर भी वह इस दुःख को लेकर बैठी नहीं रहती, वह उन माताओं को सान्त्वना देती थी, जिनके बेटे अकाल कलवित हो गये थे, उन पत्नियों को धीरज बँधाती थी, जिनके पति अब लौटकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

घर आने वाले नहीं थे—उन बच्चों का मनोरंजन, सेवा, सहायता करती थी जिनके पिता अब इस दुनिया में नहीं रहे थे।

१८८५ में आर्थर के माता-पिता ने उसे घर आकर रहने के लिए आमन्त्रित किया। उन्होंने अब अपनी भूल स्वीकार कर ली थी तथा ब्रेथा को अपनी पुत्र वधू के रूप में स्वीकार करने के लिए वे तैयार थे। उनका यह निमन्त्रण पाकर वे दोनों फ्रांस लौट गये।

काकेशस के एकान्तवास के दौरान भी अल्फ्रेड नोबल व ब्रेथा का पत्र-व्यवहार होता रहता था। जब वे अपने घर लौटे तो अल्फ्रेड नोबल ने उन्हें अपने घर पर थोड़े दिन आतिथ्य ग्रहण करने के लिए आमन्त्रित किया जिसे बेरन दम्पत्ति ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

जब वे उसके अतिथि थे, उन्हीं दिनों विस्मार्क की घोषणा के अनुसार निकट भविष्य में युद्ध की सम्भावनाएँ परिपुष्ट हो चुकी थीं। ब्रेथा बेरन यह सुनकर शान्ति आन्दोलन में सहयोग देने के लिए उठ खड़ी हुई। उसे ज्ञात हुआ कि लन्दन में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा निःशस्त्रीकरण संगठन काम करता था। उसने उस संगठन की कर्मठ सदस्या बनकर इस विनाश को रोकने में सहायता देने का निश्चय कर लिया।

अल्फ्रेड उसकी इस आदर्शवादिता से अप्रभावित नहीं था। वह उसका समर्थक तो था किन्तु उसकी क्रिया-पद्धति के प्रति आस्थावान नहीं था। उसका विचार दूसरा ही था, फिर भी वह उसे प्रोत्साहित करता रहा।

ब्रेथा बेरन जानती थी कि साहित्य में वह क्षमता है कि वह जनमानस को किसी भी दिशा में मोड़ सकता है। उसने युद्ध विरोधी आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते हुए एक पुस्तक लिखी, जिसका उद्देश्य लोगों के हृदय में युद्ध के प्रति घृणा उत्पन्न करना था।

इस पुस्तक में प्राण भरने के लिये उसने युद्ध काल में चिकित्सकों से भेंट की उनकी रिपोर्ट्स को पढ़ा। वह उन अधिकारियों से मिली, जिन्होंने समरांगण में पीड़ा से तड़पते मनुष्यों को देखा था। जब मनुष्य का वध किया जाता है तो उस समय उसकी क्या स्थिति होती है, वह किस प्रकार दम तोड़ता है ? इन सब सच्चाइयों को उसने एक उपन्यास के रूप में सजाया-सँवारा था। जब उसके हृदय को हिला देने वाला उपन्यास 'ले डाउन योर आर्म्स' (अपने हथियार फेंक दो) प्रकाशित हुआ तो वह पीड़ा और मृत्यु का एक इतिहास साबित हुआ। जिसने उसे पढ़ा वही युद्ध का विरोधी हो गया।

इस उपन्यास ने विश्व स्तर पर ख्याति प्राप्त की। उसका बारह भाषाओं में अनुवाद हुआ। बेरन ब्रेथा वान सटनेर का नाम साहित्य जगत् में दैदीप्यमान नक्षत्र की तरह चमक उठा। चमकता क्यों नहीं, उसने मनुष्य को एक अमर कृति दी थी। मनुष्य की दैवी भावनाओं को उभारा था। साहित्य की इस शक्ति का जो साहित्यकार घृणित उपयोग करते हैं, मनुष्य की पशु-प्रवृत्तियों को भड़काते हैं उनके लिये बेरन ब्रेथा वान सटेनर की यह कृति सदा याद दिलाती रहेगी कि यह ईश्वर प्रदत्त विभूति मात्र इसी प्रयोग के लिए है।

अल्फ्रेड नोबल जिसे ब्रेथा की क्रिया पद्धति पर विश्वास नहीं था। वह इस पुस्तक को पढ़कर उसका अनुयायी बन गया। उसने स्वीकार किया कि ब्रेथा ने जो भावना जन-मानस में जगायी है, वह इन नये-नये शस्त्रास्त्रों से हजार गुना पवित्र तथा शक्तिमान है।

ब्रेथा के आग्रह पर वह बर्न में होने वाले शान्ति सम्मेलन में भाग लेने भी आया। ब्रेथा के लिए तो शान्ति का सन्देश घर-घर पहुँचाना ही चरम लक्ष्य रह गया था। उसकी पुस्तक ने जन-जन के हृदय द्वार को खटखटाया था।

अल्फ्रेड नोबल का स्वास्थ्य जीर्ण-शीर्ण हो गया तो उसने ब्रेथा को पत्र में लिखा "मेरी प्रिय करुणामयी बहिन तुम्हारा शान्ति आन्दोलन जोर पकड़ता जा रहा है और मैं कमजोर पड़ता जा रहा हूँ। काश ! मैं पहले ही तुम्हें सहयोग देने लगता।

उसके इन शब्दों में पश्चाताप तथा विवशता झलकती है। यह पश्चाताप निरर्थक नहीं गया। १८९६ में उसकी मृत्यु हो जाने पर जब उसकी वसीयत के अनुसार नोबल पुरुस्कार देने की परम्परा चली तो उसमें शान्ति पुरस्कार भी सम्मिलित था।

१९०१ में जब हेनरी डांटे ने फ्रेडरिक पेसी के साथ इस शान्ति के नोबल पुरस्कार को प्राप्त किया तो उसने बेरन ब्रेथा वान सटनेर को लिखा कि उसकी सच्ची अधिकारिणी तो वही है। वस्तुतः उनके ही प्रयासों का परिणाम था कि साहित्य, रसायन शास्त्र, भौतिक-विज्ञान तथा चिकित्सा-विज्ञान के साथ-साथ शान्ति प्रयासों के लिए भी नोबल पुरस्कार वितरण का प्रावधान अल्फ्रेड नोबल ने अपनी वसीयत में रखा।

१९०५ में बेरन ब्रेथा वान सटनेर को भी शान्ति के नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वे इसकी अधिकारिणी भी थीं। उनके पद-चिन्हों पर चलकर कोई भी उस मानवीय गौरव का आनन्द उठा सकता है।

प्रगति की हर दिशा में अग्रसर—मेरी मार्विन्त

ज्ञान-विज्ञान की हर शाखा पर अपना पूर्ण अधिकार जमाने वाले किसी व्यक्ति का नहीं, किसी महिला का नाम ढूँढ़ना हो तो हमारी दृष्टि फ्रांस की देवी मेरी मार्विन्त पर जाती है। जिसने स्त्री होकर भी ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य कर दिखाये, जिन्हें कुशल, वीर भी करने में चकराते हैं। फ्रांस की स्पोर्ट्स अकादमी में महिलाओं के द्वारा सुरक्षित रखे गये समस्त पुरस्कारों को जीतने वाली एकमात्र महिला मेरी मार्विन्त ही घोषित की गई थीं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'एरो क्लब द फ्रांस' से पाँच प्रमाणपत्र तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं से ३२ उपाधियाँ प्राप्त करने वाली अब तक की प्रथम महिला हैं मेरी मार्विन्त।

मेरी मार्विन्त योग्यताओं को लेकर नहीं जन्मी थीं, उन्होंने जो कुछ किया, वह इस संसार में अपनी खुली आँखों से देखा। हाँ, उनके पास पुरुषार्थ और सच्ची लगन यह दो गुण अवश्य थे, जिन्होंने उन्हें सामान्य से असामान्य और साधारण से असाधारण बना दिया था।

उनका जन्म फ्रांस के जिस परिवार में हुआ था, वहाँ अब तक पुत्रों को ही जन्म मिलता आ रहा था। कितने ही लड़कों के बीच एक लड़की का जन्म भी परिवार वालों को असहय हो गया और जैसा कि अनेक माता-पिताओं को नाक-भौं सिकोड़ने की आदत होती है, उसे भी उपेक्षा मिली। पर आगे चलकर उसने दिखा दिया कि वह भी किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं है।

विपरीत परिस्थितियाँ कोई सूचना देकर तो आती नहीं हैं। १४ वर्ष की आयु जब उसके पढ़ने-लिखने की थी, उसे अपने परिवार के कार्यों में खप जाना पड़ा क्योंकि ऐसे कुसमय में उसकी माता सदैव के लिये यह संसार छोड़कर चली गई थीं और उसके कुछ दिनों बाद उसके एकमात्र भाई ने भी विदा ले ली थी।

अब तक तो उस पर पारिवारिक उत्तरदायित्वों को वहन करने का ही भार था, किन्तु अब अपने परिवार की उज्ज्वल परम्पराओं को भी सुरक्षित रखने का प्रश्न था। सर्वप्रथम उसने अपना अधिक से अधिक समय अध्ययन के लिये निकालना शुरू किया। कानून, भाषा-विज्ञान, भौतिक-विज्ञान, हस्त-रेखा विज्ञान, संगीत और अभिनय को उसने एक साथ अध्ययन की सूची में सम्मिलित किया और ज्ञानार्जन के लिये रात और दिन एक कर दिये। उसने एक साथ पाँच-पाँच भाषाओं का अध्ययन किया और थोड़ा-सा भी समय बचता तो वह 'एस्पेरेण्टों' की पढ़ाई में लग जाती।

उसने सोचा पढ़ाई केवल पढ़ाई है, यह तो मानव जीवन के एकांगी विकास का प्रतीक है। जब तक खेल-कूदों को इसमें सम्मिलित नहीं किया जाता, तब तक उसकी यह शिक्षा अपूर्ण ही मानी जायेगी।

१४ वर्ष की आयु से उसने मोटर चलाना सीख लिया था। अब वह पानी के जहाज तथा रेल के इन्जिन चलाना चाहती थी और समय आने पर उसमें भी निपुणता उसने प्राप्त कर ली। चाँदमारी का अभ्यास शुरू किया और जब प्रतियोगिता हुई, तो उसमें भी पुरस्कार प्राप्तकर घर लौटी। फिर तो बर्फ पर फिसलने के खेल, वाटरपोलो, तैराकी, फुटबाल, विलियर्ड, गोल्फ, टेनिस आदि सभी में निपुणता प्राप्तकर एक के बाद दूसरे पुरस्कार जीतती चली गई।

सन् १९०६ में, जबकि उसकी आयु ३० वर्ष की थी, सोन नदी के ८ मील लम्बे भाग को तैरकर पारकर दिखाया। अब उसकी रुचि ज्ञान की अन्य शाखाओं तक पहुँचने की हुई और उसने भू-सर्वेक्षण तथा खगोल-विद्या का अध्ययन भी प्रारम्भ कर दिया।

यातायात के क्षेत्र में मोटर, रेलगाड़ी और पानी के जहाजों को चलाना सीखने के बाद वायुयान का नम्बर था। उस समय यह क्षेत्र नया ही नया था और विमान उड़ाने की कल्पना करना मार्विन्त के लिये कोई अस्वाभाविक भी न था क्योंकि वह पहले भी २६ वर्ष की आयु में बलून नुमा वायुयान के द्वारा समुद्र लाँघने का करतब दिखा चुकी थी।

समर-भूमि में सैन्य वेश-भूषा धारण करके आक्रमन्ताओं को पीछे खदेड़ने का काम अभी भी शेष था। अतः वह इसे भी पूरा करना चाहती थी। सन् १९१४ का प्रथम महायुद्ध जिसमें मार्विन्त को युद्ध-कौशल दिखाने का अपूर्व अवसर प्रदान किया। वह सेना में भरती होकर मोर्चे पर जा पहुँची। उसमें पुरुषत्व और नारीत्व के गुणों का एक साथ समन्वय था। उसकी राइफल की गोलियाँ शत्रु सैनिकों को भेदती हुई उस पार निकल जाती थीं और शाम को जब लड़ाई के मोर्चे से कैम्प में वापिस आती तो घायल सैनिकों पर सहानुभूति का मरहम लगाती और पूरी-पूरी सेवायें देती थी।

गुणों के इस अद्भुत समन्वय से ही उसने हजारों व्यक्तियों का स्नेह प्राप्त किया था। समर-भूमि में ही घायलों को ढोने वाले विशेष विमान का नक्शा उसके मस्तिष्क में आया था। उसकी जानकारी अपने साथियों को दी थी और जब फ्रांस ने 'जेट-हेलिकोप्टर' का आविष्कार किया तो ८६ वर्ष की वृद्धा नहीं युवा मेरी को बड़ी प्रसन्नता हुई।

वह प्रगति के हर क्षेत्र में आगे बढ़ती गई और अपने पद-चिन्ह उन व्यक्तियों के लिये छोड़ती गई, जो भाग्यवादी हैं अथवा सोचते हैं 'अब तो बुढ़ापा आ गया हम क्या कर सकते हैं ?' 'हमें तो ईश्वर ने कोई सुविधा ही नहीं दी'। मैं साधारण-सा व्यक्ति क्या कर पाऊँगा ?' अथवा 'मैं तो स्त्री हूँ।'

उसने सिद्ध कर दिखाया कि व्यक्ति की श्रम-निष्ठा और प्रगति करने की महत्त्वाकांक्षा के सम्मुख आपत्तियाँ स्वयं हटती चली जाती हैं।

जाति-भेद विद्रोहिनी मारगरेट मिचेल

"मैं ऊँच-नीच, काले-गोरे के भेदभाव को अमानवीय मानती हूँ। यदि कुछ लोग शिक्षा-साधन-सम्पत्ति की दृष्टि से अथवा काम और चमड़ी की दृष्टि से पिछड़े रह गये हैं तो हमारा धर्म है कि हम उनको भी अपने समान सामाजिक-स्तर पर लाने का प्रयत्न करें। ऊँच-नीच का भेदभाव करना तो मनुष्य जाति का कलंक ही हो सकता है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

४.७८ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

वह शब्द एटलाण्टा निवासिनी महान समाज-सेवी महिला मारगरेट मिचले के हैं, जिन्होंने अपना सारा जीवन ही दलित वर्ग की अवस्था ऊपर उठाने में लगा दिया। इस कार्य में भी उन्हें असंख्य बाधाओं का सामना करना पड़ा पर वे कभी हिम्मत नहीं हारीं फलस्वरूप अपने छोटे से जीवनकाल में ही उपलब्धियों से भरा-पूरा इतिहास छोड़ गई।

एक दिन पड़ौस में एक नीग्रो लड़की का विवाह था। नीच जाति के लोगों के उत्सवों में सम्मिलित होने की तो आज तक बात ही नहीं आई थी क्योंकि गोरे उनसे साधारण रूप से भी मिलना पसन्द नहीं करते थे। हम भारतीय, समता और कण-कण में भगवान व्याप्त हैं, की लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं पर व्यवहार में उन्हीं की तरह अपने ही एक वर्ग हरिजनों से कितना भेदभाव रखते हैं ? हमारी ही तरह लज्जाजनक स्थिति तब अमेरिका में भी थी। उस समय सामाजिक प्रतिबन्ध को तोड़कर किसी अछूत से मिलना तक जाति-विद्रोह था और अमेरिकन उसका कड़े से कड़ा दण्ड देना भी नहीं भूलते थे।

किन्तु मारगरेट मिचेल इन सब बाधाओं को जानते हुये भी मानी नहीं। वह उस लड़की के विवाह में बड़े उत्साह से सम्मिलित हुई। नीग्रो, जो अब तक अपने को उपेक्षित मानते थे। उनका हृदय इस मानवीय सद्व्यवहार से उमड़ उठा, उन्होंने जी भरकर मिचेल का स्वागत किया। मिचेल ने भी उनके ही एक सदस्य की तरह घुल-मिलकर उत्सव का आनन्द लिया। नव वधू को सजाने, उपहार भेंट करने से लेकर उनके साथ बैठकर खाने तक में उत्साहपूर्वक भाग लिया। नीग्रो लोगों ने अनुभव किया—परमात्मा की इतनी बड़ी दुनिया में उनके प्रति सर्वत्र उपेक्षा ही नहीं, प्रेम और सम्मान भी है इससे उन्हें बड़ा आत्मविश्वास मिला।

"इस तरह का विश्वास देकर हम चाहें तो दलित वर्ग की बुराइयाँ भी छुड़ा सकते हैं। उनमें यदि कुछ दोष हैं तो उन्हें भी सुधार सकते हैं स्वच्छता, शिष्टता, सात्विक आहार, नशेबाजी और अन्य कुरीतियों के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न कर सकते हैं, पर यह सब हो प्रेम और आत्मीयता के ही साथ"—उत्सव से लौटकर मिचेल ने इन शब्दों से अपने मित्रों को समझाने का प्रयत्न किया, पर वे अधिकांश का सहयोग और मैत्री भाव खो बैठीं। जो भी हो स्वीकार है, कहकर उन्होंने निम्न वर्ग की सेवा की साधना एकाकी ही प्रारम्भ रखी।

एक दिन उन्हें पता चला पुलिस एक अपराध के मामले में पड़ौस के निम्न जाति के निर्दोष लोगों को पकड़ ले गई। मामले को दिखाने के लिए वे ऐसे ही इन असहायों को पकड़ ले जाती और उन्हें अकारण दण्ड दिलाती रहती थी। मिचेल का हृदय विद्रोह से भर गया। निदान उन्होंने पुलिस के विरुद्ध मुकदमा दायर कर दिया।

यह उनके लिये कठोर संघर्ष का समय था पर उन्होंने कहा—लोग बुराइयों को बढ़ने न देते, उनसे डरते नहीं वरन् लड़ने की हिम्मत रखते तो आज संसार में कहीं भी दुर्व्यवहार, अन्याय और अपराध न होते। मुकदमा चला और मिचेल की जीत हुई। निरपराध व्यक्ति जीते ही नहीं पुलिस की अन्याय करने की हिम्मत टूट गई। इस सफलता के बाद मारगरेट समाचार-पत्रों में जाति-भेद के विरुद्ध रोषपूर्ण लेख लिखती रहीं, उससे एटलान्टा में एक सामाजिक क्रान्ति ही उठ खड़ी हुई और लोग निम्न वर्ग के लिये शिक्षा, सम्पत्ति, सम्मान की सुविधायें देने को विवश हुये।

यह वही मारगरेट थीं, जिसे एक दुर्घटना में चोट लगने पर जब रक्त की आवश्यकता पड़ी, तब प्रेसीडेण्ट ट्रुमैन और जार्जिया के राज्यपाल तक उपस्थित हुये और यह कहकर सम्मान दिया कि ऐसे समाजसेवी के प्रति जितना आदर-भाव प्रकट किया जाय कम है।

प्रयत्न की प्रतिमा—मार्गरेट सेंगर

लगभग साठ वर्ष पूर्व अमेरिका आज जैसा प्रगतिशील और उन्नत देश नहीं था। वहाँ भी अनेक प्रकार की कुप्रथायें तथा अन्य धारणायें प्रचलित थीं। किन्तु शीघ्र ही वहाँ के लोगों ने उनकी हानियाँ समझीं और उनको दूर किया।

उस समय अमेरिका में भी माताओं की दशा बहुत खराब थी। परिवार नियोजन जैसी सद्बुद्धि वहाँ भी नहीं थी। स्त्रियों को प्रायः हर वर्ष बच्चों को जन्म देना होता था, जिसके कारण शीघ्र ही उनका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता था और वे प्रसव-जन्य अनेक रोगों की शिकार बनी रहती थीं। शीघ्र प्रसव के कारण हजारों-लाखों महिलायें काल-कवलित होती रहती थीं। मातृ-रक्षा केन्द्रों की ऐसी व्यवस्था तब नहीं थी और न शिशु-पालन गृहों का प्रबन्ध था। जच्चा-बच्चा दोनों अकाल मृत्यु तथा बेमौत मरते रहते थे। सरकार तथा सामाजिक नेताओं का ध्यान इस ओर बिल्कुल नहीं था। ऐसे कठिन समय में मार्गरेट सेंगर नाम की एक महिला ने इस बहुप्रसव के विरुद्ध आवाज उठाई और यथा-साध्य परिवार-नियोजन की भावना तथा आवश्यकता का प्रचार एवं प्रसार किया और आजीवन इस बात का प्रयत्न करती रहीं कि समाज में सद्बुद्धि के साथ-साथ किन्हीं ऐसे वैज्ञानिक उपायों तथा साधनों का समावेश हो, जिनकी सहायता से माता-पिता अनिच्छित सन्तानों के भार से बचते रहकर अपना सामान्य जीवन चला सकें।

मार्गरेट सेंगर को परिवार नियोजन की प्रेरणा एक बड़ी ही मार्मिक घटना से मिली, जिससे व्याकुल होकर उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन माताओं को अनिच्छित गर्भ भार से बचाने के लिए, परिवार-नियोजन के उपाय खोजने तथा उनका प्रसार करने में लगा दिया। नारियों को बहु

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रसव की यातना से बचाने के प्रयत्न में मार्गरिट सेंगर ने बड़े कष्ट तथा कठिनाइयाँ उठाईं। उन्हें समाज, सरकार तथा धर्म के ठेकेदारों का कोप-भाजन बनना पड़ा। अनेक बार देश छोड़ना पड़ा और जेल भी काटनी पड़ी। इस सद्प्रचार में उनकी, उनके अप्रगतिशील पति से अनबन हो गई, जिसकी परिणति तलाक में पूरी हुई तथापि उस समाजसेविका तथा नारी जाति की हितैषिका ने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। उसे बहिष्कार, तिरस्कार, निराश्रय तथा असहयोग का भागी बनाया गया, उसके चारों ओर कंटकाकीर्ण परिस्थितियाँ उत्पन्न की गईं, पर लगन तथा शुभ ध्येय की पक्की मार्गरिट सेंगर सब कुछ सहती हुई अपने प्रयत्नों में लगी रही और अन्ततः वह सरकार तथा समाज को परिवार-नियोजन की आवश्यकता तथा उपयोगिता अनुभव कराने में सफल हुई। उस समय जो मार्गरिट सेंगर समाज की द्रोहिनी, सरकार की विरोधिनी और धर्म की घातिनी समझी जाती थी, आज वह अमेरिका की महान समाज-सेविका मानी जाती है और आज उसे देवी के सम्बोधन से आदर दिया जाता है, जबकि उस समय लोग उसे चुड़ैल कहकर अपमानित किया करते थे।

घटना अमेरिका के न्यूयार्क शहर की है। सन् १९१२ में मार्गरिट सेंगर एक डाक्टर के अधीन साधारण नर्स का काम करती थी। एक दिन वह ग्राण्डस्ट्रीट पर बने एक तंग और असुविधाजनक छोटे-से मकान में डाक्टर के साथ एक महिला मरीज को देखने गई। उस मरीज महिला का नाम सैडी था और उसके पति का नाम सौक्स। सैडी की आयु अट्ठाइस वर्ष के लगभग थी, किन्तु वह अब तक तीन बच्चों की माँ बन चुकी थी और अब चौथे गर्भ की विभीषिका में फँसी थी। उसका सारा शरीर जर्जर हो चुका था। शरीर में रक्त की कमी हो गई थी। आधे से अधिक बाल सफेद हो चुके थे। मुँह पर झुर्रियाँ पड़ने लगी थीं, आँखें बुझी-बुझी और अन्दर धँसी हुई थीं। वह अकाल वृद्धा हो चुकी थी, अब उसमें चौथे प्रसव को सह सकने की न तो शक्ति शेष रह गई थी और न साहस। इसी से घबराकर उसने गर्भपात का सहारा लिया था। किन्तु उस अनभिज्ञता तथा अयोग्यता से भरी क्रिया ने उस पर घातक प्रभाव डाला। उस अवैज्ञानिक भ्रूणपात का आघात न सह सकी थी और मरणासन्न हो गई थी। उसका पति सौक्स उसे दिखलाने के लिये डाक्टर को लाया था। मार्गरिट सेंगर उसी डाक्टर के साथ आई थी।

रोगिणी की दुर्दशा देखकर मार्गरिट सेंगर के हृदय पर बड़ा आघात हुआ। वह सोचने लगी क्या नारी को इस प्रकार के बार-बार के अवांछित गर्भों से बचाने का कोई उपाय नहीं हो सकता ? क्या उसकी इस विवशता पर नियन्त्रण नहीं किया जा सकता ? क्या नारी का जीवन इसलिये है कि वह प्रतिवर्ष गर्भ वहन करती रहे और नये बच्चे को जन्म दे ? और उसके फलस्वरूप हँसी, खुशी, आरोग्य और यौवन के साथ शीघ्र ही अपना जीवन भी नष्ट कर दे।

अभी मार्गरिट सेंगर की भाव धारा टूटी न थी कि तब तक उसने सुना—सैनी डाक्टर की दी दवा से होश में आकर कह रही थी—"सिस्टर ! अगला बच्चा मेरी जान ले लेगा, उसका आविर्भाव रोकने का कोई उपाय हो तो बताओ। गर्भपात का पाप तो मैं भोग रही हूँ। आगे वह भी सम्भव नहीं। अब ऐसी कोई स्थिति न आने पाये, इसके लिये मुझे क्या करना चाहिये ? कृपया इस सम्बन्ध में परामर्श देकर मेरा उपकार करिये नहीं तो अगले प्रसव में निश्चय ही मेरे प्राण नहीं बच सकते।"

मार्गरिट सेंगर ने सुना और देखा कि कमजोरी के कारण सैडी इतनी बात करने बाद फिर अचेत हो गई। उसकी बन्द आँखों से आँसू आ रहे हैं और उसके मुख के भाव बतलाते हैं कि वह इस विवशता में अकाल मृत्यु नहीं मरना चाहती, उसे जीवन से प्रेम है और वह एक अच्छी जिन्दगी जीने की इच्छा रखती है। क्यों न रखे ? आयु ही क्या है ? केवल सत्ताइस, अट्ठाइस साल। किन्तु, उसका यह भय निश्चित रूप से सत्य है कि अगला बच्चा उसकी जान ले लेगा। वह उसका जन्म रोकने का उपाय पूछती है—मार्गरिट सेंगर ने प्रश्न सूचक दृष्टि डालकर डाक्टर की ओर इस आशय से देखा कि वह तो डाक्टर है, शायद जरूर ही कोई उपाय बतला सकता होगा।

डाक्टर कुछ क्षण चुप रहा फिर धीरे से बोला—"इसका पति इससे अलग छत पर सोया करे। इसके सिवाय और उपाय भी क्या हो सकता है ?" मार्गरिट सेंगर को डाक्टर के उत्तर से जरा भी संतोष नहीं हुआ। लौटते समय रास्ते में वह सैडी के इस वाक्य की पीड़ा अनुभव करती और उस पर सोचती रही—"सिस्टर ! अगला बच्चा मेरी जान ले लेगा—उसका जन्म रोकने का कोई उपाय बताओ।"

मार्गरिट सेंगर अभी वह घटना भूली न थी कि तीन-चार महीने बाद उनसे सुना कि—'सैडी फिर गर्भवती हो गई और अब की बार गर्भपात के प्रयत्न में उसकी मृत्यु हो गई।' मार्गरिट सेंगर इस समाचार से विचलित हो उठी और उसने संकल्प कर लिया कि वह गर्भ-निरोधक उपायों की खोज में अपना सारा जीवन लगा देगी।

मार्गरिट सेंगर ने नौकरी छोड़ दी और अपने सदय पथ की ओर चल दी। सबसे पहले उसने निश्चय किया कि वह दुनिया के प्रगतिशील देशों में जायेगी और यह देखेगी कि क्या उनमें से किन्हीं देशों ने अनिच्छित गर्भनिरोध के उपाय किये हैं या अमेरिका के उक्त डाक्टर की तरह उनके पास भी वही—'पति के छत पर सोने का उपाय' है, जो ज्यादा दिनों तक काम में नहीं लाया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जा सकता। काश, ऐसा हो सकता और पति संयम द्वारा पत्नी की जानबख्शी कर सकता, किन्तु कहाँ ? वह तो ऐसा समझता है कि उसने नारी से विवाह ही इस सुख के लिये किया है। उसने अलग रहने के लिये विवाह नहीं किया है। ठीक भी है यह अलग रहे भी क्यों ? सारा संकट तो नारी के हिस्से में है। उसे चिन्तित अथवा भयभीत होने की क्या आवश्यकता ? कितना अच्छा होता कि पुरुष नारी की इस विवशता और व्यथा को सहानुभूतिपूर्वक समझता और उसे एक अच्छी जिन्दगी जीने का अवसर देता किन्तु क्या वह ऐसा करेगा ? तब कोई ऐसे उपाय खोजने ही होंगे, जो पुरुष के सहयोग न देने पर भी नारी को अवांछित गर्भ भार से बचा सकने में सहायक हो सकें।

मार्गरेट सेंगर ने पूरे योरोप का भ्रमण किया और पाया कि फ्रांस तथा स्काटलैण्ड में जन्म-निरोध की ओर कुछ ध्यान दिया जाता है। मार्गरेट सेंगर ने वहाँ रुककर जन्म-निरोध-केन्द्रों का निरीक्षण किया और तत्सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन। फिर भी उसे पूरा सन्तोष नहीं हुआ और उसने पाया कि नारी उन केन्द्रों का लाभ उठा सकने में स्वतन्त्र नहीं है। जिन नारियों को पति की स्वीकृति मिल जाती है, वे तो उन केन्द्रों पर जाकर जन्म निरोध की व्यवस्था करा लेती हैं और जिन नारियों के अल्पबुद्धि अथवा दुराग्रही पति अनुमति नहीं देते, उन्हें उसी विभीषिका में मरना-खपना होता है और बहुतायत ऐसे ही लोगों की रहती है, जो इस जड़ता के वशीभूत रहते हैं और नारी को किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं देना चाहते हैं। इस जानकारी से मार्गरेट सेंगर इसी निष्कर्ष पर पहुँची कि जब तक नारी को स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी और उसे यह अधिकार नहीं होगा कि वह ऐच्छिक गर्भ धारण करे, तब तक उसका इस नरक से निकल सकना सम्भव नहीं। अस्तु आवश्यक है कि नारी में स्वतन्त्रता, आत्म-विश्वास तथा अधिकार भावना का जागरण किया जाये। निदान बहुत-से तथ्य लेकर मार्गरेट सेंगर अमेरिका लौट आईं।

अमेरिका में आकर उन्होंने नारियों में इस विषय का जागरण करने के मन्तव्य से प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने अनेक नारी-संगठन तथा समितियों का सूत्रपात किया। साथ ही प्रचार को प्रवाह देने के लिये 'विप्लवी महिला' नाम का एक पत्र निकाला और प्रथम अंक के सम्पादकीय में इस बात की स्पष्ट घोषणा कर दी कि इस पत्र में अनैच्छिक गर्भों तथा जन्म-निरोध सम्बन्धी सत्य गाथायें, नाम-पते के साथ प्रकाशित की जायेंगी, जिससे कि समाज उनकी हानि-लाभ को समझ सके और इस दिशा में कर्त्तव्य का पालन कर सके।

निश्चय ही मार्गरेट सेंगर का यह प्रयत्न अमेरिका में नारी जागरण के आन्दोलन का सूत्रपात था। हर नई और जनहित की बात से चौंक उठने वाली सरकार ने कान खड़े कर लिये। उस समय अमेरिका का समाज अथवा उसकी सरकार आज जैसी विचारशील तथा प्रगतिशील नहीं थी। उसे यह बिल्कुल भी सहन न हुआ कि स्वतन्त्र रूप से जन्म-निरोध अथवा उसके अभाव में होने वाली रोमांचकारी घटनाओं को प्रकाशित कर सार्वजनिक दृष्टि में लाया जाय। निदान उसने 'विप्लवी महिला' के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगा दिया और डाक विभाग को आदेश दे दिया कि पत्र की सारी प्रतियाँ जब्त कर ली जायँ। इस विरोध के बावजूद भी मार्गरेट सेंगर अपना काम करती रहीं। नौ बार उनके पत्र पर प्रतिबन्ध लगा और नौवीं बार वह दृढ़-प्रतिज्ञ महिला पत्र प्रकाशित करती रही। अन्ततः सरकार ने उस पर वारण्ट जारी कर दिया।

किन्तु मार्गरेट सेंगर सरकार के हाथ न आई और योरोप की ओर निकल गईं। योरोप में उन्होंने पुनः जन्म-निरोध-साहित्य का गहन अध्ययन किया और उसकी वैज्ञानिक विद्या का व्यावहारिक प्रशिक्षण लिया। इधर उनके प्रचार के फलस्वरूप एक बड़ा जन-समूह उनके पक्ष का समर्थक बन गया और अमेरिका में जन्म-निरोध का एक आन्दोलन चल पड़ा। उन्होंने जन्म-निरोध की सच्चाई का इतना प्रभावपूर्ण प्रतिपादन किया कि न्यायालय को उन्हें निर्दोष घोषित करना पड़ा।

उसके बाद मार्गरेट सेंगर ने एक जन्म-निरोध-केन्द्र की स्थापना की। पहले दिन ही अनेक बच्चों का भार वहन करने वाली करीब डेढ़-दो सौ महिलाओं ने अपने नाम उस केन्द्र में अंकित कराये। मार्गरेट सेंगर के इस काम का भी सरकार ने विरोध किया, किन्तु वे अपने व्रत से विचलित न हुईं। निदान मुकदमा चलाकर सरकार ने उन्हें जेल भेज दिया। जेल से आकर उन्होंने पुनः केन्द्र का काम प्रारम्भ कर दिया।

धर्मान्ध पादरियों ने उन्हें चुड़ैल कहा और अजन्मे बच्चों की हत्यारिन बतलाया और चाहा कि धर्म के आधार पर मार्गरेट सेंगर का समाज में विरोध व बहिष्कार हो, किन्तु उनके तर्कों तथा तथ्यों ने पादरियों का मन्तव्य असफल कर उनका मुँह बन्द कर दिया। इस प्रकार अपने त्याग, तपस्या तथा प्रयत्न के बल पर मार्गरेट सेंगर ने सरकार, समाज तथा पादरियों का विरोध जीत लिया और आन्दोलन को इस सीमा तक बढ़ाया कि हारकर सरकार को जन्म-निरोध को वैधानिकता देनी पड़ी और समाज ने उसे स्वीकार किया। एक समाज-हितैषिणी-महिला के पुरुषार्थ की विजय हुई और अमेरिका में बहु-प्रसव की विभीषिका से नारी-समाज को राहत मिली।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शौर्य और पराक्रम की धनी ये असामान्य प्रतिभाएँ

साहसी महिला

मदाम अलेक्जेंड्रा डेविड नील

वय चालीस पार कर चुकी तब ज्ञात हुआ कि ज्ञान का जो विपुल भण्डार एशिया के पूर्वी देशों में है, वैसा अन्यत्र नहीं। ऐसे-ऐसे लुप्त प्रायः ग्रन्थ इन देशों में छिपे पड़े हैं, जिनसे ज्ञान-विज्ञान को एक नवीन राह मिल सकती है। मन में इन प्रदेशों की यात्रा करने तथा विश्व को इस ज्ञान से परिचित कराने की एक ललक उठी, तो उसने अपने भ्रमण का कार्यक्रम बना लिया।

इस निश्चय को मित्रों-परिजनों ने सुना तो उसको समझाने लगे-''इस विचार को त्याग देना ही श्रेयस्कर है। पुरुषों तक को इस प्रकार के देशों में हजारों कठिनाइयों को झेलना पड़ा है। कई तो मृत्यु के ग्रास बन गए। वहाँ की भाषा नहीं समझने तथा स्थानों की जानकारी के अभाव से यात्रा असफल होने का ही भय नहीं, प्राण का संकट भी उपस्थित हो सकता है।''

इस प्रकार मना किए जाने पर संकल्प की दृढ़ता उन्हें अपने ध्येय पथ पर चल पड़ने का साहस जुटाती रही। यह साहसी महिला थी फ्रांस निवासिनी मदाम अलेक्जेंड्रा डेविड नील, जो पूरे ३५ वर्षों तक पूर्वी देशों में भ्रमण करती रहीं तथा यूरोपीय देशों को एशिया के ज्ञान-विज्ञान तथा इतिहास की अनमोल जानकारी प्रदान करती रहीं।

मदाम अलेक्जेंड्रा डेविड नील का जन्म फ्रांस के एक नगर में २४ अक्टूबर सन् १८६८ को हुआ था। बचपन में चूहों तथा छिपकलियों से डरने वाली यह बालिका अपने जीवन में इस प्रकार का साहस कर दिखायेगी, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

घटनाएँ नित्य प्रति मनुष्यों के सामने घटती रहती हैं। जन सामान्य उन पर ध्यान नहीं देते। किन्तु जो इनके प्रति कुछ गहन चिंतन करते हैं, उन्हें जीवन में कुछ महान कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। जन्म, यौवन, जरा, मरण से सभी परिचित हैं और ऐसी घटनाएँ सभी देखते हैं। पर सब बुद्ध की तरह उनके प्रति गहन चिंतन नहीं करते। वे साधारण मानव की परिधि से ऊपर उठकर महा-मानव नहीं बन पाते। मदाम नील ने अपने वैवाहिक जीवन में भौतिक सुखों को भोगा। अच्छे-अच्छे आहार, निवास, वस्त्र तथा सुख-सुविधाओं का उपभोग किया। पर उन्हें संतोष नहीं हुआ। ''तू मानव जीवन का कुछ भी महत्त्वपूर्ण उपयोग नहीं कर रही है''—यह कसक उन्हें कचोटती ही रही और अंततः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचीं कि और कुछ नहीं तो उन्हें विश्वपरिवार के सदस्यों से परस्पर एक दूसरे की परिस्थिति जानने का अवसर मिल सके, ऐसा तो उन्हें कुछ करना ही चाहिए।

मदाम नील के मन में दिन-दिन यही उत्कंठा प्रबल होती चली गई। इस चिंतन का ही परिणाम था कि जीवन के उत्तरार्द्ध के कुछ समय पूर्व वह इस खोज हेतु पूर्वी देशों में भ्रमणार्थ चल पड़ीं।

जो कार्य उन्होंने अपनाया वास्तव में बड़ा कठिन तथा दुःसाहसपूर्ण था। उनका मुख्य लक्ष्य तिब्बत था। तिब्बत का ज्ञान-भण्डार पश्चिमी तथा पूर्वी देशों के आकर्षण की वस्तु रहा है। अनके कठिनाइयों का सामना करते हुए, अपमान-तिरस्कार सहते हुए सैकड़ों यात्री इस प्रवेश-निषिद्ध-प्रदेश में जाने का साहस जुटा चुके थे। सभी पुरुष थे। महिला यायावरों में केवल मदाम नील का ही नाम लिया जा सकता है, जो तिब्बत में प्रविष्ट होकर अपार ज्ञान सम्पदा से अपनी जेबें भरकर ला सकी थीं। मदाम नील इन सबसे अधिक सफल, साहसी तथा कुशाग्र बुद्धि सिद्ध हुईं तथा यह प्रमाणित कर सकीं कि साहस तथा कठिनाइयाँ झेलते हुए सफल होने की बपौती पुरुषों की ही नहीं है।

पहले मदाम नील ने बर्मा, नेपाल, कोरिया, जापान तथा भारत आदि देशों में भ्रमण किया। इन देशों के बौद्ध-विहारों तथा मठों में रहकर उन्होंने बौद्ध-साहित्य का अध्ययन किया। इन देशों की भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। उनकी जिज्ञासाओं का उत्तर उन्हें यहाँ मिला, उन्हें शान्ति मिली। पूर्व की संस्कृति के प्रति उनका यह अनुराग बढ़ता ही गया। जन्म भले ही उन्होंने फ्रांस में पाया हो, उनका अन्तःकरण पूर्णरूप से भारतीय संस्कृति को स्वीकार कर चुका था। उन्होंने विधिवत बौद्धधर्म में दीक्षा ली। मनुष्य ने अपने आपको कृत्रिम परिधियों तथा पूर्वाग्रहों में सीमित कर लिया हो पर सच्चा धर्म तो वही है, जो अन्तःकरण की पवित्रता अक्षुण्ण रख सके। इस तथ्य, इस सत्य को उन्होंने सहज रूप से स्वीकारा तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

५.२ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

इसे बताने के लिए उन्होंने सिक्किम में एक तिब्बती लड़के को अपना दत्तक पुत्र बनाया। बाद में यह लड़का लामा बना तथा लाल टोपी सम्प्रदाय के योगदेन लामा के नाम से जाना गया।

तिब्बत के दलाईलामा ने विदेशी पर्यटकों का तिब्बत में प्रवेश निषिद्ध कर रखा था। यह प्रदेश तांत्रिक उच्च साधनाओं तथा तत्सम्बन्धित साहित्य का भण्डार था। इस कारण १८४८ से १९५० के समय में अनेक विदेशी इस प्रदेश में पहुँचे। इनकी यात्राओं के संस्मरण रोंगटे खड़े कर देने वाले हैं। इन सब में अग्रणी मदाम नील थीं, जिन्होंने ल्हासा में प्रविष्ट होने में सफलता ही प्राप्त नहीं की वरन् कई दिनों तक वहाँ रह सकीं। इस सम्बन्ध में मदाम ने अपना अनुभव इस प्रकार लिखा है-"मैं स्वीकार करती हूँ कि अन्य यात्रियों की भाँति जिन्होंने ल्हासा पहुँचने की कोशिश की तथा मंजिल तक पहुँचने में असफल हुए, मैंने कभी भी लामावादी नगर में जबरदस्ती घुसने का प्रयत्न नहीं किया, न ऐसा करने की मेरी इच्छा थी। अपने अनुसंधान के लिए अथवा धर्म, दर्शन, साहित्य और तिब्बत की रहस्यमयी झाँकियों के दर्शन के लिए मैं राजधानी न जाकर तिब्बत के उत्तर-पूर्वी भागों में जाती तो वहाँ के विद्वान लामाओं से सहायता पाती और उधर जाने से लाभ भी होता। जिस बात के कारण मुझे ल्हासा जाने का निश्चय करना पड़ा, वह थी उस बाधा और निषेधाज्ञा की छानबीन करना, जिसने तिब्बत को बंद करके रखा है।"

शारीरिक श्रम तथा साहस, खतरों से जूझने तथा तितिक्षा को पुरुषों ने अपना ही क्षेत्र मान रखा है, किन्तु जब किसी महिला ने चुनौती दी तो वह असत्य सिद्ध हुआ। मदाम नील के इस अभियान से यह सिद्ध होता है कि महिलाएँ पुरुषों से किसी भी दृष्टिकोण से उन्नीस नहीं हैं।

मदाम नील ने तिब्बत की प्रथम यात्रा शिगर्चे तक की। यहाँ के प्रसिद्ध विहार, जो कि पंछेन लामा का पीठ स्थल है, के तत्कालीन पंछेन लामा इस विद्वान जिज्ञासु महिला से बहुत प्रभावित हुए। जब कोई धर्म के प्रति इतनी निष्ठा तथा ज्ञान के प्रति इतनी भूख लेकर आता है तो स्वाभाविक है कि प्रत्येक भावनाशील व्यक्ति उसकी सहायता करने को प्रस्तुत हो जाता है, पंछेन लामा ने उन्हें अपने यहाँ रख लिया। तिब्बत सरकार को इस बात का पता चला तो उन्हें तत्काल तिब्बत से बाहर चले जाने का आदेश दिया।

मदाम नील को तिब्बत से बाहर जाना पड़ा। तिब्बत सरकार ने वहाँ के निवासियों को भी इस बात को छिपाये रखने और सूचना नहीं देने के अपराध में दण्डित किया। ज्ञान को भौतिक-सम्पदा की तरह अपने तक ही सीमित रखने की इस घातक प्रवृत्ति के कारण कई विदेशियों को इस प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ा था। मदाम नील इस धक्के को सहने का साहस रखती थीं। उनकी इच्छाशक्ति और दृढ़ हो गई।

अपनी पुस्तक 'माई जर्नी टु ल्हासा' की भूमिका में उन्होंने लिखा है—"अब की ल्हासा प्रवेश का विचार मेरे मन में दृढ़ हो गया। मैंने प्रतिज्ञा की कि कितनी भी बाधाएँ आयें मैं ल्हासा पहुँचूँगी। इसके पीछे बदले की भावना कतई नहीं थी।"

अपने दत्तक पुत्र के साथ उन्होंने कई यात्राएँ कीं। मदाम ने अपने को इसके लिए पहले से तैयार कर रखा था। वह तिब्बती-भाषा की पंडिता हो चुकी थीं। बोल-चाल में मधुरता तथा हँसी-दिल्लगी का समावेश करके वह लोगों का सहयोग पाने में सिद्धहस्त हो चुकी थीं। यह उनकी पाँचवीं तथा सफल यात्रा थी। इस बार वे भिखमंगों के दल के साथ गईं। साधन सम्पन्न परिवार में पली तथा विवाही गयी मदाम नील ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए फटे-पुराने चिथड़े पहने, वैसे ही अपने दत्तक पुत्र को पहनाये। सर्दी की ऋतु में शीत तथा भूख से जर्जर तन में भी आशा और उत्साह लिए वे इस दल के साथ बढ़ते गए।

इस यात्रा का एक उद्देश्य यह भी था कि तिब्बत की राह जो सदा के लिए विश्व-यात्रियों के लिए बन्द होने जा रही थी, उसे खुला रखना। मदाम नील श्वेत वर्ण होने के कारण पहचानी जा सकती थीं, इसके लिए उन्होंने मेकअप के साथ काला कोयले का बुरादा मुँह पर लेप लेने का कारगर उपाय अपना लिया था।

अठारह महीने की इस यात्रा को इन दोनों ने निर्विघ्न सम्पन्न किया, ल्हासा में कई दिन रहे। विविध सामग्रियाँ एकत्रित कीं। वापस लौटते समय उन्होंने मध्यम वर्गीय तिब्बती के वेश में यात्रा की। इस यात्रा के दौरान उन्हें प्राय: रात्रि को यात्रा करनी पड़ी, दल के अनुरूप रहना पड़ा। रात्रि में झोंपड़ियों की गन्दी जमीन पर सोना पड़ा।

उन्होंने ल्हासा के नये वर्ष के सभी उत्सवों को देखा। अपने आप को उन्होंने इस कौशल से छिपाये रखा कि किसी को इनके विदेशी होने का तनिक भी आभास नहीं हो सका। कितने ही वेश बदलने पड़े और कितने ही रूप धरने पड़े पर सफलतापूर्वक उन्होंने निभाये।

द्वितीय महायुद्ध के दौरान मदाम नील ने तिब्बत-चीन सीमा में कई वर्ष व्यतीत किए। धन के अभाव में कभी-कभी जीवन दूभर हो उठता था। उसे इन्होंने अपने बुद्धि बल से पूरा किया। परिस्थितियों से हार नहीं मानी। मानव मात्र एक है, देश तथा धर्म की दीवारें उसे पृथक् नहीं कर सकतीं। यह तथ्य इस महान महिला के जीवन में स्पष्ट देखा जा सकता है, जिसने ३५ वर्ष तक पूर्वी देशों को अपना घर बनाया, पूर्व और पश्चिम को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। सन् १९६९ में इन्होंने अपना सौवाँ जन्म दिवस मनाया। इस आयु में भी उनका अध्ययन, चिंतन तथा लेखन उसी गति से चलता रहा। कोई उन्हें वृद्धा नहीं कह सकता। चेहरे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की झुर्रियाँ उनके चिर युवा उत्साह को ढाँप नहीं पाई थीं। प्राय: चालीस वर्ष से ऊपर पहुँचकर जीवन के प्रति उत्साह गँवा बैठने वाले व्यक्तियों के विपरीत इस साहसी महिला ने चालीस के बाद ही जीवन का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादित किया है।

उन दिनों दक्षिणी फ्रांस के 'दिगने' नामक स्थान पर एकांत निवास कर रही मदाम नील के साथी थे-मूर्तियाँ, प्रार्थना, चक्र तथा स्मृतियाँ। इस साहसिकता के बल पर वे सारे विश्व में अभिनंदनीय मानी गईं। इन्हीं के अथक् परिश्रम, अपूर्व धैर्य तथा कठिन साहसिक अभियान के प्रसादस्वरूप पूर्वी देशों सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ अँग्रेजी-भाषा में उपलब्ध हो सके हैं। बौद्ध धर्म, संस्कृति तथा साहित्य के साथ तिब्बत की रहस्यमय तांत्रिक-साधना भी जुड़ी हुई है। मनुष्य द्वारा शरीर मन से ऊपर उठकर एक सूक्ष्म परिवेश आत्मा के स्तर तक पहुँचने सम्बन्धी मार्गदर्शन तथा तत्सम्बन्धी उपलब्धियों के विषय में जानकारी उन्होंने अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत की है।

मनुष्य पेट-प्रजनन के चक्र में ही कूप मंडूक की तरह फँसा रहे तथा उससे ऊपर उठने और विश्व-मानव को अपनी कर्मठता द्वारा कुछ दे न सके, उसके भण्डार से लाभ तो दोनों हाथों से उठाता रहे पर उसकी श्रीवृद्धि के लिए कुछ भी प्रयास न करे तथा अपने जीवन में ऐसा कोई कार्य न कर सके जो भावी पीढ़ी को शिक्षा दे सके, ऐसे मनुष्य को पृथ्वी का भार मानने वाली मदाम नील अपने इस उदात्त दृष्टिकोण के कारण ही एक आदर्श के रूप में इतिहास के पृष्ठों पर अमर हो गई हैं। एक व्यक्तित्व तथा कर्तृत्व के रूप में भावनाशील जीवित-जाग्रत आत्माओं को श्रेय पथ पर चल पड़ने की प्रेरणा देती रहेंगी।

शरीर से अपंग पर मन से समर्थ हेलेन केलर

मिस हेलन केलर नारी जाति का गौरव थीं, उन्होंने ८७ वर्ष की दीर्घ आयु में यह सिद्ध कर दिखाया कि पुरुषार्थ केवल पुरुष की ही बपौती नहीं है, नारी की भी है और उसमें उसका नेत्रहीन होना, मूक तथा बधिर होना किसी प्रकार से बाधक नहीं।

इस अमेरिकन देवी ने नेत्रहीन तथा नेत्रवान नर-नारियों के सम्मुख अपना ही उदाहरण प्रस्तुत करके कहा—दृढ़ संकल्प वह महान शक्ति है, जो मानव की आन्तरिक शक्तियों को विकसित कर प्रगति-पथ पर ला खड़ा करती है। केलर ने अदम्य साहस तथा अभूतपूर्व मनोबल द्वारा संसार को चकित तो किया ही, नेत्रहीन और विकलांगों के लिए भी आश्रय बन गईं।

२७ जून, १८८० को जन्म लेने वाली वह बालिका ६ माह की आयु में घुटनों चलने लगी और एक वर्ष की होने पर बोलने लगी। १९ माह की जब हुई तो यह फूल सी कोमल थी और हर दृष्टि से स्वस्थ। एक दिन साधारण-सा ज्वर आया, पिता ने काफी चिकित्सा कराई। ज्वर तो कुछ दिनों बाद चला गया पर उसे नेत्रहीन तथा बधिर बना गया। कुछ सुन नहीं सकती थी इसलिये उसके लिये बोलना भी कठिन था। केलर ने अपनी असमर्थताओं को देखा। तो छटपटाने लगी, माता-पिता भी अपनी लाड़ली बेटी की यह दुर्गति देखकर दुखी हुये।

पिता को बिल्कुल भी आशा न थी कि उसकी पुत्री अब कुछ कर सकेगी। उसका बचपन जिन भयंकर कठिनाइयों से होकर बीता, उन्हें देखकर किसी को आशा होती भी कैसे ? एक दिन उसकी माँ बैठे-बैठे समाचार पत्र पढ़ रही थीं कि उनकी दृष्टि बोस्टन की परकिन्स संस्था पर जा पड़ी। उन्होंने पूरा विवरण पढ़ा, अब तो माँ की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। अखबार अलग कर दिया। ६ वर्षीय केलर को अपनी और खींचकर उसका माथा चूमा और बोली ऐसा लगता है बेटी अब तेरा सौभाग्य उदय होने वाला है, मैं तुझे बोस्टन ले जाऊँगी।

माँ के आग्रह पर पिता ने परकिन्स संस्था से सम्बन्ध स्थापित किया और उस संस्था की संरक्षिका ने उनके घर आकर पढ़ाना स्वीकार कर लिया। केलर के जीवन में परिवर्तन यहीं से प्रारम्भ होता है। उसकी शिक्षा प्रारम्भ हो गई और तीन वर्ष में उसे सारे संसार के लोग जान गये। वह इतने से ही सन्तुष्ट होने वाली न थी, उसने अपने मन में संकल्प किया कि मैं अपने जैसे विकलांग बच्चों की हर सम्भव सहायता करूँगी और उन्होंने ऐसा कर दिखाया।

वह सारे संसार में ६ बार घूमीं और विकलांग व्यक्तियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण वातावरण निर्मित किया। उन्होंने प्रत्येक देश से करोड़ों रुपये की धनराशि एकत्रित की और उसमें से अपने लिए एक पैसा भी खर्च न किया। उन्होंने विकलांगों के लिए अनेक संस्थाएँ स्थापित कीं।

अल्पायु में ही पिता की मृत्यु हो गई। मार्क ट्वेन को उस बच्ची पर दया आ गई, उन्होंने उसके सामने एक प्रस्ताव रखा—"केलर ! मेरी इच्छा है तुम्हारी पढ़ाई के लिये अपने मित्रों से कुछ धन एकत्रित करूँ।"

केलर के स्वाभिमान को ठेस लगी। उसने संयत स्वर में कहा—'यदि आप चन्दा करना ही चाहते हैं तो मेरे लिये नहीं बल्कि मुझ जैसे विकलांग बच्चों के लिये करिये। जिससे उन्हें आश्रय मिल सके।'

केलर द्वारा एक चाय पार्टी का आयोजन किया गया, वहाँ उपस्थिति लोगों को उसने अपनी बात समझाई तो थोड़ी देर में दो हजार डालर की राशि एकत्र हो गई। वह दौड़ी-दौड़ी विचारक ट्वेन के पास पहुँची और बोली 'आप् उस दिन चन्दा एकत्रित करने की बात कह रहे थे। लीजिए यह धन उसी कोष में जमा कर लीजये।'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

५.४ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

इतना सुनकर ट्वेन के मुख से निकला—'संसार का आठवाँ आश्चर्य।' निश्चय ही वह संसार का महानतम आश्चर्य थी। भविष्य में जब-जब इस विचारक की भेंट केलर से हुई तो उसने अनुभव किया कि इस विकलांग देवी ने मानवीय चरित्र को नयी गरिमा ही नहीं बल्कि मानव-पुष्प को नयी सुगन्धि भी प्रदान की है।

केलर की अध्यापिका सुलीवान बड़ी कठिनाई से वर्णमाला का ज्ञान करा सकी। एक-एक अक्षर को केलर कई-कई घण्टों तक दुहराती थी, तब कहीं याद होते थे। अब वह बोलने का प्रयास भी करती थी और आंशिक सफलता उसे मिल रही थी। उसकी सफलता के पीछे उसका संकल्प बल कार्य कर रहा था।

कठिन परिश्रम के फलस्वरूप उन्होंने लैटिन, फ्रेंच और जर्मन भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लिया। ८ वर्षों के घोर अध्यवसाय ने उन्हें स्नातिका बना दिया। अब उन्होंने अपनी योग्यता का उपयोग नेत्रहीनों के लिये प्रारम्भ किया। केलर ने ब्रेल लिपि में अनेक पुस्तकों का अनुवाद किया और मौलिक ग्रन्थ भी लिखे। 'मेरी जीवन कहानी, नामक आत्मकथा संसार की ५० भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी है।'

केलर द्वारा रचित 'मेरा धर्म नामक पुस्तक पढ़ने से ज्ञात होता है कि वह अपने में आत्मा की शाश्वत ज्योति-शिखा का अनुभव करती थी। उनके नेत्र नहीं तो क्या आत्मा का प्रकाश उन्हें राह दिखाता था। बधिर होते हुए भी वे अन्तराल के संगीत की गूँज सुन सकती थीं। उनका हर सपना रंगीन था और हर कल्पना स्वर्णिम।'

सुलीवान उनकी शिक्षिका ही नहीं जीवनसंगिनी भी थीं। उनकी सहायता से ही केलर ने टालस्टाय, कार्लमार्क्स, नीत्शे, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी और अरस्तू जैसे महान विचारकों के साहित्य को पढ़ा।

विश्व की अनेक विभूतियों से भी उनकी भेंट हुई थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर और प्रधानमन्त्री पं. नेहरू से मिलने पर वह बहुत प्रभावित हुई थी।

उसकी मस्तिष्क शक्ति इतनी जागरूक थी कि आगन्तुक की पदचाप से ही वे बहुत कुछ बता देती थीं। बोलने वाले के कण्ठ और अधरों को स्पर्श कर उस शब्द को पहचानती थीं, साथ ही स्वयं उच्चारण भी करती थीं। उनके शरीर का रोम-रोम कम्पन चेतन हो गया था।

वे विभिन्न रंगों को स्पर्शकर पहचान लेती थीं। उनका कहना था कि हरे रंग में कोमलता, पीले में प्रकाश, गुलाबी में शीतलता और लाल में उष्णता होती है। उनसे एक सज्जन ने पूछा 'केलर ! आप तो नेत्रहीन हैं और १९ माह की आयु से आपको इस संसार की कोई वस्तु देखने को नहीं मिली, तो आपको पता भी नहीं चलता होगा कि दिन और रात कब होते हैं ?

केलर का विज्ञानसम्मत उत्तर था 'दिन में हलचल अधिक रहती है। हवा का प्रवाह मन्द रहता है। वातावरण में कम्पन बढ़ जाता है और शाम को वातावरण शान्त और कम्पन में कमी आ जाती है। सारी सृष्टि के विश्राम के कारण वातावरण बिल्कुल शान्त और मधुर हो जाता है।'

घोड़े की सवारी उन्हें प्रिय थी और उस पर बैठ कर जब वे हवा से बातें करती थीं, तो दर्शकों का दिल धड़कने लगता था, वह अशुभ की कल्पना करने लगते थे। पर केलर ने नेत्रों से बिना दिशाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। प्रभु के चरणों में जीवन का भार सोंप देने वाली केलर बिल्कुल निश्चिन्त थी।

स्वावलम्बन उनके जीवन का प्रमुख गुण था। भोजन बनाने, वस्त्र पहनने और सफाई, धुलाई के कार्य में वे किसी से सहायता न लेती थीं। यह तो उनके रोज के ही काम थे।

८१ वर्ष की आयु में २७ जून, १९६८ को हृदय का दौरा पड़ जाने से वह इस संसार से विदा हो गईं पर उनके जीवन की अद्भुत कहानी प्रत्येक मानव को जन्म-जन्मान्तर तक प्रेरणा देती रहेगी और पुरुषार्थ का महत्त्व बताती रहेगी।

प्रतिभाशाली रूसी कन्या—गूँगी-बहरी फाइना वाराकिना

मनुष्य जीवन की सफलता के लिये जो शक्ति और साधन अपेक्षित हैं, परमात्मा का दिया हुआ शरीर उनमें प्रमुख है। हाथ, पैर, मुँह, नाक, आँख, कान आदि सभी अंग चालू मशीन के पुर्जों की तरह स्वस्थ और सशक्त हों तो असफलता का कोई कारण नहीं होना चाहिये। आवश्यकता केवल साहस-धैर्य और मनोबल की होती है। क्रियाशील व्यक्ति की प्रगति में परिस्थितियाँ प्रतिरोध नहीं कर सकतीं, यदि कुछ विघ्न-बाधायें पड़ें तो उन्हें भी ज्ञान और अनुभव की वृद्धि में सहायक समझ कर सफलता में सहयोगी ही मानना चाहिए।

संसार में ऐसे व्यक्ति भी हुए हैं, जिन्होंने अपूर्ण और अशक्त शारीरिक स्थिति में अभूतपूर्व सफलतायें प्राप्त की हैं। उन्हें आगे बढ़ाने के लिए न तो भाग्य की प्रशंसा की जा सकती है, न परिस्थितियों की। सफलता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचने में जब कभी सम्भव हुआ, पुरुषार्थ ही सहयोगी रहा है। भाग्यवाद का पल्ला न पकड़ कर जो व्यक्ति आशा और विश्वास के साथ परमात्मा की दी हुई शक्तियों का सदुपयोग पूर्ण मनोयोग के साथ कर लेते हैं, वे ही विजयी होते हैं। सफलता, श्रेय और सम्पन्नता भी उन्हीं को उपलब्ध होती है।

गूँगी-बहरी प्रतिभावान रूसी-कन्या कुमारी फाइना वाराकिना ऐसी ही पुरुषार्थी विभूतियों में है, जिन्होंने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिस्थितियों को अपनी कर्मठता से पछाड़कर जीवन में महत्त्वपूर्ण सफलता पाई। फाइना वाराकिना का जन्म १९४१ में हुआ, उसी वर्ष सोवियत-संघ पर नाजियों का आक्रमण हुआ था। वह एक साधारण किसान परिवार में जन्मी थी। अपने पिता की सातवीं सन्तान फाइना को अपने पिता मिसाइल वाराकिना का भी स्मरण नहीं। उसके जन्म के तुरन्त बाद ही वे युद्ध में चले गये, जहाँ से लौटकर आज तक नहीं आये।

किसी भाग्यवादी व्यक्ति के लिए जीवन से हार मानने के लिए तो इतना ही काफी था—"क्या करें, अनाथ थे, किसी ने सहारा नहीं दिया"। ऐसी परिस्थिति में उनके पास यह एक ही नारा रह जाता है। वे कभी यह नहीं सोचते कि संसार में आगे बढ़ने के लिए अपने बाहुबल पर भरोसा किया जाता है, अपनी इच्छा, दृढ़ता, लगन, तत्परता और विश्वास पर सफलता प्राप्त की जाती है। पर यहाँ ऐसा नहीं हुआ। फाइना को थोड़ा-थोड़ा परिस्थितियों का ज्ञान होने लगा, फिर भी उसके हृदय में कभी निराशा पैदा नहीं हुई।

गूँगी तो वह जन्म से ही थी, सात वर्ष की आयु में फ्लू हो गया, जिससे उसकी श्रवण-शक्ति भी जाती रही। उसकी माँ ने उसे उल्यानोस्क के गूँगे-बहरों के एक विशेष स्कूल में भर्ती करा दिया। वहाँ उसने न केवल पढ़ना-लिखना सीखा अपितु होठों की हरकत से बोलना और समझना भी सीख लिया। गूँगी और बहरी कन्या के लिए यह प्रशिक्षण कितना कठिन रहा होगा, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। पर कठिनाइयों से जो डरता नहीं, हिम्मत हारकर जो अपने अभ्यास को नहीं छोड़ बैठते, उनके लिए इस संसार में कुछ भी तो मुश्किल नहीं होता।

स्कूल में फाइना को खेल-कूद में भी रुचि हुई। उसने धीरे-धीरे दौड़ने और कूदने का अभ्यास प्रारम्भ किया। एक दिन उसने 'शार्ट पुट' पर भी हाथ आजमाया वह ११ मीटर दूरी पर गिरा। उसके प्रशिक्षक यूरी देसियात्विकोव यह सब देख रहे थे, उन्होंने बालिका की प्रतिभा को पहचाना और उसे हर सम्भव सहयोग देने का निश्चय कर लिया।

देसियात्विकोव के निरीक्षण में फाइना ने 'शार्ट-पुट' और 'डिस्कस' में तेजी से प्रगति की किन्तु उसे एक ऐसी हम-नाम लड़की का मुकाबला करना पड़ गया, जो उसकी सर्वाधिक शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्विनी सिद्ध हुई। जब भी अभ्यास कराया जाता फाइना वाराकिना पीछे रह जाती, विजय दूसरी फाइना अन्तोनोवा के ही हाथ लगती।

फाइना वाराकिना की तीव्र इच्छा थी कि वह ओलम्पिक्स के लिये चुनी जाय पर यहाँ तो दूसरी समस्या आ खड़ी हुई। ऐसे समय उसने वही काम किया जो बुद्धिमान लोग करते हैं। जब अपनी शक्ति, अपनी बुद्धि, अपना विवेक काम न दे तो चतुर लोग दूसरे योग्य अनुभवी व्यक्तियों से, महापुरुषों से मार्गदर्शन लेते हैं। यह कोई आवश्यक बात नहीं कि मार्गदर्शन जीवित व्यक्ति से ही लिया जाय। जिस तरह का पथ-प्रदर्शन अपेक्षित होता है वैसे गुरु और शिक्षक जीवित मिल जायें, यह सर्वथा सम्भव भी नहीं होता। यह स्थिति आये तो पूर्व महापुरुषों की जीवनियाँ साथ दे जाती हैं, उनसे भी सच्चे आत्मीय जैसा ही मार्गदर्शन मिल जाता है। महापुरुषों के जीवन चरित्र इसी से पढ़े जाते हैं। उनसे अनेक कठिनाइयों का प्रत्यक्ष समाधान मिल जाता है। साथ ही उत्कृष्ट जीवन की प्रेरणा व प्रकाश पाने का लाभ भी उपलब्ध हो जाता है।

संयोग से फाइना को इस तरह का मार्गदर्शन ढूँढ़ने में कठिनाई नहीं हुई। उन दिनों 'तमारा प्रेस' की शैली सबसे श्रेष्ठ समझी जाती थी, उसने तमारा की एक-एक गतिविधि का बड़ा सूक्ष्म अध्ययन किया, उसकी प्रत्येक बारीकी को ध्यानपूर्वक देखा और उसके अनुसार अपना हाथ जमाने का अभ्यास बढ़ाया। फलस्वरूप वह तीन वर्षों में ही गूँगे-बहरों में सर्वोत्तम शार्ट-पुट फेंकने वाली बन गई। साहस और ग्रहणशीलता ने उसे इस योग्य बना दिया कि वह ओलम्पिक खेलों में भाग लेने के लिए भी चुन ली गई।

सन् १९६५ में वाशिंगटन में गूँगे-बहरों की दसवीं विश्व प्रतियोगिता में फाइना ने भाग लिया। साहसपूर्ण प्रदर्शनों के कारण वह अनेक स्वर्ण और रजतपदक जीतकर श्रेष्ठ खिलाड़ियों की श्रेणी में जा पहुँची। इस प्रतियोगिता में उसे 'शार्ट-पुट' का स्वर्ण पदक भी मिला। इससे उसे 'मिस ओलम्पिक्स' की उपाधि से विभूषित किया गया।

यह उपाधि मिलने के बाद फाइना का ध्यान दूसरी ओर गया। उसने विचार किया कि केवल एक ही दिशा में बढ़ने में वास्तविक सफलता नहीं। जीवन में और भी क्षेत्र हैं, जो इससे भी कहीं अधिक यथार्थ और महत्त्वपूर्ण हैं। यदि मेरा क्षेत्र केवल खेलों तक ही सीमित रह गया तो जीवन के अन्य आवश्यक अंग अविकसित रह जायेंगे। आत्म-विकास, परिवार-निर्माण, राष्ट्र-सेवा के लिए अभी और भी गहन शिक्षा और ज्ञान की आवश्यकता है, उनसे वंचित रहकर मेरा जीवन सुखी नहीं हो सकता, इसलिए उधर की तैयारी करनी चाहिए।

वाशिंगटन से लौटने के बाद इस निश्चय को उन्होंने व्यवहार में परिवर्तित किया। कुछ दिन माँ के पास अन्नेनकोबो गाँव में विश्राम किया, तदुपरान्त सितम्बर १९६५ में उसने मास्को इन्जीनियरिंग स्कूल में दाखिला ले लिया। उसकी इच्छा योग्य इन्जीनियर बनकर राष्ट्र की सेवा करने की है। किसी नारी के लिए जहाँ यह गौरव की बात है वहाँ एक बहरी-गूँगी के लिये उसे प्राप्त करना भी दुःसाध्य है। पर यह तो साहस का चमत्कार है, जो वह इस क्षेत्र में भी उल्लेखनीय सफलता प्राप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

करती हुई बढ़ रही है। उसकी प्रगति देखकर कोई भी कह सकता है कि "वह एक दिन सफल और सुयोग्य इन्जीनियर अवश्य बनेगी।"

फाइना के विवाह की भी चर्चा उसकी सहेलियाँ चलाती हैं। पर यहाँ भी उसने अपने विवेक का परित्याग नहीं किया। विवाह करने के पश्चात् उसकी स्वाधीन इच्छा और निर्माणशक्ति में बाधा पड़ सकती है। इन्जीनियर बनने का जो स्वप्न उसने देखा है, अवरोध उत्पन्न होने से वह टूट सकता है। यह भी सम्भव है कि विवाह के बाद उसे सुखोपभोग की लालसा बढ़ जाय इसलिए पहले एक हाथ में मिला हुआ कार्य पूरा कर लेने का ही उसने फैसला किया। एक लक्ष्य बना के जब तक उसमें सफलता न मिले तब तक मार्ग न बदले, यह लक्ष्य सिद्धि का मूलमन्त्र है। फाइना भी इसी पर चल रही है। इस तरह का जीवनक्रम और सुनियोजित गतिविधियाँ देखकर कोई भी यह कल्पना कर सकता है कि वह एक दिन अवश्य उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचेगी और सैकड़ों अनाथ, असहाय, अपंग, निराश, टूटे हुए साहस के व्यक्तियों को प्रेरणा और प्रकाश देगी। सैकड़ों लोगों को कठिन परिस्थितियों में भी धैर्य और लगन के साथ आगे बढ़ने का मार्ग-दर्शन मिलेगा।

वेलेरी लोंग—जिसने दुर्देव पर विजय पायी

"मैं आपको धोखे में नहीं रखना चाहता। आपकी बच्ची अब शायद ही सामान्य अवस्था को पा सके। बेहतर यही होगा कि आप उसे उस हॉस्टल में भर्ती करा दें, जहाँ इस प्रकार के निष्क्रिय मस्तिष्क के बालक रखे जाते हैं।"

चिकित्सा-विशेषज्ञ का यह कथन मरजोरी लोंग की ममता को दहला उठा। उसकी वेलेरी कभी अन्य बालकों की तरह जीवन का सुख नहीं भोग सकेगी। कोई प्रगति नहीं करेगी। उसका यह जीवन पग-पग पर उसे व्यथित किया करेगा। इस जीवन से तो · · · · · · । आगे वह सोच भी नहीं सकी। किन्तु वह इतनी कमजोर व साहसहीन भी नहीं थी कि इसे प्रारब्ध या भाग्य मानकर चुप बैठ जाती है, उसका पुरुषार्थ बोल पड़ा—नहीं, वेलेरी सामान्य होकर रहेगी। उसका यह दृढ़-संकल्प, प्रगाढ़ निष्ठा सचमुच एक दिन उस बालिका को जीवन में सफल बनाकर रहे। यही नहीं बालिका ने बी. ए. तक शिक्षा भी ग्रहण की व वह आत्म-निर्भर भी बनी।

वह तथा उसका पति इस बालिका के जन्म पर बड़े प्रसन्न हुए थे। उसके आँगन में एक गुलाब का पौधा अंकुरित हुआ था, उन्होंने उस पौधे से कई आकांक्षाएँ बाँध रखी थीं। वह एक दिन बड़ा होगा और अपने सौरभ और सौन्दर्य से उनके घर को भर देगा। किन्तु बालिका जब दो वर्ष की हो गयी तो उन्होंने देखा कि वह अपने समवयस्क बालकों की तरह विकसित नहीं हो रही है। वे जो क्रिया-कलाप करते हैं वैसा कुछ वेलेरी नहीं करती, तो उन्हें शंका हुई। अब तक तो वे यही समझ रहे थे कि बड़ी होने पर सब कुछ करने लगेगी पर अब तो बहुत देर हो चुकी थी।

मरजोरी का पति रॉयल एयर फोर्स में अधिकारी था। द्वितीय विश्वयुद्ध का समय था। वह युद्ध पर गया था। मरजोरी अपनी दो वर्ष की बालिका को लेकर डॉक्टर के पास गयी और डॉक्टर ने परीक्षण के उपरान्त अपना मत व्यक्त किया। "बच्ची के मस्तिष्क का पक्षाघात हो गया है। जन्म के समय इसके मस्तिष्क को कोई आघात लगा है। इंग्लैण्ड के ७५,००० बच्चों की तरह वह भी एक मस्तिष्क की क्रियाशीलता खो देने वाली बालिका है।"

उनके अनुसार उसके सब क्रिया-कलाप मस्तिष्क से असम्बद्ध होने के कारण अव्यवस्थित होंगे। जब वह अपनी टाँगों से काम लेना चाहेगी तो वे उल्टे-सीधे कोण से जाएँगी। जब वह मुँह को हाथ ले जायेगी तो वे सिर पर जा पहुँचेंगे। यही हाल उसके बोलने का भी होगा। सामान्य व्यक्ति को किसी भी अंग-संचालन के लिए कोई विशेष चेष्टा नहीं करनी पड़ती, वे अपने आप होते रहते हैं किन्तु जरा सी विकृति ने वेलेरी को उस क्षमता से वंचित कर दिया था।

मनुष्य अपने आपको दीन-हीन मानकर शोक किया करता है। किन्तु वेलेरी की स्थिति में रहकर सोचें, ईश्वर ने उसे कितना सुन्दर, व्यवस्थित शरीर यन्त्र दिया है। इस अनुपम देन के अनुरूप ही उसे अपना जीवन-लक्ष्य निर्धारित करना ही बुद्धिमत्ता है।

चिकित्सकों और विशेषज्ञों के मत को सुनकर भी मरजोरी निराश नहीं हुई। वह जब अपनी पुत्री के सुन्दर-सलौने मुखड़े को देखती जिसकी आँखों में भविष्य की सुनहरी आकांक्षाएँ चमक रही होती थीं। तो उसे पूरा विश्वास हो जाता था कि वेलेरी अभ्यास करके उन सब क्रियाओं को सीख लेगी, जिसे अन्य बालक अपने आप करते हैं।

उन दिनों मस्तिष्क पक्षाघात रोग के बारे में चिकित्सक बहुत कम जानते थे। अमेरिका से एक विशेषज्ञ के मार्गदर्शन व अपनी स्वयं की बुद्धि से उसकी माता वेलेरी को अभ्यास करवाती थी। व्यायाम के द्वारा अंग-संचालन को व्यवस्थित करने का प्रयास चलता ही रहता था। उनमें थोड़ी-थोड़ी सफलता भी मिल रही थी, वह नगण्य ही थी। बहुत दिनों के प्रयास के बाद उसने अपने हाथों से भोजन करना सीखा।

माता-पिता के सम्मिलित प्रयास से वेलेरी ने पाँच वर्ष की आयु में तीन पहियों वाली साइकिल चलाना सीखा। अपनी इस साइकिल को चलाते हुए वह बड़ी ही हास्यास्पद लगती थी। फिर भी यह उसके आत्म-विश्वास को जगाने में सहायक ही हुई थी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आरम्भ में माता को विश्वास था कि उसकी बच्ची सामान्य बालकों की तरह अंग-संचालन किया करेगी। पर कभी-कभी उसका मन शंका-कुशंकाओं से भर उठता कि कहीं वेलेरी हमेशा के लिए पराश्रित न रह जाय।

यद्यपि बालिका प्रगति कर रही थी किन्तु उसकी गति इतनी मन्द थी कि माता का विश्वास कभी-कभी डगमगाने लगता। किन्तु बालिका ने अपना विश्वास नहीं खोया। उसने अपना प्रयास जारी ही रखा। वह छह वर्ष की आयु में अपने डगमगाते कदमों से बिना सहारा लिए अपने घर का एक चक्कर लगाने में सफल हो गयी। श्रीमती लोंग यह अनुभव कर रही थी कि उनकी बच्ची को समुचित प्रशिक्षण मिले तो वह सब कुछ सीख लेगी। मस्तिष्क से उसके अंगों का जो तारतम्य टूट गया है, उस खाई को वह अभ्यास और उत्कट अभिलाषा, दृढ़ संकल्पों के बल पर पाट लेगी। किन्तु प्रश्न तो यह था कि वह प्रशिक्षण कहाँ से मिले ?

उसकी यह इच्छा दूसरे ही वर्ष पूरी हो गयी। इंग्लैण्ड में मस्तिष्क पक्षाघात से पीड़ित बालकों का पहला स्कूल क्रायाडोन सुर्रे में खुला। स्कूल के सभी अध्यापक कुशल चिकित्सक भी थे। यहीं वेलेरी को भी भर्ती कराया गया।

यहाँ उसे दैनिक क्रियाओं के प्रशिक्षक मिले, जिन्होंने उसकी कामनाओं को मूर्त रूप दिया। कठिन अभ्यास के उपरान्त उसने एक-एक करके खाना-पीना, कपड़े पहनना, चलना, उठना, बैठना आदि काम सीखे। उसके विद्रोही हाथों ने चाकू पकड़ना, कप थामकर होठों तक ले जाना आदि काम सीखे।

आरम्भ में उनकी गति बहुत मन्द थी। उसे अपना एक बटन बन्द करने में पाँच मिनट लगते थे। धीरे-धीरे यह समय कम हुआ। पढ़ने का काम वह बिना शिकायत करती थी। उसके अध्यापक लड़की की इस लगन से बहुत प्रभावित थे।

इस विद्यालय में सात वर्ष तक प्रशिक्षण पाने के बाद वह पहले से अच्छी तरह चल सकती थी, फिर भी उसकी चाल एक लँगड़ाते व्यक्ति की सी ही थी। वह वार्तालाप भी करने लगी थी किन्तु आवाज बेसुरी तथा ग्रामोफोन रिकार्ड सी और मन्द होती थी। उसकी हस्त-लिपि अब पहले से काफी अच्छी हो गयी थी।

चौदहवर्ष की आयु में उसे घर बैठना पसन्द नहीं था। उसके माता-पिता भी यह नहीं चाहते थे। उसे वेलबर्न हाल स्कूल में प्रवेश दिलाया गया। यहाँ शारीरिक रूप से अयोग्य बच्चों को पढ़ाने की व्यवस्था थी। इस विद्यालय के प्रधानाध्यापक हीवेल विलियम ने उसकी लगन देखकर आश्वासन दिया कि वह सामान्य बालकों की ही तरह पढ़-लिख सकेगी। यहाँ उसको घोर संघर्ष करना पड़ा। मस्तिष्क तो विद्रोही था ही। उसे अपनी अन्तःप्रेरणा व आत्म-शक्ति के सहारे आगे बढ़ना था। इस कठिन परीक्षा में वह उत्तीर्ण हुई, १७ वर्ष की आयु में उसने प्राथमिक शिक्षा पूरी कर ली।

इसके बाद उसे केण्ट के प्रायोगिक विद्यालय में पढ़ने भेजा गया। वहाँ भी उसकी अपनी वे आन्तरिक शक्तियाँ उसका मार्गदर्शन करती रहीं तथा एक सामान्य किशोरी की तरह उसने १९ वर्ष की आयु में हायर सेकण्डरी परीक्षा उत्तीर्ण की।

मनुष्य यदि चाहे तो वेलेरी जैसी स्थिति से भी ऊपर उठकर भागती हुई सफलता को पकड़ सकता है। जिन्हें ईश्वर ने स्वस्थ शरीर दिया है, वे सफल नहीं होते तो उनके आत्मविश्वास, कर्मनिष्ठा व पुरुषार्थ की कमी ही कही जायेगी। सेकण्डरी तक शिक्षा पा लेने के बाद इस महत्वाकांक्षिणी असामान्य किशोरी से उसके माता-पिता ने पूछा—"अब क्या आगे पढ़ने का विचार है ? उसने कहा—"हाँ है। मैं बी. ए. तक तो पढ़ना ही चाहती हूँ।"

आगे अध्ययन के लिए उसे डार्ट फोर्ट के नार्थ वेस्ट केन्द्र कालेज ऑफ टेक्नालॉजी में प्रविष्ट किया गया। जब वहाँ के प्रिंसीपल ने उसे प्रवेश पाने की अनुमति दे दी तो उसके माता-पिता फूले न समाये। उन्हें अपनी चिर-संचित अभिलाषा पूरी होती नजर आ रही थी।

कॉलेज का यह अध्ययन उसे बहुत भारी तथा थका देने वाला था। नित्य उसे बस में बैठकर उसके घर से उन्नीस मील दूर कॉलेज जाना पड़ता था। वहाँ वह तेजी से नोट्स नहीं ले पाती थी, अतः वह अपने साथ दो टेप रिकार्डर ले जाती थी। घर आने पर अपनी माता की सहायता से नोट्स तैयार करती थी। अपने इस विद्यार्थी जीवन में वह इस तथ्य को आत्म-सात कर चुकी थी कि प्रत्येक कार्य को स्वयं ही कर सके, ऐसा आवश्यक नहीं, दूसरों से सहायता लेकर भी अपना काम चलाया जा सकता है।

शारीरिक व मानसिक तारतम्य को बहुत कुछ अपने अभ्यास के द्वारा व्यवस्थित कर लेने के बाद भी वह अन्य सामान्य व्यक्तियों की तरह भाग-दौड़ नहीं कर सकती थी। अधिक लोगों के समुदाय में उसकी यह अभ्यासगत उपलब्धि सामान्य स्वाभाविकता से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकती थी, वहाँ वह अन्य लोगों से बेहिचक सहयोग माँग लेती थी। इसे उसने अपनी कमजोरी नहीं वरन एक विशेषता ही माना। इसी बहाने मित्रों-परिचितों की संख्या तो बढ़ेगी। समाज की सारी व्यवस्था भी सहकारिता पर चल रही है।

कॉलेज केण्टीन में वह अपना सामान ला देने के लिए दूसरे छात्रों से अनुरोध करती। वे उसका अनुरोध स्वीकार कर लेते। बाजार में खरीददारी करते समय वह शीघ्रता से पैसे नहीं गिन पाती थी, तो वह दुकानदार को बटुवा थमा देती और उससे वस्तुओं का मूल्य ले लेने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का आग्रह करती। किन्तु उसने अपने जीवनाकाश पर छितरा आये उन मेघों को तो छिन्न-भिन्न करके रख दिया था। उसकी रूठी हुई खुशियाँ लौट आयीं थीं। यह सब उसका अपना पुरुषार्थ ही था।

एक दिन वह भी आया जिसके लिए उसका मन वर्षों से प्यासा था। १२ मई, १९५६ को रॉयल एल्बर्ट हाल में रानी एलिजाबेथ ने १४०० विद्यार्थियों को बेचलर ऑफ आर्ट्स की सम्मानित डिग्री प्रदान की, उनमें एक वह लड़की भी थी जिसके लिए डॉक्टरों ने कह दिया था कि—''इसके जीवन-उपवन में अब कभी बहारें नहीं आ सकेंगी।''

वेलेरी की यह विजय यात्रा यहीं समाप्त नहीं हो गयी। उसके पश्चात् उसने पुस्तकालय विज्ञान में एम. ए. किया। एम. ए. करने के बाद उसे लन्दन ग्रेज्युएट स्कूल ऑफ बिजनेस स्टडीज में पुस्तकालयाध्यक्ष का पद भी मिल गया। उसने अपने परिश्रम तथा आत्मविश्वास के बल पर असम्भव को सम्भव बना दिया था। आत्मनिर्भर व सम्मानित जीवनयापन की उसकी ललक पूरी हुई थी। यह साहस, विश्वास तथा कर्मनिष्ठा की जो कहानी वेलेरी ने रची है, वह समर्थ शरीर वालों को चुनौती देने को पर्याप्त है।

जीवन की चुनौती बनाम— कुमारी जोन्स

ब्रिटेन के एक नगर का व्यस्त मौहल्ला। सारा शहर अर्ध रात्रि की नींद सोया हुआ था। व्यस्त दिनचर्या में थके-भागे नगरवासी बिस्तरों पर पड़े हुए थे। जीवन और जगत की चहल-पहल से दूर, किसी दूसरे लोक में। तभी उस मौहल्ले के एक छोटे से बँगलें में आग लगी और कोई चीख-चिल्लाहट नहीं हुई—कोई शोर-शराबा नहीं हुआ। लगता था उस बँगले में रहने वाले सभी लोग आग में भस्म होने से पूर्व ही प्राण छोड़ चुके हों।

यह भी नहीं था कि बँगले में रहने वाला परिवार आग लगने की दुर्घटना से बेखबर हो। क्योंकि अन्दर अभी भी खटपट सुनाई दे रही थी। जो सिद्ध करती थी कोई इस आग से संघर्ष कर रहा है। मकान मालकिन के कुत्ते का भौंकना और रोना भी सुनाई दे रहा था। उस मकान में परिवार के नाम पर केवल दो ही जीव थे। एक तो उस बंगले की मालिकन और दूसरे उसका प्यारा पालतू कुत्ता।

पास के ही एक बँगले में सुख स्वप्नों भरी नींद ले रहे दम्पत्ति ने फोन की तेज घण्टी सुनी और पति हड़बड़ाकर उठ बैठा। इस आधी रात के वक्त किसे काम पड़ा है और ऐसा क्या जरूरी काम है, जो किसी की नींद का ख्याल किये बिना ही मुझे जगाने की जरूरत आ पड़ी। बड़-बड़ाते हुए परिवार के मुखिया ने फोन का चोगा उठाया और बोला—हैलो।

'देखिए मैं जोन्स बोल रही हूँ'—दूसरी ओर से आवाज आयी—'आपकी पड़ौसन ! मेरे बँगले में आग लगी है कृपया मेरी और मेरे प्यारे फिलपी की रक्षा कीजिए।'

आवाज एकदम शान्त, सहज और निश्चित थी। इस कारण उस व्यक्ति को विश्वास नहीं आया कि जोन्स के बँगले में आग लगी होगी और उसने अपना यह सन्देह व्यक्त भी कर दिया—'क्यों जोन्स आधी रात के वक्त मजाक कर रही हो ? क्या मजाक करने के लिए यही वक्त मिला था। सुबह भी तो मजाक कर सकती थीं।'

'आप मजाक समझ रहे हैं और यहाँ मेरा जीवन खतरे में पड़ा हुआ है। विश्वास न हो तो जरा बाहर निकलकर देखिये'— इस आवाज में थोड़ा आवेग तो था परन्तु चिन्ता और घबराहट का नाममात्र भी नहीं।

पड़ौसी ने बाहर निकलकर देखा। सचमुच जोन्स का निवास आग में झुलस रहा था। तब उसे विश्वास आया और उसने आसपास के लोगों को जगाया। सब पड़ौसी जाग उठे। फिर क्या था ? आग पर शीघ्र ही काबू पा लिया गया। आग की लपटें शान्त हुईं और अन्दर जाने जैसी स्थिति हुई तो लोगों को उस अकल्पित स्थिति का अहसास हुआ, जिसके अनुसार जोन्स की आत्मा शरीर से मुक्ति पा चुकी होगी और वे उस कमरे की ओर घबराये से दौड़े, जहाँ कि जोन्स रात्रि का विश्राम किया करती थी।

कमरे में प्रवेश कर देखा तो जोन्स ईसा के चित्र के सम्मुख बैठी प्रार्थना कर रही थी—'हे प्रभु ! इस दुर्घटना को सहने की मुझे शक्ति दे। मैं कहीं इस दु:सह स्थिति से हार न खा जाऊँ। मुझे संघर्ष करने का बल दे।'

कमरे में प्रवेश करते हुए लोगों ने जब यह शब्द सुने तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि जोन्स प्रभु से क्या माँग रही है। होना तो यह चाहिए था कि वह अपनी रक्षा के लिए प्रभु से प्रार्थना करती। अग्निकाण्ड शान्त होने की कामना करती परन्तु वह तो शक्ति माँग रही है—सहन शक्ति।

प्रवेश करने वाले पड़ौसियों की आहट सुनकर जोन्स पीछे मुड़ी। वह समझ गयी थी कि आग पर काबू पा लिया गया है। इस भयानक विनाशलीला को शान्त करने में पड़ौसियों को सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हुए कहा—'आप लोगों को बड़ा कष्ट हुआ है। मैं आपकी बहुत-बहुत आभारी हूँ। क्योंकि आप लोगों के सहयोग से ही मैं एक बार फिर जीवन संघर्ष में हारती हुई बाजी जीत गयी हूँ।' कृतज्ञता भरी इसी मीठी, विनम्र और मधुर वाणी ने पड़ौसियों की थकान और व्यथा दूर कर दी। परन्तु उनके चेहरे पर विस्मित भाव खेल रहा था उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि जीवन और मौत के इन संघर्षमय क्षणों में जोन्स के चेहरे पर शान्ति-सहजता और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षोभरहित मनःस्थिति कैसे झाँक रही है। विस्मय का एक कारण जोन्स द्वारा प्रार्थना के समय कहे हुए शब्द भी थे। इसलिए उन्होंने पूछा—'जो हुआ सो ठीक। परन्तु आपको हम इतना शान्त, निर्द्वन्द्व और सहज देखकर विस्मित है। प्रभु से आप जो माँग रही थीं वह भी हमें आश्चर्य में ही डाल रहा है।'

'मित्रो ! प्रभु से और माँगा भी क्या जा सकता है। आग बुझाने और मेरी जीवन रक्षा करने के लिये तो आप लोग भी जुटे हुए थे, फिर प्रभु से वही कुछ माँगकर क्यों उसे परेशान करूँ ? फिर ऐसा माँगना उसके गौरव के अनुरूप था भी नहीं। एक सम्राट से दो चार पैसे माँगना क्या कोई बुद्धिमत्ता है इसलिए मैंने शक्ति माँगी जो उसके गौरव के अनुरूप ही है और यही कारण है कि आप मुझे इतना शान्त, निर्द्वन्द्व और सहज देख रहे हैं। '

यह कहकर जोन्स ने अपने पाँवों की ओर देखा जो जड़ और चेतनहीन हुए लटक रहे थे। वर्षों से जोन्स के पैरों की यही दशा थी। परन्तु उन्हें कभी इसका अभाव महसूस नहीं हुआ। वरन् वे तो इस पंगुता को प्रभु का दिव्य वरदान मानती थीं, जिसने उनके भीतर एक ऐसा आत्मविश्वास, आशा-उत्साह और साहस जगा दिया था जो वे पंगु न होने से पूर्व जानना तो दूर सोच भी नहीं सकी थीं कि परिस्थितियाँ एक चुनौती हैं, जो मनुष्य का अशरीरी बल और देह से परे शक्ति को तौलने के लिए आया करती हैं। इस चुनौती को मात्र सुनकर ही कई लोग तो घबड़ा जाते हैं, लड़खड़ा उठते हैं। कई एक शरीर से पहलवान होने के बावजूद भी दो चार थपेड़ों में ही घुटने टेक देते हैं।

लेकिन मनस्वी, आत्मबल सम्पन्न और आशा तथा उत्साह को जीवन ज्योति मानने वाले जन उस चुनौती को स्वीकार करते हैं, संघर्ष करते हैं और अंगहीन होकर भी विजयी हो जाते हैं। परिस्थितियों और आगत अप्रत्याशित परीक्षण की इन घड़ियों का सामना उन्हें जीवन में पहली बार उस समय करना पड़ा था, जब उनकी आयु २४ वर्ष की थी। स्वस्थ, सुन्दर और आकर्षक देहयष्टि की स्वामिनी युवती कुमारी जोन्स को तब हर बार जीवन का एक ही पहलू नजर आता था—स्वर्णिम, सुखद और रसमय। तब उन्हें हर स्वप्न, हर कल्पना-यथार्थ की जीती जागती कविता अनुभव होती थी।

घटना सन् १९४४ की है। द्वितीय-महायुद्ध का समय था। जर्मनी-विमान ब्रिटेन के गाँव-गाँव और नगर-नगर के आकाश में घुसकर दनादन बमबारी किया करते थे। उस दिन मिस जोन्स अपनी सहेलियों के साथ गिरजाघर गई हुई थी। उसी समय जर्मनी विमानों ने नगर पर हमला किया और भीड़भाड़ वाले क्षेत्रों में, बड़े-बड़े भवनों व इमारतों पर, कल-कारखानों और गिरजाओं पर बम फेंके। इसी आक्रमण में कुछ बम उस चर्च पर भी पड़े और चर्च की इमारत ध्वस्त हो गयी। सहस्रों लोगों की आस्था और विश्वास का केन्द्र क्षण भर में खण्डहर हो गया और प्रार्थना करने वाले सभी आस्तिक जन उस मलवे में दब गये।

आक्रमण का खतरा जब टल गया तो लोगों ने मलवे में दबे हुए शव निकाले। मिस जोन्स को धीरे-धीरे होश आया। चोटें गहरी लगी हुई थीं। लम्बे उपचारों के बाद भी वे स्वस्थ नहीं हुईं। उनके पाँव बेकार हो चुके थे। तीन वर्षों तक वे बड़े-बड़े डॉक्टरों और विशेषज्ञों के पास गयीं परन्तु एक ही जवाब मिलता कि वे अब चल नहीं सकेंगी। युवा-हृदय में क्षण भर निराशा की कालिमा व्यापती और फिर आशा का दीप जल उठता। इसी प्रकार भागादौड़ी करते रहने पर उनसे एक बार किसी डाक्टर ने कहा—'आपको ईश्वर का शुक्र अदा करना चाहिए कि आप जिन्दा हैं। अन्यथा कोई और व्यक्ति होता तो इस दशा में दम तोड़ देता।'

कहने वाले ने यह बात यूँ ही कह दी थी परन्तु यह वाक्य उनका जीवन-दीप बन गया और वे सोचने लगीं—'क्या हुआ पाँव ही तो नहीं हैं। शेष सभी अंग तो यथावत् हैं। जिन्दगी जीने के लिए यह क्या अपर्याप्त है।'

और वे अपने माता-पिता के पास आकर रहने लगीं। वे शिक्षिता थीं, सेना में भी रह चुकी थीं। जीवन की हर मुसीबत को उन्होंने हँसकर झेलने का सबक सीखा था। कुछ दिनों तक तो उन्हें दूसरों के आश्रित ही रहना पड़ा। यह जीवन उनके लिए असह्य होने लगा और वे अपने व्यक्तित्व का स्वतन्त्र और समर्थ अस्तित्व समझने लगीं। परिवार के लोग भी उन्हें अपने ऊपर भार समझ रहे थे। उनकी आँखों में बदल आये भाव वे पढ़ चुकी थीं। इसलिए उन्होंने एक दिन अपने सम्बन्ध में दृढ़ निर्णय कर लिया और परिजनों से कहा—मैं अलग रहूँगी।'

परिवार वालों को तो इससे शायद कोई फर्क नहीं पड़ता था। इसलिए उन्होंने यथावत् जोन्स के निर्णय को स्वीकार कर लिया। अलग जीवन-निर्वाह के लिए उन्हें सैनिक सहायता कोष से मदद मिल गयी। इस सहायता के अनुसार उन्हें जमीन, मकान और निर्वाह के लिए धन मिला। आवास-सुविधा के साथ यह शर्त जुड़ी हुई थी उन्हें कि वे इस जायदाद पर जीते जी ही मालिक रह सकेंगी। मरने के बाद पुनः वह जायदाद सरकार की हो जायेगी।

मिस जोन्स ने एक छोटे से बँगले का नक्शा तैयार कराया और उसे बनवाया। उसी बँगले में वे अपने एक कुत्ते के साथ रहने लगीं। उनका अधिकांश समय बहुत व्यस्त व्यतीत होने लगा। जीविका और निर्वाह सम्बन्धी चिंता इतनी नहीं रही, जितनी कि समाज-सेवा और लोक-कल्याण की। वे देश की भावी पीढ़ी के निर्माण में संलग्न रहने लगीं। स्वयं उनके व्यक्तिगत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जीवन में भले ही उन्हें इतनी रुचि नहीं रही हो कि इसके लिए ही उन्हें अपना पूरा समय लगाना पड़े। उनकी रुचि तो अब समाज सेवा थी।

पहले से ही उन्हें बच्चों से बहुत प्यार था। व्यक्तिगत जीवन जब इतना आकर्षक नहीं रहा तो उनका सारा लगाव और रुझान ही इस दिशा में केन्द्रित हो गया। वे हर रविवार को स्कूल के बच्चों को अपने यहाँ आमन्त्रित करती हैं, उनके साथ हँसती है, बोलती हैं, खेलती हैं और उनका तथा अपना मनोरंजन करती रहती हैं। अक्सर उनके घर पर दावत और पार्टियों का आयोजन होता रहता है। जिसमें अधिकांशत: बच्चे ही सम्मिलित होते हैं। यही नहीं बालकों के चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व के गठन में भी उनकी अगाध रुचि है। इसलिए कई शिक्षण-संस्थाओं को उनका सहयोग प्राप्त है, दशाधिक स्कूलों की प्रबन्ध-समिति में भी वे हैं।

इण्टरनेशनल हाउस ऑफ वेल्स—जहाँ देश-विदेश के छात्र रहते हैं वे देखी जाने लगीं। अन्तर्राष्ट्रीय-सौहार्द्रता और विश्व-बन्धुत्व का प्रचार करने के लिए उनके प्रयासों से दो एक बार फ्रेन्डस् ऑफ इण्टरनेशनल हाउस संगठन के ऐसे समारोह-सम्मेलन भी सम्पन्न करवाये, जिनका उद्देश्य विभिन्न देशों के छात्रों को निकट लाना था। उस सम्मेलन में मिस जोन्स पहियों वाली कुर्सी पर बैठ इधर-उधर दौड़ती रहीं। छात्रों को जब यह पता चला कि यह कोई छात्रा नहीं वरन् एक ऐसी अपंग महिला है, जिसकी अपनी कोई व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा नहीं है वरन् लोगों में जीवन के प्रति आशावान दृष्टिकोण उपजाना ही उनका लक्ष्य है, तो वे अनायास ही मिस जोन्स के सम्मुख श्रद्धा से नतमस्तक हो गये।

अपंग होते हुए भी जीवन को उसकी पूर्णता और सघनता में जीने का एक अद्भुत आनन्द है—इस आस्था ने उन्हें सेवा-कार्यों में व्यस्त रहने के साथ-साथ घरेलू कामों में भी दिलचस्पी लेने के लिए प्रेरित किया। नये आवासगृह में आने के बाद उन्होंने घर का हर छोटा बड़ा काम अपने हाथों से किया। बाजार में जाने से लेकर खाना बनाने, आगन्तुक, अतिथियों का स्वागत करने और घर की सफाई करने तक हर काम उन्होंने अपने हाथ से किया। यही नहीं बागवानी में भी रुचि ली।

शरीर से असमर्थ होने के बावजूद भी जीवन के प्रति इतनी रुचि रखने का कारण पूछने पर उन्होंने बताया कि—"मैंने अपना जीवन एक चुनौती माना है, इसलिए हर क्षण अपने प्रति आशा और विश्वास से भरी रहती हूँ। मैं सदैव नयी बातें सीखने के लिए उत्सुक हूँ। प्रभु के विश्वास ने मुझे वह शक्ति प्रदान की है कि मुझे इस चुनौती का सामना करने में कोई रुकावट नहीं आती। एक और दिलचस्प तथा आश्चर्य भरा तथ्य है उनके सम्बन्ध में कि वे अपनी कुर्सी पर जिसमें एक बैटरी फिट है कई बार १३० मील दूर लन्दन भी हो आयी हैं।

एडिथ बोन—सात वर्ष का एकांत कारावास भी जिसे निराश न कर सका

मनुष्य परिस्थितियों का दास कभी नहीं रहा यदि रहा हो तो आज वह अन्य प्राणियों की तरह आदिम पशुवत् जीवन ही जी रहा होता किन्तु उसने तो स्वामित्व सीखा है दासत्व नहीं। वह तो परिस्थितियों की सरिता के उल्टे प्रवाह में भी मछली की सी सामर्थ्य से हाथ-पाँव मारकर आगे बढ़ने की क्षमता रखता है। एडिथ बोन नामक महिला की कहानी उसकी इस अदम्य जिजीविषा और आशावाद की एक अनौखी मिसाल प्रस्तुत करती है।

दिसम्बर १९५० में इस इकसठ वर्षीय ब्रिटिश-महिला को हंगरी सरकार की गुप्तचर पुलिस ने ब्रिटिश गुप्तचर समझकर बुडापेस्ट में एकान्त कारावास दिया।

लोग कहा करते हैं अकेला और अपराधी बराबर होता है। सामान्य मन:स्थिति के व्यक्ति के लिए यह बात ठीक हो भी सकती है कि अकेलापन मनुष्य को पानी से निकाल ली गयी मछली की सी दयनीय स्थिति में डाल देता है। इस विषम स्थिति को कोई भुक्त-भोगी ही जान सकता है। कहने और सुनने की यह सुविधा ही सम्भवत: मनुष्य के जीवन में इसकी अनुभूति कराती है और पीड़ा व निराशा के दुखद क्षणों में सहारा देकर टूटने नहीं देती। अकेला आदमी स्वर्ग जैसे नन्दन-कानन में विहार करते हुए भी आनन्द नहीं पा सकेगा; यदि उसके आनन्द की अनुभूति की अभिव्यक्ति वह किसी पर कर न सके। किन्तु इस आशावादी महिला ने इन सामान्य सत्यों को भी झुठला दिया।

उसे जिस कोठरी में कैद किया गया वह आज की जेलों जैसी नहीं वरन् मध्ययुगीन काल कोठरियों जैसी थी। यह काल कोठरी ही अब उसका संसार था। इसका फर्श गन्दा व कच्चा था, जिस पर तिलचट्टे रेंगा करते थे। कोठरी अंधेरी व सीलन भरी थी, यह दस फुट लम्बी व दस फुट चौड़ी थी। सम्भवत: यह दो व्यक्तियों के लिये थी किन्तु उन्हें एकान्तवास भोगना था अत: उसे अकेली ही रखा गया। भूमि तल में होने के कारण इसके ऊपर से धमधम की आवाज होती रहती थी। छत पर मकड़ी के जालों की बन्दनवार लटक रही थी और दीवारों पर कुकुरमुत्ते उग आये थे। दीवारों से पानी टपकता रहता था जो शीतकाल में बर्फ बनकर जम जाया करता था। इस काल कोठरी में उनके बिस्तर एक चटाई व एक भारी कम्बल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। सुबह-शाम शौचादि के लिये उसे पास के शौचालय में ले जाया जाता था। वहाँ भी एक गार्ड के अतिरिक्त किसी दूसरे मनुष्य को चेहरा नहीं दिखाई पड़ता था। बाकी चौबीस घण्टे उसे इसी कोठरी में रहना था।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हंगरी की गुप्तचर पुलिस सोचती थी कि यह महिला इस कोठरी में रहने पर अपना भेद देगी पर वह जासूस थी ही नहीं तो झूठ-मूठ ही कैसे स्वीकार कर लेती। वे सोचते थे कि यदि अपना भेद नहीं खोला तो वह इस एकाकीपन से ऊबकर पागल हो जायेगी।

एडिथ को भी कुछ दिनों तो ऐसा लगा कि वह निश्चय ही या तो पागल हो जायेंगी या अपने पर झूँठा आरोप स्वीकार कर लेंगी। किन्तु थोड़े ही दिनों में उसने इस विकट परिस्थिति से संघर्ष करने जितना धैर्य जुटा लिया। इन दिनों उसे अपना एक साथी मिल गया। वह था अपना मस्तिष्क। फिर थोड़े ही दिनों बाद उसे एक साथी और मिल गया, वह था उसका अन्तःकरण।

अपने आप में ही स्थित अपने इन साथियों का परिचय पाकर वह बहुत हर्षित हुई। इसने अपने विगत जीवन की स्मृतियों को दोहराना आरम्भ किया। आज तक वह भागती रही थी। उसके जीवन में कोई विश्राम नहीं था, क्षण भर रुककर अपनी उपलब्धियों व भूलों पर चिन्तन कर सके।

उसने आज तक बाहरी दुनिया तो घूम-घूमकर देखी थी पर अपने भीतर झाँकने का कभी अवसर ही नहीं मिला था। अपने किन गुणों की किन प्रतिभाओं का विकास वह कर सकती थी, पर उसने नहीं किया। किन गल्तियों व भूलों को वह टाल सकती थी पर उसने टालने का प्रयास नहीं किया, कितने परोपकार के काम उसके सम्मुख आये थे, जिन्हें वह कर सकती थी पर जीवन की गतिशीलता के आगे उसने उन क्षणों को महत्त्व ही नहीं दिया था। आज वे सब उसके स्मृति-पट पर चल-चित्र के दृश्यों की तरह उभर रहे थे।

अब उसके मनःजगत में उसके लिए कितने ही नये काम निकल आये थे। कितनी ही कविताएँ जिन्हें वह भूल ही चुकी थी उनकी कुछ पक्तियाँ भर याद रही थीं। उन्हें उसने स्मृति के सहारे कण्ठस्थ कर ली थीं। उनका अन्य भाषाओं में मन ही मन अनुवाद भी कर लिया था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि आज तक जिन कविताओं को वह ठीक से याद भी नहीं कर सकी थीं वे उसके मस्तिष्क के किस कोने में दबी पड़ी थीं।

इस एकान्तवास ने उसकी स्मरण शक्ति को आश्चर्यजनक रूप से बढ़ा दिया था। यही नहीं वह अब स्वयं भी कविता करने लगी थी। उसकी अपनी कविताएँ उसे कण्ठस्थ हो गयी थीं, उनके भावों में खोकर वह जगत के साथ अपना रिश्ता जोड़ लेती थी। उसका शरीर इस काल कोठरी में कैद था। किन्तु मन तो उन्मुक्त विहार कर रहा था, विश्व के उन सुन्दर, रमणीक स्थलों में जहाँ वह कभी गयी थी। अब स्मृति के सहारे पुनः वह उन क्षणों को पकड़ रही थी। उसके भीतर अब एक कवि व लेखक जन्म ले रहा था।

चौदह महीने बाद उसे इस कोठरी से हटाकर दूसरी कोठरी में रखा गया, जो इससे भी छोटी व अँधेरी थी किन्तु इसकी हालत इस कोठरी की तुलना में ताजमहल जैसी थी। क्योंकि वह पहली मंजिल पर थी और उसकी दीवारें व फर्श पक्की थी। बाद में उसमें कम वाल्टेज का बल्ब भी लग गया था, जो केवल भोजन के समय जलाया जाता था। बाकी तो वही एकान्त और वे परिस्थितियाँ थीं। यहाँ वह फर्श पर चहलकदमी कर सकती थी। अब वह अपनी स्मृति के साथ चहल कदमी को जोड़कर मनःजगत के साथ अपनी शारीरिक क्रियाओं की भी जोड़ सकने में समर्थ हुई। यहाँ भी उसका वही आत्मचिन्तन व सोयी प्रतिभाओं का विकास क्रम चलता रहा। मई १९५४ को उसे इस कोठरी से हटाकर बुडापेस्ट की जेल में रखा गया, जहाँ उसे पढ़ने-लिखने की सुविधाएँ भी उपलब्ध थीं।

अब उसने अपनी स्मृतियों को लेखनी के सहारे कागज पर उतारना आरम्भ किया। उसके इस एकान्तवास ने उसकी प्रसुप्त प्रतिभाओं को जगा दिया था। वह एक अच्छी लेखिका बन गयी। यहाँ जेल में उसने कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें पढ़ीं, कई नवीन-भाषा-व्याकरण के सहारे सीख लीं। यही नहीं उसने जेल पुस्तकालय की पुस्तकों की जिल्दें चढ़ाकर उनकी आयु बढ़ा दी।

१९५६ में जब उसे जेल से छोड़ा गया तो वह ६७ वर्ष की हो चुकी थी। वह जब बाहर निकली तो पहले से अधिक प्रतिभासम्पन्न, विवेकशील व सेवाभावी बनकर निकली। उसने अपने भावी जीवन में व्यक्तिगत प्रगति के साथ-साथ समाज को भी पर्याप्त अनुदान दिया। सच है आशा और धैर्य के सहारे मनुष्य मृत्यु के मुख में जाने जैसी परिस्थितियों में भी नव-जीवन पा सकता है।

अपंगों की मसीहा—सारा फुलर

नर्सिंग-होम के अहाते में प्रवेश करते हुए उसका मन भूले-बिसरे अतीत की भटकी यादों को बटोरने में लगा था। विद्यालय जीवन में कितनी घनिष्ठता थी उन दोनों में। थी भी तो कुछ ऐसी ही वह। हर एक उसका अपना था। हर एक उसे अपना कहने में गर्वित होता था, छात्र से लेकर शिक्षक तक, सभी। स्वस्थ-सुपुष्ट शरीर, गोल भरा चेहरा, कुछ बोलने को आतुर लगते होंठ, गहरी नीली झील-सी आँखें जिनकी गहराई अनन्त में समाती लगती थीं। जैसी दीप्ति, देह वैसा ही मधुर कंठ विद्यालय में होने वाली संगीत प्रतियोगिताओं में उसे एक भी ऐसा मौका याद नहीं जब उसकी इस सहेली ने पहला इनाम न पाया हो। बात संगीत की हो या कला की। जादू हाथों का हो या मस्तिष्क का हर कहीं वह अव्वल थी। आज वही प्रतिभा .....।

बड़ा चौड़ा फासला है तब और अब में। इन पाँच सालों में इसे समेटने की जगह फैलाया ही है। अन्तर की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

खाई कहीं अधिक गहरी है। उसके पाँव धरती पर थे मन अतीत के आकाश में मंडराता यादों की बदलियों से लुका-छिपी खेलने में तन्मय था। अजब है मानव मन अतीत का अद्भुत प्रेमी। इसकी हर दशा में उसे गौरव का आभास होता है। सुखभरी सफलताएँ जहाँ उसमें पुरुषार्थ की अकड़ जमाती हैं, वहीं अवसाद भरी विफलताएँ जीवट भरे संघर्ष का अहसास कराती हैं।

"आप को किससे मिलना है ?" दूधिया परिधान में लिपटी नर्स के इन शब्दों ने उसे अतीत के आकाश से वर्तमान की धरती पर उतार दिया। वर्तमान जो हर पल चाहे-अनचाहे रूप से अपने साथ रहता है, उससे हम कतराना चाहते हैं। जबकि पल-पल दूर खिसकते जा रहे अतीत को प्रतिक्षण अपना रंग बदलते भविष्य को गले लिपटाने के लिए आतुर हैं। शायद उसने कुछ ऐसा ही सोचते हुए उत्तर दिया 'मिस सारा फुलर' से। धीमे से कहे गए इन शब्दों ने नर्स के अस्तित्व को कहीं तीव्र उद्वेलन किया। हल्के से बुदबुदाई वह सारा फुलर। पूछने वाली युवती ने भी इस नाम से दुहराया।

पता नहीं क्या जादू था इस नाम में ? हल्के से स्मित के साथ उसने पीछे आने का इशारा किया। कमरे में प्रवेश करती हुई बोली "मिस सारा देखिए किसे ले आई हूँ ?" नर्स के पीछे खड़ी एलीनेर विस्मय-विमूढ़ देखती रह गई अपनी सहेली को। ईजी चेयर पर बैठी सारा ने अपने आस-पास ब्रश-रंग बिखेर रखे थे। शायद कोई चित्र तैयार करने में जुटी थी। बड़ी नरमी से उसका हाथ पकड़े एलीनेर ने अपना परिचय दिया। सारा की आँखें चमक उठीं "अरे एली तू ! कितनी बदल गई है, कहाँ थी इतने दिन !" ऐलीनेर मुस्कराई, कई दिनों की पुरजोर कोशिशों के बाद गढ़ा गया भाषण, आश्वासन, सांत्वना और विधि-निषेध के महल की सारी ईंटें एक साथ भरभराकर गिर पड़ीं। उस पीले मुख पर खिंची क्षीण हास्य रेखा ने उसे पूरी तरह हरा दिया, उसका दर्प चकनाचूर हो बिखर गया।

उसे याद हो आयी विगत सप्ताह उन दोनों की सहेली इवा से मुलाकात। इवा आगे पढ़ते हुए चिकित्सक बन गयी थी। दोनों की बातचीत के क्रम में सारा आ टपकी थी और इवा ने बताया था "पता नहीं, किस मिट्टी की बनी है वह। पूरे पाँच साल हो गए भुगतते ? तू सुन ही चुकी होगी, उसकी लम्बी बीमारी की खबर। अपार धैर्य है उसमें, कभी शिकायत नहीं, कभी उदासी नहीं।" एलीनेर पूछने लगी "करती क्या है दिन भर ?" इवा ने बताया भई ! उसका तो जवाब नहीं। कहती है, समय कम पड़ता है। क्या कुछ नहीं करती, क्या कुछ नहीं सीखती, दिन भर चित्र भी बनाती रहती है व अब तो आजकल नया शौक चढ़ा है, किसी पुस्तक के डिजाइन देखकर रद्दी चीजों के खिलौने बनाती है। खिलौने ऐसे कि बच्चे देखते ही मचल उठते हैं। पिता ने तरह-तरह के खेल-खेलने का मन बहलाने का सरंजाम जुटा रखा है, वह कहती है मुझे दम मारने की फुरसत नहीं।" इस अनौखी बीमार की कहानी ऐलीनेर को हैरान कर रही थी। हैरानी बढ़ने के साथ आकर्षण बढ़ता जा रहा था। वही हैरानी उसे सारा के पास लायी थी। जो सालों से बीमार है। जिसकी बाईं आँख की ज्योति लगभग बुझ चुकी है। एक हाथ लगभग बेकार दशा में है। रीढ़ की हड्डी का असहनीय दर्द। पैरों से तो एक तरह से अपंग ही है, अब शायद ही ठीक हो, जिसकी जीवन ज्योति किसी भी पल बुझ सकती है उसकी अनन्त कर्मनिष्ठा, अपूर्व उत्साह, अनन्त धैर्य किसे हैरत में न डाल देगा ? मुलाकातें होती रहीं, हर मुलाकात में एक नया रहस्य उद्घाटित होता।

आज सीढ़ियाँ चढ़ते उसके पाँव हठात् थम गए। सिर नीचा किये सैमक्लीमेन्स उतर रहे थे। साहित्य-जगत में 'मार्कट्वेन' के नाम से विख्यात इस विभूति को देख सकना सहज था। उसे देखकर जबरन मुस्कान लाने की कोशिश करते हुए बोले "कब आयी, ऐलीनेर तुम ?" "बस दस दिन पहले" अभिवादन करते हुए कहा "सर ! आपका स्वास्थ्य तो ....." क्षीण हँसी के साथ बोले "ऐसा होता तो बुरा क्या था। मैं सारा को साहित्य का ज्ञान देने जाता हूँ और स्वयं कितना कुछ ज्ञान प्राप्त करता हूँ। बाइस वर्ष की उस नवयुवती के शरीर को दिन-रात गलते देखता हूँ और उसके उत्साह, जिजीविषा देखकर हैरान होता हूँ। वह कहती है उत्साह जीवन का द्वार है। जाओ तुम भी सीखो। भगवान ने उसे हम सब को जीवन का रहस्य सिखाने के लिए भेजा है।"

अन्दर जाने पर उसने सुना, सारा मजे से 'गोटन मार्गन माइन गोट' दुहराए जा रही है। लगता है फिर कुछ नया बुदबुदाते हुए उसने कदम बढ़ाए। पाँव की आहट भाँपकर पीछे मुड़ते हुए चहक पड़ी "अरे ऐली दो दिन कहाँ रहीं ?" फिर अपने से ही बोली "समय नहीं मिला होगा। तेरे जैसी व्यस्त नहीं हूँ मैं" एलीनेर बोली—"पर तुमने यह क्या बक-झक लगा रखी है। अब क्या सीख रही हो ?"

"बकझक नहीं, जर्मन सीख रही हूँ। कुछ ही दिनों में शॉपनहावर पालडायसन के विचारों का जायका लेने लगूँगी। बस पूछो न।" मुख मुद्रा से ऐसा लग रहा था जैसे सचमुच में जायका ले रही हो। वह आँखें फाड़े कभी सहपाठिनी रह चुकी इस युवती को देखे जा रही थी। भले अनुकूल परिस्थितियाँ रहने के कारण उसने ज्यादा डिग्रियाँ पाली हों और सारा अपनी बीमारी के कारण यह निरर्थक बोझ न बटोर पाई हो। पर जीवन विद्या के क्षेत्र में सारा कोसों आगे थी ..... कोसों।

"ऐसे घूर-घूरकर क्या देख रही है ? बैठ।" हँसते हुए सारा कह उठी। "ऐसी स्थिति में भी तू जीवन" गहरी उसाँस में आधा वाक्य खो गया। आशय को परखकर वह भी गम्भीर हो कहने लगी "देख एली !

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोग बड़ी भूल करते हैं कि शरीर को जीवन समझ बैठते हैं। यह तो यंत्र है, निरी मशीन, यदि चालक कुशल हो तो अनगढ़ यंत्र से भी काम चला लेता है। असली चीज तो उत्साह है उत्साह ! समझी, अस्तित्व की अभिव्यक्ति का महाद्वार।'' वह सुन रही थी, अपनी सहेली की इस अनुभूति को ''अनुभूति ही तो सच्चा ज्ञान है। अनुभवरहित जानकारियाँ तो बोझा हैं, जिन्हें लादने वाला भारवाहक बनकर रह जाता है। आनन्द से भरा पूरा अस्तित्व तो प्रतिपल द्वार खटखटा रहा है, खोलो हम प्रकट होना चाहते हैं। दरवाजा हमीं बन्द करके बैठे हैं। सच कहती हूँ एली ! जहाँ उत्साह है वहीं यथार्थ कर्मनिष्ठा है, वहीं जीवन है, वहीं सौन्दर्य है, वहीं सब कुछ है फिर शरीर कैसा भी क्यों न हो।'' ऐलीनेर को अनुभव हो रहा था कि सारा की वाणी अक्षर-अक्षर को गूँथकर बनाए गए शब्द, शब्द-शब्द को गूँथ पिरोकर बनाये गए वाक्य भर नहीं हैं वरन् कुछ ऐसा है जो सोचने के लिए विवश कर रहे हैं।

सारा अपने पूरे उत्साह में थी। लगता था इन क्षणों में उसने बीमारी को कोने में रख दिया है। वह कह रही थी ''साहित्य, कला, दर्शन, धर्म, विज्ञान इस संसार में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है सब अन्दर से उपजे उत्साह-उल्लास का वरदान है। यह सब इसी से पनपा इसी में बढ़ा और विकसित हो रहा है। मेरा तो कहना यही है कि हर कीमत पर उत्साह बरकरार रखो, क्षण-क्षण जीवन का आनन्द लो। अस्तित्व के महान सौन्दर्य को प्रकट करो।'' कहते-कहते वह कराह उठी, शायद रीढ़ का दर्द फिर उभर उठा था। हल्की सी सिसकारी के साथ वह पलँग पर लेट गई।

उसकी बातों को सुन रही एलीनेर उसके धैर्य को सराहती हुई बोली, मुझे विश्वास है सारा एक दिन यह बीमारी जरूर तुझसे हारेगी और एक दिन यह सत्य घटित हुआ, बीमारी को हारना पड़ा। भले ही इस लड़ाई में सारा को शरीर के कुछ अंग की सामर्थ्य गँवानी पड़ी। ठीक होते ही उसने वोस्टन में एक स्कूल खोला। अपंगों के लिए खोले गए इसी स्कूल में सुप्रसिद्ध हेलन केलर का शिक्षण हुआ था, उनकी निर्मात्री थी यही सारा फुलर जिनके समूचे जीवन से प्रतिपल यही संदेश झरता था। ''उत्साह, आनन्द परिपूरित अस्तित्व की अभिव्यक्ति का द्वार है, इसे किसी कीमत पर बन्द मत होने देना।''

पैट्रा क्रास—जिसने अपनी जीवन दिशा बदली

जर्मन टेलिवजन केन्द्र पर जैसे ही एक मधुर आवाज में यह कहा जाता है कि 'देवियो एवं सज्जनो ! यह जर्मन टेलिविजन केन्द्र है' हजारों की संख्या में बालक, वृद्ध तथा नर-नारी एकत्रित हो जाते हैं। ये मधुर आवाज है कु. पैट्रा क्रास की, जो वहाँ पर एक प्रसारिका है। सैकड़ों पत्रों द्वारा यह माँग की जाती है कि हमें पैट्रा क्रास का कार्यक्रम दिखाया जाय। जी हाँ इतनी लोकप्रिय है यह २६-२७ वर्ष की लड़की।

लेकिन, आप सोचेंगे कि या तो ये बहुत ही रूपवती होगीं या फिर बहुत ही 'एक्टिव' या पता नहीं क्या जो इतनी-सी आयु में इतनी ख्याति तथा लोकप्रियता अर्जित कर ली है।

पर जब आप जानेंगे कि कुमारी पैट्रा के दोनों पैर टूटे हैं—रीढ़ की हड्डी टूटी है तथा पक्षाघात की शिकार हो चुकी हैं वे, तो आपको बहुत आश्चर्य होगा। फिर क्या कारण हो सकता है—सहज ही प्रश्न उठता है। उनकी इस सर्वप्रियता का एकमात्र कारण है, उनके चेहरे पर सदा खेलती रहने वाली मधुर मुस्कान—करुणार्द्र, मीठा-कण्ठ-स्वर तथा अनंत-स्नेह से सिक्त भाव-भंगिमाएँ।

पर यदि आप इनकी पहले की जीवन कथा पढ़ेंगे तो इसके एकदम विपरीत ही पायेंगे। ये बचपन से ही अत्यंत भावुक थीं। कल्पना-लोक में विचरण करना इन्हें अत्यन्त प्रिय था। वय के बढ़ने के साथ-साथ भावुकता भी बढ़ती गई और जब उसका नियन्त्रण कठिन हो गया तो जीवन में एक विषाद सा घुल गया। एक अज्ञात अभाव ने जीवन को समेट लिया। अपना संसार ऐसे लोक में विनिर्मित कर लिया, जिसका अस्तित्व स्वप्नलोक में ही सम्भव था।

उन्हें पुस्तकें पढ़ने का शौक लगा जो यहाँ तक बढ़ा कि उन्होंने स्वयं पुस्तकों की दुकान कर ली। किन्तु पढ़ती वे ऐसी ही पुस्तकें थीं जो उस भावुकता को और भी बढ़ावा देने वाली होती थीं। अन्यमनस्कता तथा विषादपूर्ण मानसिक स्थिति में वे एक दिन दुकान से लौट रहीं थीं कि सड़क पर भयानक दुर्घटना की शिकार हुईं और उनकी रीढ़ की हड्डी टूट गई और दुर्भाग्यवश कुछ ही दिनों में उन पर पक्षाघात का भी आक्रमण हो गया। पहले ही जीवन भारस्वरूप लगता था। अब तो निराशा ने इतना आ घेरा कि उन्हें अपना जीवन ही निरर्थक प्रतीत होने लगा।

माता-पिता ने रुपया पानी की तरह बहाया और किसी प्रकार पुत्री के प्राण बचा लिये। अच्छे डाक्टर तथा उचित चिकित्सा से वे अच्छी तो हो गईं। किन्तु मन की नैया जो अवसाद के, निराशा के, उद्विग्नता के गहरे सागर में डूब चुकी थी—उसे ऊपर न निकाला जा सका।

एक विकलांगना को भला-जीवन के सुखों के प्रति आशाएँ कैसे रह सकती हैं ? कौन पुरुष उससे विवाह करके श्रेय-सौभाग्य प्राप्त करने का साहस करता। न कोई उसका प्रेमी था, न प्रेम पात्र। जीवन के उषाकाल से ही जो एक अनजाना अभाव तथा एक अव्यक्त वेदना उसके सहचर बने तो फिर बने ही रहे। साहचर्य बढ़ता ही गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

५.१४ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

जब वह इस अपंग स्थिति से एक दिन बिल्कुल ही ऊब गई तो सुबह पता नहीं किस भावातिरेक में अपनी चारपाई से उठी और चौथी मंजिल से नीचे कूद पड़ी।

मरती तो क्या ? अभी और भी न जाने क्या-क्या सहन करना तथा देखना था उसे, हाँ दोनों पैर अवश्य गँवा बैठी अपने। अब तो जीवन और भी लाचार तथा पराधीन हो गया।

किसी कवि का कथन है—"दर्द का हद से गुजरना है, दवा हो जाना" और यह उक्ति इस समय पैट्रा क्रास के जीवन में पूरी तरह चरितार्थ हुई, एक दिन उसने खूब गहरे-गहरे सोचा, जीवन के प्रति, अपने दृष्टिकोण के बारे में गत वर्षों की एक-एक घटना तथा एक-एक बारीक से बारीक गतिविधि के ऊपर घण्टों विचार किया। अपनी असीम भावुकता के ऊपर विहंगम दृष्टि डाली और अपने जीवन में घुल गये विषाद तथा निराशा को निरखा-परखा।

कड़े मानसिक-संघर्ष के पश्चात् उसने पाया कि मैं अभी तक कल्पना के पंख लगाकर स्वप्नलोक में ही उड़ती रही हूँ। अब मुझे धरती के कठोर धरातल पर उतरकर अपनी विचारधारा का परिष्कार करना चाहिए। साहस तथा आशा से परिपूर्ण जीवन जीना चाहिये। माँगने से तो मौत भी नहीं मिली—तो शायद नियति की इच्छा मेरे जीवन को किसी अच्छे उपयोग में लाने की है।

उस दिन का उसका मानस-मंथन ऐसा सार्थक हुआ कि सुख तथा संतोष का वह नवनीत जिसे वह आज तक ढूँढ़ती रही थी—अनायास ही मिल गया। अब उसने पिछली सारी मान्यताओं को केंचुली की तरह उतार फेंका और एक नई आशा, एक नई चेतना लेकर जीना आरम्भ किया।

पैरों के बेकार हो जाने पर पहियों वाली कुर्सी से काम चलने लगा। कुछ दिन में ठीक हो गई तो काम की भी खोज प्रारम्भ कर दी। अब जिससे भी मिलती—मधुर मुस्कान के साथ। गत जीवन की सारी कटुता एक माधुर्य में परिणत कर दी। वे एकाकीपन के गहरे आंतरिक अधंकार से निकलीं और अनेकता के विस्तृत-विराट्-प्रकाश में विलीन हो गईं।

संघर्षों, प्रयत्नों की उमस जहाँ हो, वहाँ भला सफलता की फुहारें आने से कैसे रुक सकती हैं। उन्हें टेलिविजन-केन्द्र पर प्रसारिका का काम मिल गया और वे उसे करने लगीं। उनके चेहरे पर अब एक आकर्षक मुस्कान सदैव खेलती रहती है। वाणी में बसी अतुल आर्द्रता हठात् सुनने वाले का हृदय अपनी ओर खींच लेती है और बच्चों के कार्यक्रम तो वे इतनी आत्मीयता के साथ प्रसारित करती हैं कि बच्चे हमेशा उन्हीं के कार्यक्रमों की माँग करते हैं।

व्यष्टि के सीमित घेरे से निकलकर समष्टि में लय हो जाने का आनन्द कुछ ऐसा ही होता है। तब जीवन में उतना ही अन्तर आ जाता है, जितना कुएँ तथा प्रवाहमान सरिता में।

पैट्रा क्रास ने जिस प्रकार अपने जीवन को सही दिशा देकर अनेक के लिये उपयोगी बना लिया, उसी प्रकार जीवन के प्रति निराश अन्य जन भी अपने जीवन को बना सकते हैं। बात बस इतनी भर है कि अपने चिन्तन को मोड़कर सही दिशा में कर लिया जाये और फिर निरन्तर अपनी पूरी शक्ति के साथ उसी सही दिशा में बढ़ते रहा जाये।

ओलम्पिक विजेता अपंग बाला— विस्मा

टेनेसी (अमेरिका) का एक मध्यवर्गीय सात सदस्यों का परिवार। सबसे छोटी सदस्या चार वर्षीया बेटी विस्मा को डबल निमोनिया हो गया। माता-पिता की आर्थिक स्थिति कोई खास अच्छी नहीं थी, फिर भी किसी न किसी प्रकार इलाज का प्रबन्ध जुटाया। उपचार के योग्य पैसा इकट्ठा तो कर लिया परन्तु नजदीक कोई अस्पताल नहीं था।

तथी दूसरी विपत्ति भी आई। विस्मा को स्कारलेट फीवर भी हो गया। चार वर्ष की अबोध-बालिका जिसने कुछ ही महीनों पहले चलना-दौड़ना सीखा था- इन दो भयंकर रोगों की दोहरी मार से पंगु हो गई। उसकी एक टाँग बेकार हो गई। पास-पड़ौसियों ने कितनी भी परेशानियाँ उठानी पड़े परन्तु विस्मा को बचाने की सलाह दी। माँ-बाप को भी अपनी सन्तान प्राणों से प्यारी लगती है। पिता तो काम पर चले जाते। घर बैठ जायँ तो निर्वाह कैसे हो ? माँ, श्रीमती रुडाल्फ अपनी चार वर्षीया बेटी को कम्बल में लपेटकर रोज चालीस मील दूर एक अस्पताल में इलाज के लिए ले जाने लगी।

रोग तो ठीक हो गये, परन्तु ठीक प्रकार से चल भी सकेगी, इसमें डाक्टरों को सन्देह होने लगा। यह सन् १९४४-४५ की बात है।

परन्तु इसके पन्द्रहवर्ष बाद ही विस्मा रोम में आयोजित ओलम्पिक क्रीड़ा-प्रतियोगिता में इतनी तेज दौड़ी कि उसे एक साथ तीन स्वर्ण पदक मिले। पहला इसलिए कि उसने १०० मीटर की दौड़ में ओलम्पिक-रिकार्ड की बराबरी की, दूसरा २०० मीटर की दौड़ २३.२ सेकण्ड में पूरा कर नया कीर्तिमान स्थापित करने के कारण और ४०० मीटर की रिले रेस में अपने दल को जिताने के कारण तीसरा स्वर्ण पदक मिला। उस समय दर्शकों ने विस्मा को संसार की सबसे तेज दौड़ने वाली युवती कहा परन्तु बहुत कम लोग यह जानते थे कि इस युवती के चल सकने में भी डाक्टर आशंकित थे।

माता-पिता ने बड़े प्रयत्न किए। डाक्टरों ने भी इलाज करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी, उपचार का

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रम दो वर्षों तक चलता रहा। उसके बाद विशेष प्रकार के जूते पहनाये गये, जिनकी सहायता से आठ वर्ष की आयु में विस्मा चलना सीख सकी थी, परन्तु वह दौड़ अभी भी नहीं सकती थी।

स्वभाव से वह बड़ी चंचल थी। चाहती तो थी कि वह भी अपने भाईयों के साथ दौड़े और खेले परन्तु भाग्य साथ नहीं दे रहा था। माता-पिता ने इस अवसर पर एक सावधानी बरती और वह यह कि विस्मा के मन में कहीं भी किसी भी प्रकार की हीन-भावना घर न कर जाय। वे उसके योग्य खेलने और मन बहलाने के साधन जुटा दिया करते थे।

जब वह ग्यारह वर्ष की हुई तो उसके एक बड़े भाई ने घर के पीछे 'बास्केट बॉल' का एक पोल खड़ा किया और विस्मा को भी खेलने के लिए कहा। जैसे-तैसे विस्मा खेलने के लिए थोड़ा-थोड़ा दौड़ने का अभ्यास करने लगी। माता-पिता ने प्रोत्साहित किया तो उसके मन से यह विचार दूर होने लगा कि उसकी टाँगें कमजोर हैं और वह दूसरों के मुकाबले में कम स्वस्थ है।

विस्मा का मन खेलने में अच्छा लगने लगा। माता-पिता का प्यार और सतर्कता तथा भाई का प्रयत्न और धैर्य अपेक्षित परिणाम लाया। विस्मा में आत्म-विश्वास पैदा हुआ और चार वर्ष की आयु में ही अपंग हुई बालिका बास्केट बॉल में चैम्पियन स्तर की खिलाड़ी हो गई। इसका श्रेय उन समझदार माता-पिता को ही दिया जाना चाहिए, जिन्होंने अपनी लाड़ली में प्रशंसा और प्रोत्साहन द्वारा आत्म-विश्वास पैदा किया। अन्यथा कई प्रतिभासम्पन्न बालक तो इनके अभाव में अपना बिल्कुल भी विकास नहीं कर पाते। ऐसे सैकड़ों बच्चे हैं जो आगे चलकर अच्छा काम कर सकते थे, परन्तु माता-पिता के निरन्तर निरुत्साहित करने से, उन्हें अयोग्य बताते रहने से, दब्बू, डरपोक और कायर कहते रहने के कारण वास्तव में ही ऐसे बन जाते हैं।

विस्मा अपने पिता की उन्नीस सन्तानों में एक है, उसके ग्यारह सौतेले भाई-बहिन और भी हैं। ऐसी स्थिति में परिवार कितना ही सम्पन्न क्यों न हो, सभी बच्चों का समुचित ध्यान रखना, उनकी देखभाल करना बड़ा मुश्किल काम है। फिर रुडाल्फ परिवार तो मध्यवर्गीय स्तर का था। सुख-सुविधाओं के नाम पर माता-पिता कुछ भी दे सकने में असमर्थ थे, परन्तु उनकी सूझबूझ और बुद्धिमानी ने पुत्री के मन में एक तीव्र आकांक्षा पैदा कर दी थी। माता-पिता अपने बच्चों को उत्तराधिकार में कोई सम्पत्ति भले ही न दे सकें परन्तु सद्गुण, लगन और प्रोत्साहन की सम्पदा दे पाने में समर्थ हों तो समझना चाहिए कि उन्होंने अपना कर्त्तव्य अच्छी प्रकार निभा लिया है।

विस्मा को स्कूल में भर्ती करवाया गया। बास्केट बॉल का शौक यहाँ भी यथावत् बना रहा। विस्मा की चंचलता और उसमें छुपी हुई लगन वहाँ और अच्छी तरह उभरने लगी और दो ही साल में वह राज्य की चुनिंदा खिलाड़ी बन गई। १९५५ में अपने टेनेसी राज्य की क्रीड़ा प्रतियोगिताओं में ८०३ पाइण्ट जीतकर वर्ष का रिकार्ड कायम किया।

इस क्रीड़ा प्रतियोगिता में टेनेसी स्टेट कालेज की महिला धावकों के प्रशिक्षक एडवर्ड टेम्पल भी आये हुए थे। उन्होंने बास्केट बॉल की खिलाड़ी विस्मा रुडाल्फ को देखा तो अनुभव किया कि वह होनहार है और प्रयत्न किया जाये तो वह अच्छी धावक बन सकती है। टेम्पल ने विस्मा के प्रशिक्षक सी. सी. ग्रे को सलाह दी कि वे बर्ट हाईस्कूल, जहाँ विस्मा पढ़ती थी, में धावक लड़कियों की एक टीम बनायें और उसमें विस्मा को भी रखें। यह लड़की मुझे होनहार दीखती है।

ग्रे ने टीम बना ली और विस्मा को भी उसमें शामिल किया। बास्केट बॉल से अधिक आनन्द दौड़ने में अनुभव हुआ और उसने बास्केट बॉल खेलना बन्द-सा ही कर दिया। अपनी पूरी शक्तियों को एक ही काम में नियोजित कर तन्मयतापूर्वक श्रम करना ही तो सफलता का मूल मन्त्र है। इस मन्त्र को जिसने सिद्ध कर लिया,. वही सफलता के सराहनीय शिखर तक पहुँच सका है।

दूसरे, किसी भी व्यक्तित्व का विकास उसके मार्गदर्शक की कुशलता और चातुरी पर भी निर्भर करता है। अभिभावकों ने प्रशंसा और प्रोत्साहन द्वारा विस्मा को हीन भावना से मुक्त किया तो उसके प्रशिक्षक ग्रे और टेम्पल ने अपने प्रयत्नों द्वारा उसकी अन्तर्निहित क्षमता को उद्घाटित किया।

ग्रे तीन वर्ष तक अपनी मोटर साइकिल लेकर विस्मा के घर जाते और उसे बिठाकर वहाँ से ४५ मील दूर नेशविला के टेनेसी स्टेट कालेज ले जाते, जहाँ एडवर्ड टेम्पल उसे दौड़ने का प्रशिक्षण देते थे। ग्रे और टेम्पल का सहयोग भी विस्मा ने अपने मधुर और विनम्र स्वभाव के बल पर ही प्राप्त किया था। कुछ देने की, सहयोग करने की भावना सभी मनुष्यों में न्यूनाधिक रूप से विद्यमान रहती है। यदि उस विशेषता से लाभान्वित होने की कला सीख ली जाये, तो अच्छे स्वभाव के व्यक्ति ही नहीं बुरे से बुरे और गिरे हुए नराधम व्यक्ति भी अपना सहयोग देने के लिए तैयार हो जाते हैं। सौभाग्य से विस्मा को योग्य प्रशिक्षक मिले थे और अपनी व्यवहारकुशलता तथा मधुर स्वभाव से उसने ग्रे और टेम्पल को प्रभावित कर लिया था। इसी के परिणाम स्वरूप दोनों प्रशिक्षक विस्मा को अपनी बेटी की भाँति, आत्मीय स्वजन की तरह चाहने लगे थे और उसकी हर सम्भव सहायता करते थे।

बड़ी से बड़ी प्रतियोगिताओं में भी विस्मा ने अपना मानसिक सन्तुलन नहीं खोया। किसी प्रकार की घबराहट नहीं हुई और वह लगातार सफलता की सीढ़ियाँ तय करती रही।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पढ़ाई और दौड़ दोनों ही क्षेत्रों में विस्मा ने समान रूप से प्रगति की। क्लास में भी वह अच्छे नम्बर प्राप्त करती रही और रोज दौड़ने का अभ्यास भी करती रही। अपने स्वभाव की विशेषता, अभिभावकों की चातुरी और योग्य प्रशिक्षकों का सहयोग—इन सबने मिलकर ओलम्पिक प्रतियोगिताओं में जीते हुए तीन स्वर्ण पदक के पूर्व भी उसे १३ अन्य पुरस्कारों से पुरस्कृत करवाया था।

दादी मोर्स—जो ८० वर्ष की आयु में चित्रकार बनी

लचक के अभाव में मेरुदण्ड झुककर कमान हो गया। आँखों की ज्योति मन्द हो चली। हाथ-पाँव काँपने लगे। सलौनी त्वचा झुर्रियों में परिवर्तित हो गयी। सघन श्याम केश-राशि के स्थान पर गिने-चुने श्वेत केश रह गये थे। शरीर जर्जर और मन निराश। इसी का नाम है बुढ़ापा, जिसे देखकर राजकुमार सिद्धार्थ के सम्मुख एक प्रश्नवाचक उभर आया था और उसका उत्तर खोजने के लिए वे स्त्री, पुत्र, धन, धाम, धरा सब छोड़कर चल पड़े थे।

ऐसा ही एक प्रश्नवाचक अमेरिकावासी अस्सी वर्षीय महिला अन्ना मेरी राबर्टसन मोर्स के मस्तिष्क में भी उभरा। अन्तर इतना ही था कि सिद्धार्थ तब युवा थे और अपनी भावी वृद्धावस्था की कल्पना मात्र से सिहर उठे थे। किन्तु अन्ना के साथ यह बात नहीं थी, वह तो अब भी वैसी ही प्रसन्न थी जैसी यौवनकाल में थी। उसे आश्चर्य इस पर था कि वृद्धावस्था को लोग सहज रूप से क्यों नहीं स्वीकार पाते। जबकि उनके अनुभवों की गठरी अब पहले से अधिक भर चुकी होती है। घर परिवार का दायित्व बच्चों के कन्धों पर चला जाता है। ईश्वर की असीम अनुकम्पाओं तथा माँ-प्रकृति के अनुपम स्नेह-दुलार को पाकर भी मनुष्य अपने आपको अभागा और दुःखी मानता रहे, तो यह उसकी भूल ही है।

उस प्रश्न का उत्तर देने के लिए उसने अस्सीवर्ष की आयु में चित्रकला का अभ्यास आरम्भ किया। उसका उद्देश्य यह बताना था कि मनुष्य के शरीर में थोड़ा परिवर्तन भले ही हो जाय, वृद्धावस्था में काम करने का-सीखने का उत्साह-लगन तथा रस ज्यों का त्यों बना रहता है, उसमें राई-रत्ती अन्तर नहीं आता। पके आम की तरह, पुराने चावलों की तरह लम्बे समय तक रखे आसव-आरिष्टों की तरह वह अधिक दक्ष तथा उपयोगी ही रहता है, निरर्थक नहीं।

उस वृद्धा का निश्चय आश्चर्यजनक तो था किन्तु दिवा स्वप्न मात्र नहीं था। उन्नासी वर्ष तक जिसने केवल गृह कार्य किया था, खेतों पर काम किया था, पशु पाले थे, अचार-मुरब्बे डाले थे, लकड़ी काटी थी तथा सामान्य अमेरिकी जन की तरह का सामान्य जीवन जीया था। कला किस चिड़िया का नाम है, उसे पता नहीं था। बिना मार्ग दर्शन के प्रतिभा का बीजांकुर भी अंकुरित, पल्लवित पुष्पित नहीं होता। उसे यह भी पता नहीं था कि मूलचित्र तथा उसकी अनुकृति में क्या अन्तर होता है। वह तो पोस्ट कार्डों पर छिपे चित्रों को ही मूल चित्र मानती थी।

यही अस्सीवर्ष की वृद्धा एक दिन अमेरिका ही नहीं विश्व भर में अपने अनूठे, अछूते चित्रों के कारण विख्यात हुई। करोड़ों व्यक्ति उसे 'दादी मोर्स' के नाम से जानते हैं। यह था उस आयु का चमत्कार, जिसे पाकर सामान्य व्यक्ति हताश-निराश तथा इस जीवन से ऊब जाता है। असमय वृद्ध बनकर असमय काल के गाल में चला जाता है और पीछे उदासी की एक लकीर छोड़ जाता है।

दादी मोर्स के जीवन के दो ध्रुवों में कोई विशेष साम्य नहीं था। अस्सीवर्ष तक जीवन की पाठशाला में पढ़ती रहने वाली इस वृद्धा ने जब चित्रकार के रूप में परीक्षा दी और अभूतपूर्व सफलता पाई तो चमत्कार दिखायी देने लगा।

अन्ना मेरी राबर्टसन का जन्म सन् १८६० में न्यूयार्क स्टेट के एक सामान्य कृषक परिवार में हुआ था। उसके परिवार की आर्थिक स्थिति का अनुमान इस बात से सहज ही लगाया जा सकता है कि उसे बारह वर्ष की आयु में ही दूसरे सम्पन्न परिवारों में परिचारिका का काम करना पड़ा। उसने स्कूल के भीतर कभी झाँककर भी नहीं देखा था। काम, काम और काम बस यही उसका स्कूल, पुस्तकें और पाठ थे। पन्द्रह वर्ष की आयु में ही उसे दिन में तीन बार खाना बनाना पड़ता था। कपड़े धोना, फर्श साफ करना, इस्तरी करना, दही बिलौना तथा घर के अन्य सभी कामों में उसे दिन भर जुटे रहना पड़ता था। फिर भी वह प्रसन्न रहती थी। उसे गर्व था कि वह अपने परिश्रम का खा रही है। उसकी सेवा से कितने ही लोगों को लाभ मिल रहा है।

सामान्यस्त्री का तरह सत्ताइसवर्ष की आयु में यौवन की पहली किरण के साथ ही उसने अपने ही जैसे एक परिश्रमी तथा सीधे-सादे श्रमिक थॉमस मोर्स से विवाह कर लिया। ये दोनों साथी एक दूसरे के हाथों में हाथ डाले, एक दूसरे की भावनाओं को समझते, परखते परस्पर अनुरूप बनते, जीवन की सुनहरी राहों पर बढ़ चले। आर्थिकदृष्टि से सम्पन्न होने के लिए वे वर्जीनिया स्टेट में जाकर रहे। वहाँ उन्होंने अपना निजी फार्म बनाया तथा परिश्रम से अपने परिवार को समृद्ध बनाया। वह प्रति सप्ताह १६० पौण्ड से भी अधिक मक्खन उत्पादित करती थी तथा उसे बाजार में बेचती भी थी। यहीं उनके पाँच बच्चे भी हुए।

१९०५ में यह परिवार पुनः अपने उसी प्रदेश में स्थानान्तरित हो गया, जहाँ से वह वर्जीनिया गया था। यहाँ उन्होंने हूसिक की घाटी में अपना डेयरी फार्म

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खोला। इस सुरम्य-घाटी में वह सुनहरे पंखों वाली तितली की तरह उड़ती हुई काम करती थी। सौभाग्य के सुमनों पर बैठ-बैठकर जीवन रसपान किया करती थी और उस मकरन्द की मादकता से उसका अंग-अंग थिरक उठता था। जीवन का भी अपना एक आनन्द है। मनुष्य अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र, सक्षम तथा साधन-सुविधाओं से सुसज्जित है। अपने को इस स्थिति में पाकर भला क्यों हर्ष नहीं होगा। कर्म करते रहने का ही नाम जीवन है। वह हँसती-मुस्कराती, गुनगुनाती अपने काम में जुटी रहती।

जब वह सत्तर वर्ष की थी। उसके पति का देहावसान हो गया। बच्चे भी अब घर का काम सम्हालने योग्य हो गये थे। वह उन्हें पूरी तरह समर्थ बनाने के लिए दस वर्ष तक और उनकी सहायता करती रही। अस्सी वर्ष की आयु में जब वह अधिक शारीरिक श्रम करने की स्थिति में न रही तो उसने वे खुशियाँ लोगों को बाँटना शुरू किया जो उसने जीवन में समेट-समेटकर अपनी झोली में भरी थीं। उसके वितरण का माध्यम था—चित्रकला।

नगर से दूर कृषकों और पशुपालकों के बीच बैठी हुई यह वृद्धा चित्रकार बनना चाहती थी, जिसने कभी स्कूल में शिक्षा नहीं पाई। रंगों का चुनाव तथा अभिव्यक्ति की कला का कुछ भी शिक्षण उसे नहीं मिला। अस्सी वर्ष के कठोर शारीरिक श्रम ने उसके हाथों को कठोर बना दिया था। उनसे कला का निर्झर कैसे बहा, यह एक आश्चर्य ही है। किन्तु उसने प्रकृति को तथा उसके पुत्रों को, प्राणियों को इस विश्व-पुष्पोद्यान में सानन्द विचरते देखा था। बसन्त के आते ही जीर्ण-शीर्ण परिधान उतार कर सौन्दर्य, उल्लास और सौरभ की चूनर ओढ़ लेने वाली प्रकृति नदी को उसने निकट से देखा था। सुरम्य घाटियों, इठलाती नदियों व झरनों से उसने एकात्म स्थापित किया था। जीवन की गहरी मार्मिक अनुभूतियों का कोष उसके पास था। अपनी सजगता के चुम्बक से उसने दुनिया में यत्र-तत्र बिखरे पड़े ज्ञान को पकड़कर अपने अवचेतन में एकत्रित कर लिया था। इन्हीं के सहारे वह बढ़ चली।

उसने अपने कुछ चित्रों, फलों तथा मुरब्बों की प्रदर्शनी स्थानीय मेले में लगायी। फलों व मुरब्बों पर तो उसे पारितोषक मिला किन्तु चित्र उपेक्षित ही रहे। इस उपेक्षा से वह विचलित नहीं हुई। संकल्प के धनी असफलताओं से हारते नहीं हैं वरन् उन्हें अपने धैर्य की परीक्षा मानकर चलते हैं। उसने हूसिक प्रपात के पास की दुकान पर अपने चित्र बिकने के लिए रखे। कई दिनों तक उनका कोई पारखी नहीं मिला। पर एक दिन लुइस केल्डर नामक एक पारखी को वे चित्र भा गये, उसने चार छोटे चित्र तीन डालर में खरीद लिये। यही नहीं दूसरे दिन वह उसके घर आकर शेष सभी चित्र खरीद ले गया।

लुइस केल्डर ने ये चित्र न्यूयॉर्क की चित्र विक्रेता ओटो केलिर को बेचे, जो लोक-कला में विशेष रुचि रखती थी। उसे श्रीमती मोर्स के चित्रों में मौलिकता, नूतनता तथा सजीवता के दर्शन हुए। उसने अधिक चित्रों की माँग की। पर्याप्त चित्र हो जाने पर उसने उनकी प्रदर्शनी लगायी। इस प्रदर्शनी ने इस कृषक-महिला को चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध कर दिया।

बिना किसी मार्गदर्शन के अभ्यास तथा अनुभूति के बल पर वह सफल चित्रकार बन सकी थी। उसका आत्मविश्वास तथा जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण भी उसकी सफलता का रहस्य था। वह उस उल्लास को जन-जन तक पहुँचाना चाहती थी, जो ईश्वर असंख्यों हाथों से बाँटता है और धरती उसे आँचल पसारकर गृहण कर लेती है। यदि इस उल्लास की अनुभूति की जाती रहे तो बुढ़ापा रोने-झींकने की नहीं हँसने-हँसाने की आयु बन सकता है।

चित्रों की प्रदर्शनी के बाद अमेरिका के सभी प्रमुख समाचार-पत्रों में उसकी चित्रप्रदर्शनी के समाचारों को शीर्ष स्थान पर छापा गया। देखते ही देखते वह जन-जन की लोकप्रिय दादी मोर्स हो गयी। उसके चित्रों में नैसर्गिक सुषमा, जन जीवन की सजीवता तथा ईश्वरीय उल्लास की रस सरिता बहती थी।

उसका अपना कोई स्टूडियो नहीं था। वह अपने फार्म हाउस के अपने शयन कक्ष में ही चित्र बनाया करती थी। वह थोड़े से रंगों का ही प्रयोग करती थी। उसने अपने बीस वर्ष के चित्रकार के जीवन में पन्द्रहसौ से भी अधिक चित्र बनाये। उन चित्रों से उसे करोड़ों रुपयों की आय हुई। उस आय को उसने मुक्त हस्त लोकहित के कार्यों में खर्च कर दिया। कलिर के निदेशन में उसके चित्रों से होने वाली आय का एक लोक हितकारी न्यास बना दिया गया है। उसकी लोकप्रियता तथा प्रसिद्धि का अन्दाज इसी से लगाया जा सकता है कि उसके लिये कहा जाता है—"दादी मोर्स एक औद्योगिक संस्थान है।"

यह प्रसिद्धि उस वृद्धा को छू भी नहीं पाई। उसके अपने रहन-सहन तथा सोचने के ढंग में कोई परिवर्तन नहीं आया था। तब भी वह पेन्ट रखने के लिए कॉफी के खाली टिन ही प्रयोग में लाती थी तथा ब्रुश धोने के लिये पुराने मक्खन रखने वाले बर्तन।

१९६१ में एक सौ एक वर्ष की आयु पूरी करके तथा विश्व भर को आशा व उल्लास का स्वर्गीय सन्देश देकर यह प्रकाशमयी नारी सदा के लिए चलीं गयी।

उसके चित्रों की प्रदर्शनियाँ योरोप के सभी देशों में आयोजित की जा चुकी हैं। रूस के मास्को नगर में उसके चित्रों की प्रदर्शनी को एक लाख कला पारखियों ने देखा, सराहा। उसके सौवें जन्म दिन पर विश्व के सभी देशों से उसके पास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जन्म दिवस अभिनन्दन पत्र आये, जिनमें अमेरिका के चारों जीवित राष्ट्रपतियों द्वारा भेजे गये अभिनन्दन पत्र भी थे।

दादी मोर्स की यह अनूठी कहानी बच्चों में उमंग, युवकों में उल्लास और वृद्धों में नयी जीवनी शक्ति तब तक भरती रहेगी, जब तक उसके चित्र जीवित रहेंगे।

'सेवती' जिसने रातभर में शेर का दम तोड़ दिया

कोंकण प्रदेश पर्वतों और घने जंगलों से आवेष्टित एक प्रदेश है। इसी प्रदेश में धतौला नामक एक ग्राम है जहाँ 'सेवती' और सदाशिव नामक दम्पत्ति निवास करते थे। दो आदमियों का छोटा-सा परिवार, इसलिए एक छोटा-सा घर अपने रहने के लिए और एक बाड़ा भेड़-बकरियों के लिये, बस इतने ही में आसानी से काम चल जाता था।

उस दिन कुछ विशेष कार्यों में व्यस्त रहने के कारण सेवती को यह याद भूल गई कि दिन रहते ही मिट्टी का तेल बाजार से मँगा ले। सदाशिव शाम को थका-माँदा भेड़-बकरियों के साथ घर आया। दिन डूबने ही वाला था, जब सेवती को याद पड़ा कि बाजार से तेल लाना आवश्यक है। इसके बिना रात का काम चलने वाला नहीं। अन्त में यह निर्णय हुआ कि सदाशिव बाजार जावे ही। वह पैसे लेकर बाजार चल दिया। जाते समय धर्मपत्नी से यह भी कहता गया कि बाजार दूर है इसलिए काफी विलम्ब से आवेगा।

धीरे-धीरे रात हो चली। सेवती ने अपने पशुओं को बाड़े में बाँधकर उसका दरवाजा भली-भाँति बन्द करके अपने कमरे में बैठकर सदाशिव की प्रतीक्षा करने लगी। अन्धेरी भयावह रात। वह अधिक देर तक बैठकर सदाशिव की प्रतीक्षा न कर सकी, क्योंकि जल्दी ही माँ बनने वाली थी। रात के लगभग १० बजे होंगे। पति के आने की आशा छोड़ अब वह सोने ही जा रही थी, तब तक बाड़े में एक भयपूर्ण खड़बड़ाहट सुनाई पड़ी। सेवती अच्छी तरह यह अनुमान न लगा सकी किसी हिंसक जानवर के कारण यह हलचल पैदा हुई है अथवा बाड़े में कोई सर्प आदि आ गया है, जिससे जानवरों में ऐसी भगदड़ मची है। बड़े सोच-विचार में पड़ी। रोशनी का कोई प्रबन्ध न था, जिसके सहारे निरीक्षण कर आती। सम्भव है अन्दर से निकले और बाहर कोई हिंसक जानवर आया हो तो प्राण से भी हाथ धोना पड़े। उधर अपनी भेड़-बकरियों की भी काफी चिन्ता। उसे चैन नहीं पड़ता था। मन में सोचने लगी—आखिर जब अपनी जीविका ही न रहेगी तो किस आधार पर रहा जावेगा। पति की अनुपस्थिति में यदि कोई नुकसान हो जावेगा तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगी।

उसे यह भय और कायरता अपमानजनक मालूम हुई। अन्त में अपनी हिम्मत सँभाली। अन्धेरे में पड़ी हुई दियासलाई अनुमान से खोज लाई और एक कुल्हाड़ी लेकर बाड़े की तरफ चल पड़ी। उसका दरवाजा खोला। एक काटी (तीली) जलाई। जलाते ही क्या देखती है कि सभी भेड़-बकरियाँ एक तरफ की दीवाल छोड़कर शेष तीन तरफ दबी जा रही हैं। सबमें एक विशेष भय है। यदि जगह होती तो दूर भाग खड़ी होतीं। आखिर कोई जानवर भी तो दिखाई देता नहीं, फिर बात क्या है ? उसने दूसरी दियासलाई जलाई और ध्यान से देखा तो खाली वाली दीवाल की तरफ पानी बहने वाली नाली में शेर के दो पंजे दिखाई दे रहे हैं। देखते ही भय की लहर पूरे शरीर में दौड़ गई। रोंगटे खड़े हो गये और कलेजा काँपने लगा परन्तु दूसरे ही क्षण उसने अपनी हिम्मत सँभाली और सोचने लगी "यदि शेर को केवल छेड़खानी करके ही छोड़ देती हूँ तो अब यह शिकार की लालच में आ गया है, यहाँ से दूर नहीं जावेगा। सम्भव है, मैं ही इसमें से निकलूँ और मुझे ही दबोच ले। यदि मैं बाड़े के अन्दर ही पड़ी रहूँ तो यह भी सम्भव है कि पतिदेव उधर से आ जायँ, शेर उन्हीं को को मार डाले। जब पतिदेव ही न रहेंगे तो फिर मैं रहकर क्या करूँगी ? यह बात ध्यान में आते ही अपने प्राणों पर खेल जाने की तैयार हो गई। कुल्हाड़ी से शेर के दोनों पंजे काट डालने की ठान ली।

अपने कपड़े सँभाले और मजबूती से अपने दोनों हाथों से शेर के दोनों पंजे पकड़ लिये, शेर इसी रास्ते से बकरियों को पकड़ने का प्रयत्न कर रहा था। यकायक अपने पैरों के पकड़ जाने पर शेर घबड़ा गया। वह पंजों को बाहर निकालना चाहता था परन्तु सेवती भी तो जान पर आ गई थी। वह जी-जान से अपनी तरफ खींच रही थी। यद्यपि सेवती से शेर की ताकत कई गुनी थी परन्तु वह इस तरह से फँसा था कि शेर की शक्ति काम ही नहीं कर रही थी। सेवती ने इतना जोर लगाया कि दोनों पंजों को कुछ और अन्दर तक खींच लाई। उसे पूरा विश्वास था कि शेर का पूरा शरीर तो अन्दर आ नहीं सकता। इसका फल यह हुआ कि शेर का सिर उल्टे मुड़ गया, सेवती यह चाहती थी कि कुल्हाड़ी से पंजों को काट डाले परन्तु विवशता यह थी कि दोनों पंजे एक हाथ से पकड़े नहीं जा सकते थे। यदि एक हाथ से पकड़ती और दूसरे हाथ से कुल्हाड़ी उठाती तो सम्भव था, पंजे छूट जाते और शेर भाग जाता। ऐसी दशा में यदि कहीं आता हुआ सदाशिव रास्ते में पड़ जाता तो क्रुद्ध शेर उसका काम तमाम ही कर देता। यही सब सोचकर वह उसे छोड़ नहीं रही थी। इधर उसका शरीर थककर चूर-चूर हो गया। बाँहें दर्द के मारे फटने लगीं। उसने पड़ोसियों को कई-कई बार यह आवाज भी लगाई कि अरे कोई दौड़ो शेर आया हुआ है। परन्तु उस वीहड़ वन में रात को किसकी कौन सुनता। सभी तो अपने अपने घरों में मस्त सोये थे।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब कोई भी सहायता के लिये नहीं आया तो वह निराश हो अकेले ही डटी रही। यद्यपि अब तो उसका शरीर गवाही नहीं दे रहा था परन्तु यदि मन मजबूत हो, अन्दर साहस और हिम्मत हो तो शरीर को तो साथ देना ही पड़ता है। उसे सीधे पंजे के बल बैठने में भी तो परेशानी ही थी। फिर भी उसने हिम्मत न हारी और मन में यह निश्चय कर लिया कि चाहे जो कुछ भी हो जब तक पतिदेव नहीं आवेंगे, हमारा और शेर का युद्ध चलता रहेगा। संकल्प महान होता है। सभी जानते हैं कि गर्भिणी स्त्रियों को अपना शरीर ही सँभालना कठिन होता है परन्तु इसका अपवाद अपने को सिद्ध करती हुई सेवती, शेर से पूरी तरह से लड़ रही थी, उसका शरीर और कपड़े भेड़-बकरियों के मल-मूत्रों वाली मोरी में पूरी तरह से सन चुके थे।

कुछ समय तक तो शेर इस प्रयत्न में रहा कि बाहर पंजे निकालकर भाग जाऊँ। परन्तु वह जब भी प्रयत्न करता था, सेवती और जोर-जोर से अन्दर खींचने लगती थी। यह युद्ध करते-करते सबेरा हो गया। आखिर हिम्मत भी तो कोई चीज होती है। जो हिम्मत करके आगे बढ़ता है, उसकी सहायता भगवान करते हैं। शेर इस तरह कब तक लड़ता ? वह अब दम तोड़ चुका था। उसके सारे प्रयत्न समाप्त हो चुके थे। सेवती यह समझती थी कि शायद वह दम ले रहा है और पुनः प्रयास करेगा।

यह सब सोच ही रही थी, तब तक सदाशिव ने दरवाजा खटखटाया और आवाज लगाई। उसकी आवाज सुनते ही वह और जोर-जोर से चिल्लाई, "दौड़ो शेर को पकड़े हुए हूँ। तुम बाहर से लट्ठे मारो। सदाशिव ऐसी आवाज सुनते ही घबरा गया। वह एक -लट्ठ लेकर दौड़ा-दौड़ा बाड़े के पीछे गया तो क्या देखता है कि शेर के प्राण पखेरू उड़ गये हैं। सेवती की बहादुरी देखकर गाँव वाले दंग रह गये।

साहस और सूझबूझ के आगे मृत्यु भी हार गयी

बाज पक्षी आकाश में ऊँचाई पर उड़ता है। जमीन पर दाना चुगती हुई चिड़ियाओं को अपना शिकार बनाने का उसका अपना एक ढंग होता है। वह उड़ता-उड़ता उस जगह देख लेता है कि अमुक स्थान पर चिड़िया दाना चुग रही है, तो तुरन्त जाकर उसके ऊपर स्थिर हो बिना एक क्षण व्यर्थ गँवाए अपने पंखों को इतने जोर से फड़काता है कि चिड़िया को दबोच लेने जैसा भ्रम हो जाता है। नीचे दाना चुगती चिड़िया अपने पर यकायक पड़ी उसकी छाया और पंखों की आवाज से भयभीत होकर यही समझ बैठती है कि बाज ने मुझे दबोच लिया और वह प्राण रक्षा का प्रयास ही छोड़ देती है, तब तक बाज झपट्टा मारकर उसे दबोच लेता है।

ठीक यही स्थिति प्राण-संकट में पड़े व्यक्ति की होती है। चिड़िया प्रयास करती और सूझ-बूझ, साहस का पल्ला न छोड़ती तो बच सकती थी किन्तु भय के मारे वह मृत्यु से पहले ही मर जाती है। मनुष्य भी अपने ऊपर बाज की तरह पर फैलाये उड़ रही मृत्यु को देखकर भयभीत हो उसी प्रकार मर जाता है। किन्तु सूझ-बूझ व साहस न बिसारा जाय, तो मृत्यु को भी परास्त किया जा सकता है। २ जुलाई, १९७३ की शाम को अलवर राजस्थान के मऊवा ग्राम के निकट नदी में बह जाने वाली बस में ७६ व्यक्ति इसी प्रकार मौत से जूझे बगैर मर गये, जबकि उसी बस में बैठी एक ग्यारह वर्ष की बालिका किरण बाला अपने प्राण रक्षण में सफल हुई।

नदी के पानी में फँसी बस में जब पानी भरने लगा, तो कुछ बच्चों व महिलाओं को बस की छत पर चढ़ा दिया गया, किरण बाला उन्हीं में से एक थी। जब नदी में पानी बढ़ने लगा और उसने बस के भीतर बैठे लोगों को बहते देखा तो एक क्षण को तो वह काँप उठी। किन्तु फिर उसमें साहस का संचार हुआ। उसने सोचा कि उसकी भी यही गति होने वाली है। वैसी स्थिति में वह क्या करे ?

उसे याद आया उसकी दादी ने गाँव के जोहड़ में उसे तैरना सिखाया था। जोहड़ का न पीने योग्य पानी मुँह में न भर जाय, इसके लिये उसे पीठ के बल उल्टा तैरना सिखाया था जिसे 'मुर्दातारी' कहा जाता है। तैरना जानने वालों को पता है कि इसमें कम जोर लगाना पड़ता है व अधिक देर आसानी से तैरा जा सकता है। किरण ने वैसे ही तैरकर प्राण रक्षा करने की सोची।

थोड़ी देर बाद किरण को भी बहाव में बह जाना पड़ा, वह अँधेरी रात और कुछ साँप सी फुफकारती नदी की धाराओं में उसी प्रकार उल्टी तैरती रही। हाथ-पाँव मारने का तो प्रश्न ही नहीं था, यहाँ तो बहाव ही उसे बहाने को काफी था। उसका शरीर कभी पत्थरों में टकराता तो कभी काँटेदार झाड़ियों में उलझता बहता रहा। बालिका अपनी अन्तिम साँस तक इस जीवन और मृत्यु के संग्राम में जूझने का निश्चय कर सब कुछ सहती रही।

पूरे पैंतीस मील तक वह इन मृत्युदायिनी लहरों में बहती रही। अन्त में गोविन्द गढ़ के सतनी गाँव के निकट एक वृक्ष पर उसे सहारा मिला और दूसरे दिन सबेरे सँयोग से सतनी गाँव के सरपंच उमराव सिंह उधर से गुजरे तो किरण ने उन्हें आवाज दी। उन्होंने गाँव वालों की सहायता से उसे पानी से बाहर निकाला।

इस हादसे को सहकर भी उसका चित्त विभ्रमित नहीं हुआ, कपड़े बदलकर चाय पीने के बाद उसने जी भरकर नींद निकाली। गाँव वालों ने उसे पुलिस के संरक्षण में सौंपा, जिन्हें उसने अपने पिता का पता बताया और पुलिस द्वारा सूचना मिलने पर वे उसे ले गये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

५.२० यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

इस बालिका का साहस व सूझ-बूझ आपदाओं से जूझने व मुक्ति पाने का प्रसंग मृत्यु को हरा देने की प्रेरक कहानी है। इस नन्हीं सी बालिका ने धैर्य और साहस नहीं खोया, तो वह मृत्यु को भी जीत गयी। ऐसी भयंकर परिस्थितियों में जो व्यक्ति धैर्य छोड़ देते हैं, वे असमय ही काल के ग्रास बन जाते हैं।

साक्षात् दुर्गा—कांताबेन

कच्छ के आस-पास के गाँवों में जंगली सुअर ने ऐसा आतंक मचाया कि लोगों ने रात में घर से निकलना बन्द कर दिया। दिन में भी काम के लिये निकलते तो बड़े चौकन्ने होकर, जहाँ-तहाँ उसी की चर्चा होती, उसे घेरकर मारने की योजनायें बनाई जातीं। अब तक वह कई घातक हमले कर चुका था और कितने ही बच्चों की जान ले चुका था। ऐसी स्थिति में लोग कब तक चुप रह सकते थे ?

एक दिन ग्रामीणों ने सुअर को डराने के लिये उसका पीछा किया। उत्तेजित सुअर इस समय बहुत ही खतरनाक बना हुआ था। वह जिस ओर भागा उस ओर एक खेत में कान्ताबेन उसके पति तथा परिवार के अन्य लोग भी कार्य कर रहे थे। सुअर कान्ताबेन के पति की ओर झपटा। ऐसी स्थिति में यदि कोई सामान्य मनोबल की स्त्री रही होती तो रोने-चिल्लाने लगती। पर रोने-चिल्लाने से भी क्या लाभ होता है। ऐसे अवसरों पर तो पास में खड़े व्यक्ति भी जान बचाकर एक ओर खिसक जाते हैं फिर दूर से आये व्यक्तियों से सहायता की आशा भी क्या जा सकती है ?

कान्ताबेन दुर्बल हृदय की नारी न थी, उसने अन्य लोगों की सहायता माँगने से पूर्व यह उचित समझा कि पहले अपने पति की स्वयं सहायता करे। उसने अपना मानसिक सन्तुलन न खोया और रोने-चिल्लाने को कायरों का कार्य समझकर उसे परिस्थिति का सामना करने की तैयारी की। वह कुल्हाड़ी लेकर जैसे ही आगे बढ़ी दूर खड़े अन्य व्यक्ति चिल्ला पड़े 'बहू ! तू क्यों मौत के मुँह में अपना हाथ दे रही है।' तब तक दूसरी आवाज आई 'दूर हट नहीं तो तुझ पर यह सुअर धावा बोल देगा।'

जिस समय मिल-जुलकर सबको प्रहार करने थे, उस समय कुछ तमाशा देखने के लिये अलग खड़े हो गये और कुछ कान्ताबेन के अडिग आत्म-विश्वास को तोड़ने की तैयारी करने लगे। पर विजयी भाव वाला मस्तिष्क जहाँ भी होता है, सन्तुलन खोने की बात सोचता ही नहीं। कान्ताबेन ने कुल्हाड़ी से सुअर के सिर पर एक के बाद एक ऐसे कठोर प्रहार किये कि वह जंगली सुअर न आगे बढ़ सका और न पीछे। चोट खाकर वहीं ढेर हो गया।

खेत में एक ओर उस लोहू-लुहान सुअर को और दूसरी ओर दुर्गा की साक्षात् अवतार कान्ताबेन को लोगों ने एक हाथ में कुल्हाड़ी लिये खड़ा देखा। पूरा गाँव इस विजय पर प्रसन्नता व्यक्त कर रहा था क्योंकि पिछले दिनों में इसने कितने ही बच्चों की जान ले ली थी।

उगेंड़ी गाँव की इस महिला को गुजरात की पौराणिक पारितोषिक संस्था ने सम्मानित करते हुए उसके साहस तथा मनोबल की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

साहस और शौर्य की देवी—श्रीमती केशरबाई

संसार में ऐसे लोग भी हैं, जिनके जीवन का उद्देश्य ही औरों को कष्ट पहुँचाना, मुसीबत में डालना, चोरी और बदमाशी करना हो जाता है। ऐसे लोग मुट्ठी भर हैं, फिर भी उनका प्रभाव अधिक है। यह केवल इसलिए होता है कि इनका मुकाबला नहीं किया जाता। शौर्य और साहस के अभाव में ईमानदार और भले आदमी भी उनका विरोध नहीं कर पाते। संगठित और सुनियोजित प्रतिरोध न हो सकने के कारण ही आसुरी प्रवृत्तियाँ जोर पकड़ती हैं। एक बुराई यह भी है कि लोग ''भगवान के भरोसे'' होने का दावा कर लेते हैं और नैतिक-संघर्ष से एक प्रकार डर से जाते हैं। यदि बदमाश लोगों से टक्कर लेने के लिये लोग तैयार हो जायें तो फिर उनकी दाल न गले। अब तक बुरे लोगों का आतंक अच्छे लोगों पर रहता है पर यह परिस्थिति बिल्कुल बदल जाय तो बुरे लोग दुष्कृत्यों से डरने लगें।

ऐसा ही एक साहसपूर्ण आदर्श कुर्वाग्राम की श्रीमती केशरबाई ने दिखाकर गाँव वालों को व्यावहारिक मार्गदर्शन दिया। यों तो यहाँ आस-पास के गाँवों में चोरी-डकैती की घटनायें आये दिन हुआ करती हैं पर पिछले चार महीनों से उन्होंने अन्धेर ही मचा रखा था। कहीं सेंध काटकर, कहीं ताला तोड़कर चोरी हो जाने का समाचार रोज ही सुनने को मिलता था। चोर-बदमाश हम लोगों में से ही थे इसलिये उन्हें पकड़ना भी कठिन था क्योंकि उन्हें घर की बखूबी जानकारी रहती है। लोग संगठित रूप से कोई योजना बनाकर उन्हें पकड़ने का प्रयत्न करते तो सम्भवत: वे पकड़े भी जाते पर इतना झंझट करे भी कौन ? स्वार्थ के चक्कर में लोग इतना सोच भी कहाँ सकते हैं। सब अपने बचाव में रहे, फलस्वरूप चोरों का धन्धा बिना रुकावट चलता रहा।

श्रीमती केशरदेवी का घर-गाँव के बाहरी तरफ था। दो बार सेंधें लग चुकी थीं और उनका काफी माल-असबाब ले जाने में चोर सफल भी हुए थे। केशरबाई ने विचार किया कि यदि चोरों के इस कार्य में बाधा न उत्पन्न की गई, तो उनका आतंक बढ़ता ही

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहेगा। दो बार कुछ न कुछ हाथ लग गया है, इसलिये अभी उनका आना बन्द न होगा। इसलिये कुछ ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे इनका भय दूर हो। सिवाय संघर्ष के उन्हें और कोई दूसरा रास्ता न दिखाई दिया और इसके लिये वे दृढ़ मनोबल के साथ तैयार भी हो गईं।

उन्होंने अपने पतिदेव, बड़े लड़के देशराज और स्वयं अपनी दो-दो घण्टे जगने की ड्यूटी लगाई। आमतौर पर चोर लोग ११ बजे से ५ बजे के बीच आते थे इसलिये ६ घण्टे की पहरेदारी काफी समझी गई।

जाल लगा तो उसमें शिकार फँसना ही था। आखिर चोर भी कोई सबके मन की बात जान लेने वाले ज्योतिषी तो होते नहीं। एक दिन जब केशरबाई जाग रही थीं उन्होंने सेंध काटी और घर में घुस पड़े। चोरों को आया हुआ देखकर केशर ने सोचा यदि घरवालों को जगाती या बुलाती हूँ तो चोर भाग जायेंगे, अकेले सामना करने में हमले का खतरा था क्योंकि बदमाश हथियारों से लैस थे, पर इसमें उन्हें दूसरा उपाय ही उचित लगा। वे हिम्मत के साथ चुप-चाप उठीं और सिंहनी की तरह चारों पर टूट पड़ीं। साथ ही बड़े जोर से चिल्लाकर घरवालों को आवाज लगाई। चोर आकस्मिक हमले से घबड़ाकर भागे पर केशरबाई ने उनमें से एक को धर पकड़ा। उसने बहुतेरा जोर लगाया और छुरे से भयभीत करना चाहा पर साहस की मूर्ति केशरबाई जरा भी न डरीं, उन्होंने चोर को जमीन पर पटक दिया और गर्दन पकड़ कर छाती पर चढ़ बैठीं तब तक और लोग आ गये और चोर को पकड़कर बाँध लिया गया। बाद में उसने दूसरे साथियों के नाम भी बता दिए। उन सबको पकड़कर अच्छी मरम्मत की गई और बाद में जेल भेज दिया गया। अब चोरों के अन्य गिरोह भी डर गये हैं। पहले जैसी घटनायें नहीं होतीं। दरअसल लोग हिम्मत से काम लें, तो ऐसे बुरे तत्त्वों को परास्त किया जा सकता है और बदमाशी की आशंकाओं को कम किया जा सकता है।

वीरांगना वधू—कुसुमा कछवाह

गुना, बड़ाखेरी गाँव के कछवाह ठाकुर हिम्मतसिंह के सुपुत्र श्री दौलतसिंह की नव-विवाहित पत्नी कुसुमा ने असाधारण साहस और विवेक से काम लेकर न केवल अपनी सम्पत्ति की रक्षा की वरन् दौलतसिंह का जीवन बचाने में बुलन्द हौंसला व्यक्त किया। कुसुमा ने भारतीय नारी के वीरतापूर्ण इतिहास में अभिनव पृष्ठ जोड़कर सती और नारी का गौरव उठाया है।

कुछ समय पूर्व की बात है, दौलतसिंह अपनी पत्नी को विदा कराने बैलगाड़ी लेकर पिरिया गाँव को गये। रास्ते में घना जंगल पड़ता है। यहाँ प्राय: लूटमार की घटनायें होती रहती हैं। दौलतसिंह का विवाह के बाद पत्नी को विदा कराने का दूसरा अवसर था। नव-वधू विदा होकर आई तो परम्परा के अनुसार लम्बा घूँघट निकालकर ही गाड़ी में बैठना था उसे, सो बैठी भी।

बैलगाड़ी दिन भर चली। अभी गाँव काफी दूर था और सूर्यदेव अस्ताचल की ओर जा रहे थे, तभी तीन डाकुओं ने हमला कर दिया। उन्होंने बैलों को रोक लिया और नवयुवक दौलतसिंह के सिर पर लाठी का प्रहार किया। खून का फौब्बारा छूट पड़ा और दौलतसिंह बेहोश हो गया। वह बुरी तरह घायल हो गया था।

कोमल स्त्री, परदे में घुटी हुई स्त्री क्या करती ? जिस नारी को खुलकर बोलने का अवसर न दिया गया हो, पति के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने का साहस और शाबाशी न दी गई हो, वह बन्धनग्रस्त अबला भला क्या करती और क्योंकर धैर्य तथा हिम्मत रखकर बदमाशों का सामना करती ?

वह तो रक्त का प्रभाव कहें अथवा अपने पूर्वजों का, कि हमारे देश के गौरव को अक्षुण्ण रखने वाले तत्त्व नष्ट नहीं होते, जब भी अवसर आता है वे जग जाते हैं अन्यथा स्थिति बद से बदतर हो चुकी है। जहाँ नारी-शिक्षा को प्रोत्साहन मिला भी वहाँ उनके नैतिक साहस को प्रबुद्ध होने का अवसर प्रदान नहीं किया जाता।

फिर भी मनुष्य तो आखिर मनुष्य ही है। वातावरण एवं परिस्थितियों द्वारा उसे पद-दलित किये जाने पर समय पर उसका शौर्य जागता ही है। अबला कुसुमा ने दुर्बलता के प्रतीक घूँघट को एक तरफ फेंक दिया और गाड़ी में रखी लाठी लेकर सिंहनी की तरह दस्युओं पर टूट पड़ी। लुटेरे बैल खोलने में व्यस्त थे। इस आकस्मिक, अप्रत्याशित हमले को सहन न कर सके। दो को करारी चोटें आयीं, सिर फट गये और तीसरा चुटैल होकर अपनी जान बचाकर भागा।

कुसुमा फिर गाड़ी में चढ़ी और ओढ़नी फाड़कर पति के घाव को बाँधा। उसे अच्छी तरह लिटाया और बैलों की रास अपने हाथ में थामी ! तीसरा लुटेरा कुछ देर बाद वहाँ दो साथियों सहित लौटा भी, पर तब तक न बैल, न बैलगाड़ी। केवल उनके दोनों साथी पड़े थे और उन्हें घेरे हुए समीपवर्ती नागरिक। कुसुमा शाम तक अपने घर जा पहुँची।

शौर्य मानव-जीवन का आवश्यक अंग है। आये दिन होने वाली कठिनाइयों का सामना शौर्य और साहस के आधार पर ही किया जा सकता है। क्या नर, क्या नारी दोनों में इन सद्गुणों का विकास होना चाहिये। खेद है, पर्दा-प्रथा ने भारतीय-समाज के आधे अंग को भीरु और कायर बना रखा है। कुसुमा जैसा शौर्य मूलत: सब नारियों में होता है पर उन्हें पर्दा-प्रथा ने असहाय स्थिति में ले जाकर पटक दिया है और आये दिन वे दीन-हीन तथा असहाय बनी रहकर सताई जाती हैं और घरवालों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पर भार बनी बैठी रहती हैं। समाज के विचारशील लोगों का यह कर्त्तव्य है कि वे पर्दा-प्रथा को हटाने और नारी के शौर्य को विकसित होने का अवसर दें, ताकि वे विषम परिस्थितियों में कुसुमा की तरह जूझ सकें और अपनी भावी पीढ़ी के लिये आदर्श बन सकें।

प्रतिभा की धनी एक कृषक कन्या

मैसूर राज्य के कुर्ग जिले में सोम्वपरत विकास खण्ड में एक छोटा सा गाँव है दोद्दातोपुर। उसमें रहने वाली एक लड़की कु. चेनकम्मा अपने परिश्रम के बल पर उक्त गाँव की ही नहीं, सम्पूर्ण जिले की ही शान है।

इस अद्भुत बालिका ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल पर अपने घर की दीन-हीन स्थिति को खुशहाली में बदल दिया है।

इनके पिता के पास कुल पाँच एकड़ भूमि है। बच्चे पूरे दस। दो प्राणी स्वयं। किसी प्रकार पेटभर लेते थे, बस ! किन्तु पाँचवीं कक्षा पास करने के पश्चात् ही कु. चेनकम्मा अपने पिता को खेती के कामों में सहयोग देने लगी। उसका अनुकरण छोटे भाई-बहनों ने भी किया और अधिक परिश्रम का प्रतिफल अधिक उत्पादन के रूप में सामने आया।

चली आ रही परिपाटी से चेनकम्मा को सन्तोष न हुआ और उसने अपनी प्रतिभा के बल पर प्रगति के अन्य द्वार भी खोल लिये।

सर्वप्रथम उसने खेती के सुधरे हुए तरीकों को अपनाया। कम्पोस्ट खाद के कई गड्ढे अपने यहाँ तैयार किये तथा उनका उपयोग खेती में किया। कम्पोस्ट खाद बनाने में पुरस्कार भी जीते। धान की एक एकड़ फसल में आठ क्विंटल के स्थान पर बारह क्विंटल उपज करके दिखाई। जिससे सरकार का ध्यान भी उसकी तरफ गया और उसे उक्त विकास खण्ड की रजिस्टर्ड बीजोत्पादक घोषित किया गया। विकास खण्ड के स्तर पर ३-४ वर्ष पूर्व हुई रैली में कृषि सम्बन्धी बुद्धि परीक्षण में उसने प्रथम स्थान पाकर गाँव का नाम ऊँचा किया।

अपने परिश्रम-प्रभाव तथा प्रचार के बल पर उसने अन्य समीपवर्ती किसानों को भी खेती के उत्तम तरीकों से लाभान्वित किया तथा धान और मूँग की अच्छी फसलें उगाने में सहयोग तथा मार्ग-दर्शन दिया।

इसके अतिरिक्त वह महिला-समाज की सदस्या बनी, ग्राम-सेविका का प्रशिक्षण प्राप्त किया और इसके माध्यम से अन्य अनेक किसानों को लाभ पहुँचाया।

अपने निजी शौक भी बहुत ही अच्छे हैं उसके। मधुमक्खी पालन में विशेष रुचि होने के कारण दो बक्से अपने यहाँ रख छोड़े हैं। उनकी देख-रेख का भार स्वयं ही उठाती है।

अच्छी किस्म के फल तथा सब्जियाँ उगाना भी उनका एक शौक है। अपने छोटे-से खपरैल के चारों और उन्होंने इतनी सब्जियाँ अच्छे किस्म की लगा रखीं हैं कि उन्हें बाजार से खरीदनी नहीं पड़ती। खपरैलों पर चढ़ी हुई बेलें किसी मुनि कुटीर की स्मृति ताजी कर देती हैं। संध्या समय जब वे अपने छोटे भाई बहनों को उस कुटीर के सामने पढ़ाने बैठती हैं, तो सचमुच किसी ऋषि आश्रम से कम नहीं लगता उनका निवास स्थान।

अवकाश के समय पड़ौस की महिलाओं के पास जाकर उन्हें रसोई, गृह वाटिका तथा धूमहीन चूल्हों का प्रयोग का प्रशिक्षण देना उनको बहुत भाता है। साधारण सिलाई-कढ़ाई भी सिखाती हैं वे उन्हें। बच्चों को पढ़ाना तथा प्रौढ़महिलाओं को साक्षर बनाना उनकी विशेष अभिरुचि है।

इसके अतिरिक्त वे सार्वजनिक आयोजनों में भी सदा सक्रिय भाग लेती हैं। विचारगोष्ठियों, प्रशिक्षण शिविरों तथा विकास बैठकों में आप सदा उन्हें सबसे आगे पायेंगे।

ऐसी है कु. चेनकम्मा, जिनकी आयु मुश्किल से २३ वर्ष होगी। अभी आज की पढ़ी-लिखी लड़कियाँ यदि इतनी लगन के साथ एक-एक दिशा में भी पग बढ़ायें तो समाज की दुरावस्था तथा दरिद्रता दूर होते देर न लगे। वे तो केवल कक्षा पाँच तक ही पढ़ी हैं।

साहसी महिला ने अजगर को परास्त किया

कटक जिले की एक ग्रामीण महिला घायल स्थिति में जब चिकित्सालय पहुँची, तो उसे देखने वालों की भीड़ को सँभालना मुश्किल पड़ गया, उस समय वह बेहोश स्थिति में थी। उस महिला में न कोई आकर्षण था और न पैरों में हुये उसके घावों में। पर उस क्षेत्र में सुनने वाले प्रत्येक व्यक्ति ने महिला के साहस की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। जिसने भी यह सुना कि एक महिला ने अजगर को परास्त कर अपने प्राणों की रक्षा की है।

घटना इस प्रकार हुई। कटक से बीस मील दूर ठाली जोड़ा नामक जंगल में यह महिला घास काटने गई थी। काफी देर तक घास काटकर उसने ढेर लगा लिया। उससे कुछ ही दूरी पर एक अजगर सो रहा था। अजगर का मुँह घास में छिपा था अतः महिला ने उसे पेड़ का तना समझा, पर ज्योंही उसके निकट जाकर घास छीलने का उपक्रम करने को हुई कि अजगर ने उसको पकड़ लिया। जंगल सुनसान था। वहाँ उसकी चीख-पुकार को सुनकर सहायता करने के लिए भी आने वाला कोई न था।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अजगर ने पैरों की ओर से उस महिला को निगलना शुरू कर दिया। बेचारी के दोनों पैर अजगर के मुँह में चले गये थे। फिर भी उसने साहस न खोया। अकेले ही अजगर से लड़ने का निश्चय किया। उसने सोचा यह दस फुट लम्बा अजगर वैसे भी उसके शरीर को अभी देखते ही देखते निगलने वाला है। अब जीवन तो समाप्त होगा ही अत: क्यों न इससे छुटकारा पाने के लिए प्रयास किया जाय। उसके हाथ में घास काटने वाला दराँत तो था ही, उसी से अजगर के मुँह और गर्दन पर एक के बाद दूसरा प्रहार करना शुरू कर दिया। अब तो अजगर का प्रलयंकारी रूप ही दिखाई दे रहा था। चोट पर चोट पड़ने से उसके क्रोध का ठिकाना न था, भयंकर रूप से वह भी महिला से भिड़ा हुआ था।

थोड़ी ही देर में अजगर की गर्दन कट गई और उस महिला ने अपने को उसके पाश से मुक्त कर लिया। भयानक अजगर पर साहस ने विजय प्राप्त की। यदि वह रोती-चिल्लाती रहती तो उसके शरीर का पता लगाना भी मुश्किल होता। रात्रि को काफी देर तक उसके घरवालों ने प्रतीक्षा की, काफी रात हो जाने पर कई लोग जंगल की ओर तलाश करने निकले, जहाँ अचेतन अवस्था में उसे प्राप्त किया।

सुखी जीवन के मध्य कौन-सा समय आपत्तियों का आ जाय, पहले से कुछ भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता। आये दिन दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। चोरों के द्वारा आक्रमण, अग्निकाण्ड, कार, मोटर, टैक्सी या साइकिल की टक्कर से घायल होने की स्थिति उत्पन्न होना, रेल दुर्घटना, पानी में किसी का डूबने लगना, जंगली जानवर द्वारा आक्रमण कर देना ऐसी अनेक घटनाएँ हैं, जिनसे अनेक व्यक्तियों को प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। इन घटनाओं के बीच अनेक व्यक्तियों को सुरक्षित भी देखा गया है। कितने ही व्यक्ति अपनी सूझ-बूझ से भयंकर परिणामों को भी कम कर देते हैं।

ऐसे संकट के क्षणों में यदि अपने मानसिक सन्तुलन को बिगड़ने न दिया जाय, तो घटना को टाला जा सकता है। आपत्ति के सम्मुख जिनकी बुद्धि कार्य नहीं करती, सोचने की शक्ति कुण्ठित हो जाती है। हाथ-पैरों में लकवा जैसी स्थिति हो जाती है, वे तो उस दुर्घटना में अपने को समर्पित ही कर देते हैं।

जिनका आत्म-विश्वास जाग्रत रहता है, आशा की ज्योति मार्ग प्रशस्त करती रहती है, मृत्यु से कभी घबड़ाते नहीं, मानसिक सन्तुलन नियन्त्रित रहता है, वे आने वाली हर आपत्ति का बड़े धैर्य से सामना कर लेते हैं और अपने स्वतन्त्र प्रयासों द्वारा उस आपत्ति से होने वाले दुष्परिणामों को कम से कम करने में सफल हो जाते हैं। ऐसा ही चमत्कार तो उस अकेली महिला ने जंगल में कर दिखाया था, जिसके साहस की प्रत्येक सुनने वाले व्यक्ति ने सराहना की थी।

बहिन ने भाई को वीर बनाया

कहते हैं कि भाई-भाई मिलकर पचासों के बराबर होते हैं। किन्तु भाई-भाई ही नहीं—भाई-बहिन भी मिलकर भाई-भाई की अपेक्षा कम नहीं होते—यह ग्राम लाईखेड़ा के धर्मदास तथा उसकी युवा बहिन चम्पा ने सिद्ध कर दिया।

ग्राम लाईखेड़ा बरेली जिले के नबावगंज थाने के क्षेत्र में पड़ता है। एक रात उस गाँव में डकैत घुस आये। डाकू १०-१२ की संख्या में थे तथा उनके पास लाठी, बल्लम, चाकू आदि के साथ बन्दूक, पिस्तौल आदि हथियार भी थे।

डाकुओं ने गाँव के बुद्धसेन कुर्मी के यहाँ धावा मारा। पूरी मोर्चाबन्दी से उन्होंने कार्य प्रारम्भ किया। बुद्धसेन तथा घर के लोगों के शोर से गाँव के लोग जाग गये। सहायता का प्रयास किया गया किन्तु सफलता न मिल सकी। बारूदी हथियारों के प्रभाव से किसी ग्रामीण को डाकुओं ने पास न फटकने दिया। केवल लाठी आदि हथियारों से दूर का मुकाबला सम्भव न था। डाकुओं का उत्साह सफल लूट से बढ़ा। उन्होंने सोचा चलते-चलते एक और सही ? और वह धर्मदास के मकान को लूटने का उपक्रम करने लगे।

धर्मदास अपने मकान में सचेत था। डाकुओं की गतिविधि समझते उसे देर न लगी। हाथ में लाठी लिए वह खड़ा था। किन्तु हथियारों से लैस डाकुओं से अकेले वह भी केवल लाठी के सहारे कैसे निपटेगा—यह शंका मन में उठ रही थी। तभी उसे सुनाई दिया 'भैया'।

उसने घूमकर देखा, उसकी १८ वर्षीय बहिन चम्पा हाथ में लाठी लिए धोती से कमर कसे खड़ी है। अवाक् भाई कुछ कहे तब तक बहिन बोली—'भैया सावधान !' डाकू अपने घर पर ताक लगा रहे हैं। चम्पा भी भाई की तरह डाकुओं की आहट ले रही थी और उसी तरह उनसे लोहा लेने के विचार से तैयार हो गई थी।

धर्मदास को लगा जैसे न जाने कितनी फौजी सहायता उसके पास पहुँच गई है। बहिन के साहस, दृढ़ता तथा वीर वेश ने उसके हौंसले कई गुने बढ़ा दिये। अब वह तैयार था, हर परिस्थिति से टक्कर लेने के लिए। भाई-बहिन ने तुर्त-फर्त योजना बनाई तथा कार्य प्रारम्भ कर दिया। डाकुओं की गोलियों से अपनी रक्षा करते हुए मोर्चा जमा दिया गया।

डाकू पिछली सफलता के उत्साह में अन्दर घुसे। पर यहाँ उनके स्वागत की पूरी व्यवस्था थी। डाकू सँकरे रास्ते से आगे बढ़े—मोड़ पर घूमे कि लाठी चटक उठी। उन्हें पीछे हट जाना पड़ा। फिर प्रयास किया गया किन्तु बेकार, बन्दूक की धमकी दी गई। किन्तु भाई-बहिन ने सैनिक सूझ-बूझ के साथ मोर्चा चुना था—बन्दूक वहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रभावशाली सिद्ध नहीं हो सकती थी—वे डाकू भी समझ रहे थे। एकदम सबके सब अन्दर सक्रिय हो भी नहीं सकते थे—बाहर वालों से भी तो खतरा था।

डाकुओं ने अपनी दुस्साहसिकता का परिचय देकर पिल पड़ने की ठानी। लाठी तथा चाकुओं से लैस कई डाकू तेजी से आगे बढ़े। किन्तु सामना करने वाली कच्ची मिट्टी के बने नहीं थे। पहले डाकुओं को अंदाज था, शायद दो लठैत उनके मुकाबले में हैं। किन्तु सामना होने पर चम्पा को चण्डी वेश में देखकर भौंचक्के रह गये। धर्मदास की लाठी सन्नाई और चम्पा भाई से भी एक कदम आगे सिद्ध हुई। दोनों की लाठियों के जौहर के आगे वे अपने उद्देश्य में सफल न हो सके। भाई की ओर बढ़ते एक डाकू पर प्रहार करके चम्पा ने उसका चाकू भी गिरा लिया। एक और डाकू को लाठी छोड़कर भागना पड़ा।

संघर्ष में उन दोनों के भी चोटें आईं। किन्तु डाकू भी कम चोटें नहीं खाये थे। उन्हें भी पता पड़ गया कि भारतीय रमणियाँ अभी भी लक्ष्मीबाई तथा दुर्गावती की तरह शारीरिक शौर्य में पुरुषों से पीछे नहीं हैं। सारे गाँव ने भाई-बहिन विशेषकर चम्पा के साहस एवं सूझ-बूझ की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

साहस की देवियाँ

राजस्थान के जिला झुझनू में सूरजगढ़ थाने के निकट सुखराम किठानी गाँव की एक शाम। खेत से गाय लेकर गृहपति अभी दूध दुहकर पशुओं को चारा-पानी देकर घर में आ बैठे ही थे। बच्चों से हँसी-ठिठोली, कहानी और गपशप चल रही थी। सारे दिन कठोर मेहनत की थकान भूलकर घर के आँगन में गाँव के चौपाल पर बैठकर आनन्द मना रहे थे।

हँसी-खुशी का वातावरण देखकर लगता था गाँव में विश्व नवेली की पालकी आयी हो और उसका स्वागत सभी ग्रामवासी मिलकर कहीं ढोलक की थाप और ठंडे देहाती गीतों में, तो कहीं हँसकर-मुस्करा कर, गृहस्वामिनियाँ घर के ताक में दीपक जलाकर कर रही हों।

रात के भोजन से निवृत्त होकर सभी लोग रजाई में दुबकने लगे। वातावरण धीरे-धीरे नीरव होने लगा और निशा अपनी दूसरी कला फैलाकर—गाँव की झोंपड़ियों के ऊपर अन्धकार की एक और पर्त चढ़ाकर पूरी तरह उतर आयी थी। किन्हीं-किन्हीं घरों में दादी-अभी भी अपने नन्हे-मुन्हे पोतों को चन्दा-तारों की कहानियाँ सुनाकर सुलाने का उपक्रम कर रही थी।

अचानक गाँव में एक के बाद एक तीन गोलियाँ चलने की आवाज आयी और दादी की कहानियों का क्रम भी टूट गया। रात्रि की नीरवता, भयावह मौन में बदल गयी। जो जाग रहे थे। उन्होंने उठकर घर के किवाड़ों की कुण्डियाँ टटोलीं, कहीं खुली तो नहीं रह गयी हों। गाँव में डाकुओं ने अपने आगमन का आभास दिया था। पिछले दिनों आस-पास के गाँवों में डकैतियों का क्रम चल रहा था। संध्या का धुधलका ढलते ही गोलियों की आवाज, फिर किसी घर से हृदय को बेध देने वाली चीख-पुकार—कभी किसी कण्ठ का अन्तिम आर्तनाद और फिर लगता सब कुछ लुट गया है और उसके बाद मौत का सा गहरा सन्नाटा छा जाता। लोग डर के मारे घर से बाहर नहीं निकलते थे। पता नहीं कब किस डकैत की गोली हृदय छेदती चली जाये।

परन्तु इस गाँव में डाकू पहली बार आये थे। आस-पास की डकैतियों के समाचार सुनकर ही ग्रामवासी अपनी शक्ति-सुरक्षा के उपाय कर सन्तुष्ट सोये रहते थे। डाकू गाँव की चौपाल पर घेराबन्दी की योजना बना रहे थे। मन में बैठा असुर निर्भय स्फुट आवाज में बोल रहा था जिसकी आवाज आस-पास के घरों में सोये लोगों के हृदय दहला रही थी। अचानक पूर्व दिशा में स्थिति घर का दरवाजा खुला। डाकू आश्चर्य से देखने लगे। वे कुछ सोचते ही इतने में तीन लड़कियाँ—साक्षात् चण्डी की तरह निकलीं और उनकी लाठियाँ डाकुओं के सिर पर पड़ने लगीं। वे एकदम घबरा उठे। कुछ का मनोबल एकदम टूट गया। पास में बन्दूक होते हुये भी लड़कियों का सामना करने का साहस नहीं हुआ। होता भी कैसे असुरता देवत्त्व के तनिक से साहस के आगे जरा भी कहाँ ठहरती है। सो कुछ भागे और कुछ को लाठियों के वार खाते हुये कुछ न सूझ पड़ा। वे बड़ी बुरी तरह बिल-बिलाने लगे।

बाहर की इस उठापटक में अन्दर सोये हुये ग्रामीणों के पौरुष को झकझोर दिया और वे भी लाठियाँ ले लेकर निकल पड़े। तब तक तो सारे डाकू भाग खड़े हुए थे। लड़कियों से बुरी तरह पिटने के कारण एक डाकू तो तत्काल ही मर गया तथा उसका ही एक और साथी पकड़ लिया गया।

सुबह खबर मिलने पर पुलिस आयी। डी. आई. जी. ने भटेरी, गीता और शिवकुँवरी के शौर्य की तुलना झाँसी की रानी के साथ की और तीनों को पुरस्कृत किया।

वीरांगनाएँ ही पति की सहायता कर सकती हैं

बुलन्दशहर से शिकारपुर जाने वाली सड़क पर ११वें मील के लगभग डकैतों की एक भिड़न्त में एक

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुलिस इन्सपेक्टर की पत्नी ने अपने पति को दस्यु दल से किस प्रकार बचाया, इसका साहसपूर्ण समाचार मिला है।

खबर है कि बस यात्रियों को लेकर सायंकाल रवाना हुई। उसमें कोई धनी महाजन यात्रा कर रहा था। डाकू उसका दिल्ली से पीछा कर रहे थे। बसों में लूटपाट अक्सर ऐसे ही कारणों से होती है, लोग इस तरह की जोखिम साथ लेकर न चला करें तो ५० प्रतिशत दुर्घटनायें अपने आप बन्द हो जायें।

एक पुलिस सब-इन्सपेक्टर अपनी धर्मपत्नी के साथ उसी बस की अगली सीट पर बैठे सफर कर रहे थे। ८॥ बजे के लगभग डकैतों का दल आगे आ गया और बस रुकवा ली। उसमें से एक ने पुलिस इन्स्पेक्टर पर गोली चला दी। संयोग से बार खाली गया। इन्स्पेक्टर ने बाहर कूदकर उसकी पिस्तौल छीन ली पर जब तक वह कोई जबावी कार्यवाई करें, तब तक दूसरे डकैतों ने उन्हें गिरा लिया। दोनों तरफ से गुत्थम-गुत्था हो गई।

बाहर यह द्वन्द्व चल रहा था और बस के भीतर अन्य सब मुसाफिर प्राणों का भय लिये चुपचाप बैठे तमाशा देख रहे थे, इन्हीं कारणों से गुण्डा तत्त्वों की प्राय: जीत होती है। देखने वाले यह समझते हैं कि हमें क्या मतलब, हमसे कोई सरोकार नहीं तो हम क्यों छेड़ें। बुरे लोगों के खिलाफ सामूहिक शक्ति प्रदर्शन किए जायँ तो उनकी एक दिन दाल न गले। स्वार्थवादी दृष्टिकोण का ही परिणाम होता है कि लोग इसी तरह सताए जाते हैं, जिस तरह एक किसान द्वारा चार व्यक्तियों में फूट डालकर उन्हें पीटने की कहानी याद आती है।

आखिर जब कोई सहायता के लिये बाहर निकलता न दीखा तो इन्स्पेक्टर की धर्मपत्नी ने विचार किया—"अरे सब चुप बैठे हैं तो क्या मैं भी चुपचाप अपने पति को यों मरता हुआ देखूँ। इतनी कमजोर तो नहीं हूँ कि इन्हें जीवन-भर सहयोग देने का जो वचन दिया था, वह भी पूरा न कर सकूँ। विधवा होकर जीने से तो अच्छा है मैं भी मर जाऊँ पर अपने पतिदेव को यों निस्सहाय नहीं देख सकती .?"

फिर क्या था सिंहनी की भाँति तड़पकर वह भी कूदी और एक डकैत की गर्दन पर जोर का घूँसा दिया। जब तक वह मुड़े, उसने हाथ से पिस्तौल छीन लिया। पिस्तौल छिना था कि डकैत घबड़ा गया और एक ओर भागा, तब कि उस स्त्री ने उसमें से एक गोली जो दागी तो शेष डकैतों के भी दम खुश्क पड़ गये, जान छुड़ानी मुश्किल पड़ गई। डाकू अँधेरे में एक ओर भाग खड़े हुये। इन्स्पेक्टर को भी कोई बड़ी चोट नहीं आई।

बस में बैठे यात्रियों में कुछ ऐसे थे, जो उस स्त्री के अपूर्व साहस की प्रशंसा कर रहे थे और अनुभव कर रहे थे कि स्त्री को बन्धन में रखकर मनुष्य समाज ने बड़ी भूल की है। यदि इन्हें भी पुरुषों की भाँति कठोर सामाजिक बन्धनों से मुक्त रखकर आत्मविकास की सुविधायें मिलें, तो यह सच्चे अर्थों में पुरुषों की सहयोगिनी सिद्ध हो सकती हैं।

बस फिर चल पड़ी। कई लोग अपनी कायरता छुपाए नीचे मुँह गड़ाए बैठे थे, कुछ बगलें झाँक रहे थे पर इन्स्पेक्टर और उनकी धर्मपत्नी के चेहरों पर साहस और कर्त्तव्यपरायणता का ओज झलक रहा था। दाम्पत्य जीवन में ऐसी आत्मिक जाग्रति हो तो मनुष्य का कितना भला हो ? पर यह सम्भव तभी है, जब नारियों को भी आत्मविकास के लिए सच्चा अवसर मिले।

निरभिमानी साहसी बाला—सरस्वती

होशंगाबाद में पिछले दिनों सोलह वर्षीय धीवर कन्या का सार्वजनिक सम्मान किया गया। राज्य सरकार ने भी इस लड़की को पुरस्कृत किया है, परन्तु इस साहसी बाला के शौर्य का महत्त्व तो इन पुरस्कारों से भी कई गुना अधिक है।

पिछले दिनों तेज बारिश कई दिनों तक होती रही परिणामस्वरूप देश की कई नदियों में बाढ़ें आयीं और जन, धन की अपार क्षति हुई। प्रकृति की इस विनाश लीला को विवश मानव बड़ी निरीहता के साथ देखता रह गया। इन प्रकोपों का कोई उपचार भी तो नहीं है। परन्तु इस धीवर कन्या ने सिद्ध कर दिखाया कि प्राकृतिक प्रकोपों का भले ही कोई इलाज न हो, मनुष्य अपने भाईयों के लिए बहुत कुछ कर सकता है। उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध और प्रयत्न तो हर कोई कर सकता है।

बाढ़ के समय सोलह वर्षीय सरस्वती अपने पिता के साथ पास के ही गाँव माला खेड़ी में थी। तभी 'बचाओ-बचाओ' का शोर सुनाई दिया। कौतूहलवश ही सरस्वती अपने घर से बाहर निकली और देखा कि चारों ओर नर्मदा की लहरों से घिरे दो व्यक्ति सहायता के लिए पुकार रहे हैं।

सरस्वती का हृदय आन्दोलित हो उठा और उसने अपने वृद्ध पिता से नर्मदा में डोंगी छोड़कर उन व्यक्तियों को बचाने के लिए कहा। क्रुद्ध लहरों में डोंगी डालकर कोई भी अपने प्राण खतरे में डालना नहीं चाहता। पहले पिता ने और बाद में अन्य व्यक्तियों ने भी सरस्वती से चुप रहने के लिए कहा। सब के इन्कार कर देने पर सरस्वती अकेली ही चल दी और उसने नर्मदा में अपनी डोंगी छोड़ दी और पेड़ पर अपनी सुरक्षा के लिए जूझते हुए उन दोनों को बाहर निकाला।

तभी पता चला कि पास का पूरा गाँव ही बाढ़ से घिरा हुआ है और उस गाँव में डेढ़-दो सौ स्त्री-पुरुष तथा बच्चे अपने जीवन को खतरे में डाले हुए हैं। सरस्वती ने अपने पिता से फिर कहा और डोंगी लेकर उन्हें बचाने के लिये चल दी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

५.२६ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

अबकी बार ज्वरग्रस्त पिता भी साथ ही गया। पिता पुत्री दोनों मिलकर डोंगी द्वारा बाढ़ से घिरे गाँव में पहुँचे और जितने व्यक्ति लाये जा सकते थे, उतने बिठाकर ले आये। आठ-आठ दस-दस व्यक्तियों को एक-एक बार में लाकर उन्हें सुरक्षित स्थान तक पहुँचाने का क्रम चल पड़ा। बार-बार के इस चक्कर में कब सुबह से शाम हो गयी कुछ पता ही न चला। अँधेरा हो चला, हाथ को हाथ नहीं दीखता था फिर भी सरस्वती और काशीराम दोनों बिना हारे-थके, लोगों की आवाजें को सुनते हुए उनके सहारे अपने काम में लगे रहे।

आवाजों के सहारे बाढ़ से घिरे लोगों तक पहुँचने और रोशनी के सहारे वापस लौटने में ही रात भी बीत गयी। भूख-प्यास को भूलकर बिना हारे-थके दोनों पिता-पुत्री अपने भाईयों को बचाने में ही लगे रहे।

दो दिन और एक रात के अनथक प्रयासों से आखिर सभी लोगों को बचा लिया गया। इनकी संख्या डेढ़ सौ से भी अधिक है। जो लोग सरस्वती की सहायता से अपना जीवन पा गये हैं उन्होंने कहा है कि—''इस नटखट बिटिया ने हमारी जिन्दगी बचाई। उस दिन तो सचमुच इसने शक्ति माँ का रूप धारण कर लिया था।'' लोगों ने बाद में पैसे भी देने चाहे परन्तु उसने यह कहकर इन्कार कर दिया कि मैंने यह काम कोई पैसों के लिए थोड़े ही किया था।

सरस्वती अपने पिता की तीन बेटियों में सबसे बड़ी है। उसके चार भाई और भी हैं। स्मरणीय है यह कन्या बचपन से ही लँगड़ी है। धीवर की बेटी होने के कारण उसे तैरना भी खूब आता है। उसका कहना है कि मैं नर्मदा की बेटी हूँ। इसलिए बिना झिझक उसकी लहरों में चली गयी और गाँव वालों को बचा लाई।

व्योम विजयिनी—शीला स्काट

मातृत्व के प्राकृतिक दायित्व तथा गृहिणी के पारिवारिक, सामाजिक दायित्व का निर्वाह करती आ रही नारी शारीरिक बल में पुरुष से पीछे भले ही रह गयी हो किन्तु उसकी ये क्षमताएँ पुरुषों से किसी भी स्थिति में कम नहीं हैं। साहस के क्षेत्र में तो वह पुरुष के समान ही अपनी कीर्ति पताकाएँ फहरा सकती है। ४४ वर्षीया ब्रिटेनवासी महिला शीला स्काट ने अपनी हवाई उड़ानों द्वारा इस सच्चाई को उजागर किया है।

पिछले दिनों यह साहसी महिला विश्व की परिक्रमा करते हुये ५४,००० किलोमीटर की हवाई यात्रा सम्पूर्ण करके जब लन्दन के हवाई अड्डे पर उतरी, तो अपार जन समुदाय ने साश्चर्य उनका अभिनन्दन किया। उन्होंने विश्व-स्तर पर सात नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं।

उनकी इस साहसिक सफलता की बात पढ़-सुनकर मस्तिष्क में उनकी जो तस्वीर उभरती है वह उन महिलाओं की सी होती है, जो सामान्यतया खेल प्रतियोगिताओं में भाग लेती हैं। उनके दृढ़ अवयव और चेहरा-मोहरा पुरुषोचित रुक्षता का परिचायक होता है किन्तु शीला स्काट इस कल्पना-चित्र से नितान्त भिन्न सुन्दर, भावपूर्ण चेहरे वाली छर-हरे बदन की महिला हैं।

बचपन में उनकी चाह थी कि वायुयान चालक बने किन्तु भाग्य ने उन्हें फैशन माडल बना दिया। मॉडलिंग का काम सुन्दर-आकर्षक युवतियों को ही मिलता है। उन्होंने मॉडलिंग व सैनिक अस्पताल में नर्स का काम करते हुए १९५९ में विमान पालन सीखा।

जब वे किसी वस्तु का विज्ञापन व अन्य किसी प्रयोजन के लिये मॉडल बनती थीं, तो उनके मन में एक अजानी वितृष्णा उत्पन्न हो जाया करती थी। जिसे उन्होंने बाद में जाना ''क्या नारी केवल प्रदर्शन की वस्तु भर है। शारीरिक सौन्दर्य ही क्या उसकी चरम सार्थकता है ?'' इस प्रकार की अस्पष्ट सी आत्म-प्रताड़ना उन्हें खिन्न बना देती थी। तब उन्होंने साहस के क्षेत्र में नारी के नये कीर्तिमान स्थापित करने आरम्भ कर दिये।

१९५९ में वायुयान चलाने का शिक्षण सम्पन्न करके उन्होंने पाइलट का लाइसेंस प्राप्त किया। उसके बाद उसी वर्ष उन्होंने वायुयान चालन की जोन लेनोक्स ट्राफी जीती। तब से वे समुद्री विमान तथा हेलीकॉप्टर की पायलट भी बन चुकी हैं। उन्होंने गुब्बारा दौड़ों में भी भाग लिया तथा विश्व में रिकार्ड स्थापित किया।

१९६० में वे पहली बार ब्रिटेन की राष्ट्रीय-विमान स्पर्धाओं में भाग लेने के लिये मैदान में उतरीं तथा सफल हुईं। कुछ ही समय में उन्होंने पचास ट्राफियाँ जीतकर महान उड़ाका के रूप में प्रसिद्धी प्राप्त कर ली। १९६६ में दो दिन की उड़ान में उन्होंने १५ रेकार्ड तोड़े। १९६५ तथा ६६ में उन्हें रॉयल एयरो क्लब का सर एलन कोब हेम पुरस्कार प्रदान किया गया।

केवल छह-सात वर्षों में महान उड़ाका बन जाने के पीछे उनका दृढ संकल्प, धैर्य, कठिनतम साधना तो थी ही साथ ही साथ यह भावना भी उन्हें सफल बनाने में सहायक रही थी कि वे नारी को साहस के क्षेत्र में पुरुषों के समान ही सिद्ध करके नारी-समाज के सम्मुख आदर्श उपस्थित करना चाहती थीं।

१९६६ में उन्होंने अपना प्रसिद्ध विमान 'पाइपपर' खरीदा। उसके पश्चात् तो उनके नाम की दुनिया में धूम ही मच गयी। १९६६ में उन्होंने पूरी दुनिया की ३०,००० मील से अधिक की यात्रा ३३ दिन में पूरा करके सबको आश्चर्यचकित कर दिया। उसके पश्चात् तो वे विश्व-स्तर पर कायम किये गये रेकार्डों को एक-एक करके तोड़ती चली गयीं। डार्विन से लन्दन तक की एकाकी उड़ान उन्होंने ५ दिन में पूरी की, जबकि पहला रेकार्ड ६ दिन का था। उत्तरी ध्रुव के आर-पार एकाकी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उड़ान भरने में भी उन्होंने रेकार्ड तोड़ा। अब तक वे सौ नये रेकार्ड बना चुकी हैं। साहस की यह देवी महिलाओं में नयी प्रेरणा भरने की पर्याप्त है।

ग्रामीण महिलाओं ने चोर को रँगे हाथों पकड़ा

गंठाली गाँव (जयपुर) का एक ग्रामीण परिवार। उस दिन परिवार के सभी पुरुष आवश्यक कार्य से कहीं बाहर चले गये थे। घर पर तीन महिलाएँ और बच्चे ही शेष थे। रात्रि का समय। चोरों को कैसे भी पता लग गया कि इस घर में कोई पुरुष नहीं है। अत: चोरी करने में सुविधा होगी। उन्हें यह ज्ञात न था कि आपत्ति के समय मुकाबला करने के लिए अबला कही जाने वाली नारियाँ भी सबला बन सकती हैं।

रात्रि में माताएँ अपने बच्चों को लिये सो रही थीं। ऐसे समय तीन चोर आये और उन्होंने बाहर की दीवार काटकर अन्दर कमरे में घुसने का प्रयास किया। दीवार टूटने की आवाज एक महिला ने सुनी, उसने अन्य दोनों महिलाओं को भी धीरे से जगाया और कहा—'ऐसा लगता है कि चोर दीवार काट रहे हैं।' बच्चों को वैसे ही सोने दिया। तीनों महिलाएँ धीरे से उस कमरे में गईं जिधर से आवाज आ रही थी। उन्होंने घबराकर रोना-चिल्लाना शुरू नहीं किया वरन् मिलकर चोरों का सामना करने की ठानी। वे अच्छी तरह जानती थीं कि चोर खाली हाथ नहीं आते, उनके पास छोटे-बड़े हथियार भी होते हैं और अपने बचाव के लिये जो कुछ करना सम्भव होता है, वह भी करते हैं।

यदि अन्य कोई महिलाएँ होतीं तो चोर की आहट से रोने, चिल्लाने लगतीं और मुहल्ले भर के व्यक्तियों को जगाकर एकत्रित कर लेतीं पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। वह दीवार की आड़ में खड़ी हो गईं। अब तक दीवार फूट चुकी थी। एक चोर ने उस छेद में से अपनी टाँगें निकाल कर कमरे में घुसने का प्रयास किया। इधर तीनों महिलाओं ने कसकर उसके पैर पकड़ लिये। वह चोर अब मुसीबत में फँस गया, न बाहर को अपने पैर खींच पा रहा था और न अब अन्दर घुसना ही सम्भव था। एक महिला वहाँ से चली आई और पानी भरने की रस्सी जो आँगन में पड़ी थी। उठाकर ले गई और उसके दोनों पैर कसकर बाँध दिये।

बाहर खड़े चोर उसे बाहर खींच रहे थे और तीनों महिलाएँ अन्दर की ओर खींच रही थीं। अन्त में महिलाओं को अपने हाथ से बाजी जाती दीखी। काफी देर से यह रस्साकसी चल रही थी। महिलाएँ पसीने-पसीने हो गईं, अब यही तरीका समझ में आया कि इस चोर का पैर काट डालना चाहिये। उनमें से एक महिला ने गड़ासी लाकर चोर की एक टाँग ही काट दी। अब तो खून बहने लगा। बाहर खींचने वाले दोनों चोर अपने साथी को छोड़कर भाग गये। बाद में पड़ौसी लोग भी जग गये और दीवार में फँसे चोर को निकाला पर उस चोर ने बाद में अपने साथियों के भी नाम बता दिये। इस प्रकार घर की तीन महिलाएँ तीन चोरों को पकड़ने में सहायक सिद्ध हुईं और उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि आपत्तिकाल में वे भी उतना ही कार्य कर सकती हैं जितना घर में रहने वाले पुरुष।

वीर बालिका का साहस

घटना सम्पूर्ण सत्य है, केवल स्थान का नाम और पात्रों का परिचय अप्रकट रखा जा रहा है।

एक १९ वर्षीय लड़का कलकत्ते आया। वहाँ कुछ दिन नौकरी करने के बाद उसने रोजगार शुरू कर दिया। उसमें उसे जो लाभ हुआ, उसे जमा करता रहा। २ वर्ष में उसने कोई ६-७ हजार रुपये बचाये। बच्चे में कोई अवगुण नहीं था, फिजूल-खर्ची नहीं करता था और मेहनत से काम करता था। उद्योगी-युवक ने इसी तरह ये पैसे बचाये थे।

इसी बीच घर से तार आया, कोई बीमार था और उसे तुरन्त बुलाया गया था। बच्चे ने अपने रुपये एक पोटली में बाँधे और घर के लिये प्रस्थान किया। कुछ जेबकटों को इसका पता चल गया। उन्होंने उसका पीछा किया। किन्तु युवक मेहनती ही नहीं चुस्त और सर्तक भी था। जेबकटों की अनुचित चेष्टाओं से उसने ताड़ लिया कि कहीं कोई गड़बड़ है। रेलगाड़ी का सफर उसने बड़ी चतुरता से तय किया।

घर के लिये जिस स्टेशन पर उतरना था, वह छोटा-सा स्टेशन था और वहाँ गाड़ी अँधेरे में पहुँचती थी। दूरदर्शी युवक ने पहले ही विचार कर लिया कि यदि वहाँ उतरा तो न केवल धन ही असुरक्षित रहेगा वरन् जान जोखिम भी हो सकती है। अस्तु, वह पहले ही एक कस्बे वाले स्टेशन पर गाड़ी से चुपचाप उतर गया। यहाँ उसका कोई परिचित तो नहीं था, पर उसका विवाह सम्बन्ध यहीं की एक लड़की से निश्चित हो चुका था। युवक सीधे वहीं चला गया और अपने ससुर को सब बातें स्पष्ट कर दीं। रात वहीं ठहरने का प्रबन्ध हो गया।

लोभ भी कैसी बुरी बला है कि उसके पीछे मनुष्य उचित-अनुचित का भी ध्यान नहीं करता। बदमाशों से बचा तो अब ससुराल वालों ने डाढ़ जमाई। लड़के के दो होने वाले साले भी थे, उनका धर्म डिग गया और उन्होंने रात में उसके रुपये निकाल कर मार डालने की योजना बनाई। किसी तरह इस बात का पता उस लड़की को भी चल गया, जिसके साथ उस युवक का विवाह पक्का हुआ था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लड़की पहले तो घबराई पर अन्तत: उसने निश्चय कर लिया कि अन्याय के विरुद्ध वीरतापूर्वक संघर्ष किये बिना काम नहीं चलेगा। यद्यपि उसके शील और चरित्र की निष्कलंकता का भी प्रश्न था, लज्जा भी थी, पर शरणागत भावी पति की रक्षा भी तो एक बहुत बड़ा कर्त्तव्य था। दुष्टता के विरुद्ध साहसपूर्वक लड़ना क्या किसी पुण्य से कम था ?

रात का एक पहर बीता और लड़की दबे पाँव उस कमरे में प्रविष्ट हुई, जहाँ वह युवक बेखबर सो रहा था। लड़की ने चुपचाप उसे जगाया और कड़ी निगाह करके कहा—चुपचाप मेरे पीछे चले आओ, कोई गड़बड़ मत मचाना अन्यथा भला न होगा।

युवक एकाएक समझ न सका। लड़की ने उसे सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया। इसी बीच उसका पिता उसी चारपाई में जा सोया। उसके दो घण्टे बाद ही सालों ने अपने पिता को ही जा दबोचा। गला दाबकर सारे शरीर की तलाशी ली। रुपये तो नहीं मिले पर पिता जी संसार छोड़कर चले गये। पीछे जब उन्होंने बत्ती जलाकर देखा तो अपने पिता को मृत-पाकर अवाक् रह गये।

उन्होंने बचने के लिये सारा दोष जमाई पर लगा कर रिपोर्ट थाने में लिख दी, पर जब पुलिस घटना-स्थल पर पहुँची तो लड़की ने सारी बातें सत्य-सत्य कह दीं। दोनों भाई गिरफ्तार कर लिये गये और उस लड़की के साहस की बड़ी प्रशंसा की गई।

युवक ने हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की और उसी समय लड़की को लेकर अपने घर लौटा। विवाह-संस्कार बाद में घर पर ही सम्पन्न हुआ।

एक अनपढ़ किन्तु साहसी महिला की सूझबूझ

तब कुछ उदार मुहल्ले वालों ने उन जले हुए चोरों को ले जाकर अस्पताल में भरती किया। यों मरने जैसी दशा तो नहीं थी। किन्तु हालत बहुत ही खराब थी।

बात यों हुई कि दो चोरों ने किसी प्रकार यह पता लगा लिया कि उक्त घर में महिला आज अकेली है। उसके पति किसी काम से बाहर गये हुए थे। शाम से ही वे दोनों घुसकर घर के किसी गुप्त स्थान में बैठ गये और अधिक रात होने की प्रतीक्षा करने लगे। गृहिणी ने आवश्यक काम निपटाये और खिला-पिलाकर बच्चों को सुला दिया, स्वयं भी लेट गई। करीब एक घण्टे बाद ग्यारह-बारह बजे के लगभग किसी खरखराहट की आवाज से उसकी नींद टूट गई। आहट निरन्तर बढ़ रही थी और तरह-तरह की आवाजों में बदल रही थी। उसके पास वाले कमरे में ही जिसमें कि ट्रंक आदि रखे थे, कोई किसी चीज के प्रहारों द्वारा ताला तोड़ने का प्रयत्न कर रहा था।

इस समय कोई साधारण मनोभूमि की महिला होती तो चिल्ला ही पड़ती या फिर डर के मारे बोल ही नहीं निकल पाता। किन्तु वह स्त्री जिसके घर इस समय चोर चोरी करने के प्रयास में लगे हुए थे, काफी समझदार तथा साहस वाली थी। उसने सोचा कि चिल्लाने से तो अभी हाल में मुझे ही धर दबोचेंगे और पता नहीं कितने हों ये और क्या-क्या न कर बैठें। अत: शोर मचाने की अपेक्षा चुपचाप किसी प्रकार घर के पिछबाड़े से जाकर पड़ौसियों को जगा देना चाहिये।

पर हुआ कुछ और ही। उन लोगों से जब ताला न टूटा तो वे सीधे-सीधे उक्त महिला के कमरे में घुस आये और कहा कि चाबी दे दो, नहीं तो हम तुम्हारे बच्चों को अभी समाप्त कर देंगे। इस समय उस साहसी महिला ने जो योजनाबद्ध काम किया, वह कल्पनातीत है।

वह बोली कि मैं तो अपने पति से वैसे ही बहुत परेशान रहती हूँ। ये चाबियाँ लो, सब सामान बाँध लो और मुझे भी साथ ले चलो। लेकिन चलने से पहले मैं साथ के लिये कुछ खाना बना लूँ। वे पता नहीं क्या सोचकर राजी हो गये और महिला की बात पर विश्वास कर लिया। वह परिवार निम्न स्तर का था। अशिक्षित तथा छोटी जाति के लोग थे। शायद इसलिये वे उसकी बात पर विश्वास कर बैठे।

उस स्त्री ने चूल्हा जलाया और कढ़ाई में काफी तेल गरम होने रख दिया। इधर काफी सारा बेसन भी घोलकर रख लिया। आटा भी गूँथ लिया। जब तेल कड़कड़ाने लगा तो उसने उन्हें आवाज दी कि वे इस समय भी कुछ खा लें। सामने ही दो पटे बिछा दिये। जैसे ही वे बैठे कि उसने यह कहते हुए कि "कढ़ाइया तो उढ़की जात है, तनिक तिरछी धरी है" दोनों हाथों से कपड़े से कढ़ाई उठाई, उन दोनों के ऊपर इस अन्दाज से सारा तेल फैंका कि बिचारे ऊपर से नीचे तक बुरी तरह झुलस गये। अब क्या था, घर वालों के बदले चोर ही चिल्ला रहे थे सहायता के लिये।

लगता कुछ असंगत ही है किन्तु है यह सत्य घटना। बीच में अवसर पाते ही शोर मचाकर भी उनसे बचा जा सकता था किन्तु उस महिला ने सोचा कि अभी तो ये भाग जायेंगे, पर फिर रोज कहीं न कहीं जाकर उत्पात करेंगे। अत: इन्हें ऐसा सबक सिखाना चाहिये जिससे ये आगे भी ऐसा कुकर्म करने का साहस न कर सकें। भय तथा आतंक के समय भी यदि धैर्य तथा सूझ-बूझ से काम लिया जाय तो मुश्किलों से बचा जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अट्ठारह वर्षीया युवती का अदम्य मनोबल

जो लोग नारी को अबला कहते हैं—वे शायद चार शताब्दी पूर्व के युग की बात कहते हैं, जब मुस्लिम आक्रांताओं के अमानुषिक कृत्यों के भय से घर की चहारदीवारी में कैद करके उसे अबला बना दिया गया था। अवसर मिले तो नारी साहस तथा निर्भीकता में पुरुष से कभी पीछे नहीं। आइए एक ऐसी ही घटना का अवलोकन करें।

विवरण, बिहार शरीफ का है। ६ जून की रात को शकुन्तला नामक एक अठारह वर्षीया युवती के घर में डाकू घुसे।

सामान्य मनुष्यों का मनोबल तो इतना गिरा हुआ होता है कि चोर या डाकू का नाम सुनते ही या घर में उनके होने की सम्भावना होते ही वे अपना सन्तुलन खो बैठते हैं और विशेषत: सामान्य स्तर की नारियों के लिये चिल्लाना-रोना-चीखना ही एकमात्र अवलम्बन रह जाता है।

किन्तु शुकन्तला का मनोबल तथा निर्भीकता असाधारण स्तर की थी।

जब डाकू माल लेकर भाग रहे थे, तो सब यों ही हतप्रभ से खड़े देखते रहे। पर शकुन्तला ने विचार किया कि अनीति को यों चुपचाप खड़े देखते रहना या होने देना भी अपने आप में एक अनैतिकता है। सारा गिरोह ही भाग रहा था। शकुन्तला ने गिरोह के सरदार के पीछे भागना प्रारम्भ किया। इस बीच उसने कई बार चेतावनी दी कि वह उसका पीछा न करे।

पर वह तो इस समय जैसे साक्षात् दुर्गा बनी हुई थी। डाकुओं के सरदार-कुख्यात व्यक्ति—छोटका खलीफा ने तब शकुन्तला की ओर एक हथगोला फेंका। सौभाग्य से उसका निशाना चूक गया। किन्तु आगे भी फेंका जा सकता था या फिर किसी अन्य शस्त्र का भी प्रहार किया जा सकता था। पर इस समय शकुन्तला सोच रही थी कि भले ही प्राण क्यों न चले जायँ—इस दुष्ट को आज सबक सिखाना ही है।

दौड़ में वह सफल हुई और निकट जाकर उसने डाकू का पैर पकड़ लिया। खलीफा ने लाख प्रयत्न किया—किन्तु शकुन्तला के हाथों का वह बन्धन नागपाश जैसा हो रहा था, जो छुड़ाये न छूटता था।

खलीफा पहले ही काफी घायल था। शकुन्तला दौड़ में पीछा करते समय उसके पत्थर मारती रही थी। निरन्तर की मार व भागने की थकान एवं पकड़े जाने का भय तथा चोर का छोटा दिल—सबने मिलकर खलीफा को जैसे शक्तिहीन ही बना दिया था।

शकुन्तला तब तक खलीफा का पैर पकड़े रही, जब तक कि सब वहाँ न पहुँच गये। गिरोह के अन्य सदस्य भाग गये थे। पुलिस भी आ गई। खलीफा के पास सात अन्य बम भी प्राप्त हुए।

साक्षात् मौत से लड़ने की शक्ति का परिचय दिया था इस समय शकुन्तला ने। अठारह वर्षीया इस नवयुवती का यह अपराजेय साहस निश्चय ही प्रशंसा का प्रकरण है।

यह एक नमूना है उन युवतियों के लिये, जो अपने आपको निर्बल, अशक्त, दीन-हीन समझती हैं। यदि सोया मनोबल जगा लिया जाय, तो कम से कम अपनी सुरक्षा करने की सामर्थ्य तो अधिकांश नारियों में होती ही है। अपनी शक्ति तथा साहस का समुचित उपयोग प्रत्येक अनैतिकता का सामना करने में करना ही चाहिए।

ये साहसी पर्वतारोही महिलायें

पहले शौर्य और साहस के क्षेत्र में पुरुष वर्ग का लगभग एकाधिकार सा था। महिलाओं का क्षेत्र सन्तानोत्पादन, गृह संचालन तक ही सीमित था। भारतवर्ष में तो एक प्रकार से महिलाओं के लिए शरीर-साधना और साहस प्रदर्शन अनावश्यक ही समझा जाता था। उन्हें सुकुमार, कोमलांगी व छुई-मुई बनाये रखने में ही पुरुष वर्ग अपना हित और महिलाएँ अपनी उपादेयता समझती थीं। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि सुरक्षा के लिये उन्हें पुरुष का अवलम्बन अनिवार्य हो गया।

पाश्चात्य देशों में तो फिर भी नारी के लिये शरीर साधना—घुड़सवारी, तैरना, खेलना आदि प्रचलित था। पर भारत में तो उन्हें लोकलाज के ऐसे बन्धनों में जकड़ा गया कि शक्ति की प्रतीक सिंहवाहिनी दुर्गा की जातिधर्मा नारी अबला बन बैठी।

समय के साथ मान्यताएँ बदलीं। नारी को पुरुष की समानता का अधिकार मिला। यद्यपि वे समानता के स्तर को पा नहीं सकी है फिर भी प्रयास जारी है, इस दिशा में और आने वाले समय में वे हर क्षेत्र में समानता पा सकेगीं।

साहस के क्षेत्र में पिछले दिनों भारतीय नारी पर्वतारोहियों ने जो कीर्तिमान स्थापित किये हैं, वे नारी की इस प्रगति यात्रा के मार्ग में मील के पत्थर माने जा सकते हैं। दार्जिलिंग और उत्तरकाशी में स्थापित पर्वतारोहण प्रशिक्षण संस्थानों में पिछले वर्षों में जहाँ ४,५०० पुरुषों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया है, वहीं ६०० महिलाएँ भी प्रशिक्षित हैं।

सन् १९६२ में हिमालय-पर्वतारोहण-संस्थान की कुछ प्रशिक्षण पाने वाली महिलाएँ तेनसिंह नोर्के के नेतृत्व में २०,००० फुट ऊँचाई तक चढ़ने में सफल हो गयीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

५.३० यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

दूसरा प्रयास १६ जून, १९६३ को किया गया। इस दल में स्त्री-पुरुष दोनों सम्मिलित थे। यह दल २२,७४२ फुट ऊँचे कैलाश शिखर पर चढ़ने में सफल हो गया। इस दल की महिला सदस्याएँ कुमारी नन्दिनी पटेल तथा कुमारी कोकिला मेहता थीं। जिनका नेतृत्व गुजरात के पर्वतारोही श्री ध्रुवकुमार पण्ड्या कर रहे थे।

२० जून, १९६३ को नन्दिनी पटेल, कोकिला मेहता तथा गिरा शाह २२,३०० फुट ऊँचे मात्रि शिखर पर चढ़ने में सफल हुईं। इस शिखर पर उन्होंने भारत का राष्ट्रीय ध्वज फहराया। यह सफलता इन महिलाओं के साहस की विजय थी।

महिलाओं के इस सफल प्रयास से अन्य महिलाओं में भी उत्साह की वृद्धि हुई और एक सम्पूर्ण महिला पर्वतारोही दल का गठन हुआ। अविजित शिखर पर चढ़ने की योजना बनायी गयी। यह महिला पर्वतारोही अभियान दल ८ अप्रैल, १९६६ को निकल पड़ा।

इस महिला दल का नेतृत्व कुमारी पुष्पा अठावले, डा. मीना अग्रवाल के अतिरिक्त इस दल में गिरा शाह, प्रवीण शर्मा और लेकपा शेरपा थीं।

अपने लक्ष्य तक पहुँचने के पश्चात् यह दल लगभग एक घण्टे तक शिखर पर खुशियाँ मनाता रहा। वहाँ पर इन्होंने राष्ट्रीय-ध्वज के अतिरिक्त बम्बई पर्वतारोही क्लब का झण्डा फहराया और अपने कुछ एक स्मृति संकेत भी छोड़े।

जून १९६६ में हिमालय पर्वतारोहण-संस्थान मनाली का एक महिला अभियान दल कुल्लू काँगड़ा जिले के मध्य स्थित १९,४५० फुट ऊँचे हनुमान शिखर पर चढ़ने में सफल हुआ। इस दल की सदस्याएँ नेत्री अरुणा आर. राव, शीला सरकार, के. सी. सुन्दरी और आर. अरुणा थीं।

२५ जून, १९६६ को गुजरात पर्वतारोहण संस्थान का महिला दल २१,८९० फुट ऊँचे गंगोत्री—१ शिखर पर चढ़ने में सफल हुआ। इस दल में नन्दिनी पटेल, स्वाति देसाई, कल्याणी पटेल, माधवी भट्ट तथा अर्मिती दस्तूर आदि पाँच महिलाएँ थीं। इस दल ने अति आवश्यक उपकरण ऑक्सीजन सिलेण्डरों का प्रयोग भी नहीं किया।

इस दल ने पहला पड़ाव २० जून को तथा दूसरा २१ जून को १८,५०० फुट की ऊँचाई पर डाला। मौसम की प्रतिकूलता के कारण २४ जून को उन्हें अपना कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा तथा २५ जून को अपनी अन्तिम चढ़ाई शुरू की और अधिक ऊँचाई पर चढ़ने में इनको साँस लेने में भी कठिनाई होने लगी थी। चार लड़कियाँ क्रम से एक ही रस्सी में बँध गईं। एक-एक कर साँस लेती हुई वे बढ़ रही थीं। फिर भी लड़कियों में उत्साह का लेश मात्र भी कम न हुआ। शिखर पर पहुँचते-पहुँचते वे थककर चूर हो गयीं। शिखर पर पहुँचकर वे कुछ समय तक बोलने और प्रसन्नता व्यक्त करने में भी असमर्थ हो गयीं। इस थकावट की स्थिति में उन्होंने मौन रहकर ही अपने हर्ष तथा उल्लास का परिचय दिया।

सन् १९६८ में भारत जापान का एक महिला पर्वतारोही दल चम्पा क्षेत्र की कुछ अविजित चोटियों पर चढ़ने में सफल हुआ। इस दल का नेतृत्व नन्दिनी पटेल कर रही थी। इस दल में भारत की सदस्याएँ थीं—कोकिला मेहता, डा. मीना अग्रवाल, श्रीमती शशिकान्ता, डेफनी खियागरी और डाली बी. शहर।

१९६७ में कुमारी दीपाली के नेतृत्व में लक्ष्मी, शीला घोष और स्वप्न मित्र ने १९,९५० फुट ऊँचाई के गौरी-शिखर पर चढ़ने में सफलता प्राप्त की।

१९६९ में कुल्लू लाहौल क्षेत्र में स्थित २१,७५० फुट ऊँचे शिखर बराशिंगरा पर एक लड़कियों का पर्वतारोही दल चढ़ने में सफल हुआ। इस दल की सदस्याएँ—दीपाली सिन्हा, लक्ष्मी पाल, दीप्तिसेन गुप्त, स्वप्न मित्र, शीला घोष और वरलक्ष्मी को कदम-कदम पर मौसम की प्रतिकूलता, अर्थाभाव आदि बाधाओं का सामना करना पड़ा। किन्तु ये निराश नहीं हुईं और साहस नहीं छोड़ा।

सन् १९७० में शेरपाओं की सहायता के बिना गुजराती महिलाओं के तीन दल त्रिशूल, उन्नापेद, तथा हनुमान टिब्बा की चोटियों पर चढ़ने में सफल हो गये। गुजरात की पर्वतारोही प्रशिक्षिका, जो ध्रुव कुमार पंड्या से विवाही जाने के बाद नन्दिनी पंड्या बन गई हैं, एवरेस्ट शिखर पर पहुँचने वाली प्रथम महिला होने का गौरव प्राप्त करने की आकांक्षी हैं। वे २२,७४२ फुट ऊँचे कैलाश शिखर, २२,३०० फुट मात्रि शिखर, २१,८९० फुट ऊँचे गंगोत्री शिखर, २३,३६० फुट ऊँचे त्रिशूल शिखर तथा १९४५० फुट ऊँचे हनुमान टिब्बा आदि के सफल अभियानों में भाग ले चुकी हैं। वे दर्शन-शास्त्र में एम. ए. हैं तथा गुजरात पर्वतारोहण संस्थान व माउन्ट आबू की प्रशिक्षिका हैं। वे दार्जिलिंग तथा मनाली पर्वतारोहण-संस्थान के भी कई कोर्स कर चुकी हैं।

गुजरात निवासी महिला पर्वतारोही स्वाति देसाई भी एक अनुभवी पर्वतारोही हैं। वे त्रिशूल अभियान दल की उपनेत्री रह चुकी हैं।

महिलाओं के इन सफल प्रयासों को देखते हुए इस सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि महिलाएँ साहस के क्षेत्र में पुरुषों से पीछे रहने वाली नहीं हैं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बारह वर्ष की बालिका का अद्भुत साहस

५ फरवरी, १९७२। उदयपुर (राजस्थान) अरावली की सुरम्य उपत्यकाओं में अवस्थित फतहसागर झील की अगाध जलराशि अरावली के चरण पखार रही थी। फतहसागर के किनारे सर्पाकार बल खाती हुई सड़क आगे तक चली गई है। उससे लगे हुए नहाने के घाट भी हैं। नहाने वाले सभी खड़े-खड़े देख रहे थे कि माँ व बेटा पानी में डूबे जा रहे हैं। कुछ ही समय में दोनों मौत के मुँह में जाने वाले हैं। ऐसा साहस कौन करे कि उनके प्राण बचाने के लिए अपने को संकट में डाले। सभी एक दूसरे का मुँह ताक रहे थे और देख रहे थे।

पशुओं में भी परस्पर सहयोग की भावना होती है। वे भी दूसरों को बचाने के लिये अपना भरपूर प्रयास करते हैं फिर यह कैसे सम्भव है कि मनुष्य में वैसी भावना न हो। अपने सुख के लिए अपने बचाव के लिये हर व्यक्ति प्रयत्न करता है तथा अपने परिवार के लिये भी वह सब कुछ करता है। हर व्यक्ति में बुद्धि, विवेक, साहस मौजूद है। उनका उपयोग वह अपने तथा अपने परिवार के लिए ही न कर दूसरों के प्राण बचाने में करता है तो यह एक ईश्वरीय चेतना ही होगी। इतनी विभूतियाँ ईश्वर ने मनुष्य को दी हैं, अन्य प्राणियों को नहीं। उनका दूसरों के लिए उपयोग करना ही मानवीय कर्त्तव्य है।

ऐसी ही ईश्वरीय चेतना एक बारह वर्षीय बालिका के हृदय में जागी, जिसका नाम ऊषा था। कुछ देर देखा कि इतनी भीड़ में से कोई भी साहस नहीं कर रहा है, जो अपने को संकट में डालकर उनके प्राण बचाए। पति अपनी पत्नी को डूबते देख कूदे तो कोई बड़ी बात नहीं, माँ यदि बेटे को डूबते देख कूदती है तो भी कुछ नहीं किन्तु जिससे अपना कोई रिश्ता न हो, प्रेम न हो। मानव मात्र को बचाने के लिए जो साहस कर जाता है, वही अनुपम साहस है।

बालिका तैरना जानती थी। अधिक प्रतीक्षा करे इतना समय न था। दो मिनट बाद ही दो व्यक्ति मृत्यु की वेदी पर चढ़ने वाले थे।

तभी उसने निर्णय ले लिया कि क्या करना चाहिए। उसने सोचा—"मैं तैरना तो जानती ही हूँ। यदि इनको बचाकर ले आई तो अच्छा ही होगा और अगर न ला सकी, खुद ही डूब जाऊँगी यही तो होगा। दूसरों की सहायता करना मेरा कर्त्तव्य है। अपने प्राणों का मोह त्याग कर उसने जल्दी से कपड़े उतारे और ईश्वर का नाम लेकर तालाब में कूद पड़ी।

माँ और बेटे दोनों के प्राण शायद अपनी इस रक्षिका का ही इन्तजार कर रहे थे। उसका उनके पास पहुँचना, हाथ पकड़ लेना और अपने शरीर की पूरी शक्ति सहित खींच लाना। बालिका इसमें सफल हो गई और दो जिन्दगियों को मिटते-मिटते बचा लिया।

तीनों प्राणी जब हाँफते-हाँफते किनारे आये और उन्हें जीवित पाया तो सभी देखने वाले दंग रह गए। कोई लड़की साहस को सराहता तो कोई उस परम पिता परमेश्वर को धन्यवाद देता।

कुछ देर बाद उनका हाँफना बन्द हुआ व शान्त चित्त उन्होंने बालिका को देखा तो वे भाव विभोर हो गये। उनके नेत्रों से आनन्द और कृतज्ञता के आँसू छलक पड़े। अपने इस उपकार के प्रति वे शब्दों में न तो आभार ही व्यक्त कर पा रहे थे और न कृतज्ञता।

अपना लोभ, मोह त्यागकर परमार्थ में प्राणोत्सर्ग तक करने का जो साहस करता है, उसमें ईश्वरीय शक्ति आ जाती है और समय-समय पर ईश्वर उसकी सहायता करता है। विकट परिस्थितियों में अपना साहस न खोने से बिगड़ते काम भी बन जाते हैं। दूसरों के प्रति इस प्रकार उत्सर्ग का दृष्टिकोण रखने वाले ही सच्चे मानव कहलाते हैं।

विपत्ति में विवेकपूर्ण साहस

आततायी थे १५-२०, एक घर में घुसते ही लूटपाट शुरू कर दी। सबने दो-दो एक-एक वस्तुएँ भी उठाईं तो बात करते-करते लगभग पाँच हजार का सामान एकत्रित कर लिया। खटपट हुई तो गृहस्वामी जाग गये। चिल्लाने की कोशिश करते ही सबने मिलकर उन्हें घर दबोचा और बुरी तरह घायल कर दिया।

घटना २९-९-६९ सितम्बर 'दैनिक हिन्दुस्तान' में छपी थी। खुरजा में पहासू नामक स्थान के निकट सीखी नामक ग्राम में उक्त घटना घटी।

जब उस गृहस्वामी किसान को बुरी तरह मार-पीटकर चोर माल समेटकर भागने को हुए तो किसान की २२ वर्षीया पुत्री ने सोचा कि ये माल लेकर भागे तो जा रहे हैं। क्यों न बन्दूक चलाकर एक आध का काम तमाम कर दिया जाये। शेष बन्दूक की आवाज सुनकर ही भाग जायेंगे। आखिर प्राण तो सभी को प्यारे होते हैं। युवती साहसी थी। मुश्किलों से टकरा जाना—उसके स्वभाव में शामिल था। और कोई सामान्य मनोभूमि की महिला होती तो डरकर कहीं कोने में मुँह छिपाये रोती रहती। पर उसने अदम्य साहस का परिचय देते हुए भागते हुए चोरों पर गोली चलाई।

शोर काफी हो चुका था और कुछ ही क्षणों में अन्य गाँव वालों के आ जाने की पूरी सम्भावना थी। तो चोरों से कुछ तो न बना—उस युवती को जबरदस्ती उठा कर अपने साथ ले गये और उसकी बन्दूक छीन ली। इस संघर्ष में भी उस वीर महिला ने पर्याप्त बहादुरी दिखाई। पर आखिर वे थे १५-२० और वह एकाकी सो भी युवती महिला।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

५.३२ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

बाँध-बूँधकर किसी प्रकार उसे ले तो गये किन्तु रास्ते भर वह निरन्तर घुटने तथा लात मारकर भागने का प्रयास करती रही। उसने अपना साहस नहीं छोड़ा। मस्तिष्क का सन्तुलन नहीं खोया और धैर्य धारण किये रही। हारकर चोरों ने सोचा कि इसके हल्ले-गुल्ले से कहीं हम पकड़े न जायँ; अत: वे उसे वहीं कुछ दूर पर जंगल में छोड़ गये। किन्तु इस संघर्ष में काफी घायल हो गई थी। नृशंस व्यक्तियों को कब यह ध्यान होता है कि नारीमात्र-मातृ शक्ति है और उसका आदर करना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है। मुकाबला हमेशा अपने बराबर वाले से होता है।

किन्तु कुसंस्कारी व्यक्ति कब इतना सोचते हैं। इतनी बुद्धि हो तो चोरी जैसा जघन्य कर्म ही क्यों करें ? उनकी अन्तरात्मा बिल्कुल ही मर चुकी होती है।

किन्तु उस युवती की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। नहीं तो ऐसे समय सामान्य मनोभूमि की महिलाएँ तो घबराकर अपना मानसिक सन्तुलन ही खो बैठती हैं या बुरी तरह रोने-चिल्लाने लगती हैं या फिर चेतनाहीन हो जाती हैं।

पर इस सबके विपरीत उसने न तो अपना मानसिक सन्तुलन ही खोया और न घबड़ाई ही। बल्कि डटकर आततायी का सामना किया—बराबरी से लड़कर अपने अदम्य साहस का परिचय दिया। दुर्घटना या बड़ी विपत्ति के समय भी विवेक को सँभाले रखना तथा इस प्रकार कठिनाई से जूझ जाना—बहुत ही प्रशंसनीय कार्य है—वह भी एक महिला होते हुए—जिसे शरीर से बिल्कुल ही कोमल समझा जाता है तथा अबला कहा जाता है।

आठ वर्षीय बालिका का अद्भुत साहस

ब्रिसबेन, इप्सविच के समीप हुई एक कार दुर्घटना में घायल व्यक्तियों की रक्षा और परिचर्या में एक आठ वर्षीय बालिका धैर्य और साहस का अभूतपूर्व प्रदर्शन कर मृत्यु के मुँह में फँसे हुए सात व्यक्तियों की जीवन रक्षा करने में सफल हुई। दुर्घटना में तीन व्यक्तियों की मृत्यु हो गई।

आकस्मिक आपत्तियों और घटनाओं के संयोग संसार में हर मनुष्य के सामने आते रहते हैं, पर जो लोग उनसे घबराते नहीं, कठिनाइयों में भी धैर्य रखकर अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहते हैं, वे उन आपत्तियों को जीत लेते हैं और दुष्परिणामों की आधी संभावना को तत्काल दूर कर लेते हैं। आपत्तियाँ केवल उन्हें बोझ बनती हैं, जो घबड़ाकर अपना मानसिक सन्तुलन खो डालते हैं। उनसे लड़ने की अपेक्षा भयभीत होकर हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाते हैं।

आठ वर्ष की बालिका ने किस तरह धैर्य और साहस व्यक्त कर सहयात्रियों का जीवन बचाया, यह कहानी बड़ी प्रेरणाप्रद है—कोलीन बेकमन नाम की यह बालिका अपनी माँ, चार भाई-बहिन एवं अन्य चार व्यक्तियों सहित एक कार में सफर कर रही थी। एकाएक गाड़ी को झटका लगा और वह एक बाँध में कमर तक गहरे पानी के खड्ड में जा गिरी। उस समय का मौसम ठिठुरता था, बर्फ गिर रही थी जब यह दुर्घटना हुई।

नीचे गिरने पर कोलीन-बेकमन को छोड़कर सभी बेहोश हो गये। बड़ी आयु का व्यक्ति होता तो अपना धैर्य खो देता। पर बालिका ने रोने-चिल्लाने की अपेक्षा आपत्तिग्रस्त साथियों की सहायता करना ही उचित समझा। भयंकर शीत में भी वह पानी में घुस पड़ी और एक-एक व्यक्ति को किनारे सूखी जमीन में खींच लाई और उस कटकटाती ठंडक में उन्हें गर्म रखने का प्रबन्ध किया। बालिका इस कार्य में ६ घण्टे तक अनवरत रूप से संलग्न रही। इस बीच उसका शरीर सुन्न पड़ गया पर उसने अपनी परवाह न कर मुसीबत में फँसे लोगों को सहायता देना अधिक महत्त्वपूर्ण अनुभव किया। परिणाम की प्रतीक्षा किये बिना वह अपने इसी कर्त्तव्य पर डटी रही।

जीवित या मृतक सबको किनारे खींच लाई पर जब तक उसका शरीर ठंड से जकड़ गया और वह स्वयं भी अचेत होकर गिर गई, किन्तु उसका अब तक का श्रम और तपश्चरण सार्थक हुआ। उनमें से एक व्यक्ति की चेतना लौट आई। उसे कोई सख्त चोट न लगी थी। वह उठा और पास के गाँव में जाकर वहाँ से आवश्यक सहायता और आग का प्रबन्ध कर लाया। इस तरह सातों व्यक्तियों की सुरक्षा हो गई। बाद में मृतकों सहित अन्य सभी को सुरक्षित स्थानों तक पहुँचाने की व्यवस्था हो गई।

दुर्घटनाग्रस्त लोगों के प्रति संवेदना व्यक्त करने वाले लोगों ने बालिका कोलीन बेकमन के साहस की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा—"यदि ऐसे आड़े मौके पर वह अत्यधिक धैर्य और हिम्मत के साथ काम न लेती तो उन सात व्यक्तियों का जीवित बचना भी असम्भव था।" कठिन परिस्थितियों में चाहे कोई भी हो उसकी हिम्मत परास्त न होनी चाहिये। उसे भावी जीवन की सुखद और सहानुभूतिपूर्ण कल्पना के साथ उन पर काबू पाने का प्रयत्न करना चाहिये। ऐसे व्यक्ति अपनी और अन्य दूसरों की भी सहायता और रक्षा करने में समर्थ होते हैं।

अपने में मिस कार्लविन सी करुणा जाग्रत करें

२६ नवम्बर, १९६२ की शाम। हालैण्ड के आर्न्हम शहर का एक भव्य मकान। मकान के ड्राइंग रूम में रखा हुआ टी. वी.। कार्यक्रम देखने के लिए सामने जमे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुए मकान में रहने वाले लोग, उन लोगों में मकान मालिक के परिवारीजनों के अतिरिक्त घर के नौकर-नौकरानियाँ भी बैठे थे। टी. वी. का बटन जैसे ही खुला पर्दे पर एक डाक्टर की छवि दिखाई दी। डाक्टर दर्शकों से बड़े ही मार्मिक स्वरों में अपील कर रहा था कि वे लोग आप जैसे ही हैं। उनकी भी आकांक्षायें हैं और उनकी भी तमन्नायें हैं। उनमें आप जैसी प्रतिभा और योग्यता भी है, पर कमी है तो एक बात की कि वे चल फिर नहीं सकते। क्या आप उनकी मदद नहीं करेंगे ? आपके परिवार का कोई सदस्य बीमार पड़ता है तो आप किस तरह चिन्ताकुल हो उठते हैं। वे भी आपके परिवार के हैं—आपका समाज भी तो आपका ही बड़ा परिवार है। उनकी मदद कीजिए न.....।''

इसके बाद एक विस्तृत योजना, जिसमें अपंगों के लिए एक गाँव बसाने की बात कही गई थी। इसके बाद एक छोटी-सी फिल्म जिसमें अपंगों के प्रति करुणा और सहानुभूति जगाने की प्रेरणा टी. वी. के पर्दे पर बन रही लकीर-लकीर से टपक रही थी और कलेजे को चीरती हुई अन्तःकरणों को आकुल-व्याकुल किये दे रही थी।

देखने वालों ने क्या अनुभव किया और क्या नहीं, यह सोचे बिना मकान में काम करने वाली एक युवती नौकरानी-मिस कार्लविन विचार करने लगी-''सचमुच इस योजना के लिए कुछ न कुछ दिया जाना चाहिए, पर क्या दे ? कुछ सूझ नहीं रहा था। दिन भर मकान मालिक के परिवार की सेवा करने के बदले उसे मिलता था, दो वक्त का भोजन और थोड़े से रुपये, जिनसे वह अपना हाथ खर्च चलाती थी। हाँ ! कुछ बचा भी तो लेती थी, परन्तु क्या बचा पाई। लाख याद किया पर याद नहीं आया कि क्या कुछ बचा सकी है। कुछ बचता ही नहीं था। कुछ ही दिनों बाद शादी होने वाली है, तब वह अपने पति से कहकर इस बस्ती के लिए यथाशक्ति दे सकेगी।''

''पर शादी में तो अभी दो महीने हैं। तब तक के लिए इस सेवायज्ञ में आहुति देने से रुकना नहीं चाहिए। मेरा ही भाई बीमार पड़ता तो क्या मैं यह सोचती कि शादी हो जाने के बाद मैं उसका इलाज कराऊँगी।''

कार्लविन सोचती चली जा रही थी।

अगले दिन उसने अपनी मालकिन से कहा-''मालिकन दो महीने की तनख्वाह उधार दे दो।''

''क्या करोगी ! क्या जरूरत आ पड़ी है ?'' मालिकन ने बड़ी ही रुखाई से प्रश्न किया।

जी हुआ कि कह दे कि हेट डॉर्प के लिए भेजूँगी, परन्तु तभी खयाल आया कि मालिकन हँसी न उड़ाने लगे। खाने को दाने नहीं जुटते हैं और बनने चली है-दानी। इस विचार से उसने कहा-''मेरी एक सहेली का विवाह है। उसे उपहार में देने के लिए चाहिए।''

''और फिर कह देना कि चार महीने की तनख्वाह पेशगी दे दो, मेरा विवाह है। क्यों है न !'' मालिकन ने बड़ी रुखाई से कहा।

मन मसोसकर रह गई कार्लविन फिर भी बोली-''नहीं मौडम ! अपनी शादी के लिए नहीं मागूँगी।''

परन्तु मैडम टस से मस नहीं हुई।

कार्लविन महसूस करने लगी कि उसने अपनी सहेली के विवाह का बहाना क्यों बनाया। कोई जोरदार बहाना बनाती, जिससे कि मालिकन को इन्कार करते नहीं बनता-जैसे मेरा भाई बीमार है या बहिन दुर्घटना में घायल हो गई है।

उसे लगा कि सचमुच उसकी बहिन दुर्घटना में घायल हो गई है। वह भी तो उसकी ही तरह सम्पन्न परिवारों में चाकरी कर अपना पेट पालती है। साथ में दो-दो बच्चे। पति की छत्रछाया कब की उठ गई। ''बहिन पैसों से लाचार होकर पलंग पर पड़ी हुई है और अपने बच्चों का इन्तजार कर रही है, जो बाहर सड़कों पर भीख माँगने गये हैं या रद्दी कागज बटोरने ताकि उन्हें बेचकर एक वक्त का खाना जुटाया जा सके।''

कल्पना ही तो थी ये सारी बातें परन्तु निरी कल्पना नहीं संवेदना से जन्मी करुणामूलक भावानुभूति। फिर उसके मस्तिष्क में प्रश्न कौंधा-''सचमुच यदि ऐसी स्थिति घट जाये तो क्या करना चाहिए ?''

''शायद मैंने कहीं पैसे रख दिए हों और रखकर भूल गई होऊँ।'' उसे याद आया पिछले दिनों जब उसकी बहिन बीमार पड़ी थी तो उसने अपने पुराने संदूक को टटोलते हुए ही कुछ रुपये खोज लिए थे, जिन्हें वह संदूक में रखकर भूल गई थी।''

मालिकन द्वारा रूखा-सा जबाव मिलने पर वह अपने कमरे में आ गई और उसी पुराने संदूक को टटोलने लगी। संदूक का एक-एक कोना छान मारा पर कहीं भी एक कानी कौड़ी नहीं मिली। उसने दुबारा फिर देखा, परन्तु फिर भी वही हालत। अब उसने संदूक में रखे एक एक कपड़े की तह को खोला। सोचा शायद कपड़ों के बीच में कहीं पैसे रख दिए हों। परन्तु नहीं वहाँ से नोटों की सरसराहट तो क्या छोटे सिक्के की झनझनाहट तक नहीं निकली।

तभी उसकी आँखें चमक उठीं। उसके हाथ में कुछ दिनों पूर्व बनवाये कपड़ों की जोड़ी थी। इन कपड़ों को उसने अपनी शादी के समय पहनने के लिए सिलवाया था। अभी तक तो उतार निजरार के कपड़े ही वह पहनती आई थी। जो कपड़े मालिकन के लिए ''आउट ऑफ फैशन'' हो जाते थे, उन्हें वह कार्लविन को दे दिया करती थी और कार्लविन उन्हीं कपड़ों को पहनकर अपना तन ढकती। ये नये कपड़े उसने अपनी तनख्वाह की पाई-पाई जोड़कर बनवाये थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

५.३४ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :

प्रेरणा उठी-हेट डॉर्प में बसने बसने वाली स्त्रियों के लिए कपड़ों की जरूरत भी तो पड़ेगी। क्यों न ये कपड़े उनके लिए दे दिए जायें ? तभी कुँवारे मन ने कहा—'नहीं, इन्हें तो शादी के लिए रहने दो। तुम्हें ही मदद करने की क्या पड़ी है, बहुतेरे हैं मदद करने वाले और तुम मदद कर दोगी, ये चन्द जोड़ी कपड़े दे दोगी तो कौन-सा किला फतह हो जायेगा।'

परन्तु वह मन के इस बहकावे में नहीं आई और उसने उसी दिन टी. वी. द्वारा प्रसारित पते पर एक पत्र लिखा। पत्र में अपनी पूरी स्थिति स्पष्ट करते हुए इस क्षुद्र सहयोग को स्वीकार करने का आग्रह किया। पत्र जिस तत्परता से लिखा गया था, उसी तत्परता से उत्तर भी आया। उसका योगदान न केवल स्वीकार कर लिया गया था वरन् उसे यह उपहार देने के लिए टी. वी. स्टेशन बुलाया गया था ताकि उसकी भावनाओं को फिल्म द्वारा जन साधारण तक पहुँचाकर उनमें भी वैसी ही भावनायें उभारी जायें। कार्लविन टी. वी. स्टेशन गई और जब उसे अपनी शादी के लिए बनवाये कपड़े देते हुए टी. वी. पर दिखाया गया तो दर्शक दंग रह गये।

न केवल दंग वरन् अभिभूत भी हो उठे। लोगों पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे अपने रेडियो, कारें, फर्नीचर और दूसरी तरह-तरह की चीजें दान में भेजने लगे। कुछ विद्यार्थियों ने अपने छुट्टियों के समय में आकर अपंगों की बस्ती में निर्माण कार्य में हाथ बँटाने का उत्साह दर्शाया। एक सज्जन ने अपंगों की बस्ती बसाने के लिए अपनी मालकियत की सारी जमीन ही दान में दे दी। छोटे-छोटे बच्चों ने अपना जेब खर्च बचाकर अपने अपाहिज भाईयों के लिए साधन जुटाये।

इस प्रकार कुल मिलाकर ८५ हजार रुपये नकद इकट्ठे हुए और ७ लाख २० हजार रुपये के उपहार जमा हुए, जिनके सहारे अपंगों का वह गाँव बसा जहाँ आज सैकड़ों व्यक्ति लोगों के सामने दया की भीख माँगने के लिए नहीं, उनका सहयोग बटाने के लिए हाथ बँटाते हैं।

यह जन-भावना उभारने में मिस कार्लविन ने वैसी ही भूमिका निबाही, जैसी कि अब से ढाई हजार वर्ष पहले एक अकाल पीड़ित क्षेत्र में किसी अकिंचन बालिका ने बुद्ध के समय निबाही थी और पास में कुछ न होते हुए भी सब कुछ जुटाने का साहस दर्शाया था।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंतःस्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रातःकाल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को [illegible] विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय [illegible] माताजी ने १६ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६.ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३ हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org